आवश्यक निवेदन—

१. इस वर्ष मे [illegible] के [illegible] [illegible] है। इस [illegible] ग्राहकों के [illegible] विशेषांक के [illegible] रैपर पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा [illegible] [illegible] नोट करके रखें तथा [illegible] में किसी भी प्रकार का पत्र व्यवहार करते समय उसे अवश्य लिखा करें।

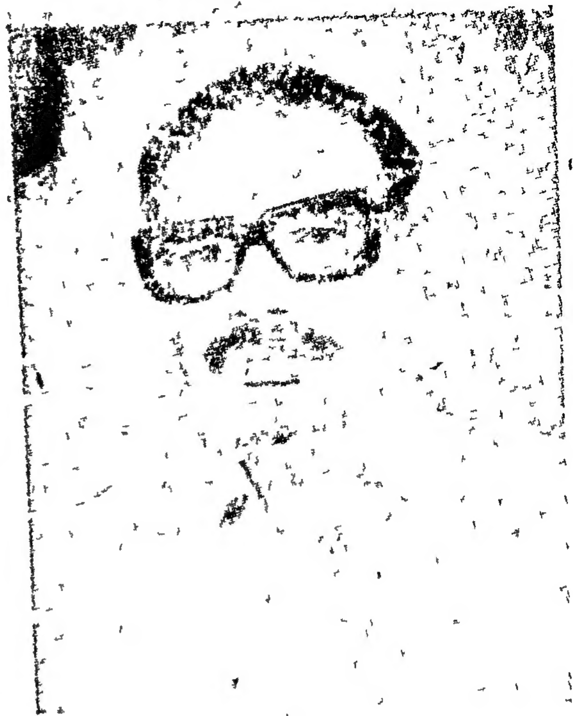
२. 'धन्वन्तरि' का कोई भी अङ्क मिलने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अंग्रेजी माह का [illegible] [illegible] [illegible] यदि न मिला हो तो कृपया पोस्ट आफिस में तलाश करें। पोस्ट आफिस में भी नहीं मिलने [illegible] पोस्ट मास्टर के उत्तर के साथ हमें लिखें। न मिलने वाला अङ्क अगले माह के आरम्भ में निकालने पर पुनः भेज दिया जायगा। बाद मे एक साथ कई अङ्को की पूर्ति करना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा।

३. इस विशेषांक के ऊपर रैपर पर आपका जो पता लिखा है उसमें कोई अशुद्धि या गलती होवे तो कृपया पत्र लिखकर ठीक करा लीजिएगा।

४ 'धन्वन्तरि' का प्रकाशन अब "निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़" से हो रहा है। किसी भी प्रकार का पत्राचार आप इसी पते पर करें। 'धन्वन्तरि' का ग्राहक शुल्क भी इसी पते पर भेजें।

निवेदक—
बांकेश्याम गर्ग सम्पादक-'धन्वन्तरि'
अध्यक्ष—निर्मल आयुर्वेद संस्थान,
मामू भांजा रोड, अलीगढ़।

अपना ग्राहक नम्बर यहां लिख लें।



प्रकाशकीय निवेदन

'निर्मल आयुर्वेद संस्थान' द्वारा प्रकाशित 'धन्वन्तरि' का चिर प्रतीक्षित 'जरा-व्याधि चिकित्सांक"
आपको सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। यह विशाल विशेषांक हमारे छः माह के अन-
वरत कठिन प्रयास का सुपरिणाम है। 'धन्वन्तरि' द्वारा शिशु रोगो, पुरुष रोगो, स्त्री रोगो पर विशाल विशेषांक
प्रकाशित किए जा चुके हैं जिन्हे कि पाठको ने मुक्त कण्ठ से सराहा है लेकिन बुढापे के रोगो पर कोई भी साहित्य
हिन्दी मे दृष्टिगोचर नही होता है जबकि मानव सर्वाधिक वृद्धावस्था मे ही रोगो से जकड़ा रहता है। साथ ही
कतिपय वृद्ध अपनी सन्तति द्वारा उपेक्षित भी रहते हैं। इस कारण 'धन्वन्तरि' द्वारा एक ऐसे साहित्य के प्रकाशन
की आवश्यकता पर, जिससे कि वृद्धावस्था मे होने वाले रोगो पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता हो तथा वृद्धजन रोगमुक्त हो
सकें स्वस्थ बने रह सकें, बल देते हुए आचार्य श्री शिवकुमार जी व्यास को इसका सम्पादन करने का आग्रह किया।
हमे अत्यन्त प्रसन्नता है कि आपने हमारे आग्रह को तुरन्त ही स्वीकार कर उस पर कार्य आरम्भ कर दिया।
यद्यपि आपको अत्यन्त समयाभाव रहता है लेकिन आप मेरे आग्रह को टाल न सके जोकि 'धन्वन्तरि' के तथा मेरे
प्रति आपके असीम स्नेह का प्रतीक है।

जरा-व्याधि चिकित्सांक के विषय मे सर्व प्रथम कठिनाई यह रही कि इस विषय पर हिन्दी मे कोई भी
साहित्य दृष्टिगोचर नही हुआ जिससे कि उस आधार पर कोई रूप रेखा बनाई जा सके। अन्तत विशेष सम्पादक
महोदय, श्री व्यास जी ने इसकी रूप रेखा बनाकर प्रस्तावित विषय सूची को सभी लेखक बन्धुओ को भेजी। लेकिन
आयुर्वेद के इस उपेक्षित अङ्ग पर बहुत ही कम लेखको ने अपने लेख भेजने का साहस किया। तत्पश्चात् श्री व्यास
जी ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव से आयुर्वेद के दिग्गज विद्वानो, प्रोफेसरो, रिसर्च स्कालर्स-प्राचार्यों से अत्यन्त उत्तमोत्तम
लेख उपलब्ध किये। और हमे इस बात का गर्व है कि 'धन्वन्तरि' के इस 'जरा व्याधि चिकित्सांक' मे आयुर्वेद
कालेजो के शिक्षको प्राचार्यो, अन्वेषको, चोटी के विद्वानो ने उत्तमोत्तम लेखो द्वारा जितना अधिक सहयोग दिया है उतना
अभी तक प्रकाशित किसी भी विशाल विशेषांक मे, या आयुर्वेद की किसी भी अन्य पत्रिका के किसी भी विशेषांक

मे नही प्राप्त हुआ । इस विशेषाक के सम्पादन मे आचार्य श्री शिवकुमार व्यास जी ने अनवरत कठोर परिश्रम किया है । सैकडो पत्र लिखकर उच्चकोटि के लेखो को प्राप्त किया है, उनको और भी सजाया-सवारा है । विशेष सम्पादकत्व का कर्तव्य आपने सफलतापूर्वक अत्यन्त दक्षता से निभाया है । आप आयुर्वेद जगत की महान विभूति हैं जिसका दिग्दर्शन आपको आगे के पृष्ठो मे प्रकाशित आपके परिचय से प्राप्त होगा । 'जराव्याधि चिकित्साक' के सम्पादन मे आपने जो कठिन श्रम किया है उसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हू और धन्यवाद देता हू ।

'धन्वन्तरि' का देरी से प्रकाशित होना—

हमारे अनेको प्रयत्नो के अनन्तर भी उत वर्ष 'धन्वन्तरि' देरी से प्रकाशित हुआ इस कारण हमारे अनेक पाठक कुपित है । गत वर्ष मई माह का अङ्क हम सितम्बर के प्रारम्भ मे अर्थात ३॥ माह देरी मे भेज पाये थे । हम ठीक समय पर लाने का प्रयास कर रहे थे कि अगस्त और सितम्बर तथा अक्टूबर माह मे अलीगढ कर्फ्यू की चपेट मे रहा और 'धन्वन्तरि' की छपाई मे अवरोध उत्पन्न हो गया । कर्फ्यू के कारण ही गत वर्ष के अगस्त माह तथा नवम्बर माह के अङ्को की छपाई अलीगढ मे न कराकर हाथरस मे कराई गई । येन-केन प्रकारेण जनवरी १९८१ का अङ्क हमने सभी को जनवरी मे ही भेज दिया था । प्रसन्नता है कि प्रस्तुत विशेषाक "जरा-व्याधि चिकित्साक" भी गतवर्ष की तुलना मे एक माह पूर्व ही प्रकाशित हो रहा है । फिर भी वह २ माह लेट है । यदि अलीगढ मे कर्फ्यू की समस्या उपस्थित नही हुई तो हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि तीन माह मे 'धन्वन्तरि' को ठीक समय पर भेजने लगेंगे । जिस प्रकार गत वर्ष 'धन्वन्तरि' को दो प्रेसो मे छपाया था उसी प्रकार इस वर्ष भी दो प्रेसो मे छपवाकर ठीक समय पर प्रकाशित करेंगे ।

'धन्वन्तरि' के ग्राहको की एक बहुत बडी शिकायत उन तक 'धन्वन्तरि' के अङ्को के न पहुँचने की है। इस विषय मे हमारा विनम्र निवेदन है कि हम प्रत्येक अङ्क छपते ही उसे सभी ग्राहको को तुरन्त ही प्रेषित कर देते हैं। किसी का भी कोई अङ्क रोकते नही । इस विषय मे हम केवल यही कर सकते हैं कि कोई भी अङ्क मिलने पर आप देख लें कि उससे पूर्व माह का अङ्क मिला है या नही । न मिलने पर हमे अपनी ग्राहक सख्या लिखते हुए पत्र लिख दें तो उस अङ्क को हम पुन' भेज देंगे । एक साथ कई-कई अङ्को के न मिलने की शिकायत न करें । उनकी पूर्ति मे हमे कठिनाई भी हो सकती है ।

सन् १९८१ के लघु विशेषांक—

इस वर्ष तीन लघु विशेषाक प्रकाशित किये जायेंगे । किस माह मे कौन सा प्रकाशित होगा वह अभी निश्चित नही है लेकिन जैसे ही विशेष सम्पादक से हमे सामग्री प्राप्त होगी तदनुसार ही उसकी छपाई की व्यवस्था करेंगे । इस वर्ष तीन निम्न लघु विशेषाक होंगे—

१ प्रतिश्याय अङ्क—इसका सम्पादन आचार्य श्री शिवकुमार शास्त्री, आयु० बृह०, रावतपाडा, आगरा कर रहे हैं ।

२ मुख एव कण्ठ रोग चिकित्साक–इसका सम्पादन श्री कवि० गिरिधारीलाल मिश्र, तेजपुर (असम) कर रहे हैं।

३ आयुर्वेदीय सौन्दर्योपचाराक— इसका सम्पादन कवि० श्री आर० बी० त्रिवेदी, जसराना पो० सासनी(अलीगढ) कर रहे हैं ।

'धन्वन्तरि' पुरस्कार योजना—

इस वर्ष हम 'धन्वन्तरि' पुरस्कार योजना प्रस्तुत कर रहे हैं । योजना यह है कि जरा व्याधि चिकित्साक तथा आगे प्रकाशित होने वाले तीन लघु विशेषाको मे से प्रत्येक मे से आपकी दृष्टि मे जो एक सर्वोत्तम लेख हो उसका नाम एव लेखक का नाम दिसम्बर १९८१ मे लिख भेजें । आपके पत्र ही निर्णायक मडल का कार्य करेंगे । इस प्रकार प्रत्येक विशेषाक के लेखो पर प्रथम एव द्वितीय पुरस्कार दिये जायेंगे ।

भारत सरकार का सन् १९९१-९२ का बजट

इस वर्ष भारत सरकार ने अखबारी कागज पर १५ प्रतिशत आयात कर लगा दिया है। जिससे १२ रुपये प्रति रिम की कागज के मूल्यो मे वृद्धि हो गयी है। यह एक ऐसा कर है जिसने 'धन्वन्तरि' जैसी घाटे मे चलने वाली पत्रिकाओ के अस्तित्व को ही झकझोर दिया है। हमे एक वर्ष मे लगभग २००० रिम लगानी पडती हैं जिन पर लगभग २५ हजार रुपये का प्रत्यक्ष घाटा है। कागज की इस अभूतपूर्व मूल्य वृद्धि ने हमे अजीब उलझन मे डाल दिया है। इस वर्ष हम यह विचार कर रहे थे कि 'धन्वन्तरि' का कोई भी अंक संयुक्तांक (विशाल विशेषांक को छोडकर) नही करे। लेकिन अब विवशत गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी दो लघु विशेषांको को संयुक्तांक करना होगा। आगामी वर्ष 'धन्वन्तरि' के वार्षिक मूल्य मे सम्भवत २-२॥ रुपये की वृद्धि करनी होगी। इस मूल्य वृद्धि के बारे मे तो जैसी भी कागज के मूल्यो मे वृद्धि होगी तदनुसार कुछ माह पश्चात् ही आपको सूचित करेंगे।

कृपया 'धन्वन्तरि' के नवीन ग्राहक बनावें

'धन्वन्तरि' आयुर्वेद का सर्वोत्तम सर्वाधिक ग्राहक सख्या वाला मासिक पत्र है। यह कितना उच्चकोटि का साहित्य कितने अल्प मूल्य मे देता है यह आपको ज्ञात ही है। कृपया इस बारे मे अपने सम्पर्क मे आने वाले चिकित्सको को बतलायेगे तो वह अवश्य ही इसके ग्राहक बन जायेगे। 'धन्वन्तरि' की जितनी अधिक ग्राहक सख्या होगी उतना ही उत्तम साहित्य हम आपको दे पायेंगे। निवेदन है कि कम से कम २-२ नवीन ग्राहक आप अवश्य बनावें। बूंद-बूंद करके ही घडा भर जाता है। यदि प्रत्येक ग्राहक एक नवीन ग्राहक बना दे तो ग्राहक सख्या दूनी हो सकती है। आशा है कि आप 'धन्वन्तरि' के इस विशाल विशेषांक "जरा व्याधि चिकित्सांक" को दिखाकर तथा आगे और भी दिये जाने वाले साहित्य के बारे मे बताकर अवश्य नवीन ग्राहक बनाने का प्रयास करेंगे।

पत्र व्यवहार का पता

'धन्वन्तरि' के अनेक पाठक-ग्राहक 'धन्वन्तरि' का वार्षिक शुल्क या पत्र पूर्व प्रकाशको के पते पर भेज देते हैं जिससे वह पत्रादि हमे पर्याप्त देरी से मिल पाते है और आदेश पालन मे विलम्ब होता है। सभी से विनम्र निवेदन है कि पता सावधानीपूर्वक "निर्मल आयुर्वेद संस्थान, पोस्ट बाक्स न० १२७, अलीगढ" इस प्रकार लिखे। शास्त्रोक्त आयुर्वेदिक औषधियों, आयुर्वेदिक कैपसूलो का आदेश भी इसी पते पर प्रेषित करे।

आभार प्रदर्शन

इस "जरा व्याधि-चिकित्सांक" के प्रकाशन मे जिनका भी सहयोग मिला है उनका अत्यन्त आभारी हू। जिन लेखको ने अत्यन्त कृपापूर्वक लेख प्रेषित किये हैं उनका एव श्री शिवकुमार जी व्यास का जिन्होने अपने कठिन श्रम से लेख प्राप्त किये उन्हे सजाया-सवारा, का अत्यन्त आभारी हू। श्री व्यास जी एक बार स्वय लेखादि लेकर अलीगढ पधारे जिस प्रकार कि कुआ स्वय प्यासे के पास आता है। भगवान आपको दीर्घायु करे यही प्रार्थना है। भविष्य मे आपसे आयुर्वेद जगत को अनेकों अपेक्षायें है। इसके अतिरिक्त अनुज चि० श्रीनाथ अग्रवाल (अध्यक्ष मीरा प्रिंटिंग प्रेस) के सहयोग से यह विशेषांक अत्यल्प समय मे ही छपकर तैयार हो गया एतदर्थ आभारी हूं। कर्मचारी वर्ग मे सर्वश्री रामजीलाल, प० अनोखेलाल, राकेशकुमार शर्मा, कुंवरजीलाल, सत्यप्रकाश शर्मा, राजेश कुमार शर्मा, राजेन्द्रसिंह, सुरेशपालसिंह, महीपाल से भरपूर सहयोग मिला एतदर्थ आभारी हू।

भवदीय

१०-५-९१ रविवार

दाऊदयाल गर्ग

निर्मल आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ़

गरम पानी की थैली—मूल्य १४.५० ।

बरफ की थैली – मूल्य ८ ७५ ।

कान धोने की पिचकारी— धातु की एक औंस (२५ मिलि) २०००, २ औंस (५० मिलि) की २४ ५०, ४ औंस (१०० मि लि.) की ३२.०० ।

आपरेशन करने का चाकू—इसमे हैंडिल प्रथक होता है तथा काटने वाला ब्लेड प्रथक होता है जो कि खराब होने पर बदला जा सकता है। ६ ब्लेड सहित ११ ७५, स्टेनलैस स्टील का ६ ब्लेड सहित १५ ०० ।

बिस्चूरी— इसका फराक पतला तथा तिरछा होता है। इसके द्वारा भेदन किया जाता है। स्टेनलैस स्टील की सीधी ४.२५, स्टेनलैस स्टील की फोल्डिंग ६ ५० ।

चीमटी—स्टेनलैस स्टील ४" ३ ७५, ५" ४ ७५ ।

दातो मे दवा डालने की चीमटी स्टील ८ ०० ।

चाकू—स्टेनलैस स्टील का सीधा ४ २५, स्टेनलैस स्टील का फोल्डिंग ६ ५० ।

दांत उखाड़ने का जमूडा—मूल्य १५ ५०, स्टेनलैस स्टील का २६ ०० ।

दांत उखाड़ने के जमूड़ो का सैट—इसमे ७ प्रकार के जमूडे, दत उन्नामक यन्त्र, मसूड़े चीरने का चाकू आदि आवश्यक उपकरण एक बहुत सुन्दर कपडे से मढे डिब्बे मे हैं। मू० १६५ ००, स्टील के उपकरण २२५ ०० ।

कान मे से दाना निकालने का यन्त्र—यह यत्र कान मे से दाने आदि को सुगमता से खीचकर लाता है। मू० ३.७५, स्टील का ६ ०० ।

ग्लेसरीन की पिचकारी(प्लास्टिक)—गुदा मे ग्लेसरीन चढाने के लिए मू० २ औंस (५० एम.एल) ३ ७५, ४ औंस (१०० एम एल) की ५ २५ ।

कान देखने का आला—इससे कान के अन्दर का दृश्य स्पष्ट दीखता है। कपडे से मढे सुन्दर मजबूत के डिब्बे मे दो अतिरिक्त ईयरपीस सहित मूल्य ३६ ००

दवा नापने का गिलास (Measuring Glass)—२ ड्राम १ ५०, १ औंस (२२ मिलि) का १.७५, २ औंस (५० मिलि) का २ २५, ४ औंस (१०० मिलि.) का २ ७५ ।

आमाशय मे दूध चढ़ाने की नली—मूल्य ४ ७५ ।

गुदा परीक्षण यन्त्र (Proctescope)— गुदा की अदर परीक्षा करने के लिए यह आवश्यक है मू० १२ ५० ।

स्तनो से दूध निकालने का यन्त्र—मू० ४ ७५ ।

मूत्र कराने की नली (कैथीटर)—रबट का १ ५०, स्त्रियो के लिये धातु का ४ ० ०, पुरषो के लिए धातु का ५ ५०

जलोदर मे उदर स पानी निकालने का यन्त्र—जलोदर रोग मे उदर गह्वर से पानी निकालने हेतु स्टेनलैस स्टील का १२ ५० ।

आंख टेस्ट करने का चार्ट— इन चार्टों को पढवाकर दृष्टि परीक्षा कर सकते हैं। मू० ४ ०० प्रति चार्ट ।

कैंची—सीधी स्टेनलैसस्टील की ४ इन्ची ५.७५, ५ इन्ची ६ ७५, ६ इन्ची ७ ७५, ७ इन्ची ८.७५ ।

रबड़ के दस्ताने—चीडफाड करते समय चिकित्सक इन दस्तानो को हाथ मे पहनते हैं। मू० १ जोडी ४ ५० ।

थूकने का पात्र—तामचीनी (इनामिल) का पात्र ६ ००, प्लास्टिक का सुन्दर ७ ००, धातु का ८ ५० ।

स्प्रिट लैंप—धातु की २ औंस ७ ५०, ४ औंस ८ ००

कांटा (Scales)—निकिल पालिश किया हुआ लकडी के बक्स के अदर रखा हुआ। मू० बाटो सहित ४० ०० ।

डूस—फोडा आदि धोने, एनिमा लगाने को पूरा सैट २ पिंट १२ ५०, ४ पिंट का २० ०० ।

दन्त उन्नामक यन्त्र (Dental Elevator)—इस यंत्र की सहायता मे दातो को उकसाया जाता है। मू० १८ रु.

नासिका प्रेक्षण यन्त्र—इससे नाक चौड जाती है तथा आसानी से परीक्षा कर सकते है। मू० १४ ०० ।

सुरमा लगाने की सलाई-(काच की) १ औंस ३ २५

योनि प्रक्षालन यन्त्र—मूल्य १६ ५० ।

योनि परीक्षण यन्त्र—मूल्य २५ ५० ।

टूर्नीकेट— स्क्रू द्वारा कसन वाला शिरान्तर्गत इंजेक्शन लगाने के लिए अति उपयोगी प्लास्टिक का १६ ५० ।

शास्त्रीय प्रामाणिक औषधियां

कूपीपक्व रसायन

	१० ग्राम	३ ग्राम
सिद्ध मकरध्वज नं० १	६५ ००	२०.००
" नं० २	५० ००	१५ ५०
सिद्ध चन्द्रोदय (स्वर्ण भस्म युक्त)	१५५ ००	४७ ००
रस सिन्दूर	१८ ००	५.५०
मल्ल सिन्दूर	१८ ००	५ ५०
स्वर्ण बङ्ग	१०.००	३ २५
रस माणिक्य	१० ००	३.२५

भस्म

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
अभ्रक भस्म (शतपुटी)	४५.८५	६ ५०	३ ५०
कपर्द भस्म	७ २५	१ ७५	×
गोदन्ती हरताल भस्म (श्वेत)	५ ७५	१ ३५	×
ताम्र भस्म	३५ ००	७ २५	×
नाग भस्म	१७.५०	३ ७५	१ ५०
प्रवाल भस्म नं० १	३० ५०	६ ७५	२ २५
" नं० २	१७ ७५	३ ७५	१ ५०
" चन्द्रपुटी	१४ २५	३ २५	१ २५
बंग भस्म श्वेत	५७ ००	१२ ००	३ ७५
मृग शृंग भस्म	७ २५	१ ७५	×
माण्डूर भस्म	४ ७५	१ २५	×
मुक्ता भस्म	×	२२०.००	६७ ००
यशद भस्म	११ ००	२ ७५	×
लोह भस्म नं० १	६० ००	१२ ५०	४ ००
" नं० २	१५ ५०	३ ००	१ २५
स्वर्ण माक्षिक भस्म	१८ २५	३ ५०	१ ५०
शङ्ख भस्म	५ ००	१ ३०	×
शुक्ति (मुक्तायुक्त) भस्म	६ ००	१ ६०	×
त्रिबंग "	३५.००	७ २५	२ ५०

पिष्टी

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
प्रवाल पिष्टी	१४ २५	३ २५	×
मुक्ता पिष्टी	×	२१० ००	६३.५०
मुक्ता शुक्ति पिष्टी	४ ७५	१.३०	×
जहर मोहरा पिष्टी	१२ ५०	२ ७५	१ २५

पर्पटी

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
रस पर्पटी	४५ ००	६ २५	३ ००
श्वेत पर्पटी	४ ५०	१ ३५	×
पञ्चामृत पर्पटी	४५ ००	६ २५	३ ००
लोह पर्पटी	४५ ००	६ २५	३ ००

रस रसायन गुटिका गूगल

	१० ग्राम	१ ग्राम
कुमार कल्याण रस	२५५ ००	२६ ००
वसन्त कुसुमाकर रस	१४० ००	१४ ५०
वृ० वात चिंतामणि रस	२०० ००	२० ५०
योगेन्द्र रस	२४० ००	२४ ५०
रसराज रस	११० ००	११ ५०
स्वर्ण वसन्त मालती	१४० ००	१४ ५०

	५० ग्राम	१० ग्राम
अग्नितुण्डी (विषमुष्टिका) वटी	५ २०	१ ३५
आरोग्य वर्धिनी वटी	८ २०	१ ६५
गंधक रसायन	९.७५	२.२५
घोड़ा चोली (अश्व कंचुकी) रस	८ २०	१.६५
चन्द्रप्रभा वटी	१२ ५०	२ ७५
वृ० वात गजांकुश रस	१२ ५०	२ ७५
महामृत्युञ्जय रस	१५ ००	३ २५
लघु मालती वसन्त	१५ ५०	३ ५०
लक्ष्मी विलास रस (नारदीय)	२२ ००	४ ५०
त्रिभुवन कीर्ति रस	११.००	२ ३०
वृ० योगराज गूगल	१५ ५०	३.५०
योगराज गूगल	६ ५०	१ ६०
कज्जली नं०१ (बराबर गंधक पारद)	३० ००	३ १०
गंधक आमलासार शुद्ध	३ २५	१ २५
शुद्ध पारद हिंगुलोत्थ	५० ००	५ २५

पता—निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़।

त्वचा संबंधी विकारों के उपचार के लिए



प्रयोग कीजिये–

झंडु का

स्केबीझन

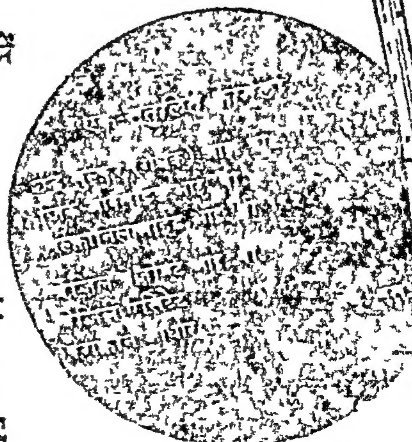
प्रमावकारी त्वचा ऐंटिसेप्टिक

स्वचा के दिकारों के शीघ्र और प्रमावकारी नियंत्रण के लिए एक नपा-तुला फ़ार्मूला- स्केबीझन खुजली में आराम पहुंचाता है राग को फैलने से रोकता है और ... की रोकथाम करता है। त्वचा को स्वस्थ होने मे सहायता करता है।

खुजलीके जन्तुओ से रक्षा।
एक्जीमा, दाद और खुजली आदिमें
प्रभावकारी इलाजके लिए
स्केबीझन का प्रयोग कीजिए।

१० और २५ ग्राम
की ट्यूब में उपलब्ध।







झंडु
फार्मास्युटिकल वर्क्स लि.

धन्वन्तरि

'जराव्याधि चिकित्साङ्क'

के

विशेष सम्पादक



डा० शिव कुमार व्यास

—एक परिचय

जन्म आयुर्वेद परिवार में—डा० शिव कुमार व्यास का जन्म दिल्ली के निकट गुड़गांव जिले के बहोड़ा कलां गांव में आदि गौड ब्राह्मणों के भारद्वाज गोत्रीय वंश मे हुआ। आपका वंश गुरु-गद्दी का अधिकारी था अतः 'व्यास' पदवी प्रचलित हुई। आपके पितामह स्व० राजवैद्य पं० रामचन्द्र जी व्यास अपने समय के गणमान्य आयुर्वेदिक चिकित्सक थे। आपके पिता श्री स्व० पं० भूदेव जी वैद्य एक पीयूषपाणि चिकित्सक थे। इस प्रकार आयुर्वेद श्री व्यास को विरासत मे मिला। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्टर, प्रभाकर (आनर्स इन हिन्दी) और साहित्याचार्य है।

(स्व० पं० राम चन्द्र जी व्यास)

(स्व० पं० भूदेव जी शर्मा)

(श्री व्यास—१९५३ में तिब्बिया कालेज दिल्ली में प्रवेश के समय)

सुयोग्य विद्यार्थी—आपने आयुर्वेद की शिक्षा एशिया प्रसिद्ध आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, नई दिल्ली से प्राप्त की। पहले भारतीय चिकित्सा बोर्ड, दिल्ली प्रदेश की भिषगाचार्य धन्वन्तरि (डी०आई०एम० एस०) उपाधि प्राप्त की। फिर उच्च पाठ्यक्रम मे प्रवेश लेकर आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि (बी. आई. एम. एस.) परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने दिल्ली बोर्ड मे प्रथम स्थान प्राप्त किया। और चरक मे आनर्स प्राप्त कर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये।

आयुर्वेदिक व यूनानी बोर्ड का परीक्षा परिणाम

नई दिल्ली, १० मार्च। आयुर्वेदिक व यूनानी बोर्ड की जनवरी की परीक्षाओं में निम्न परीक्षार्थी उत्तीर्ण हुए। परीक्षार्थियों के नामों के साथ कोष्ठक में उनके प्राप्त अंक भी दिये गए हैं।

फाइनल (कण्डेंस्ड डिग्री)

आयुर्वेद एम एन गुजराती (५१३), एस के मेहरा (५९५), सी डी गौतम (८३८), एम एल गुप्ता (५०१), एस के व्यास (६६०), पी आर जैन (५८०), डी एल आर (८३१) एम एस गिल (४२५) वी एल गर्ग (५५५), आर के पाठक (५७५), देवकुमार (४५३), डी पी भाटिया (५२७) एच बनर्जी (५८७), एम पी भूषण (४०८), एल वी एस

आयुर्वेदिक व यूनानी बोर्ड की परीक्षा में प्रथम

नई दिल्ली, १० मार्च। दिल्ली आयुर्वेदिक व यूनानी बोर्ड की कण्डेन्स्ड डिग्री कोर्स की फाइनल परीक्षा मे श्री एस के व्यास प्रथम आए। उन्होंने यह परीक्षा ६६० अंक प्राप्त कर विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की।

('हिन्दुस्तान' दैनिक १२ मार्च १९६२ से)

No F 16-8(2)/64/1824-1192

Telephone 43703

बोर्ड ऑफ आयुर्वेदिक एन्ड यूनानी सिस्टम्स ऑफ मेडीसिन, दिल्ली

(दिल्ली प्रशासन)

BOARD OF AYURVEDIC & UNANI SYSTEMS OF MEDICINE DELHI

(DELHI ADMINISTRATION)

34 Theatre Communication Bldg

NEW DELHI 26 th Jun 1964

MERIT CERTIFICATE

Certified that Shri Shiv Kumar Vyas was a meritorious candidate of this Board.

He secured first position obtaining 337/600 and 669/1000 marks in Previous and Final Condensed Degree Course in the year 1961 and 1962 respectively.

He obtained honours in "Charak" as well.

Narendra Nath Gupta

(Narendra Nath Gupta)
Registrar.

***



(केन्द्रीय मन्त्री-श्री सत्यनारायण सिंहा कालेज के वार्षिक उत्सव पर ३० अप्रेल १९६२ को श्री व्यास को स्वर्ण पदक देते हुए)

तिब्बिया कालेज का

वार्षिक समारोह

(कार्यालय संवाददाता द्वारा)

नई दिल्ली, ३० अप्रैल। आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज का वार्षिक समारोह कल समवाय मामलों के मंत्री श्री सत्यनारायण सिनहा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

प्रारम्भ में कालेज के प्रिंसिपल डा० आर प्रसाद के भाषण के बाद छात्र यूनियन के मंत्री ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़ा।

श्री सिंह ने अपने भाषण में छात्रों को सेवा परायणता तथा सच्चा चिकित्सक के आदर्श को अपने सामने रखने की प्रेरणा दी।

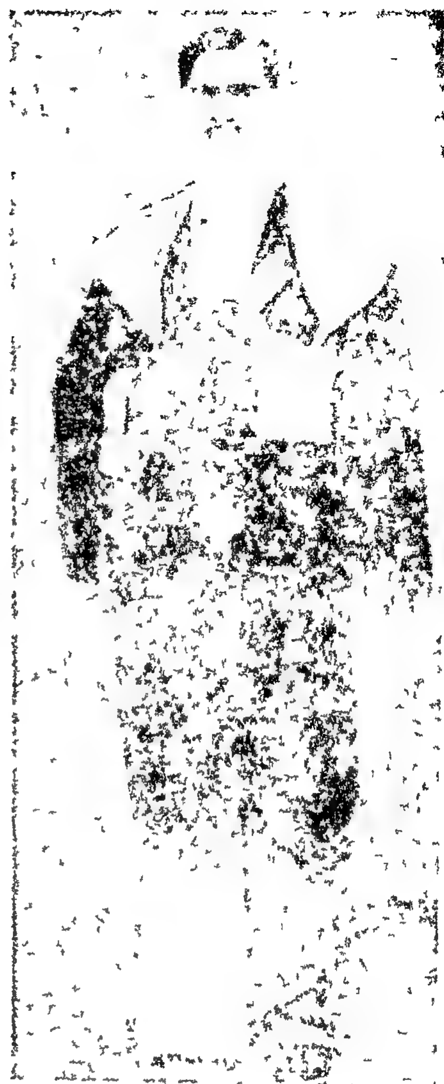
इस अवसर पर श्री सत्यनारायण सिनहा ने श्री शिवकुमार व्यास को एक स्वर्ण पदक विशेष योग्यता तथा बोर्ड की फाइनल परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में एक स्वर्ण पदक प्रदान किया। श्री व्यास सम्प्रति कालेज की सन्ध्याकालीन कक्षाओं में लेक्चरार हैं।

श्री सिंह ने छात्रों का क्रीडा-प्रतियोगिता में विजेताओं को भी पुरस्कार प्रदान किए

(हिन्दुस्तान दैनिक १ मई १९६२ से)

१९६२ जनवरी में श्री व्यास ने आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर कालेज के वार्षिक समारोह में स्वर्ण पदक प्राप्त किया एवं दीक्षान्त समारोह में दिल्ली विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर के कर कमलों से उपाधि प्राप्त की।





लेखक एवं सम्पादक—श्री व्यास की आरम्भ से ही साहित्य में विशेष रुचि थी और हिन्दी साहित्य में कई लेख एवं कवितायें लिखी। वही अभिरुचि आयुर्वेद साहित्य सेवन की ओर खींच लाई। विद्यार्थी जीवन में तिब्बिया कालेज की पत्रिका में लिखते थे और १९५४ में तिब्बिया कालेज पत्रिका के सम्पादक रहे। अब से लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व आपने धन्वन्तरि प्रसूति विशांक में लेखक के रूप में भाग लिया और फिर आयुर्वेद की पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होने लगे। १९६० में धन्वन्तरि पत्रिका ने प्रथम बार लेख प्रतियोगिता का आयोजन किया जिसमें आपको अर्श चिकित्सा लेख पर पुरुष्कृत किया गया। धन्वन्तरि के निम्न विशेषांकों के विशेष सम्पादक एवं लेखक रूप में आप पाठकों के सम्मुख अब से पूर्व भी आ चुके हैं—

१. धन्वन्तरि पंचकर्म कल्पनाङ्क—१९६२

२ धन्वन्तरि चिकित्सा विशेषांक—प्रथम भाग

३. धन्वन्तरि चिकित्सा विशेषांक—द्वितीय भाग

(इन दोनों भाग के एलोपैथिक एवं यूनानी खण्डों के लेखक एवं विशेष सम्पादक रहे।)

४. धन्वन्तरि नारी-रोगांक—१९८०

ज्ञातव्य है कि नारी रोगांक भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को १० जून १९८० को समर्पित किया गया। (चित्र आगे के पृष्ठ पर देखें)

दिसम्बर १९६० के अङ्क में विज्ञापित

पुरस्कार-योजनान्तर्गत

'अर्शरोग और उसकी चिकित्सा' विषय के दो पुरस्कृत लेखों के

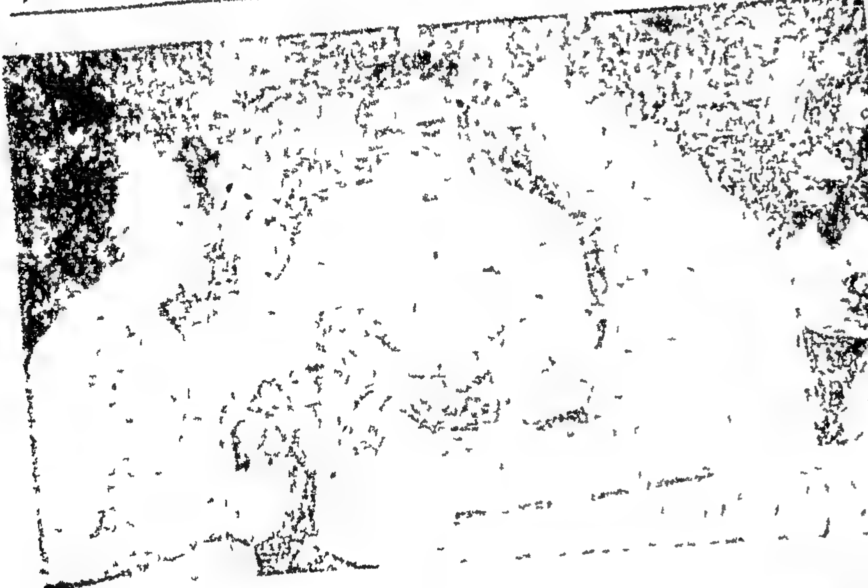
लेखक

प्रथम पुरस्कार प्राप्तकर्ता
कविराज श्री लाला बद्रीनारायण सैन
G. A. M. S मोतीझील मुजफ्फरपुर

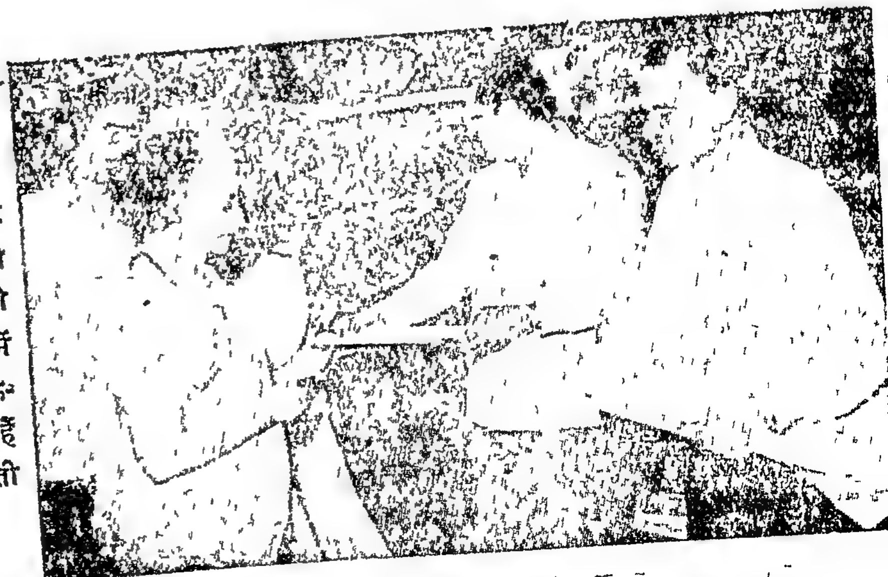
द्वितीय पुरस्कार प्राप्त कर्ता–
आचार्य श्री शिव कुमार जी व्यास आयुर्वेदाचार्य B I M.S, ४ देवनगर करौल बाग, दिल्ली

धन्वन्तरि नारी-रोगांक

प्रधान मन्त्री को समर्पित



धन्वन्तरि नारी-रोगांक के विशेष सम्पादक एवं तिब्बिया कालेज नई दिल्ली के प्राध्यापक डा० शिवकुमार व्यास प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को धन्वन्तरि विशेषांक का अवलोकन कराते हुए परिचय करा रहे हैं। साथ में धन्वन्तरि के प्रकाशक सम्पादक डा० दाऊदयाल गर्ग हैं।



धन्वन्तरि नारी-रोगांक के विशेष सम्पादक एवं तिब्बिया कालेज नई दिल्ली के प्राध्यापक डा० शिवकुमार व्यास ट्रे में सज्जित विशेषांक को प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को भेंट कर रहे हैं। साथ में धन्वन्तरि के प्रकाशक सम्पादक दाऊदयाल गर्ग समर्पण पत्र लिए हुए हैं जिसे इसके पश्चात् उन्होंने श्रीमती गांधी को समर्पित किया।

प्रकाशित पुस्तकें एवं राजकीय पुरस्कार

श्री व्यास का लेखन कार्य बढ़ता ही गया और आयुर्वेद के विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनसे आयुर्वेद साहित्य की श्री वृद्धि हुई। १९६० मे 'पंचकर्म विज्ञान" २१० पृष्ठ की पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को आयुर्वेदीय साहित्य अनुसन्धान समिति मध्य प्रदेश शासन ने एक श्रेष्ठ रचना माना और १९६४ में श्री व्यास को इस पुस्तक पर मध्य प्रदेश शासन की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ।

१९६४ मे आपकी दूसरी पुस्तक "आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान" ४०० पृष्ठ की प्रकाशित हुई — जिसकी श्रेष्ठता पर उत्तर प्रदेश सरकार की आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकादमी लखनऊ ने १९६६ मे श्री व्यास को पुरस्कृत किया। इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो चुका है।

आयुर्वेदिक साहित्यानुसंधान समिति

[मध्य प्रदेश]

पारितोषिक प्रमाण-पत्र

यह समिति श्रीयुत शिवकुमार व्यास को उनकी स्वरचित / अनुवादित पुस्तक / पाण्डुलिपि पंचकर्म विज्ञान (हिन्दी) पर श्रेष्ठता की दृष्टि से आयुर्वेद विज्ञान के प्रोत्साहन के लिये म० प्र० शासन द्वारा १००) का प्रथम / द्वितीय / तृतीय प्रोत्साहन पुरस्कार सन् ६४-६५ में प्रदान किए जाने की पुष्टि में यह प्रमाण पत्र सहर्ष प्रदान करती है।

सचिव — अध्यक्ष

दिनांक ५-३-६७

परीक्षा गाइडें एवं अन्य पुस्तकें — श्री व्यास ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की आयुर्वेद परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों के अनुसार परीक्षा गाइडें लिखी। यद्यपि गाइड शब्द से कोई हल्का साहित्य होगा ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है परंतु इन पुस्तकों का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि आयुर्वेद के प्रत्येक विषय पर आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों सहित आधुनिक विज्ञान से तुलना करते हुए जितनी सरल भाषा एवं शैली में विषय चयन किया है वह आयुर्वेद के प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य है। आयुर्वेदरत्न प्रथम खण्ड व द्वितीय खण्ड, वैद्य विशारद प्रथम खण्ड एवं द्वितीय खण्ड तथा उपवैद्य की गाइडों के कई कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और हजारों विद्यार्थी इनका लाभ उठा चुके हैं। निर्मल आयुर्वेद संस्थान में यह पुस्तकें विक्रयार्थ उपलब्ध हैं।

आपने जन साधारण के लिए रोग चिकित्सा सम्बन्धी सामान्य ज्ञान देने वाली छोटी-छोटी पुस्तकें लिखने का निश्चय किया था और एक पुस्तक "ल्यूकोडर्मा—सफेद दाग" नाम से प्रकाशित हो चुकी है। श्री व्यास ने मेडीसन पर भी गाइड लिखी है जो साधारण चिकित्सकों को लाभ पहुंचाने वाली है।

कविराज श्री व्यास को राजकीय पुरस्कार

[illegible]

(नवभारत टाइम्स से)

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान पर आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी उत्तर प्रदेश सरकार ने तीन सौ रुपया का पुरस्कार प्रदान किया जो अकादमी के मन्त्री द्वारा १९८६ में प्रदान किया गया।

SRI M L DWIVEDI,
DIRECTOR OF AYURVEDA, U.P.

Lucknow Dated: 2.3.86

Dear Sri Vyas,

Please refer to your letter dated February 2, 1986 regarding your book "Ayurvediya Dravyaguna Vigyan" sent to the Ayurvedic and Tibbi Academy, U.P for consideration and giving suitable award.

In this connection, I am to inform you that the Academy has approved your book for the award of Rs.300/- on [illegible] book this year, which will be sent to you after the approval of the State Government. I am asking the Secretary of the Academy to return 11 copies of your book, at his earliest convenience.

Yours sincerely,

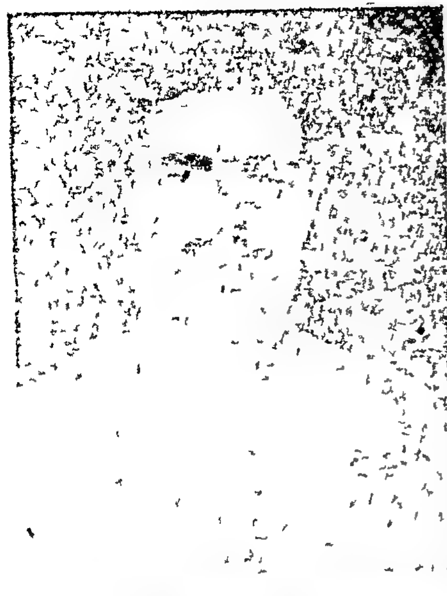
(M.L. DWIVEDI)

Sri Shiv Kumar Vyas,
Lecturer Dravyaguna,
I/C Panchkarma Deptt
Ayurvedic and Tibbia College
Karolbagh, NEW DELHI-5

(अकादमी के अध्यक्ष एवं उत्तर प्रदेश सरकार के आयुर्वेद निदेशक का पत्र)

अध्यापक एवं चिकित्सक

श्री व्यास आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज नई दिल्ली मे पिछले लगभग दो दशक से अध्यापन कार्य में रत हैं। अध्यापन के अतिरिक्त चिकित्सक के रूप मे भी कार्य करते रहे हैं। आप कालेज चिकित्सालय मे विभागाध्यक्ष पञ्चकर्म विभाग पद पर कार्य करते रहे हैं। पञ्चकर्म चिकित्सा के अनुसंधानात्मक कार्य का विवरण १९८० दिसम्बर मे धन्वन्तरि पञ्चकर्म कल्पनाक मे प्रकाशित कराया था। वास्तव में कालेज अस्पताल मे पञ्चकर्म विभाग को आरम्भ करने का श्रेय आपको ही है। आप कालेज छात्रावास के अधीक्षक रूप मे १९६४ से १९६७ तक कार्य करते रहे। १९७४ से १९७६ तक श्री व्यास जी को तिब्बिया कालेज दिल्ली के कार्यवाहक प्राचार्य एवं चिकित्साधीक्षक पद पर संस्था की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ और १९७९ मे आप कालेज चिकित्सालय मे चिकित्सोपाधीक्षक रूप में सेवारत रहे।





श्री ६ सन् १६५७ में डी ए ई एम एस उत्तीर्ण किया।

डा० व्यास १६७० १२७६ तक तिब्बिया कालेज दिल्ली के प्रिन्सीपल पद पर कार्यवाहक रूप से कार्यरत रहें।)

अन्य सेवायें —

१ केन्द्रीय सरकार की सी० सी० आर० आई० एम० एच० के आयुर्वेदिक एवं यूनानी यूनिटों के प्रोजेक्ट आफीसर रूप से लगभग ढाई वर्ष तक कार्य किया। अम्लपित्त, अन्नद्रवशूल, परिणामशूल एवं श्वेत कुष्ठ पर इन यूनिटों में आपकी देख-रेख में अनुसन्धान कार्य होता रहा।

२. दिल्ली वि वि. की कमेटी आफ कौंसिल एण्ड स्टडीज इन आयु मेडीसन के छ वर्ष तक सदस्य।

३ दिल्ली विश्वविद्यालय की एकेडेमिक कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं।

४ महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के बोर्ड आफ स्टडीज इन आयुर्वेद के विशेष सदस्य रहे।

५ सागर विश्वविद्यालय सागर (मध्य प्रदेश) के बोर्ड आफ स्टडीज इन आयुर्वेद के सदस्य हैं।

६ विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के बोर्ड आफ स्टडीज इन आयुर्वेद के विशेष सदस्य हैं।

७ राजस्थान पब्लिक सर्विस कमीशन अजमेर में आयुर्वेदिक एक्सपर्ट रह चुके हैं।

८ निम्नलिखित विश्वविद्यालयों में आयुर्वेद की पोस्ट ग्रेजुएट परीक्षाओं के परीक्षक रह चुके हैं—

(क) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी। (१) डी० ए वाई० एम०, (२) पी एच० डी०।

(ख) पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला। (१) एम० डी० आयुर्वेद।

९ निम्नलिखित आयुर्वेद संस्थाओं में स्नातक परीक्षाओं के परीक्षक रह चुके हैं—

१ पंजाब स्टेट फैकल्टी आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडीसन चण्डीगढ़।

२ हरियाणा स्टेट फैकल्टी आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडीसन, चण्डीगढ़।

३ पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला (पंजाब)

४ महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरि०)

५ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

६ हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हि प्र.)

७ कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

८. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

९ लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

१० हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग (उत्तर प्रदेश)

११ गुरुकुल विश्वविद्यालय, ज्वालापुर (उ प्र)

१२ विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

१३ जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर (म प्र)

१४ कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा

१५ निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली

१६ गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

सम्प्रति तिब्बिया कालेज दिल्ली में वरिष्ठतम अध्यापक रूप से आयुर्वेद की सेवा में लगे हुए हैं।

—राजरत्न गर्ग (सम्पादक—धन्वन्तरि)

क्या आपको अलारसिन सूचीपत्र (1980) हिन्दी संस्करण मिला है ?

अलारसिन सूचीपत्र - आपकी दैनिक चिकित्सा प्रयोजना में उपयोगी मार्गदर्शक इसमें ● घटकद्रव्य ● रोग लक्षण ● मात्रा की सूचना के अलावा अलारसिन प्रोडक्टस पर राष्ट्रीय अन्तरराष्ट्रीय अनेक ● रिसर्च परिणाम का निचोड़ है।

[illegible] 1947 में आयुर्वेदिक [illegible] एलोपैथिक व आयुर्वेदिक [illegible]

मन्थन MANTHAN (अलारसिन रिसर्च विभाग) की

अलारसिन ने कई वर्ष पूर्व निम्न मुद्रा लेख पर स्थापना की गई।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः । नानौषधि भूतं जगति किञ्चिद् द्रव्य मुपलभ्यते ।

अलारसिन प्रॉडक्टस संक्षिप्त मे

([illegible] मिला परिचर्चा इत्यादि में खरीद के लिए मान्य है।)

आर कम्पाउण्ड (R COMPOUND) सभी वातु रोगों में [illegible]

बंगशील (BANGSHIL) [illegible] मूत्राशय [illegible] दुर्बलता, [illegible]

एलोज कम्पाउण्ड (ALOES COMPOUND) [illegible] कष्ट-आर्तव, अल्प-आर्तव, नष्ट आर्तव [illegible]

लेप्टाडीन (LEPTADEN). [illegible] बार बार गर्भपात, [illegible]

फोर्टेज (FORTEGE)- [illegible] (शारीरिक, मानसिक, [illegible]) [illegible]

मायरॉन MYRON (सिल्वर कोटेड SILVER COATED) [illegible]

जी३२ (G32) मसूड़े, दाँत, मुख में मालिश, गरारे, कुल्ले के लिए। मसूड़े रोग [illegible], पायरिया, [illegible] पूय, [illegible]। [illegible] गले में [illegible]।

आयापॉन (AYAPON) हर प्रकार के रक्त स्राव में अर्श, [illegible] अति-आर्तव, गर्भपात व प्रसूता पश्चात् रक्त स्राव।

सुक्तिन (SOOKTYN) (शुक्ति भस्म, मधुर [illegible]) अम्लपित्त, अजीर्ण, खट्टी डकार, [illegible] पेप्टिक व ड्युडेनल अल्सर, उदरशूल, [illegible] मंद अग्नि।

डीकोफ्सीन (DEKOFCYN) [illegible] सभी प्रकार की [illegible] नवीन, पुरानी [illegible] खाँसी [illegible]

सायलेडीन (SILEDIN) [illegible] जीवन्ती, [illegible] विविध मानसिक रोगों में [illegible]

आर्जिन (ARJIN) [illegible] अर्जुन, [illegible] अपामार्ग, [illegible] (हाई बी पी) में।

वंध्यत्व स्त्री के लिए एलोज कम्पाउण्ड ● लेप्टाडीन ● मायरॉन ● बंगशिल।
पुरुष के लिए फोर्टेज, बंगशिल

प्रोस्टेट पौरुष ग्रन्थी की वृद्धी और शोथ फोर्टेज ● बंगशिल

अलारसिन प्रोडक्टस के पैकिंग व प्राप्ति स्थान [illegible] 50 और 100 गोलियों के पैकिंग में। अलारसिन स्टॉकिस्ट के यहाँ केवल चिकित्सकों के लिए 50 और 100 गोलियों के पैकिंग [illegible]।

[illegible] 1000 गोलियाँ के पैकिंग [illegible]


Dhanvantari God of Ayurveda

उपहार

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों व अस्पतालों के लिए अलारसिन निर्मित भगवान धन्वन्तरि कलाकृति (जब तक स्टाक में है)। हमारा दृढ़ विश्वास है कि आपके औषधालय में इस कलाकृति का प्रतिष्ठापन दर्शकों को सब प्रकार से स्वस्थ जीवन की प्रेरणा देगा। और व्यवसाय को यशस्वी-वर्चस्वी बनाएगा।

क्या आपको हमारे यहाँ से साहित्य, [illegible] सूचना, उपहार, सैम्पल [illegible] से नियमित रूप से मिलते हैं ? अगर नहीं तो -

● सूचीपत्र ● चिकित्सक प्राइस लिस्ट ● भगवान धन्वन्तरि कलाकृति के लिए कृपया रजिस्ट्रेशन नं., डिग्री, पिन [illegible] पूरा पता [illegible] पत्र व्यवहार करें।

अलारसिन मार्केटींग प्राइवेट लि. 12, के. दुभाष मार्ग, ऑरिकॉन हाउस, फोर्ट, बम्बई 400023

Alarsin art [illegible]

हमें गर्व है अपने कैपसूलों पर—

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा विशुद्ध आयुर्वेदिक कैपसूलो का निर्माण जनवरी १९७४ से प्रारम्भ हुआ। इतने अल्प समय मे हमारे कैपसूलो ने जो ख्याति प्राप्ति की है उस पर हमको गर्व है। हमारा विचार रहा है कि सर्वोत्तम औषधिया का निर्माण करें तथा अपने चिरकालीन अनुभव के आधार पर सफल प्रमाणित प्रयोगो के द्वारा इनको बनायें, जिससे कि ये कैपसूल शीघ्र प्रभावकारी हो। इसी विचार को कार्यान्वित करने का परिणाम है कि जिसने इनको व्यवहार किया उसी ने प्रशसा की और बार-बार मगाये। ये कैपसूल बिना अधिक प्रचार के मात्र अपने गुणो के आधार पर ही उत्तरोत्तर प्रगति कर रहे है। अन्य कम्पनियो के समान न हमने फ्री सैम्पिल वितरित किए है और न धुआधार प्रचार ही किया है। केवल "धन्वन्तरि" एवं मासिक रिपोर्ट के माध्यम से ही आयुर्वेद समाज के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं और आज स्थिति बहुत आशाजनक है। प्रति माह लगभग ३ लाख कैपसूलो की इस समय माग है तथा हमको विश्वास है कि इनकी माग बराबर बढेगी। गुणो के आधार पर हुव प्रगति ठोस और स्थायी होती है। जो प्रगति विज्ञान और विचार के आधार पर होती है, वह यदि औषधि मे दम नही है तो प्रचार मे शिथिलता आने पर उसकी प्रगति रुक ही नही जाती प्रत्युत उसका अस्तित्व भी खतरे मे पड जाता है।

उन चिकित्सको को जिन्होने अभी तक हमारे कैपसूल व्यवहार नही किए हैं, आग्रह है कि वे इनको व्यवहार करे और परीक्षा करे। विश्वास रखे उनको सफलता मिलेगी। फ्री सैम्पिल भेजना सम्भव नही है। हमारे द्वारा निर्मित कैपसूलो को जिस चिकित्सक ने एक बार मगाकर व्यवहार कराया है, वही हमारे स्थायी ग्राहक बन गए हैं, बराबर मगाते रहते है। विस्तृत विवरण जानने के लिए पत्र डालकर सूची-पत्र मगा ले।

निवेदक

ज्वाला प्रसाद अग्रवाल

मंगाने का पता—**श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, अलीगढ़**



जरा-व्याधि चिकित्साङ्क

की

विषयानुक्रमणिका

—०—

सम्पादकीय —श्री डा० शिवकुमार व्यास बी० आई० एम० एस०, भिषगाचार्य ४३

जरा-व्याधि विवेचना खण्ड

जरा विज्ञान की आयुर्वेदीय अवधारणा डा. रामहर्षसिंह ए.बी एम एस , पी-एच डी. ५७
महाभारत का जरा विज्ञान डा ज्योतिमित्र आचार्य बी आई एम एस , पी-एच डी ६१
शरीर क्रिया विज्ञान के परिप्रक्ष्य मे जरा रसायन डा एल बी गुरु एव डा वी पी पाण्डेय ६६
वृद्ध विज्ञान डा मुकुट विहारी एम. डी (आयु०) ६६
जरा प्रतिषेध सम्भव है या नहीं—श्री सिद्धिराज शर्मा एम एस.ए.एम , श्री त्रिलोकचन्द्र जैन ए.एम एम एस. ७३
शारीरिक अन्त स्राव एव वृद्धावस्था वैद्य श्री वेणीमाधव अश्विनीकुमार शास्त्री ७५
वृद्धावस्था एव जरावस्था कवि० डा गणपाल शास्त्री ७८
जरावस्था विवेचन कवि० डा. गिरिधारी लाल मिश्र ए एम. बी एस ८२
वृद्धावस्था बनाम जरावस्था डा वीरेन्द्र कुमार जैन बी ए एम एस ८५
संसार के बूढो की लम्बी आयु के रहस्य डा प्रकाशचन्द्र गगराडे ९०
क्या बुढापे में आदमी सचमुच बूढा हो जाता है ? श्री विठ्ठलदास मोदी ९३
अजरत्व हेतु योग साधना वैद्य श्री भजनदास,स्वामी ९६
जरा विकृति मे योग साधना की उपादेयता श्री वैद्यनाथ झा ९८
वृद्ध विहार वैद्य श्री लक्ष्मीशंकर त्रिवेदी १०१
बुढापा -विश्लेषण और उपाय डा. रामनिवास शर्मा (उपनिदेशक—आयु० आंध्र प्रदेश) १०३

रसायन खण्ड

रसायन पूर्व शोधन का स्वरूप वैद्य श्री हरिदास श्रीधर कस्तूरे १०६
लोह रसायन एव शार्गधर डा. वी पी पाण्डेय एव श्री एल. वी गुरु १०९
रसायन पारद एव जरा व्याधि डा० नीरज कुमार एव डा० दामोदर जोशी १११
रसायन कर्म का प्रत्यक्षीकरण कवि० श्री देशराज बी. ए आयु ११४
जराप्रतिरोधक एव जरानाशक रस शास्त्रीय द्रव्य एव कल्प श्री दामोदर जोशी रीडर—रसशास्त्र ११५
आवला—श्रेष्ठ रसायन एव उसके जरा निवारक प्रयोग वैद्य श्री बनवारीलाल गौड भिषगाचार्य आयु वृह. १२१
रसायन की उपयोगिता एव ब्राह्म रसायन श्री कृष्णगोपाल गुप्त १२६
हस्ति कर्ण पलास प्रोफे० आर एस. सिंह अध्यक्ष रसशास्त्र विभाग १२७
जीवन्ती प्रोफे० आर. एस. सिंह एवं डा एल वी सिंह १२९
आमवात रोग की चिकित्सा मे अमृत भल्लातक डा अजय शर्मा एम डी., डा रामहर्ष सिंह पी-एच डी १३०

भल्लातक रसायन और जरावस्था — श्री नारायण चौधरी एम. डी — १३५
भुक्ति मुक्ति च लभते ना रसायनात् — डा. कृष्ण गन्त जी. ए. एम. एस , आय् — १३७
हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में रसायन — डा श्रीमती अनुसुया शर्मा, डा ज्योतिर्मित्र आचार्य — १३८
६०० ई० से १२०० ई० के अन्तराल के अनायुर्वेदीय स्रोत में रसायन विषयक सामग्री
डा. विमादेवी, डा आशुतोष तिवारी, डा. ज्योतिर्मित्र — १४१
अग्नि पुराण के रसायन योग — डा. (सुश्री) सरिता हाडा, डा. ज्योतिर्मित्र आचार्य — १४३
रसोन रसायन — वैद्य श्री मौहरसिंह आर्य — १४६
आयुर्वेदीय रसायन — डा योगेन्द्र कुमार त्रिपाठी ए. एम. बी एस . पीएच डी. — १४७
रसायन-जरा एवं व्याधि विध्वंसी — डा. नर्मदाप्रसाद शर्मा एम ए , ए एम बी एस — १४६
भागरा-भृङ्गराज एवं रसायन — डा रामनिवास मोहता — १५१
राजयोग से कायाकल्प — श्री प० लक्ष्मीनारायण शर्मा — १५२
जरा निवारक रसायन — डा महेश्वर प्रसाद आयु० बृह० — १५५
जरा निवारक कतिपय कल्प — डा बी एन गिरि आयु० विशा०, ए. एम बी एस — १५६
च्यवनप्राश रसायन पर मेरे अनुभव — डा० भागचन्द्र जैन आयु० बृह० — १५९
आचार रसायन — डा० नीरज कुमार, डा० भृगुपति पाण्डेय — १६०
जवान बनने और बुढ़ापा रोकने का भोजन — डा० प्रकाशचन्द्र गंगराडे — १६१
जरात्व लोप पद्धति — वैद्यरत्न श्री द्वारका मिश्र आयु० — १६४
पुनर्यौवन और हार्मोन्स — कवि० हरिकृष्ण सहगल — १६५
भावप्रकाश निघण्टु के जरा निवारक द्रव्य — डा० विवेक भूषण अग्रोल बी आई.एम एस. — १६८
चीन की विश्व प्रसिद्ध -जिन्सग — श्री अनिल कुमार शर्मा एम० फार्म — १७२
अश्वगंधा — श्री पी० रमेशकुमार एम फार्म एवं श्री अनिलकुमार शर्मा — १७७

वाजीकरण खण्ड

वाजीकरण विवेचन — वैद्य श्री चौधरी रामचन्द्र प्रसाद 'चन्द्र' एच-पी ए, — १८२
वृद्धावस्था में कामवासना — डा० तेज बहादुर चौधरी आयु० बृह० — १८५
वृद्धावस्था में शुक्रक्षय जनित विकृतियां — श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य — २०१
कामवसाय — वैद्यराज मौहरसिंह आर्य आयु० बृह० — २०२
'धन्वन्तरि' में पूर्व प्रकाशित वाजीकरण योगों का उपयोगी संकलन
संग्रहकर्ता —डा० प्रेमशंकर शर्मा ए , एम. बी एस — २०६

चिकित्सा खण्ड

जरावस्था निवारणोपाय — महर्षि श्री स्वामी पिप्पलायन जी महाराज — २१४
जरा व्याधि निरोधक औषधियां — प्राणाचार्य प० हर्गुल मिश्र आयु० प्रवीण — २१८
जरारोग चिकित्सा — वैद्य श्री वेदप्रकाश तिवारी — २२५
जरा व्याधियों में गुप्त सिद्ध प्रयोग — कवि० श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य — २२७
जरा व्याधि चिकित्सा — कवि० डा० हरिवल्लभ मन्नूलाल सिलाकारी शास्त्री — २२९
वृद्धावस्था में आहार — डा बी. पी गुप्ता बी एम. एस — २३१
जराजन्य मानस रोग — डा एन सी शाह काय चिकित्सा विभागाध्यक्ष — २३३
स्मृतिभ्रंश या स्मृतिनाश — श्रीमती रेशम देवी चौहान आयु० वारिधि — २३६
जरावस्था में अनिद्रा — आयु. वाच डा जहानसिंह चौहान — २३८
वृद्धावस्था में विभिन्न प्रकार के शूल — डा वेदप्रकाश शर्मा ए. एम बी एस. — २४२

वृद्धावस्था मे नेत्र विकार	कवि. रवीन्द्र चन्द्र चौधरी	२४६
वधिरता एव कर्णस्राव की अनुभूत चिकित्सा	डा राजेन्द्र प्रसाद साहू बी. ए. एम. एस.	२५४
वृद्धावस्थाजन्य महिला रोग एव चिकित्सा	वैद्य श्री छगनलाल समदर्शी	२५५
योनि कण्डू	डा प्रभा शर्मा बी ए एम. एस, डी.ए वाई एम	२६२
वृद्धावस्था के वात विकार	डा. मुकुट बिहारी बी आई एम एस, एम डी	२६४
गृध्रसी	वैद्य भानुप्रताप आर मिश्र बी. एस ए एम	२६७
गृध्रसी	श्री आर वी त्रिवेदी वैद्य	२७०
आमवात	श्री कुलकर्णी प्रसाद वासुदेव	२७६
आमवात चिकित्सोपाय	श्री ज० द० वैद्य	२८१
पक्षाघात	स्व० वैद्य प० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री न्यायायुर्वेदाचार्य	२८६
वृद्धावस्था मे असाध्य सग्रहणी पर वैज्ञानिक विवेचन	डा. नन्द कुमार चतुर्वेदी बी ए एम. एस	३२०
अर्श रोग विवेचन	वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य आयु वृह	३२३
गुद परीक्षण एव अर्शाकुर सूचीवेधन	डा दाऊदयाल गर्ग ए. एम बी एस आयु. वृह. सम्पादक 'धन्वन्तरि'	३४३
वृद्धावस्था का साथी मलावरोध और उसकी सफल चिकित्सा	डा चादप्रकाश मेहरा आयु वारिधि	३४७
मलावरोध नाशक सरल चुटकले	डा दाऊदयाल गर्ग ए एम बी एस, आयु वृह	३५१
हृदविकार एव प्रतिकार	आचार्य बहोरीलाल शुक्ल भास्कर आयु	३५३
हृदय रोग और चिकित्सा	वैद्य ओमप्रकाश गोस्वामी भिष० आयु०	३५५
हृदयावसाद से कैसे बचें ?	कवि० आशुतोष शुक्ल	३५७
धमनी दार्ढ्य एव उच्च रक्तभार	डा चन्द्रमोहन करान एम डी, डा चन्द्रबली दुबे डी ए वाई एम, पी. एच डी	३५८
उच्च रक्तचाप-कारण एव निवारण	श्री पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य	३६१
उच्च रक्तदाब एवं जटामासी	श्री शिवकुमार शास्त्री आयु० वृह०	३६५
रक्तचाप न्यूनता	डा. गजेन्द्रसिंह छौकर ए. एम बी एस	३६७
वृद्धो का दुष्ट प्रतिश्याय	डा वीरेन्द्रसिंह शालाक्य विभागाध्यक्ष	३६९
मास शोष (Myopathies)	डा० योगेश शर्मा एम डी (आयुर्वेद)	३७०
श्वास रोग	कवि० श्री धर्मवीर बी आई एम. एस	३७४
श्वास रोग चिकित्सा	डा० गजेन्द्रसिंह छौंकर ए एम. बी एस	३७७
राजयक्ष्मा	श्री वैद्य मुरारी प्रसाद गुप्त लोक-सेवक, भूदानी	३७९
पौरुष ग्रन्थि वृद्धि एव वृद्धावस्था	डा० महेशकुमार शर्मा एम ए, ए. एम बी एस., डा० दिनेशचन्द्र गुप्ता बी ए. एम. एस.	३८४
पौरुष ग्रन्थि वृद्धि की चिकित्सा	डा० जयकुमार "सुधाकर"	३८६
ओज जरा और मधुमेह–एक निदानात्मक अध्ययन	डा० शम्भू शरण मिश्र एम० डी०	३८८
मधुमेह	डा० शिवपूजनसिंह कुशवाह एम० ए०	३९१
एक मधुमेहनाशक सिद्ध रसायन–प्रमदेभाऽकुशरस	वैद्य श्री ब्रजविहारी मिश्र एम. ए	३९६
मूत्रावरोध और उसकी चिकित्सा	श्री जहान सिंह चौहान आयु० रत्न	३९९
वृद्धावस्था मे प्राय. कष्टप्रद—शोथ	श्री वैद्य दरबारीलाल आयु० भिषक्	४०२
वृद्धो की ऊर्ध्वजत्रुगत व्याधियों मे दारुहरिद्रा	डा० राजेन्द्र पाल शर्मा बी ए एम	४०५
मारीशस मे जराव्याधि	वैद्यराज डा० दे० सन्मान	४०७

भल्लातक रसायन और जरावस्था	श्री नारायण चौधरी एम. डी.	१३५
भुक्ति मुक्ति च लभते जा रसायनात्	डा कृष्ण गुप्त जी. ए. एम एस, आयु	१३७
हिंदी साहित्य में भक्तिकाल में रसायन	डा. श्रीमती अनुसुया शर्मा, डा ज्योतिमित्र आचार्य	१३८
६०० ई० से १२०० ई० के अन्तराल के अनायुर्वेदीय स्रोत में रसायन विषयक सामग्री	डा. विभादेवी, डा आशुतोष तिवारी, डा. ज्योतिर्मित्र	१४१
अग्नि पुराण के रसायन योग	डा. (सुश्री) सरिता हाडा, डा. ज्योतिर्मित्र आचार्य	१४३
रसोन रसायन	वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य	१४६
आयुर्वेदीय रसायन	डा. योगेन्द्र कुमार त्रिपाठी ए. एम. बी. एस, पीएच डी.	१४७
रसायन-जरा एवं व्याधि विध्वंसी	डा. नर्मदाप्रसाद शर्मा एम ए, ए एम बी. एस.	१४९
भागरा-भृङ्गराज एक रसायन	डा रामनिवास मोहता	१५१
राजयोग से कायाकल्प	श्री पं० लक्ष्मीनारायण शर्मा	१५२
जरा निवारक रसायन	डा. महेश्वर प्रसाद आयु० बृह०	१५५
जरा निवारक कतिपय कल्प	डा. बी एन. गिरि आयु० विशा०, ए एम बी एस.	१५६
च्यवनप्राश रसायन पर मेरे अनुभव	डा० भागचन्द्र जैन आयु० बृह०	१५९
आचार रसायन	डा० नीरज कुमार, डा० मृगुपति पाण्डेय	१६०
जवान बनने और बुढ़ापा रोकने का भोजन	डा० प्रकाशचन्द्र गंगराडे	१६१
जरात्व नोप गच्छति	वैद्यरत्न श्री द्वारका मिश्र आयु०	१६४
पुनर्यौवन और हारमोन्स	क०वि० हरिकृष्ण सहगल	१६५
भावप्रकाश निघण्टु के जरा निवारक द्रव्य	डा० विवेक भूषण अग्रोल बी आई.एम एस.	१६८
चीन की विश्व प्रसिद्ध-जिन्सग	श्री अनिल कुमार शर्मा एम० फार्म	१७२
अश्वगंधा	श्री पी० रमेशकुमार एम फार्म एवं श्री अनिलकुमार शर्मा	१७७

वाजीकरण खण्ड

वाजीकरण विवेचन	वैद्य श्री चौधरी रामचन्द्र प्रसाद 'चन्द्र' एच-पी ए	१८२
वृद्धावस्था में कामवासना	डा० तेज बहादुर चौधरी आयु० बृह०	१८५
वृद्धावस्था में शुक्रक्षय जनित विकृतियां	श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य	२०१
कामवसाय	वैद्यराज मोहरसिंह आर्य आयु० बृह०	२०२
'धन्वन्तरि' में पूर्व प्रकाशित वाजीकरण योगों का उपयोगी सकलन	संग्रहकर्ता —डा० प्रेमशंकर शर्मा ए, एम बी एस.	२०६

चिकित्सा खण्ड

जरावस्था निवारणोपाय	महर्षि श्री स्वामी पिप्पलायन जी महाराज	२१४
जरा व्याधि निरोधक औषधियां	प्राणाचार्य प० हर्गुल मिश्र आयु० प्रवीण	२१८
जरारोग चिकित्सा	वैद्य श्री वेदप्रकाश तिवारी	२२५
जरा व्याधियों में गुप्त सिद्ध प्रयोग	कवि० श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य	२२७
जरा व्याधि चिकित्सा	कवि० डा० हरिवल्लभ मन्नूलाल सिलाकारी शास्त्री	२२९
वृद्धावस्था में आहार	डा बी. पी. गुप्ता बी एम एस.	२३१
जराजन्य मानस रोग	डा एन. सी शाह काय चिकित्सा विभागाध्यक्ष	२३३
स्मृतिमांद्य या स्मृतिनाश	श्रीमती रेशम देवी चौहान आयु० वारिधि	२३६
जरावस्था में अनिद्रा	आयु, वाच डा. जहानसिंह चौहान	२३८
वृद्धावस्था में विभिन्न प्रकार के शूल	डा वेदप्रकाश शर्मा ए एम बी एस	२४२

वृद्धावस्था मे नेत्र विकार	कवि. रवीन्द्र चन्द्र चौधरी	२४८
वधिरता एव कर्णस्राव की अनुभूत चिकित्सा	डा राजेन्द्र प्रसाद साहू बी. ऐ. एम एस.	२५४
वृद्धावस्थाजन्य महिला रोग एव चिकित्सा	वैद्य श्री छगनलाल समदर्शी	२५५
योनि कण्डू	डा प्रभा शर्मा बी ए एम एस, डी-ए वाई एम	२६२
वृद्धावस्था के वात विकार	डा मुकुट बिहारी बी आई एम एस, एम डी	२६४
गृध्रसी	वैद्य भानुप्रताप आर मिश्र बी एस ए. एम	२६७
गृध्रसी	श्री आर बी त्रिवेदी वैद्य	२७०
आमवात	श्री कुञ्जकर्णी प्रसाद वासुदेव	२७६
आमवात चिकित्सोपाय	श्री ज० द० वैद्य	२८१
पक्षाघात	स्व० वैद्य प० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री न्यायायुर्वेदाचार्य	२८६
वृद्धावस्था मे असाध्य सग्रहणी पर वैज्ञानिक विवेचन	डा. नन्द कुमार चतुर्वेदी बी. ए एम. एस	३२०
अर्श रोग विवेचन	वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य आयु. वृह	३२३
गुद परीक्षण एव अर्शांकुर सूचीवेधन	डा दाऊदयाल गर्ग ए. एम बी एस आयु. वृह. सम्पादक 'धन्वन्तरि	३४३
वृद्धावस्था का साथी मलावरोध और उसकी सफल चिकित्सा	डा चादप्रकाश गेहरा आयु वारिधि	३४७
मलावरोध नाशक सरल चुटकले	डा दाऊदयाल गर्ग ए एम बी एस, आयु. वृह	३५१
हृदविकार एव प्रतिकार	आचार्य बहोरीलाल शुक्ल भास्कर आयु	३५३
हृदय रोग और चिकित्सा	वैद्य ओमप्रकाश गोस्वामी भिष० आयु०	३५५
हृदयावसाद से कैसे बचें ?	कवि० आशुतोष शुक्ल	३५७
धमनी दार्ढ्य एव उच्च रक्तभार	डा चन्द्रमोहन कासल एम डी, डा चन्द्रवली दुबे डी ए वाई एम, पी. एच डी.	३५८
उच्च रक्तचाप-कारण एव निवारण	श्री पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य	३६१
उच्च रक्तदाब एवं जटामासी	श्री शिवकुमार शास्त्री आयु० वृह०	३६५
रक्तचाप न्यूनता	डा. गजेन्द्रसिंह छोकर ए. एम बी एस	३६७
वृद्धो का दुष्ट प्रतिश्याय	डा. वीरेन्द्रसिंह शालाक्य विभागाध्यक्ष	३६६
मास शोष (Myopathies)	डा० योगेश शर्मा एम डी (आयुर्वेद)	३७१
श्वास रोग	कवि० श्री धर्मवीर बी आई एम एस.	३७४
श्वास रोग चिकित्सा	डा० गजेन्द्रसिंह छोकर ए. एम. बी एस	३७७
राजयक्ष्मा	श्री वैद्य मुरारी प्रसाद गुप्त लोक-सेवक, भूदानी	३७६
पौरुष ग्रन्थि वृद्धि एवं वृद्धावस्था	डा० महेशकुमार शर्मा एम ए, ए एम बी. एस, डा० दिनेशचन्द्र गुप्ता बी ए एम एस	३८४
पौरुष ग्रन्थि वृद्धि की चिकित्सा	डा० जयकुमार "सुधाकर"	३८६
ओज जरा और मधुमेह—एक निदानात्मक अध्ययन	डा० शम्भू शरण मिश्र एम० डी०	३८८
मधुमेह	डा० शिवपूजनसिंह कुशवाह एम० ए०	३६१
एक मधुमेहनाशक सिद्ध रसायन—प्रमदेभाऽकुशरस	वैद्य श्री ब्रजबिहारी मिश्र एम. ए	३६६
मूत्रावरोध और उसकी चिकित्सा	श्री जहान सिंह चौहान आयु० रत्न	३६६
वृद्धावस्था मे प्राय कष्टप्रद—शोथ	श्री वैद्य दरबारीलाल आयु० भिषक्	४०२
वृद्धो की ऊर्ध्वजत्रुगत व्याधियो मे दारुहरिद्रा	डा० राजेन्द्र पाल शर्मा बी ए. एम	४०५
मारीशस मे जराव्याधि	वैद्यराज डा० दे० सग्रोन	४०७



धन्वन्तरि

आविर्बभूव कलशं दधदर्ण वाद्यः पीयूष पूर्णममरत्व कृते सुराणाम् ।
रुग्जाल जीर्ण जनता जनितः प्रशंसो धन्वन्तरि ,सः भगवान भविकाय भूयाति ।।

भाग ५५ अङ्क २-३ | जरा-व्याधि चिकित्सांक | फरवरी+मार्च सन् १९८१ ई०

सम्पादकीय

जरा और मृत्यु दो ऐसे रहस्य है जिनको समझने के लिए मानव सनातन काल से प्रयत्नशील रहा है। मानव जीवन मे यौवन के समान सुखकारी एव जरा के समान कष्टकारी शायद ही कोई दूसरी वस्तु हो। यौवन वह अवस्था है जब मनुष्य के शरीर और मन मे शक्तियो एव एषणाओ का तूफान उछलता है। यही वह अवस्था है जब मनुष्य संसार के बड़े से बड़े कार्य को करने का उत्साह रखता है। इस अवस्था मे मनुष्य के रक्त की एक-एक बूद स्पन्दित होती है और उसका एक-एक रोमकूप नाचता रहता है। परन्तु खेद तो यह है कि यह अवस्था अधिक समय तक स्थिर नही रहती और देखते ही देखते मनुष्य अपनी इस महान् सम्पति को खत्म होती देखकर भी कुछ कर नही पाता और वह यौवन बीत जाता है और फिर कभी वापस नही आता। इसीलिए कहा जाता है—

जो आकर कभी न आये, वह जवानी देखी।
जो आकर कभी न जाए, वह बुढ़ापा देखा ।।

यह अलभ्य वस्तु न जाए या जाकर पुन प्राप्त हो जाए इसके लिए समस्त मानव जाति—राजा क्या रक, स्त्री क्या पुरुष सभी लालायित रहे है।



कष्टात् कष्टतर जरा—

और रहे भी क्यो न ? कष्टो मे भी महान कष्टकारी जरा को कहा गया है। महाभारत मे जरा का जो स्वरूप बताया है, उसे कौन लेने को तैयार हो सकता है ? महाभारत के आदि पर्व मे नहुष पुत्र महाराज ययाति को शुक्राचार्य के शाप से जरा प्राप्ति होने का इतिहास दिया है जिसका वर्णन विद्वान इतिहासज्ञ आचार्य डा० ज्योतिमित्र जी के लेख महाभारतीय जरा विज्ञान मे विस्तार से किया है—उसी प्रसग मे जरा का स्वरूप निम्न प्रकार बताया गया है—

जराया बहवो दोषा पान भोजन कारिता. । तस्याज्जरा न ते राजन् ग्रहीष्ये इति मे मतिः ॥
सितश्मश्रुर्निरानन्दो जरया शिथिलीकृत । वली संगतगात्रस्तु दुर्दर्शो दुर्बल कृश. ॥
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवनै. । सहोपजीविभिश्चैव ता जरां नाभिकामये ॥

अर्थात्—हे राजन् जरावस्था मे खाने पीने से अनेक दोष प्रकट होते है अत मैं इस अवस्था को ग्रहण नही करना चाहता । मैं उस जरा को लेने की इच्छा नही करता जिसके आने पर दाढी मूछ के बाल सफेद हो जाते हैं । जीवन का आनन्द चला जाता है । मानव एकदम शिथिल हो जाता है । समस्त शरीर मे झुरिया पड़ जाती हैं और मनुष्य इतना दुर्बल और कृशकाय हो जाता है कि उसकी ओर देखने की इच्छा नही होती । वृद्धावस्था मे कार्य करने की शक्ति भी नही रहती । युवतिया तथा जीविका पाने वाले सेवक भी तिरस्कार करते है, अत मैं वृद्धावस्था लेना नही चाहता ।

न कामये जरा तात कामभोग प्रणाशिनीम् । बलरूपान्तकरणीं बुद्धिप्राणप्रणाशिनीम् ॥

अर्थात्—हे तात, काम-भोग का नाश करने वाली जरा मुझे नही चाहिए क्योकि यह बल तथा रूप का अन्त कर देती है और साथ ही साथ बुद्धि तथा प्राणशक्ति का भी विनाश कर देती है ।

न गज न रथ नाश्व जीर्णो भुङक्ते न च स्त्रियम् । वाक्सगश्चास्य भवति ता जरा नाभिकामये ॥

अर्थात्—वृद्ध मनुष्य हाथी, घोडा और रथ पर भी नही चढ सकता । वह स्त्री का उपयोग किसी प्रकार नही कर सकता—उसकी वाणी लड़खडा जाती है—अत जरा मुझे नही चाहिए ।

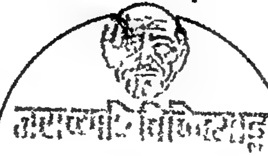
जीर्ण. शिशु वदादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा । न जुहोतिय कालेऽग्नि ता जरां नाभिकामये ॥

अर्थात्—वृद्ध व्यक्ति शिशु की तरह असमय मे भोजन करता है । वह बराबर अपवित्र रहता है और अग्निहोत्र आदि कर्म नही करता—ऐसी जरावस्था किस काम की ।

चरक सहिता चिकित्सा स्थान प्रथमोध्याय मे प्राणकामीय रसायन पाद मे आचार्य श्रेष्ठ ने इस जरा के कारणो पर प्रकाश डालकर इसका स्वरूप वर्णन किया है—

सर्वे शरीर दोषाभवन्ति ग्राम्याहारादम्ललवणकटुकक्षार शुष्क मांस तिलपललपिष्टान्नभोजिनां विरुढ-नवशूकशमीधान्य विरुद्धासात्म्यरुक्षाभिष्यन्दि भोजिनां क्लिन्नगुरुपूतिपर्युषित भोजिना विशमाशनाध्यशनप्रियाणां दिवास्वप्नस्त्री मद्यनित्याना विषमातिमात्रव्यायाम सक्षोभि शरीराणा भयक्रोधशोकलोभ मोहायास बहुलानाम् ।

अर्थात् "खट्टे, नमकीन, चरपरे, खारे, सूखे शाक, मास, तिल, पलल, पीठी के अन्न का भोजन करने वालो, अकुरित धान्य, नए उत्पन्न हुए शूक धान्य और शमी धान्य, विरुद्ध असात्म्य रूक्ष क्षार युक्त अथवा अभिष्यन्दकारी द्रव्यो के खाने वालो, विषमाशन और अध्यशन जिनको प्रिय लगते हैं, दिन मे नित्य सोने वालो, नित्य स्त्री और मद्य का सेवन करने वालो, विषम मात्रा मे अधिक व्यायाम करने वालो का शरीर क्षुब्ध हो चुका है, उनका भय, क्रोध, शोक, लोभ, मोह, और बहुत श्रम करने वालो को उपरोक्त वर्णित ग्राम्याहार के कारण शरीर के तीनो दोष (वात पित्त, और कफ) प्रकुपित होते हैं ।



अतो निमित्ताद्धि शिथिली भवन्ति मांसानि, विमुच्यन्ते सन्धय, विदह्यते रक्त विष्यन्दते चानल्प मेदः न सन्धियतेऽस्थिषु मज्जा शुक्रं न प्रवर्तते क्षयमुपैत्योज । एवम्भूतो ग्लायति सीदति निद्रातन्द्रालस्यसमन्वितोऽनादत-माशु चैव श्वसित्यसमर्थश्चेष्टाना शारीरमानसानां नष्टस्मृति बुद्धिच्छायो रोगाणाममधिष्ठान भूतो न सर्वमायुर-वाप्नोति ।

अर्थात—' इन कारणो से व्यक्ति की मासपेशिया शिथिल हो जाती हैं, अस्थिगन्धिया ढीली हो जाती है, रक्त विदग्ध हो जाता है, पर्याप्त बढा हुआ मेद बह निकलता है मज्जा अस्थियो मे एकत्र नही होती है, न वीर्य की प्रवृत्ति होती है, ओज क्षय को प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति हो जाने पर वह व्यक्ति ग्लानि युक्त हो जाता है शिथिल हो जाता है, निद्रा-तन्द्रा तथा आलस्य से घिर कर उत्साहहीन हुआ हाँपने लगता है। वह व्यक्ति शरीर अथवा मानसी चेष्टाओ मे असमर्थ हो जाता है। उसकी बुद्धि, स्मरणशक्ति और छाया नष्ट हो जाती है। मानो कि वह रोगो का अधिष्ठान भूत होकर अपनी सम्पूर्ण आयु को प्राप्त नही कर पाता।"

वृद्धावस्था एव जरावस्था—चाहे महाभारत के अनुसार जरा का स्वरूप अथवा चरक सहिता के अनुसार उपरोक्त विवरण कितना ही स्पष्ट है तो भी वृद्धावस्था एवं जरावस्था मे कविराज (डा०) यशपाल शास्त्री ने जो अन्तर किया है वह भी व्यवहार की दृष्टि से उपेक्षित नही समझा जा सकता। वह लिखते हैं—

"आपातत. वृद्धावस्था एव जरावस्था शब्द पर्यायवाची जैसे लगते है जबकि सच्चाई यह है कि यह दोनो ही भिन्न भिन्न परिस्थितियो के सूचक है। वृद्ध का अर्थ होता है बढा हुआ, आगे पहुचा हुआ, परिपक्वता की ओर गया हुआ। ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, धनवृद्ध आदि शब्दो का प्रयोग इसी अर्थ मे किया जाता है। वृद्धावस्था एक प्रकार से एकदम प्राकृतिक घटना है, अपरिहार्य कालकृत परिणाम है, जन्म और मृत्यु के घूमते चक्र की एक अनि-वार्य गति है। यदि व्यक्ति का जीवन प्रारम्भ से ही व्यवस्थित है तो वृद्धावस्था जीवन यात्रा का एक ऐसा पडाव है, जिसमे कोई दु ख नहीं, अपितु एक सुखद अनुभूति होती है और जिस प्रकार दिन भर का थका मादा व्यक्ति निद्रा की गोद मे विश्राम करके नवजीवन एव नवस्फूर्ति प्राप्त करता है, उसी प्रकार वृद्धावस्था के अन्तिम चरण मे पहुच कर व्यक्ति स्वयमेव महानिद्रा के अक मे चिर विश्रान्ति की कामना करने लगता है। इस प्रकार वृद्धा-वस्था व्यक्ति एव समाज दोनो के लिए वरदान है।

इसके विपरीत जरावस्था का अर्थ है जीर्णशीर्ण, थका हुआ, टूटा हुआ, निराश हताश। जीवन यात्रा की टेढी मेढी पगडण्डियो पर चलता हुआ व्यक्ति जब मिथ्याहार विहार के कारण व्याधिग्रस्त होकर असमय में ही बूढा हो चलता है, उस कष्टकारक दशा का नाम जरावस्था है। जरावस्था एकदम अप्राकृतिक है जिसमे व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एव नैतिक किसी भी स्तर का परिपाक ठीक से नही हो पाता। च्यवन एवं ययाति की पौराणिक कथाओ मे जरावस्था का शुद्ध स्वरूप हमे देखने को मिलता है जिसमे हम देखते हैं कि दोनो ही महानुभाव शरीर से जर्जर परन्तु मन मे अनेक लालसाओ का समुद्र लिए हुए मिलते है। एक ने रसायन सेवन द्वारा पुन नवयौवन पाया और दूसरे ने पुत्र का यौवन उधार लेकर अपनी कामनाओ को तृप्त किया। इस तरह जरावस्था व्यक्ति और समाज दोनो के ही लिए अभिशाप है।

इसी प्रसग मे वैद्य श्री लक्ष्मी शकर जी त्रिवेदी कानपुर के लेख 'वृद्ध विहार' का हवाला देना भी उचित ही है जिसमे उन्होने आश्रम व्यवस्था को ही वरदान रूप वृद्धावस्था का मूल कहा है—आप लिखते हैं—

"वस्तुत वृद्धावस्था भी अन्य दो अवस्थाओ की ही भाति मनुष्य की एक स्वाभाविक अवस्था है। उसे व्याधि स्वरूप अवाञ्छित, अनुपयोगी, दु खदाई, भारस्वरूप समझना उचित नही है। उचित तो यह है कि दो तिहाई जीवन मे अर्जित ज्ञान और अनुभव के अनुसार अपने मनुष्य जीवन को सफल सार्थक बनाने तथा परिवार समाज राष्ट्र और सृष्टि मात्र के लिए शुभकामनाओ के साथ वृद्धावस्था का सदुपयोग करना चाहिए। साथ ही



साथ वृद्धावस्था मे होने वाले शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों और अक्षमताओं के अनुसार अपना आहार विहार अपना लेना चाहिए। यही वानप्रस्थ और मुनिवृत्ति का सक्षिप्त सार है। मुनिवृत्ति अर्थात वानप्रस्थ की जीवनचर्या अपना लेने से वृद्ध अपने को एकाकी, उपेक्षित, निरूद्देश्य, अनुपयोगी, निरर्थक, अपदार्थ नही समझ पाते है। उनके सम्मुख भी अन्तिम समय एक विस्तृत कार्य क्षेत्र, उद्देश्य पूर्ण लक्ष्ययुक्त जीवन जीवित रहने के लिये विद्यमान रहता है। आश्रम व्यवस्था की यह विशेषता है कि यदि वर्तमान आश्रम का विधिपूर्वक पालन कर लिया जाय तो भावी आश्रम की सुखद भूमिका निर्मित हो जाती है।"

चाहे जो कहे इस जरा से छुटकारा पाने का तथा इससे बचने का मानव ने सदा से ही प्रयत्न किया है। आयुर्वेद मे आठ अंगो मे एक प्रधान अग रसायन है जो जरा सम्बन्धित है और इसी तरह जरा के कारण नष्ट हुए पुरुषत्व को पुनः शक्ति देने का उपाय वाजीकरण नाम से कहा गया है। आज के विकसित विज्ञान मे इससे सम्बन्धित जरा विज्ञान (Gerontology) और जरा चिकित्सा विज्ञान (Geriatrics) हैं जो विकासशील हैं और सम्भव है—प्राचीन रसायन से होने वाले वर्णित गुणों को विज्ञान उसी रूप मे प्राप्त करा सके।

काल करोति हि बलाबलम्—

देखना यह है कि इससे छुटकारा भी कैसे मिले ? काल चक्र कभी रुकता नही और किसी को छोड़ता नही। कलियुग मे मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष बताई गई है। आयुर्वेदज्ञो की खोज का परिणाम यह है कि इन सौ वर्षों के दश दशको मे क्रमश शरीर मे होने वाले ह्रास का ज्ञान प्राप्त कर लिया। शार्ङ्गधर सहिता के पूर्व खण्ड का यह सूत्र कालचक्र का स्पष्ट द्योतक है—

बाल्य वृद्धिश्छविर्मेधा त्वक् दृष्टि शुक्रविक्रमौ। बुद्धिः कर्मेन्द्रिय चेतो जीवित दशतो ह्रसेत् ॥

मनुष्य जीवन के प्रत्येक दशक मे निम्नलिखित जीवनीय गुणो का ह्रास होता है—

प्रथम दशक—बाल्यवस्था का नाश।
द्वितीय दशक—वृद्धि का अवरोध।
तृतीय दशक—छवि (रूप-सौंदर्य आदि) की हानि।
चतुर्थ दशक—मेधा (बुद्धि) हानि।
पञ्चम दशक—त्वक् हानि।
षष्ठम दशक—दृष्टि हानि।
सप्तम दशक—शुक्र हानि।
अष्टम दशक—विक्रम हानि।
नवम दशक—बुद्धि हानि।
दशम दशक—कर्मेन्द्रिय हानि।

यह काल का परिणाम है। जीवन चक्र एक ही साथ दो विपरीत क्रमो द्वारा चलता रहता है—विकास (Evolution) और विनाश (Involution)। अबाधगति से चलने वाले इन क्रमों मे ही मनुष्य वृद्धावस्था की ओर बढता है जब विनाश की प्रक्रिया प्रभावशाली हो जाती है और विकास की प्रक्रिया गौण होती जाती है। विकास का नाश मृत्यु का सूचक है और यह भी काल के परिणामस्वरूप है। इसी से इनको स्वभाविक रोग कहा गया है। जो काल के परिणामस्वरूप उपलब्ध होते हैं।

कालस्य परिणामेन जरामृत्यु निमित्तजा। रोगा स्वभाविका दृष्टा स्वभावो निष्प्रतिक्रिया ॥

—चरक सहिता शा० अ० १/११४

और यह स्वभाव होते हुए भी निर्बल को शीघ्र सताता है और प्राणशक्ति सम्पन्नो को कष्ट नही दे

पाना—इसीलिए आयुर्वेदज्ञों ने प्राणपोषक रसायनांग को एक महत्वपूर्ण एव उपयोगी विज्ञान बताया था।

जरा और आयुर्वेद—

इस अवश्यम्भावी जरा से बचने एवं जरा दूर करने के लिए आयुर्वेद जीवन विज्ञान रूप मे प्रकट हुआ। दो प्रयोजनों हेतु ब्रह्मा जी ने आयुर्वेद का उपदेश दिया स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी के रोग का निवारण। इनमे प्रथम उद्देश्यान्तर्गत स्वास्थ्य रक्षा के सिद्धान्तो एव उपायो को बताकर जरा दूर रहे इसका उपदेश किया गया है। अष्टाग आयुर्वेद मे जहाँ शल्य शालाक्य कायचिकित्सा आदि अ गो को रखा है वहाँ जरा और वृषभ अर्थात् रसायन और वाजीकरण का समावेश आठ अ गो मे किया गया। दु ख का विषय है कि आज रसायनवेता वैद्य नहीं हैं, तो भी शास्त्र प्रमाण है इस बात के कि यह अ ग किसी समय अपने चरमोत्कर्ष पर था और जरा को दूर रखा जाता था।

चरक सहिता चिकित्सा स्थान का प्रथम अध्याय चार पादो मे विभक्त है और इनमे जरा निवारण का ही वर्णन मिलता है। उसे देखने से हमारा स्वर्णिम अतीत भली प्रकार समझ मे आ जाता है।

ऋषियो को जरानिवारणार्थ इन्द्र का उपदेश—

'ऋषय. खलु कदाचिच्छालीना यायावराश्च ग्राम्यौषध्याहारा. सन्तः साम्पन्निका मन्द चेष्टा नातिकल्याश्च प्रायेण बभूव । ते सर्वासामिति कर्तव्यतानाम समर्थाः सन्तो ग्राम्यवासकृतमात्मदोष मत्वा पूर्वनिवासमपगत ग्राम्य दोष शिव पुण्यमुदारं मेध्यमगम्यमसुकृतिभिगङ्गाप्रभवममर गन्धर्व किन्नरानुपरितमनेक रत्ननियममचिन्त्याद-भुत प्रभावं ब्रह्मर्षि-सिद्ध चारणानुचरित दिव्यतीर्थौषधि प्रभवमतिशरण्य हिमवन्तममराधिपति गुप्त जग्मुर्भृग्वङ्गिरोऽत्रिवशिष्ठ कश्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासित गौतम प्रभृतयो महर्षय ।"

अर्थात्—"किसी समय शालीन (घरो मे रहने वाले) तथा यायावर (इधर-उधर चलगृह लिए घूमने वाले) ऋषिगण ग्राम (या नगर) की औषधि तथा आहार के उपभोक्ता होकर सम्पन्न-आलसी तथा नाति निरोग (बहुत स्वस्थ नही ऐसे) प्राय करके हो गये थे। वे सभी करने योग्य कार्यों मे असमर्थ हो जाने से ग्रामवासजनित अपने दोष को मानकर भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, कृष्णगौतम आदि महर्षि ग्राम दोष से रहित शिव, पुण्य, उदार, पवित्र, जिन्होने अच्छे कार्य नही किए हैं उनसे अगम्य, गगा का जहा उद्भव हुआ है देव गन्धर्व किन्नरो से सेविय अनेक मूल्यवान रत्नो के समूह वाले, कल्पना से परे अद्भुत प्रभाव वाले ब्रह्मर्षि सिद्धचारण सेवित, दिव्य तीर्थ और दिव्य औषधियो के उत्पत्ति स्थल, शरणागत को आश्रय देने वाले, इन्द्र से रक्षित अपने पूर्व निवास स्थान हिमालय मे गए।"

देवश्रेष्ठ सहस्राक्ष इन्द्र ने उन ऋषियो को कहा—हे ब्रह्मवेता, ज्ञान और तपोबल रूपी धन वाले ब्रह्म ऋषियो आपका स्वागत है। ग्रामवासकृत ग्लानि, तेजहीनता, स्वरभेद, वर्णमलिनता, दु खानुबन्धी अनारोग्य आप मे निश्चित रूप से आ गया है क्योकि ग्राम्यवास अमङ्गलजनक है। अत. आप पुण्यकर्मियो ने प्रजा पर उपकार किया है। अपने शरीर पर ध्यान रखने का यह काल है और आप ब्रह्मर्षियो को आयुर्वेदोपदेश का भी यही काल है। अश्विनी कुमारो ने अपने तथा प्रजा के उपकार के लिए मुझे आयुर्वेदोपदेश किया था। प्रजापति ने अश्विनी कुमारो को और ब्रह्मा ने प्रजापति को आयुर्वेद का उपदेश किया था। प्रजाओ के आयु को अल्प, जराव्याधि बहुल, आरोग्य रहित दु ख के अनुबन्ध वाली और अल्प होने से थोड़े तप, दम, नियम और अध्ययन के सचय वाली मान कर ब्रह्मा ने मैत्री, करुणा, अपने ग्राह्य, अत्यन्त उत्तम पवित्र, उदार, पवित्र, न क्षीण होने वाले कर्म का उद्देश्य रखकर प्रजापति को जिसका उपदेश किया था उस अत्यन्त पवित्र, आयुवर्द्धक, जराव्याधिनाशक, ऊर्जाकर, अमृत रूप, शिव, शरणागत वत्सल, और उदार आयुर्वेद को सुनने के लिए और फिर उपधारण करने के लिए तथा प्रजा के अनुग्रह के लिए आयुर्वेदोक्त ज्ञान का प्रकाश करने के लिए आप योग्य है।"



इस प्रकरण मे इन्द्र ने रसायन कल्पो का वर्णन किया है । हिमालय से उत्पन्न रसायन तथा दिव्य औषधियो का वर्णन किया गया है । लिखा है कि ऐन्द्री, ब्राह्मी, क्षीरकाकोली, क्षीर पुष्पी, मुण्डी, महामुण्डी, शतावरी, विदारीकन्द, जीवन्ती, पुनर्नवा, नागबला, शालपर्णी, वचा, छत्रा, अतिछत्रा, मेदा, महामेदा और जीवनीय द्रव्यों का दूध के साथ छः मास तक प्रयोग करने से दीर्घ आयु तरुणाई, नीरोगता, स्वर्वर्ण श्रेष्ठता, पुष्टी, बुद्धि, स्मरण शक्ति, उत्तम बल और जितनाव प्राप्त हो जाते हैं ।

रसायन और रसायन की विधियां—

अष्टांग आयुर्वेद मे रसायन का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है । चरक संहिता मे भेषज के दो भेद बताये गए हैं—

"स्वस्थस्योजस्कर किञ्चित्किञ्चिदार्तस्य रोगनुत ।"

अर्थात् कुछ स्वस्थ को ओज करने वाली कुछ दुःखी के रोग का नाश करने वाली भेषज हैं । आगे इसको और स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'स्वस्थस्योजस्कर यत्तु तद्वृष्य तद्रसायनम् ।
प्राय प्रायेण रोगाणां द्वितीय प्रशमे मतम् ॥
प्राय शब्दो विशेषार्थो ह्युभयं ह्युभयार्थकृत ॥।"

अर्थात् पहले प्रकार की भेषज जो स्वस्थस्योजस्कर है—वह वृष्य और रसायन होती हैं और दूसरे प्रकार की भेषज रोग को शमन करती है । यहा पर प्राय शब्द विशेषार्थवाची है—वैसे भेषज के दोनो प्रकार दोनो प्रकार का कर्म करते हैं ।

कहने का तात्पर्य यह है कि स्वास्थ्योजस्कर न केवल ओजवर्धक है अपितु वह रोगनाशक भी है और आर्तस्य रोगनुत औषधिया ऊर्जस्कर भी मिल जाती हैं ।

हमारे विशेषांक का प्रधान विषय स्वास्थ्योजस्कर भेषज का प्रतिपादन करना है । आचार्य चक्रपाणिदत्त ने स्वास्थ्योजस्कर का बडा सरल और विपुल अर्थ दिया है—

स्वस्थत्वेन व्यवह्रियमाणस्य पुंसो जरादि स्वाभाविकव्याधि हृत्त्वेन तथा प्रहर्ष व्यवायक्षयित्वानुपचितशुक्रत्वाद्या प्रशस्त शारीरभावहरत्वेन "ऊर्ज्ज" प्रशस्त भावामादधातीति स्वस्थस्योर्ज्जस्करम् ।"

और इस प्रकार जरादि स्वाभाविक व्याधि हरणार्थ "रसायन चिकित्सा" तथा शुक्रवृद्धि आदि कार्यकारक 'वाजीकरण चिकित्सा' आयुर्वेद के इन दोनो प्रधान अङ्गो का अन्तर्भाव 'स्वस्थस्योजस्कर भेषज' मे हो जाता है । ज्ञातव्य है कि जराव्याधि चिकित्साक मे हमने इसका ही प्रतिपादन किया है । जहां रसायन खण्ड पर काफी साहित्य सकलित है वहा वाजीकरण को भी इसी से सम्बन्धित होने से अछूता नही छोडा गया है और चार-पांच विद्वानो के ज्ञानवर्धक लेख इस अक मे दिए गए हैं । चरक संहिता का निम्न सूत्र इस विषय मे उल्लेखनीय है—

"स्वस्थस्योजस्करं त्वेतद द्विविध प्रोक्त औषधम् ॥"

अर्थात्—"ये स्वस्थस्योजस्कर औषध के दो भेद कहे हैं अर्थात् रसायन और वाजीकरण ।"

यह सूत्र हमारे उपर्युक्त मन्तव्य की पुष्टि हेतु पर्याप्त है ।

रसायन की दो विधियां—

"रसायनानां द्विविध प्रयोगमृषयो विदु । कुटी प्रावेशिकञ्चैव वातातपिकमेव च ॥"

जिसके अनुसार रसायन सेवन की दो विधिया कही गई है—

(१) कुटी प्रावेशिक विधि (२) वातातपिक विधि—

और इन दोनो के विषय मे भी मर्यादा निर्धारित की हुई है --

"समर्थानामरोगाणां धीमता नियतात्मनाम् । कुटीप्रवेशे क्षमिणा परिच्छदवतां हित ॥
अतोऽन्यथा तु ये तेषा सौर्यमारुतिकी विधि । तयो श्रेष्ठतर पूर्वो विधि स तु दुष्कर ॥"

अर्थात् समर्थो नीरोगो, बुद्धिमानो, आत्मसयमियो, क्षमाशीलो और धन जन से सम्पन्नो के लिए कुटी प्रावेशिक विधि हितकर है । पर जो इनसे विपरीत है उनका हित वातातपिक विधि अपनाने मे ही है । यह ठीक है कि इन दोनों मे कुटी प्रावेशिक विधि श्रेष्ठतर है परन्तु है अत्यन्त कठिन ।

यही कारण है कि आज कुटी प्रावेशिक विधि का प्रयोग कराने वाले विरले ही वैद्य रहे हैं और शायद ही कोई व्यक्ति मिलते है जोकि उसके लिए तैयार हो । वह कितना अच्छा समय रहा होगा जब आयुर्वेद मे कुटी प्रावेशिक विधि से रसायन लाभ उठाया जाता होगा । भगवान इन्द्र ने द्रोणी प्रावेशिक रसायन का जो उपदेश किया वह भी अपने मे विशेषता रखता है । जहा हिमालय की दिव्योषधियो का तथा ढाक की द्रोणी मे छ मास लेटे रहने के बाद जागने का वर्णन किया है । वास्तव मे योग के जानकार ही द्रोणी प्रवेश करते होगे जो आज हम भूल चुके है ।

काया-कल्प—

'कायाकल्प' शब्द कोई नया शब्द नही है परन्तु दु ख इस बात का है कि हम इस विधि के ज्ञाता नही रहे । रसायन चिकित्सा में काया अर्थात् शरीर का नवीनीकरण करना आज हमारे लिए सुकर नही रहा । शास्त्रो मे च्यवन ऋषि के कायाकल्प का वर्णन मिलता है । वैखनस ऋषि एव बालखिल्य आदि ऋषियो को जरा निवारण कर पुनर्यौवन प्राप्त कराने की घटनाएं प्रसिद्ध हैं तो भी मात्र वह घटनाएँ ही हैं—हम वैसा कर नही पा रहे ।

चरक सहिता में वैद्य और उसकी मान्यता बताते हुए लिखा है—"जो रसायन सयोग तथा जो वृष्य योग और जो रोगों की औषध कही गई है वह सब वैद्य के आश्रित है । इसलिए बुद्धिमान आयुर्वेद पारगत प्राणाचार्य को उसी तरह पूजे जिस प्रकार इन्द्र ने देव वैद्य अश्विनी कुमारो को पूजा था ।"

देवभिषक् अश्विनी कुमार यज्ञवाह कहे जाते हैं क्योकि यज्ञ (दक्ष प्रजापति) के कटे सिर को फिर से जोड दिया था । पूषा (सूर्य) के गिरे हुए दातो, की भग के नष्ट हुए नेत्र की और इन्द्र के भुजस्तम्भ की इन्होने ही चिकित्सा की थी । चन्द्रमा के सोम गुण के नष्ट हो जाने के कारण दुखी होने पर उन्होने चन्द्रमा को फिर से सुखी किया था । च्यवन, भार्गव नामक ऋषि वृद्ध होने पर भी कामी बनने से वर्ण और स्वर से रहित होकर विकार ग्रस्त हो गये थे, उनको इन्होंने पुन युवा कर दिया । इन तथा अन्य अनेक कार्यो के द्वारा वैद्यो मे श्रेष्ठ अश्विनी कुमार इन्द्रादि महान आत्माओ के पूज्य हो गये थे ।

वास्तव मे 'चमत्कार को नमस्कार' है । आज वैद्य यदि कुटी प्रावेशिक अथवा द्रोणी प्रावेशिक विधियों द्वारा जरा को भगाने एव नवजीवन-नवस्फूर्ति प्रदान करने मे समर्थ हो जाए तो वह समाज मे उसी तरह पूजा जाये जिस प्रकार देवताओ मे अश्विनी कुमारो को पूजा जाता है ।

जहाँ वैद्य की यह स्थिति है वहा रसायन सेवी के लिए भी कहा गया है—"बिना स्थूल तथा सूक्ष्म शारीर दोष एव मानस दोषो को निकाले जीव रसायन के गुणो से कभी युक्त नही होता । कहने का भाव, यह कि जब तक शरीर मे कोई शारीरिक रोग या मानसिक अशान्ति है तब तक रसायन का प्रयोग करना व्यर्थ है । आयु दीर्घ करने वाले, जरा रोगनाशक रसायन योग शुद्ध शरीर तथा शुद्ध मन वाले व्यक्तियो मे ही सफलता प्राप्त करते हैं । हतमनो बुद्धि स्वभाव वाले इन भागियो मे तथा हमे कोई रोग नही हम क्यो औषधि लें ऐसा विचार रखने वालो को तथा जो पवित्रता का व्रत लेकर द्विज नही बन गये हैं अथवा द्विज बनने की अवस्था से पूर्व निरे बालक ही हैं तथा जिनकी सुश्रुषा रसायन सेवन काल मे नही हो सकती है उनको रसायन का उपदेश न देवे ।"

आज इन गुणो से युक्त व्यक्ति मिलना भी कितना कठिन है—और जब तक ऐसा व्यक्ति न मिले



रसायन का पूरा लाभ कैसे मिले ? आधुनिक काल मे ऋषि कल्प पण्डित महामना मालवीय जी एक दिव्य विभूति हुए है—आपने कायाकल्प कराया और कुटी प्रवेश किया । उनके अनुभव इस विषय पर प्रकाश डालने वाले हैं ।

श्री मालवीय जी का कुटी प्रवेश—

आधुनिक युग मे कुटी प्रावेशिक रसायन का प्रयोग महामना श्री मदन मोहन मालवीय जी को कराया गया । श्री मालवीय जी के अनुभव इस प्रकार है—

"मेरी कायाकल्प चिकित्सा पर बहुत चर्चा हो रही है । अपनी कुटी (जहां मुझ पर यह प्रयोग हुआ)) से बाहर आकर मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि काया कल्प का बहुत विज्ञापन किया गया है और इसके परिणाम के बारे मे भी बहुत बड़ी-बड़ी आशाएं बांधी गई हैं । ऐसा जान पड़ता है कि इस चिकित्सा सम्बन्धी सच्ची बातो और इसके परिणाम को जानने के लिए जनता उत्सुक है ।

यौवनावस्था को पुनः प्राप्त करने के लिए कायाकल्प चिकित्सा आयुर्वेद प्रणाली का आवश्यक भाग है । चरक के कई अध्यायो मे इस चिकित्सा का वर्णन है । सुश्रुत, वाग्भट तथा अन्य आचार्यों ने भी इसके बारे में लिखा है और इस उद्देश्य के लिए जिन औषधियो का उल्लेख किया गया है उनको रसायन नाम से पुकारा गया है । प्रारम्भ मे यह चिकित्सा केवल बड़े बड़े ऋषि-मुनियो को ही पुनः यौवन प्राप्ति का साधन था । इस चिकित्सा के लाभ बताते हुए चरक संहिता मे लिखा है—

पुरातन काल मे च्यवन तथा अन्य महर्षि जब वृद्ध हो गए तब उन्होंने पुनः यौवन प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की । उन्होंने इसी रसायन चिकित्सा के सहारे ही उसके बाद अनगिनत वर्षों तक संसार में जीवन व्यतीत किया । एक अन्य स्थान पर फिर लिखा गया है—

"रसायनो का प्रयोग करके मनुष्य चिरायु, स्वास्थ्य, स्मृति, यौवन, सौन्दर्य, शारीरिक शक्ति, योग्यता तथा बुद्धि प्राप्त करता है ।"

इस चिकित्सा से कौन अच्छे से अच्छा लाभ उठा सकता है, इस विषय मे चरक संहिता मे कहा है—

जो सत्यवादी हैं क्रोध से मुक्त हैं, भोगविलास तथा मास से परे हैं, मारकाट तथा थकावटी कामो से दूर रहता है सहनशील है, जप करता है, मन और शरीर जिसके शुद्ध हैं, सदाचारी है, संतुष्ट है, उदार और दानी हैं देवताओ, गऊ ब्राह्मणो, साधुओं, अध्यापको तथा वृद्धो का आदर करता है, नीच कामो से बचता है जिसका हृदय कोमल है, ज्ञानी है, जो ठीक समय पर सोता और जागता है, भोजन मे दूध का प्रयोग करता है, समय की कीमत को समझता है, तर्क और अधिकार को मानता है, गर्व से दूर है, अपने धर्म मे दृढ़ है, धार्मिक बातों को समझता है, अपने मन पर जिसका काबू है और इसे सर्वशक्तिमान के ध्यान मे लगाता है, ईश्वर में जो विश्वास रखता है और जो धर्म शास्त्रो का पालन करता है, वही मनुष्य रसायन चिकित्सा के बिना इसका प्रयोग किए भी लाभ उठा सकता है किन्तु जिसमें उपर्युक्त गुण हैं और वह रसायन (कल्प चिकित्सा) का भी प्रयोग करता है तो इस चिकित्सा का पूर्ण लाभ मिलता है ।

कायाकल्प चिकित्सा के दो प्रकार

(१) कुटी प्रवेश और (२) खुली हवा में ।

पहले प्रकार में रोगी को कुटी, जोकि खासतौर से उसके लिए बनाई जाती है, बन्द करदिया जाता है और जब तक चिकित्सा नहीं हो जाती तब तक उसे बाहर निकलने नहीं दिया जाता । कुटी इस प्रकार बनाई जाती है जिसमें हवा के झोंके, प्रकाश, धूल, आंधी आदि वहा नहीं पहुच सकती । निस्सन्देह यह तरीका दोनो तरीको में अच्छा है किन्तु साधारण आदमी के लिए इसमें लगाई गई बहुत सी पाबन्दियां को निभाना बहुत कठिन है । जो लोग प्रथम प्रकार से कल्प चिकित्सा कराने में असमर्थ होते हैं उनके लिए खुली हवा में रसायनो का प्रयोग बताया गया है ।



योग्य वैद्य—किन्तु प्रत्येक केस में 'चरक' का कथन है कि यह चिकित्सा किसी योग्य वैद्य द्वारा ही करनी चाहिए। जो रोगी को अपना बच्चा समझे तथा रोगी को भी वैद्य का आदर करना चाहिए। जो वैद्य कल्प चिकित्सा का अभ्यास करते हैं उन्हे लोभ और रुपये के लालच से मुक्त रहना चाहिए।

स्वानुभव—

कुछ लोगो ने समय समय पर कल्प चिकित्सा कराई है किन्तु ऐसा जान पडता है कि प्रथम प्रकार से अर्थात् कुटी प्रवेश से केवल साधु सन्यासियो को ही लाभ प्राप्त होता है और ग्रहस्थो को इससे बहुत कम लाभ पहुचता है। ढाई साल का अर्सा हुआ, एक उदासी साधु बाबा किशनदास उर्फ तपसी बाबा ने जो कई साल से मथुरा जिले में कोतवान नामक स्थान पर रहते थे, कुटी प्रवेश के तरीके से अपना कायाकल्प किया। यह प्रयोग सफल हुआ। कुटी प्रवेश से पहिले लोगो ने तपसी को ६५-७० साल के बीच का वृद्ध और गम्भीर आकृति का देखा था। किन्तु जब वे ४० दिन में कायाकल्प के बाद कुटी से बाहर निकले तो लोगो को उन्हे देखकर बहुत आश्चर्य हुआ, क्योकि वे ४० वर्ष की आयु से अधिक नहीं जंचते थे।

गत मई मास में मथुरा के दो सज्जन मुझ से मिले और उन्होने मुझे काया कल्प कराने के लिए कहा। मैंने उन से कहा कि पहिले मुझे, उस साधु से, जिसने कायाकल्प किया है—मिला दीजिए। क्योकि उनसे मिले बिना कोई निश्चय नहीं कर सकता था। इसके कुछ दिनो बाद गाजियाबाद के श्री आनन्द स्वामी, प० हरदत्त शास्त्री के साथ मुझसे मिलने आये। उन्होने मुझ पर कायाकल्प कराने के लिए जोर डाला। मैंने कहा इस बारे में निर्णय करने से पहिले मैं उस साधु से मिलना चाहता हूं जिसने एटा जिला में कायाकल्प किया है।

कुछ दिनो बाद श्री आनन्द स्वामी तपसी बाबा को लेकर मेरे पास आये। तपसी बाबा वास्तव में ३५-४० साल के जचते थे। उनसे बातचीत करने के बाद मैंने भी कायाकल्प चिकित्सा कराने का विचार प्रकट किया। अपने निकट सम्बन्धियो को तथा मित्रों को बडी कठिनाई से इस चिकित्सा के लिए राजी कर सका, क्योकि ऐसी कमजोर हालत में वे नहीं चाहते थे कि मैं ऐसी कठोर चिकित्सा का सामना करूं। लेकिन मैंने अन्त में कायाकल्प कराने का निर्णय कर ही लिया। बाबा जी ने श्री हरदत्त शास्त्री को भी मेरे ही साथ साथ कायाकल्प कराने के लिए कहा जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

१६ जनवरी १९३८ को चिकित्सा शुरू हुई और २४ फरवरी को समाप्त हुई। प० हरदत्त शास्त्री और मैं दो अलग,अलग कुटियो मे ५० फुट के अन्तर पर पूरे चालीस दिन तक रहे थे। बडी कठोर तपस्या के दिन थे। ४० दिन तक हमने सूर्य नहीं देखा और न हमने बराण्डे मे आकर ताजा हवा का अनुभव किया। समय बिताने के लिए हम कभी कभी कुछ पढ़ सकते थे। मेरी कुटी मे मिले हुए एक दूसरे कमरे मे एक पण्डित वेद मन्त्रों के साथ रुद्राभिषेक करते थे जबकि दूसरी ओर दूसरे कमरे में एक और पण्डित श्री मद्भागवत गीता का पाठ करते थे। कभी कभी हमें अपनी ही कुटी में किसी के साथ मुलाकात करने की आज्ञा मिल जाती थी। स्नान, व्यायाम तथा हजामत आदि सब मना थे। चिकित्सा काल में हमें केवल गरम पानी का प्रयोग करना पडता था। दिन और रात में अधिकांश समय अंधेरे मे ही रहना पडता था और आवश्यकता पडने पर मोमबत्ती जलाई जाती थी। हमारा भोजन केवल काली गऊ का दूध था। हम जितना दूध पी सकते थे उतना ही हमें मिल जाता था। मैं रोज १॥ सेर से लेकर दो सेर तक दूध पी जाता था।

चिकित्सा से लाभ—

मेरे मित्र पं० हरदत्त शास्त्री को और मुझे कल्प चिकित्सा से बहुत लाभ पहुचा है। शास्त्री जी को जो मुझसे १४ साल छोटे हे अद्भुत स्वास्थ्य लाभ हुआ। चिकित्सा से पहले और बाद मे लिए गए चित्रों से ही यह साफ प्रकट हो जाता है। मेरा वजन ६ पौंड बढ़ा, त्वचा के रग और बनावट मे भी सुधार हुआ। मेरी स्मरणशक्ति



भी बहुत बढ गई, बाल पहले से अब बहुत काले हो गए। हाथ पहले से अब बहुत कम कापते हैं। मैं सीधा होकर चलता हू। जो निराशा की भावना मुझ पर सवार होती जा रही थी वह अब कोसों दूर भाग गई है और उसके स्थान पर आशा एव विश्वास के नए अकुर पैदा होने लगे हैं।

महामना जी के स्वानुभव के साथ श्री शास्त्री जी के शब्दों में यह अनुभव यहाँ न देना उचित न होगा। वह इस प्रकार है—

१६ जनवरी १९३८ को मध्याह्नोत्तर श्री महादेव का पूजन करके महामना (स्वर्गीय) मालवीय जी ने कुटी मे प्रवेश किया। नित्य प्रति शकरगढ़ के जगल मे औषध तैयार होती थी।

प्रातःकाल बाबा विष्णुदास एव मालवीय जी के कनिष्ठ पुत्र श्री मुकुन्द जी मालवीय कल्प की औषध तैयार करके मालवीय जी को देते थे। वह औषध थी पलाश परिपाक आवला ५ तोला, शहद ४ तोला और गोघृत ५ तोला। एक चादी के पात्र मे चादी की चम्मच से खूब मिलाकर मन्त्रो से आमन्त्रित करके नित्य प्रात साय दी जाती थी। दवा लेने के तीन घण्टे बाद बिना शक्कर डाले गाय का गरम दूध पीने को दिया जाता था। दवा स्वाद मे कषैली लगती है और जी मिचलाता है। पाच छ दिन के बाद औषधि का प्रभाव मालूम पड़ने लगता है। पहले हाथ पैरो मे कुछ जलन और निद्रा भंग होती है। पुन दस दिन बाद रोज दो तीन बार पतला दस्त आता है। तब हाथ पैर की जलन कम होने लगती है। मुझे स्वय ११वें, १७वें, २२वें और २६वें दिन निद्रा भग और बेचैनी का कष्ट अधिक हुआ था।

मै एक छोटे से कमरे में लकडी के तख्त पर गद्दे के ऊपर सो जाता था। उसी कमरे में एक ओर पूजा करने के लिए स्थान कर लिया था। कमरे में घृत के दीपक से प्रकाश किया जाता था। जब जरूरत होती थी तब घण्टी बजाकर आदमी को बुला लेता था, जो गरम पानी तैयार किए बाहर ओसारे में रहता था और घण्टी का शब्द सुनते ही दरवाजे पर आकर जो काम हो कर के चला जाता था। ४० दिनो तक शौच तथा मुंह हाथ धोने इत्यादि का कार्य गरम जल से ही करता रहा। मन्जन, साबुन आदि किसी भी वस्तु का प्रयोग नहीं किया। केवल गरम जल और उगलियो से दांत साफ करके मामूली तौर पर गरमजल से मुह पोंछ लेता था। दिन भर पैर मे खड़ाँव पहनता था और सोते समय खोल देता था। ४१वें दिन जब पैर धोने की बारी आई तो देखा कि मेरे पैर के तलवे मुर्दे की तरह हो गए हैं। गरम जल में पैर डालने के थोडी देर बाद पैर की चमड़ी निकलने लगी। दूसरे दिन उबटन लगा कर पैर धोए और गरम जल मे तौलिया भिगोकर बन्द कमरे में बैठकर जल्दी से बदन पोंछ लिया। कल्प समाप्ति के ४-५ दिन बाद गरम जल से स्नान किया। ४१वें दिन मूंग का यूष केवल नमक डालकर यत्किंचित लिया। इसी प्रकार दूसरे दिन भी। तीसरे दिन चने का यूष लिया। ४१वें दिन से कभी कभी दूध मे शहद या मिश्री डालकर लेने लगा। लेकिन अभी तक हम लोग बाहर बरामदे तक नहीं गये सिर्फ एक दरवाजा खोल लेते थे। चार दिन बाद गरम वस्त्र पहन कर मैं और पूज्य प० मालवीय जी बाहर आए और दोनो ने प्रीतिपूर्वक मिलकर भगवान को धन्यवाद दिया। उपस्थित जन समूह ने हम लोगो को देखकर प्रसन्नता प्रगट की। यद्यपि दिन के २ बजे थे और मैं काफी वस्त्र भी पहने था तथापि शीतल वायु के लगने से मेरी उगलिया और हाथ पैर मे पीड़ा हो गई जो उष्णोपचार से शान्त हुई। अब २ दिनों के बाद मूग की दाल, चावल और फुलका इत्यादि खाने लगे हैं।"

इस प्रकार महामना मालवीय जी के कुटी प्रावेशिक रसायन के विवरण से स्पष्ट है कि इससे जितना लाभ होना चाहिए था, नही हुआ, जिसका एक कारण श्री मालवीय जी की तथा श्री शास्त्री जी की आयु का अधिक होना भी है क्योंकि रसायन का फल वृद्धावस्था मे इतना नही होता, जितना युवावस्था मे होता है।

रसायन प्रयोग एवं संशोधन

यह ठीक है कि जराव्याधि विध्वंसी को रसायन कहा जाता है परन्तु देखा गया है कि जरापक्व शरीरो के लिए रसायन बहुधा व्यर्थ रहती है। यौवन तथा प्रौढावस्था रसायन सेवन के लिए सर्वसम्मत समय है। कहा भी गया है—

"पूर्वे वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम्। प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञ स्निग्धशुद्ध तनो सदा ॥"

अर्थात् "पूर्व अथवा मध्य आयु मे ही रसायन का लाभ होता है और वह भी तव जव वुद्धिमान चिकित्सक पहले शरीर को स्निग्ध एव शुद्ध बना ले।" इसमें भी एक मत और अवलोकनीय है—

"यस्तु वृद्धो वालो वा नाति वलहीन. सशोधनसह स रसायनाधिकारी चेति।

"जिसके अनुसार जो वृद्ध अथवा बालक बहुत बल हीन न हो और सशोधन को सहन कर सके उसको भी रसायन का प्रयोग कराया जा सकता है। परन्तु ध्यान रहे कि विना सशोधन के रसायन प्रयोग से कोई लाभ नही। सुश्रुत सहिता मे बहुत सरल शब्दो मे इस विषय का प्रतिपादन किया है—

"अविशुद्धशरीरस्य युक्तो रसायनोविधि। न भाति वासासि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पित ॥"

सशोधन कर्म विना किए हुए प्रयुक्त की गई रसायन विधि उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार विना शुद्ध किए मैले कपडे रगना। मैले रंग कपड़े पर जैसे नही चढता उसी तरह मलयुक्त शरीर पर रसायन का प्रभाव नही होता। इसीलिए तो आचार्य प्रवर ने चरक सहिता मे स्पष्ट ही लिखा है—

"तस्या संशोधन शुद्ध सुखी जातवल पुन। रसायन प्रयुञ्जीत तत्प्रवक्ष्यामि शोधनम् ॥"

कुटी प्रवेश करने से पूर्व वमन आदि पञ्चकर्म द्वारा शुद्ध होकर पुन शारीरिक वल प्राप्त करके सुख अर्थात् पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर ही रसायन का प्रयोग करना चाहिए। उसी का विधान आचार्य श्री ने बताया है। इस विषय मे विस्तार के लिए विशेषाक मे वैद्य श्री कस्तूरेजी का लेख पठनीय है।

इस प्रकार सशोधन सह बलवान एव शुद्ध हुए व्यक्ति को रसायन का प्रयोग कराने का विधान है। न केवल इतना अपितु आचारहीन व्यक्ति को रसायन का लाभ नही पहुच सकता। जितने भी विधान कहे हैं सब मे सयम सत्यवादिता ब्रह्मचर्य का होना बताया गया है तभी रसायन से लाभान्वित हुआ जा सकता है। चरक सहिता एव सुश्रुत सहिता तथा अन्य सग्रह ग्रन्थो मे जितने भी रसायन कल्पो का वर्णन आया है उनसे तभी लाभ उठाया जा सकता है जब उपर्युक्त नियमो का विधिवत पालन किया जाये। इस बात पर और भी वल देते हुए चरक सहिता मे केवल आवले से अमृत प्राप्ति का विधान बताया है।

अमृत प्राप्ति—

अमृत का नाम ही जैसे प्राणदायक हो। प्राचीन साहित्य के अवलोकन से अमृत की बहुत सुन्दर कल्पना देखने को मिलती है। समुद्र मन्थन से जब भगवान धन्वन्तरि प्रकट हुए तो अमृत कलश के साथ और उस अमृत को प्राप्त कर देवता अजर और अमर हो गए। अमृत एक ऐसा तरल है जिससे मृतक भी सजीव हो उठता है। चरक संहिता के केवलामलक रसायन मे इस अमृत प्राप्ति का बडा सुन्दर वर्णन किया गया है। लिखा है—

"ब्रह्मचारी, इन्द्रिय सयमी व्यक्ति एक वर्ष पयोवृत्ति पूर्वक (केवल गोदुग्ध पान करता हुआ) मन से सदा ब्रह्म गायत्री का जप करता हुआ गायो के बीच मे रहता रहे। वर्ष के अन्त मे पूष, माघ या फागुन की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को तीन दिन पहले उपवास करके आवलो के वन मे प्रवेश करके ऐसे आमले के वृक्ष पर चढ जाए जिस पर मोटे फल लदे हो। शाखा मे लगे फलो को हाथ से पकड कर अमृत आने तक ओंकार का जप करता हुआ बैठे। उस समय कम से कम एक क्षण के लिए तो आमलक मे अवश्य ही अमृत बस जाता है। पहचान यह है कि अमृत के संयोग होने पर वे आमले मिश्री और मधु के समान मीठे, चिकने एव मृदु हो जाते है। ऐसे अमृत

युक्त आवलों को जितनी मात्रा में वह व्यक्ति खाता है उतने ही सहस्र वर्ष तक वह यौवन प्राप्त करके जीवित रहता है। इन आमलों को युक्तिपूर्वक खा कर तो वह देव समान हो जाता है और उसके पास श्री (लक्ष्मी) तथा मूर्तिमती सरस्वती अपने आप उपस्थित हुआ है।"

परन्तु क्या आज उतना संयम एवं नियम निभाने वाले व्यक्ति मिल सकते हैं, वास्तव में यदि ऐसा हो तभी रसायन के गुणों को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। जिन गुणों को आचार्य ने चरक में लिखा है—

"दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः। प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम्।
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्॥"

अर्थात् "व्यक्ति रसायन सेवन से दीर्घजीवन, स्मरण शक्ति, बुद्धि, आरोग्य, तरुणावस्था, प्रभा का विकास, वर्ण का निखार, स्वर की श्रेष्ठता, उत्तम शारीरिक बल, उत्तम इन्द्रिय बल, वाक्सिद्धि, और कान्ति प्राप्त करता है।"

जहाँ कुटी प्रावेशिक विधि तथा अन्य संयम नियमों का पालन आज सम्भव नहीं रहा वहाँ हम इतने से सन्तोष कर लेते हैं कि वातातपिक विधि के प्रयोग में रसायन अब भी कुछ तो प्रचलित है। न केवल वैद्य अपितु एलोपैथ डाक्टर भी आज च्यवनप्राश-रसायन को अपनाये हुए हैं और जनता में इसका मुख्य स्थान है। ऐसे अन्य कल्प भी इस विधि से प्रयोग किए जा रहे हैं। यदि ही इच्छा हो कि विद्वान अनुभवी वैद्यगण चिकित्सा का पुनरुद्धार करने का उत्साह हो और आज के विज्ञान के युग में अपनी प्राचीन वैज्ञानिक इस विशेष पद्धति को अधिक प्रचलित एवं जनोपयोगी बनाया जा सके, उसी अवस्था में आयुर्वेद अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है।

आत्म निवेदन—

'धन्वन्तरि' की विशेषांक परम्परा गौरवशाली है। यह 'जरा व्याधि चिकित्सांक' उस माला का मोती है जिसमें भैषज के एक प्रधान खण्ड 'स्वस्थोर्जस्कर भैषज' का सैद्धान्तिक एवं चिकित्सात्मक पक्ष उपस्थित किया गया है। इस विशेषांक के संयोजन के विषय में जो ढेर सा पत्र व्यवहार हुआ उससे यह बात सामने आई कि इस विषय पर साधारण चिकित्सकों को लेखनी उठाने का साहस नहीं हुआ, केवल विद्वान अनुभवी आचार्यों एवं चिकित्सकों ने ही हमारे आग्रह पर विशेषांक हेतु लेख प्रेषित किए। जिन लेखों को इस विशेषांक में संजोया गया है।

विद्या एवं ज्ञान के लिए प्राचीन काल से समादृत काशी नगरी में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के वरिष्ठ आचार्यों में आचार्य पण्डित श्री प्रियव्रत शर्मा, डा० श्री एन० सी० गुप्त, डा० श्री ज्योतिर्मित्र आचार्य, डा० श्री राम हर्ष सिंह, डा० श्री राम सुशील सिंह, डा० श्री दामोदर जोशी तथा उनके अन्य सहयोगियों ने जो अमूल्य योगदान दिया, वह इस विशेषांक में प्राणरूप प्रतिष्ठित है। मध्य प्रदेश के शासकीय आयुर्वेदिक कालेज ग्वालियर के वरिष्ठ आचार्य विभागाध्यक्ष वैद्य श्री वेणी माधव अश्विनी कुमार शास्त्री, उत्तर प्रदेश के राजकीय आयुर्वेदिक कालेज लखनऊ के वरिष्ठ आचार्य एवं विभागाध्यक्ष डा० श्री सी० बी० दुबे, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के रिटायर्ड वरिष्ठ आचार्य कविराज श्री रविन्द्र चन्द्र चौधरी, जामनगर (गुजरात) के आयुर्वेद कालेज के प्रिंसिपल डा० श्री आर० सी० चौधरी, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर में आयुर्वेद सकाय के डी० एवं अमृतसर आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल श्री के० कान्त, आन्ध्र प्रदेश आयु० विभाग के निदेशक हैदराबाद के डा० श्री राम निवास शर्मा, जामनगर संस्थान के भू० पू० वरिष्ठ चिकित्सक एवं अहमदाबाद के राजकीय हस्पताल के चिकित्साधीक्षक पञ्चकर्म विशेषज्ञ श्री ह० कस्तूरे, राजकीय आयुर्वेदिक

कालेज पटियाला के वरिष्ठ आचार्य श्री भजनदास स्वामी एवं आचार्य श्री नर्वदा प्रसाद शर्मा, प्राकृतिक चिकित्साचार्य डा० स्व० विट्ठल दास मोदी एव डा० श्री गगा प्रसाद गौड नाहर, धन्वन्तरि के कुछ विशेषाको के विशेष सम्पादक एव लेखक डा० श्री तेजबहादुर चौधरी, वरिष्ठ वैद्य कविराज श्री यशपाल शास्त्री और कानपुर के वैद्य श्री लक्ष्मी शकर त्रिवेदी उन वरिष्ठ विद्वानो मे से हैं जिनकी लेखनी से इस विशेषाक मे ज्ञान गगा प्रवाहित हुई है। जहा इन वरिष्ठ विद्वानो का वरद हस्त रहा वहा आयुर्वेदिक एव यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली के मेरे विद्वान सहयोगी विभागाध्यक्षो मे डा० (मिस) प्रभा शर्मा, डा० श्री वीरेन्द्र सिंह एव डा० एन० सी० शाह का तथा दिल्ली लाजपत नगर मे निजी चिकित्सा कार्य मे व्यस्त हमारे विद्वान मित्र डा० योगेन्द्र कुमार त्रिपाठी का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

नई पीढी के उदीयमान एव प्रगतिशील विद्वान आयुर्वेदज्ञ मित्रो ने भी इस महान यज्ञ मे अपनी आहुति दे अपने कर्तव्य को पूरी तरह निभाया। बरेली के आयुर्वेदिक कालज के व्याख्याता डा० श्री मुकुट बिहारी, राजकीय आयुर्वेदिक कालेज लखनऊ के व्याख्याता डा० श्री सी० पी० कसल, अमृतसर आयुर्वेदिक कालेज के व्याख्याता श्री अजय कुमार शर्मा, आयुर्वेदिक एव यूनानी तिब्बिया कलेज के डा० श्री विवेक भूषण, दिल्ली नगर निगम आयुर्वेदिक चिकित्सालय के चिकित्साधिकारी डा० श्री धर्मवीर अग्रवाल कुछ ऐसे विद्वान लेखक है जो आयुर्वेद एव यूनानी तिब्बिया कालेज के सुयोग्य स्नातक हैं और अपनी मातृ सस्था को अपनी योग्यता से गौरवान्वित कर रहे हैं। आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत के व्याख्याता डा० महेन्द्र कुमार शर्मा एव डा० दिनेश चन्द्र गुप्ता, आयुर्वेद संस्थान जयपुर के वैद्य श्री बनवारी लाल गौड, आयुर्वेदिक कालेज अमृतसर के डा० श्री नन्द कुमार चतुर्वेदी, राजकीय आयुर्वेदिक कालेज पपरोला (कागडा) हि० प्र० के डा० सोमेश शर्मा एव डा० राजेन्द्र पाल शर्मा कुछ अन्य सुयोग्य लेखक हैं-- जिनका सहयोग हमे प्राप्त हुआ है। मारिशस के वैद्यराज डा० डी० सोब्रन हमारे विशेषाक के प्रवासी लेखक हैं।

मैं इन तथा अन्य सभी विद्वान लेखको के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हू जिनके सहयोग से 'जरा व्याधि चिकित्साक' यह रूप धारण कर सका।

इस प्रसग मे यदि मैं धन्वन्तरि के प्रकाशक एव सम्पादक डा० श्री दाऊदयाल गर्ग को भुला जाऊँ तो घोर अन्याय होगा। विशेषाक के कलेवर हेतु कितनी ही बार मेरे पास अलीगढ से दिल्ली के चक्कर लगाने एव बार-बार पत्रो द्वारा मुझे जागरूक कराने का श्रेय श्री गर्ग को ही है। एक श्रेष्ठ एव उपयोगी साहित्य विद्वानो की सहायता से धन्वन्तरि के पाठको को दिया जा सके—यही भावना श्री गर्ग के मन मे रही। भगवान धन्वन्तरि इन की भावनाओ को इसी रूप मे बनाये रखे, यही कामना है।

विद्वानो के ज्ञानसागर के रत्नो से सज्जित, आयुर्वेद के भैषजाग स्वस्थौजस्कर भैषज प्रकाशक, आयुर्वेद अष्टाग के रसायन पाद की व्याख्या करने वाले धन्वन्तरि के जरा व्याधि चिकित्साक नामक ५५वे वृहत विशेषाक को आयुर्वेद चिकित्सको, विद्यार्थियो एव अन्य पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए नये सवत् के प्रथम दिवस की पुनीत वेला मे इस आत्म निवेदन की इतिश्री करता हू।

दिनाक— ५-४-१९८१ (रविवार) —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)



मलेरिया से सावधान

क्या आपके परिवार का कोई भी सदस्य बुखार से पीड़ित है ? इसकी उपेक्षा मत कीजिए । यह मलेरिया भी हो सकता है । जो एक बुरी बीमारी है । ये सदस्य व्यक्ति को दबोच लेता है तथा उसकी शारीरिक दुर्बलता और परेशानी का कारण बनता है । अक्सर समूचे गांव शहर या अंचल इसकी पकड़ में आ जाते हैं ।

लक्षण

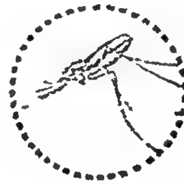
मलेरिया के लक्षण है

- सर्दी और कपकपाहट के साथ एकदम तेज ज्वर जो आमतौर से कुछ घंटे ही रहता है ।
- तीव्र ताप और तेज सरदर्द ।
- इसके बाद बहुत पसीना बहना और अत्यधिक कमजोरी के साथ बुखार का कम होना ।

बचाव के उपाय

किसी भी प्रकार का बुखार होने पर शीघ्र ही खून की जांच जरूरी है । इसके बाद समुचित उपचार के लिए निर्धारित संख्या में क्लोरोक्विन की गोलियां खाएं यदि खून में मलेरिया के कीटाणु पाए जाएं तो पूर्ण उपचार के लिए पांच दिन तक मलेरिया रोधी दवा खाएं ।

तेज बुखार, बेहोशी या सन्धि की स्थिति में रोगी को शीघ्र ही प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, डिस्पेंसरी या अस्पताल में ले जाए, जहां सभी को मुफ्त डाक्टरी सलाह और उपचार दिया जाता है ।





मलेरिया की रोकथाम के लिये

- गंदे पानी को अपने घर में अथवा आसपास जमा न होने दें । क्योंकि मलेरिया फैलाने वाले मच्छर इसी पानी में पनपते हैं । यदि ऐसा करना असम्भव हो तो उस पर मिट्टी का तेल छिड़कें ।
- समय-समय पर कीटनाशक दवाई छिड़कने वाले दलों को सहयोग दें । दूसरों को भी ऐसा करने को प्रेरित करें ।
- अपने घर में पूरी तरह से छिड़काव करवाए । रसोईघर, पूजा का कमरा, गोदाम या पशुओं को बांधने की जगह इत्यादि में भी छिड़काव का ध्यान रखें ।
- छिड़काव करते समय खाने की वस्तुओं तथा चारे को ढक कर रखें ।

मच्छर और मानव का सम्पर्क न होने दें

जरा विज्ञान की आयुर्वेदीय धारणा

डा० रामहर्ष सिंह ए.बी एम.एस [बी.एच यू], पी एच डी., डिप योग, डिप आई पी आर [बी एच यू],
रीडर, काय चिकित्सा विभाग, आयुर्वेद सकाय, वरिष्ठ आयुर्वेदिक चिकित्सक—सर सुन्दरलाल चिकित्सालय, सयुक्त निदेशक—योग अनुसन्धान केन्द्र, चिकित्सा विज्ञान सस्थान,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५



डा० राम हर्ष सिंह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक हैं जहां से आपने १९६१ मे प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान प्राप्त कर स्वर्णपदक सहित ए. बी. एम. एस परीक्षा उत्तीर्ण की और १९६९ में आयुर्विज्ञान संकाय से पी० एच० डी० किया। अपने विशिष्ट शोधकार्यों पर कई स्वर्णपदक एव विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। १९६३ से अपनी मातृ सस्था में कायचिकित्सा विभागान्तर्गत स्नातकोत्तर अध्ययन तथा चिकित्सा कार्य में रत हैं। कई एम० डी० एव पी० एच० डी० के छात्रो को सफल निर्देशन एव अनेक शोध पत्रो एव पुस्तको का लेखन कर चुके हैं। व्यस्तता के वावजूद हमारे आग्रह पर आपने 'जरा विज्ञान की आयुर्वेदीय अवधारणा' शीर्षक लेख विशेषाक हेतु प्रेषित किया है जिसके लिये हम आपके आभारी हैं।

विद्वान लेखक ने जरा के विषय मे आयुर्वेदीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए आयु विषयक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है और कलिकाल में शतवर्षायु के प्रमाण का सकेत देते हुए वयानुसार क्षयक्रम और तत्तद भावो के सरक्षक रसायनो का वहुत सुन्दर ढंग से विवेचन किया है—जो वैद्य मात्र के लिए पठनीय एव उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

पिछले कुछ दशको मे आधुनिक चिकित्सा शास्त्र मे जरा सम्बन्धी ज्ञान का द्रुत गति से विकास हुआ है और जीव विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र मे 'जरा-विज्ञान' (Gerontology) तथा 'जरा चिकित्सा विज्ञान' (Geriatrics) नाम से दो नवीन वैज्ञानिक शाखाओ को व्यापक मान्यता प्राप्त हुई है। सारे विश्व मे उन्नत चिकित्सा व्यवस्था के परिणामस्वरूप मनुष्य की औसत आयु मे महत्वपूर्ण वृद्धि होने से दुनिया मे वृद्ध व्यक्तियो की सख्या लगातार बढती जा रही है। इस तथ्य के कारण जरा विज्ञान का महत्व भी अपने आप वढता जा रहा है। इस सधिकाल मे जरा विज्ञान की आयुर्वेदीय अवधारणा तथा इस क्षेत्र मे आयुर्वेद के सम्भावित अवदान की ओर ध्यान जाना उचित ही है।

आयुर्वेद ने जरावस्था को स्वाभाविक व्याधि मानते हुए व्याधि वर्ग मे स्वीकार किया है। जरावस्था तथा तज्जन्य विकारो से मानव जाति के त्राण हेतु ही आयुर्वेदज्ञो ने रसायन तन्त्र का विकास किया जिसका अष्टाग आयुर्वेद मे प्रमुख स्थान है।[1] आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थो मे जरा शारीर सम्बन्धी विषय का अनेक प्रसगों मे उल्लेख है परन्तु सम्पूर्ण विषय क्रमवद्ध रूप मे उपलब्ध नही है।

1 दीर्घमायु. स्मृतिं मेधामारोग्य तरुण वयः। लाभोपायो हि शस्ताना रसादीना रसायनम्॥—च० चि० १/७
यज्जरा व्याधि नाशन तद् रसायनम्। —शारगधर सहिता

विषय के बढते हुए महत्व की दृष्टि से ऐसा आवश्यक प्रतीत होता है कि जरा विज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदीय साहित्य को क्रमबद्ध सकलित करके तद्विषयक आयुर्वेदीय अवधारणा को स्पष्ट किया जाय। प्रस्तुत लेख इसी उद्देश्य से तैयार किया गया है। यहा पर जरावस्था सम्बन्धी ज्ञान के निम्न पक्षो का सक्षिप्त उल्लेख किया जायेगा।

आयु क्या है ?, वय क्या है ?, हितायु क्या है ?, अहितायु क्या है ?, सुखायु क्या है ?, दु खायु क्या है ?, आयुर्वेदानुसार पूर्ण जीवन की कालावधि क्या है ?, जीवन की कालावधि के प्रविभाग क्या हैं ?, वयानुसार क्षय का क्रम क्या है ?, जरा शारीर का अयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तो के क्या सम्बन्ध हैं ? तथा जरावस्था के प्रतिपेधार्थ रसायन प्रयोगो का वैशिष्ठ्य क्या है ?

आयु—

शरीर, इन्द्रिय, मन तथा आत्मा के सयोग को ही आयु कहा गया है। नित्यग्, धारि, जीवित तथा अनुबन्ध, ये आयु के पर्याय है।[2-3] चेतना की अविरत अनुभूति ही आयु है[4]। 'आयु' शब्द 'अविरत प्रवाह' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। तदनुसार जीवन का अविरत प्रवाह ही आयु है। आयुर्वेद मे आयु को निम्नलिखित वर्गो मे बाटा गया है[5-7] (क) हितायु–अहितायु, (ख) सुखायु-दु खायु। इसमे प्रथम युग्म सामाजिक जीवन से तथा द्वितीय युग्म व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित है। ऐसे मनुष्य का जीवन हितायु वर्ग मे रखा गया है जो परहित मे रुचि रखता हो, दूसरे के अधिकारो को अपनाने का इच्छुक न हो, सत्यभाषी हो, शान्ति प्रिय हो, बुद्धिमान हो, सर्वदा सावधान रहता हो, धर्म-अर्थ-काम मे समुचित आस्था रखता हो, आदरणीय व्यक्तियो को समुचित आदर देता हो, ज्ञान सग्रह मे रुचि रखता हो, तथा धारणीय वेगो को धारण करता हो। इसके विपरीत लक्षणो वाले जीवन को अहितायु कहा गया है। इस प्रकार हितायु-अहितायु की अवधारणा जन कल्याण तथा समाज कल्याण की दृष्टि से की गयी है।

दूसरी तरफ सुखायु एव दु खायु की कल्पना व्यक्तिगत जीवन के सदर्भ मे की गई है। ऐसे व्यक्ति का जीवन सुखायु वर्ग मे रखा गया है जिसे कोई शारीरिक या मानसिक रोग न हो, जो क्रियाशील हो, बलवान हो, यशस्वी हो, बुद्धिमान हो तथा जिसकी ज्ञानेन्द्रिया समुचित रूप से कार्यशील हो, जो धनवान एवं स्वतन्त्र हो। इसके विपरीत प्रकार के व्यक्तियो के जीवन को दु खायु कहा गया है।

आयु की कालावधि—

जीवन की कालावधि के विषय मे अनेक मत हैं। छान्दोग्योपनिषद के अनुसार मनुष्य का पूर्ण जीवन काल ११६ वर्ष का होता है जिसके निम्नलिखित तीन प्रविभाग बताये गये है[8] (१) बाल्यावस्था-२४ वर्ष, (२) युवावस्था-४४ वर्ष, (३) वृद्धावस्था--४८ वर्ष। कुछ उपनिषदो मे ऐसा उल्लेख आता है कि इन्द्र प्रजापति के पास ब्रह्मविद्या सीखने हेतु १०० वर्षो तक अध्ययनरत रहे। कठोपनिषद[9] मे भी १०० वर्ष के जीवनकाल का उल्लेख है जहा कई ऋषियो द्वारा शतायु पुत्र की उत्पत्ति का वरदान देने का उल्लेख है। ए० ब्राह्मण[10] मे मनुष्य के शतायु होने का स्पष्ट उल्लेख है। यजुर्वेद से सम्बन्धित ईशावास्योपनिषद मे भी १०० वर्ष के क्रियाशील जीवन काल का उल्लेख[11] है। चरक तथा वाग्भट्ट ने भी मनुष्य

---

2 शरीरेन्द्रिय सत्वात्म सयोगो धारि जीवितम्। नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥ —च० सू० १/४२

3 अनुबन्धस्तु खल्वायु, तस्य लक्षण प्राणै सह सयोग। —च० वि० ८/१६

4 वेद चोपदिश्यायुर्वाच्य, तत्रायुश्चेतनानुवृत्तिर्जीवितमनुबन्धो धारि चेत्येकोऽर्थ। —च० सू० ३०/२२

5 परीक्ष्य कारिणोऽप्रमत्तस्य हितामायुरुच्यते, अहितमतोविपर्ययेण। —च० सू० ३०/२४

6 हिताहित सुख दु खमायुस्तस्य हिताहितम्। मान च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेद स उच्यते॥ —च० सू० ३०/४१

7 नियतायु, अनियतायु। —च० वि० ३/२९-३६

8 स ह षोडश वर्ष शतम जीवत प्रह षोडशं वर्ष जीवति म एग वेद। —छान्दोग्योपनिषद ३/१६-१७

9 शतायुष पुत्र पौत्रान् वृणीष्व। —कठो० १/१/२३ 10 शतायुर्वै पुरुष। —ऐ० ब्राह्मण २/२/१७

11 तच्च क्षुर्देवहित पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरद शतं जीवेम शरद शत शृणुयाम शरद शत प्रब्रवाम शरद शतमदीना स्याम शरद शत भूयश्च शरद शतात्॥ —शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेय सहिता।

का पूर्ण जीवनकाल १०० वर्ष का माना है।[12-13]

आयु एवं वय—

'आयु' एवं 'वय' ये दो शब्द जीवन की कालावधि व्याख्या के सन्दर्भ मे प्रयुक्त होते है। जीवन के अविरत प्रवाह (Total span) को आयु कहते है।[14] जीवन की कालावधि के अवस्था विशेष को वय' (Age) शब्द मे लेते हैं।[15] प्रवाहशील आयु (Life span) का जो अंश व्यतीत हो चुका है वही वय (Age) है। आयु को वयानुसार निम्न भागो मे विभाजित किया जाता है[16-19]।

१ बाल्यावस्था—Child hood : १५ वर्ष
२ मध्य वय– Middle Age १६-७० वर्ष
३. वृद्ध वय—Old Age . ७० वर्ष

बाल्य वय—१६ वर्ष के वय के पूर्व की अवस्था को बाल्यावस्था स्वीकार किया गया है। बाल्यावस्था को पुन निम्नलिखित तीन अवस्थाओं मे बाटा गया है—(१) क्षीरप (Milk Fed) ०-१ वर्ष, (२) क्षीरान्नाद (Weaning) १-२ वर्ष, (३) अन्नाद (Food Fed) २-१५ वर्ष।

मध्य वय—१६ से ७० वर्ष की अवस्था को मध्यावस्था (Middle age) स्वीकार किया गया है। यह अवस्था निम्नलिखित चार अवस्थाओ मे वर्गीकृत किया गया है—(१) वृद्धि (Stage of growth) १६-२० वर्ष, (२) यौवन (youth) २०-३० वर्ष, (३) सम्पूर्णता(Full adult) ३०-४० वर्ष, (४) हानि (Stage of involution or decline) ४०-७० वर्ष।

वृद्धावस्था—७० वर्ष से ऊपर की अवस्था वृद्धावस्था है। इस अवस्था मे धातु, वीर्य, इन्द्रिय, बल तथा उत्साह की दिनोदिन हानि होती जाती है। खालित्य, पालित्य, वलि, कास, श्वास तथा बल हानि वृद्धावस्था के सामान्य लक्षण हैं। सुश्रुत ने वृद्धावस्था की तुलना उस पुराने मकान से की है जो जीर्ण हो गया हो तथा वर्षा ऋतु के जल वर्षण से भीग जाने पर कभी भी गिर जाने की स्थिति मे पहुच गया हो।

वयानुसार क्षयक्रम तथा रसायन वैशिष्ठ्य—

शार्ङ्गधर संहिताकार ने १०० वर्ष की आयु के प्रवाह मे क्षय की अवस्थाओं का क्रमिक विवरण अत्यन्त सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है। तदनुसार मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक दशक मे निम्नलिखित जीवनीय गुणो को खोता जाता है—[20]

प्रथम दशक--बाल्य हानि, द्वितीय दशक--वृद्धि हानि, तृतीय दशक--छवि हानि, चतुर्थ दशक--मेधा हानि, पञ्चम दशक--त्वक् हानि, षष्ठ दशक--दृष्टि हानि, सप्तम दशक--शुक्र हानि, अष्टम दशक--विक्रम हानि, नवम दशक--बुद्धि हानि, दशम दशक--कर्मेन्द्रिय हानि।

वयानुसार रसायन वैशिष्ठ्य—

उपरोक्त क्रम से ह्रास को प्राप्त हो रहे जीवनीय गुणो के संरक्षण हेतु विशिष्ट रसायनो का प्रयोग करने का उपदेश दिया गया है। इस विशेष प्रकार के ह्रास के संदर्भ मे उन उन भावो के संवर्धनार्थ उन उन गुणो से युक्त रसायन द्रव्यो का चयन किया जा सकता है। इस प्रकार रसायन सेवन वय क्रम का विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रसंगात् हम विभिन्न वय के व्यक्तियो के लिए उपयोगी कुछ रसायनो का उल्लेख कर रहे है—

---

12 वर्ष शत खल्वायुष प्रमाणमस्मिन काले। —च० वि० ८/१२१

13 इति सर्वगुणेपेत् शरीरे शरदा शतम्। —अ० हृ० शा० ३/११६

14 एति गच्छति इति आयु। शब्द कल्प द्रुम पृ० स० १८५

15 वयस्तश्चेति काल प्रमाण विशेषापेक्षिणी हि शरीरावस्था वयाभिधीयते। —च० वि० ८/१२२

16 वयस्तु त्रिविधो बाल्य मध्य वृद्धमिति। —सु० सू० ३५/३४-३६

17 कालः क्रीडति गच्छत्यायुः, —चर्पट मजरी--शकराचार्य

18 पचविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे। —सु० सू० ३५/१५

19 युगे युगे धर्मपाद क्रमश्नेन हीयेते। गुणपादश्च भूतानामेव लोक. प्रलीयते॥ —च० वि० ३/२५

20 बाल्य वृद्धिश्छविर्मेधा त्वक् दृष्टि शुक्रविक्रमौ। बुद्धि कर्मेन्द्रिय चेतो जीवितं दशतोह्रसेत्॥ शा० स० पू०६/१९



वय (वर्ष)	क्षय क्रम तदत्त भावों के	संरक्षक रसायन
१—१०	बाल्य	त्वचा, स्वर्ण, काश्मरी।
११—२०	वृद्धि	काश्मरी, अश्वगंधा, बला।
२१—३०	छवि	लौह, आमलकी।
३१—४०	मेधा	शंखपुष्पी, ब्राह्मी, ज्योतिष्मती।
४१—५०	त्वक्	ज्योतिष्मती, प्रियाल, सोमराजी भृङ्गराज।
५१—६०	दृष्टि	ज्योतिष्मती, त्रिफला, सप्तामृत लौह, शतावरी।
६१—७०	शुक्र	आत्म गुप्ता, अन्य वाजीकर द्रव्य।
७१—८०	विक्रम	रसायन सेवन प्रभावी नहीं होता,
८१—९०	बुद्धि	'पूर्वे वयसि मध्ये वा' (सुश्रुत)
९१–१०१	कर्मेन्द्रिय	सिद्धान्तानुसार।

जरा एवं आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्त

वात पित्त एव कफ जीवित शरीर के मौलिक अवभाग हैं। इन्हे त्रिदोष कहा गया है क्योकि ये आपस मे स्वयं दूषित होने के साथ साथ दूसरे धात्वादि द्रव्यो को दूषित करते रहने की क्षमता रखते हैं। इन तीनो दोषो की साम्यावस्था स्वास्थ्य का आधार है और इनका वैषम्य ही रोग है।[21] इन दोषो के आपसी तारतम्य के आधार पर ही देह प्रकृति का निर्माण होता है।[22] दोष प्रकृतियो के निर्धारक दोष वैषम्य के समान ही वय क्रम से भी दोषो का तारतम्य परिवर्तित होता रहता है। सामान्यत बाल्यावस्था मे कफ युवावस्था मे पित्त तथा वृद्धावस्था मे वात दोष की स्वाभाविक वृद्धि होती है। शरीर के बल, वृद्धि तथा विकास मे कफ दोष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पित्त प्रभा, वर्ण तथा तेज का नियामक है। वायु, क्षय तथा शोष का हेतु है। बढते हुए वय के साथ कफ का ह्रास होता जाता है तथा उसी क्रम से वायु का प्रभाव बढता जाता है जिसके कारण धातुओ का शोषण होकर जरावस्था के अनेक लक्षण उत्पन्न होते हैं। वयानुसार दोषों के तारतम्य को निम्न रूप मे प्रस्तुत किया है—[23]

	बाल्यावस्था	मध्यावस्था	वृद्धावस्था
कफ	(+++)	(++)	(+)
पित्त	(++)	(+++)	(++)
वात	(+)	(+)	(+++)

दोषो के बदलते हुए तारतम्य के साथ साथ सप्त धातुओ मे भी परिवर्तन आते हैं। बाल्यावस्था मे १६ वर्ष के वय तक धातुओ, इन्द्रियो तथा ओजस की लगातार वृद्धि होती है। इसके उपरान्त युवावस्था तथा प्रौढावस्था प्रारम्भ होती है जो ७० वर्ष तक चलती है। उसके बाद वृद्धावस्था जन्य धातु इन्द्रिय तथा ओजस की ह्रास गति प्रारम्भ होती है। ये धातुगत परिवर्तन त्रिदोषगत परिवर्तनो के समान प्रकृति के ही होते हैं। जीवन के प्रारम्भ के वर्षों मे कफ बाहुल्य होता है जिससे धातुयें पुष्ट होती हैं। वृद्धावस्था में वायु की वृद्धि से धातु शोषण तथा धातु क्षय की स्थिति उत्पन्न हो ती है।

आयुर्वेद मे १३ प्रकार की अग्नियो का उल्लेख है जो आहार पाचन सार्वदैहिक चयापचय की प्रक्रिया के लिए उत्तरदायी होती हैं।[24] आधुनिक विज्ञान मे वर्णित अनेक एन्जाइम्स, को-एन्जाइम्स तथा हारमोन्स को आयुर्वेदोक्त अग्नि व्यापार के अन्तर्गत लिया जा सकता है। ऐसा समझा जाता है कि अन्न पाचन तथा चयापचय सम्बन्धी व्यापार युवावस्था मे पूर्ण क्रियाशील अवस्था मे होते हैं। यही पित्त की कार्मुकता की प्रधानता का भी काल है। अग्नि शरीर मे बल-वर्ण तथा प्रभा एव प्रतिभा का संचार करती है। बढते हुए वय के साथ वायु की वृद्धि से एक तरफ धातु क्षय होता है तथा दूसरी ओर अग्नि की मन्दता से शरीर मे बल, वर्ण आदि की हानि होती जाती है। इस प्रकार जरा शारीर आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तो पर आधारित पूर्ण विकसित विज्ञान है। साथ-साथ जरावस्था जन्य क्षय को प्राप्त हो रहे बाल्य, वृद्धि, छवि, मेधादि भावो के संवर्धनार्थ रसायनो के प्रयोग का उत्कृष्ट वर्णन आयुर्वेद मे उपलब्ध है। जरा शारीर तथा रसायन तन्त्र पर व्यापक अनुसन्धान की आवश्यकता है।

---

21 रोगस्तु दोष वैषम्य दोषसाम्यमरोगता। —अ० हृ० सू० १/२०

22 सप्त प्रकृतयो भवन्ति—दोषैः पृथक द्विश समस्तैश्च। —सु० सू० ४/६२

23 वयोऽहोरात्रि भुक्तानां तेन्तमध्यादिगा क्रमात्। —अ० हृ० सू० १/८

24 अन्नस्य पक्ता सर्वेषा पक्तृणमधिको मत। पालयेत् प्रयत्नस्तस्य स्थितौ ह्यायुर्बलस्थितौ॥ —अ० हृ० शा० ३/७२

महाभारत का जरा विज्ञान

डा० श्री ज्योतिर्मित्र आचार्य, बी आई.एम.एस , एम ए [डबल], पीएच डी.,(फिल,)पीएच.डी [आयुर्वेद],एफ आर ए एस. [लन्दन], आयुर्वेदाचार्य, दर्शनाचार्य, साहित्याचार्य, पुराणेतिहासाचार्य, रीडर—मौलिक सिद्धान्त, चिकित्सा विज्ञानसस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

—X—



आयुर्वेद जगत के उद्भट विद्वान-आयुर्वेद दर्शन एव आयुर्वेद इतिहास के मर्मज्ञ आचार्य श्री डा० ज्योतिर्मित्र का जन्म उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले के रुदौली नामक कस्बे मे एक सम्भ्रान्त जमींदार परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल अयोध्या में हुई। आपने १९५६ में ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार से बी आई एम एस परीक्षा आनर्स सहित उत्तीर्ण की। जामनगर में एक वर्ज रहने के पश्चात् आप दिल्ली चले आये और विद्यापीठ आयुर्वेदिक कालेज मे १९६० तक प्राध्यापक एव चिकित्साधिकारी के रूप में कार्य किया। १९६४ तक केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय मे सहायक अनुसन्धायक के रूप मे कार्य किया। अक्टूबर १९६४ मे आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर आयुर्वेद सस्थान मे प्रवक्ता के रूप मे गये और फरवरी १९७६ से आप मौलिक सिद्धान्त विभाग के रीडर पद पर कार्यरत हैं। आप चरक एव सुश्रुत के दार्शनिक विषय एव बौद्ध चिकित्सा विज्ञान पर पी एच डी की दो उपाधियो से विभूषित हैं। आपके कुशल निदेशन मे दस व्यक्ति पी एच डी उपाधि पा चुके हैं और लगभग एक दर्जन शोध छात्र कार्य कर रहे हैं। आपकी तीन पुस्तकें एवं सौ से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। विशेषज्ञ सदस्य एव परीक्षक रूप में भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयो की आयुर्वेद संकायों से आप सम्बन्धित हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने आपको आयुर्वेद अकादमी का सदस्य मनोनीत किया है। अत्यधिक व्यस्तता के बावजूद हमारे आग्रह पर आपने "महाभारत का जरा विज्ञान" शीर्षक से यह लेख विशेषांक हेतु भेजा है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं।

महाभारत इतिहास एव महाकाव्य तो है ही—एक ऐसा आकार ग्रन्थ है जिसमे अन्य विषयो का समावेश है। आदि पर्व का यह श्लोक स्पष्ट कर रहा है कि इसमे सभी कुछ विद्यमान है—

"यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नोहास्ति न तत्क्वचित्"

महाभारत मे जरा मृत्युमव्याधि विषयक ज्ञान के साथ रसायन चिकित्सा का तथा अष्टाग आयुर्वेद का वर्णन किस रूप मे दिया है—इसकी सुन्दर व्याख्या आचार्य श्री ने अपने लेख मे की है। जरा का वास्तविक स्वरूप क्या है—यह इस लेख मे सागोपाग वर्णित है, जो विषय को स्पष्ट करने वाला है। लेख पाठको को ज्ञान वृद्धि करने वाला एव अत्युपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास विशेष सम्पादक

●

कृष्णद्वैपायन वेदव्यास प्रणीत महाभारत वितत सीमित अर्थ मे ही इतिहास एव महाकाव्य की श्रेणी मे रखा जा सकता है। वास्तव मे यह एक आकार ग्रन्थ है। पाणिनि (७०० ई० पू०) को स्पष्टत महाभारत के युद्ध



का ज्ञान[1] था उन्होंने उस काल के अनेक यशस्वी पुरुषों—युधिष्ठिर, भीष्म, भीम और विदुर—के पद-व्युत्पत्ति के निमित्त अनेक सूत्रों[2] का प्रणयन भी किया है जिनमें प्रकृति स्वर का विधान भी सम्मिलित है।[3] ऋग्वेद में 'भारत' लोगों को योद्धा जाति का कहा गया है। सम्भवत दुष्यन्त-शकुन्तला के पुत्र भरत की वंशोद्भूत सन्तति थी जो गंगा एवं यमुना के दोआबे मे निवास करती थी। इसी भरतवंश मे कुरु नाम के राजा का महत्व रहा है और कुरु के वंशज कौरव भारत जाति के शासक थे और पश्चात काल मे इनका नाम कौरव या कुरु पड़ गया और उनकी भूमि को कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा जिनका परिचय हमे यजुर्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थो से मिलता है। कौरव वंश मे पारिवारिक कलह के कारण ही युद्ध हुआ और अन्त में यह वंश समाप्त सा ही हो गया। धृतराष्ट्र के पुत्रों एवं पाण्डु के पुत्रो के इसी युद्ध के आख्यान को महाभारत मे काव्यात्मक शैली मे निबद्ध किया गया है जो महाकाव्य का केन्द्र बिन्दु है।

काठक संहिता (१०/६) मे विचित्र वीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र की कथा आती है। शांखायन श्रौतसूत्र (१५/१६) मे कौरवो के विनाशकारी युद्ध की चर्चा आयी है। आश्वलायन गृह्य सूत्र (४/४/४) मे वेदाध्ययनान्त स्मर्त्तव्य आचार्यों एवं ग्रन्थो की सूची मे 'भरत' एवं 'महाभारत' के नाम आये हैं। यद्यपि बौद्धो के त्रिपिटक मे महाभारत की चर्चा नही है किन्तु तदन्तर्गत जातको मे कृष्ण आख्यान अवश्यमेव सम्मिलित है जहा घटजातक (सं० ४५४) कृष्णरुग्णन के साथ-साथ धनंजय, युधिष्ठिर, विदुर, द्रौपदी आदि सम्यक्तया चित्रित है अतएव ६०० ई० पू० मे यह काव्यात्मक रचना अवश्य विद्यमान थी और इस प्रकार कथा की प्राचीनतरता सुतराम सिद्ध है।

सम्प्रति प्राप्त महाभारत १८ पर्वों मे विभक्त है और पर्व अध्यायो मे तथा अध्याय श्लोको मे। इस प्रकार इसमे एक लाख श्लोक हैं इसी कारण यह महाभारत 'शतसाहस्री संहिता' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह महाकाव्य तीन पारम्पर्यो मे सम्पादित हो इस रूप मे आ पाया है। इसका मूल नाम 'जय काव्य' था जिसका प्रणयन स्वत व्यास ने किया और यह भी अपने तीनों नियोगज पुत्रो—धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर—के दिवंगत हो जाने के पश्चात। व्यास ने इस काव्य को अपने शिष्य वैशम्पायन को बताया और वैशम्पायन ने जनमेजय (अर्जुन के प्रपौत्र) के नाग यज्ञ के बीच-बीच मे इसका पारायण किया तब इसमे अन्य वंशो की कथाओं को भी सम्मिलित कर लिया गया और तब यह 'भारत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस अवसर पर लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा ने इस काव्य को सुना और नैमिषारण्य में शौनक के द्वादश वर्ष तक चलने वाले यज्ञ मे एकत्र ऋषियो ने सूत उग्रश्रवा से यह कथा सुनी और सूत ने इस कथा को कुछ और बढ़ा-चढ़ाकर सुनाया और तब यह 'महाभारत' नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ भी हो, अन्तिम तृतीय परिवर्धन मे इसमें विविधन्तान विज्ञान जोड़ दिये गये और इसे एक आकर ग्रन्थ बना दिया गया। सम्भवत यह इसलिए हुआ हो कि किसी को इस ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ न देखना पड़े, तभी तो महाभारत (आदि पर्व, ६२/५३) डिण्डिम नाद से यह घोषणा करता है कि—

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।

निश्चित रूप से यह श्लोक अन्तिम सम्पादक का प्रतीत होता है। चरक संहिता के सिद्धि स्थान के अन्तिम द्वादश अध्याय में प्रतिसंस्कर्त्ता दृढबल ने अक्षरश. यही श्लोक उद्धृत कर चरक संहिता के आकरत्व प्रतिपादन के लिए यही बात कही है।

महाभारत के वर्ण्य, विषयो मे चिकित्सा भी सम्मिलित है—

जरामृत्युभय व्याधि भावाभाव विनिश्चय।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम्॥

---

[1] संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्य (अष्टाध्यायी, ४/४/५६)। [2] (१) गतियुधिभ्या स्थिर—(तदेव, ८/३/९५)
(२) विदिभिदिच्छिदे कुरच् (तदेव ३/२/१६२) (३) भीमादयोऽपादाने—तदेव ३/४/७४

[2] महान् व्रीह्यपराह्ण गृष्टीष्वास जाबाल भारत हैलिहिलरौरव प्रवृद्धेषु॥—(६/२/३८)

ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च ।
न्याय शिक्षा चिकित्साश्च दानं पाशुपतं तथा ॥
(आदि पर्व १/६४, ६६)

सम्भवतः पाणिनि के पश्चात् महाभारत ही एक मात्र पुरातन संस्कृत का ग्रन्थ है जहां सर्व प्रथम आयुर्वेद का अष्टाग विभाग दृष्टिगत होता है[4]। इन्ही आठो अंगो मे 'रसायन' शास्त्र का भी नाम स्पष्टत' आया है[5]।

आयुर्वेद के अनुसार रसायन की अनेक परिभाषायें है किन्तु 'जरा व्याधि विध्वंसि भेषज तद् रसायनम्' यह परिभाषा अति समीचीन प्रतीत होती है।

चरक ने द्विविध भेषजान्तर्गत ऊर्जस्कर भेषज को ही रसायन या वृष्य माना है[6]। जिसके द्वारा रस आदि शरीरस्थ धातुयें प्रशस्त होकर आप्यायित हो वह रसायन है[7]। इस प्रकार रसायन सेवन से दीर्घ आयु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, तरुण वय, प्रभा, वर्ण, स्वर, औदार्य, अत्यन्त देह एव इन्द्रिय मे बल, वाक सिद्धि प्रणति एव कान्ति उपलब्ध होती है[8]। जिस प्रकार देवताओ के लिए सुधा अमृतकर है उसी प्रकार मनुष्यो के लिए रसायन है। रसायन सेवी पुरुप के पास न तो बुढापा (जरा) ही भटक पाता है और न ही दौर्बल्य एव आतुर्य[9]। इस प्रकार रसायन एक ऐसी वस्तु है जिससे जरा जीर्ण व्यक्ति भी तारुण्य का अनुभव करता है और उसके पास व्याधि नही आ पाती है और वह व्यक्ति दीर्घायु होता है। सुश्रुतानुसार युवावस्था को अधिक समय तक बनाये रखने का उपाय, आयु, मेधा एव बलवृद्धि करने के उपाय एव रोगापहरण सामर्थ्य का जहा वर्णन हो वह रसायन है[10]।

उपरितन विमर्श सन्दोहो से यह स्पष्ट हो जाता है कि रसायन का मुख्य उपयोग जरा या वार्धक्य के विनाश के लिए शरीर मे रोगानुत्पादक शक्ति आघात के लिए था। महाभारत मे ययाति के वार्द्धक्य प्रतिपादन और अपने पुत्रो से अपनी जरा को देकर यौवन मागने के माध्यम से रसायन की चरम लक्ष्यभूत वार्धक्य के दोषों एवं आयुकर भावो का निरूपण हुआ है।

नहुष पुत्र महाराज ययाति ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से यदु एव तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु एवं पुरु ये तीन पुत्र। शर्मिष्ठा देवयानी की अधीना परिचारिका थी किन्तु ययाति उसके सौन्दर्य एव यौवन पर लट्टू थे अतएव देवयानी से छिपकर उन्होंने शर्मिष्ठा से गान्धर्व विवाह कर उक्त तीनो पुत्रो की उत्पत्ति की। देवयानी को यह अच्छा न लगा और उसने अपने पिता शुक्राचार्य से सारा दुःखद वृतान्त कह सुनाया और तदनुसार शुक्राचार्य ने ययाति को शीघ्र ही जरा से आक्रान्त होने का शाप दिया। यद्यपि राजा ने 'ऋतुदान की अवहेलना करने पर भ्रूण हत्या का पाप लगता है' ऐसी शर्मिष्ठा के तत्कालीन कामपिपासा के कारण वाली सफाई दी पर वे शाप लौटाने को तैयार न हुए। ययाति ने कहा कि मुझे अभी यौवन से तृप्ति नही हुई है अत शाप प्रसन्न हो। शुक्राचार्य ने शाप मे थोडी सी शिथिलता करते हुए कहा कि यदि तुम किसी मे अपनी जरा को संक्रामित (Transferred) कर दोगे तो उस काल तक आनन्द ले सकोगे और पुन तुम्हे अपनी वृद्धावस्था लौटानी होगी।[11]

जराऽऽपन्न महाराज ययाति ने सर्व प्रथम अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से पूर्वोक्त वृत्त को सुनाकर उसके यौवन को मागते हुए कहा कि हे पुत्र! शुक्राचार्य के शाप से मुझे जरा या बुढापे ने घेर लिया है। मेरे शरीर मे झुर्रिया पड गई है और मेरे सारे केश श्वेत (पलित) हो गये है। मैं अभी

---

4 (१) कच्चिद् वैद्याश्चिकित्सायामष्टांगाया विशारद ।—सभा पर्व ५/६१
(२) आयुर्वेदस्तथाऽष्टांगो देहवांस्तत्र भारत ।—सभापर्व ११/२५
5 रसायनविदश्चैव सुप्रयुक्तरसायना । दृश्यन्ते जरया भग्ना नगा रितोत्तमा ॥—(शान्तपर्व २८/४०)
6 स्वस्थस्योर्जस्करं किञ्चित ... ... । स्वस्थस्योर्जस्कर यत्तु तदवृष्य तदरसायनम् ॥—च चि. १(१)४,५
7 लाभोपायो हि शस्ताना रसादीनां रसायनम् ।—तदेव
8 दीर्घमायु स्मृतिं मेधामारोग्य तरुण वय । प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबल परम् ॥
वाक्सिद्धि प्रणतिं कान्ति लभते ना रसायनात् ॥ चरक चि० १/१/७
9 चरक चि० १/१/७८
10 सुश्रुत सूत्र १/१५
11 महाभारत, आदिपर्व, ८३/२३—४२



तक युवावस्था के भोगो से तृप्त नही हुआ हू। तुम वार्द्धक्य के साथ मेरे दोष (पाप्मा) को भी ले लो। एक हजार वर्ष पूर्ण हो जाने पर मैं तुम्हारी जवानी देकर अपना वार्द्धक्य वापिस ले लूगा।[12]

ज्येष्ठ पुत्र यदु ने अपने पिता की बात सुनकर उत्तर के माध्यम से जरा के प्रभूत दोषो का चित्रण करते हुए बोला 'पिता जी! वृद्धावस्था मे खाने-पीने से अनेक दोष प्रकट होते है अत मैं आपकी वृद्धावस्था नही ले सकता। मैं उस बुढापे को लेने की इच्छा नही करता जिसके आने पर दाढी-मूछ के बाल सफेद हो जाते हैं। जीवन का आनन्द चला जाता है। वृद्धावस्था मानव को एकदम शिथिल कर देती है। समस्त शरीर मे झुरिया पढ जाती हैं और मनुष्य इतना दुर्बल एव कृशकाय हो जाता है कि उसकी ओर देखने की इच्छा नही होती। वृद्धावस्था मे कार्य करने की शक्ति भी नही रहती। युवतिया तथा जीविका पाने वाले सेवक भी तिरस्कार करते हैं अत मैं वृद्धावस्था नही लेना चाहता[13]।

इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्र यदु से निराश होकर ययाति ने द्वितीय पुत्र तुर्वसु से अपने इन्द्रियो के भोगार्थ उसके यौवन को मागा। उसने भी अपने पिता को नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा कि 'तात' काम-भोग का नाश करने वाली वृद्धावस्था मुझे नही चाहिए क्योकि यह वृद्धावस्था बल तथा रूप का अन्त कर देती है और साथ ही साथ बुद्धि एव प्राण शक्ति का भी विनाश कर देती है।[14]

तुर्वसु के ना कर देने पर ययाति ने अपने तृतीय पुत्र द्रुह्यु से भी इसी प्रकार अपने वार्धक्य के बदले उनसे यौवन की माग की पर वह भी तैयार नहीं हुआ और बोला 'वृद्ध मनुष्य हाथी, घोडा एव रथ पर भी नही चढ सकता वह स्त्री का उपभोग किसी प्रकार नहीं कर सकता। वृद्ध व्यक्ति की वाणी लडखडाने लगती है, अत मैं वार्धक्य नहीं लेना चाहता।'[15]

तुर्वसु के समान द्रुह्यु के ना कर देने पर ययाति ने अपने चतुर्थ पुत्र अनु से भी इसी प्रकार की चर्चा की पर वह भी अपने पिता को उनके वार्धक्य के बदले अपना यौवन देने को तैयार न हुआ और उसने बुढापे का सजीव चित्रण करते हुए कहा 'वृद्ध व्यक्ति शिशु की तरह असमय मे भोजन करता है। बराबर अपवित्र रहता है और अग्निहोत्रादि कर्म नही करता। ऐसी वृद्धावस्था किस काम की।[16]

अन्त मे ययाति के इस प्रस्ताव को उसके कनिष्ठ पुत्र पुरु ने मान लिया और राजा ने उसको आशीर्वाद दिया।[17]

जरा या वार्धक्य का कारण एवं स्वरूप—

देहधारी प्राणी के लिए अधिक राह चलना बुढापा लाने वाला होता है। इतना ही नही अपितु पर्वत माला मे जल का निस्सरण होना उसके लिए वार्धक्यकर है। स्त्रियो का मैथुन न करना उनके लिए शीघ्र बुढापा लाने वाला होता है। इसके अतिरिक्त वाणी की कठोरता, मन का बुढापा माना गया है।

---

12 जरा वली च मा तात पलितानि च पर्यगु। काव्यस्योशनस शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने॥
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयनहम्॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनस्ते यौवन त्वहम्। दत्वां स्वं प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह॥
—महाभारत, आदि० ८४/२—४

13 जराया बहवो दोषा पानभोजन कारिता। तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीष्ये इति मे मति॥
सितश्मश्रुर्निरानन्दो जरया शिथिली कृत। वलीसगतगात्रस्तु दुर्दर्शो दुर्बल कृश॥
अशक्त कार्यकरणे परिभूत स यौवनै। सहोपजीविभिश्चैव ता जरां नाभिकामये॥
—तदेव ८४/५—७

14 न कामये जरा तात कामभोगप्रणाशनीम्। बलरूपान्तकरणीं बुद्धिप्राणप्रणाशिनीम्॥ तदेव ८४/१२

15 न गज न रथ नाश्व जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम्। वाक्सगश्चास्य भवति ता जरा नाभिकामये॥
—तदेव ८४/१९

16 जीर्ण शिशुवदादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा। न जुहोति च कालेऽग्नि ता जरा नाभिकामये॥— तदेव, ८४/२४

'अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ।
असम्भोगो जरा स्त्रीणा वाक्यशल्यं मनसो जरा ॥'
(महाभारत, उद्योगपर्व ३९/७७)

रूप के हरण करने मे जरा से बढकर कोई वस्तु नही है—

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्यु प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
क्रोधः श्रिय शीलमनार्य सेवा
ह्रिय काम सर्वमेवाभिमान ॥
(महाभारत, उद्योग० ३५/५०)

जरा एव मृत्यु सभी प्राणियो को खा जाते है। इनकी तुलना भेडिया (वृक) से की गई है जो बलवान, दुर्बल, एवं बडे सभी प्राणियों को भोजन बनाने मे सकोच नही करते । कोई भी प्राणी जरा एव मृत्यु को कदापि लाघ नही सकता भले ही वह समुद्र पर्यन्त इस सारी पृथ्वी पर विजय पा चुका हो ।[18] रसायन जानने वाले वैद्य अपने लिए रसायनो का अच्छी तरह प्रयोग करके भी वृद्धावस्था द्वारा उसी प्रकार जर्जर हुए दिखाई देते हैं जैसे श्रेष्ठ हाथियो के आघात मे टूटे हुए वृक्ष दृष्टिगोचर होते है ।[19] सुश्रुत ने जरा को स्वाभविक व्याधि माना है ।[20] महाभारत के युद्ध के समय द्रोणाचार्य की अवस्था पचासी वर्ष की थी किन्तु कर्ण प्रदेश के केशो को छोडकर उनके सभी केश श्याम वर्ण के थे और युद्ध मे सोलह वर्षीय युवक की तरह सक्रिय दीख पडते थे ।[21]

आयुष्कर भाव—

यह पहिले कहा जा चुका है कि रसायन व्यक्ति को दीर्घजीवी बनाता है और दीर्घजीवन ही आयुष्कर है। चरक ने औषधि सेवन के बिना ही 'आचार रसायन' से उन सभी गुणो की प्राप्ति बताई है जो साक्षात रसायन सेवन से प्राप्त होते हैं । महाभारत मे भी 'आयुष्य' भावो की चरकवत् चर्चा हुई है जिनमे सम्पूर्ण प्राणियो के प्रति कोमलता का भाव, गुणो मे दोष का न देखना, क्षमा, धैर्य एवं मित्रो का अपमान न करना आदि सम्मिलित हैं—

कृतज्ञ धार्मिक सत्यमक्षुद्र दृढभक्तिकम् ।
जितेन्द्रिय स्थित स्थित्या मित्रमत्यागि चेष्यते ॥
इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते ।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्ग सादयेद् दैवतान्यपि ॥
मार्दव सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृति ।
आयुष्याणि बुधा प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ॥
(महाभारत, उद्योग० ३९/५०–५२)

उपसंहार

महाभारत में रसायन एव रसायनविद वैद्यो का सकर्तव्य निर्देश है । रसायन जरा का विनाश करता है, अत. मौलिक सिद्धान्त की दृष्टि से रसायन के प्रत्यनीकभूत जरा का वर्णन कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । इन्द्रिया अपने-अपने विषयो मे समयोग से व्याप्त हो, कार्य व्यापार करने मे समर्थ हो, यही यौवन है । यौवन मे अ योग होने पर भी शान्ति नही आती । ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल मे इच्छानुसार यौवन वार्धक्य मे एव वार्धक्य यौवन मे परिवर्तित किया जा सकता था । यह कायाकल्प की एक विधि है । सत्यवादी, मानसिक द्वन्द्वो से परे, जितेन्द्रिय' सदाचारसेवी एवं सात्विक भोजन पान करने वाला एवं गुरु सम्पूजक व्यक्ति विना किसी औषध के ही आयुष्करत्व को प्राप्त करता है । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इस नयी शाखा (Geriatics)—मे चिन्तन करना आरम्भ कर दिया है । उनके अनुसार अग प्रत्यगो के प्रत्यारोपण (Transplantation) से वार्धक्य को पर्याप्त काल तक दूर रखा जा सकता है, पर वे आचार रसायन के सिद्धान्त को हृदयगम नही कर पाये है । आशा है कि एक-दो दशक के अनन्तर वे इस पथ की ओर दीर्घ जिजी विषु हो उन्मुख हो सके ।

---

17 महाभारत, आदि० ८४/३३—३४ ।

18 जरामृत्युयू हिभूताना खादितारौ वृकाविव । बलिनां दुर्बलाना च ह्रस्वाना महतामपि ॥
न कश्चिज्जात्वतिक्रामेज्जरामृत्यु हि मानव । अपि सागरपर्यन्ता विजित्येमा वसुन्धराम् ॥
—तदेव, शान्तिपर्व २८/१४—१५

19 रसायन विदश्चैव सुप्रयुक्त रसायना । दृश्यन्ते जरया भग्ना नगा नागैरिवोत्तमै ॥—तदेव २८/४७

20 सुश्रुत, सूत्र १

21 महाभारत, द्रोणपर्व १९२/६४ एवं १९३/४३

शरीर क्रिया विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ... ...

जरा-रसायन

डा. एल. वी गुरु एवं डा.वी.पी. पाण्डेय

जिस प्रकार काशी में बाबा विश्वनाथ भगवान का आधिपत्य है और प्रत्येक भक्त वहाँ नतमस्तक होकर सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में श्री 'लक्ष्मी शकर' 'विश्वनाथ' गुरु की प्रसिद्धि है। आप आयुर्वेद की एक महान् विभूति हैं जिन्होंने अपने जीवन के तीस वर्ष आयुर्वेद अध्यापन में व्यतीत कर आयुर्वेद विद्यालयों के लिए कितने ही 'गुरु' तैयार कर दिये। आपका शरीर शास्त्र पर पूरा कमाण्ड है तभी एक आयुर्वेदज्ञ होते हुए भी आपने एम वी वी एस की कक्षाओं को एनाटमी का अध्यापन किया। इतने वरिष्ठ होते हुए भी आप सौम्य प्रकृति एव सरल स्वभाव के विद्वान हैं।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)



इन्डोक्राइन सिस्टम अनेक प्रकार की नलिकाविहीन ग्रन्थियो से मिलकर बना है, जो एक विशेष प्रकार का रासायनिक पदार्थ बनाती ह जिसका शरीर की जैविक क्रियाओ पर महत्वपूर्ण योगदान है। इन्ही को हम हार्मोन्स के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह हार्मोन्स विभिन्न प्रकार की कोशिकाओ एव सस्थानो के आकार मे वृद्धि व सख्याओ मे वृद्धि तथा पाचन क्रियाओ आदि का मार्ग दर्शन एवं नियन्त्रण कर इन सभी के मध्य सन्तुलन बनाये रखते हैं। साथ ही यही हार्मोन्स कोशिकाओ के चारो ओर पाये जाने वाले शारीरिक स्रावो के सगठन का सचालन कर कोशिकाओ एव तत्सम्बन्धी स्रावो के बीच सामान्य शारीरिक क्रियाओ का सम्बन्ध भी बनाये रखते हैं।

इस प्रकार भ्रूण अवस्था के विकास से मृत्यु तक अर्थात् जीवन पर्यन्त नलिका विहीन ग्रन्थिया प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक एव मानसिक क्रियाओ पर महत्वपूर्ण प्रभाव बनाये रखती है। क्रमिक विकास की प्रक्रिया स्पष्ट होने पर बाद मे यह पाया गया कि यह रासायनिक सचालन सस्थान जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रियाओ की तत्परता, वास्तविक स्थिति, एव शरीर की अन्य महत्वपूर्ण क्रियाओ की सचालन करने मे अकेले सक्षम नही है, इसके निमित्त नाडीवह सस्थान का कार्य भी अपरिहार्य है जिसके धीमी गति से होने वाले कार्य भी इन्ही हार्मोन्स के द्वारा संचालित होते हैं किन्तु तत्पर होने वाले कार्य नाडीवह सस्थान द्वारा ही सचालित होते हैं।

इस प्रकार कुछ कार्य जो मूलत नलिकाविहीन ग्रन्थियो द्वारा सम्पादित होते हैं, सम्भवत. नाडीवह सस्थानो द्वारा ग्रहण कर लिए जाते है। बाद मे यह पाया गया कि नाडीवह सस्थान एव नलिकाविहीन ग्रंथि सस्थान एक दूसरे से सम्बद्ध होकर शारीरिक स्थितियो को स्थायित्व प्रदान करते हैं। यह एक दूसरे पर आधारित व आश्रित हैं तथा शारीरिक क्रियाओ को एक रूपता प्रदान करने मे इनके कार्य एक दूसरे के पूरक हैं। इन दोनो सस्थानो का सम्बद्धीकरण हाइपोथलमस के स्तर पर होता है, आटोनामिक नर्वस सिस्टम का यह उच्चतम केन्द्र है जो अनेक प्रकार के हार्मोन्स का सृजन



करता है जो कि पिच्यूटरी के द्वारा महत्वपूर्ण नलिका विहीन ग्रन्थि क्रियाओ का नियन्त्रण करता है तथा इस प्रकार की विभिन्न क्रियाओ से ही इन्डोक्राइन सिस्टम का सचालन होता है।

अत यह ध्रुव सत्य है कि मनुष्य की आयु जन्म से मृत्यु पर्यन्त परिवर्तनशील है। यह परिवर्तन मुख्यत' वाला-वस्था, किशोरावस्था, युवावस्था एव वृद्धावस्था मे होता है। यही जीवन का सार है जिसे आज तक समझा नही जा सका। यह एक ऐसा क्रम है जो अपने उच्च शिखर पर पहुचकर पुन अध पतन की ओर प्रवृत्त होता है। आज के वैज्ञानिक युग मे अत्यधिक अनुसन्धान करने के वावजूद भी इस प्रक्रिया का अवरोध नही किया जा सका। अधुना अनुसन्धानकर्त्ता मुख्यत. चार प्रकार के सिद्धान्तो पर आयुष्य के सम्बन्ध मे विचार करते हैं।

1· Wear and Tear theory of Aging
2 Genetic theory of Aging
3 Stress theory of Aging
4 Auto Immune theory of Aging

प्रथम सिद्धान्तानुसार विद्वानो का कथन है कि जिस प्रकार वस्त्र नया रहता है किन्तु समयानुसार जीर्णावस्था को प्राप्त होता है एव ससार मे उत्पन्न वस्तुये जिस प्रकार अपने समयानुसार जीर्णावस्था को प्राप्त होती है उसी प्रकार आयुष्य मनुष्य के जन्मोपरान्त नियत समय पर जीर्ण होकर वृद्धावस्था के पश्चात अन्तकाल को प्राप्त होता है जो अपरिवर्तनीय है।

भगवान कृष्ण ने गीता मे कहा है कि जिस प्रकार मनुष्य पुरातन वस्त्रो का परित्याग कर नवीन वस्त्रो को धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुरातन शरीरो का परित्याग कर नवीन शरीर को धारण करता है, अत दार्शनिक परिप्रेक्ष्य मे भी मानव शरीर की विभिन्न अवस्था अपरिहार्य है।

जेनेटिक सिद्धान्तानुसार यह शरीर एक निश्चित समय तक चलता है। यह परिवार व माता-पिता पर भी निर्भर करता है। साथ ही इस सिद्धान्तावलम्बियो का कहना है कि शरीर का प्रत्येक सेल अपनी आयु पूर्ण कर अन्तकाल के मार्ग पर अग्रसरित होते हैं। उसी प्रकार शरीर भी अपनी आयुष्य को पूर्ण कर नष्ट हो जाता है।

तीसरे सिद्धान्तानुसार मनुष्य का मस्तिष्क विभिन्न प्रकार के वाह्य तनावो (Stress) का प्रतिक्षण सामना करता रहता है। इन तनावो की सूचना मस्तिष्क से पीयूष ग्रन्थि को प्राप्त होती है, जिसके फलस्वरूप पीयूष ग्रन्थि से A C T H. नामक हार्मोन्स का उत्सृजन होता है, उसी के साथ ही रीनल ग्रन्थि मे कार्टिसाल (Cartisal) नामक हार्मोन्स तथा मेडुला से एड्रेनलीन का निष्क्रमण होता है, दूसरी तरफ आटोनामिक नर्वस सिस्टम सीधे सुपर फीसियल नर्वस को प्रभावित कर एड्रेनालीन एव नारएड्रेनालीन का निष्क्रमण करता है। यह उपर्युक्त हार्मोन्स रक्त के साथ सम्पूर्ण शरीर मे परिभ्रमण करते है जिससे शरीर मे दो प्रकार के प्रभाव दिखलाई पडते हैं। (१) वैस्कुलर इफेक्ट (२) मेटावालिक इफेक्ट।

प्रथम का प्रभाव वस्कलर के सकोचनो का होता है, अत सकुचित रक्त सवहन स्रोत शरीर के सेलो को पूर्णरूपेण आहार नही पहुचा पाते जिसके कारण सेल्स कमजोर हो जाते है एव इसका प्रभाव शरीर की आयु पर पडता है।

द्वितीय सिद्धान्तानुसार शरीर का पाचन सस्थान पूर्णत कार्यरत नही हो पाता, जिसका कुप्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पडता है।

आटोइम्यून सिद्धान्तानुसार हम यह देखते है कि जन्म के समय थायमस नामक ग्रन्थि जिसका पूर्ण विकास २ वर्ष की अवस्था मे हो जाता है वह पूर्ण युवावस्था के आगमन पर शनै शनै समाप्त हो जाती है। यह ग्रन्थि स्त्री पुरुष दोनो मे ही समान प्रक्रियाओ का सचालन करती है।

परीक्षण के तौर पर यह भी देखा गया है कि इस ग्रन्थि को यदि वचपन मे ही निकाल दिया जाय तो वाल्यावस्था मे ही युवावस्था के लक्षण प्रादुर्भूत हो जाते है। इस ग्रन्थि का आयुष्य पर विशेष प्रभाव है।

साथ ही थायरायड ग्रन्थि का प्रभाव देखा गया है कि प्राकृतिक अवस्था मे न तो मिक्सोडिमा, श्लैष्मिक शोथ युवावस्था या क्रिटेनिज्म-अस्थिक्षय-वाल्यावस्था आदि रोग उत्पन्न करती है। (Pinead gl and) का योनि ग्रन्थियो पर होता है यह ग्रन्थि इन सभी के समय से पूर्व



विकास को रोकती है। यदि ग्रन्थि का विकास कुछ समय से पूर्व हो जाय तो यौन अगो का भी विकास समय से पूर्व हो जाता है जिससे शरीर, बाल, व विशिष्ट मानसिक भावो की वृद्धि स्पष्टत देखी जाती है। युवावस्था के पश्चात् इस ग्रन्थि मे भी क्षयात्मक परिवर्तन होता है।

अन्ततोगत्वा ग्रन्थि मात्र सौत्रिक तन्तुओ का अवशेष ही रह जाती है। अधुना L D H नामक हार्मोन एव विटामिन सी पर अनुसन्धान कार्य सम्पादित किया जा रहा है। विटामिन सी का प्रभाव विशेषत कोलेजन फाइ-वर्स पर देखा गया है। मानव शरीर मे फाइब्रोब्लास्ट, मास्ट-सेल रेटीकुलीन फाइवर्स, एलास्टिक फाइवर एव कोलेजन आदि फाइवर्स प्राप्त होते है। जिनका शरीर के स्थायित्व पर महत्वपूर्ण योगदान है। कोलेजन फाइवर ही मुख्यत अस्थि की उत्पत्ति मे कारण है जिसका सचालन मुख्यत विटामिन सी करती है।

इस प्रकार शरीर मे अनेक प्रकार के आन्तरिक रासा-यनिक स्राव होते हैं जिनसे ही शरीर की अवस्थायें स्वचा-लित यन्त्रवत् सचालित व परिवर्तित होती रहती हैं।

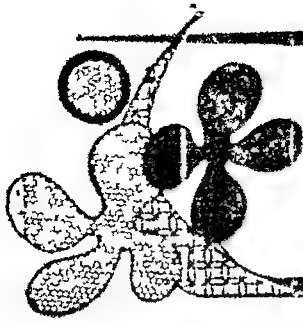
इसी परिप्रेक्ष्य मे आचार्य चरक ने शरीर की तीन अवस्थायें मानी है—बाल्यावस्था, मध्य एव जीर्ण। जन्म से १६ वर्ष पर्यन्त बाल शरीर की मान्यता है जिसमे धातु आदि अपरिपक्व होती है। मध्य शरीर की मान्यता १६ वर्ष से ६० वर्ष पर्यन्त है जिसमे वीर्य पौरुष, पराक्रम, धी, धारणा शक्ति आदि तथा वाक्शक्ति आदि गुण विशेष रूप से मिलते हैं। ६० वर्ष से १०० वर्ष पर्यन्त के आयुष्य को जीर्णावस्था मे ग्रहण किया गया है जिसमे इन्द्रिय, वल, वीर्य, बुद्धि, स्मरणशक्ति आदि के ह्रास की बात कही गयी है। यह तीनो आयु मर्यादा मे सामान्य रीति से समझनी चाहिए।

आयुष्य के सम्बन्ध मे शार्ङ्गधर सहिता का योगदान अत्यधिक वैज्ञानिक व महत्वपूर्ण है। इन्होने बाल्यावस्था, शरीर वृद्धि, छवि, मेधा, दृष्टि, शुक्र, विक्रम (पराक्रम) बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, चेतस्थान, मन अर्थात् स्मृति का क्रमश दश—दश वर्ष बाद ह्रास का सकेत किया है। सम्पूर्ण जीवन का स्थायित्व शार्ङ्गधर के अनुसार १२० वर्ष का है, जो आज के दैनन्दनीय जीवन मे प्रत्यक्षत देखा जा सकता है। आयुष्य के परिप्रेक्ष्य मे दो प्रकार के मन्तव्य दृष्टिगोचर होते हैं, प्रथम धारा के अनुसार मनुष्य अपनी आयु को ६० से ८० वर्ष तक प्रतिष्ठित रखने की इच्छा रखता है, एव दूसरी धारा के अनुयायी ६० वर्ष की आयु मे वह कार्य सम्पादित करने की इच्छा रखते हैं जो कार्य ३० वर्ष की आयु मे किये जाते हैं। इस दिशा मे विचार करने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि रसायन के सम्बन्ध मे वर्णित जरा व्याधि के नाश की चर्चा इन्ही तथ्यो से ओतपोत है, क्योकि रसायन मुख्यत जरा व्याधि को नष्ट कर ६० वर्ष की अवस्था मे ३० वर्ष मे सम्पादित होने वाले कार्यों का सम्पादन करने मे पूर्णत समर्थ है किन्तु जन्मोपरात क्रमश आने वाली वृद्धावस्था या मृत्यु अप-रिहार्य है।

आयुर्वेद शास्त्रो मे वर्णित रसायन सम्भावित तीन विधियो से आयुष्य के कार्य सम्पादन मे सहायता प्रदान करते हैं। प्रथमत रस के रूप में कुछ द्रव्य सीधे शरीर के रस सम्वहन मे मिलकर शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं। यथा—चीनी, शतावरी आदि। दूसरी विधि में शरीर का अग्नि व्यापार कार्यरत होता है यथा पिप्पली या दीपन पाचन अन्य औषधि द्रव्य, यह शरीर के वैश्वानर को स्वकार्य सम्पादन मे सहयोग प्रदान करते हैं। जिससे पाचन सस्थान पूर्ण कार्यरत होकर शरीर की शक्ति के ह्रास को रोकता है। तीसरी प्रणाली मे स्रोतसो का ग्रहण किया जा सकता है, यथा गुग्गुल आदि औषधि द्रव्य, स्रोतसों के शुद्धीकरण मे भाग लेते है। क्योकि सूक्ष्म से सूक्ष्मतम स्रोत सम्पूर्ण शरीर के प्रत्येक सेलो को आहार प्रदान करते है। यदि वे विकृतावस्था को प्राप्त हो जाय तो शरीर यन्त्र शनै शनै जीर्णावस्था को प्राप्त होने लगता है। अत रसायन उन विधियो से शरीर यन्त्र को सचालित रखने मे महत्वपूर्ण योगदान करता है। उपर्युक्त धातुपोषण व्यापार से व्याधि प्रतिरोध क्षमता, आयुष्य व मेधा आदि को समयोपरान्त भी कुछ समय तक के लिए बढाया जा सकता है।

उपरोक्त के सन्दर्भ मे शार्ङ्गधर सहिता मे वर्णित १२० वर्ष का आयुष्य अवलोकनीय है। इसी परिप्रेक्ष्य मे आयुर्वेद मे शरीराग्नि को ही मुख्य स्थान प्राप्त है यथा—

> आयुर्वर्णोबल स्वास्थ्यमुत्साहोऽपचयप्रभा।
> ओजस्तेजोऽग्नय प्राणाश्चोक्ता देहेऽग्नि हेतुकाः॥



वृद्ध-विज्ञान

डा० मुकुट विहारी एम० डी० [आयुर्वेद]प्रवक्ता-मार्डन मेडीसन,
एस आर एम राजकीय आयुर्वेदिक कालेज एव चिकित्सालय, बरेली

आयुर्वेदिक एव यूनानी तिब्बिया कालेज नई दिल्ली के सुयोग्य स्नातक एव लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० डी० आयुर्वेद डा० मुकुट विहारी उन नवीन लेखको मे से है जिनकी लेखनी सार सग्रह मे सुलभ गई है। विषय का सांगोपाग विवरण और समन्वयात्मक विवेचन करने मे कुशलता प्राप्त कर रहे हैं। आयुर्वेद को ऐसे उदीयमान लेखको से बहुत आशायें हैं। भगवान धन्वन्तरि इन्हें और अधिक प्रतिभा सम्पन्न कर उन्नति करावें, यही कामना है।

आपने वृद्धावस्था एव वात विकार शीर्षक लेख विशेषाक हेतु भेजा है जिसमे वृद्धावस्था एव वृद्धावस्थाजन्य प्रक्रिया का उपयोगी एव सारगर्भित विवेचन किया है—यह अश हम यहा दे रहे हैं। लेख का दूसरा भाग वृद्धावस्थाजन्य वात व्याधियो पर है जिसे हम आगे प्रकाशित करेंगे। लेख मे पाठको को उपयोगी सामिग्री मिलेगी।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

ससार मे विद्यमान सृष्टि-द्रव्यो मे प्रत्येक पल अनवरत परिवर्तन होता रहता है जो कि स्वाभाविक है। इसी प्रकार शिशु उत्पन्न होकर शैशव अवस्था से किशोर, किशोर से यौवन, यौवन से प्रौढ, और प्रौढ से वृद्धावस्था को प्राप्त करता है और तदन्नतर नाना प्रकार की व्याधियो से ग्रसित होकर काल के मुख मे चला जाता है। यह प्रकृति का नियम है और इसका प्रतिरोध करना कठिन है।

"Aging is a Progressive favourable loss of adaptation and decreasing adaptation of life with the passage of time, which is expressed in measurement as decaeased viatability and increased vulnerability to normal for ces of mortality"

The new England Journal of Medicine, vol—285 1972

मनुष्यत्व का उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधन द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करना है। मोक्ष का अर्थ ही जन्म-मरण के झझट से मुक्ति प्राप्त करना है। आचार्य वाग्भट्ट ने पुरुषार्थ चतुष्टय को सक्षिप्त कर त्रिवर्ग की सज्ञा दी है—धर्म, अर्थ और सुख। जिस प्रकार मनुष्य कर्त्तव्य पालन के लिये त्रिवर्ग की अवस्था है, उसी प्रकार जीवन के क्रम की भी तीन अवस्थायें हैं—बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था।

वयस्तु त्रिविध वाल मध्य वृद्धमिति —सु सू ३५/४८
(१) तत्रोनषोडशवर्षा वालास्तेऽपि —सु सू ३५/४९
(२) षोडशाप्तत्योरन्तरे मध्य वयस्तस्य —सु सू ३५/५०
(३) सप्ततेरूर्ध्वं'' '' 'वृद्धमाचक्षते —सु सू ३५/५१

साधारणतया पचास वर्ष के उपरान्त मनुष्य को अपने शरीर मे क्षीणता का अनुभव होने लगता है। धातु, इन्द्रिय, वल, वीर्य और उत्साह मे दिन-प्रतिदिन मन्दता आने लगती है। त्वचा मे सलवटें पड जाती हैं, सम्पूर्ण वाल सफेद पड जाते है और झड भी जाते हैं। वह मनुष्य कास-श्वास आदि उपद्रवो से पीडित होकर सब कार्यों को करने मे असमर्थ हो जाता है, जैसे पुराना-जर्जर मकान अधिक वर्षा के कारण गिर पडता है। ऐसे जीर्ण अवस्था वाले को वृद्ध कहते है। वृद्धावस्था एक स्वाभाविक रोग है जो कि काल के परिणामस्वरूप मनुष्य को प्राप्त होता है। यथा—

(१) कालस्य परिणामेन जरामृत्युनिमित्ताज.।
रोगा स्वाभाविका दृष्टा स्वभावो निष्प्रतिक्रिय.॥
—च० शा० १/११४

—शेषाश पृष्ठ ७२ पर देखें।



(२) स्वाभाविकाःक्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतय ॥
—सु० सू० १/५५

वृद्धावस्था की प्रक्रिया जीवन के क्रमिक विकास के साथ-साथ अदृश्य गति से चलती रहती है और समय आने पर इसके लक्षण दृश्य होने लगते है। जीवन के 'विकास की प्रक्रिया एक ही काल मे दो विपरीत क्रमो द्वारा सम्पादित होती रहती है। ये क्रम हैं—विकास (Evolution) और विनाश (Involution या Atrophy) के। प्रकृति के उपरोक्त दोनो क्रम जीवन मे निरन्तर अबाध गति से चलते रहते हैं और मनुष्य वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होता जाता है, जैसे-जैसे जीवन मे विनाश की प्रक्रिया प्रभावशाली होती जाती है और विकास की प्रक्रिया गौण होती जाती है।

प्राचीन समय से ही भारतीय ऋषियो मुनियो ने दीर्घायु से सम्बन्धित विभिन्न विषयो को लेकर अपनी उत्सुकता दर्शायी है। महर्षि चरक ने भी अन्य एषणाओ के साथ प्राणैषणा (Instinct of self preservation) या स्वय रक्षा की स्वाभाविक प्रवृत्ति का वर्णन किया है। कोई भी व्यक्ति रोग ग्रस्त या मरना नही चाहता। इस एषणा के कारण ही मनुष्य स्वस्थ रहने तथा आयु बढाने के उपायो को खोजता रहता है। आहार, निद्रा, मृत्यु, भय आदि एषणायें प्राणैषणा के अन्तर्गत ही आती है।

इतना सब जान लेने के पश्चात् उत्सुकता होती है कि आखिर वृद्धावस्था का विज्ञान क्या है?, इसकी प्रक्रिया क्या है? तथा आधुनिक विद्वान इस जटिल विषय पर क्या सोचते है? आइए—वृद्धावस्था से सम्बन्धित इन प्रश्न चिह्नो पर भी चलते-चलते विचार कर लिया जाय।

वृद्धावस्था जन्य प्रक्रिया—

जीवन के क्रमिक ह्रास के कारण या कारणो पर अध्ययन करना अपने आप मे एक शोध का विषय है। वैज्ञानिको का यह विश्वास है कि जीवन के क्रमिक ह्रास के कारणो के ज्ञात होने से केवल मनुष्य का जीवनकालो दीर्घ नही किया जा सकता अपितु मुख्यतया क्षीण होते हुए पोषण या शक्ति पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है। धातुओ मे कायिक ह्रासजन्य परिवर्तनो का लक्षण सहित जितना अच्छा और सारगर्भित वर्णन आचार्य चरक ने किया है वह गौरव का विषय है। यथा—

अतो निमित्त हि शिथिली भवन्ति मासानि, विमुच्यन्ते सन्धय, विदह्यते रक्त, विष्यन्दते चानल्प मेद। न सन्धीयतेऽस्थिषु मज्जा, शुक्र न प्रवर्तते, क्षयमुपैत्योज', स एव भूतो ग्लायति सीदति, निद्रातन्द्रालस्यसमन्वितो निरुत्साह श्वसिति, असमर्थश्चेष्टानां शरीरमानसीना, नष्टस्मृतिबुद्धिच्छायो रोगाणामधिष्ठानभूतो न सर्वमायुरवाप्नोति।
—च० चि० १-२/३

अर्थात् ऋतुविरुद्ध, कालविरुद्ध, प्रकृतिविरुद्ध, सयोगविरुद्ध आदि कारणो मे स्थूल शरीर जिसका दार्ढ्य मासपेशियो से है, शिथिल होने लगता है। मासपेशियो मे जो स्नेह सघात रहता है वह नष्ट हो जाता है, जिसमे पेशी के मासकण ढीले पड जाते हैं। सन्धिया जिनकी दृढ़ता स्नायुतन्तो से है, शिथिल हो जाती है। स्नायुतन्तु जिनका निर्माण तथा स्थितिस्थापक धर्म रक्त और मास मे आश्रित है, रक्त और मास धातु के दौर्बल्य से दुर्बल हो जाते हैं। स्नायुओ के ढीलेपन से, जिनको सन्धियो और अस्थियो का बन्धन माना है, सन्धियो का ढीला हो जाना स्वाभाविक है इसी से 'विमुच्यन्ते हि सन्धय' कहा गया है। खाद्य मे मधुर रस तथा स्नेह के अभाव के कारण जैसे रस की अपेक्षा होती है उस तरह का रस निर्माण नही हो पाता है। खाद्य पदार्थो मे अम्ल, कटु, लवण रसो की प्रधानता से, क्षार तथा रूक्ष गुण की प्रधानता से रस का परिपाक मधुर न होकर अम्ल या विदग्ध होता है। रस ही रक्त का उपादान धातु है, विदग्ध रस अपने समान गुणो वाले रक्त का निर्माण करता है। रक्त की विदग्धता का अभिप्राय रक्त का स्निग्ध तथा प्रगाढ न होना है। रक्त पतला तथा रूक्ष हो जाता है जिससे मासोपचय का अनुबन्ध नही रहता, अत शिथिलता प्राप्त मास से मेद धातु का निर्माण सम्यक नही होता है। उचित ऊष्मा तथा उचित स्नेह सघान के अभाव मे मेद धातु द्रवित होकर मेद स्थानो मे एकत्र होती है, इन पूर्ववर्ती धातुओ मे निजगुणो के अभाव मे मेदोत्तरवर्ती धातुओ का भी जो स्नेह तथा तेज प्रधान है, सम्यक निर्माण नही होता। अस्थि तथा अस्थिगत मज्जा की न्यूनता होने लगती है। शुक्रधातु का निर्माण पर्याप्त रूप मे नही होता है। शुक्र के अभाव मे

ओज की उत्पत्ति रुक जाती है। साथ ही पूर्व संचित ओज का क्षय होने लगता है। यह शरीर की वास्तविक शक्ति के ह्रास की प्रक्रिया है।

जब मनुष्य इस स्थिति मे आ जाता है तो सर्वप्रथम वह ग्लानि का अनुभव करने लगता है। अर्थात् उसमे उत्साह, आत्मबल और अहं का भाव नष्ट होने लगता है। शरीर और मन दोनो खिन्न रहने लगते हैं। शरीर में यथोचित क्रिया व्यापार सम्पन्न नही होता। मन मे उत्साह की कमी आ जाती है। निद्रा, तन्द्रा, आलस्य से युक्त प्राणी निरुत्साही जीवन को भारस्वरूप समझने लगता है। थोडे श्रम से श्वास चढने लगता है, स्मृति और विचार शक्ति का ह्रास होने लगता है। शरीर की यह स्थिति होने पर वह शरीर रोगो का आश्रय बन जाता है। एक रोग से छुटकारा नही मिलता कि इतर व्याधि का श्रीगणेश हो जाता है। ऐसी स्थिति वाला मनुष्य अपनी आयु का पूरा उपभोग नही कर सकता।

इसी ह्रास की प्रक्रिया को रोकने हेतु ताकि शरीर मे वृद्धावस्था के चिह्न समय से पूर्व न आयें, शरीर स्वस्थ, बल, वीर्य और उत्साह से युक्त हो, प्राचीन आयुर्वेदज्ञो ने प्राणशक्तिवर्द्धक रसायन द्रव्यो का आविष्कार कर रसायन चिकित्सा के महत्व पर दृष्टिपात किया है यथा—

रसायन च यद्ज्ञेय यज्जराव्याधिनाशनम्—शा पू ४/१३

विगत कुछ दशको मे वृद्धावस्था की ओर अग्रसर आयु के सम्बन्ध मे वैज्ञानिको ने अनेक सिद्धान्तो की कल्पना की है। उनमे से कुछ अपनी तीव्रता के कारण अस्वीकार हो गयी और कुछ को अनुमानित मान्यता प्राप्त न हो सकी। वृद्धावस्था से सम्बन्धित दो मूलभूत प्रश्न—

(१) वृद्धावस्था जीवन मे कब से प्रारम्भ होती है?

(२) विभिन्न प्राणियो का जीवनकाल किन बातो पर निर्भर करता है?

को समझने हेतु वृद्धावस्था की प्रक्रिया को समझना विषय की गम्भीरता की दृष्टि से आवश्यक रहेगा।

प्रत्येक जीवो की मूलभूत इकाई कोशिका होती है। प्रत्येक कोशिका के केन्द्र मे उपस्थित डी-आक्सी राइबो-न्यूक्लिक एसिड (D. N A.) नामक पदार्थ के अणु ही जीन (Gene) का निर्माण करते हैं जो जीवनके विषय मे सूचनाये संचित करते हैं। ये सूचनाये प्रत्येक कोशिका के अन्दर विभिन्न प्रकार के विकारो (Enzymes) की सहायता से राइबोन्यूक्लिक एसिड (R N A.) द्वारा सम्प्रेषित कर दी जाती हैं। इन सूचनाओ के आधार पर कोशिका मे निर्माण एव आवश्यक वृद्धि और क्षय की क्रिया निरन्तर प्रवाहमान रहती है।

वैज्ञानिको का विचार है कि वृद्धावस्था सम्बन्धी सूचना प्रत्येक जाति के निषेचित अण्ड मे ही आर० एन० ए०, डी० एन० ए० की भाषा मे लिखी जाती है। कुछ वैज्ञानिक विश्वास करते हैं कि जैसे-जैसे कोशिकाये वृद्ध होती रहती है आनुवंशिकपरिवर्तनआने लगते है। इसके फलस्वरूप या तो वे विभाजित ही नही होती अथवा जीवन क्रियाये करने का सामर्थ काफी कुछ खो बैठती है। यह परिवर्तन डी. एन ए मे परिवर्तनकरण (Mutaton) आदि के प्रभाव वश होते हैं।

शरीर की वाह्य पदार्थों से रक्षा करने मे सहायक प्रतिरक्षी युक्तियां (Immunological Activities) भी बुढापे का मुख्य कारण हो सकती हैं। विभिन्न रोगो के जीवाणु आदि की शरीर से रक्षा करने वाले प्रतिद्रव (Antibodies) शरीर की साधारण कोशिकाओ पर ही हमला बोल देते है। इस हमले का कारण कोशिकाओ मे सूचनाओ का धुन्धला पड जाना अथवा पदार्थों का परिवर्तित हो जाना हो सकता है। जिससे शरीर मे स्थित प्रतिद्रव्यो की कोशिकायें बाहर पदार्थ के समान प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार कोशिकाओ का ह्रास होने लगता है। इसके साथ ही वृद्ध व्यक्तियो के शरीर मे प्रतिद्रव बनाने की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। फलस्वरूप उनका शरीर विभिन्न रोगो के जीवाणुओ के हमले का मुकाबला करने मे असमर्थ हो जाता है।

वृद्धावस्था से सम्बन्धित एक सुगम सिद्धान्त का यह स्पष्टीकरण है कि प्रत्येक जीव (Geneti ctime table) या (Genetic Clock) से युक्त रहता है। तभी तो पैतृक गुणो या वंश परम्परा के आधार पर यह स्पष्ट होता कि क्यो फल पर बैठने वाली मक्खियो का जीवन काल (Life Span) ४० दिन का होता है, गोल्डन हेमस्टर (Golden Hamester) का तीन वर्ष, कुत्तो का २० वर्ष, घोडे का ५० वर्ष, मनुष्य का १०० वर्ष और महाकाय कछुओ



(Giant tortoises) का जीवनकाल १९० वर्ष का होता है ? इसका सरल उत्तर उन-उन जातियों की उत्पत्ति विषयक गुण धर्मता (Genetic make up) अनेक शोधकर्त्ताओ का यह मत है कि प्रत्येक जीव मे (Aging genes) होते हैं जो कि उस जीव के वय की गति पर अपना नियन्त्रण रखते है। इस प्रकार आयु की अवधि का निर्धारण होता है। अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रत्येक कोशिका मे (Genetic Clock) का निवास होता है ? या किन्ही विशेष अङ्गो मे यह रहती है जो कि वृद्धावस्था की प्रक्रिया मे विशेष भाग लेते है ? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट करने हेतु वैज्ञानिको ने इस सिद्धान्त को दो भागो मे विभक्त किया है—

1. Cellular Theory
2. Pacemaker Theory.

Celluler Theory—

प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैलिक (Hayflic, 1960) ने यह मालूम किया कि उत्पन्न मानव फाइब्रो ब्लास्ट (Cultured Human Fibroblast) ह्रास होने से पूर्व सीमित काल तक ही द्विगुणित (Double) होते हैं और क्रमश वृद्ध (Sencseent) हो जाते हैं। उनमे विभक्त होने की क्षमता का नाश हो जाता है और अन्तत मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। कोशिका कितनी बार द्विगुणित हुई है, यह इस बात से सम्बन्ध रखता है कि (अ) कोशिका दाता की आयु कितनी है(आ)उस जाति आयु को दीर्घायु कितनी है।

अन्य वैज्ञानिको ने यह ज्ञात किया कि चूहो की कोशिकाये औसतन २८ बार से अधिक द्विगुणित नही होती और मुर्गी के बच्चो की भ्रूण कोशिकाये अधिकतम ३५ बार। बाद के परिणामो से यह निष्कर्ष निकला कि साधारणतया जितनी अधिक किसी जाति की आयु की अवधि (Life span) होगी उतनी ही अधिक बार उसकी कोशिका उत्पन्न (Culure) होने पर विभाजित होगी।

Pacemaker Theory—

इस बात के प्रमाण पुष्ट हो रहे हैं कि प्रतिरक्षी संस्थान (Immunological System) का क्रमिक विनाश का कारण बुढापा है। बुढापे की ओर अग्रसर मनुष्यों मे अस्थिमज्जा जनित कोशिका (Bonemarrow Derived, B cells) और थायमस ग्रन्थि जनित कोशिका(Thymus Derived, B cells) दोनों की कार्यक्षमता मे न्यूनता आ जाती है। वर्तमान समय मे इस बात के दो प्रमाण अधिक होते जा रहे है कि वय के साथ शरीर की प्रतिरक्षी कार्यक्षमता (Immunological Activities) मे न्यूनता आने का कारण थायमस जनित कोशिका के क्रियाकलापों मे परिवर्तन आना होता है।

मेक फारलेन (Hc. Farlane, Australia) ने यह सुझाव दिया कि शरीर मे थायमस ग्रन्थि ही Biologicol Clock है और वही यह निर्धारण करती है कि हम कितने शीघ्र बुढापे की ओर अग्रसर हो रहे है। यह मत नियोनाई हेफिलक के उस सिद्धान्त से समानता रखता है जिसके विषय मे उनका कहना है कि कोशिकाओं के अन्दर आभ्यन्तर कार्यक्रम (Intrinisic Programme) होता है जो कि कोशिकाओ के विभाजन को नियमित करता है। यह थायमस ग्रन्थि सारे शरीर के लिये गतिक्रम धारक (Pace Maker) के समान कार्य करेगी और इनका क्षय भविष्य मे आने वाली वह घटना होगी जो कि जीव को वृद्धावस्था की ओर अग्रसर करती है। यह बात सभी पाठको को भली प्रकार मालूम होगी कि यौवनावस्था के उपरान्त थायमस ग्रन्थि मे विनाश की प्रक्रिया प्रारम्भ होने लग जाती है।

• पृष्ठ ६८ का शेषांश

शान्तेर्म्नौम्रियते युक्तो चिरञ्जीवत्यनामय ।
रोगीस्याद्विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि मनुष्य की आयु निश्चित है बाल्यावस्था के बाद वृद्धावस्था अवश्यम्भावी है। शरीर स्वयमेव इन अवस्थाओ से बधा हुआ है। जो अपरिहार्य है, किन्तु जरावस्था एव शरीर की नलिकाविहीन ग्रन्थियो व नाडीवह सस्थानो के कार्यो को रसायन सेवन के माध्यम से अधिक समय तक सचालित कर आयुष्य को अधिक दिनो तक स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है।

आलोच्य ग्रन्थ—

(१) ह्यूमन फिजियालोजी (सी सी चटर्जी)
(२) चरक सहिता—(३) शार्ङ्गधर सहिता—
(४) शरीर क्रिया विज्ञान एव अन्य ग्रन्थ।

—श्री भृगुनाथ पाण्डेय मौलिक सिद्धान्त विभाग
चि० वि० सस्थान, का० हि० वि० वि०, वाराणसी।

जरा प्रतिषेध सम्भव है या नहीं?

श्री सिद्धिराज शर्मा एम० एस० ए० एम०
श्री त्रिलोक चन्द्र जैन ए० एम० एम० एस०
शल्य शालाक्य विभाग—आई पी जी.टी एण्ड आर., गुजरात आयुर्वेद यूनिवर्सिटी, जामनगर।

——×——

जरा का प्रतिषेध तथा आयु की अभिवृद्धि संभव है कि नहीं ये दोनो प्रश्न सदा से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन दोनो प्रश्नो के सन्दर्भ मे विभिन्न वैज्ञानिको एव अन्वेषको के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं तथा जहाँ तक प्राच्य पाश्चात्य दृष्टिकोणो का सम्बन्ध है, दोनो मे पर्याप्त भिन्नता परिलक्षित होती है।

दीर्घायु प्राप्त करने के लिये जहाँ प्राच्य मनीषियो ने आर्ष ग्रन्थो मे अनेक विध रसायनो के सेवन के साथ-साथ योग क्रियाओ एव आसनो का भी सविस्तार विवेचन किया है, वही अनेक पाश्चात्य वैज्ञानिक निराशावादी दृष्टिगोचर होते हैं। आयुर्वेदीय सहिताओ तथा सग्रह ग्रन्थो में ही नही अपितु वैदिक वाङ्मय तक मे आयु वृद्धि की अनेक समावनायें उल्लिखित हैं। अनेक स्थलो पर तो शत, सहस्र, दश सहस्र, एव अमित आयु तक की प्राप्ति का उल्लेख पाया जाता है।

अधिकाश पाश्चात्य विचारको का मत तो यह रहा है कि आयु की वृद्धि की जा सकनी असभव है। इस विचारधारा की पृष्ठभूमि मे विभिन्न प्रयोगात्मक परीक्षणो की असफलतायें विद्यमान रही हैं। इन परीक्षणो एव असफलताओ पर व्यङ्गात्मक टिप्पणी करते हुए डा० एलेक्सीस् केरेल ने लिखा है कि "जीवन मापन के आधुनिकतम साधनो के प्रचुर मात्रा मे विद्यमान होने पर तथा सर्व-साधन-सज्जित चिकित्सा निष्णातो द्वारा नवीनतम चिकित्सा सुलभ होने पर भी मनुष्य की आयु मे एक दिन की भी अभिवृद्धि नही की जा सकी हैं। तथापि उन्होने स्वय इन असफलतात्मक एव निराशाजनक परिणामो के मूल मे प्रयत्नापरिशुद्धता एवं प्रयत्नापरिपूर्णता को ही कारणभूत माना है तथा स्पष्ट ही आयु की अभिवृद्धि की जा सकती है, इसे भी स्वीकार किया है। इनके अतिरिक्त पीटर स्कीमिट, केनेथ वोकर, रैनशो, बर्नार्ड होल्लेडर, मोरेस गेम्बर्ट आदि अद्यतन पाश्चात्य विचारको तथा मेचीबीकोफ, ब्राउन सिक्वर्ड, एव वोरोनोफ आदि अन्वेषकों ने आयुष्य की अभिवृद्धि हेतु अनेक विध प्रयोगात्मक अध्ययन कर यह अभिप्राय व्यक्त किया है कि मानव जीवन की अवधि दीर्घ की जा सकती है।

प्राच्य मतानुसार जीवन-मर्यादा-अभिवृद्ध्यर्थ जीवनीय वर्ग, सत्वगुण भूयिष्ठ पदार्थों के उपयोग एव सत्वगुणाभिवर्धक विशिष्ट आहार, विहार एव आचार का सेवन अभीष्ट है जबकि पाश्चात्य विचारधारा मुख्यतया प्रजनन ग्रन्थियो एवं तदन्त स्रावो से सम्बन्धित रही है। ब्राउन सिक्वर्ड, वोरोनोफ, और पीटर स्कीमिट प्रभृति विचारक एव अन्वेषक इस विचारधारा के पोषक, प्रचारक एव प्रवर्तक रहे है। इनमे मुख्यतया आटोट्रान्स्प्लान्टेशन, हिटरोट्रान्स्प्लान्टेशन, वासोलिगेचर, डायथर्मी, कोटिंग, प्रजनन ग्रन्थिस्वरस, प्रजनन ग्रन्थिसार गुटिका, प्रजनन ग्रन्थिसार सूचिवेध एव विद्युत चिकित्सा सदृश चिकित्सा के विविध प्रकार प्रचलित हैं।

अन्त स्राव सिद्धान्त के अतिरिक्त दो इतर विचार धारायें भी दीर्घजीवन प्राप्ति हेतु पाश्चात्य जगत मे प्रचलित रही हैं। इनमे प्रथम विचारधारा के अनुसार वार्धक्य विभिन्न प्रकार के द्वैतीयक प्रकार के विषो के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है तथा पाचन सस्थान की विकृति इसमे प्रमुखतया कल्पित की गई है। तदनुसार मेचीनीकोफ ने तक्र के भूरी प्रयोग को जरा निवारक एव आयुवर्धक के रूप मे सूचित किया हे। द्वितीय विचारधारा के अनुसार पोषणाभाव वृद्धावस्था का जनक है अत. पर्याप्त पोषक पदार्थ व्यक्ति को मिलते रहे तो उससे जरा का निवारण भी हो सकता है तथा जीवन भी दीर्घ हो सकता है। दर्लोस्की नामक वैज्ञानिक ने प्रोटोफार्म

थरैपी में पोषणार्थ गोमूत्र के क्षार का प्रयोग सूचित कर लिया है कि इसके द्वारा मनुष्य की आयु बढ़ाई जा सकती है। इसके प्रयोग के अतिरिक्त कतिपय पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने बोगोमोलेट्स सिद्धान्त को भी उद्धृत किया है, जिसके अनुसार रोग प्रतिरोध क्षमता वृद्धि के लिये विशिष्ट नासिका रूप प्रतिविष का अन्त. शरीर में प्रविष्ट कराने का विधान है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बाह्य संक्रमणों से अप्रभावित रहकर दीर्घ जीवन को प्राप्त कर सकता है। इसी सन्दर्भ में एक भारतीय वैज्ञानिक डा० सोहनसिंह द्वारा शरीर पर गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी प्रभावों का अध्ययन कर यह प्रतिपादन किया गया है कि यदि शरीर को विपरीत गुरुत्वार्पण में रखा जाये तो वृद्धावस्था विलंबित हो जाती है तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति भी हो सकती है। अमेरिका के डा० रोबर्ट सेयर्स के नवीनतम अध्ययन से यह प्रमाणित हुआ है कि यदि मनुष्य अपना शरीर का तापमान १-२ अंश स्थायी रूप से कम करे तो जरा का प्रतिषेधकर आयु की वृद्धि कर सकता है। शारीरिक तापमान की १-२ अंश की कमी से शरीर की क्रियायें मंद हो जायेंगी अत अंगों को अधिक जीने का समय मिलेगा।

उपर्युक्त विवरणों के आलोक में यदि आयुर्वेदीय रसायन विज्ञान का अध्ययन करें तो यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार सेयर्स ने जरा प्रतिषेध के रूप में शारीरिक तापांश को न्यून करना सूचित किया है, ठीक उसी प्रकार आयुर्वेदीय रसायन के सभी सौम्य गुण व शीत-क्रियायें भी तापांश को स्थायीरूप से न्यून करने वाली परिलक्षित होती है। इस प्रकार आयुर्वेदोक्त रसायन एवं सेयर्स के विधि भिन्नता होते हुए भी कार्य में समानता देखी जा है। इस रसायन शब्द के लिये नव्य विज्ञान में रेजुविनेशन, आल्टरेशन, यूथपिजर्वेशन एवं रेस्टोरेशन आदि विभिन्न संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है।

आयुर्वेदीय मनीषियों ने रसायन प्रयोगार्थ जान्तव द्रव्यों के प्रयोग का सर्वथा निषेध किया है। जो कुछ भी रेतस खण्ड आदि का प्रयोग बतलाया है, वह तो स्पष्ट ही वाजीकरण के प्रसंग में ही उद्दिष्ट है। दूसरी ओर पाश्चात्य विचारधारा ८० प्रतिशत प्रजननग्रन्थियों एवं तदन्तःस्रावों पर ही आधारित है। प्रजननग्रन्थियों एवं तदन्तःस्रावों का प्रयोग 'सामान्य वृद्धिकारणम्" सिद्धान्त के अनुसार ही प्रभावकारी भी होता है। जबकि रसायन प्रयोगार्थ व्यक्ति में सामान्यतया जिस आचार रसायन का निर्देश किया गया है वहाँ "निवृत्तमद्यमैथुनम्" आदि वचनों द्वारा स्पष्ट रूप में ब्रह्मचर्यपालन एवं कामोत्तेजना के निग्रह का संकेत किया गया है। अतः प्राच्य पाश्चात्य विचारधारा में यह अन्तर अत्यधिक महत्त्व का है। इसी प्रकार स्वयं डा० एलेक्सिस कैरेल ने भी "रेजुविनेशन" इस पद का एक अभिप्राय, दैहिक गुणोपभोग-सामर्थ्य-वृद्धि के रूप में सूचित किया है। एक तथ्य यह भी है कि रसायन का प्रयोग एककालिक एवं चिरकालावस्थायी प्रभाव हेतु किया जाता है, जबकि रेजुविनेशन पुनः पुनः प्रयुक्त किया जाता है, तथा इसका प्रभाव भी अल्पकालावस्थायी होता है।

जहाँ तक जरा निवारण अथवा जरा प्रतिषेध का प्रश्न है, यह सत्य है कि जरा प्रतिषेध सम्भव है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि व्यक्ति अनेक समस्याओं एवं विषमताओं के कारण अकाल में ही व्याधिग्रस्त होकर असमय में ही जर्जरित हो जाता है। यदि व्यक्ति इन समस्याओं एवं विषमताओं से निर्मुक्त होकर शास्त्रोक्त ऋतुचर्या, दिनचर्या, एवं रात्रिचर्या के नियमों का अनुपालन एवं आचार रसायन का अनुशीलन करते हुए सद्वृत्त का अनुपालन करे तो निश्चय ही अकाल जरा का प्रतिषेध होकर आयु की भी वृद्धि हो सकती है। इसी बात को युक्तिसङ्गत एवं विस्तृत विवेचन के साथ आचार्य चरक सुश्रुत, एवं वाग्भट्ट प्रभृति महर्षियों ने रसायन विज्ञान के सन्दर्भ में दर्शाया है। इसे अनागत जरा प्रतिषेध के रूप में स्वीकृत किया गया है। आयुर्वेद दृष्ट्या तो रसायन उस प्रक्रिया विशेष का ही नाम है, जो जरा रूपी व्याधि की अथवा जरा और व्याधि की विध्वंसक होती है। इससे स्पष्ट ही यह ध्वनित होता है कि आगत जरा का भी प्रतिषेध किया जा सकता है।

संहिता ग्रन्थों में रसायन के विविध स्वरूपों का विस्तार से उल्लेख पाया जाता है। उनमें से मेध्य, केश्य, बल्य, आयुष्यकर तथा जरा प्रतिषेधक आदि का क्रमश अध्ययन करे तो प्रतीत होगा कि इनमें से कोई अनागत जरा का प्रतिबन्धन करने की क्षमता का सूचक है तो कोई आगत जरा के प्रभावों को भी न्यून करने की क्षमता से युक्त है। उपर्युक्त शास्त्रीय कथनों, प्रमाणों, एवं प्रयोगों के आधार पर यह तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि अनागत जरा का प्रतिषेध एवं प्रतिबन्धन महदंश में सम्भव है जबकि आगत जरा के प्रभाव को भी स्थगित किया जा सकता है। इसको चरक ने वय स्थापन शब्द से अभिहित किया है।

शारीरिक अन्तःस्राव एवं वृद्धावस्था

वैद्य श्री वेणीमाधव अश्विनी कुमार शास्त्री

प्रोफेसर एव विभागाध्यक्ष--शासकीय आयुर्वेदिक कालेज, ग्वालियर [म० प्र०]

— —×— —

शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, ग्वालियर के वरिष्ठ प्राध्यापक एव विभागाध्यक्ष आचार्य श्री वेणीमाधव अश्विनी कुमार जी शास्त्री आयुर्वेदीय शास्त्रो के मर्मज्ञ एव आर्षग्रन्थो में छिपे रहस्यो के कुशल उद्घाटक हैं। आप जयपुर के सुयोग्य स्नातक एव जामनगर के एच० पी० ए० होने के साथ-साथ संस्कृतज्ञ हैं। चरक पर आप का विशेष अनुशीलन है। हमारे विशेष आग्रह पर आपने विशेषांक हेतु लेख प्रेषित किया है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं।

'शारीरिक अन्त.स्राव एव वृद्धावस्था' शीर्षक इस लेख में आपने वाल्य-युवा एव वृद्धावस्था में कफ-पित्त एव वायु का प्राधान्य वताते हुए इनसे ही अन्त स्रावो का सम्वन्ध स्थापित किया हे जो वहुत ही महत्वपूर्ण एव उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान मे आयुर्वेद के अवतरण के लिए प्रयोजनोद्देश रूप मे कायचिकित्सा कुल के आर्ष प्रमाण ग्रन्थ वर्तमान चरक सहिता मे महर्षि अग्निवेश की प्रयोजन जिज्ञासु मनीषा की तृप्ति हेतु सर्व प्रथम ही "दीर्घञ्जीवितीय" प्रकरण से आरम्भ वर्णन किया है। यही दीर्घजीवनोद्देश्य आगे चलकर दो प्रयोजनो के रूप मे विकसित हुआ—

१—स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्

२—आतुरस्य विकारप्रशमनम्

—च० सू० ३०/२६

उक्त दोनो उद्देश्यो की पूर्ति हेतु त्रिस्कन्ध वर्णन परक आयुर्वेद क्रमश आवश्यकता के अनुरूप अष्टागो के रूप मे विकसित हुआ। इन आठो अङ्गो का कार्मुक सवन्ध शरीर+इन्द्रिय—स्व—आत्मा=सयोग रूप जीवन या नित्यग आयु के साथ निर्धारित किया है। यथा—

शरीरेन्द्रिय सत्वात्म सयोगो धारिजीवितम् ।
नित्यगश्चानुवन्धश्च पर्यायैरायु रुच्यते ॥

—च० सू० १/४२

इस सूत्र मे आयु को अनुवन्ध रूप कहा है तथा विमान स्थान मे पुन भगवान आत्रेय ने दश विध परीक्ष्य भावो मे भी "अनुवन्धस्तु खल्वायुः" —च०वि० ८/८४ मे निरूपित किया है। आयु को अपरापर शरीर सयोगत्वात् अनुवन्ध पर्याय से आयुर्वेद मे गृहीत किया है (चक्रपाणिदत्त)। इसका तात्पर्य यह है कि जन्म से मरण पर्यन्त शरीर की अपरापर स्थिति का सयोग वना रहना ही आयु का वाचक हे। आयु के परोक्ष्य स्वरूप का वर्गीकरण करते हुए भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने कहा है कि—

कालप्रमाणविशेषापेक्षिणी हि
शरीरावस्था वयोऽभिधीयते ।
तद्वयो यथास्थूल भेदेन त्रिविध—
वाल — मध्य — जीर्णमिति ॥

तत्रवालम् [वाल्यावस्था आधुनिक तरुणावस्थासहित]—

अपरिपक्वधातुमजातव्यञ्जन सुकुमारमक्लेशसहम-सम्पूर्णवल श्लेष्मधातुप्राय आषोऽषवर्षं, विवर्धमामधातु-गुण पुन प्रायेणानवास्थितसत्त्वमात्रि शद्वर्षमुपविष्टम् ।

आयुर्वेदज्ञो की वाल्यावस्था जन्म से १६ वर्ष तक तथा ३० वर्ष पर्यन्त मानी गई है। इस अवस्था मे शरीर धातु-सौष्ठव अपूर्ण एव अव्यक्त रूप मे होता है तथा श्लेष्म-

धातु (प्राकृत तु बल श्लेष्मा) च० सू० १७/११७ प्राय होती है। सत्त्वकी अव्यवस्थितता के कारण ज्ञानावयव व अपूर्ण एव वर्द्धनशील धातु गुणवत्ता इस आयु की १६ से ३० वर्ष तक मर्यादा कही गई है।

मध्य पुन'—

[मध्यावस्था—आधुनिक वृद्धावस्था सहित]समस्वागतबलवीर्यपौरुषपराक्रमग्रहण धारणस्मरणवचनाविज्ञान सर्वधातु गुणंबलस्थितमवस्थितसत्त्वमविशीर्यमाणधातुगुर्णं पित्तधातु प्रायमा षष्टिवर्षमुपदिष्टम्।

मध्यावस्था मे ३० वर्ष से ६० वर्ष की मर्यादा गृहीत की गई है। इसमे सत्त्व विकास पूर्ण एव सर्व धातु गुणवत्ता होकर क्रमश विशीर्यमाणधातुगुणवत्ता आरम्भ हो जाती है। यह अवस्था पित्त धातु प्राय होती है। शारीर धातुकाओ का परिपूर्ण विकास मात्रा एव गुण भवेन होकर पित्त धातु प्रायता के कारण ईषद् विशीर्णन (Catabolism)भी आरम्भ हो जाता है। इसीलिए धातुविशीर्णन (Catabolic Process)को रोकने के लिए दीर्घजीवन की आकाक्षा से भगवान आत्रेय के अभयामलकीय रसायन पाद मे रसायन सेवन का यही काल निर्दशित किया गया है। रसायन का श्रेष्ठफल वाल्यकाल से ही मिलता है। इतना यौवन मे नही तदापेक्षया वार्धक्य मे तो अतिन्यून फल लाभ होता है। इसीलिए चक्रपाणि ने कहा है—

पूर्ववयाही मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम्॥
—च० चि० १/२ टीकाया चक्र.

इस प्रसग मे पूर्ववय। वाल्य ३० पर्यन्त एव मध्यवय ३० मे ६० पर्यन्त रसायन सेवा का काल कहा है। यही रसायन क्रम शारीरिक अन्त स्रावो से सम्बन्ध स्थिर कर दीर्घायु एव अजरत्व की प्राप्ति कराता है। क्रमानुसार स्पष्टीकरण किया जायगा।

अत परम् [जरावस्था]—

हीयमान धात्विन्द्रिय वलवीर्य पौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरण वचनविज्ञान भ्रश्यमानधातुगुर्णं वायुधातुप्राय क्रमेण जीर्णमुच्यते वर्षशतान्तम्। —च० वि० ८/१२४।

हीयमान धातु गुण सम्पदावाली ६० से १०० वर्ष तक की इस मर्यादा मे सम्पूर्ण शारीर धातु, गुण, मात्रा एव कर्मण्य हीन होते रहते हैं तथा शारीर कर्म भी अवस्थित हो जाते हैं। यहा आयुर्वेदोक्त आयु मर्यादा वर्णन से यह भलीप्रकार स्पष्ट है कि माडर्न फिजियालोजी शारीर क्रिया विज्ञानानुसार जो कार्य अन्त.स्रावो से सपन्न होना मानता है वे ही सभी कार्य आयुर्वेदोक्त आयुस्त्रयी मे वर्णित क्रमानुसार क्रमेण कफ-पित्त-वात के सहज शारीरिक कर्म रूप मे प्रतिपादित हैं। कफ क्रम मे धातुओ का वर्द्धनशील क्रम-पित्तक्रम मे धातुओ का सम्पूर्ण गुण क्रम एव यत्किञ्चित् विशीर्णन आरम्भ हो जाता है। वातक्रम मे धातुओ का शीर्यमाण (Decay) क्रम निरन्तर होता रहता है। उत्कृष्ट धातुवर्द्धन क्रम मे अन्तःस्राव पूर्णतया कार्मुक रहते हैं। सम्पूर्ण धातु क्रम मे अन्त स्राव पूर्ण मात्रा मे शरीर मे पाये जाते हैं तथा अविशीर्यमान क्रम से शीर्यमाण क्रमावस्था मे अन्त.स्राव हीनगुण हीनमात्र एव पूर्णतया लुप्त प्रात. हो जाते हैं। इस प्रकार वृद्धावस्था का सहज सम्बन्ध आयुर्वेदानुसार अन्तःस्राव प्रणाली से स्थिर हो जाता है। वह क्रमिक निरूपण केवल मात्र आयुर्वेद के आयु वर्गीकरण क्रमानुसार है।

अन्तःस्राव विकृतियां—

आयु वर्गीकरण के अतिरिक्त भी अन्त स्राव का वार्धक्य से सम्बन्ध निरूपित करते हुए भगवान आत्रेय ने अन्त'स्रावो की न्यूनता या अधिकता (आयुर्वेदोक्त दोष क्षय वृद्धिजन्य वीज-वीजभाग वीजभावना वयव विकृति) च० शा० ४।३१ सम्बन्धी विकृति के परिणामस्वरूप उत्पन्न आठ प्रकार के शरीर रचना एव क्रिया विकारो को अरिवल प्रवृत्त-जन्म वल प्रवृत्त काय विकृतियो के रूप मे च० सु० १९ मे अष्टौनिन्दितीय रूप मे वर्णित किया है। इनमे उल्लेखनीय हैं—

१ अतिदीर्घ, २ अतिह्रस्व-पोपणिका स्राव विकृति
१ अतिलोमा, २ अलोमा-अण्डकोषीय स्राव विकृति
१ अतिकृष्ण, २ अतिगौर-त्वचा के रजक स्राव एवं अन्य स्राव विकृति

१ अतिस्थूल, २ अतिकृश-चुल्लिका स्राव अधिवृक्क स्राव विकृति

रसायन फल एवं परिभाषा—

इस प्रकार उक्त तीनो वयो भेदो की क्रिया शारीरिक स्थिति एव प्रकृति निर्माण कालीन दोषज रचना विकृतियो के परिणामो के अनुसार ही आयुर्वेदज्ञो ने रसायन चिकित्सा का आविष्कार किया था। रसायन चिकित्सा के लाभों का वर्गीकरण करते समय महर्षि चरक ने स्पष्ट किया है कि—दीर्घायु, स्मृति, मेघा, आरोग्य, वयरतारुण्य, प्रभा, वर्ण, ज्वर की उत्तमता, देहबल, इन्द्रियबल,

वार्क्पद्धि, लोकवन्दनीयता, कान्ति रसायन द्वारा प्राप्त होती है। —च० चि० १/७

उक्त रसायन फलादेश मे दीर्घायु से इन्द्रियबल पर्यन्त सभी शारीर भाव रचना क्रियात्मक दृष्टि से वृद्धावस्था के प्रतिबन्ध व उपाय रूप मे ही स्पष्ट है। इनमे भी तरुणं-वय शब्द से तो निश्चय ही वार्द्धक्य को पूर्णत प्रतिबन्धन (Prevention) करने की क्षमता रसायन कर्मो मे दी गई है। इसीलिये रसायन की संक्षिप्त परिभाषा निरूपण करते समय च० चि० १/८ पर महर्षि चरक ने "लाभोपायो हि शस्तानां रसादीना रसायनम्" सिद्धान्त मे वय प्रभाव-कृत शिथिल धातु संहनन को दूर करने की क्षमता रखने वाले प्रशस्त गुण रस रक्तत शुक्रोज पर्यन्त धातु से हनन स्थापित करने की क्षमता वाले चिकित्साकल्प को रसायन माना है। इस रसायन परिभाषा के द्वारा ही शीर्षक मे इ गित अन्त स्रावो का वृद्धावस्था से सम्बन्ध प्रत्यक्षत परिगृहीत हो जाता है।

इस प्रसग मे स्मरणीय है कि अन्त.स्राव एवं तत्सम्बन्धी रचनात्मक इकाई ग्रन्थियो के शारीर का स्वतन्त्र अस्तित्व २०वी शताब्दी के वैज्ञानिक अनुशीलन का परिणाम है अत आज से सहस्राब्दियो पूर्व के साहित्य मे इस विषय का उल्लेख आज के प्रचलित नाम एवं क्रम से न होकर तत्काल में ज्ञात एवं स्थापित तथ्यो के आधार पर हुआ था। त्रिकालद्रष्टा ऋषिगण अपने अनुसंधानक्रम (Research methodes) के आधार पर वय के तीन भेद कर उनमे होने वाले परिवर्तनो को अन्वेक्षण द्वारा स्थिर कर जीर्णवय (वृद्धावस्था) को मध्य एवं बाल वय के गुणो मे रसायन सेवन से परिवर्तन करने की क्षमता रखते थे। यह आज भी प्रत्यक्ष रूप मे प्रयोगो से सिद्ध होता है। रसायन द्वारा अन्त स्रावो के देह को वार्द्धक्य प्रदान करने वाली प्रभाव को मन्दगति एवं पूर्णत. रोकने के विशिष्ट गुण के कारण ही रसायन कर्म के दो प्रकार के प्रयोग आयुर्वेद मे वर्णित किये गये हैं। १ कुटीप्रावेशिक २ वातातपिक।

कुटीप्रावेशिक रसायन—इस क्रम मे सर्वात्मना वार्द्धक्य को अवरुद्ध कर दीर्घायु प्राप्ति के साथ-साथ अन्त स्रावो की क्रिया का नियमन किया जाता है। इसका विशिष्ट क्रम चरक संहिता मे द्रष्टव्य है।

वातातपिक रसायन—इस क्रम मे अशत. अन्त स्रावो के प्रभावो को मन्दगति बनाया जाता है अत यह क्रम सामान्य जीवन क्रम के साथ पालन किया जाता है। च्यवनप्राश, ब्राह्म रसायन, आमलकी रसायन ऐसे ही कल्प हैं जो अन्त स्रावों पर प्रभाव कर वार्द्धक्य को रोकते हैं।

वृद्धावस्था और अन्तःस्राव—

इस विषय को महर्षि चरक ने अपने अन्वय व्यतिरेक-वादी निरूपण क्रमानुसार अन्त स्रावो से वार्द्धक्य कैसे ? उत्पन्न होता है। यह पृथक-पृथक अन्त स्राव विशेष के क्रिया विज्ञान का उल्लेख करते हुए संग्रह रूप मे वार्द्धक्य क्यो ? होता है—च० चि० १। रसायन द्वितीयपाद सूत्र ३ मे स्पष्ट किया है।

ये प्रभाव समग्र शरीर धातुओं पर होते हैं परिणामत वार्धक्य होता है। इन्ही का वर्गीकरण करने पर आज विदित प्रभाव अन्त स्रावो की समग्र रचना क्रिया शारीरिक स्थिति स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है। इसी स्थिति को दूर करने के लिए पुन उक्त सन्दर्भ मे ही भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने रसायन प्रभाव का और अधिक अन्त स्रावो पर होने वाला प्रभाव स्वय के शब्दो मे ही उपस्थित ऋषि समुदाय को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

अन्तःस्राव प्रभावी रसायन कर्म—

यहाँ और अधिक स्पष्ट शब्दो मे वय स्थापन शब्द से अन्त स्राव विपरिणामजन्य वार्धक्य को प्रतिबन्धन करने का विशिष्ठ गुण रसायन मे निर्देश किया है। इसी प्रकार अनिल पित्त कफ साम्यकर गुण से भी साम्यं प्रकृतिरुच्यते के अनुसार सुख संज्ञक आरोग्य का निर्देश कर अन्त स्राव प्रभाव से उत्पन्न वार्द्धक्य को रोकने की क्षमता रसायन मे स्पष्ट की है। पुन ऐतिहासिक प्रमाण द्वारा महर्षि च्यवन द्वारा अपने शरीर मे अन्त स्रावो के विपरिणाम जनित वृद्धावस्था को इसी रसायन विधान द्वारा दूर कर युवत्व प्राप्ति-स्त्री सेवा क्षमता प्रत्यग्र शारीर धातु व्यूहन-स्थिर संहनन- इन्द्रिय प्राशस्त्य सहित अपूर्व श्रम सहनशीलता प्राप्ति का भी उल्लेख किया है।

इन कतिपय सरल संक्षिप्त एवं निर्देशक सन्दर्भो केद्वारा मैंने जिज्ञासुओ के सम्मुख आलेख शीर्षक के अन्तर्गत अन्त स्रावो का वृद्धावस्था से सम्बन्ध विषयक विषय परिचय मात्र आयुर्वेद की प्रसिद्ध संहिता चरक संहिता के अनुसार प्रस्तुत किया है। आधुनिक क्रिया शारीर मे इस विषय पर स्वतंत्र एव विशालकाय ग्रन्थ उपलब्ध हैं अत उनके अनुसार कुछ भी लिखना सापेक्ष नही था। अत केवल आयुर्वेदीय अन्वय व्यतिरेक दृष्टान्तों से ही विषय सामंजस्य प्रस्तुत कर शेष विचार गवेषुओ के लिए छोड दिया है।

वृद्धावस्था एवं जरावस्था



कविराज डा० यशपाल शास्त्री, वशिष्ठ आरोग्य मन्दिर, चन्द्र नगर, सहारनपुर [उ० प्र०]

——×——

वशिष्ठ आरोग्य मन्दिर, सहारनपुर के अधिष्ठाता कविराज डाक्टर यशपाल जी शास्त्री ने सरल शब्दो में वृद्धावस्था एवं जरावस्था में अन्तर स्पष्ट करते हुए आयु सम्बन्धी अनेक तथ्य देने पर, जरावस्था के कारण और निवारण पर प्रकाश डाला है। 'वृद्धावस्था एवं जरावस्था' शीर्षक श्री शास्त्री जी का यह लेख पठनीय, मननीय एवं उपयोगी है।

— शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

आपातत वृद्धावस्था एव जरावस्था शब्द पर्यायवाची जैसे लगते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि यह दोनो, दो भिन्न २ परिस्थितियो के सूचक है। वृद्ध का अर्थ होता है बढा हुआ, आगे पहुचा हुआ, परिपक्वता की ओर गया हुआ। ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, धन वृद्ध आदि शब्दो का प्रयोग इसी अर्थ मे किया जाता है। वृद्धावस्था एक प्रकार से एकदम प्राकृतिक घटना है, अपरिहार्य कालकृत परिणाम है, जल और मृत्यु के घूमते चक्र की एक अनिवार्य गति है। यदि व्यक्ति का जीवन प्रारम्भ से ही व्यवस्थित है, तो वृद्धावस्था जीवन यात्रा का एक ऐसा पडाव है, जिसमें कोई दु ख नही, अपितु एक सुखद अनुभूति होती है और जिस प्रकार दिन भर का थका मादा व्यक्ति निद्रा की गोद मे विश्राम करके, नवजीवन एवं नवस्फूर्ति प्राप्त करता है, उसी प्रकार वृद्धावस्था के अन्तिम चरण मे पहुच कर व्यक्ति स्वयमेव महानिद्रा के अङ्क मे चिरविश्रान्ति की कामना करने लगता है। इस प्रकार वृद्धावस्था व्यक्ति एव समाज दोनो के लिए वरदान है।

इसके विपरीत जरावस्था का अर्थ है जीर्ण शीर्ण, थका हुआ, टूटा हुआ, निराश हताश। जीवन यात्रा की टेढी-मेढी पगडडियों पर चलता हुआ व्यक्ति, जब मिथ्याहार विहार के कारण, व्याधि ग्रस्त होकर, असमय मे ही बूढा हो चलता है, उस कष्टकारक दशा का नाम जरावस्था है। जरावस्था एकदम अप्राकृतिक है, जिसमे व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिक एव नैतिक किसी भी स्तर का परिपाक ठीक से नही हो पाता। च्यवन एव ययाति की पौराणिक कथाओ मे जरावस्था का मूर्तरूप हमे देखने को मिलते हैं जिसमे हम देखते है कि दोनो ही महानुभाव शरीर से जर्जर परन्तु मन में अनेक लालसाओ का समुद्र लिए हुए मिलते है। एक ने रसायन सेवन द्वारा पुन नवयौवन पाया तथा लालसाओ को तृप्त किया तथा दूसरे ने पुत्र का यौवन उधार लेकर अपनी कामनाओ को तृप्त किया। इस प्रकार जरावस्था व्यक्ति एवं समाज दोनो के लिए अभिशाप है।

बुढापा क्यो आता है ?

ज्यो ही यौवन का बवण्डर उतरने लगता है और चालीस के पश्चात् व्यक्ति ढलने लगता है, सभी के हृदयो मे कुछ प्रश्न उठने लगते है। बुढापा क्यो आता है ? कैसे आता है ? क्या इसे किसी उपाय से टाला जा सकता है ? क्या सहस्रो वर्षो तक युवा नहीं रहा जा सकता ? आदि-आदि अनेक प्रश्न उठते है। क्योकि हम सभी चिरयौवन चाहते हैं।

आयुर्वेद वाङमय का गहरा अनुशीलन करने पर दो तथ्य प्रकट होते हैं एक यह कि जरावस्था (अकालवृद्धता) टाली जा सकती है और लगभग सारा आयुर्वेद वाङ्मय

इसी के विवेचन से भरा पड़ा है। दूसरा यह कि प्राकृतिक वृद्धावस्था टाली नहीं जा सकती। स्वस्थवृत्त तथा सद्वृत्त का सम्यक् अनुशीलन करने मे वृद्धावस्था को आनन्दपूर्ण बनाया जा सकता है। बुढ़ापा आने से रोका नहीं जा सकता, क्योंकि वह प्राकृतिक है, अनिवार्य–अपरिहार्य है। जन्म-मृत्यु चक्र की यह एक आवश्यक कड़ी है।

आयु सम्बन्धी अनुसन्धान—

बहुत प्राचीन समय से ही भारतीय मनीषियो ने आयु के सम्बन्ध मे गहरा अनुसन्धान किया है और पाया है आयु (जीवन) अनादि ह अनन्त है और इसीलिये आयुर्वेद को भी अनादि शाश्वत कहा गया है। किसी प्राणी की आयु बहुत लम्बी तथा किसी की बहुत स्वल्प होती है इस रहस्य को आज तक खोजा नहीं जा सका है। प्राणी जगत् में मक्खी ४ मास, चूहा तीन वर्ष, कुत्ता बारह वर्ष, गाय बीस वर्ष, हाथी एक सौ वर्ष, तोता १२५ वर्ष, हंस दो सौ वर्ष तथा मनुष्य ७० से १५० वर्ष तक की आयु प्राप्त करते हैं।

वनस्पति जगत् मे गेहू, धान मासमुद्ग छ सात महीने, अरहर आदि एक वर्ष, आम शीशम आदि ५० वर्ष वट पीपल एव कई प्रकार की झाड़ियां कईसौ वर्ष जीती हैं। दूर्वा दावहार मानी जाती है। आस्ट्रेलिया मे मेकोला-मिया जाति का एक वृक्ष बारह हजार वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है। भारत मे भी अक्षय वट की आयु हजारों वर्ष बताई जाती है।

प्रश्न यह है कि दीर्घ जीवन के पीछे कोई आन्तरिक तत्व कार्य करता है अथवा वाह्य परिस्थितिया? इस गुत्थी को सुलझाने के लिए वैज्ञानिको ने जो अनुसन्धान किये हैं उनसे दो प्रकार के मत प्रकट हुये हैं। एक मत यह है कि जन्म के साथ ही मृत्यु का बीज भी निश्चित हो जाता है और प्राणी ठीक अपने समय पर मर जाता है। यदि ऐसा न होता तो एक ही जगल मे एक ही जैसी परिस्थितियो मे रहने वाले प्राणी जैसे मक्खी, चूहा, शशक, हिरन, गाय, कुत्ता, हाथी, मानव, तोता, कौआ, हंस आदि अपनी निश्चित आयु मे ही क्यो मर जाते? कोई ऐसा तत्व है जो जन्म के साथ ही आयु को भी नियन्त्रित करता है। भारतीय धारणा भी इस बात का समर्थन करती है।

दूसरे प्रकार के मत के लोगो का कहना है कि यह सत्य है कि जन्म के साथ ही आयु निश्चित होती है परन्तु आयु को लम्बी या छोटी करना व्यक्ति के हाथ मे है। यदि ऐसा न होता तो सारे धर्म कर्म, पूजापाठ, अनुसन्धान आदि व्यर्थ हो जाते। तब तो चिकित्सा और चिकित्सक की भी कोई आवश्यकता न रहती। जिसकी जितनी आयु है, उससे पहले तो वह मर ही नहीं सकेगा चिकित्सा पर व्यय क्यो किया जाय। अथवा जिसने जब मरना है तो मरेगा ही चिकित्सा व्यर्थ है।

इस मत के विचारको का कहना है कि आयु को ऐसा समझिए जैसे घड़ी मे भरी हुई चाबी। जन्म के समय ही यह चाबी भर दी जाती है। अब व्यक्ति के हाथ मे है कि अपनी बुद्धिमानी से इस चाबी को ठीक प्रकार से प्रयोग करके, पूरे समय तक चलावे अथवा बीच मे ही गड़बड़ करके चाबी समाप्त कर दे।

दूसरे रूप में आयु को हम निश्चित पूँजी समझ सकते है। मान लीजिए दश व्यक्तियों को एक समान पूँजी लेकर कोई व्यापार प्रारम्भ करने को कहा गया। एक वर्ष पश्चात् इन दश व्यक्तियों मे से तीन अपनी सारी पूँजी खो बैठते है। चार के पास आधी पूँजी रह जाती है दो अपनी पूँजी को ज्यों की त्यो बनाये रखते है और एक व्यक्ति अपनी पूँजी को बढाने मे सफल हो जाता है।

इन दशों व्यक्तियो की परिस्थितियो का अध्ययन करने पर पता चलेगा, इनमे से प्रत्येक की परिस्थितियाँ भिन्न थी। इसी प्रकार आयु के विषय मे भी यही परि-स्थितिया उत्तरदायी होती हैं। कोई शीघ्र मरता है कोई रुग्ण रहता है कोई मध्यम आयु प्राप्त करता है तो कोई शतायु और स्वस्थ रहता है।

आयुर्वेद इन्ही परिस्थितियो का वर्णन करता है। घोषणा करता है कि जो व्यक्ति सद्वृत्त का पालन करेगा वह स्वस्थ सुन्दर एव चिरायु होगा। आयुर्वेद को बढाने वाला विज्ञान कहा गया है (वेदोवर्धनमायुष —च सू. १.

अकाल वृद्धता जरावस्था क्यो आती है?—

प्राकृतिक वृद्धावस्था (परिपक्व आयु जन्य वृद्धावस्था) को टाला नहीं जा सकता यह पहले ही बताया जा चुका है। अकालवृद्धता के कई कारण भिन्न-भिन्न अनुसधान



करने वाले ने भिन्न-भिन्न बताये हैं ।

(१) डा० मेटकाफू ने रूस के जार्जिया प्रान्त निवासियो के दीर्घ जीवन का अध्ययन करने के पश्चात् बताया कि वहा के निवासी दूध एव दही का अधिक सेवन करते है जिससे उनकी आतो मे शाकाणुविष सचय नही हो पाता । उनके मतानुसार जन्म के समय प्रत्येक मानव शिशु की आतों मे ऐसे जीवाणु होते है जो जीवनीय तत्व (विटामिन्स) का उत्पादन करते हैं । परन्तु ज्यो-ज्यो शिशु बडा होता जाता है त्यो-त्यो अनेक प्रकार के मिथ्या आहार खाने से उनकी आतो मे ऐसे जीवाणु पहुच जाते हैं जो अनेक प्रकार के विषो की उत्पत्ति करते हैं । आंतो द्वारा अवशोषित यह जीवाणु विष ही शरीर मे अनेक व्याधि तथा अकालवृद्धता एव अकाल मृत्यु का कारण बनता है । डा० मेहकाफ् का कहना है कि दही मे लगभग वही शाकाणु होता है जो जन्म के समय आतो मे होता है । नित्य दही सेवन करने से आत के विषोत्पादक शाकाणु मर जाते है तथा वहा पर जीवनीय तत्व उत्पादक शाकाणु भरपूर मात्रा मे उपस्थित रहते हैं ।

(२) कुछ वैज्ञानिको का मत है कि उपचय-अपचय क्रिया (मेटाबॉलिज्म) के गडबड हो जाने से अकालवृद्धता आती है ।

(३) कुछ का विचार है कि दैहिक विकारो (बॉडी एन्जाइम) की क्रिया शिथिल हो जाने से बुढापा आता है ।

(४) कुछ वैज्ञानिको का कहना है कि ज्यो ही व्याधि की प्रजनन शक्ति समाप्त होती है बुढापा शीघ्रता से आता है । अपने मत पुष्टि मे वे एक वर्षीय क्षुप (ओषध्य फलपाकान्त) तथा एक विशेष प्रकार की मछली का उदाहरण देते हैं ।

(५) कुछ वैज्ञानिको के मत से कोशिका (सेल) के केन्द्रक (न्यूक्लिअस) मे स्थित डी एन. ए तथा आर एन ए. की क्रियाशीलता की शिथिलता से वृद्धावस्था शीघ्र आती है । शिथिलता के कारण कोशिका या तो विभाजित होना ही रोक देती है या फिर बहुत ही कम आवृत्तियों मे विभाजित होती है ।

(६) कुछ वैज्ञानिको का विचार है कि हमारी प्रतिरक्षा करने वाले प्रतिद्रव्य (एण्टीबाडी) हमारे बुढापा लाने मे कारण बन सकते हैं । क्योंकि द्रव्य-प्रतिद्रव्य, प्रतिक्रिया (एण्टीजन, एण्टीबाडी, रीएग्मन) मे कई रोग उत्पन्न होते हैं, साथ ही हमारी रक्षा भी होती है । परन्तु यदि बहुत समय तक हमारे रक्त मे भ्रमण करते, प्रतिद्रव्यो (एण्टीबाडी) को प्रतिजन द्रव्य (एण्टीजन) नही मिलता तो यह स्वस्थ कोशिकाओ पर ही आक्रमण कर देती है और इस प्रकार बुढापा ला सकती है ।

(७) जीवनीय द्रव्यो की कमी से भी बुढापा शीघ्र आता है । विशेषकर विटामिन सी की कमी से । नवीन अनुसन्धानो से पता चला है कि विटामिन सी कोशिकाओं को स्वस्थ रखती है तथा बुढापा रोकने मे सहायता करती है । सम्भवत यही कारण है कि आयुर्वेद मे आमलकीय रसायन तथा च्यवनप्राशावलेह जैसे विटामिन सी युक्त योगो की प्रशसा मिलती है ।

सारांश यह है, अकाल वृद्धता अथवा जरावस्था उपर्युक्त अनेक कारणो से सम्मिलित रूप से अथवा एक-एक कारणो से उत्पन्न ऐसी अवस्था है जिसमे आनुवशिकता, आहार-विहार, देश, काल, पात्र आदि आन्तर वाह्य अनेक ज्ञात अज्ञात कारणो का हाथ रहता है ।

शतायु स्वस्थ जीवन (चिरयौवन) प्राप्त करने की कोई निश्चित प्रणाली ज्ञात न हो सकने पर भी इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आयुर्वेद सम्मत स्वस्थवृत्त एव सद्वृत्त का पालन करने वाला व्यक्ति नैरुज्यदीर्घायु प्राप्त करने मे एक सीमा तक सफल हो सकता है ।

भावप्रकाश ने अकाल वृद्धता के तीन कारण बताये हैं । एकबार खाया हुआ आहार पच जाने से पहले ही पुन कुछ खा लेना (अध्यशन) भोजन का समय हो जाने पर भी कुछ न खाना (अनशन), एव रात्रि मे भोजन न करना यह तीन कारण जरावस्था लाते हैं । यह सच भी है, अध्यशन से आमरस तथा अजीर्ण की उत्पत्ति होती है, अनशन से शरीर बल का क्षय होता है तथा रात्रि मे भोजन का जितना सुन्दर परिपाक होता है उतना दिन मे नही हो पाता ।

दीर्घजीवन तथा चिरयौवन प्राप्ति के लिए चरक ने कुछ बातें कही है, जो मननीय हैं ।

१. खानपान मे प्रकृति सात्म्य का ध्यान रखने वाला, एवं कल्याण पथ पर चलने वाला व्यक्ति किसी रोग से पीडित नही होता। उसके भावी रोग भी नष्ट हो जाते हैं। —च० सू० अ० २८ श्लोक ३४४

२ हिताहार करने वाला, एव सदाचारी जीवन बिताने वाला व्यक्ति छत्तीस हजार रात्रियो (एक सौ वर्ष) का सुख भोग सकता है। —च० सू० अ० २८ श्लो ३४५

३ शरीर की सातो धातुओ की पुष्टि कारक आहार लेने वाला तथा जीवनोपयोगी चेष्टाये करने वाला व्यक्ति सदा स्वस्थ रहता है तथा अत्यन्त सुख प्राप्त करता है। —च० नि० अ० ४ श्लोक ४६

क्या जीवन की कोई स्वाभाविक सीमा है ?

यह एक ऐसा प्रश्न है जो सभी जानना चाहते हैं। प्रकृति का साधारण सा निरीक्षण करने पर इस प्रश्न का कुछ उत्तर मिल जाता है। प्रकृति का कुछ ऐसा नियम जान पड़ता है कि जो प्राणी जितने वर्षों मे पूर्ण वयस्क हो जाता है उसकी चार गुणी मध्यम आयु तथा छहगुणी पूर्णायु हो सकती है। उदाहरण के लिए कुत्ता दो वर्ष मे पूर्ण युवा हो जाता है। इस हिसाब से २×४=८ वर्ष उसकी मध्यम आयु एवं २×६=१२ वर्ष पूर्णायु हो सकती है। गाय चार वर्ष मे युवा हो जाती है इस प्रकार १६ वर्ष गाय की मध्यम आयु एव बीस वर्ष पूर्णायु हो सकती है। इसी अनुपात से मानव भी २० वर्ष तक पूर्ण युवा हो जाता है। ८० वर्ष मानव की मध्यम आयु एवं १२० वर्ष तक पूर्णायु हो सकती है।

क्या आयु को लम्बा किया जा सकता है ?

पहले भी बताया जा चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति को जन्म के समय ही आयु की एक निश्चित पूंजी मिलती है। या कहिए कि हमारी जीवन रूपी घटिका (घडी) मे एक निश्चित चावी भर दी जाती है। अब इस पूंजी या चावी का व्यय करना हमारे हाथ मे है। यदि हम अपनी जीवन पूंजी को व्यर्थ की चेष्टाओ मे लगायेगे तो शक्ति का अपव्यय होगा और पूंजी समय से पहले ही चुक जावेगी।

योगीजन अपनी जीवन पूंजी को श्वास प्रश्वास की गति द्वारा नियमित करते है, अपने आहार विहार को नियमित करते है और इस प्रकार पूंजी का व्यय कम से कम करके उसे अधिक से अधिक समय तक चलाते हैं। हम और आप भी इस प्रकार लाभ उठा सकते हैं।

क्या रसायन सेवन से लाभ है ?

आयुर्वेद मे रसायन सेवन से कायाकल्प करने, पुन यौवन प्राप्त करने आदि का वर्णन है जिस पर अविश्वास करने का कोई कारण नही। स्व० मदनमोहन मालवीय जी का कायाकल्प किया गया था। यह तो बहुत पुरानी बात है। आज हममे ऐसे बहुत कम वैद्य हैं, यह हमारा दोष है आयुर्वेद का दोष नही। चरक के रसायन पाद मे वर्णित कुटी प्रावेशिक तथा वातातपीय रसायन सेवन सर्वांश मे सत्य है। दोष कही पर है तो हमारे वैद्य समाज की दृष्टि मे है। आज वैद्य समाज मे निन्नयानवें प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो तम्बाकू, चाय, मांस, मदिरा, डालडा, मिर्च, मसाले आदि विषैले तथा उत्तेजक पदार्थों मे से एक या एकाधिक का प्रयोग करते है।

क्या-क्या उपाय हैं अकालवृद्धता से बचने के लिए ?

(१) भोजन मे फलो, सब्जियो एव पत्रशाको का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग कीजिए। फल और सब्जिया विषो को शरीर से बाहर निकालती है।

(२) शैशव यौवन एव वृद्धावस्था का ध्यान रखकर भोजन का चयन कीजिये। यह न हो कि शैशवकाल का भोजन युवा को मिले तथा युवा का भोजन वृद्ध खाये तथा वृद्ध का भोजन शिशु को मिले।

(३) कोई भी उत्तेजक पदार्थ जैसे, मिर्च मसाले मदिरा आदि मत लीजिये।

(४) आवश्यकता से अधिक या कम मत खाइये।

(५) रात्रि मे भोजन अवश्य कीजिये क्योंकि निद्रा के कोमल अंक में भोजन का परिपाक जितना अच्छा होता है दिन भर की भाग दौड़ मे उतना अच्छा नही।

(६) कोई भी अनावश्यक अथवा अप्राकृतिक चेष्टा न कीजिये।

(७) समय का समुचित बटवारा कीजिये तथा प्रत्येक समय किसी न किसी उपयोगी एव रचनात्मक काम मे लगे रहिये।

(८) परिवार, कुटुम्ब, जाति एव राष्ट्र सबके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने की इच्छा रखिये, अधिकार की भावना त्याग दीजिये। इससे मानसिक स्वास्थ्य तथा स्वावलम्बन उत्पन्न होकर आयु वृद्धि होती है।

जरावस्था-विवेचन

कविराज डा० गिरिधारीलाल मिश्र, एम एस सी (ए), ए एम.बी एस , आयुर्वेद वाचस्पति, साहित्यायुर्वेद रत्न
प्रधान चिकित्सक- केदारमल आयुर्वेदिक होस्पिटल, तेजपुर [असम]

मनुष्य की सामान्य पूर्णायु १२० मानी जाती है तथा आर्ष ग्रन्थो मे इसका विवेचन है। ज्योतिष ग्रथो ने भी आयु सीमा १२० वर्ष मानी है।

ज्योतिष शास्त्रानुसार आयु--९ ग्रहो की विंशोत्तरी दशानुसार मानव का जीवन विकास, जन्म-मरण को प्राप्त होता है। ९ ग्रहो के दशावर्ष ग्रह—

ग्रह—	रवि	चन्द्र	मगल	राहु	वृह	शनि	बुध	केतु	शुक्र=९
दशावर्ष–	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०=१२०

वृद्धावस्था की परिभाषा—

सप्ततेस्थ्व क्षीयमान धात्विन्द्रिय वल वीर्योत्साहमहन्यहनि वलीलिपत पालित्यखुष्ट कास श्वास प्रभृति निरूप द्रवैरभिरविभूयमानं सर्व क्रिया स्वसमर्थ जीर्णागारमिवाभि वाभिवृष्टमवसीदन्त वृद्धमाक्षते।—सु०सू० स्थान ३५/२९

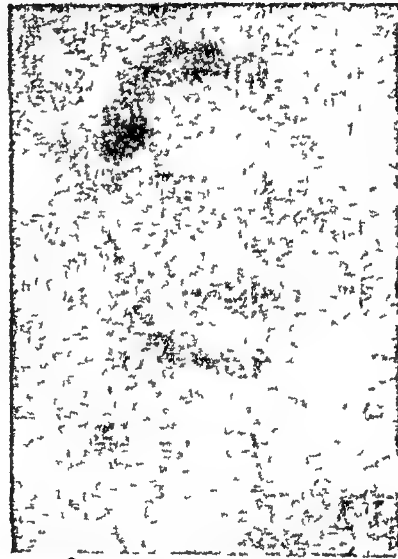
(१) ७० वर्ष के वाद रसादि धातु, इन्द्रियवल, वीर्य, उत्साह आदि दिनानुदिन क्षीण होने लगते हैं।

(२) चर्म मे वलिया पड़नेलगती हैं, सिर के वाल सफेद होने लगते हैं और गिरने लगते हैं।

(३) श्वास आदि रोगों से पीडित होकर सम्पूर्ण क्रियाओ मे असमर्थता आ जाती हैं। इस अवस्था को वृद्धावस्था कहते है।

जरावस्था क्या है ?

ससार की सभी वस्तुएं नश्वर हैं, वे क्रमश जीर्ण होते हुए क्षीणता (नाश) को प्राप्त होती है। शरीर शब्द की व्युत्पत्ति ही 'शीर्यते इति शरीरम्' अर्थात् जो नाश को प्राप्त हो वह शरीर है। महस्रो यन्त्र काम करने के पश्चात् जीर्ण, शीर्ण, घिस, पिटकर' वेकाम हो जाते हैं। प्रत्येक



फैक्टरी के गोदामो मे कितने ही खारिज कल-पुर्जे दिखाई देते हैं। उसी प्रकार शारीरिक यन्त्र भी जव काम करते-करते खारिज हो जाता है तो उसे होस्पिटल मे डाला जाता है, जहा चिकित्सक उसकी रिपेयरिंग करते हैं, पर जव यह यन्त्र एकदम वेकार हो जाता है तो कर्ममय जीवन की समाप्ति हो जाती है जिसका नाम मृत्यु है। हम जिस ग्रह या लोक मे रहते है उसका नाम ही 'मृत्यु-लोक' है, अत यहा कोई भगवान् राम बनकर आये या कृष्ण वनकर 'मृत्यु' अवश्यम्भावी है। मनुष्य एव देव, मृत्यु तथा स्वर्ग लोक मे यही महान् अन्तर है कि जहा मृत्युलोक मे काल परिणामजन्य परिवर्तन होते है। वहां स्वर्ग मे देवगण काल परिणामजन्य परिवर्तन से रहित है, अत देवत्व प्राप्ति के लिए मनुष्य जाति अनादिकाल से प्रयत्नशील रही है।

ओज और हार्मोन्स—

आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने सर्व शरीरव्यापी शक्तियुक्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया था जो शरीर मे के प्रत्येक कोष धातु ऊतक और कोष्ठाग पर प्रभावशाली क्रिया करता हो। आचार्य सुश्रुत लिखते है 'रसादीना शुक्रान्ताना धातूनां यत्पर तेजस्तत् खलु ओज तदेवबल-मित्युच्यते' इससे शुक्र पर्यन्त सप्त धातुओ का सारभूत पदार्थ ओज है जिसे वल कहा गया है तथा 'ओज शरीरे सख्यात तन्नाशात् विनस्यति' ओज के नष्ट होने से शरीर नष्ट हो जाता है। 'तद् भावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम' व ओज के अभाव मे शरीर जीर्ण (वृद्ध) होकर नाश को प्राप्त करता है अत उपरोक्त अङ्को का वार्धक्य ओज नाश का ही कारण है, आधुनिक वैज्ञानिक अन्त स्राव (Harmones) की कमी को वृद्धावस्था का कारण मानता है और आधुनिक वैज्ञानिको ने शरीर के लिए जो गुण हार्मोन्स के लिखे है आयुर्वेदज्ञो के 'ओज' से साम्यता रखते हैं।

जरावस्था क्यो ?

> वाल्ये विवर्द्धते श्लेष्मा मध्यमे पित्तमेवतु।
> भूयिष्ठं वर्द्धते वायु वृद्धैस्तद्वीक्ष्य योजयेत् ॥ —चरक

वाल्यावस्था—कफ विकारो का, युवावस्था-पित्त विकारो का, वृद्धावस्था—वात विकारो का समय है। समस्त शारीरिक गतिशीलता का आधार वायु है। जलीय तत्वो (कफ) के साथ की वायु लचीलापन को तथा आग्नेय (पैत्तिक) तत्वो से सम्मिश्रित वायु कठिनता को उत्पन्न करती है। वायु की अधिकता से शरीर मे स्नेहाश की अल्पता होकर रूक्षता वढ जाती है, फलत धमनी काठिन्य (arteriosclerosis) जो आयुर्वेदानुसार वात विकृति होती है। इस विपरिणमन को रोका जा सके, तो वुडापे को भी अवश्य रोका जा सकता है। धमनी काठिन्य ही रक्तभार वृद्धि, कैंसर, स्थूलता आदि रोगो का कारण है जो वृद्धावस्थाजन्य होने से वृद्धावस्था के स्वरूप है।

शरीर की विभिन्न प्रणालियो का कार्य शरीर के लाखो कोषाणुओ (Cells) को पोषण पहुचाना है जिनसे यह शरीर निर्मित है। शरीर के कार्यरत रहने पर रात दिन कोषाणुओ की क्षति होती रहती है जिसे आधुनिक वैज्ञानिक कैटावालिज्म (Katabolism) कहते है तथा पोषण द्वारा क्षतिपूर्ति को एनावालिज्म (Anabolism) कहते है। आहार द्रव्यो का धातुओ द्वारा २ प्रकार से प्रयोग होता है। १—जठराग्नि द्वारा पाक होकर नवीन द्रव्यो का निर्माण—प्रसादपाक (Anabolism) २—इन द्रव्यों का उपयोग करके मलो की उत्पत्ति—मलपाक (Katabolism) तथा प्रसादपाक की सम्मिलित क्रिया का नाम धातुपाक (Mataboelsm) है जो शरीर की जीवनी शक्ति-शारीरिक अग्नियो की क्रिया पर निर्भर करती है। स्वभावत ही जव शरीर मे प्रसादपाक (Anabolism) की क्रिया सक्रिय होती है तो शरीर की वृद्धि होती है परन्तु जव (Katabolism) की क्रिया सक्रिय होती है तो शरीर का क्षय होता है। वाल्यावस्था मे एनावालिज्म (Anabolism) की प्रक्रिया तीव्र होती है युवावस्था मे दोनो का सामञ्जस्य रहता है परन्तु वृद्धावस्था मे कैटावालिज्म (Katabolism) की क्रिया सक्रिय हो जाती है।

यह प्रकृति व सृष्टि का शाश्वत नियम है कि जिस वस्तु से जो द्रव्य निर्मित होता है उस आधारभूत द्रव्य मे विकार आने पर निर्मित द्रव्य मे भी विकृति आती है। "रोगस्तु दोष वैषम्यम्" शरीर मे दोषो की घटा वढी (विषमता) ही निजी रोग का स्वरूप है। आगन्तुक रोग भी प्रकृति को दूषित कर निज रूप मे परिणत हो जाते है। यह प्रकृति दूषण ही रोग का मूल कारण है तथा मानव इस प्रकृति दूषण से वच सके तो रोगो व वुढापे से वच सकता है। एक तरफ रोगोत्पत्ति का सिद्धान्त, दूसरी तरफ अदृश्य-प्राकृतिक सिद्धान्त—स्वाभाविक परि-वर्तन या विनाश। प्रकृति की प्रत्येक वस्तुओ जिनमे मानव शरीर भी है—प्रतिक्षण नाश की ओर अग्रसर है ससार की सभी वस्तुये नश्वर है—आचार्य चरक लिखते हैं—

> न नाश कारणा भावात् भावना नाश कारणम्।
> ज्ञायते नित्यगस्येव कालस्यात्मय कारणम् ॥

इस सिद्धान्त का अन्तर्भाव दर्शनो के सार्वभौम सिद्धात "अस्ति वर्द्धते विपरिणमते नश्यति" के अन्तर्गत होता है। विपरिणमन अवश्यम्भावी तथ्य है।



शारीरिक अन्तःस्राव एवं वृद्धावस्था—

शारीरिक वृद्धि, सौन्दर्य, सन्तानोत्पादन क्षमता, स्त्री पुरुष के लिंगभेद ,विभिन्न खाद्य पदार्थों का शरीर मे सदुपयोग आदि अन्त स्रावी ग्रन्थियो पर ही निर्भर है, जिस प्रकार आफिस मे कर्मचारियो से काम लेने के लिए आफिसर नियुक्त होते हैं तथा आफिसरो पर भी उच्च आफिसर होते है जिनकी आज्ञा आफिसरो एव कर्मचारियो को माननी पडती हैं उसी तरह शरीर की अन्त स्रावी ग्रन्थियो के हारमोन पर ही शरीर का व्यापार चलता है। हारमोन कोई औपधि नही अपितु शारीरिक ग्रन्थियों का एक विशिष्ट रसस्राव है जो शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओ का नियन्त्रण करता है। अन्त स्रावी ग्रन्थियां कई प्रकार की है जिनमे निम्निलिखित ग्रन्थियो का यौवन को वनाये रखने व वृद्धावस्था मे भी जवानी का जोश वनाये रखने मे वडा योगदान है—

(१) पीयूप ग्रन्थि (Pituitary gland)—मस्तिष्क के आधार तल पर स्थित यह ग्रन्थि अन्त स्रावी ग्रन्थियो में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जो टेलीफोन एक्सचेंज की तरह अन्य सभी अन्त स्रावी ग्रन्थियो पर नियन्त्रण रखती है। यौन विकास तथा प्रजनन तथा शारीरिक वृद्धि का कार्य इसी ग्रन्थि की क्रियाशीलता पर आधारित है। इसके अनेक अन्त स्राव है जिनका प्रमुख कार्य है—

(क) वृहण व पुष्टि वर्धन अन्त स्राव द्वाराशरीर की अस्थियो की पुष्टि करना।

(ख) यौन विकासक (Gonadotropic) ग्रन्थियो के विकास मे सहायक होना अत शरीर को हृष्ट-पुष्ट युवा जैसा वनाये रखना इस ग्रन्थि का कार्य है।

(२) अधिवृक्क ग्रन्थिया (Adrenal Glands)—यह ग्रन्थि शरीर के लिए अत्यावश्यक है। इसके अन्त स्राव की कमी से क्षुधानाश, भार मे कमी तथा उत्साह का ह्रासहोता है। यह हारमोन (Adrenalin) रक्तवाहिनियो मे रक्तचाप (Blood Pressure) का नियमन करता है। यही कारण है जव रोगी हृदय दुर्वलता के कारण वेचैन होता है तो उसे एड्रीनेलीन का इन्जेक्शन देते हैं।

(३) जनन ग्रन्थियां (Gonads)—पुंसत्व सम्बन्धित सारे कार्य, इन्ही ग्रन्थियो के सहारे होता है। शरीर मे युवावस्था के लक्षण, दाढी मूंछ आना, गुप्ताङ्गो पर वाल आना तथा सम्भोग क्षमता का होना इसी ग्रन्थि पर आधारित है।

(४) चुल्लिका ग्रन्थि (Thyriod Gland)—इस ग्रन्थि का अन्त स्राव थाइराक्सीन (Thyoixin) द्वारा धातु पाक की क्रिया का नियमन तथा शरीर, मन और वुद्धि की पुष्टि करना है। सिर के वालो को उत्पन्न करना तथा उन्हे काला वनाने मे सहायता देना या शरीर में उत्साह का संचार होता है।

(५) वृपण ग्रन्थियां (Tersles & Overy)— वृपण पुरुषो मे तथा डिम्वाशय स्त्रियो मे जवानी वनाये रखते है व्यक्ति जव इन ग्रन्थियो मे कमजोरी और दोप आने लगते हैं तो यौवन ढलने लगता हैं और वुढापा आने लगता है।

आधुनिक मत—

आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं कि धमनी काठिन्य (Arterio Sclerosis) तथा अन्त स्रावी रसो (Harmones) की अल्पता ही वृद्धावस्था का मुख्य कारण है। जिनकी क्षतिपूर्ति से वृद्धावस्था रुक सकती है।

(१) रूसी डाक्टर वारोनोफ का मत है—मनुष्य की अन्त स्रावी ग्रन्थियो के Harmones , अन्त स्राव की कमी हो जाने से वृद्धावस्था शीघ्र आती है। विशेपकर अण्डकोषो की क्रिया के क्षीण हो जाने का नाम वृद्धावस्था है। अण्डकोपो मे अन्त शुक्र (Testosterone) के क्षीण हो जाने से ही मनुष्य सम्भोग करने मे असमर्थ हो जाता है। डा० वारोनोफ ने 'ग्रफटिंग'क्रिया द्वारा वृद्ध को युवा वनाने का प्रयास किया है जो अधिक काल तक प्रभावी नही है। डा० वारोनोफ का सिद्धान्त आयुर्वेद के वीर्य रक्षा व ब्रह्मचर्य का समर्थक है।

(२) जर्मनी डाक्टर मेचनिकाफ का मत है कि रक्त मे Phagocytes रोगनाशक तथा कीटाणुओ का शत्रु है, अत जव तक Phagocytes की कीटाणु विनाशकारी शक्ति प्रवल रहती है तव तक मनुष्य रोगरहित एवं स्वस्थ रहता है। उनके विचार से आंत्र जीवाणु ही वृद्धावस्था लाते हैं तथा दही व मट्ठा आंत्र कृमिनाशक है।

(३) पौषणिका ग्रन्थि (Pituitary Glands), चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid Gland), आधिवृक्क ग्रन्थियां (Adrenal Glands) के हार्मोन्स की कमी वृद्धावस्था का कारण है।

वृद्धावस्था बनाम जरावस्था

मु० पो० कुण्डलपुर (दमोह), म० प्र०,

जरावस्था क्या है ? जरावस्था मे शरीर व्यापार—

६० वर्ष से १०० वर्ष तक की अवस्था को वृद्धावस्था या जरावस्था कहते हैं। इस अवस्था मे शरीर स्थित सभी क्रियाओ का ह्रास होने लगता और वायु की वृद्धि होने लगती है। इस अवस्था में मनुष्य के सर्व धातु, इन्द्रियाँ, बल और मानसिक उत्साह दिन प्रतिदिन क्षीण होते रहते हैं। वह वलि पलित खालित्य कास श्वास आदि उपद्रवों से पीडित सब कार्यों में असमर्थ होने लगता है। इसे वृद्धावस्था या जरावस्था कहते हैं।

शारीरिक अन्तःस्राव एवं वृद्धावस्था—अन्त स्रावी ग्रन्थिया शरीर के पृथक-पृथक स्थानों पर पृथक-पृथक स्थित होती हैं। इन्हें एक सन्धान मे प्रविष्ट करने का एक ही तत्व है वह यह कि अपने आप को प्राप्त रस रक्त का उपयोग कर इनमे प्रत्येक एक-एक विशिष्ट रसायन द्रव्य उत्पन्न करती हैं जो रस या रक्त के द्वारा शरीर मे प्रसृत हो निकट या दूरवर्ती अवयव पर विशिष्ट प्रकार की क्रिया करता है। इस दृष्टि से अन्त स्रावी ग्रन्थियाँ निश्चय विदित हुई हैं यथा—चुल्लिका (Thyroid), परिचुल्लिका (Parathyroid), थायमस (Thymus), अधिवृक्क (Adrenals) अग्न्याशय (Pancreas) बीजग्रन्थियाँ (Gonads), अपरा, आमाशय, क्षुद्रान्त्र।

अपने-अपने अन्त स्रावों की क्रिया से सामान्यत ये अन्त स्रावी ग्रन्थिया स्वास्थ्य को स्थिर रखती हैं पुष्टि का नियन्त्रण करती हैं एवं नाडी संस्थान को अपना कार्य करने मे सहायता देती हैं। इनकी क्रिया कभी सहसा होती हैं यथा रक्त वाहिनियाँ के अमुक समुदाय का सहसा संकोच, कभी दीर्घकालिक होती है यथा अस्थियो की मन्द परन्तु स्थिर पुष्टि जो कई वर्ष तक चालू रखती है। परिणाम की मन्दता या वृद्धि के अनुसार अन्त स्रावों की क्रिया मन्द या वेगवती हो सकती है।

वृद्धावस्था मे शारीरिक अन्त स्रावी ग्रन्थियो मे प्रमुखतया बीज ग्रन्थियाँ (Gonads) प्रभावित होती हैं। वृद्धावस्था मे पौरुषग्रन्थि के शोथ के कारण मूत्रकृच्छ्र नामक व्याधि हो जाती है जिसका प्राचीनो ने मूत्रग्रन्थि या अष्ठीला (Prostatitis) के नाम से वर्णन किया है। पेरिएण्ड्रीन की सुचीवस्ति से शोथ न्यून होकर लाभ होता है। परन्तु इसमे कभी-कभी प्रबल कामुकता होती है पुरुष बलात्कार मे प्रवृत्त होता है।

स्त्रियो मे ३०-४० वर्ष की अवस्था मे आर्त्तव प्रवृत्ति रुक जाती है उसे रजोनिवृत्ति कहते हैं। इसका कारण वार्धक्यवश अन्त फलो के क्षीण होने से उनके अन्त स्रावो का क्षरण मन्द होना है। इस मन्दता के कारण अवसादक प्रभाव न रहने से पीयूषिका के अग्रिम खण्ड के बीज ग्रन्थि प्रवर्तक अन्त स्रावो की मात्रा बढ जाती है। रजोनिवृत्ति के समय यह स्थिति सविशेष होने पर कई प्रकार के विकार कभी-कभी होते है जिनका उपचार अन्त फल के अन्त स्राव देकर किया जाता है। इनमे स्टिलवेस्ट्राल प्रमुख है।

अमर रहने की अभिलाषा—

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर दृष्टिगोचर होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही मानव को अमर रहने की अर्थात दीर्घ जीवन की अभिलाषा व्यवहृत होती चली आ रही है। आर्य संस्कृति रक्षक महाग्रन्थ वेदो मे भी इस विषय के अनेक उद्धरण मिलते है।

(१) वैदिक चिकित्सा सम्प्रदाय—यह वैदिक काल ईसवी सन् से कई हजार वर्ष पूर्व का माना जाता है। आधुनिक इतिहासकारो के मत से भी कई हजार वर्ष पूर्व

तो अवश्य ही वैदिक काल माना जाता है। इस काल मे अमर रहने की अभिलाषा की पूर्ति हेतु चिकित्सा के चार सम्प्रदाय विद्यमान थे जिनमे दो सम्प्रदायो की प्रधानता थी।

आथर्वणी आगिरसी दैवी मनुष्यजा उत ।
औषधय प्रजायन्ते यदा त्व प्राणजिन्वासी ॥
—अ० ११/४/१६

(क) अथर्वणी चिकित्सा सम्प्रदाय—आर्थवण सम्प्रदाय के चिकित्सक दैवभिषक कहलाते थे और इनको कम से कम ७०० औषधियाँ का ज्ञान रखना पडता था। ये चिकित्सा मे मन्त्र-तन्त्र जडी बूटियो का प्रयोग करते थे। इस सम्प्रदाय मे दीर्घायु की प्रक्रिया मे भी मन्त्रो एव रसायन औषधियो का व्यवहार होता था ऐसा वैदिक साहित्य के मनन अध्ययन से ज्ञात होता है।

(ख) अगिरसी चिकित्सा सम्प्रदाय—अवयवो वा इन्द्रियों मे एक प्रकार का रस रहता है जिसके कारण प्रत्येक प्राणी की स्थिति रहती है। उस रस के द्वारा जो चिकित्सा होती है वह अगिरसी चिकित्सा कहलाती है। मानसिक इच्छा शक्ति की प्रेरणा से इन रसो का अग प्रत्यगो मे सचार करने से रोग की निवृत्ति होती है। रुग्ण अगो को सम्बोधित करके निरोगता के भाव की सूचना देना तथा रोगी को आगिक शक्ति की प्रेरणा करने के लिये निर्देश इसमे मुख्य विधि है।

(ग) दैवी चिकित्सा सम्प्रदाय—जल, तेज, वायु आदि प्राकृतिक देवो के द्वारा जो चिकित्सा की जाती है वह दैवी चिकित्सा है। यह जल चिकित्सा सूर्य रश्मि चिकित्सा, वायु चिकित्सा, विद्युत चिकित्सा और वर्ण चिकित्सा आदि सब प्रकार की दैवी प्राकृतिक चिकित्साओ का उदगम स्थान हैं। इसके अलावा इसमे व्रत, हवन और यज्ञादि द्वारा भी चिकित्सा होती थी यही दैवी चिकित्सा है।

(घ) मनुष्यजा चिकित्सा—मनुष्यो द्वारा निर्मित औषधिया यथा कषाय, चूर्ण, अवलेह, भस्म और कल्प आदि प्रकार जो चिकित्सको द्वारा निर्मित होते हैं वह इसके अन्तर्गत आते है।

इस प्रकार वैदिक युग मे उपर्युक्त प्रचलित चार प्रणालियो का यही उद्देश्य था कि आयु को दीर्घ बनाया जाये। अमरत्व को प्राप्त किया जाये। इस प्रकार वैदिक युग की साहित्यावलोकन से यह स्पष्ट है कि अमर रहने की अभिलाषा आज का ही विचारणीय प्रश्न नही है बल्कि उसी काल मे व्यवहृत होती चली रही है जबकि मानव का मनोवैज्ञानिक विकास प्रारम्भ हुआ।

सहिता काल—सहिताकाल को उस काल से समझना चाहिए जबकि आयुर्वेदिक साहित्य विकसित होकर सामने आया और वेदो एव उपनिषदो के अतिरिक्त इसके ग्रन्थो का सकलन किया जाने लगा। आयुर्वेद की बडी बड़ी सहिताये लिखी जाने लगी जैसे धन्वन्तरि सहिता, आत्रेय सहिता, सुश्रुत सहिता एव चरक सहिता आदि। यह सब ईस्वी सन् से बहुत पूर्व की है। ईसवी सन् से १० शताब्दी पूर्व आयुर्वेद काल था। इस सहिता काल मे आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान जो कि अमर रहने की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए प्राप्त किया जाता है बहुत बढ चुका था। यह काल ईसवी सन् के ३-४ शताब्दी तक चलता रहा। दीर्घायु के सम्बन्ध मे सहिता ग्रन्थो मे विभिन्न चर्या परिषदें भी हुई थी ऐसा ज्ञात होता है।

सग्रह काल—इस काल को सग्रह काल इसलिए कहते हैं कि इस काल मे स्वतत्र सहिताओ की रचना मे कमी हुई। पहिले की सहिताओ का सकलन किया गया और नाम मे सहिता जोडा गया यथा —शारगधर सहिता

तीसरी शताब्दी मे वाग्भट्ट उत्पन्न हुए। इस काल से ही प्राचीन सहिताओ का सग्रह आरम्भ हो गया। श्री वाग्भट्ट विरचित अष्टाग सग्रह वा अष्टाग हृदय है। इसके अनन्तर माधवकार, शारगधर भावमिश्र ने भी अपने अपने नाम से सग्रह ग्रथो की रचना की। इस काल के लोग (नागार्जुन आदि) शरीर को अजर वा अमर रहने की प्रक्रिया मे पूर्ण प्रयत्नशील रहे अन्तर केवल इतना ही रहा कि केवल वनस्पतियो द्वारा यह कार्य नही किया जाता था बल्कि रसराज (पारद) के द्वारा यह कार्य की गतार्थता की जाती है। रसाचार्यों का एक ही लक्ष्य था यथा मनुष्य को चाहिये था वह धन, शरीर को अनित्य समझकर मुक्ति के लिए प्रयत्न करें। किन्तु मुक्ति ज्ञान से ही प्राप्त होता है और ज्ञान अभ्यास से प्राप्त होता है और अभ्यास शरीर के स्थिर रहने पर ही हो सकता है अत शरीर को स्थिर व अमर रसराज ही कर सकते है।

इस प्रकार इतिवृत्तावलोकन से यह ज्ञात होता है

कि प्राचीनकाल मे ही दीर्घायु की प्रक्रिया किसी न किसी रूप मे व्यवहृत होती रही है और देश या भाषा के अनुसार इन रसायन द्रव्यो का ही व्यवहार होता चला आ रहा है परन्तु आज के भौतिकवादी युग मे दीर्घायुष्य प्राप्त करने की यह पावन प्रक्रिया लुप्त होती जा रही है। दीर्घायुष्य प्राप्त करने की प्रक्रिया से लाभान्वित होने वालो मे एक स्वर्गीय महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी भी है अत. हमे चाहिये कि दीर्घायु या अमरत्व की प्राप्ति की अभिलाषा को बनाये रखने के लिए यथोचित आहार विहार का सेवन कर नियमित जीवन बिताये।

वृद्धो को पालनीय नियम—

१. वृद्धो को तनावरहित जीवन व्यतीत करना चाहिये। इस सदी मे तनावजनित व्याधियो का आयात प्राचीन काल की अपेक्षा कही अधिक है और इस तनाव के कारण हृदय रोग, मानसिकरोग, दमा, श्वास, मधुमेह, स्नायुरोग आदि भयानक बीमारियो की द्रुत गति से वृद्धि हो रही है। तनाव ग्रस्त व्यक्ति मे बढी हुई तनाव की मात्रा की अभिव्यक्ति क्रोध, चिड़चिड़ापन आदि के रूप में होती है। उस समय से शरीर का क्षय आरम्भ हो जाता है। मेरे विचार मे अच्छे स्वास्थ्य के लिये अच्छा आहार तथा उचित व्यायाम हमे तनाव सहने की शक्ति प्रदान करता है।

२. वृद्ध मनुष्यो को धूम्रपान, मदिरापान तथा अन्य नशीली वस्तुओ के सेवन का परित्याग भी आवश्यक है। चिन्ता का त्याग करके मानसिक सन्तुलन बनाये रखा जा सकता है। चिन्ता मुक्ति के लिये आज अर्थात् वर्तमान के बारे मे सोचा जाये बीते कल या आने वाले कल के बारे मे नही। वृद्ध मनुष्य को सँयमित जीवन ही व्यतीत करना चाहिये जिससे वे सुखी और आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकने मे सक्षम बन सके।

३ वृद्ध पुरुषो को नित्य व्यायाम यथा टहलना, तैरना, मथर गति से दौडना (जब तक सास न फूलने लगे) आदि करना चाहिये।

४ जरा को प्राप्त वृद्ध पुरुषो की मानसिक शुद्धता ही दीर्घायु का साधन है। सयम का भी महत्व कम नही है। भोजन का भी महत्वपूर्ण स्थान है। दूध वा घृत का सेवन वृद्धो को अवश्य करना चाहिये। आहार निद्रा एवं ब्रह्मचर्य ये स्वास्थ्य के उपस्तम्भ है पर शरीर टिका हुआ है। ब्रह्मचर्य की तरह अब्रह्मचर्य (सम्भोग) भी स्वास्थ्य का स्तम्भ है। स्वास्थ्य वा दीर्घ जीवन सम्बन्धी जिन विचारो का आयुर्वेद साहित्य मे वर्णन है उसे पालन करे। भारतीय आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करें जिससे उनका मन सस्कृत हो सके।

५. हमेशा व्यस्त रहे। शुद्ध पानी वा हवा का सेवन करे। ठण्डी जलवायु के लोग स्वस्थ वा दीर्घजीवी पाये जाते हैं। संयम से रहना और कार्य करने की निरन्तर प्रवृत्ति रखनी चाहिये। इससे आदमी जितना खाता है पच जाता है और मासपेशिया ठीक रहती हैं और चिन्ता दूर रहती है। प्रकृति के समीप रहना दीर्घ जीवन मे सहायक है। भोजन, योगाभ्यास, व्यायाम के द्वारा दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकता है।

६ अनुभव कीजिए कि आप दीर्घजीवी होने वाले है। यदि कोई लक्षण दीखे तो उसकी अवहेलना न करे। प्रयास कीजिए कि आप मोटेपन का शिकार न हो जाये। धूम्रपान बन्द करे। शराब छोड दे नियमित व्यायाम करें। आशावादी बने और छुट्टी मनायें।

७ यदि आहार विहार एव जीवन की सब घटनाओं मे सादगी रखी जाये तो शारीरिक वा मानसिक सुख प्राप्त किया जा सकता है। आडम्बर जटिलता कृत्रिमता और झूठे बनावटी जीवन से बचो जितना सम्भव हो उतना ही सही। (ऋग्वेद)

वृद्धो को युवा रखने वाला भोजन—

वृद्धो को स्वस्थ एव युवा रखने के लिये घी एव दूध के सेवन का विधान सर्वथा उचित है। प्रथम ग्रन्थ चरक सहिता मे हजारो वर्ष पहले ही कहा गया है—"क्षीर घृताभ्यास रसायनाना श्रेष्ठतम" अर्थात् घी और दूध का सेवन सब रसायनो मे श्रेष्ठ है। रसायन पदार्थ उनको कहते हैं जो मनुष्य को बुढापा और रोग को नष्ट कर स्वस्थ्य रहते हुये दीर्घ जीवन प्रदान करते है। आजकल प्राय लोग निस्तेज, बूढे, और दुर्बल दिखाई देते हैं इसका मुख्य कारण पौष्टिक आहार की कमी है। पौष्टिक आहार में घी वा दुग्ध मुख्य है।



वृद्धो की भोजन मे चिकनाई, शर्करा (मीठा), नमक तथा अन्य मसालो का त्याग करने से अनेक रोगो से छुटकारा मिल जाता है। चाय, काफी, मदिरा, तम्बाकू का प्रयोग शरीर के कोमल अवयवो यथा हृदय, गुर्दे, धमनिया आदि मे असमय ह्रास पैदा करता है। रोग के अनुसार नियमित भोजन योगासनो का अभ्यास तथा खुली हवा मे व्यायाम निश्चत ही रोग का शमन करते हैं और बाद मे रोग को समूल नष्ट करते हैं।

वृद्धो को शक्तिवर्द्धक चीजे जैसे—बादाम, किसमिस, सेव, अमरूद, केला, टमाटर, लौग, मुनक्का, आवला, सन्तरा, छुहारे, खजूर, अजीर, अगूर, अखरोट आदि का यथासम्भव सेवन करना चाहिए।

वृद्धो को ऐसा आहार करना चाहिए जो मधुर रस युक्त स्वादिष्ट ताजे अन्न से बनाया गया हो। जो ताजा पौष्टिक आहार है जो रोग नष्ट कर आयु बल की रक्षा करता है वही पवित्र आहार ग्रहण करना चाहिए। तीखे कसैले, बासी, बुरे और मास, मदिरा, तम्बाकू, पान, सिगरेट आदि अभक्ष्य पदार्थो से सदा निषेध रखें। ये सब घृणित हैं और आदमी के शत्रु हैं।

सुबह दूध, मध्याह्न मे सब्जी, चावल, दाल, चौकर युक्त रोटी घर की गाय के दूध से ले। थोडे से मौसमी फल, मूगफली, खजूर, नारियल का सेवन भी शक्तिवर्द्धक है। रात्रि मे यथावश्यक गौ दुग्ध सेवन करें। ऐसा भोजन करे जिसमे चिकनाई का सर्वथा अभाव हो तथा जो पर्याप्त खनिज से युक्त हो।

विश्व के प्रसिद्ध वृद्ध पुरुषो के अजर रहने का रहस्य

१. च्यवन ऋषि—प्राचीन समय मे दिव्य रसायन औषधियो का अधिक प्रचार था। तपस्वी लोग जराव्याधि नाशक इन औषधियो का अधिक सेवन करते थे। देव चिकित्सक श्री अश्विनी कुमार ने नेत्रहीन वृद्ध च्यवन ऋषि को पुन युवा बनाकर ससार को चमत्कृत कर दिया।

२ इटली के लुइगो किशोरावस्था के दुष्कर्मो के फलस्वरूप ३५-४० वर्ष की अवस्था मे मरणासन्न स्थिति मे पहुच गये थे लेकिन उन्होने धैर्य सयम और जीवन के प्रति अच्छे दृष्टिकोण के आधार पर दीर्घायु को प्राप्त किया और ८३ वर्ष की आयु मे उन्होने एक पुस्तक लिखी जिसमे स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवो का जिक्र हुआ। इसमे प्रमुख इस प्रकार है—

(१) मैं कभी पेट भर अन्न नही खाता और वही खाता हू जो मेरी रुचि के अनुकूल हो।

(२) मैं अधिक सर्दी या गर्मी मे अपने आपको बचाये रखता हू।

(३) मैं अपने आपको अधिक नही थकने नहीं देता।

(४) सोते समय मैं कोई ऐसा कार्य नही करता या ऐसा पेय नही पीता जो प्रगाढ निद्रा मे बाधक हो।

(४) मैं सदा ऐसे मकान मे रहता हू जो बड़ा ही प्रकाशमान और हवादार हो।

३ इसी प्रकार यूनानी चिकित्सक 'शुकरात' ने स्वय आहार या उपवास तथा आहार की वय के अनुसार समुचित मात्रा मे प्रयोग पर बल दिया है।

४ अमेरिका के प्रसिद्ध उद्योगपति राकफेलर ने अपनी लम्बी उम्र के उत्तरदायी घटको मे निम्न को अधिक महत्वपूर्ण माना है—

(१) मैं अपने आपको शारीरिक वा मानसिक रूप से चूर नही होने देता।

(२) दिनचर्या अनियमित नही होने देता।

(३) मुझे अपनी प्रकृति पर पूर्ण अधिकार है। क्रोध, शोक, निराशा आदि मुझ पर अधिकार नही रखते।

(४) मैं पूर्ण शाकाहारी हू तथा मदिरा आदि का सेवन नही करता।

५ सन्त विनोवा भावे उम्र ८५ वर्ष का भोजन अत्यन्त सादा है। वे प्रतिदिन ८० ग्राम दुग्ध एव अन्य मौसमी फलो का सेवन कर दीर्घायु प्राप्त कर रहे है। वे कट्टर गाधीवादी हैं। अन्य गाधीवादी व्यक्तियो की जन्म तिथिया इस प्रकार हैं—

१. श्री प्रफुल्ल चन्द्र घोष—२४ दिसम्बर १८८१—८६ वर्ष
२ श्री मोरार जी देसाई—२६ फरवरी १८९६—८४ वर्ष
३ श्री जी बी. कृपलानी—सन् १८८८— ९२ वर्ष
४. श्री विनोवा भावे—१७ दिसम्बर १८९५—८५ वर्ष
५. श्री प सुन्दर लाल—१८८६ —९४ वर्ष
६ श्री काका कालकर—१ दिसम्बर १८८५—९४ वर्ष
७. श्री गुलजारीलाल नन्दा—४ जुलाई १८९८—८२ वर्ष

[illegible] श्री राजगोपालाचारी—१[illegible]—१९७२—९३ वर्ष
[illegible] शाह खान—१८९०—९० वर्ष
१[illegible] श्री वियोगी हरि—१८९६ — ८३ वर्ष

[illegible] अर्थात् गांधी जीवनादर्श सादा जीवन उच्च विचार का पालन करके दीर्घायु को प्राप्त किया जा सकता है ।

६. मेरिया नामक एक विश्वविख्यात महिला के शब्दों मे धूम्रपान वा शराब न पीना वा खूब शारीरिक परिश्रम करना ही दीर्घायु का रहस्य है । रात्रि मे जल्दी सोना व प्रातःकाल जल्दी उठना तथा अविवाहित जीवन ही मेरी दीर्घायु का रहस्य है ।

७. काका केलकर जो कि ९४ वर्षीय वृद्ध हैं उनके शब्दों में मिर्च नही खाना, मसालेदार चीजो का बहिष्कार करना । चीनी न खाना, आहार की मात्रा ज्यादा न होना, सत्य एवं संयम का पालन करना, दीर्घायु का रहस्य है । केवल कामवासना विषय भोग के बारे मे ही नही बल्कि वाणी का सयम भी सयम होना चाहिये । ब्रह्मचर्य का पालन करें । ताजा पौष्टिक स्वच्छ आहार जो कि सयमित हो तथा अनुकूल शारीरिक श्रम खुली हवा का जीवन प्रसन्न मन इतना सबल हो तो मनुष्य अवश्य ही दीर्घायु होगा ।

८. उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिड़ला के शब्दो में—"कठिन परिश्रम के कारण आज तक कोई नही मरा कठिन परिश्रम ने ही मनुष्य को दीर्घायु जीवन प्रदान किया है । और मुझे अपने ढग से अपने देशवासियो की सेवा का अवसर कठिन परिश्रम से ही प्राप्त हुआ है ।

९. विश्व प्रसिद्ध ब्रिटेन का व्यक्ति हेनरी जेनकिंस (उम्र १६९ वर्ष) के अनुसार सदा अपना सिर ठण्डा और पैर गर्म रखना चाहिए । न शराब पीये न नारी के पास जाये । कच्ची प्याज खाये जल्दी सोयें प्रात शीघ्र उठे अवश्य दीर्घायु प्राप्त होगी ।

१०. श्रीमती वोल्टर जोंश को ७० वर्ष की उम्र मे भी युवती थी उन्होने अपनी दीर्घायु का रहस्य बताते हुए कहा कि—

(१) आने वाले कल की चिन्ता न करना । वह कभी आने वाला नही है ।

(२) जीवन में आमोद प्रमोद को न भूले (हर चीज को) आमोदमय रूप से देखें ।

(३) लोगो के दोष न देखें ।

(४) कोई सत्कार्य नित्य करें । दूसरो की सहायता आपके लिए भी लाभकारी है ।

(५) जब भी कोई मिले प्रसन्न मुख होकर उससे बातें करे ।

(६) जब भूख लगे तभी खाना खाना चाहिये । प्रकृति प्रदत्त पौरुष पूर्ण रूप से उपलब्ध होने वाले कुछ अन्न, फल, सब्जिया, फलो का रस और विशुद्ध दूध का सेवन करे ।

(७) प्रातःकाल उषःपान का भी बड़ा महत्व है । इससे पेट साफ रहता है । नित्य टहलना और रात्रि मे सोते समय खिड़किया खुली रहनी चाहिये ।

अजरत्व हेतु प्राणायाम या योग साधना—

शारीरिक मानसिक या आध्यात्मिक व्यायामों का समुच्चय ही योग साधना या योग है । यदि हम प्रतिदिन आधे घण्टे इन क्रियाओ के बारे में समय देकर प्रयोग करें तो निश्चय ही न केवल शारीरिक व मानसिक तनावो से मुक्त रहेंगे बल्कि व्याधियो से पीड़ित न होकर अजरत्व को प्राप्त कर लेगें । हमारे देश के विख्यात हृदय रोग विशेषज्ञ डा॰ के॰ के॰ दाते कहते हैं कि इस बढ़ते हुए हृदय रोग से मुक्ति का एक मात्र उपाय सिर्फ योग ही है । योग मानव जीवन को जीने का एक सन्तुलित मार्ग है । इसमे मात्र हठ योग नही लेना चाहिये । यम नियम और प्रत्याहार भी इसमे हैं । यदि हम किसी का कुछ बुरा नही करते तो हमे भयभीत होने का प्रश्न ही नही उठता है सत्य बोलने व भयहीन जीवन मे तनाव की गुंजाइश ही नही है । योग मात्र हमारी शारीरिक प्रणालियो को ही ठीक नही करता बल्कि वह व्यक्तियो को आध्यात्मिक दृष्टि से भी ऊपर उठाता है ।

संसार के बूढ़ों की लम्बी आयु के रहस्य

विद्यारत्न डा० प्रकाशचन्द्र गंगराड़े, बी एस-सी., एम एस-सी ए., डी.एच बी., एम ए.एम एस,

आयुर्वेद वारिधि, साहित्यालंकार डी फार्मा





डा० गंगराडे ने अपने लेख 'संसार के बूढ़ो की लम्बी आयु के रहस्य' में जहाँ अकालजन्य वार्धक्य के कारणो का संकेत किया है वहाँ कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियो का विवरण दिया है जो सुखी दीर्घायु व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे उदाहरण दिए गए हैं जिनमें वे व्यक्ति न केवल दीर्घायु ही भोग रहे हैं अपितु यौवन भी अक्षुण्ण बनाए हुए हैं। क्या उन से शिक्षा लेकर वैसा ही अपना जीवन बनाकर हम और हमारे पाठक भी इच्छित अक्षुण्ण यौवन सहित दीर्घायु प्राप्त करेंगे ? यदि ऐसा हुआ तभी श्री गंगराडे का यह परिश्रम सफल सिद्ध होगा।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

आजकल सत्तर-अस्सी वर्ष की आयु वाले कुछ व्यक्ति पैंतीस चालीस वर्ष के जवान जैसे लगते है और पैंतीस चालीस वर्ष के कुछ व्यक्ति अपनी आयु से कम से कम दस वर्ष अधिक प्रतीत होते हैं। इसका क्या कारण है ? मनोवैज्ञानिको के लिए भी यह एक चिंता का विषय बन गया है कि मनुष्य अपनी अवस्था से पूर्व बूढ़ा क्यो होने लगा है।

फ्रास के डॉक्टर तिसगे ने अपने परीक्षणो से यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य मे वृद्धावस्था जल्दी आने का एक बड़ा कारण अधिक विश्राम है। आवश्यकता से अधिक आराम स्वास्थ्य का शत्रु है।

प्रख्यात जर्मन चिकित्सक क्रिस्टोक विल्होम ने बताया कि हमारी भावनात्मक आदते ही हमे बुढापा ला देती है। यदि हम निराश या उदास रहने वाले हों तो निश्चय ही बुढापा जल्द आयेगा।

डा० एसी आईवी ने नब्बे वर्ष से अधिक आयु वाले दो हजार व्यक्तियो पर परीक्षण कर अध्ययन का यह निष्कर्ष निकाला कि उनमे अधिकाश व्यक्ति निश्चिन्त रहने वाले थे। निश्चिन्त रहने वाले व्यक्ति की वृद्धावस्था सुखद होती है बोझिल मन ही वस्तुत. असामयिक बुढापा लाता है।

एक शताब्दी पूर्व जब इतना अधिक यंत्रीकरण नही हुआ था तब मनुष्य काफी उमर तक जवान व स्वस्थ बने रहते थे लेकिन यन्त्रीकरण अधिक होने से मनुष्य अब उतना शारीरिक श्रम नही करता और इस कारण मांसपेशियाँ शिथिल होकर असमय मे ही बुढापा आ जाता है, ऐसा शरीर शास्त्रियो का कथन है।

आचार्य सुश्रुत ने लिखा है कि "व्यवायो वार्धक्यानाम्" अर्थात् मानव शरीर मे बुढापा को शीघ्र ही आमन्त्रित करने वाले सभी साधनो मे मैथुन सबसे बड़ा और प्रमुख साधन है। यद्यपि बुढापा भी कामशक्ति के ही अति प्रयोग से आता है।

डॉक्टरो का कहना है कि मनुष्य मे ४० वर्ष के बाद धीरे-धीरे शरीर पर बुढापे के लक्षण दृष्टिगोचर होना शुरु हो जाते है। जब शरीर मे न नई कोषे बनती हैं और न पुरानी कोषो की मरम्मत हो सकती है तब व्यक्ति के चर्म, शरीर और भीतरी अङ्गो मे बुढापे के लक्षण पैदा हो जाते है। कमजोरी मालूम पडती है।

अनेक लोग वृद्धावस्था मे भी अपना विवाह करते हैं क्योकि वे अपने आपको यौन क्षमता से परिपूर्ण मानते है। उदाहरण के लिए वैद्य त्र्यम्बक शास्त्री और राहुल

सांस्कृत्यायन को लिया जा सकता है। अंग्रेजी फिल्म के प्रसिद्ध हास्य अभिनेता चार्ली चेपलिन ने ७० वर्ष की अवस्था के बाद एक २२ वर्षीय युवती से विवाह किया था। अगर ये लोग इस आयु मे सक्षम हो सकते हैं तो यह स्पष्ट है कि इससे पहले की अक्षमता एक रोग है।

वारजन विवारेस निवासी पियर डिफोरवेल १२६ वर्ष का होकर सन् १८०९ तक जीवित रहा। मरते समय उसका स्वास्थ्य ठीक था और उसकी सभी इन्द्रिया अपना काम ठीक तरह से कर रही थी। उसने तीन विवाह किए और कितने ही बच्चे पैदा हुए। उनमे से तीन बच्चे ऐसे भी थे जिन्हे तीन पृथक शताब्दियों मे पैदा हुए कहा जाता है। उसकी तीसरी पत्नी १६ वर्ष की थी जबकि डिफोरवेल १२२ वर्ष का। तीसरा दाम्पत्य जीवन भी उसने प्रसन्नता पूर्वक बिताया। पत्नी को इसमे कोई कमी नही दिखाई दी। यह विवाह नौ वर्ष तक सुखपूर्वक चला और उसमे कई बच्चे पैदा हुए। ये घटना सिद्ध करती हैं कि दीर्घ जीवन ही नही यौवन को भी अक्षुण्य बनाए रहना सभव है असभव नही।

इग्लैण्ड के सर्वाधिक लम्बे समय तक शादी शुदा रहने वाले १०४ वर्षीय जो ओर्टन तथा उसकी पत्नी १०२ वर्षीय हेरियट ने अपनी ८० वी विवाह साल गिरह इस वर्ष मनाई। इस दम्पत्ति ने अपने जीवन के रहस्य को बताया कि वे धूम्रपान, मादक द्रव्य तथा झगडो से पृथक रहे।

नवचीन समाचार ऐजेन्सी पीकिंग के अनुसार १४२ वर्ष की आयु का एक व्यक्ति जिन्दा है और पूर्व केन्द्रीय चीन के एक दूरवर्ती गाव मे रहता है, जिगु-आवियान गाव जो पन्नान से ४५ किलोमीटर दूर है का निवासी वू युव-किंग अब तक तीन बार अपनी मौत के इन्तजार मे मुर्दा रखने के लिए अपने ताबूत तैयार कर चुका है। १.५६ मीटर लम्बा यह व्यक्ति ५३ किलोग्राम का है, और साईकिल चलाता है और पानी से भरे दो घडे उठाकर पहाडी रास्ते पर चढकर घर पहुचता है। वह रोज चार से पाच घटे सोता है। वह बैठा-बैठा ही सो जाता है। कभी रजाई नही ओढता।

बलगारिया शतायु लोगो का देश है। एक जनगणना के अनुसार १ लाख जनसख्या मे ५२ व्यक्ति १०० वर्ष से भी अधिक उम्र के है। इनकी लम्बी उम्र का कारण कठोर परिश्रम है। शतायुओं में से किसी को भी खास भोजन की आदत नही है। वैज्ञानिको द्वारा जांच किए जाने पर ४७ प्रतिशत व्यक्तियो ने कभी शराब नही पी है और न ही धूम्रपान किया। अन्य लोगो ने तम्बाखू व शराब का थोडा बहुत सेवन किया। यहां के लोग दही अधिक खाते हैं।

दिल्ली के वयोवृद्ध नागरिक १२० वर्षीय शंकरसिंह का कुछ समय पूर्व पहाड़गंज मे देहात हो गया। वे होम्योपैथ थे और अपने जीवन के अन्तिम दिनो तक स्वस्थ थे। दीर्घायु के लिए उनका फार्मूला था—व्यायाम, सादा भोजन, शराब व तम्बाकू से परहेज और काम करते रहना। वह पक चुकी आदतों का व्यक्ति था। उसने कभी अपनी पाच मील की सैर से नागा नही किया। वह नित्य घर से साइकिल पर गुरुद्वारा जाता और वापिस आता था। गतवर्ष तक नासिक मे उसका छोटा सा क्लीनिक था। वह नित्य बकरी का एक किलो दूध पीता था और दिन मे तीन बार तक मास खाता था। उसकी एक बेटी ८० वर्ष से भी अधिक की थी।

अब्राहम लिंकन जोकि १११ वर्ष की आयु तक जीवित रहा के नियम थे—प्रतिदिन नियमित व्यायाम, चाय काफी शराब से परहेज, दिन मे तीन बार से अधिक न खाना, चिन्ता व उलझन से दूर रहते हुए मानसिक शाति प्राप्त करना व पाचन क्रिया ठीक रखना।

सर आईसक हालउन ने फलो का अधिक प्रयोग किया। वे एक सौ नौ वर्ष तक जीये। डाक्टर फ्लैचर जो कि एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे ने १०६ वर्ष की आयु पाई जिनका कहना था कि दीर्घ आयु के लिए बेकार न बैठें, किसी कार्य में व्यस्त रहे, बुरी आदतो से बचें, चिन्तामुक्त रहे, रुचिकर भोजन करें, पूरी नीद लें, बिना भूख न खायें और भोजन ठीक प्रकार चबाकर खाये, नाक से सास लें और दात नियमित साफ करे। चाय, काफी, तम्बाकू, सिगरेट कभी न ले।

इसके अतिरिक्त प्राचीन यूनानी चिकित्सक राजी का मत है कि सभोग की अधिकता बूढे को मौत की ओर, जवान को वृद्धावस्था की ओर, मोटे को दुबले और दुबले व्यक्ति को मृतप्राय अवस्था की ओर ले जाता है। सभोग

की अधिकता से पाचन क्रिया दुर्बल हो जाती है। यौवन का नाश और बुढ़ापे के आगमन के पीछे मैथुन की अधिकता होना है। जितना कम सम्भोग किया जायगा, उतना अधिक शरीर स्वस्थ रहेगा। बिना वास्तविक कामेच्छा व स्तम्भन के बिना सम्भोग न करें।

जिस प्रकार सम्भोग की अधिकता व्यक्ति के लिए हानिप्रद है, उसी प्रकार अधिक उम्र तक सम्भोग से वंचित रहने से पागलपन, हिस्टेरिया आदि रोग हो जाते हैं। जबकि स्त्री-पुरुषो के अनेक रोगो की दवा केवल सम्भोग ही है। इसी प्रकार उचित अवसर पर सम्भोग करने से पुरुषों को सुन्दरता व स्वास्थ्य को बहुत लाभ मिलता है।

एक डाक्टर का मत है कि बुढ़ापा भीतरी अङ्गो के एक दूसरे से मिलकर सन्तुलित रूप से काम न करने का नाम है। ४० वर्ष के बाद व्यक्ति को सतर्क हो जाना चाहिए। खाने पीने के मामले मे पूरी तरह सतर्कता बर्ती जानी चाहिए। मस्तिष्क के स्वास्थ्य की ओर व्यक्ति को पूरा ध्यान देना चाहिए।

लम्बी आयु प्राप्त करने के नियम —

यहा पर हम अनेक लम्बी आयु प्राप्त करने वाले महानुभावो के सिद्धान्त, नियमो को सक्षिप्त रूप से प्रकट कर रहे हैं। आशा है, इनसे पाठको का मार्गदर्शन होगा—

१. प्रात. काल सर करे तथा कुछ व्यायाम अपनी रुचि के अनुसार नियमितता के साथ करें।

२. मु ह साफ करें, नियमित समय पर शौच जाये, ठण्डे पानी से स्नान करे।

३. जहा रहे वहा के आसपास व घर का वातावरण शात व स्वच्छ रहे तो अच्छा होगा।

४. कब्ज रहने पर तुरन्त पेट साफ करने हेतु पहल करें। अधिक समय तक कब्ज बनी रहने से अनेक रोग उत्पन्न हो सकते है।

५. जहां तक हो सके दिन में सोये। रात्रि मे जल्दी सोना और प्रात. जल्दी उठना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। देर रात तक जागना आंखो व स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

६. छींक, मल, मूत्र, उल्टी आदि के वेग को कभी रोक कर न रखें। ऐसा करने से अनेक रोगो के होने की सम्भावना होती है।

७. मानसिक बुरी आदतें जैसे ईर्ष्या करना, लालच करना, कुढना, चिड़चिड़ाना आदि से जहा तक हो सके अपने को बचायें।

८. चाय, काफी, शराब, तम्बाकू, भाँग, गाजा आदि जहा तक हो सके इनके सेवन से बचें।

९. रात मे कभी भी खाली पेट न सोयें क्योकि भूखा रहने से बुढ़ापा शीघ्र आता है।

१०. सम्भोग कम से कम करें जहां तक हो अपने पर कन्ट्रोल करें। सम्भोग के पश्चात् दूध आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन कमजोरी नही आने देता।

११. मन मे किसी प्रकार की चिन्ता, उत्तेजना न रक्खें। चिन्तामुक्त होकर घूमे फिरे, जोर से हसना चाहिए। इससे पाचन-क्रिया, रक्त-सचार और समस्त अंगो की क्रिया पर स्वास्थ्यप्रद असर पड़ता है।

१२ आलस से सदा दूर रहे, किसी न किसी कार्य मे अपने को व्यस्त रखें। कहा भी गया है 'खाली दिमाग शैतान का घर' होता है।

१३ भोजन आवश्यकतानुसार समय पर नियमित रूप से चबा-चबाकर करना चाहिए। न आवश्यकता से अधिक खाये और न ही भूखे रहे।

१४. शरीर मे मोटापा न बढने दे। मोटापे से अनेक बीमारिया घेर लेती है।

१५ 'अति सर्वत्र वर्जयेत' का सिद्धान्त हर कार्य मे ध्यान र ें।

१६ फल, सब्जियो का कच्ची मात्रा मे अधिकतर सेवन करें।

१७ मिर्च मसालेदार चटपटे भोजन से परहेज करे।

लम्बी आयु प्राप्त करने के रहस्यो को मात्र जान लेने से ही कोई फायदा नही होगा वरन् उनको पढ़कर समझकर हमे अपने जीवन मे उतारना होगा तभी हम लाभान्वित हो सकेंगे।

—डा० प्रकाशचन्द्र गंगराडे
क्वा. ६०२, एन-२, हबीबगज,
भोपाल—४६२०२४



क्या बुढ़ापे में आदमी सचमुच बूढ़ा हो जाता है?

श्री वि॰ठल दास मोदी

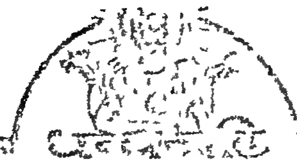
प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमुख केन्द्र आरोग्य मन्दिर गोरखपुर के संचालक श्री विठ्ठलदास मोदी एक सुयोग्य विचारक एवं अनुभवी लेखक हैं। आपने अपने लेख 'क्या बुढ़ापे में आदमी सच में बूढ़ा हो जाता है?" में यौवन एवं वार्धक्य पर सुन्दर प्रकाश डाला है। श्रम के द्वारा जिस प्रकार मनुष्य युवा बना रहता है—इसकी युक्तियुक्त व्यवस्था करते हुए आपने कुछ सरल व्यायाम बताए हैं जिनके करते रहने से आयु के कारण बुढ़ापा भले ही आए परन्तु मनुष्य बूढ़ा नहीं होता है। श्री मोदी जी का लेख पठनीय एवं उपयोगी है। —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

हममे से कौन आदमी बूढ़ा होना चाहता है? कोई नही, सभी चाहते हैं कि हम निरन्तर यौवन से आप्लावित रहें, पर क्या आपने कभी सोचा भी है कि यह यौवन आखिर है क्या? क्या यह वर्षों का जोड़ है अथवा कोई मानसिक अवस्था है। कहीं यह शारीरिक स्थिति तो नही है। नियमत- यौवन एक शारीरिक स्थिति ही है। जीवनी शक्ति स्वस्थ तन्तुजाल और लचक से भरी हुई स्थिति।

आदमी ने कितने वर्षों सांस ली है इसका यौवन से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध नही है। हम नवयुवको मे ही ऐसे अनेक व्यक्ति देख सकते हैं जो यौवन के आते न आते वृद्ध हो जाते हैं, कहना तो यह चाहिए कि वे यौवन का अनुभव ही नही करते, बचपन की देहली लांघते हैं वे एक दम बुढापे के आंगन मे पहुच जाते हैं। गरम देशो मे स्त्रिया जितनी शीघ्र युवती होती हैं उतनी शीघ्र वृद्धायें भी हो जाती हैं। हमारे हिन्दुस्तान मे तीस साल की महिला को युवती कहने के पहले दो बार सोचना पड़ता है। काम करते-करते और बच्चा पैदा करते-करते गलत आहार-विहार के कारण असमय ही प्रौढ हो जाती है। यदि उसे स्वास्थ्य वर्द्धक भोजन मिलता रहे और जल्दी-जल्दी बच्चा पैदा न करना पड़े, तो स्वास्थ्य असमय ही खराब न हो जाये। यौवन की सुरक्षा और सरक्षण मे मानसिक दृष्टिकोण का भी पर्याप्त प्रभाव पडता है किन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि सम्पूर्ण स्वास्थ्य की अवस्था हम अपने मानसिक स्वास्थ्य पर भी नियन्त्रण रख सकते हैं। यौवन सुन्दर शारीरिक स्वास्थ्य का परिचायक है और वृद्धावस्था कुस्वास्थ्य का। यौवन निश्चय ही एक अभीप्सित वस्तु है उसे पाने का हर समय प्रयास किया जाना चाहिए। ऐसे असख्य लोग हैं जो सत्तर-सत्तर साल की उम्र में भी युवकोचित शारीरिक दृढता और मानसिक स्फूर्ति से भरे रहते हैं। अपने परिवारो मे हम देख सकते हैं कि कुछ छोटे भाइयो और बहनो की अपेक्षा कुछ बड़े भाई या बहन अधिक चपल एव कार्यशील होते है इसलिए हम कह सकते हैं कि यौवन की तराजू आयु नही है और न ही उसका सम्बन्ध वंश परम्परा से है।

शरीर की स्वय चालित क्रियाओ का नियन्त्रण मस्तिष्क द्वारा होता है। हम इस नियन्त्रण की महत्ता की उपेक्षा नही कर सकते किन्तु शरीर के दुर्बल हो जाने पर मस्तिष्क मे इतनी क्षमता शेष नहीं रह जाती कि वह शरीर का सम्यक् नियन्त्रण कर सके। जहा तक यौवन की पुन प्राप्ति का प्रश्न है मन और मस्तिष्क की अपनी सीमायें होती हैं। यौवन की पुनः प्राप्ति तो शारीरिक स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति द्वारा ही सम्भव है। हमारा यौवन और यौवनोचित क्षमता का आधार मूलत शारीरिक होता है। यदि वार्द्धक्य काल मे यह शारीरिक स्वास्थ्य न्यूनाधिक रूप मे बना रहे तो यौवन भी उसी अनुपात मे बना रहता है।

हमने देखा है कि पशुओ मे यौवन काल अधिक दिनो तक अक्षुण्ण रहा आता है। इसका कारण यह है कि आयु बढ़ने के साथ उनकी शारीरिक क्षमता और सक्रियता कम नही होती। यदि मलूकदास जी द्वारा बताये गये अजगरो



या पक्षियों को छोड दे तो शायद हो कोई जानवर आराम से पडे-पड़े अपना भोजन प्राप्त कर सकता हो। मलूकदास जी के पंछी ही कहा चुपचाप बैठे अपना आहार जुटा पाते है। जगल के किसी शेर को न तो क्लर्की करनी पडती है न टेलीफोन आपरेटरी। आपने क्या कभी हाथी को कार पर चढकर घूमते देखा है? पशुओ की जीविका और क्रीड़ा दोनो ही शारीरिक श्रम से सम्बद्ध हैं। अपना आहार प्राप्त करने के लिए तथा शत्रुओ से अपनी रक्षा करने के लिए उन्हे निरंतर शारीरिक श्रम करना पडता है किन्तु सभ्यता तथा संस्कृति की प्रगति के साथ-साथ अधिकाश पुरुष और स्त्रियाँ ऐसा जीवन जीने के लिए बाध्य है जिनमे किंचित् भी शारीरिक श्रम की आवश्यकता नही पडती। सरकारी कर्मचारी, वकील, डाक्टर, व्यवसायी और न जाने कितने सारे लोगो को अपना कार्य कुर्सी पर बैठे-बैठे करना होता है। कठिनाई यह है कि ये सब लोग मनुष्य है, पौधे नही, जो एक जगह जडे गाढकर अचल रहते हुए भी प्रफुल्ल और स्वस्थ रह सकें। मनुष्य को तो शारीरिक श्रम करना ही चाहिए। बिना उसके उसकी कोई गति नही है। प्रश्न यह है कि आज के सभ्य एव विकसित (?) कहे जाने वाले वातावरण मे श्रम की यह सगति कैसे बिठाई जाये।

हमारा शरीर एक कार्यशील यंत्र होने के साथ-साथ एक रासायनिक प्रयोगशाला भी है। इसके सारे हिलने-डुलने वाले भाग मांसपेशियों द्वारा सचालित होते हैं। इन मास, पेशियों को सक्रिय एव सशक्त बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि इनसे बराबर काम लिया जाता रहे। निष्क्रियता का अर्थ है मृत्यु और क्रियाशीलता ही जीवन है। क्रियाशीलता जीवन मे सदैव विद्यमान रहनी चाहिए। बिना शारीरिक कार्य कलाप के यौवन का सरक्षण नही किया जा सकता। शरीर की मासपेशियाँ चाहती है कि बराबर उनका कुछ न कुछ उपयोग होता रहे। हम पशुओ को देखते है जो कुछ दिनो तक निष्क्रिय रह चुकने पर खूब उछलते-फादते है और दौड लगाते है। सामान्य मनुष्यो मे व्यायाम करने की प्रवृत्ति तब तक स्वाभाविक होती है जब तक उनका पुरा विकास नही हो जाता किंतु यौवन मे कदम रखते ही अधिकाश स्त्री-पुरुष व्यायाम करना भूल जाते हैं। हमारा बचपन बीतते-बीतते हम गलत मानसिक प्रवृत्तियों के शिकार हो जाते हैं। उम्र बढने के साथ-साथ आदमी गभीर होता जाता है। हम समझते है कि उछलने, कूदने, दौड लगाने के दिन बचपन के साथ ही खतम हो गये। फलत बुढापा धीरे-धीरे हमे अपने जाल मे फासता जाता है।

सामान्यत. देखा जाता है कि चालीस साल पहुचते-पहुचते स्त्री पुरुष प्राय बूढे होने लगते है। उनकी शारीरिक क्षमता क्षीण हो जाती है, मासपेशिया शिथिल हो जाती हैं और आवश्यक अग उतनी स्फूर्ति से अपना काम नही करते और चालीस साल मे ही आदमी पचास-साठ या सत्तर वर्ष का लगने लगता है। आधुनिक जीवन मे यौवन का अत्यधिक मूल्य है। आज का युग स्त्री और पुरुष दोनो से बहुत सारी मांगे करता है। इन मांगों को पूरा करने के लिए यौवन के अदम्य गुण उसे चाहिए।

हम जानते है कि इस धरती पर दुर्बल शरीर के लिए रहना एक खोखली विजय है। आप यह निश्चयपूर्वक जान सकते हैं कि जीवन के परवर्ती वर्षों मे भी यौवन को, स्फूर्ति को बनाये रखना प्रत्येक स्त्री या पुरुष के बस की बात है। उम्र बढती है तो बढने दीजिये, बुढापा आने की कोई आवश्यकता नही है। यदि आपका मन बार-बार बुढापे को पास बुला रहा है तो उसे रोकिए। उसे रोकना बहुत कठिन नही। व्यायाम के निरतर अभ्यास द्वारा शरीर का बाह्य आकार ही स्वस्थ और सुडौल नही बना रहता, आतंरिक अग भी स्वस्थ और सक्षम बने रहते है, किंतु केवल व्यायाम ही पर्याप्त नही होता, अन्य बातो का भी ख्याल करना पडता है। जीवनी-शक्ति व्यायाम के अतिरिक्त उचित भोजन उचित निद्रा और उचित पानी, धूप और हवा के प्रयोग पर निर्भर है। शरीर के उचित अङ्ग-प्रत्यङ्ग जब कडे पडने लगे तो समझना चाहिए कि बुढापा आ रहा है। बुढापे को दूर रखने के लिए जरूरी है कि लचीला बना रहे। एक उम्र के बाद शरीर की अस्थिया आदि कडी पडने लगती हैं और इस कडेपन को दूर करने के लिए व्यायाम ही एक मात्र उपाय है। व्यायाम वह झरना है जिससे निरतर यौवन का रस झरता रहता है जो इस रस को पियेगा वह कभी बूढ़ा नही होगा।

मनुष्य जाति के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह उन लोगों की प्रशंसा करती है जो थोड़ी उम्र मे ही नाम कमा लेते हैं या दुनिया को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं किन्तु दुनिया उनकी भी सराहना करती है जो जीवन के कड़वे-तीखे अनुभवो के बाद फिर से अपना खोया हुआ यौवन पा लेते है। यौवन की सुरक्षा के लिए आपको न खेल कूदों का चैम्पियन होने की आवश्यकता है और न कोई पहलवान ही। साधारण व्यायाम ही शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए पर्याप्त होते है। मांसपेशियो का कड़ा व्यायाम आवश्यक नही है। हां, मांसपेशियो के विकास मे लिए कभी-कभी ऐसे व्यायाम की जरूरत होती है। यदि कोई आदमी अपनी मासपेशियो का समुचित महत्व समझने लगा तो समझिए उसने यौवन पाने की आधी मंजिल तय कर ली। कोई भी ऐसा व्यायाम जो शरीर को लचीला बनाता है हमारे आमाशय को भी सक्रिय बनाता है। शरीर को लचीला बनाने वाले व्यायाम ऐसे होते है जिसमे शरीर को तानना, मोडना या घुमाना पड़ता हैं। इन क्रियाओ को करने से अपने आप पेट का व्यायाम हो जाता है और वह मजबूत बनता है।

व्यायाम द्वारा शरीर मे रक्त सचार की वृद्धि होती है। शरीर को लचीला बनाने के लिए जो व्यायाम किये जाते हैं वे अन्य कई दृष्टियो से भी शरीर के लिए उपयोगी होते हैं। शरीर को लचीला बनाने के लिए फलत जीवनीशक्ति की वृद्धि के लिए जो व्यायाम किए जाते हैं वे ऐसे हैं जिन्हे कोई भी सामान्य स्त्री पुरुष कर सकता है। इन हल्के-फुल्के व्यायामो को धीरे-धीरे अधिक श्रम-साध्य व्यायामों मे परिवर्तित किया जा सकता है।

व्यायाम से होने वाले लाभ कुछ ही दिनो में स्पष्ट हो जाते हैं। ये व्यायाम धीरे-धीरे बढाये जा सकते हैं। आपने देखा होगा कि लम्बी दौड लगाने वाले पहले बहुत धीमे-धीमे दौडते हैं फिर अपनी गति को बढ़ाते हैं। दौड खतम हो जाने के बाद भी दौड लगाने वाला एकदम खड़ा नही हो जाता वह धीमे-धीमे अपनी रफ्तार कम करता है। नित्य व्यायाम के साथ भी ऐसा ही होना चाहिए। वास्तव मे यौवन आगे आने वाले दिनो मे जो महत्वपूर्ण काम किये जाने वाला है उसकी भूमिका है। आगे बतलाये गए साधारण से साधारण व्यायाम द्वारा भी शरीर का सम्पूर्ण ढाचा सारी मासपेशियो और अंगों के महत्वपूर्ण जोड पूरी तरह क्रियाशील बने रह सकते हैं।

पीछे मुडिए—सीधे खडे हो जाइये, हाथ बगल में रहें। पीछे मुडते हुए हाथो को सामने कंधो को सीध में लाइए। फिर सीधे होते हुए हाथो को यथावत् कर लीजिए। दस बार मे प्रारम्भ कर धीरे-धीरे बढाते जाइये।

बैठिए—सीधे खडे हो जाइए। हाथ बगल में रहे। घुटने मोडते हुए बैठिए हाथ सिरके ऊपर ले जाइए। खडे होकर प्रारम्भ जैसी मुद्रा मे हो जाइए। आठ-दस बार से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे बढाइए।

सीढी चढिये—सीधे खड़े हो जाइए, हाथ बगल में रहे। दाहिने घुटने को जितना हो सके उतना ऊपर मोडिये। हो सके तो घुटने से छाता छू लीजिए। सामान्य स्थिति मे आकर बाये घुटने के साथ भी यही कीजिए। सारी क्रिया को दुहराइये। आठ दस बार से प्रारम्भ कीजिए।

फैंकिए—पैरो को लगभग १२ इन्च के फासले पर रखिए। फिर बायें हाथ को गस तरह घुमाइये जैसे आप कोई वजनदार चीज फेंक रहे हों। दाहिने हाथ से भी ऐसा ही कीजिए। दोनो हाथो से आठ दस बार ऐसा कीजिए।

फुटबाल खेलिये—जैसे फुटबाल खेलते समय 'किक' मारते है वैसे ही काल्पनिक फुटबाल को पैर उठाकर 'किक' मारिए। हाथों को शरीर के सामने लाकर फिर सिर के ऊपर उठाकर 'किक' मारिये। दोनो पैरो से ऐसा बारी-बारी से कीजिए।

झूलिए—सीधे खडे हो जाइये। प्रारम्भ मे हाथ सिर के ऊपर रहे। पैरो को फासले पर रखकर शरीर को इस प्रकार झुलाइए कि हाथ पैर के बीच मे आ जायें। हाथों को इस तरह भरसक पीछे ले जाइए। सामान्य स्थिति मे आकर इस क्रिया को फिर से दुहराइए। आठ-दस बार ऐसा कीजिए।

झुकिये और मुडिये—सीधे खड़े हो जाइये। पैर फासले पर रहे, हाथ बगल मे रहें। झुकिए और शरीर को इस तरह मोड़िए कि दाहिना हाथ बाये पैर का अगूठा छू सके। बाया हाथ सन्तुलन बनाये रखने के लिए सिर के ऊपर रहे। इस प्रकार बाये हाथ से दाहिने पैर का अंगूठा छूइये। बारी-बारी से पाच-छ बार ऐसा कीजिए।

अजरत्व हेतु योग-साधना

वैद्य श्री भजनदास स्वामी, प्राध्यापक—राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, पटियाला।



राजस्थानी परम्परा के विद्वान संस्कृतज्ञ एवं आयुर्वेदज्ञ श्री भजनदास स्वामी राजकीय आयुर्वेदिक कालेज पटियाला के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। आप वैद्य के साथ-साथ स्वयं एक योगी हैं और हमारे निवेदन 'पर अजरत्व हेतु योग साधना' शीर्षक लेख प्रेषित किया है जो ज्ञानवर्धक एवं उपादेय है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

योग साधन को दैवी रसायन के रूप मे माना गया है क्योंकि इसका सम्बन्ध हमसे शरीर के सूक्ष्म नाडीतन्त्र से अधिक है। यह प्रक्रिया शरीर के नाडीतन्त्र मे परिवर्तन कर तथा शरीर के सभी विकारो को शरीर से बाहर कर शरीर का सम्यक् शोधन कर रसादि धातुओ की वृद्धि का पथ प्रशस्त करता है। इसके विपरीत आसुरी प्रक्रिया मे मुख्य रूप मे भौतिक उपायो का आश्रय लिया जाता है। जो अपने स्थूल गुण की प्रधानता के कारण स्थूल तत्वों का पोषण द्वारा, विशेषकर रसादि धातुओ की वृद्धि का कार्य करते हैं जिनमे नाडीतन्त्र की प्रक्रियाओ मे परिवर्तन न होने से रसायन क्रिया मे स्थायीत्वि नही होता।

योग का सर्वमान्य लक्षण "योगश्चित्त वृत्ति निरोध." यह शास्त्रो मे स्वीकार किया गया है जिसका सीधा अर्थ है अपने नाडीतन्त्र को किसी विशिष्ट दिशा की तरफ एकाग्र करना। यह नाडीतन्त्र ही शरीर का नियन्त्रक, पोषक एव तन्त्रयन्त्र पर माना गया है। इसी के आधार पर गीता से आठ प्रकार के योग वर्णित किये गये हैं। यथा कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोगादि।

प्रस्तुत प्रकरण मे पतञ्जल योग सूत्र मे वर्णित "योगश्चित्त वृति निरोध" यही लक्षण अभीष्ट है। इसके अन्तर्गत चित्तवृत्ति के नियन्त्रण के लिए, प्राणायाम, आसन, यम, दम, नियम, धारणा, ध्यान, प्रत्याहार और समाधि आदि आठ अङ्गो का विवेचन किया गया है। इनमे से शम से प्राणायाम तक की क्रियाओ का सीधा सम्बन्ध स्थूल रूप से अजरत्व के लिए रसायन प्रक्रिया के साथ है। इसके पश्चात् की धारणा आदि प्रक्रिया अजरत्व से ऊपर उठकर अमरत्व की ओर अग्रसर करती है जिसका अवसान मोक्षोपलब्धि मे होता है।

योग साधना मे शम, दम, नियम आदि का सम्बन्ध मानसिक प्रक्रियाओ के साथ है। आधुनिक काल में (Mind) को ही मन का प्रतिनिधि स्वीकार किया गया है। गीता के अध्याय मे "ऊर्ध्वमूलमध. शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्" इसके द्वारा एक इस प्रकार के अश्वत्थ की विवेचना की गई है जिसका मूल ऊपर है और शाखायें नीचे हैं। जबकि सामान्य वृक्ष की स्थिति इसमें विपरीत नीचे मूल और ऊपर शाखायें होती है। गीता में इसका अर्थ इमन योग एव वेदो से लिया गया है किन्तु यदि इसे शरीर पर विचार किया जाए तो यह उचित प्रतीत होता है। हमारे शरीर का समग्र नियन्त्रण ज्ञानवह सूत्रो से एव क्रियावह सूत्रों के द्वारा होता है।

इनका मुख्य केन्द्र मस्तिष्क है जिसमे विभिन्न ज्ञानेन्द्रियो के मानसिक भावो के विभिन्न केन्द्र हैं। जहाँ से आज्ञा सूत्रो द्वारा क्रिया सूत्रो का परिचालन होकर शरीर की सम्पूर्ण क्रियाये व्यवस्थित रूप से निष्पन्न होती हैं। जैसे हस्त, पाद आदि अवयवो की क्रियाये तथा अन्य क्रियाये अनैच्छिक आधार पर होती हैं जैसे हृदय, मस्तिष्कादि मे।

योग इन दोनो प्रकार की क्रियाओ का नियन्त्रण कर सभी को ऐच्छिक क्रियाओ के क्षेत्र मे समाविष्ट कर देता है। अत' प्राय. सिद्ध योगी अपने सम्पूर्ण शरीर के नाड़ी

तन्त्र को अपनी इच्छानुसार क्रियाशील रखने मे समर्थ होता है और बिना औषध सेवन के केवल इन प्रक्रियाओ के द्वारा ही शरीर का शोधन, पोषणादि कार्य करता है। यही मुख्य अन्तर एक योगी और साधारण मनुष्य मे होता है। औषध सेवन के द्वारा भी अजरत्व प्राप्त करने के अनेक उपायो का वर्णन चरक संहिता के चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय मे विस्तार से मिलता है जैसे शंखपुष्पी, ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी आदि मेध्य रसायन, आवला, हरीतकी आदि एकौषध रसायन, भल्लातकादि विशिष्ट उग्र रसायन तथा च्यवनप्राश ब्राह्मरसायनादि मिश्रौषधि रसायन आदि। इन औषधियो के समुचित प्रभाव के लिए चरक ने आचार रसायन का वर्णन किया गया है और यह निर्देश है कि सभी रसायन के प्रयोग के समय रसायन प्रभाव के लिए इसका पालन अनिवार्य है। यदि आचार रसायन की प्रक्रियाओ का विश्लेषण किया जाय तो उसके मूल मे शम, दम, नियमादि यौगिक प्रक्रियो का ही समावेश दृष्टिगोचर होता है जो कि मूलत. रसायन प्रभाव को उत्पन्न करता है।

भल्लातकादि उग्र औषधियो का प्रयोग यद्यपि आशु रसायन प्रभावोत्पादक है किन्तु इनका निरन्तर प्रयोग अनेक प्रकार के उपद्रवो को भी उत्पन्न करने मे सहायक होता है। अत औषध रसायनों की अपेक्षा यौगिक रसायन अधिक प्रभावोत्पादक एवं निरापद है।

यौगिक साधनो मे स्थूल रूप से प्राणायाम एवं आसनो का विशिष्ट महत्व है। आसन शरीर को विभिन्न अवस्थाओ के द्वारा लचीला एव क्रियाशील बनाते है। प्राणायाम, श्वास, प्रश्वास की समुचित प्रक्रिया को नियन्त्रित करने का कार्य करता है। इन दोनो का समन्वित प्रयोग ही सफलता प्रदान करता है। प्राणायाम मे शरीर के लिए अनिवार्य तत्व प्राणवायु को श्वास द्वारा शरीर में प्रविष्ट किया जाता है और आसन के द्वारा उसे विभिन्न स्रोतो मे शुद्ध्यर्थं समाविष्ट किया जाता है।

यौगिक प्रक्रिया मे साधना का प्रारम्भ सूर्य प्रणाम से प्रारम्भ किया जाता है। सूर्य प्रणाम, प्राणायाम तक विभिन्न आसनो की एक समन्वित प्रक्रिया है। अनेक दीर्घजीवी व्यक्तियों ने सूर्य प्रणाम को ही दीर्घ जीवन का मुख्य उपाय स्वीकार किया है। कल्याण के "योग-साधनाक" मे इसका मन्त्रोच्चारण के साथ प्रयोग करने की एक विशिष्ट प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। जिससे दीर्घ जीवन तथा अजरत्व की प्राप्ति निश्चत रूप से सम्भव है। इस प्रकार यौगिक प्रक्रिया ही अजरत्व का मूल रसायन के रूप मे साधन हो सकता है।

पृष्ठ ११४ का शेषांश

हम सुदृढ, मुख स्वस्थ सुन्दर और उज्जवल सुवर्ण की भांति रायबहादुर तरुण दीखने लगे। नेत्र पहले से कुछ अधिक तेजयुक्त प्रतीत होते थे। तन्द्रा, मोह लुप्त हो गये और शौच स्वाभाविक रूप से बिना मगनेशिया की सहायता के होने लगा। पलित का नाश नही हुआ पर उनके व्यक्तित्व में पर्याप्त निखार आ गया। व्यवसायिक और सामाजिक कार्यों में बढ़कर भाग लेने लगे और हर प्रकार से उन्नत और समृद्ध हो गये। बड़ा नाम और यश अर्जित किया उन्होने। अपनी अवस्था की अपेक्षा अधिक तरुण और स्वस्थ दीखने लगे। उनके मित्र–मण्डल मे इस रसायन कर्म द्वारा अद्भुत काया-पलट के चमत्कार की खूब चर्चा होती रही। रसायन कर्म ने रायबहादुर के सब शारीरिक और मनोविकार नष्ट कर दिए।

इस महत्वपूर्ण रसायन –योग के अतिरिक्त कुछ अन्य साधारण रसायन औषधिया भी हैं जो निरन्तर प्रयोग में लाने से यदि काया–कल्प न कर सकें तो काया को नीरोग स्वस्थ और स्थिर अवश्य बना सकती हैं। हमने अपने सम्पर्क मे आने वाले वाले रोगियो और कई अन्य व्यक्तियो को इस पथ पर अग्रसर किया है। जो व्यक्ति स्वस्थ थे उन्हे अतिरिक्त स्वास्थ्य लाभ हुआ और जो जीर्ण रोगी थे उसके स्वास्थ्य मे भी पर्याप्त सुधार हुआ। अश्वगन्धा जो एक बहुमुखी चिकित्सीय द्रव्य है और मल्टीविटामिन से युक्त है एक स्वास्थ्यवर्द्धक, रोग निवारक निहायत कल्याणकारी रसायन कर्म का सम्पादन करता है। ब्राह्मी द्रव्य भी कई चिकित्सीय तथा रसायन गुणों से युक्त है। हमने धर्मार्थ औषधालय के अपने सेवा काल मे अश्व–गन्धा को टानिक के रूप मे बहुत से रोगियो को सेवन कराया करते थे। इस द्रव्य के सेवन से एलर्जी (असहिष्णुता) की तीव्रता कम हो सकती है और व्याधिरोधक क्षमता पर्याप्त बढ़ सकती है।

जरा निवृत्ति में योगसाधना की उपादेयता

श्री वैद्यनाथ झा, राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, पटियाला।

—×—



योग मूर्ति श्री स्वामी धीरेन्द्र जी ब्रह्मचारी के शिष्य एवं राजकीय आयुर्वेदिक कालेज पटियाला के योग विषय के शिक्षक श्री वैद्यनाथ झा ने जरा निवृत्ति में योग-साधना की उपादेयता शीर्षक लेख मे जहा सद्वृत्त का उल्लेख किया है वहाँ आसनो एव मुद्राओ की व्याख्या भी कीहै जिनके प्रयोग से लाभ उठाया जा सकता है। लेख उपयोगी एवं पठनीय है।

—शिवकुमार व्यास विशेष सम्पादक

योगियो ने जीर्णावस्था का कारण देते हुए बताया है कि उत्तम रूप अमर रसचन्द्र सदृश आह्लादक वीर्य संजात, मूर्वन्य सोमरस साधारण अवस्था मे नीचे को गिरता है जिसे नाभि मे विद्यमान अग्निरूप सूर्य ही ग्रसता रहता है, इसलिए शरीर वृद्धावस्था को प्राप्त करता है—

यत्किञ्चित्स्रवते चन्द्रादमृतं दिव्य रूपिण.।
तत्सर्वं ग्रसते सूर्यस्तेन पिण्डो जरायुतः॥
(हठ योग प्रदीपिका ३/७७)

तात्पर्य यह है कि इसी सोमरस के नाभिकुण्ड मे गिरते रहने से शरीर मे जरावस्था आती है।

जरावस्था दो प्रकार की होती है—पहला परिपक्वावस्था अर्थात् पूर्ण समय को प्राप्त शरीर का क्रमिक क्षय, दूसरा समय से पूर्व ही अपचय क्रियाओ की अधिकता, स्रोतो की दुष्टि, रस रक्तादि धातुओ की विषमता, परिणामस्वरूप श्वास कास, पलित, वली आदि ह्रास-कारी लक्षणो का प्राकट्य है। दोनो अवस्थाओ मे क्रिया एक ही है। आयुर्वेद मे तो रसायन प्रकरण नाम से एक प्रथक ही जरा निवृत्ति विषयक अध्याय है जिसके अन्तर्गत वृष्य औषधि के सेवन से इन ह्रासोन्मुख जैव क्रियाओ की ह्रास की दर को कम करके पुन नए रूप से शक्तिशाली बनाने का विधान है।

जरानिवारण मे आयुर्वेदीय पद्धति एव योगाभ्यास पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त एक समान है। महर्षि चरक का रसायन प्रयोग के सम्बन्ध मे स्पष्ट निर्देश है कि रसायन उसी व्यक्ति के लिए हितकर है जो आचार रसायन के अंगो का पालन करेगा। सात्विक मनोवृत्ति की पृष्ठभूमि मे ही वृष्य औषधिया प्रभावशाली होती हैं। आचार रसायन के अन्तर्गत वही व्यवहार आते हैं जो अष्टाग योग के यम एव नियम के अन्तर्गत है—

यम—अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यं क्षमाधृतिः।
दयाऽऽर्यंव मिताहार, शौचं चैव यमादशा॥
—याज्ञवल्क्य सहिता

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, क्षमा, धैर्य, दया, कोमलता सतुलित पौष्टिक आहार एवं शौच (पवित्रता)।

नियम—तपः सन्तोष आस्तिक्य दानमीश्वर पूजन ।
सिद्धान्तवाक्यश्रवण, ह्रीर्मति च तपोहुतम् ॥
(याज्ञवल्क्य संहिता)

तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर पूजन, शास्त्र वाक्यों का श्रवण, जप ।

(२) आचार्य चरक ने निर्देश दिया है कि वृष्य औषधि देने मे पहले रोगी के शरीर को वमन, विरेचनादि द्वारा शोधित कर लेना चाहिए । हठ योग भी प्रथम पाठ के रूप मे घट शुद्धि का निर्देश देता है—

आमकुम्भमिवाम्भस्थो, जीर्यमाण सदाघट ।
योगानलेनसदह्य, घटशुद्धिं समाचरेत् ॥
(घेरण्ड संहिता १/८)

अर्थात् जिस प्रकार कच्चे घड़े मे जल भरने से घडा गल जाता है तथा पका कर भरने से नष्ट नही होता, वैसे ही योगाग्नि से शरीर शुद्ध होता है तथा घट शुद्धि षटकर्म से होता है ।

षट्कर्मणा शोधन चैव, आसनेन भवेद्दृढ ।
(घेरण्ड संहिता १/९)

षट्कर्म ६ होते हैं—धौती (प्रक्षालन), नेति, वस्ति, नौली, त्राटक, कपालभाती ।

इस योग की शास्त्रीय पुस्तको मे विभिन्न आसनो, मुद्राओ एव प्राणायामो तथा अन्य क्रियाओ का अध्ययन किया जाय तो "अभ्यसेत् सतत यस्तु, वृद्धोऽपि तरुणायते"[1] "विषैर्विमुच्यते योगी, व्याधिमृत्युजरादिभि."[2], "युवा भवति वृद्धोऽपि, सतत मूलबन्धनात्"[3] जैसे फल मिलते हैं । नीचे कुछ सरल क्रियाओ, आसनो, मुद्राओ एवं प्राणायाम का सक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है ।

जरा व्याधियो की निवृत्ति हेतु योगसाधक को षट् कर्म का अभ्यास समय-समय पर अवश्य करना चाहिए । वस्ति एव नौली क्रिया तो थोडा जटिल है किन्तु कुंजल (वमन), वस्त्रधौति एव नेतिकर्म (सूत्रनेति, जलनेति, दुग्ध एवं घृतनेति) एव त्राटक का अभ्यास किया जा सकता है ।

आसन—

(१) ऊर्ध्व सर्वांगासन—

शास्त्रीय पुस्तको मे शीर्षासन अथवा सर्वांगासन नाम से कोई आसन नही मिलता है । विपरीतकरणी मुद्रा का वर्णन विस्तार से मिलता है । योगियो ने सर्वांगासन एवं शीर्षासन इसी मुद्रा से तैयार किया है ।

कमर के बल भूमि पर लेट जाय। दोनो हाथो से जमीन को दबाते हुए दोनो पैर क्रमश ३० अश, ४५ अश ६० अ श एव ९० अ श तक उठाते जाय एव ९० अ श तक पैर उठ जाने के बाद दोनो हाथो के सहारे पूरे शरीर को इस प्रकार जमीन के समकोण उठाये कि ठोडी कण्ठ से लग जाय । २-३ मिनट रोकने के बाद दोनो पैर थोडा सिर के पास ले आये तथा बिना सिर उठाये वापस अत्यत मन्द गति से आयें ।

इस आसन से सिर के बाल झडने, सफेद होना, झुर्री, मस्तिष्क मे रक्ताल्पता सिर कम्प आदि ठीक हो जाते हैं । पीयूष एव अवटुका ग्रन्थि के स्राव अच्छी तरह होते हैं । योग के शरीर क्रिया विज्ञान के अनुसार इस आसन से "ऊर्ध्वं नाभेरधस्तालोरुर्ध्व भानुरध. शशी"[4]—अग्नि ऊपर एवं चन्द्र नीचे आ जाता है जिससे अमृत भस्म नही हो पाता एव "वलित पलित चैव, षण्मासोर्ध्वं न दृश्यते"[5] छ मास के अभ्यास से ही झुरिया, केशो की श्वेतता गायब हो जाती है ।

(२) अर्ध मत्स्येन्द्रासन—

प्रसिद्ध हठयोगी मत्स्येन्द्रनाथ इसी आसन मे बैठा करते थे ।

जमीन पर बैठकर दोनो पैर सामने लायें। दाहिने पैर को घुटने से इस प्रकार मोड़े कि एडी बायें नितम्ब से लग जाय । अब बाये पैर को दाहिने घुटने के बाहर खडा करदें । दाहिने हाथ को बाये घुटने के बाहर से लाते हुए अ गूठा पकडें । बाया हाथ पीठ पर रखे तथा बाई ओर देखें । यही आसन पैर बदल कर भी करे ।

यह आसन पेट के समस्त रोगो को दूर कर जठराग्नि

1 हठयोग प्रदीपिका — अ० ३, श्लोक ५८ 2 हठयोग प्रदीपिका—अ० ३, श्लोक ३८
3 हठयोग प्रदीपिका — अ० ३, श्लो० ६५ 4 हठयोग प्रदीपिका—अ० ३, श्लोक ७३
5 हठयोग प्रदीपिका — अ० ३, श्लोक ८२

प्रदीप्त करता है तथा कुण्डलिनी जागरण मे सहायता मिलती है—

मत्स्येन्द्र पीठं जठरप्रदीप्ति प्रचण्डरुग्मण्डलखण्डनास्त्र । अभ्यासत कुण्डलिनी प्रबोध चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम् ।।[6]

(३) **मयूरासन**—

जमीन पर अधोमुखी बैठकर दोनो हथेलियो को जमीन पर इस प्रकार रखे कि दसो उंगलिया पीछे की ओर हो तथा दोनो कुहनिया आपस मे मिली हो। अब दोनो मिली हुई कुहनियो को नाभि पर रखें तथा शरीर को साधते हुए पूरे शरीर को जमीन के समानान्तर इस प्रकार उठाए कि सिर से पैर तक एक सीधी रेखा दिखाई दें।

यह आसन गुल्म, जलोदरादि पेट के अनेक रोगो को दूर कर धातुओ को सम करता है। अधिक कुत्सित अन्न भी जठराग्नि की प्रदीप्ति से पच जाते है। यहाँ तक कि यह आसन विषतुल्य अन्न को भी पचाने की सामर्थ्य रखता है।

"बहुक दशनमुक्तं भस्मकुर्यादशेष, जनयति जठराग्नि जारयेत्कालकूटमं ।"[7]

मुद्रायें—

मुद्रा आसन एव प्राणायाम के बीच की स्थिति है। मुद्रा मे किसी आसन विशेष मे बैठकर गुरु के बताए अनुसार श्वास रोकने का अभ्यास करते हैं। वैसे बहुत सी मुद्रायें उच्च अभ्यास की वस्तु हैं परन्तु तीन सरल मुद्राओ का वर्णन यहा किया जा रहा है—

१ **महाबध मुद्रा**—गोमुखासन मे बैठ जाय। इस स्थिति मे 'क्रस-लेग्ड' बैठते है ताकि दाए पैर की एडी बाये नितम्ब को और बाए पैर की एडी दाहिने नितम्ब को स्पर्श करे। हाथ घुटनो पर रखें। अब नासिका से श्वास भरते हुए पेट थोडा फुलायें, सिर आगे झुकायें एव ठोडी कंठकूप से लगा लगा दें। साथ ही गुदा की पेशियो को भी पूरी बल से सिकोड़कर मार्ग बद कर दें। यथाशक्ति रोककर धीरे-धीरे बध ढीले करते हुए सिर सीधा करके श्वास निकालें।

इस बन्ध से "महाबन्ध परोबन्धो जरामरणनाशन ।"[8] जरा मृत्यु का नाश होता है।

२, **उड्डियान बन्ध**—पद्मासन मे बैठकर दोनो हाथों से घुटने दबाते हुए श्वास बाहर निकालते हुए नाभि से निचले अंगो को भी भावनापूर्वक ऊपर डायफ्राम की ओर खीचें। इस स्थिति में केवल पसलियो का उभार ही दिखाई पड़ेगा, पेट के स्थान पर धँसाव ही दिखाई पड़ेगा। यथाशक्ति श्वास रोककर फिर धीरे-धीरे श्वास भरते हुए बधन ढीले करते जाय।

इस मुद्रा के अभ्यास से वृद्ध भी युवा हो जाता है—
"अभ्यसेद्यस्त सत्वस्यो वृद्धोऽपि तरुणायते"[9]

३ **मूलबध**—यह अत्यन्त सरल है पद्मासन मे बैठ कर गुदा की पेशियो को बलपूर्वक सकुचित करके यथाशक्ति रोकें। श्वास सामान्य रखें। इस मुद्रा मे अपान वायु को ऊपर खीचते हैं।

प्राणायाम—वैसे प्राणायाम बहुत सवेदनशील तथा योग्य गुरु के निर्देशन मे करने वाला अभ्यास है क्योकि गलत करने से हानि भी बहुत होती है। पर आप एक सरल प्राणयाम कर सकते हैं। लोम, विलोम प्राणायाम या नाडी शोधन प्राणायाम।

पद्मासन अथवा सुखासन मे बैठकर बाई नासिका पुट से ८ की गिनती तक श्वास भरें, ३२ की गिनती तक श्वास रोकें, फिर १६ की गिनती तक श्वास दाहिने नासाद्वार से निकाले। यही क्रिया दाहिने नासाद्वार से श्वास भरते हुए उसी अनुपात मे रोकते हुए बायें नासाद्वार से निकाल दें। इस प्रकार एक राउन्ड पूरा हुआ है। ऐसे ही ५-१० राउन्ड करे।

अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए तीन आवश्यक शर्तों का पालन करना परमावश्यक है—(१) नियमित सात्विक पौष्टिक आहार (२) नियमित अभ्यास (३) परमावश्यक रूप से किसी अच्छे विशेषज्ञ का निर्देशन प्राप्त किया जाय क्योकि पुस्तक, लेख अथवा टी वी आपको अभ्यास की प्रेरणा मात्र ही दे सकता है, वास्तविक अभ्यास तो गुरु के समक्ष ही सभव है।

---

[6] हठयोग प्रदीपिका—अ० १, श्लोक २७ [7] हठयोग प्रदीपिका—अ० १, श्लोक ३१
[8] घेरण्ड सहिता —अ० ३ श्लोक २० [9] दत्तात्रेय सहिता—
इसके अतिरिक्त—याज्ञवल्क्य संहिता, चरक सहिता रसायन स्थान

वृद्ध-बिहार

वैद्य श्री लक्ष्मी शंकर त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य, ए० एम० एस०, कानपुर

लोकजीवन-आयुर्वेद मासिक पत्रिका कानपुर के सुयोग्य सम्पादक वैद्य श्री लक्ष्मीशंकर जी त्रिवेदी ने 'वृद्ध बिहार' शीर्षक लेख में जीवन की भारतीय पद्धति, जिसमे संयुक्त परिवार व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था एवं धर्माचरण नामक तीन स्तम्भ कहे हैं, का सुन्दर ढंग से विवेचन किया है। आपका मत है कि भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित होने से वृद्धों को कभी भी उपेक्षित अवांछित एवं अनुपयोगी जीवन व्यतीत नहीं करना पड़ता। बाल्यावस्था एवं युवावस्था मे जिन्होंने ब्रह्मचर्याश्रम एवं गृहस्थाश्रम का नियमानुसार पालन किया है। वृद्धावस्था मे वानप्रस्थ जीवन अर्थात् मुनिवृति का पालन करते हुए अन्तिम श्वास आने तक उद्देश्य पूर्ण लक्ष्ययुक्त जीवन व्यतीत कर सकते है।

लेख आधुनिक चकाचौंध में भरमाए हुए समाज के लिये एक चुनौती है।

—शिव कुमार व्यास विशेष सम्पादक

वृद्धावस्था मे धर्मैषणा प्रबल होती है। चरक ने परलोकैषणा के नाम से इसका विशद विवेचन किया है। युवावस्था की प्रबल लोकैषणा अब शीर्ण होती है। वृद्धावस्था की स्वाभाविक जीवनचर्या मे अर्थोपार्जन, भोग विलास, प्रतिस्पर्धा, काम वेग कम और धर्म, कर्म, त्याग, वैराग्य, सदाचरण, अध्यात्मचिन्तन की प्रवृत्ति बढ़ती है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार जीव अजर अमर है। जरा, मृत्यु का प्रकोप केवल देहगत होता है। जरा जर्जरित देह का त्याग जीर्ण शीर्ण वस्त्रो के त्याग से अधिक कुछ नही है। सृष्टि की प्रवृत्ति गुणात्मक है। मनुष्य शरीर से सद्विचार और शुभ कर्म अभीष्ट हैं। एतदर्थ प्रकृति ने मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियो मे परलोकैषणा का बीजारोपण कर दिया है। चूंकि वृद्धावस्था मे परलोकैषणा प्रबल होती है इसलिए धार्मिक जीवनचर्या ही इस आयु की स्वाभाविक जीवनचर्या है। प्रत्यक्ष मे जो विचारशील व्यक्ति पर लोकैषणा के अनुसार अपनी जीवन चर्या बना लेते हैं उन्हे वृद्धावस्था दुखद नही प्रतीत होती। वे वृद्धावस्था को भी सुख शान्ति के साथ नीरोग शतायु होकर व्यतीत करते हैं। महर्षि चरक कहते हैं—

स्वस्थवृत्त यथोद्दिष्टं य सम्यगनुतिष्ठति।
स समा शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते॥
नृलोकमापूरयते यशसा साधुसमत।
धर्मार्थाविति भूताना बन्धुतामुपगच्छति॥

जो व्यक्ति आयुर्वेदोक्त स्वस्थवृत्त सद्वृत्त का पालन करता है वह सौ वर्ष तक रोगरहित रहकर सुखपूर्वक पूर्ण आयु भोग करता है। वद्ध सज्जन एव साधु पुरुषो द्वारा प्रशसित होकर इस लोक मे यश, धर्म, अर्थ, सुख शान्ति का भागी बनकर समाज मे सर्व प्रिय होता है। महाकवि कालिदास ने रघुवंशियो के जीवन वृत्त मे लिखा है कि वे लोग शैशव मे विद्याओ का अभ्यास, युवावस्था मे गृहस्थ आश्रम पालन और वृद्धावस्था मे मुनियों की वृत्ति धारण करके अन्त मे योग के द्वारा शरीर त्याग देते थे। इस प्रकार आयु के अनुसार आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत समस्त स्वाभाविक एषणाओ की सपूर्ति तथा सद्वृत्त स्वस्थवृत्त का विधिपूर्वक पालन करते हुए जो जीवन यापन किया जाता है उसमे किसी प्रकार की



व्याधिया होने की सम्भावना अत्यल्प रह जाती है। जिनकी चिकित्सा व्यवस्था की आवश्यकता पड सकती है।

वस्तुत वृद्धावस्था भी अन्य दो अवस्थाओ की ही भाति मनुष्य जीवन की एक स्वाभाविक अवस्था है। उसे व्याधि स्वरूप अवाछित, अनुपयोगी दु खदाई भार स्वरूप समझना उचित नही है। उचित तो यह है कि दो तिहाई जीवन मे अर्जित ज्ञान और अनुभवो के अनुसार अपने मनुष्य जीवन को सफल सार्थक बनाने तथा परिवार समाज राष्ट्र एव सृष्टि मात्र के लिए शुभकामनाओ के साथ वृद्धावस्था का सदुपयोग करना चाहिये। साथ ही साथ वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक एव मानसिक परिवर्तनो और अक्षमताओ के अनुसार अपना आहार विहार अपना लेना चाहिए। यही वानप्रस्थ और मुनिवृत्ति का सक्षिप्त सार है। मुनिवृत्ति अर्थात् वानप्रस्थ की जीवनचर्या अपना लेने से वृद्ध अपने को एकाकी, उपेक्षित, निरुद्देश्य, अनुपयोगी, निरर्थक अपदार्थ नही समझ पाते हैं। उनके सम्मुख भी अन्तिम समय तक एक विस्तृत कार्य क्षेत्र, उद्देश्य पूर्ण लक्ष्ययुक्त जीवन जीवित रहने के लिए विद्यमान रहता है। आश्रम व्यवस्था की यह विशेषता है कि यदि वर्तमान आश्रम का विधिपूर्वक पालन कर लिया जाय तो भावी आश्रम की सुखद भूमिका निर्मित हो जाती है।

भारतीय समाज मे सयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित होने के परिणामस्वरूप वृद्धों को कभी भी उपेक्षित अवाछित और अनुपयोगी जीवन नही व्यतीत करना पड़ता। जैसा कि विश्व के अनेक भागो मे करना पड़ता है। यहा धनहीन, विद्याहीन, गुणहीन व्यक्ति भी केवल वयोवृद्ध होने के नाते अपने परिवार-समाज मे सर्वोच्च मान प्राप्त करता है। आधी से अधिक जराजन्य समस्याओ का समाधान सयुक्त परिवार प्रथा से हो जाता है। देह, इन्द्रिय, अंग-प्रत्यग गत क्षीणता दुर्बलता आयुर्वेदोक्त वृष्य रसायन द्रव्यो के सेवन से एक सीमा तक कम की जा सकती है। जीवन एकाकी, निरुद्देश्य अनुपयोगी न प्रतीत हो इसके लिए अध्यात्म चिन्तन, पूजन, भजन, परोपकार, तीर्थयात्रा, सत्सग, स्वाध्याय आदि का सहारा लेना चाहिए। योग साधन भी एक अच्छा उपाय है। वृद्धावस्था मे शरीर दुर्बल हो जाने के कारण वात पित्त कफ जो भी प्रकृति हो वह देश काल के प्रभाव से बढकर कभी रोग का रूप धारण कर लेती है, तब उसका निराकरण स्वस्थवृत्त की दिनचर्या ऋतुचर्या के अनुसार करना चाहिए। सक्षेप में "वृद्धविहार" जिसके अन्तर्गत आश्रम व्यवस्था, सयुक्त परिवार, ब्रह्मचर्य, समुचित आहार, आवश्यक निद्रा, गोदुग्ध वृष्य, रसायन द्रव्यो का सेवन, अध्यात्म चिन्तन, धार्मिक वृत्ति, योग साधना, स्वस्थवृत्त, सद्वृत्त का पालन, इन्द्रियार्थो से वैराग्य, परोपकार, सादा सरल जीवन आदि आते हैं, का पालन ही जरा व्याधियो से बचने का स्थायी उपाय है। जब कि कुछ पश्चिमी देशो मे प्रयुक्त सामूहिक वृद्ध निवास. आर्थिक पेंशन नि शुल्क भोजन आवास चिकित्सा आदि की सुविधा, अग प्रत्यारोपण, पेसमेकर, डायलेसिस जैसे यान्त्रिक साधनो से वृद्धावस्था को कुछ समय तक और घसीटना, वृद्धो को निष्क्रिय अनुपयोगी बनाने वाली योजनायें कृत्रिम हारमोन, विटामिन की टिकिया, नींद लाने वाली, पीडा शामक, ट्रक्वलाइजर जैसी औषधियां, सर्व सुविधा सम्पन्न सरकारी आश्रय। इनमे से कोई भी ऐसा उपाय नही है जो एक भी जरा व्याधि का आशिक समाधान कर सकने मे समर्थ हो। यदि ऐसा हो सकना सम्भव होता तो अमेरिका, स्विटजरलैंड जैसे धनी साधन सम्पन्न देशों मे अब तक कर लिया गया होता।

वैसे प्रायः सभी विकसित देशो मे और चिकित्सा की सभी पद्धतियो मे वृद्धावस्था की समस्याओ के समाधान पर जोरदार कार्यक्रम चल रहे हैं। भारत मे आयुर्वेद द्वारा प्रतिपादित एक जीवन पद्धति है जिसमे सम्पूर्ण मनुष्य जीवन को सभी अवस्थाओ का ध्यान रखकर जीवनचर्या निश्चित की गई है। भारत के आयुर्वेज्ञानिको को इसको भी आधुनिक जीवन की कसौटी पर कसकर देखना चाहिए। हमे विश्वास है कि यह आज भी त्रुटिविहीन उपयोगी सिद्ध होगी।

बुढ़ापा : विश्लेषण और उपाय

डा० श्री रामनिवास शर्मा, उपनिदेशक–आयुर्वेद विभाग, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश।



राजस्थानी परम्परा के सुयोग्य आयुर्वेदज्ञ डा० श्री राम निवास जी शर्मा सरल स्वभाव के सफल आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं। आप राजकीय चिकित्सालय के अधीक्षक रूप में कार्यरत रहे और सम्प्रति उपनिदेशक—आयुर्वेद आन्ध्र प्रदेश हैं।

'बुढ़ापा–विश्लेषण एवं उपाय' शीर्षक लेख सरल भाषा में विषय का द्योतक एवं आपके अनुभवों का प्रतीक है। पाठकों को इससे ज्ञानवर्धन एवं लाभ पहुंचेगा।

—शिव कुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

इस विशेषांक के पाठकों को पहले से ही बुढ़ापे के सामान्य रोगों और रसायन के शास्त्रीय पक्ष का सम्यक् ज्ञान है। इस अङ्क में भी एतद्विषयक प्रचुर सामग्री दी गई है। जिन वैद्यों को चिकित्सा का दीर्घकालीन अनुभव है उन्हें बुढ़ापे की व्याधियों के उपशमन में जो कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं उन्हीं की चर्चा इस लेख में की है।

मनुष्य पचास वर्ष की आयु पा लेने पर भी मानसिक रूप से यह मानने को तैयार नहीं होता कि वह बुढ़ापे की सीमा में प्रवेश कर चुका है। इस अवस्था में पहुंचने के पश्चात् परिवार में व्यक्ति के सामने जो परिस्थिति उपस्थित होती हैं, उसे यदि उपेक्षा की दृष्टि से देखा भी जाए, किन्तु उस व्यवहार को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता जो पड़ोसी और मिलने-जुलने वाले युवा पीढ़ी के व्यक्ति वयस्क आदमी के प्रति करने लगते हैं। समाज के प्रति निभाये जाने वाले कर्त्तव्य भी मनुष्य को यह अनुभव कराते हैं कि वह अब युवा नहीं रह गया है। परिणाम यह होता है कि मनुष्य धीरे-धीरे गम्भीर बनता जाता है। उसके क्रिया-कलापों पर अनजाने नियन्त्रण लगता जाता है।

शरीर और परिवेश का प्रभाव मन पर पड़ता है। प्रकारांतर से मन भी शरीर पर प्रभाव डालता है। मन के कारण कुछ लोग बड़ी आयु में भी विनोदी और उत्साही दिखाई देते हैं। मन के उत्साह के कारण बड़ी आयु में युवावस्था के कुछ लक्षण बने रहते हैं। देर-सवेर बुढ़ापे के कारण निम्नलिखित परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं —

१ बालों का धीरे धीरे सफेद होना।

२ त्वचा में शिथिलता और झुर्रियों का पड़ना।

३. जानु, कटि तथा अन्य संधियों में असुविधा अथवा पीड़ा की अनुभूति।

४. छाती के नीचे पेट का लटकना अथवा वहां मेद की वृद्धि।

५ सैक्स सम्बन्धी विचारों तथा क्रियाओं में परिवर्तन

जो लोग जरा संबंधी व्याधियों से बचना चाहते हैं, उनको तीस-पैंतीस वर्ष की आयु से कुछ नियमों और उपायों को स्वीकार कर लेना चाहिए।

बालों को ही लीजिए। कुछ लोगों के बाल आयु की परिपक्वता से पहले आनुवंशिक कारणों से सफेद हो जाते



हैं। कुछ लोगों के बाल बड़ी आयु मे भी काले बने रहते हैं। इस तरह के व्यक्तियों को अपवाद माना जाना चाहिए। पचास वर्ष के आस-पास सामान्यतया सभी लोगो के बालो पर आयु का प्रभाव पड़ता है। बालों को ठीक-ठाक रखने के लिए स्नान से पहले सिर मे भृङ्गराज तेल अथवा दक्षिण भारत मे प्रयुक्त नीली भृंगादि तेल लगाकर पाच-सात मिनट मालिश करनी चाहिए। किसी दूसरे तेल का भी उपयोग किया जा सकता है।

अमावस्या के दिन उखाड़कर मुंडी अथवा गोरखमुंडी का पंचांग सुखाकर यवकुट चूर्ण बना लिया जाए। १५ग्राम चूर्ण रात मे एक लिटर पानी मे भिगोकर रखना चाहिए। सवेरे मसलकर छान लेना चाहिए। स्नान करते समय इस पानी को सिर पर डालकर थोड़ी देर मालिश करनी चाहिए। इसके प्रयोग के बाद सिर का फिर अन्य पानी से नही धोना चाहिए।

त्वचा की रक्षा—त्वचा को लंबे समय तक ठीक रखने के लिए अश्वगधा या धन्वन्तरि तेल का अभ्यंग लाभदायक होता है। वर्षा मे सप्ताह मे दो बार धन्वन्तरि तेल और गर्मियो में सप्ताह मे एक बार धन्वन्तरि तेल की मालिश लाभदायक है। स्नान से पहले स्वय मालिश की सकती है। ऋतु के अनुसार तिल अथवा सरसो के तेल से भी मालिश की जा सकती है। त्वचा को स्निग्ध और वर्ण को उज्वल रखने के लिए शुद्ध घी और दूध मे सना हुआ मसुर का आटा बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

संधियो की पीड़ा—बुढापे मे जानु, कटि तथा अन्य सन्धियो की पीड़ा सभी को सहनी पड़ती है, किसी को कम किसी को अधिक। इससे बचने के लिये निम्न उपाय काम मे लिए चाहिये—

(क) ऋतु के अनुसार किसी उपयुक्त तेल की मालिश।

(ख) हल्के किस्म का व्यायाम अथवा नित्य प्रति कम से कम दो ढाई मील का भ्रमण।

(ग) निर्गुण्डी के थोड़े पत्ते पानी मे उबाल लेना चाहिए। इस पानी से स्नान किया जाये।

(घ) प्रति छह मास के अन्तर से एक महीने तक योगराज गुग्गुल का सेवन—दूध के साथ दो गोली सवेरे, दो गोली शाम।

(ङ) [illegible] मास [illegible] रात के [illegible] एक चूर्ण [illegible] दूध के साथ, [illegible] मात्रा।

मेद वृद्धि—कोई [illegible] चाहे कितना भी [illegible] क्यों न हो चालीस की आयु मे [illegible] मोटा [illegible] है। विशेष रूप से पेट के [illegible] लगती है। मेद वृद्धि के कारण आदमी शिथिल होने लगता है। इससे बचने के कुछ उपाय—

(क) नियमित व्यायाम तथा नित्य [illegible] भ्रमण।

(ख) आहार पर भी नियन्त्रण रखा जाए। घी तथा अन्य स्निग्ध पदार्थों का प्रयोग कम किया जावे। भोजन की मात्रा भी कम होनी चाहिये।

व्यायाम, नित्य भ्रमण और नियमित भोजन के स्थान पर जो लोग औषधि के सहारे चर्बी कम करना चाहते हैं उन्हें सफलता नहीं मिल सकती। मेद वृद्धि के कुछ रोग ऐसे अवश्य है जिन पर औषधि का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि मोटी स्त्रियों के आर्तव विकार को हटाने के लिये उपचार किया जाय तो मोटापा कम हो जाता है।

सैक्स—साधारणतया जब कोई व्यक्ति बुढापे की व्याधियों का उल्लेख करता है तो चिकित्सक प्रायः मानता है कि यह आदमी सैक्स सम्बन्धी क्रिया मे कुछ कमी अनुभव कर रहा है। इस स्थिति मे कामोत्तेजक दवायें दी जाती है।

वास्तव मे सैक्स का सम्बन्ध शरीर से न होकर मन से अधिक है। बड़ी आयु के कारण परिवार मे जो स्थिति उत्पन्न होती है, उसके कारण मन सैक्स से हट कर दूसरी बातो पर केन्द्रित हो जाता है। किसी औषधि के सहारे मन को किसी दूसरी ओर मोड़ना सम्भव नहीं हो सकता।

शिक्षित व्यक्ति भी बड़ी आयु मे सैक्स के मामले मे अपनी असमर्थता अनुभव करने लगे तो उनका उपचार मनोविज्ञान के सहारे नही किया जा सकता। उसे कुछ तो समझाना चाहिए और कुछ उपचार करना चाहिए। आयुर्वेद के सभी ग्रन्थो मे कामशक्ति की वृद्धि के लिए अनेक प्रयोग दिये गये हैं। प्रत्येक चिकित्सक और विशेषज्ञ अपने अनुभव के आधार पर कोई न कोई

—शेषांश पृष्ठ १०८ पर देखें।

धन्वन्तरि

जराव्याधि चिकित्साङ्क

रसायन खण्ड

फरवरी+मार्च १९८१

प्रकाशक

निर्मल आयुर्वेद संस्थान अलीगढ़

रसायन पूर्व शोधन का स्वरूप

वैद्य श्री हरिदास श्रीधर कस्तूरे, एम ए., डी.सी ए.एम , एच.पी ए., काव्यतीर्थ,
सुपरिटेन्डेन्ट—श्री म०अ०ह० सरकारी आयुर्वेद हास्पीटल, अहमदाबाद ।

वैद्य श्री हरिदास श्रीधर कस्तूरे जामनगर पोस्ट ग्रेजुएट ट्रेनिंग सेन्टर के विशिष्ट उत्पाद हैं । आपका विशेष कार्य पञ्चकर्म पर रहा और केरलीय पञ्चकर्म पद्धति में आप निष्ठावान बन गये । आपका जन्म मराठवाड़ा (महाराष्ट्र) में हुआ और हैदराबाद के राजकीय आयुर्वेदिक कालेज के सुयोग्य स्नातक हैं । आपने गुजरात भर में प्राचीन पञ्चकर्मोपचार पद्धति के प्रचार-प्रसार का बड़ा काम किया है । आयुर्वेदीय पञ्चकर्म विज्ञान नामक ग्रन्थ के लेखक हैं । हमारे आग्रह पर आपने 'रसायन पूर्व शोधन का स्वरूप' शीर्षक लेख विशेषाङ्क हेतु भेजा है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं ।

बिना शरीर शोधन किए कराया गया रसायन अथवा वाजीकरण उसी तरह लाभ नहीं करता जिस तरह मैले वस्त्र पर रंग की चमक नहीं आती । सुश्रुत संहिता में लिखा है—

'अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रसायनो विधि । वाजीकरो वा मलिन' वस्त्रे रंग इवा फल ॥'

वैद्य जी द्वारा दिए गए अनुभवों से पाठक लाभान्वित होंगे ।

—शिवकुमार व्यास विशेष सम्पादक ।

रसायन पूर्व शोधन के सम्बन्ध में चरक मत—

चरक ने रसायन के दो प्रकार बताये हैं । वातातपिक रसायन और कुटि प्रावेशिक रसायन । प्रथम कुटि प्रावेशिक रसायन के लिए कुटी में प्रवेश करने की विधि बताते हुए चरक कहते हैं कि संशोधनों के द्वारा शुद्ध होने के अनन्तर बल प्राप्त हो जाए तब रसायन प्रयोग करना चाहिए ।[1] यहा चरक ने आगे कहा है कि मैं अब उस उस शोधन को कहूगा और इस सन्दर्भ के २४वे श्लोक के बाद 'हरीतकीना चूर्णानि'' ' इत्यादि द्वारा शोधनार्थ हरीतकी योग का प्रयोग दिया है । अब यहा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या यहा संशोधन शब्द से स्नेह स्वेदनोत्तर वमनादि सभी कर्म करने चाहिए या केवल हरीतकी द्वारा शोधन का ही उद्देश्य है ?

यहा चक्रपाणि टीका भी अध्ययन योग्य है ।[2] चक्रपाणि कहते हैं कि 'संशोधनै' इसका अर्थ वमन, विरेचन, निरूह तथा शिरोविरेचन यानी नस्य चारों प्रक्रिया का बोध होता है । यहा 'संशोधनै' ऐसा बहुवचन का प्रयोग किया है । इससे सभी शोधनों का बोध होता है तथापि यहा रसायन प्रयोग के विषय में हरीतक्यादि शोधन का ही प्रयोग करना चाहिए ।

---

[1] तस्यां संशोधनैः शुद्धः सुखी जात बलः पुनः । रसायन प्रयुञ्जीत तत्प्रवक्ष्यामि शोधनम् ॥

—च० चि० १-१-२४ ।

[2] चक्रपाणि—संशोधनैरिति वमन विरेचनास्थापन शिरोविरेचनैः ॥ जात बल इति संशोधनायाम हतबल तया संसर्जनादि क्रमेण पुनर्जात बल । यद्यपीह संशोधनैरिति बहुवचन प्रयोगात् सर्वाण्येव संशोधनानि संमतानि तथापिह रसायने विशेषेण यौगिकत्वात्हरीतकी आदि प्रयोग तवोक्त ॥ अन्ये तु हरीतक्यादि प्रयोगेणैव पर, संशोधनं कर्त्तव्यमित्याहु । संशोधनैः इति बहुवचन पुनर्यावद् शुद्धेर्हरीतक्यादि प्रयोगस्यैव करण दर्शयति ।

अज्झट-मत — जज्झट ने भी चक्रपाणि का अनुसरण करते हुए कहा है कि उनके आगे दिया हुआ हरीतक्यादि प्रयोग ही शोधनार्थ अभिप्रेत है क्योंकि 'चरक' ने 'तत्प्रवक्ष्यामि शोधन' द्वारा शोध की जिज्ञासा 'हरीतक्यादि शोधन बनाकर पूर्ण की है।[3]

यहा चक्रपाणि के ही दो मत सामने आते हैं। एक मे वह सभी शोधन करना चाहिए ऐसा कहते हैं और दूसरे मत से एकीय मत देते हुए 'अन्ये तु'—दूसरे विद्वान तो हरीतकी प्रयोग से ही शोधन करना चाहिए—ऐसा मानते हैं। ऐसी अपनी मौन स्वीकृति देते है। फिर बहुवचन 'संशोधनैः' क्यों दिया? कहते हैं कि जब तक शुद्धि हो तब तक सतत-बारम्बार हरीतकादि प्रयोग करना चाहिए।[4]

यहा कुछ शङ्का की जा सकता है। यदि रसायन प्रयोग के पूर्व मात्र हरीतक्यादि योग द्वारा ही संशोधन करना हो तो 'जातबल- पुन'। ऐसा पद क्यों? चक्रपाणि भी कहते हैं कि संशोधन द्वारा आयास व बलहानि होती है उसके लिए संसर्जन क्रम करना चाहिए और संसर्जन के बाद जब बल प्राप्ति हो जाए तब रसायन प्रयोग करना चाहिए। यदि केवल हरीतकी योग जो आगे हम वर्णन करेंगे प्रयोग किया जाए तो क्या उससे इतनी बलहानि हो सकती है कि आगे चरकोक्त मूल उद्धरण मे कहे गये अनुसार ३ दिन या ५ दिन या ७ दिन तक संसर्जन करना पड़े? यह जचता नही है। यदि स्नेह स्वेद पूर्व वमनादि शोधन किया जाये तो उससे बलहानि होती है और उसमे ही संसर्जन क्रम करना पड़ता है। अतः यहा शोधन मे वमनादि शोधन अपेक्षित है ऐसा कह सकते है। दूसरे यदि इस हरीतक्यादि योग को ही शोधन मान लें तब चरकोक्त संसर्जन क्रम के बाद—जो पहला रसायन उसे देना है वह है 'हरीतकी+आमलकी' रसायन[4]। तो क्या यह भी शोधन नही करेगी? प्रथम शोधनार्थ दिया हुआ हरीतकी योग शोधन करेगा और बाद मे दिया हुआ हरीतकी आमलकी योग रसायन गुण करेगा। अतएव यहा शोधन को युक्त प्रकार से समझाना अत्यन्त आवश्यक है।

सुश्रुतमत—सुश्रुत कहते हैं कि पूर्व वय अथवा मध्य वय के आतुर मे रसायन प्रयोग करें। रसायन के पहले शरीर का स्नेहनपूर्वक शोधन करना चाहिए। जिस तरह से मलिन वस्त्र के ऊपर रंग नही चढ सकता उस वस्त्र को धोकर साफ करने पर ही रंग करने से बराबर रंग बैठ सकता है इसी तरह शरीर को रसायन पूर्व—शोधन करना जरूरी होता है। अविशुद्ध शरीर मे रसायन चिकित्सा का फल नही मिल सकता।[5]

यहा डल्हण ने शोधन के लिये—'दोषस्य संशोधनादि संशोधन' इतना कहकर रसायन के ही संशोधन और संशमन ऐसे दो भेद किये हैं। संशमन का उदाहरण 'नागबलादि' ऐसा दिया है—किन्तु संशोधन का उदाहरण नही दिया। तथापि सुश्रुत ने जो प्रथम रसायन का वर्णन किया है उसमें—विडंग बीज के ही योग हैं।[6] अत एव कृमिशोधन का उद्देश्य स्पष्ट होता है। फिर २८वे अध्याय—मे आयुष्कामीय रसायन का वर्णन करते हुए प्रत्येक रसायन के विधि के वर्णन मे 'हृत् दोष एव शमि संसृष्टभक्तो'—कहते हुए प्रत्येक रसायन के पहले शोधन और संसर्जन करने का आदेश दिया ही है। इसी तरह ब्राह्मी रसायन में विडंग प्रयोग तथा त्रिफला प्रयोग देते हुए कहा है कि इससे ऊर्ध्व, अध और तिर्यक कृमियों का निर्गमन होता है। डल्हण कहते हैं कि सभी रसायन पूर्व स्नेहन, स्वेदन, शोधन करना ही चाहिए।[7]

तात्पर्य—इस तरह समग्र विचार करने पर प्रतीत होता है कि रसायन के पूर्व दोषो का शोधन तो होना ही

---

3 जज्झट—तस्यां गत्वा प्रथम संशोधनैः वक्ष्यमाण हरीतक्यादि प्रयोगैरेव करणमिति चक्र ॥ तत्प्रवक्ष्यामि शोधन इति शोधन जिज्ञासा पूरणम् ॥ (उपर के श्लोको पर)

4 च चि १. १. २९ से ३७ पर जज्झट—अयोक्त—संशोधनोपयुक्त प्रधानत्वाद् बहुन गुणा हरीतकीं तावदादौ निर्दिशति ॥

5 …… प्रयु जीव भिषक् प्रात स्निग्ध शुद्ध ततो सदा। नाविशुद्ध शरीरस्य युक्तो रसायनो विधि। न भाति वाससि शिष्टे रंगयोग इवाहितः। —सु० चि० २७ १, २।

6 सु० चि० २७-५, ६। 7 पूर्व विधानेन इति स्नेह स्वेदादि। —डल्हण सु० चि० २८-७ पर।



चाहिए परन्तु शरीर मे स्थित कुछ रोगो का भी शोधन होना चाहिए। कृमि का शोधन होना चाहिए। इस योग मे दोष,दूष्य, रोग, कृमि इत्यादि का शोधन होता है।

हरीतक्यादि शोधन योग—हरीतकी का चूर्ण, सैंधव, आमलकी, गुड, वचा, विडग, हरिद्रा, पिप्पली, शुण्ठी इनका समिश्रित चूर्ण तैयार करे। स्नेहन, स्वेदन के बाद गरम पानी के साथ यह चूर्ण पिला देवें। इस चूर्ण के बाद शोधन हो जाए—तत्पश्चात् पेया, विलेपी, अकृतयूष, कृतयूष, अकृत मास रस, कृतमास रसादि विधि से ससर्जन करे। बाद मे यवान्न ३, ४, या ७ दिन तक दें और शुद्ध कोष्ठ देखकर रसायन सेवन करावे।

इस योग मे हरीतकी अनुलोमन है। वचा, सैंधव, पिप्पली शामक है। विडग कृमि शोधन है। शुण्ठी आम पाचन और अग्निदीपन है। हरिद्रा, त्वकादि शोधन करती है। इस तरह यह योग वमन, विरेचन भी करता है। यह योग कृमि और कुष्ठादि दोषो को शरीर मे से बाहर निकाल देता है जिससे रसायन के पूरे पूरे गुणो की प्राप्ति होती है।

हरीतकी के ऊपर टीका लिखते हुए जज्जट कहते है—हरीतकी सर्व रोगहर है, तथापि खास करके कुष्ठादि को दूर करती है। मल का प्रवर्तन करते हुए भी ग्रहणी अतिसार को दूर करती है। विषम ज्वर को दूर करती है। इस तरह से हरीतक्यादि योग देते समय चरक ने बहुत ही विशाल और व्यापक विचार किया होगा यह स्पष्ट है।

तथापि रसायन पूर्व सम्पूर्ण शोधन करना हो तो स्नेहनोत्तर मदनफल देकर वमन करावें। फिर ३ से ७ दिन ससर्जन करे। फिर पुन स्नेहन देकर १५वें दिन द्राक्षा आरग्वध हरीतकी फांट पिलाकर विरेचन देवें। फिर पुन ७ दिन ससर्जन क्रम करावें। फिर दशमूल बस्ति अथवा वसा, गुडूच्यादि निरुह २ निरुह तथा ४ मात्रा बस्ति द्वारा ७ दिन तक दे। तत्पश्चात् षड्बिन्दु तैल अथवा कटफलादि चूर्ण से प्रधमन नस्य देवें। इस तरह शोधन हो जाए फिर यवकान्न, घृत और रसादि (मांसरस) युक्त भोजन देकर बल सजनन हो जाए—'तत्पश्चात्' हरीतकी+आमलकी योग, ब्राह्मी रसायन अथवा यथा योग्य रसायन प्रयोग करना चाहिये।

8 हरीतकीना चूर्णानि सैंधवामलके गुडम्। वचां विडंगं रजनीं पिप्पली विश्वभेषज।
पिबेदुष्णाम्बुना जतु स्नेह स्वेदोप पादित। त्रिरात्र धावक दद्यात् पंचाह वापि सर्पिषा।
सप्ताह वा पुराणस्य यावच्छुद्धेस्तु वर्चस॥ शुद्ध कोष्ठ तु त ज्ञात्वा रसायनमुपाचरेत्।
वय प्रकृति सात्म्यज्ञो यौगिक यस्य यद्भवेत्॥
—च० चि० १-१-२५ से २८।

—×—

बुढापा—विश्लेषण और उपाय पृष्ठ १०४ का शेषांश

प्रयोग लिख देता है। बुढापे की ओर अग्रसर होने वाला व्यक्ति सिद्ध प्रयोगो और कल्पो को बार बार प्रयोग करने के बाद निराश हो जाता है। इसलिये प्रत्येक चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वह बदली हुई परिस्थितियो से प्रौढ व्यक्ति को अवगत कराये। कुछ सरल और निरापद औषधियो का प्रयोग किया जा सकता है।

(क) थोडे से घी मे कौंच के बीज कुछ भून लिये जाय। इन भुने बीजो का चूर्ण बना लिया जाये। सुबह-शाम एक चावल चूर्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करने से लाभ होता है। एक मास तक यह चूर्ण लिया जा सकता है। प्रति छह मास के पश्चात् एक मास तक इस प्रयोग को जारी रखा जा सकता है। कौंच के बीज सफेद और काले दो प्रकार के मिलते है। दोनो का समान लाभ होता है।

काम वासना मे लिप्त लोगो को साठ के आस पास कष्टदायक मूत्र विकारो का सामना करना पडता है। मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पौरुष ग्रन्थि मे वृद्धि ये कुछ विकार हैं। इन विकारो से बचने के लिए निम्न कुछ प्रयत्न किये जा सकते है—

छह महीने के अन्तर से चन्द्रप्रभा वटी की दो गोलिया रात मे कुछ दिनो तक नियमित रूप से लेनी चाहिए। अवस्था और रोग के अनुसार चन्द्रप्रभा वटी की मात्रा निर्धारित की जानी चाहिये।

लौह रसायन एवं शाङ्‌र्गधर

डा० श्री बी० पी० पाण्डेय एव प्रो० डा० श्री एल० बी० गुरु
मौलिक सिद्धान्त विभाग, चिकित्सा विज्ञान सस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।



विभागाध्यक्ष श्री डा० गुरु साहब के विभाग के श्री डा० बी० पी० पाण्डेय ने आपके निर्देशन में 'लौह रसायन एव शारङ्गधर' शीर्षक लेख विशेषांक हेतु प्रेषित किया है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं।

लेख मे लौह के साथ पारद एव गन्धक का संयोग १३ वीं शताब्दी मे शारङ्गधर ने किया और रसायन योग वर्णित किया। इसका सांगोपांग एव उपयोगी वर्णन लेखक ने किया है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

दीर्घमायुः स्मृतिर्मेधामारोग्य तरुण वय।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रिय बल परम्॥
वाक्सिद्धि प्रणति कान्ति लभते नो रसायनात्।
लाभोपायो हि सस्तानां रसादीनां रसायनात्॥

—च० चि० १,६, ७-८

चरकोक्त रसायन गुणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रसायन आयु, कान्ति, स्वर, बल, वर्ण, मेधा आदि का वर्धक है। सुश्रुत एव वाग्भट में भी रसायनों का वर्णन उपलब्ध है। चरक सहिता मे लौहादि रसायन का उल्लेख है एवं अष्टाग सग्रह मे लौहरसायन का उल्लेख है किन्तु शारङ्गधर एव उपर्युक्त आचार्यों के योग भिन्न हैं। साथ ही अष्टाग सग्रह की निर्माण विधि भी किंचित दुष्कर प्रतीत होती है। —अ० अ० स० ३१ रसायन अध्याय।

१३ वी शताब्दी तक रस चिकित्सा का प्रचार एव प्रसार होने से शारगधर ने लौहरसायन मे पारद एव गन्धक का प्रयोग कज्जली के रूप मे किया है। उपर्युक्त रसायन शोधित व सस्कारित निम्नत. वर्णित है। यथा—

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग को कज्जली कर निश्चन्द्र होने पर तीक्ष्ण लौह चूर्ण को सममात्रा में मिश्रित कर १ पहर तक शुष्क ही मर्दन करें, जिससे वह उष्ण होकर प्रचुर मात्रा मे धूमोद्गम करने लगे। तदुपरान्त उसका गोला बनाकर ताम्र पात्र मे प्रक्षिप्त कर धान की राशि मे दबावें। यहा पर यह स्मरणीय है कि उपर्युक्त गोले के अध व समन्तात् एरण्ड पत्रो का आवरण अवश्य करना चाहिए। यह क्रिया ३ दिन की होगी, तत्पश्चात् गोले को ताम्रपात्र से निकाल कर खरल मे रख चूर्ण सेवन करायें।

पुन वन तुलसी, त्रिकटु क्वाथ, वासा, गिलोय (गुडूची), चीता, इन सभी के रसों से अलग-अलग धूप मे तीन-तीन बार भावित करे एवं शुष्क होने पर औपधि को पीस कर लौहपात्र में प्रक्षिप्त कर पुन त्रिफला क्वाथ, निर्गुण्डी स्वरस, दाडिमत्वक् स्वरस अथवा क्वाथ, कमल कन्द, भृगराज, कटसरैया, पलासत्वक् व कदली कन्द स्वरस, विजयसार क्वाथ, नीलीरस, गोरखमुण्डीक्वाथ, बबूल के अपक्व फलस्वरस, इन सभी के स्वरस व क्वाथो से भी तीन-तीन बार भावनाओ से भावित करें।

तदुपरान्त शतावरी स्वरस, गोक्षुर क्वाथ, पाताल वारुणी रस की भी तीन तीन भावनायें देवें। उपर्युक्त विधि के सम्पादन से लौह रसायन सिद्ध हो जाता है अत उसे शुष्क कर प्रयोगार्थ रखना चाहिये। –शा०पू०ख०अ० १२

शाङ्गधर ने मुगलकालानुरूप बाजीकर औषधियो का अधिकाशत प्रयोग किया है। इन औषधियो का प्रयोग वाह्य एव आभ्यन्तर भेद से प्रयुक्त है। यह आंगिक रूप में रसायन का भी कार्य करती है।



ऐसा प्रतीत होता है कि शारगधर के काल मे जन-समूह आयुष्य की कामना किञ्चित न्यून मात्रा मे रखते थे एव शारीरिक सौख्य अधिकाशत अभीष्ट था। यही कारण सम्भावित है जिससे शारगधर ने उस धारा को प्रवाहित रखने मे सहयोग के रूप मे वाजीकर औषधियो का बहुतायत मे प्रयोग किया है।

विचारणीय यह है कि शारगधर जैसा कुशल एव युगानुरूप चिकित्सक रसायन जैसी चिकित्सा पद्धति से अछूता रहा, इसका कारण क्या हो सकता है। इस दिशा मे विद्वानो को अपना विचार प्रस्तुत करना चाहिए।

अधुना मानव समाज मे देखने को मिलता है कि पुरुष यदि किसी कारणवश स्त्री सुख प्राप्त करने मे असमर्थ होता है तो उसका मानसिक सन्तुलन सन्तुलित नही रह पाता। इस प्रकार मनोदैन्य से ग्रसित पुरुष विभिन्न प्रकार के रोगो से ग्रसित हो जाता है।

मानव शरीर का कार्य स्वचालित यन्त्रवत् सम्पादित होता है। शरीर की अवस्थाये भी अवस्थानुसार बदलती रहती है। मानव शरीर क्रिया के अनुसार स्त्रिया ५० वर्ष एवं पुरुष अधिकाशत ६० वर्ष तक यह सुख अपनी अन्त स्रावी ग्रन्थियो के हार्मोन्स से प्रभावित होने के कारण प्राप्त करते है इसके पश्चात् यह औषधिया आशिक रूप मे ही प्रभावित होती हैं।

जरा व्याधि नाशार्थ रसायन का उपदेश किया गया है। शास्त्रो मे च्यवन-ऋषि का उल्लेख मिलता है जिन्होने च्यवनप्राश रसायन के सेवन से अपनी जरावस्था का त्याग किया। शार्ङ्गधर के सिद्धान्तानुसार जीवन की अवधि १२० वर्ष मानी गई है जिस अवधि को इन्होने दश-दश वर्ष की आयु मे विभाजित किया है।

यथा—बाल्य वृद्धिश्छविर्मेधात्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ।
बुद्धि कर्मेन्द्रियं चेतो जीवित दशयो ह्रसेत ॥

बाल्यावस्था, वृद्धि, छवि, मेधा, त्वक्दार्ढ्य, दृष्टि, शुक्रविक्रम (पराक्रम), बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, चेतस्थान (स्मृति), जीवित यह द्वादश स्थितियो में सम्पूर्ण जीवन शार्ङ्गधर द्वारा विभाजित किया गया है।

उपर्युक्त द्वादश अवस्थायें प्रायोगिक रूप मे अवश्य प्रशसनीय है। रसायन सेवन से इनका वर्धन सम्भावित है। क्योकि रसायन मुख्यत आयुष्य होने हैं एव आयुष्य होने से यह सभी गुण इसमे सन्निहित हैं। लौह रसायन रक्तकणो के निर्माण में मुख्यत कार्य करना है एव रक्त ही जीवन का आधार है।

उपर्युक्त लौह रसायन की सेवन विधिया—

प्रात काल मधु एव घृत मे १ तोला लौह रसायन का सेवन कर बला क्वाथ ४ तोला अनुपान के रूप में पीना चाहिये। इस विधि को ३ मास तक सेवन करने से वलीपलित रोग से मुक्ति मिल सकती है।

मन्दाग्नि, श्वास, कास, पाण्डु, कफ एव वायु के सयुक्त रहने पर पिप्पली एव मधु के साथ १ तोले की मात्रा मे सेवन का विधान है।

गुडूची सत्व के साथ मूत्रदोष, ग्रहणी एवं अण्ड वृद्धि मे प्रयुक्त किया जा सकता है।

लौह रसायन बल, वर्ण, वृष्य एव आयुष्यप्रदानार्थ परमोपयोगी है।

त्याज्य पदार्थ—

कुम्हडा (काशीफल), तिल तैल, उडद, मद्य सेवन एव अम्ल रस का त्याग करना चाहिये।

उपर्युक्त लौह रसायन को शारगधर ने सरल विधि से निर्मितकर चिकित्सको को चिकित्सार्थ सहयोग प्रदान किया है। मैं समझता हू १३वीं शताब्दी मे इस प्रकार का पारद व गन्धक युक्त लौह रसायन का चिकित्सकीय प्रयोग प्रशसनीय है।

रसायन पारद एवं जराव्याधि

डा० नीरज कुमार डिमोन्स्ट्रेटर एव डा० दामोदर जोशी रीडर
रसशास्त्र विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

डा० दामोदर जोशी का अपने विभाग के विवेचक डा० नीरजकुमार के साथ लिखा यह दूसरा लेख है। पारद को 'जरारुक् मृत्युनाशाय' कहा गया है। इस लेख मे पारद के रसायन गुण पर उपयोगी प्रकाश डाला गया है जिससे पाठक लाभान्वित होंगे। प्रथम लेख मे श्री जोशी ने धातोपधातु-रत्नोपरत्न आदि का जरा निवारकत्व सिद्ध करते हुए जहा पारद को छोड़ दिया था वहां इस लेख में पारद का वर्णन कर रसशास्त्रीय विषय की सर्वाङ्गीण पूर्ति कर दी है। —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

रसशास्त्र मे रस शब्द का प्रयोग पारद के लिए किया गया है और इसी के नाम पर ही इस शास्त्र का नाम रसशास्त्र पड़ा है।

पारद का रसायन गुण तथा महत्व

रसायन शब्द का प्रयोग पारद द्वारा निर्मित औषधियो के अर्थ मे भी पाया जाता है। नागार्जुन रस विद्या के प्रवर्तक माने गये हैं। उन्होने पारद एव विविध धातूपधातुओ का प्रयोग किया है। रस विद्या के मुख्यत दो ही उद्देश्य थे। एक लौह सिद्धि तथा दूसरा देहसिद्धि प्राप्त करना। लौह सिद्धि का अर्थ है कि कम मूल्य की धातुओ अर्थात् नाग, वग, यशद आदि को मूल्यवान धातुओ जैसे—सोना, चादी आदि में परिवर्तित करना तथा देह सिद्धि का अर्थ है कि शरीर को इतना मजबूत बना देना कि वह शारीरिक एव आगन्तुक व्याधियो से मुक्त रह सके। ये दोनो सिद्धियाँ (लौहसिद्धि एव देहसिद्धि) केवल मात्र पारद द्वारा ही सम्भव हैं। इसी अर्थ को ध्यान मे रखते हुए रसौषधियो को भी रसायन कहा जाता है।

पारद की इन दोनों सिद्धियो को प्राप्त करने के लिए पारद के अठारह सस्कार बताये गये हैं। जब पारद इन अठारह सस्कारो द्वारा सस्कारित हो जाता है तभी लौहसिद्धि तथा देहसिद्धि आदि गुणो को प्राप्त करता है। यदि पारद के केवल रसायन गुण की प्राप्ति करनी है तो उसके लिए प्रथम अष्ट सस्कार ही काफी हैं। जैसाकि रसरत्न समुच्चय मे कहा है—

'इत्यष्टौ सूतसस्कारा समाख्याते रसायने।'
—र० र० स० ११/[illegible]

रसायन

रसायन शब्द की निष्पत्ति दो शब्दो (रस+अयन) से मिलकर हुई हैं। इस शब्द का प्रयोग प्रसङ्गानुसार बहुत से अर्थों मे मिलता है। आयुर्वेद शास्त्र मे इस शब्द का प्रयोग पारद के लिए किया जाता है। द्रव्य गुण में षड्रसो (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय) के अर्थ मे है तथा शरीर क्रिया शास्त्र मे भोजन के परिपाक होने पर परिणामस्वरूप बनने वाले रस के अर्थ मे और रसादि धातु के अर्थ मे लिया जाता है। शास्त्रकारो ने रस को अन्न के परिपाक होने पर बनने वाले रस के अर्थ मे ग्रहण किया है। इसी रस के द्वारा शरीर की धातुओ का उत्तरोत्तर पोषण होता है। इसका पोषण न होने पर शरीर की अन्य धातुओ का पोषण नही हो पाता है तथा मनुष्य रोग से ग्रसित हो जाता है।

'रसति अहरहः गच्छति इति रस'



जो बराबर चलता रहे उसे रस कहते हैं। उसी धारणा के कारण जो शीघ्र सभी स्रोतों मे प्रवेश कर जाय उसे रस कहते है।

रसेश्वर दर्शन मे रस शब्द की निरुक्ति करते हुये कहा है कि यह मेरे शरीर का रस है। अत. इसको रस कहते हैं।

'मम देहरसो यस्माद्रसस्तेनायमुच्यते ॥'

अयन शब्द का प्रयोग मार्ग या प्राप्ति के अर्थ मे पाया जाता है। इस प्रकार रसायन शब्द का अर्थ प्रशस्त या उत्तम रस की प्राप्ति का साधन है।

पारद का संक्षिप्त विवरण

पारद रसशास्त्र का मुख्य स्तम्भ है और श्रेष्ठतम रसायन है। पारद प्रकृति मे मुक्त और युक्त दोनो अवस्था मे प्राप्त होता है। पारद का मुख्य खनिज हिंगुल है और मुख्यत' पारद की प्राप्ति इसी के द्वारा होती है।

भेद—

रसो रसेन्द्र सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा।
इति पञ्चविधो जात क्षेत्रभेदेन शम्भुज ॥

—र० र० स० १/६८

क्षेत्र (स्थान)—के भेद से रस शास्त्र मे पारद के पांच भेद मिलते है। रस, रसेन्द्र, सूत, पारद एव मिश्रक है।

रस—

रसनात, सर्वधातूना रस इत्यभिधीयते।
जरारुड्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसो मत ॥

—र० र० स० १/७७

यह स्वर्ण आदि समस्त धातुओ को अपने अन्दर द्रवीभूत (एकात्म) कर लेता है अत रस कहलाता है। यह जरा, रोग और मृत्यु का नाश करने के लिए सेवन किया जाता है। अत रस कहलाता है।

रसो रक्तो विनिर्मुक्त' सर्वदोषै. रसायन ।
सञ्जातास्त्रिदशास्तेन नीरुजा निर्जरामरा ॥

—र० र० स० १/६६

रस लाल रग का, सर्व दोषो से रहित तथा रसायन होता है। इसके सेवन करने से देवता लोग अजर और अमर हो गये। यह दुर्लभ है।

रसेन्द्र—

रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तित ।—र र स. १/७८

रसो और उपरसों में श्रेष्ठ होने के कारण इसे रसेन्द्र कहते हैं।

रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्त श्यामो रूक्षोऽतिचञ्चल ।
रसायनोऽभवत्तेन नागा मृत्युजरोज्झिता' ॥

—र० र० स० १/७०

रसेन्द्र दोषो से रहित, श्याम वर्ण का, रूक्ष, अति चचल और रसायन होता है। इसके प्रयोग से नाग (सर्प) जरा और मृत्यु से मुक्त हो गये। यह भी दुर्लभ है।

सूत—

देहलोहमयीं सिद्धि सूते सूतस्तत स्मृत ।

—र र स १/७८

देह सिद्धि और लोह सिद्धि का जन्म देने (प्रदान करने) के कारण यह सूत कहलाता है।

ईषत्पीतश्च रूक्षाङ्गो दोषयुक्तश्च सूतका ।

—र र स १/७२

सूत कुछ पीला सा, रूक्ष और दोषों से युक्त होता है।

पारद—

रोगपङ्काब्धिमग्नाना पारदानाच्च पारद । र र स १/७६
पारदो विविधैर्योगै सर्वरोगहर स हि। र र स १/७३

यह रोग रूपी कीचड मे फसे हुए प्राणियों का उद्धार कर, उनको रोगमुक्त कर, पार करता है अत पारद कहलाता है। यह श्वेत वर्ण का और चचल होता है। यह विविध योगो के रूप मे भिन्न भिन्न रोगों को दूर करता है।

मिश्रक—

सर्वधातुगतं तेजोमिश्रित यत्र तिष्ठति ।
तस्मात् स मिश्रक प्रोक्तो नानारूपफलप्रद ॥

—र र स १/७६

सब धातुओ का तेज इसमे एकत्र हुआ पाया जाता है इसलिए इसको मिश्रक कहते है। यह विविध फल देने वाला है।

मयूरचन्द्रिकाच्छाय स रसो मिश्रको मत'। र र स १/७४

मयूर पख की चन्द्रिका की छाया वाला पारद मिश्रक कहलाता है।

पारद प्रयोग की विधियाँ और उनका फल

मूर्च्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति।
अमरीकरोति हि मृत कोऽन्य करुणाकरः सूतात् ॥

—र र. स १/३४

मूर्च्छित अवस्था मे पारद रोगो को दूर करता है, बद्ध अवस्था मे प्रयोग करने पर यह मोक्ष को प्रदान करने वाला होता है । बद्ध पारद का मूर्तिवद्धत्व विशेष गुण होता है। इस अवस्था मे पारद, अग्नि में गर्म करने पर वाष्प बनकर नही उडता है । जबकि साधारण पारद उसी ताप पर भाप बनकर उड जाता है अर्थात् इस अवस्था मे पारद अग्निस्थायी हो जाता है ।

मृत अर्थात् भस्मीभूत पारद का सेवन करने से मनुष्य अमर हो जाता है । इस प्रकार पारद से अधिक दयालु कोई नही है ।

'निष्कम्पवेगस्तीव्राग्नौ आयुरारोग्यदो मृत ।"

—र. र स ११/१६

मृत पारद तीव्र आंच देने पर कम्पित नही होता और उडता नही है । यह पारद सेवन करने से दीर्घायु एव आरोग्य प्रदान करता है ।

पारद की भस्म बनाने की विभिन्न विधियो का वर्णन रसरत्न समुच्चयकार ने किया है । रसेन्द्रसार सग्रह मे पारद की चार प्रकार (श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण) की भस्मो का वर्णन है । ये चारो उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक गुणकारी होती है ।

श्वेत भस्म को कुछ लोग रसकर्पूर कहते हैं । पीत भस्म को सर्वाङ्ग सुन्दर रस भी कहते है । इसको १ रत्ती की मात्रा में पान के साथ सेवन करने से वृद्धावस्था दूर हो जाती है तथा सुख की प्राप्ति होती है ।

जराणानाशन श्रेष्ठरसद्वत् श्री सुखकारक ॥

—रसे सा स १/८३

रक्त भस्म को रस सिन्दूर कहते हैं । इसको उचित अनुपान के साथ प्रयोग करने पर यह अनेक रोगो मे लाभ दायक होती है ।

पारद की कृष्ण भस्म का प्रयोग तत्तत् रोगो मे उचित अनुपान के साथ करना चाहिए ।

पारद सेवन करते समय पथ्य और अपथ्य का विचार करना भी आवश्यक है । अत इसका नियमपूर्वक पालन करना चाहिए ।

पथ्यापथ्य—

जो मनुष्य पारद का सेवन करे उसे शुद्ध एव ताजा घी, सैधव नमक, धनियाँ, जीरा, अदरक आदि से सस्कारित चौलाई, परबल, लौकी आदि की तरकारियाँ गेहू, शालि चावल, गाय का दूध, दही, हसोदक और मूग का यूप सेवन करना चाहिए ।

पारद सेवन काल मे बडी कटेरी, बिल्व, पेठा, करेला, उडद, मसूर, मटर, कुलत्थ, सरसो, तिल आदि पदार्थ, उबटन, स्नान, मद्य, आसव, आनूप प्रदेशों के प्राणियो का मास, काञ्जी, केले या कासे के पात्रो मे गुरु, विष्टम्भी भोजन, तीक्ष्ण व उष्ण पदार्थो का सेवन नही करना चाहिए ।

इस प्रकार सस्कार किए हुए पारद मे रसायन, और मनुष्य को अजर व अमर बनाने की शक्ति है । पथ्य और अपथ्य का पालन करते हुए जो मनुष्य पारद का सेवन करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ।

रसायन की प्रशंसा मे कहा गया है कि जिस प्रकार देवताओ के लिए अमृत और सर्पों के लिए सुधा है. वैसे प्राचीन भारत मे महर्षियो के लिए रसायन का स्थान था। इसके प्रभाव से उनमे वृद्धावस्था, दुर्बलता नही आती थी और वे निरोग रहते थे तथा मरते नही थे ।

परिणामस्वरूप रसायन के सेवन से न केवल दीर्घायु की प्राप्ति होती है अपितु देवर्षियो के द्वारा प्राप्त होने वाली परम गति भी प्राप्ति होती है । मनुष्य प्रारम्भ से ही जरा, रोग एव मृत्यु को जीतने के लिए तत्पर रहा और इनकी प्राप्ति रसायन के द्वारा ही सम्भव होने से श्रेष्ठतम रसायम पारद और पारदीय रसौपधियो का आयुर्वेद चिकित्सा मे रसायन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है ।

रसायनकर्म का प्रत्यक्षीकरण

कवि० श्री देशराज बी०ए० आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली

वयोवृद्ध आयुर्वेदज्ञ कविराज श्री देशराज बी० ए० आयुर्वेदाचार्य ने इस वृद्धावस्था मे 'रसायन कर्म का प्रत्यक्षीकरण' शीर्षक लेख विशेषांक हेतु प्रेषित किया है जो धन्वन्तरि पत्रिका से आपके विशेष अगाध प्रेम का परिचायक है। पाठक आपके अनुभवो से लाभान्वित होगें—ऐसी आशा है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

वैद्य बन्धुओं का यह परम पुनीत कर्त्तव्य है कि जनस्वास्थ्य हितार्थ तथा आयुर्वेद के परमविकसित रूप को प्रमाणित करने के लिये आयुर्वेद के इस महत्वपूर्ण अंग को सारे जगत के सम्मुख पेश करें। जब तक किसी विज्ञान को प्रत्यक्ष प्रयोगो द्वारा सिद्ध न किया जाये आज का भौतिकवादी विज्ञानवादी यान्त्रिक मानव उस विज्ञान को स्वीकार नही कर पाता। चिकित्सा ग्रन्थो मे कुछ ऐतिहासिक नामो का उल्लेख है जिन पर रसायन परीक्षण किये गये थे। वे तरुण अवस्था प्राप्त कर सहस्र वर्ष या इससे भी अधिक जीवित रहे। उनका लक्ष्य था मोक्षलाभ—

एतद्रसायन पूर्वंविशिष्ट कश्यपोऽङ्गिरा ।
जमदग्नि भरद्वाजोभृगुरान्ये च तद्विधा ॥

हमारा आयुर्वेद के सिद्धान्तो मे पूर्ण विश्वास है और दृढ आस्था से उनका अनुकरण करते हैं। वैज्ञानिक और यान्त्रिक युग मे भी इस प्राचीन शास्त्र की महत्ता, उपादेयता और व्यवहारिक उपयोगिता को नकारा नही जा सकता। इसके गूढ रहस्यो को प्रकाश मे लाने की आवश्यकता है। रसायन प्रक्रिया का प्रत्यक्षीकरण के आस्थाहीन चिकित्सकों और चिकित्सक-इतर व्यक्तियो के लिये उल्लेख किया जा रहा है।

पाकिस्तान बनने के कुछ वर्ष पूर्व लाहौर महानगर मे हमने एक ६० वर्षीय रायबहादुर को वातातपिक रसायन का सेवन कराया था। कुटि प्रवेशिक रसायन एक कठिन प्रक्रिया है। इसके लिये कई साधन जुटाया जाने चाहिये। आज का मानव, अति व्यस्त है। उसके पास पंचकर्म चिकित्सा के लिये समय का नितान्त अभाव है। अज्ञानता के कारण रोगी वमन-विरेचन के नाम से ही भयभीत हो जाता है। इसी कारण हमने वातातपिक रसायन की योजना बनाकर राय बहादुर के सम्मुख रख दी और उन्होंने स्वीकृति दे दी। रायबहादुर मधुमेह के रोगी थे और चिन्ताओं से भी घिरे हुए थे। मधुमेह के साथ गृध्रसी रोग भी जुड़ा हुआ था। कुछ विक्षिप्त और भ्रम पीडित भी थे। थकान, मोह, तन्द्रादि अनुभव करना और यदा कदापि सिर का हिलना उपद्रव रूप मे थे। प्रतिदिन मेगनेशिया सेवन का व्यसन था। मानसिक और शारीरिक दौर्बल्य के अतिरिक्त वलिपलित से भी पीडित थे। मुख पर झुरिया स्पष्ट दीखती थी। मुख की सारी पेशियां और विशेषकर हनुकर्षणी पेशी एक दम शिथिल पड चुकी थी। सदा पलंग पर लेटे रहते थे और किसी काम मे रुचि नही रखते थे।

आमलकी रसायन सुवर्ण युक्त—आमलकी चूर्ण सहस्र वार आमलकी स्वरस से भावित १ ग्राम + लोहभस्म उत्तम सहस्रपुटी १/२ रत्ती + सुवर्ण भस्म १/४ रत्ती + मुक्ता भस्म १/२ रत्ती वाली एक मात्रा प्रात अनुपान मधु घृत असमान भाग। कुछ समयोपरान्त आमलकी रसायन की मात्रा २ ग्राम करदी गई थी। सुवर्ण भस्म की भी मात्रा १/२ रत्ती करदी गई थी। यह क्रम दो वर्ष तक चालू रहा था। पहले तीन मास रसायन का सेवन श्रद्धापूर्वक किया गया फिर कभी सेवन की और कभी नही की। तीन मास बाद जो फल अनुभव मे आया वह इस प्रकार है—विश्वास कीजिए, रायबहादुर की वाकयी काया-पलट गई। बलि का नितान्त अभाव, मुख पेशियो की त्वचा एक

—शेषांश पृष्ठ ६७ पर देखें।

जराप्रतिरोधक एवं जरानाशक रसशास्त्रीय द्रव्य एवं कल्प

डा० श्री दामोदर जोशी, रीडर रसशास्त्र विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू वि० वि०, वाराणसी ।



श्री जोशी जी की जन्मभूमि राजस्थान का ब्यावर नगर है और आपने आरम्भिक शिक्षा दीक्षा मथुरा मण्डल के गोवर्धन ग्राम में प्राप्त की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९५३ में प्रथम श्रेणी में आनर्स एवं स्वर्ण पदक सहित ए० एम० एस० उपाधि प्राप्त की और १९५९ में जामनगर से स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त कर १९७३ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपका कार्य क्षेत्र कई स्थानो पर रहा। १९५६ में आपने आयुर्वेद विश्व भारती सरदार शहर राजस्थान मे अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया। स्नातकोत्तर संस्थान जामनगर मे १९५९-१९६४ तक कार्यरत रहे और १९६४ से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्थान मे सेवारत है। बीच में तीन वर्ष (१९७५-१९७८ तक) स्नातकोत्तर शिक्षण एवं अनुसन्धान केन्द्र त्रिवेन्द्रम में कार्यरत रहे। सम्प्रति रसशास्त्र विभाग में वरिष्ठ अध्यापक हैं। आपके अनेक शोधपत्र एवं गवेषणात्मक लेख प्रकाशित हो चुके हैं और १५ स्नातकोत्तर छात्रो की थीसिस के निदेशक रहे हैं। हमारे आग्रह को स्वीकार कर आपने जरानाशक रस शास्त्रीय द्रव्य एवं कल्प शीर्षक लेख विशेषांक हेतु दिया है—जिसके लिए हम आपके आभारी हैं।

विद्वान लेखक ने जरा निवारणार्थ लोहो, रत्नोपरत्नो, शिलाजतु आदि खनिजो का सुन्दर सारगर्भित एवं उपयोगी विवेचन अपने इस लेख में किया है, जो पाठको की ज्ञान पिपासा को शान्त करने वाला है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

आयुर्वेद मे रोगो की चिकित्सा के बजाय प्राणियो के स्वास्थ्यरक्षण[1] पर विशेष जोर दिया गया है और सम्भवत. इसीलिए चरक चिकित्सा स्थान मे प्रथम और द्वितीय अध्याय पूरे का पूरे रसायन और वाजीकरण की दृष्टि से ही लिखे गये है तथा यही यह भी स्पष्ट किया गया है कि जो द्रव्य या कल्प स्वस्थ[2] पुरुष की ऊर्जा शक्ति (बल) को बढ़ाते हैं वे वृष्य या रसायन कहे जाते हैं और ये ही जराप्रतिरोधक[3] एवं जराविनाशक भी होते है। क्योंकि यह देखा जाता है कि वृद्धावस्था मे मनुष्य का बल क्षीण हो जाता है, उनकी सभी इन्द्रिया, अंग व अवयव शिथिल

---

[1] स्वस्थातुरपरायणम् आयुर्वेद'' यथावबधिरात्बुबुधे। —च. सू १/२४-२५

[2] स्वस्थस्योर्जस्कर यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम्। —च चि १/१/५

[3] दीर्घमायु स्मृति मेधामारोग्यं तरुण वय। देहेन्द्रिय बल परम्। —च चि १/१/८



तथा निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः जो चिकित्सा मनुष्य की इन्द्रियों, अंगों व अवयवों को सशक्त एवं सक्रिय बनाये रखे, वह अवश्य जरानिवारक होगी। इसी सिद्धान्त के आधार पर प्रस्तुत पत्र में ऐसे रसशास्त्रीय द्रव्यों एवं कल्पों का शास्त्रीय आधार के साथ विवरण प्रस्तुत किया गया है जो वृष्य, बल्य एवं रसायन हैं या जिनके द्वारा मनुष्य को वृष (बैल) या अश्व[1] के समान शक्ति सम्पन्न एवं निरोग रक्खा जा सके।

अध्ययन विधि एवं सामग्री—

प्रस्तुत विषय का अध्ययन आयुर्वेद और विशेष रूप से रसशास्त्रीय वाङ्मय पर आधारित है। उपर्युक्त वाङ्मय में जराहर, वृष्य एवं रसायन गुण वाले सभी रसशास्त्रीय द्रव्यों का संकलन कर द्रव्यानुसार संदर्भ सहित वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन का मुख्य आधार ग्रन्थ यद्यपि 'रसरत्नसमुच्चय' है, परन्तु अन्य उपलब्ध एवं प्रसिद्ध ग्रन्थों का भी अवलोकन किया गया है।

'वृष्य' एवं 'रसायन' गुण वाले द्रव्यों का इस प्रसंग में निर्देश का आधार निम्न चरकीय वचन है। यथा—

१ स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तु तद् वृष्यं तद्रसायनम्।

—च० चि० १/१/५

२ रसायनं तु तत्प्रोक्तं यज्जराव्याधिनाशनम्॥

—च० चि० १

इन वचनों मे यह स्पष्ट रूप में बताया गया है कि जो द्रव्य स्वस्थ पुरुष के ऊर्जा (बल) को बढाते हैं वे वृष्य और रसायन कहे जाते हैं। अर्थात् वृष्य एवं रसायन गुण वाले द्रव्यों के प्रयोग से स्वस्थ पुरुष के बल का अतिशय वर्धन होता है। फलतः उसमें जराजनित बलक्षय एवं शिथिलता नहीं आती और वह अपनी अधिकतम आयुपर्यन्त युवा के समान शक्ति सम्पन्न रहता हुआ बिना किसी रोग से आक्रान्त हुये जीवित रह सकता है।

रसायन की परिभाषा में तो स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि जो जरा और व्याधि रोगों का या जरारूपी व्याधि का नाश करता है वही रसायन होता है। अतः रसायन और वृष्य गुण वाले द्रव्यों का वर्णन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

रसायन और वृष्य गुण वाले द्रव्य यद्यपि रसशास्त्र के विकास के पूर्व भी आचार्यों द्वारा वर्णन किये गये हैं, यथा—आमलकी, शतावरी, यष्टी मधु, शङ्खपुष्पी, मण्डूकपर्णी आदि। परन्तु रसशास्त्र के विकास के पूर्व चिकित्सार्थ व्यवहृत होने वाले इन वानस्पतिक द्रव्यों में कुछ ही द्रव्य रसायन व वृष्य गुणों से युक्त होते थे। किन्तु रसशास्त्र के विकास के पश्चात् चिकित्सा में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होने वाले खनिज द्रव्यों में से अधिकांश खनिज रसायन और वृष्य गुणों से युक्त पाए गए। साथ ही इनके साथ यह भी सुविधा थी कि इन पर ऋतु एवं काल का भी कोई प्रभाव नहीं होता था। अर्थात् इन्हें एक बार शरीर में प्रयोग योग्य कल्प के रूप से परिणत करने के पश्चात् आवश्यकतानुसार कभी भी प्रयोग में लाया जा सकता है और इनकी इसी विशिष्टता के कारण जराप्रतिरोधक और जराविनाशक द्रव्यों में वानस्पतिक द्रव्यों की अपेक्षा रसशास्त्रीय खनिज द्रव्यों का एवं उनसे निर्मित कल्पों का स्थान सर्वोपरि हो गया।

लोहों (Metals) का जरानिवारणार्थ प्रयोग का निर्देश—

रसरत्न समुच्चय के पाचवें अध्याय में मृत लोहों के गुणों (Qualities) के निर्देश के प्रसंग में कहा गया है कि सभी लोह (Metals) मृत (भस्मीभूत) होने के पश्चात् रसीभूत हो जाते हैं। अर्थात् आहार रस के समान शरीर में शोषण योग्य हो जाते हैं तथा प्रयोग करने पर भयंकर से भयंकर रोगों का निवारण करने में तो समर्थ हो ही जाते हैं। साथ ही लम्बे समय तक यदि इनका निरन्तर सेवन किया जाय तो शरीर को ऐसा दृढ (बलवान) बना देते हैं कि इनके प्रयोग के पश्चात् न तो शरीर में किसी प्रकार के रोग ही पैदा हो सकते हैं और न जरा (बुढापा) ही आ पाता है। यदि किसी कारण से जरा (बुढापे) का प्रादुर्भाव हो भी गया हो तो शीघ्र ही उसका निवारण भी हो जाता है। यथा—

मृतानि लोहानि रसीभवन्ति निघ्नन्ति युक्तानि महामयांश्च।
अभ्यासयोगात् दृढदेहसिद्धिं कुर्वन्ति रुजन्मजराविनाशम्॥

—र०र०स०५/१३६

[1] वाजीव नि वर्धोहि · ··· · वाजीकरणमेव तत्।

—च० चि० २/१/१०

रसशास्त्रीय खनिज द्रव्यों के जराप्रतिरोधकत्व एवं जरानाशकत्व गुणों का निर्देश

सामान्य रूप से तो सभी खनिज द्रव्य, जिनका कि औषध के रूप मे व्यवहार करने का शास्त्र मे निर्देश मिलता है, प्रायः जराप्रतिरोधक एव नाशक होते ही हैं। परन्तु इनमे से जिनके विषय मे शास्त्र मे स्पष्ट रूप से निर्देश मिलता है उनका उद्धरण के साथ यहा निर्देश किया जा रहा है। शास्त्रीय द्रव्यो मे पारद का स्थान सर्वोपरि होने से पारद से ही यह वर्णन प्रारम्भ किया जाता है।

रस (पारद) Mercury—रस शास्त्र के सबसे अधिक महत्वपूर्ण द्रव्य पारद को शास्त्र में श्रेष्ठ रसायन गुण युक्त माना है और इसके विषय से कहा गया है कि शरीर को स्थिर[1] बनाने के लिए मूलवाले वानस्पतिक द्रव्य तथा खनिज लोहादि भी उतने उत्तम नही हैं जितना कि पारद। रसरत्न समुच्चय मे इसके पांच-प्रकारो का वर्णन किया गया है, परन्तु उनमे रस और रसेन्द्र[2] प्रकार ही रसायन गुणयुक्त माने गये हैं क्योकि ये सभी प्रकार के पारदीय दोषो से मुक्त हैं और इनके प्रयोग से क्रमश. देवता लोग और नाग लोग जरा, रोग और मृत्यु के भय से मुक्त हो गए थे। पारद के अन्य तीन प्रकार दोषयुक्त होने से रसायन गुण वाले नही माने गए हैं। इनका शोधन एव संस्कार होने से ही इनमे रसायन गुण की उत्पत्ति हो जाती है। रसतरगिणी के सप्तम तरग मे बताया गया है कि रसायनार्थ पारद का प्रयोग क्षेत्रीकरण के बिना नही करना चाहिए। अन्यथा देह सिद्धि के स्थान पर नाना प्रकार के क्लेश उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

अभ्रक (Mica)—अभ्रक के रस ग्रन्थों मे चार प्रकार बताये गये है और इन चारो ही प्रकारो को रसायन[3] गुण युक्त यद्यपि शास्त्र मे माना गया है किन्तु कृष्णाभ्रक उन सबसे कई करोड गुना अधिक श्रेष्ठ रसायन गुण वाला बताया गया है।

यही नही जहा अभ्रक के गुणो का निर्देश किया गया है वहा इसे 'प्रशमितजर[5]', वृष्य, और 'अत्यम्-आयुष्यं' कहा गया है। अर्थात् इसके प्रयोग से जरा का प्रशमन होता है, मानव वृषत्व को प्राप्त होता है और मानव की आयु बढाने मे श्रेष्ठतम द्रव्य है। अभ्रक के साथ ही अभ्रक से प्राप्त सत्व[6] मे भी श्रेष्ठ रसायन गुण विद्यमान होने का निर्देश मिलता है।

वैक्रान्त (Turmaline)—वैक्रान्त को रसरत्न समुच्चय मे अतिवृष्य[7]' और रसतरगिणी मे 'अति रसायन[8]' कहा गया है। इसके अतिरिक्त इसे वज्र (हीरक) के अभाव मे उसके स्थान पर प्रयुक्त करने का निर्देश भी मिलता है।

माक्षिक (Pyrites)—माक्षिक भी रसशास्त्र का एक बहुत ही महत्वपूर्ण खनिज द्रव्य है। इसे 'रसेन्द्र[9]' का प्राण कहा गया है तथा सभी रसायनो मे श्रेष्ठ और 'परमवृष्य' माना गया है। 'स्वर्णमाक्षिक[10] रसायन' के विषय मे कहा गया है कि इसका मधु के साथ सेवन करने से जरा रोग और अन्य सभी रोग और यहा तक कि मृत्यु भी रोकी जा सकती है। इसी प्रसग मे यह भी बताया गया है कि इसका निरन्तर सेवन करने वाला मनुष्य जरा, रोगो और विष के प्रभाव से कभी आक्रान्त नही होता।

---

1 तत्स्थैर्यं न समर्थं रसायन किमपि मूललोहादि। स्वयमस्थिरस्वभाव दाह्य क्लेद्य च शोष्य च ॥—र र स १/४०
2 रसो रक्तो विनिर्मुक्त सर्वदोषै. रसायन । रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्तो—रसायनोऽभवन् ॥—र र स. । ६६–७०
3 संजातास्त्रिदि शास्त्रेन नीरुजा निर्जरामरा. । ...... नागा मृत्युजरोज्झिता ॥—र र स १/६६–७०
4 चतुर्विधं वर व्योम मद्यप्युक्तं रसायने ।
तथापि कृष्ण वर्णाभ्रं कोटि कोटि गुणाधिकम् ॥ —र र. स. २/१०
5 प्रज्ञाबोधि प्रशमितजर वृष्यमायुष्यमत्यम् । —र र स २/१
6 एवं संशोधित व्योमसत्व सर्वं गुणोत्तरम् ।
यथेष्ट विनियोक्तव्यं जारणे च रसायने ॥ —र र स २/४६-५०
7 बलवर्णकरोऽतिवृष्यः। —र र स २/५५
8 वह्नि प्रदीपन करोऽति रसायनश्च। —र त. २३/१६७
9 प्राणो रसेन्द्रस्य पर हि वृष्य । सर्वरसायनाग्र्य । —र र स २/८०
10 ससेवित क्षौद्रयुत निहन्ति जरां सरोगात्स्वपमृत्युमेव । —र र स. २/६३

स्वर्णमाक्षिक (Chalcopyrite)—[illegible] ही एक प्रकार है। इसे आयुर्वेद प्रकाश व रसतरंगिणी में 'वृष्य' एवं 'रसायन' बताया गया है। तथा रसायन कर्म के लिए इसका प्रयोग मारण[1] के पश्चात् करने का निर्देश किया गया है।

विमल (Iron Pyrite)—माक्षिक के समान ही विमल[2] एवं विमल से प्राप्त सत्व [illegible] वृष्य एवं रसायन कर्मकर बताया गया है।

शिलाजतु—शिलाजतु के स्वरूप की दृष्टि से शास्त्र मे दो प्रकार बताये गये हैं, यथा—१. गोमूत्र शिलाजतु और २. कर्पूर शिलाजतु।

इनमे से गोमूत्र[3] शिलाजतु को रसायन गुण वाला माना गया है। इसके गर्भ मे विद्यमान धातु[4] तत्व के आधार पर इसके ४ या ६ और भेद भी शास्त्र मे किये गये हैं। उनमे से स्वर्ण[5] गर्भ शिलाजतु का श्रेष्ठतम रसायन माना गया है और कहा गया है कि यदि इसका रसायन विधान[6] से ६ मास तक सेवन किया जाय तो मनुष्य वृद्धावस्थाजन्य वलीपलित से निर्मुक्त होकर सौ वर्ष तक सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है। इसके विषय में आगे यहा तक कहा गया है कि सूतेन्द्र[7], महारस, उपरस और लोहो मे जो गुण विद्यमान है वे सभी गुण शिलाजतु मे भी रहते है। और सम्भवत इसी कारण यह जरा और मृत्यु को जीतने की क्षमता रखता है।

सस्यक (Blue Vitriol)—यह तुत्थ का खनिज स्वरूप है। रसरत्न समुच्चय मे इसे रसायन[8] गुणवाला माना गया है।

[illegible] (Bismuth) [illegible] है। इसे भी [illegible] [illegible] होगा।

उपरसवर्गीय द्रव्य—

गन्धक (Sulphur)—[illegible] दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण द्रव्य है। इसे [illegible] (श्रेष्ठ) रसायन[10] और मधुर [illegible] है। [illegible] प्रयोग के [illegible] कि यह [illegible] और, कुष्ठ रोग और मृत्यु [illegible] है।

हरताल (Orpiment)—[illegible] और [illegible] (Arsenic) का यौगिक है। इसका सूत्र As_2S_3 है। इसे बल-पुष्टि और [illegible][12] बताया गया है। [illegible] प्रसग मे आगे [illegible] कि [illegible] सत्व[13] शुद्ध होता है और [illegible] इसे कल्पार्थ प्रयुक्त होता है।

मनःशिला (Realgar)—यह भी [illegible] और गन्धक का यौगिक है। इसका सूत्र As_2S_2 है। इसे [illegible] सभी रसायनो मे श्रेष्ठ[14] माना गया है।

अञ्जन-नीलाञ्जन (Lead Sulphide)—यह गन्धक और सीसे धातु का यौगिक है। इसे गलेना [illegible] कहा जाता है। इसे भी रस [illegible] रसायन[15] गुणयुक्त माना गया है।

कंकुष्ठ—यह एक खनिज द्रव्य है। [illegible] नाम से [illegible] का प्रयोग हो रहा

---

1 एवं मृतं रसे योज्यं रसायन विधावपि। —र र स ३/८६

2 विमलोऽतिरसायन। र र स २/८६; सत्व मुञ्चति तद्युक्तो रस स्यान्न्रसायन। —र. र. स २/१०२

3 शिलाजतुर्द्विधा प्रोक्तो गोमूत्राद्यो रसायन.। —र र. स २/१०६

4 हेमाश्चरजतात्ताम्रवर कृष्णायसमारपि। रसायनं तत्...... ॥ —र चि ३/२/४८

5 स्वर्णगर्भगिरेर्जातो .... परमं तद्रसायनम् ॥ —र. र स २/१११

6 सेवेत यदि षण्मास रसायनविधानत.। वलीपलित निर्मुक्तो जीवेद्वर्षशत सुखी ॥ —र. र स २/११६

7 रसोपरस सूतेन्द्ररत्न लोहेषु ये गुणा। वसन्ति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया ॥ —र र स २/११६

8 रसायन वमनरेककर ....। —र. र स २/१२८ 9 त्रिदोषघ्नोऽतिरुचिकृत् ....। —र र स ३/१४५

10 गन्धाश्मातिरसायन सुमधुरः। —र र स ३/१६ 11 शुद्धो गन्धो हरेद्रोगान् कुष्ठ मृत्युजरादिकान्। —३/४५

12 स्यात्तालक बलपुष्टि वृषाग्निकारी।—३/६८ टीका 13 शुद्धं सत्वमादाय... रस रसाने। —र.र स ३/८७

14 मन शिलासर्वरसायनाग्र्या। —र र स. ३/६१ 15 नीलाञ्जन "रसायन सुवर्णघ्नम्"।—र.र स ३/१०४

है। और इस दृष्टि से यह एक वानस्पतिक द्रव्य है। इसे (Rhubarb) के नाम से प्राप्त किया जा सकता है। शास्त्रीय गुण धर्मों की दृष्टि मे इसे भी रसयोग निर्माणार्थ और रसायन[1] कर्मार्थ प्रयोग करने का विधान मिलता है।

हिङ्गुल(Cinnavar)—इसका रसशास्त्र में साधारण[2] रस वर्ग मे समावेश किया गया है। यह पारद और गन्धक का यौगिक है तथा पारद प्राप्ति का प्रधान स्रोत (खनिज) है। इससे ऊर्ध्वपातन विधि से पारद प्राप्त किया जाता है। इसे शास्त्रकारो ने उच्चकोटि का रसायन[3] गुणयुक्त द्रव्य माना है और शुद्ध करके एतदर्थ प्रयुक्त करने का निर्देश किया है। रसायन के साथ ही इसे वृष्य भी माना गया है।

आयुर्वेद मे खनिज द्रव्यो में प्राय उपर्युक्त खनिज ही ऐसे हैं जिन्हे शास्त्र मे रसायन, वृष्य एव बल्य बताया गया है। इनके अतिरिक्त रसशास्त्र मे कुछ पाषाण जातीय द्रव्यो (रत्नोपरत्नो) को तथा कुछ धातुओ (metals) को भी रसायन एव वृष्य गुणो से युक्त बताया गया है।

पाषाण जातीय द्रव्य (रत्नोपरत्न)—

हीरक (Diamond)—यह रासायनिक दृष्टि से यद्यपि केवल कार्बन का यौगिक है परन्तु[4] औषधीय गुणधर्म की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण द्रव्य है। इसे शीघ्र आयु बढाने वाला, वृष्य और अमृत के समान मृत्यु को जीतने वाला द्रव्य बताया गया है। रसतरङ्गिणी मे इसे 'परम[5]वृष्य' तथा 'सर्वोत्कृष्ट रसायन' बताया गया है। इसके प्रयोग से मनुष्य निश्चित रूप से जरा और व्याधियो से निर्मुक्त होकर लम्बे समय तक सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है।

मणियो के जहाँ सामान्य गुणधर्म बताए गये हैं वहा इन्हें 'देह के धारक[6]' तथा 'जराव्याधि विनाशक' बताया गया है। इस प्रकार सभी रत्नोपरत्न वर्गीय द्रव्य यद्यपि जराप्रतिरोधक एव जराविनाशक माने जाते हैं परन्तु हीरक उनमे सर्वश्रेष्ठ होने से उपर्युक्त कर्म की दृष्टि से भी विशेष उपयोगी माना गया है।

माणिक्य-राजावर्त्त-सूर्यकान्त—हीरे के अतिरिक्त माणिक्य (Ruby), राजावर्त्त (lapis lazuli) और सूर्यकान्त (Sun Stone)को भी शास्त्र मे रसायन[7] गुण युक्त बताया गया है।

धातुवर्गीय द्रव्य—

धातुवर्गीय द्रव्यो को प्राचीन ग्रन्थो मे 'लोह' शब्द से निर्दिष्ट किया गया है। तथा भिन्न-भिन्न समय मे इनकी सख्या भिन्न-भिन्न बताई गई है। इन्हे 'लोह' इसलिए कहा जाता था कि ये द्रव्य किसी खनिज से विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा कर्षण[4] करके प्राप्त किए जाते थे। और प्राचीन ग्रन्थो मे इस प्रक्रिया को 'सत्वपातन' कहा गया है। इन द्रव्यो की धातु सख्या बाद मे (रसेन्द्र चिन्तामणि के काल से) प्रसिद्ध हुई। और इसका आधार इनका शरीर पर होने वाला धारक प्रभाव था। अर्थात् ये द्रव्य शरीर धारण की दृष्टि से अत्यावश्यक होते है तथा इनकी कमी होने पर शरीर की स्थिति बिगड जाती है। अत इन्हे लोह के साथ-साथ धातु भी कहा जाने लगा।

शरीर धारण दृष्टि से प्राचीन आचार्यों ने निम्नांकित सात द्रव्यो को महत्वपूर्ण पाया और इनका 'सप्तधातव' इस प्रकार से निर्देश किया। ये सातो धातुएँ शुद्धरूप मे प्राप्त होती थी और शरीर धारण की दृष्टि से महत्वपूर्ण एव अत्युपयोगी थी। यथा—

सुवर्ण (Gold), रजत (Silver), ताम्र (Copper), लोह (Iron), नाग (Lead), वग (Tin) और यशद (Zinc)। इनमे से यशद धातु का ज्ञान एव इस वर्ग मे समावेश चौदहवी शताब्दी से हुआ। सामान्यरूप

---

1 रसे रसायते श्रेष्ठ ˙˙। —र र. स. ३/११२

2 गिरी सिन्दूर हिंगुलौ मुद्दारशृंगमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः। ३१

3 हिंगुल सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायन। सर्वरोगोहरो वृष्यो˙˙। —र र स ३/१४०

4 आयु प्रद झटिति सद्गुणद च वृष्य˙˙। मृत्युञ्जय तदमृतोपममेव वज्रम्। —र र स ४/३२

5 सुमृत हीरक वृष्य˙˙। योगवाहि मतञ्चैतत् सर्वोत्कृष्ट रसायनम्। —र त २३/२५

6 मणयोऽपिचविज्ञेया˙˙। देहस्यधारकानूणां जराव्याधि विनाशकाः। —र र स ४/१

7 माणिक्य सुमृत मेध्य मधुर तु रसायनम्। —र त २३/१७; दीपनः पाचनोवृष्यो राजावर्त्तो रसायनः। र र स ४/६ रविकान्तो भवेदुष्णो निर्मलश्च रसायन। —र. र. स ४/६

8 धातुर्लोह लह इतिमतः सोऽपि कर्षार्थवाचि। —र. र. स. ५/१



से तो उपर्युक्त सभी धातुएं जरा प्रतिबन्धन की दृष्टि से उपयोगी होती हैं परन्तु इनमे से निम्नांकित धातुएं विशेष रूप से उपयोगी मानी गई है।

सुवर्ण (Gold)—सुवर्ण को शास्त्र मे श्रेष्ठतम वृष्य[1], बृंहण एव वीर्य वृद्धि करने वाला द्रव्य बताया गया है। फलत इसके सतत प्रयोग से जरारूपी व्याधि का निश्चय-पूर्वक प्रतिकार किया जा सकता है। और इसीलिए इसे 'अजराकारि' कहा गया है।

रौप्य (Silver)—रजत को भी सुवर्ण के समान ही श्रेष्ठ वृष्य बृंहण और बलवीर्यवर्धक माना गया है। रसायन[2] विधि से इसका सेवन सभी प्रकार के रोगों को और विशेषकर जरारोग को दूर करने की शक्ति रखता है। एतदर्थ र र स मे 'रौप्य रसायन[3]' का निर्देश किया गया है।

ताम्र (Copper)—ताम्र यद्यपि बहुत विषैला (Toxic) द्रव्य है। और इसके विषय मे कहा गया है कि विष मे तो केवल एक ही दोष होता है किन्तु ताम्र मे आठ[4] भयङ्कर दोष (Toxic effects) विद्यमान रहते हैं। अत इसका प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। इसी प्रसङ्ग मे आगे यह भी कहा गया है कि सम्यक् शोधित एव मारित ताम्र[5] का यदि उचित मात्रा मे प्रयोग किया जाय तो निश्चय ही वह रस और रसायन दोनो कर्मों के लिए उपयोगी एव प्रयोज्य है। इसके रसायन गुण के कारण इसे जरा निवारणार्थ भी प्रयोग किया जाता है।

नाग (Lead)—नाग के विषय मे प्राचीन आचार्यों का कहना है कि नाग दोषों से विमुक्त होकर रसायन[6] गुणयुक्त हो जाता है। इसके दोषों के दूरीकरणार्थ इसके शोधन और मारण का आयुर्वेद मे विधान किया गया है।

वंग (Tin)—नाग के समान ही वंग भी एक शीघ्र द्रवित होने वाली धातु है। परन्तु प्राचीन आचार्यों ने इसे नाग समान दोषयुक्त नहीं माना है। इसका प्रयोग शोधन-मारण के पश्चात् या स्वयं वंग (तृणकान्त रसायन) के रूप मे करने का विधान किया गया है। वंग के विषय मे जो विशेष बात है वह उसका शुक्र धातु पर होने वाले प्रभाव को दृष्टिगत रखकर बताई गई है। शास्त्र मे यह स्पष्ट रूप मे बताया गया है कि वंग[7] का भक्षण करने वाले मनुष्य की शुक्रधातु का क्षय नहीं होता। वृद्धावस्था मे शुक्रधातु का क्षय ही प्रधान लक्षण है जो इसके द्वारा रोका जा सकता है। अत वंग उत्तम जराप्रतिरोधक एव जरानिवारक द्रव्य है। वंग[8] रसायन को ४ वल्ल की मात्रा मे रसायनार्थ प्रयोग करते हैं।

लोह (Iron)—'लोह' धातुवर्ग के अन्य द्रव्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण द्रव्य माना गया है। इसके दो कारण हो सकते हैं, यथा—१. इसकी अल्प मूल्य में सर्वत्र सुलभ उपलब्धि। और २ इसकी रक्त के एक आवश्यक तत्व के रूप मे शरीर मे उपस्थिति। और इसकी कमी होने पर रक्त की कमी होकर मनुष्य की जीवनीय शक्ति का ह्रास हो जाना। सम्भवत. इसीलिए शास्त्र मे लोह की एव लोह कल्पो की बड़ी प्रशंसा की गई है। यथा १. लोह के समान[9] उत्तम दूसरा कोई भी रसायन प्राणियों के लिए नही है। और २ औषध[10] द्रव्यों के सभी कल्पो

—शेषांश पृष्ठ १२५ पर देखें।

---

[1] गांगेय चाथ रूप्य गदहरमजराकारि—वीर्यवृद्धि प्रकारी। बृंहण वृष्यमग्र्यम्। —र. र स ५/९-१०

[2] रौप्य शीत—। रसायन विधानेन सर्वरोगापहारकम्। —र र स ५/२६

[3] रौप्य रसायनम्। —र र स ५/४०

[4] न विष विषमित्याहु स्ताम्र, तु विषमुच्यते। एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौदोषा. प्रकीर्तिता॥

[5] रसे रसायने ताम्र योजयेद् युक्त मात्रया। —र. र स ५/९९

[6] नाग दोष विनिर्मुक्त जायतेऽतिरसायनम्। —र. र स ५/७६ [7] वंग भक्षयतो नरस्य न भवेत् स्वप्नेऽपि शुक्रक्षय।

[8] चतुर्भिस्तुल्यकं स्तुस्य गुस्य वंगरसायनम्। —र र स ५/१६८

[9] सर्वव्याधि हर रसायन वर भौमामृतं नापरम्। —र. र स. ५/१३६

[10] सम्यगौषधकल्पाना लोहकल्प. प्रशस्यते। —र र. स. ५/६७

आंवला एक श्रेष्ठ रसायन

एवं

उसके जरा-व्याधि निवारक प्रयोग

वैद्य श्री बनवारी लाल गौड भिषगाचार्य, आयु-बृहस्पति, एम० ए०, मौलिक सिद्धान्त विभाग
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर (राजस्थान)



वैद्य बनवारी लाल गौड राजस्थानी परम्परा के सुयोग्य स्नातक हैं। आपने १९६६ मे भिषगाचार्य एव १९७४ मे आयुर्वेद बृहस्पति मे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। प्रथम श्रेणी मे संस्कृत मे एम० ए० किया। आप राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान मे व्याख्याता पद पर कार्यरत है। आप एक विद्वान एव प्रगतिशील नवयुवक है-जिनसे आयुर्वेद को बहुत आशायें हैं।

प्रस्तुत आंवला रसायन शीर्षक लेख मे शास्त्रीय प्रमाणो को उद्धृत कर आवला का प्रतिपादन किया है। आवला मे अमृत उत्पत्ति का वर्णन चरक संहिता के रसायनाध्याय मे बड़े सुन्दर ढंग से किया है। लेख पठनीय एव उपयोगी है। —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

शरीर के प्रशस्त भावो की अभिवृद्धि करके तथा शरीर स्थित दोषो के वैषम्य परक रोगो का विनाश करके मासादि का सौष्ठव करने में आवला सर्वोत्कृष्ट है अत जराव्याधि नाशनार्थ इसका प्रयोग श्रेष्ठ है। इसके निम्नलिखित गुण सुश्रुत ने कहे है—

अम्ल समधुर तिक्त कषाय कटुक सरम्।
चक्षुष्य सर्वदोषघ्न वृष्यमामलकी फलम्॥ —सुश्रुत

लवण को छोडकर पाच रसो से युक्त, सर, चक्षुष्य, त्रिदोषघ्न एव वृष्य है। चरक ने भी उपयुक्त सभी गुणो का निर्देश करते हुये आमलकी को श्रेष्ठ रसायन कहा है।

आमलकी सग्रहण—किसी भी द्रव्य से उसका वास्तविक लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे विधिपूर्वक, उचित काल, उचित स्थिति या स्वरूप को प्राप्त होने पर ही सग्रहीत करे, तभी उससे यथोक्त गुणो की प्राप्ति की जा सकती है, अन्यथा नही। द्रव्य का सग्रहण और सरक्षण दोनो ही श्रेष्ठ होने पर श्रेष्ठ फल को देने वाले होते हैं।

सग्रहण विधि—जो औषधि जिस स्थान पर देश, काल परिस्थिति के अनुसार उत्पन्न होती है वह औषधि वहीं पर श्रेष्ठ रूप मे प्राप्त होगी। किसी भी द्रव्य के सग्रहण मे निम्न तथ्य विचारणीय है—(जोकि आवले के सग्रहण मे भी उपयोगी एव आवश्यक है—

उपयुक्त स्थान, उचित काल, उचित विधि, आपूर्ण रसवीर्यत्व, प्रकृति की अनुकूलता, विकृति रहित[1]।

१ उपयुक्त स्थान—औषधियो की उत्पत्ति के लिये हिमालय सर्वश्रेष्ठ स्थान माना गया है। अतः वहा पर

---

[1] ओषधीना परा भूमिर्हिमवान् शैलसत्तम। तस्मात्फलानि तज्जानि ग्राह्यकालजानि तु॥
आपूर्ण रसवीर्याणि काले-काले यथाविधि। आदित्य पवनच्छायासलिल प्रीणितानि च॥
याम्य जाधान्यपूतीनि निर्व्रणान्य गवाति च। —च० चि० १/३८-४०



उत्पन्न होने वाली औषधियाँ आपूर्ण रसवीर्य वाली होती है। हिमालय की तराई मे होने वाला आँवला सर्वश्रेष्ठ होता है। अतः रसायनार्थ इसका उपयोग किया जाना चाहिये। यहाँ 'हिमालय का उल्लेख उपलक्षण मात्र है" ऐसा मानकर हिमालय जैसी जलवायु वाले अन्य स्थानो पर होने वाला फल भी श्रेष्ठ होता है। आँवले के सम्बन्ध मे यह ध्यान देने योग्य बात है कि जगल मे उत्पन्न होने वाले आवले की अपेक्षा जनपद मे होने वाला आवला श्रेष्ठ होता है।

२. उचित काल—फल-सग्रहण के प्रसङ्ग मे काल को द्विधा विभक्त कर सकते हैं—फल का अनुकूल ऋतु-काल, फलपाक-काल। अनुकूल ऋतु काल का तात्पर्य है—जिस ऋतु मे फल प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होता है वह इसकी अनुकूल ऋतु है। बिना ऋतु के आने वाले फल निषिद्ध है। फलपाक काल का तात्पर्य है कि उचित ऋतु होने पर भी एक ही पेड़ के फल कुछ आगे पीछे पाक को प्राप्त होते है, अत. जो फल पाक को प्राप्त हो गया है उसे ही ग्रहण करना चाहिए। बिना ऋतु का फल एव ऋतु मे भी अपक्व फल का ग्रहण नही करना चाहिए।

३ उचित विधि—मगलाचार, एव कल्याणकारी कार्य करने वाला व्यक्ति स्वच्छ एव सफेद कपडे पहनकर देवता, अश्विनीकुमार, गाय इत्यादि की पूजा करे तथा उपवास किया हुआ वह व्यक्ति पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर औषधि को सग्रहीत करे[1]। औषधियो की प्राप्ति के लिए उचित नक्षत्र और श्रेष्ठ मुहूर्त भी देखना चाहिये, क्योकि औषधियो पर नक्षत्रो का निश्चित प्रभाव पड़ता है। यद्यपि यह समस्त आचरण वर्तमान वैज्ञानिक युग मे अनावश्यक सा प्रतीत होता है पर आध्यात्मिक प्रवृत्ति एव दैव व्यपाश्रय तथा सत्त्वावजय चिकित्सा को मानने वाले आयुर्वेद शास्त्र मे यह अत्यन्त उपयोगी है। इससे परम मानसिक सन्तुष्टि भी मिलती है, जोकि रसायन के लिए महत्वपूर्ण है तथा नक्षत्रो का औषधियो पर होने वाला प्रभाव तो सुस्पष्ट है ही।

४. आपूर्ण रसवीर्यत्व—फल मे पूर्ण रस एव वीर्य की निष्पत्ति होने पर ही ग्रहण करना चाहिऐ, यह निष्पत्ति उचित काल मे पूर्ण विपक्व फल मे सम्भव है।

५ प्रकृति की अनुकूलता—उपयुक्त ऋतु मे उत्पन्न होने पर भी प्रत्येक औषध द्रव्य के लिए सूर्य, हवा, छाया और जल उचित मात्रा मे ठीक समय पर मिलना आवश्यक है।

६. विकृति रहित—ऋतु आदि सब कुछ ठीक होते हुए भी प्राणियो द्वारा खाये हुए, सडे हुए, अपवित्र एवं रोगयुक्त औषध या फल ग्राह्य नही है।

इस प्रकार से उपर्युक्त ७ उपशीर्षकों मे वर्णित तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए उत्कृष्ट आमलकी फल का ग्रहण करना चाहिए।

आमलकी का जरानाशक रूप

आमलकी एक श्रेष्ठ रसायन और औषध द्रव्य है, जरा-नाशन मे इसका प्रभाव निम्न रूपेण स्पष्ट है—

१. दीपन-पाचन—शल्य मासादि स्वरूप वाली 'जरा' की प्राप्ति अग्निमूलक है। क्योकि यह एक स्वाभाविक रोग है जो धीरे-धीरे धातुओ के जर्जरित होने से प्राप्त शैथिल्य के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रक्रिया मे निश्चय ही जठराग्नि का भी महत्वपूर्ण योगदान है क्योकि इसकी विकृति या मन्दता के होने पर ही अन्य धात्वग्नियो एवं भूताग्नियो की स्थिति पर प्रभाव पडता है। यथा—

"तेषा सादाति दीप्तिभ्या क्षयवृद्धिक्षयोद्भव.।"

—अ० हृ०

यह निश्चित है कि जठराग्नि की विकृति से सम्पूर्ण अग्निया भी विकृत होगी, जिसके फलस्वरूप धातुओ की न्यूनता एव शैथिल्य दोनो होगे। ऐसी स्थिति मे काल भी अपना प्रभाव दिखायेगा अर्थात् अत्यधिक समय से क्रियारत धातु जीर्ण होने की स्थिति मे तो थे ही अग्नि ने उन्हे और अधिक एव शीघ्रतापूर्वक जीर्ण होने का अवसर दिया। यदि अग्नि श्रेष्ठ रहे तो निरन्तर श्रेष्ठ पोषण की प्राप्ति एव शरीरस्थ प्रशस्त भावो का अभिवर्द्धन जरा को नही आने देता। इसीलिए अग्नि की प्रशस्ति मे आचार्य चरक ने कहा है—

आयुर्वर्णो बल स्वास्थ्यमुत्साहोपचयौ प्रभा।
ओजस्तेजोऽग्नय प्राणाश्चोक्ता देहाग्निहेतुका ॥

[1] चरक कल्प स्थान १/१०

शान्तेऽग्नौ म्रियते, युक्ते चिर जीवत्यनामय ।
रोगी स्याद्विकृते, मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥

यहाँ पर अग्नि को आयु, वर्ण, वल आदि का हेतु तो वताया ही है, साथ ही "युक्ते चिर जीवत्यनामयः" से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि अग्नि सम्यक् रहे तो व्यक्ति दीर्घ समय तक विना किसी भी व्याधि के जीवित रहता है। इस वाक्य से जरा का निषेध भी गृहीत हो जाता है, क्योकि जरा एक स्वाभाविक आमय (रोग) है और अनामय से किसी भी रोग का निषेध है, यह उपयुक्त भी है। आवला मधुर रस एव शीतवीर्य होने के कारण निवृद्ध पित्त को शान्त करता है जवकि अम्ल रसयुक्त होने के कारण दीपन–पाचन का कार्य भी करता है। ये दोनो ही कार्य अग्नि को व्यावस्थित रखने मे महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। अत इससे व्यावस्थित अग्नि निरन्तर प्रशस्त भावो की अभिवृद्धि करते हुए आयु, वर्ण, वल आदि की वृद्धि कर व्यक्ति को स्वस्थ (अनामय) रखती हुई लम्बे समय तक जीवित रहने का अवसर प्रदान करती है। उसके मासादि धातु उचित पोषण की प्राप्ति के कारण शिथिल नही होते।

२ अनुलोमन–आवले का यह गुण भी जरानाशक है। त्रिदोष एव अग्नि का प्रधान स्थान महास्रोतस् होने के कारण त्रिदोष की थोडी सी विकृति भी अग्नि को विकृत कर देती है। तीनो दोषो मे भी वात का प्राधान्य तथा वात के भी भेद अपान वायु का विकृतिकारक स्वभाव सर्व विदित है। अत विकृत एव मलभूत अपान वायु का अपने वास्तविक मार्ग (गुदा) के द्वारा निस्सरण होता रहे तो सहज ही वायु का प्रकोप नही होता। यदि वायु का अनुलोमन नही हो तो प्रतिलोम वायु पित्त, कफ एव अग्नि को विकृत करता हुआ अनेक व्याधिया उत्पन्न कर सकता है। आवला दीपन, पाचन एव अनुलोमन होने के कारण सम्पूर्ण महास्रोतस् को प्रेरणा देता रहता है, अत महास्रोतस् का कार्य व्यवस्थित होता है। अनुलोमन होने के कारण मल एव विकृत अपानवायु को बहिर्भूत करते रहने से भी आहार का विपाक और धातुपाक प्रक्रिया व्यवस्थित रहती है, परिणामस्वरूप जरा का प्रभाव नही होता। यदि "जरा" व्याप्त भी हो गई हो तो उसका निवारण हो जाता है।

३ इन्द्रिय शक्तिवर्द्धक—आयुर्वेद मे इन्द्रियो को भी भौतिक माना गया है। प्रत्येक का आरम्भक द्रव्य एक-एक महाभूत होता है।[1] पाञ्चभौतिक आहार से शरीर के पाञ्चभौतिक स्वरूप का पोषण होता है। अतएव किये गये आहार का प्रकृति-परक या विकृति-परक कैसा भी प्रभाव इन्द्रियो पर अवश्य होगा। आँवला त्रिदोष-नाशक होने के साथ ही प्रशस्त भावो की अभिवृद्धि करने वाला भी है। इस प्रकार सभी कारणो से इन्द्रियो को अधिक वल मिलने के कारण वे अधिक श्रेष्ठ कार्य कर सकती हैं।

४. वय स्थापन—चरक ने शरीर पर होने वाले प्रभावो को ध्यान मे रखते हुए समान कार्य करने वाले द्रव्यो को एक गण मे निर्दिष्ट किया है। अत जो द्रव्य वय (अवस्था) को स्थापित करें वे वय स्थापन है। यहाँ अवस्था का तात्पर्य तरुणत्व है। क्योकि आयु के शास्त्र (आयुर्वेद) मे श्रेष्ठ अवस्था (जोकि तरुण अवस्था है) जिसमे रसादि धातु अत्यधिक पुष्ट और इन्द्रिया अधिक शक्ति सम्पन्न होती हैं। वही अभीष्ट है। यथा हि—

"वयस्तरुण स्थापयतीति वय स्थापनम्। (चक्रपाणि)

आवला अपने श्रेष्ठ गुणो के कारण अग्नि को व्यवस्थित करता है तथा ऊपर वताये गये तीन कारणो के फल स्वरूप शरीर को स्वस्थ वनाये रखता हैं। अत वयः स्थापन है।

सारांश—

आँवले के जरानाशक स्वरूप के विषय में, यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा द्रव्य है जो श्रेष्ठ आयु के लिए उपयुक्त सभी कार्य स्वय सम्पन्न कर लेता है जैसे कि आहार से वाञ्छित फल-प्राप्ति के लिए, अग्नि को समुचित करते हुए उसके लिए ईधन स्वरूप आहार भी स्वय वनता है तथा प्रसाद भाग को प्राप्त होकर सभी धातुओ की पुष्टि के साथ-साथ समस्त पाञ्चभौतिक तत्वो का आप्यायन करता है। अत आमलकी श्रेष्ठ जरानाशक द्रव्य है।

[1] च० सू० ८/६



व्याधि विध्वंसि स्वरूप

शरीर को जो पीटित करे वही रोग या व्याधि है। जैसाकि बनाया जा चुका है जरा भी एक स्वाभाविक व्याधि है जोकि शरीर की जीर्णता के कारण प्राप्त हुए मासादि शैथिल्य का ही नाम है। अन्य व्याधिया भी परोक्ष रूप से जरा की सहायता करती है, अर्थात् शरीर को निरन्तर पीडित करती हुई व्याधियाँ मासादि के शैथिल्य को उत्पन्न करती है। विनाव्याधियो के शरीर मे "जरा" जल्दी व्याप्त नही होती हे। अत ऐसे द्रव्य जो जरा को साक्षात् रूप से नष्ट करते हैं वे "रसायन" हैं तथा जो व्याधि को नष्ट करते हुए प्रशस्त भावो की अभिवृद्धि कर परोक्ष रूप से जरा का नाश करते है वे भी "रसायन" है। इसी विषय का हम तीन प्रकार से विश्लेषण-पूर्वक विवेचन कर सकते हैं—

१ रसायन होते हुए भी व्याधि विध्वंसि

कुछ योग प्रमुख रूप से स्वस्थ के स्वास्थ्य की अभिवृद्धि करते हुए भी रोग का विनाश करने की क्षमता रखते हैं यथा—च्यवनप्राश, ब्राह्म रसायन आदि।

२ व्याधि विध्वंसि होते हुए भी रसायन—

कुछ योग ऐसे होते है जो प्रमुख रूप से व्याधि का नाश करते हुए भी रसायन का कार्य करने की क्षमता रखते हे—यथा—सर्पिर्गुड, योगराज रसायन आदि।

३ व्याधि विध्वंसि—

कुछ योग ऐसे होते हैं जो व्याधि का ही विनाश कर सकते है यथा—हिंग्वादि गुटिका, किराततिक्तकादि क्वाथ आदि।

आँवले मे रसायन के साथ-साथ व्याधि विध्वंसि गुण भी हैं। यह अपना व्याधि विध्वंसि स्वरूप निम्न प्रकार से दिखाता हैं—

१ त्रिदोषनाशक—रोग का प्रधान हेतु हैं वातादि का वैषम्य। अतः रोग के निराकरण हेतु इनको सम-स्थिति मे लाना आवश्यक हैं। प्रत्येक दोष के शमन के लिए प्राय पृथक-पृथक द्रव्यो का प्रयोग करना पडता है, जबकि आँवला एक ऐसा द्रव्य हैं जो प्रत्येक दोष को शान्त करने की क्षमता रखता हैं—यथा—

'अम्ल रस होने से वात को, मधुर रस एवं शीत वीर्य होने से पित्त को तथा कषाय रस एवं रूक्ष गुण युक्त होने के कारण कफ को नष्ट करता हैं। अत अकेला आँवला तीनो दोषो को नष्ट करने की क्षमता रखता हैं।

२. अग्निवर्धक—सम्पूर्ण चिकित्सा का आधार अग्नि हैं। यथा—'अग्निमूलं चिकित्सितम्'। रसायन के प्रकरण में इस विषय को स्पष्ट कर दिया हैं कि किस प्रकार आँवला अग्नि की अभिवृद्धि कर वाञ्छित फल की प्राप्ति करवाता हैं। यहाँ मात्र यही कहना पर्याप्त हैं कि आँवला अग्नि को व्यवस्थित करता हुआ रोग के नाश मे कारण भूत हैं।

३. विरेचनोपग—काय चिकित्सा मे पञ्चकर्म एक महत्वपूर्ण चिकित्सा है, जिसके द्वारा वात, पित्त एवं कफ का संशोधन किया जाता है। आँवला अपने गुणो के कारण पित्त के संशोधनार्थ प्रयुक्त विरेचन कर्म मे सहायक रूप मे प्रयुक्त होता है। अत ऐसे पित्तदोषज रोग जिनमे विरेचन कर्म प्रयुक्त है उन रोगो के विनाश मे आँवले का भी "विरेचनोपग" रूप मे सहयोग है।

पृथक्-पृथक् रोगो के विनाश की शक्ति—संक्षेप में यहाँ कुछ रोगो मे प्रयुक्त आमलकी की प्रधान योगो के उल्लेख से यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि आँवला अनेक रोगो को दूर करने की शक्ति से सम्पन्न है यथा—

ज्वर—त्रिफलादि क्वाथ

रक्तपित्त—खर्जूरादि तर्पण, अम्लरस के रूप मे प्रयोग (च चि. ४/३५)

गुल्म—आमलकादि घृत।

प्रमेह—त्रिफलाभावित यव, हरिद्रा चूर्ण के साथ आमलकी स्वरस, आमलकी स्वरस का कम्पिल्लकादि कल्क के साथ प्रयोग।

कुष्ठ—त्रिफलादि चूर्ण, त्रिफलासव, त्रिफलादि क्वाथ, महातिक्तक घृत, महाखदिर घृत।

अपस्मार—नस्यार्थ त्रिफलादि तैल।

क्षतक्षीण—सर्पिर्गुड (प्रथम)

पाण्डु—धात्र्यरिष्ट

नेत्ररोग—धात्र्यादि रसक्रिया

चरकोक्त आमलकी प्रधान रसायन—

चरक ने चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय में जिन रसायन योगो का उल्लेख किया है उनमे कुछ आंवला प्रधान योगो का उल्लेख मात्र किया जा रहा है—

यथा—आमलकावलेह, च्यवप्राश, द्वितीय ब्राह्म-रसायन, हरीतक्यादि योग, आमलक चूर्ण आमलकायस ब्राह्म-रसायन, चतुर्थामलक रसायन, केवलामलक रसायन, आमलक घृत आदि।

अन्य द्रव्यो के साथ—यद्यपि उपर्युक्त रसायन योगो में भी अन्य द्रव्यो का सयोग है, तथापि प्रधान द्रव्य आमलकी ही है। अब कुछ एसे योगों का उल्लेख किया जा रहा है जिनमे प्रधान द्रव्य या तो आंवला है या दुसरा द्रव्य प्रधान है तो भी आंवले का महत्व होने के कारण उन योगो का भी यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

पचमी हरीतकी योग, ब्राह्मरसायन, लौहादि रसायन, त्रिफला रसायन आदि।

आमलक चूर्ण (रसायन)—

निर्माण विधि—आवले का चूर्ण २ किलो लेकर उसमे आवले के स्वरस की भावना दें। रस के लिये आवले की मात्रा निश्चित नही है किन्तु इतना निश्चित है कि आंवले का चूर्ण आवले के रस से २१ दिन तक परिप्लुत रहना चाहिये। अत बार-बार आवले का रस डालते रहना चाहिये। ज्यादा उपयुक्त तो यही होगा कि चूर्ण मे रस की २१ भावनायें प्रथक-प्रथक रुप से दी जावें। अन्त मे जब शुष्क हो जाय तो उस चूर्ण मे मधु २ किलो, घृत २ किलो, पिप्पली चूर्ण २५० ग्राम, मिश्री ५०० ग्राम। सब मिलाकर घृतभावित पात्र मे रखकर पात्र को बन्द करके आषाढ के महीने में भस्म राशि (राख के ढेर) में गाढ दे, तथा वर्षाऋतु मे उसे निकाल कर रख ले।

सेवन विधि—अग्नि बल के अनुसार रसायन विधि से सेवन करने पर उत्कृष्ट लाभ प्राप्त होता है। इसक रसायन विधि के बिना भी सेवन करने पर उत्तम फल प्रदान करता है।

जरा प्रतिरोधक एव जरानाशक रस शास्त्रीय द्रव्य एव कल्प : पृष्ठ १२० का शेषांश

मे लोह कल्प विशेषरूप से श्रेष्ठ एव उपयोगी होते हैं।

लोह के शास्त्र मे कई प्रकार बताए गए हैं यथा—मध, तीक्ष्ण और कान्त और इनके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार लोहकिट्ट (मण्डूर) है। इनमे से लोहकिट्ट सामान्य गुण वाला तथा कान्तलोह सबसे श्रेष्ठ गुण वाला होता है। कान्तलोह के विषय मे कहा गया है कि यह सर्वोत्तम[1] होने से इसी का सर्वदा सेवन करना चाहिए क्योंकि इससे जरा और मृत्यु का हरण होता है। कान्तलोह की भस्म के लिए शास्त्र मे कहा गया है कि इसके समान उत्तम दूसरा कोई भी अमृत तुल्य श्रेष्ठ रसायन इस पृथ्वी पर नही है जितनी कि अपुनर्भव भस्म। शास्त्र मे इसके लिए दी गई 'दिव्य अमृत' संज्ञा और 'सिद्धरसायन[2]' संज्ञा इसके महत्व को बताने के लिए पर्याप्त है। यह एक निष्क की मात्रा मे सेवन करने पर मनुष्य को जरा, मृत्यु और व्याधि सभी से मुक्त कर देता है। अत जरा प्रतिरोधार्थ, कान्त-लोह की भस्म सर्वश्रेष्ठ द्रव्य का कल्प है।

धातुओ और खनिजो के अतिरिक्त कुछ प्राणिज द्रव्य और कुछ विषवर्गीय द्रव्य भी रसायन गुण वाले है अत. उनका भी प्रयोग जराव्याधि मे हो सकता है। उदाहरणार्थ 'भूनागसत्व 'मुक्ता भस्म पिष्टी', ,तथा वत्सनाभ और भल्लातक आदि।

विषवर्गीय द्रव्यो के विषय मे शास्त्र मे लिखा गया है कि यदि इनका ठीक से शोधन कर उचित मात्रा मे प्रयोग किया जाय तो निश्चय ही ये अमृततुल्य फलदायक एवं रसायन गुण युक्त हो जाते है।

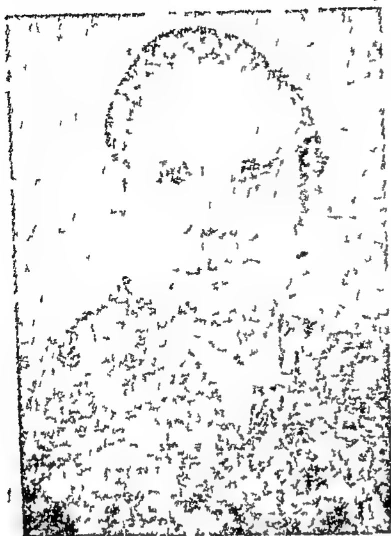
धन्यवाद प्रकाश—इस पत्र के लेखन मे मुझे मेरे प्रिय सहयोगी डा० विश्वनाथ शर्मा का बहुत सहयोग प्राप्त हुआ है एतदर्थ उन्हे हृदय से धन्यवाद देता हू।

1 तस्मात्कान्त सदासेव्य जरामृत्युहर परम्। —र र स ५/१४८

2 एतत्स्यादपुनर्भव हि भासित लोहस्य दिव्यामृत। सम्यक् सिद्ध रसायन···। हन्यान्निष्कमित जरामरण अव्याधीश्च···। —र र स ५/३७

रसायन की उपयोगिता एवं ब्राह्म रसायन

श्री कृष्णगोपाल गुप्त, वरिष्ठ चिकित्सक–राज० आयुर्वेदिक 'अ' श्रेणी चिकित्सालय, भरतपुर (राज०)



ब्राह्म रसायन निर्माण विधि—

हरड एक हजार, आवला तीन हजार पाँचो पन्चमूल २५० पल दस गुने पानी मे डालकर पकावें। (एक हजार हरड का वजन टीकाकारो ने साढे बारह सेर तथा तीन हजार आवलो का वजन साढे सेतीस सेर लिखा है) चरक सहिता मे पाँचो पन्चमूल दस-दस पल डालने को लिखा है किन्तु अष्टाग हृदय ने २५० पल अर्थात बारह सेर चालीस तोला लिखा है। पाचो पन्चमूल निम्न प्रकार हैं—

१ शालपर्णी पृष्णपर्णी छोटी कटेरी बडी कटेली गोक्षरु।

२ वेल की छाल, अरणी, श्योनाक की छाल खम्मारी की छाल पाढल की छाल।

३ मापपर्णी मुद्गपर्णी पुर्ननवा, वीरपार और एरण्ड की छाल।

४ जीवक-ऋषभक-मेदा जीवन्ती और शतावर।

५. ईख, कुश, कान्त और शाठी धान की जड।

हरड और आवले को क्वाथ मे एक कपडे की पोटली मे बाधकर उबालना चाहिये। क्वाथ जब पानी का दशवा भाग रह जाये तब उतार लेना चाहिये एव क्वाथ छानकर अलग वर्तन मे रख लें हरड और आवले की गुठली निकालकर एक मोटे कपडे मे छानकर पिष्टी बना लें। इस पिष्टी को दो आढक तिल का तेल डालकर भूने फिर तीन आढक गाय का घी डालकर भूने। जब अच्छी तरह भुन जाये तब उतारकर अलग रख लें। फिर एक कलई-दार वर्तन मे काढा डालकर उसमे ग्यारह पल मिश्री कूट कर डाल दे एव मन्द-मन्द आग पर पकावें। जब एक तार की चाशनी बन जावे तब आवमेव हरड की पिष्टी डालकर अच्छी तरह डालकर पकावे। फिर इसे नीचे उतारकर इनमे मण्डूक पर्णी, छोटी पीपल, शखपुष्पी, ब्राह्मी, नागकेसर, नागरमोथ वायविडग, लाल चन्दन, अगर, मुलेठी, हल्दी, बच, छोटी इलायची और दालचीनी प्रत्येक चार चार पल कूटकर कपडे मे छान कर मिला दें। फिर इनमे ढाई आढक शहद मिला दें। और ठण्डा होने पर चिकनी हाडी मे भरकर रख लें। यह ब्राह्म रसायन है। इसकी मात्रा कम से कम एक तोला है। वैसे जितना पच जावे उतना सेवन कराया जा सकता है।

पथ्य मे दूध साठी चावल देना चाहिये। यह रसायन आयुवर्धक, बलवर्धक मेधा और स्मरण शक्ति को बढाता है। यह रसायन ब्रह्माका बताया हुआ है। इसे चालीस दिन तक सेवन करना चाहिये एव पथ्य मे उपरोक्त साठी चावल एव गाय का ठण्डा किया हुआ दूध देना चाहिये। दूध मे चीनी नही डाले। आवश्यकता हो तो मधु डाल सकते हैं। रसायन सेवन के लिये काली या लाल रग की गाय उत्तम होती है। वह भी एक बार की वियाई हो। हृष्ट-पुष्ट निरोग हो। उसका बच्चा जीवित हो एव मां के रग का हो। गाय मरखनी एव गरम मिजाज वाली न हो। उसके सीग ऊँचे हो उसका दूध गाढा हो। रसायन सेवन काल मे गाय को गेहू का आटा या भूसी नही देनी चाहिये। गाय को बलवर्धक तथा हृदय रोग नाशक जडियो व बूटियो के पत्ते खिलाना, उडद की चूनी खिलाना उत्तम लाभदायक है।

इस प्रकार से इस रसायन को सेवन करने से बुढापा दूर होकर निरोग रहता है। रसायन सेवन से पूर्णतय काया कल्प हो जाता है।

आयुर्वेद की एक नई रसायन-औषधि—

हस्तिकर्ण पलास

प्रोफे० आर० एस० सिंह, अध्यक्ष—रसशास्त्र विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, बी० एच० यू०, वाराणसी–५







वनौषधि निर्दशिका के विद्वान लेखक डा० श्री राम सुशील सिंह प्रोफसर एवं विभागाध्यक्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक वरिष्ठ आयुर्वेदज्ञ हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन आयर्वेद की सेवा में व्यतीत हुआ है। पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान एव फार्माकालोजी के मौलिक सिद्धान्त आपकी अन्य सर्व विदित रचनायें हैं। आप आयुर्वेद की कितनी ही शैक्षणिक एवं व्यावसायिक समितियों के सदस्य रह चुके हैं और वर्तमान मे हैं। आप हिन्दी अंग्रेजी के साथ संस्कृत एव अरबी और फारसी के ज्ञाता हैं। आप प्रसिद्ध विद्वान वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह के कनिष्ठ भ्राता हैं। अपने अग्रज की ही तरह आयुर्वेद साहित्य लेखन में संलग्न हैं। आपके सहयोग के लिये हम आभारी हैं कि विशेषांक हेतु आपने लेख दिये।

आपने हस्तिकर्ण पलाश के रसायन प्रयोग का सुन्दर उपयोगी विवेचन अपने लेख मे किया है जो पाठको का ज्ञानवर्धन करने वाला है। आपका दूसरा लेख रसायन द्रव्य 'जीवन्ती' पर है जो डा० एल० बी० सिंह के साथ मिलकर लिखा गया है। —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

Leea Macrophylla Roxb.

(Family · Ampelidaceae)

आयुर्वेद के प्रणेता मनीषियो ने आरम्भ से ही रसायन एव वाजीकरण औषधियो की महत्ता को स्वीकार किया है। इसका साक्ष्य इस तथ्य से भी मिलता है कि अष्टाग—आयुर्वेद मे इनको स्वतन्त्र स्थान दिया गया है। फलत: आयुर्वेदीय संहिताओ मे तन्नामक स्वतन्त्र अध्यायो मे इनका विवेचन किया गया है और साथ ही अनेकानेक रसायन एव वाजीकरण कल्पो तथा योगो का भी सविस्तार निर्देश किया गया है। यही नही, यदि चरक, सुश्रुत, अष्टाग सग्रह, अष्टाग हृदय आदि आयुर्वेदीय संहिताओ, तथा परवर्ती आयुर्वेदीय साहित्य, निघण्टु तथा प्राचीन संस्कृत साहित्य, पुराण आदि के पर्यालोचन से इस प्रकार की नई-नई औषधियो का समावेश भी मिलता है। इनके अतिरिक्त रसायन एव वाजीकरण औषधियो के प्रयोग की व्यवहार परम्परा मे क्षेत्रपदक विशेषतायें भी मिलती हैं। रसायन औषधियो के सेवन से स्वास्थ्य सरक्षण, आयुष्य, व्याधिक्षमत्व की प्राप्ति, जराजन्य शारीरिक कमियों का निराकरण भी होता है। रसायन औषधियों एव चिकित्सा की मान्यता आयुर्वेद की अपनी विशेषता तथा चिकित्सा विज्ञान को सामान्य रूप से महान योगदान है। आज भारत के बाहर विश्व के अन्य देशो मे भी चिकित्सा विज्ञानियो का ध्यानाकर्षण जरानिवारक एव प्रतिकारक औषधियो एव चिकित्सोपायो की ओर हो रहा है, तथा इस दिशा मे अनुसन्धान कार्य भी हो रहे हैं जिनसे आयुर्वेदीय रसायन औषधियो की तदर्थता की पुष्टि ही हो रही है। यद्यपि रसायन एव वाजीकरण औषधियो के गुणधर्म एवं क्रिया सारणी मे बहुत कुछ साधर्म्य है, तथापि रसायन

द्रव्यों का विशेष [illegible], [illegible] जरा-निरोधक है। [illegible] और छात्रों द्वारा किये गये [illegible] हस्तिकर्ण पलाश [illegible] रसायन औषधि [illegible] इस लेख में [illegible] है।

हस्तिकर्ण पलाश [illegible] महिमा [illegible] है। सम्भवतः इसी कारण उत्तर पश्चिम [illegible] लोक परम्परा एवं वैद्यों में [illegible] अज्ञात [illegible] हैं। किन्तु [illegible], [illegible], बंगाल, [illegible], हिमालय की तराई एवं विन्ध्य के [illegible] प्राचीन काल से [illegible] है। [illegible] संहिता (चिकित्सा स्थान/अध्याय १७/१०) तथा सुश्रुत संहिता (सूत्र० ३१/६, सू० ४५/११५) में [illegible] औषधि के रूप में है। [illegible] कि आयुर्वेदीय संहिताओं के अतिरिक्त व्यवहारोपयोगी [illegible] में [illegible] मे हस्तिकर्ण पलाश की मान्यता [illegible] कौटिल्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थ शास्त्र' में भी मिलता है, जहाँ इसके [illegible] पौधों का उपयोग [illegible] प्रतिघात [illegible] 'मदन योग' के [illegible] में किया है।[1] इससे स्पष्ट है कि उस प्राचीन काल में भी यह वनौषधि सुविज्ञात एवं अधिक परिमाण में सुलभ थी, जिसकी परम्परा आज भी विन्ध्य के अरण्यवासियों में प्रचलित 'हतिकान, हराल' आदि नामों से जीवित है। जो संस्कृत 'हस्तिकर्ण' से ही सीधे व्युत्पन्न प्रतीत होते हैं।

हस्तिकर्ण के [illegible] छोटे पौधे (१ मीटर या किंचित् न्यूनाधिक ऊँचाई के) होते हैं, जो गंगा से पूरब बिहार, बंगाल, आसाम तक, विन्ध्य एवं हिमालय उपत्यका के जंगलों में स्वयंजात होते हैं। मैदानी क्षेत्रों में भी छायादार जगहों में, बगीचों में स्वयं उगते हैं। पौधे के कद को देखते हुये उसकी पत्तियाँ आकार में [illegible] बड़ी [illegible]

[illegible]

हस्तिकर्ण पलाश [illegible]

[illegible] 'पलाशमूल' [illegible] है। [illegible] [illegible] आदि विभिन्न [illegible] की जाति [illegible] है।

[illegible] के [illegible] रसायन औषधि के उपयोग [illegible] देना चाहिये।

[illegible] किया जा रहा है, जिससे हस्तिकर्ण पलाश के रसायन [illegible] एवं [illegible] को [illegible] के परिप्रेक्ष्य में भी समझने में सहायता मिलेगी।

---

[1] श्री ए० एन० सिंह, एम० ए० (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व) द्वारा [illegible] के निर्देशन में प्रस्तुत पी० एच० डी० उपाधि हेतु थीसिस पर आधारित।



आयुर्वेद की प्रसिद्ध रसायन-औषधि —

जीवन्ती

१ प्रोफेसर आर० एस० सिंह, अध्यक्ष-रसशास्त्र बिभाग चिकित्सा विज्ञान संस्थान, बी० एच० यू०।
२ डा० एल० बी० सिंह एम० डी० एवाई (रसशास्त्र), पी एच० डी० स्कालर (रसशास्त्र)
रसशास्त्र विभाग — काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

'रसायन' एवं 'वाजीकरण' औषधियो एवं चिकित्साक्रम को आयुर्वेद ने प्रारम्भ से ही स्वतंत्र स्थान दिया है। साथ ही इनमे बहुत कुछ परस्पर साधर्म्य होने से इन दोनो को दो बैलो की जोडी की भाँति परस्परानुबन्धी स्वरूप भी दिया है जिसमे रसायन को प्रथम स्थान है। रसायन औषधियो का कार्यक्षेत्र अतिविस्तृत है। इनसे स्वास्थ्य, ओजपूर्ण सक्षम जीवन, दीर्घायुष्य के अतिरिक्त व्याधिक्षमत्व तथा जराजन्य कायिक-अक्षमता एवं सामान्य क्रिया व्यापार की क्षीणता का भी निवारण होता है। यद्यपि रसायनकर्म की प्राप्ति का लक्ष्य दैनिक आहार बिहार मे भी रखा गया है, किन्तु विशेष परिस्थितियो मे मुख्यत जराजन्य क्षीणता एवं अक्षमता निवारणार्थ तरसम विशिष्ट औषधियो तथा कल्पो एवं योगो का निर्देश किया गया है। वास्तव मे जरा मे पौरुष एव ऊर्जा सम्बन्धी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, तन्नियामक अन्य शारीरिक क्रिया व्यापार मे विकृति हो जाती है, जिसके सुधार के लिये तद्विशिष्ट क्रिया व्यापारी औषधियो की आवश्यकता पडती है। इसका सकेत विद्वान् टीकाकार आचार्य डल्हण ने भी किया है—'भेषजाश्रितानां रसवीर्य विपाक प्रभाव परमायुर्बल वीर्याणा वय स्थैर्यकराणामयन लाभोपायो रसायनम्।' (डल्हण)।

जीवनीय गण, वय स्थापन गण तथा स्तन्यजनन गण की औषधियाँ इसी प्रकार की हैं। इनमे अनेक द्रव्यो की तदर्थता की पुष्टि आधुनिक मान्य वैज्ञानिक शोध मापदण्डो की कसौटियो पर भी हो चुकी है। जीवन्ती भी इसी प्रकार की उपयोगी एव पुष्ट रसायन औषधि प्रतीत होती है। अत वैद्य समाज के ध्यानाकर्षण हेतु, एतत्सबन्धी महत्वपूर्ण बिन्दुओ पर प्रकाश डाला जा रहा है। सर्व प्रसिद्ध एव प्रचलित च्यवनप्राश एव राजस्थान मे लोकप्रिय 'ब्राह्म रसायन' के क्वाथ्य द्रव्यो मे 'जीवन्ती' भी परिगणित है। अत आज के व्यवहारोपयोग मे भी जीवन्ती एक महत्व की वनौषधि है।

उत्तर-पश्चिमी प्राचीन भारत मे जीवन्ती का ज्ञान अति प्राचीनकाल से हैं। अथर्ववेद (AV. VIII. 7, 6)मे जीवन्ती का उल्लेख यक्ष्मा चिकित्सा के सदर्भ मे तथा गौवो के दूध बढाने वाली औषधि के रूप मे ((AV VI, 59, 2-3) हुआ है। चरक सहिता मे भी जीवन्ती के उल्लेख की बारम्बारिता अन्य सहिताओ की अपेक्षा अत्यधिक एव सर्वाधिक है, जिनमे इसकी मान्यता रसायन औषधि के रूप मे भी पर्याप्त है। परवर्तीकाल मे व्यवहार प्रचलन में (विशेषत भारत के मध्य देशीय क्षेत्र मे) जीवन्ती का वानस्पतिक विनिश्चय भ्रान्तिपूर्ण हो गया है, तथापि गुजरात महाराष्ट्र मे तथा तत्क्षेत्रीय मध्यकालीन निघण्टुकारो एव टीकाकारो ने इसके दूसरे प्रसिद्ध नामो 'डोडी, डोडिका व गरीटा' आदि के माध्यम से इसके ज्ञान को सरक्षित रखा है। इसकी कोमल फलियो का शाकार्थ व्यवहार आज भी गुजरात महाराष्ट्र मे होता है, जो सहिताओ मे जीवन्ती के शाक वर्ग मे परिगणन एव सर्वश्रेष्ठ शाक की मान्यता से प्राचीन ज्ञान के अवशेष का साक्ष्य है। निघण्टुकारो ने जीवन्ती को मधुर-शीत-त्रिदोषघ्न, बल्य, बृहण एव उत्तम रसायन माना है। उल्लेखनीय है कि आधुनिक औषध निर्माता कम्पनी, एलार्सिन का जीवन्ती घटित पेटेट योग 'Leptaden' (जिसका नाम करण भी जीवन्ती के आधुनिक वानस्पतिक नाम के आधार पर ही रखा प्रतीत होता है) पशु-पालन मे गाय-भैसो के दूध बढ़ाने मे सफल पाया गया है। अत. स्पष्ट है कि च्यवनप्राश मे अभीष्ट प्रभाव की प्राप्ति के लिये उक्त वास्तविक जीवन्ती[1] का प्रयोग अभीष्ट ही नही अपितु अत्यावश्यक है। यही नही इसकी सिद्ध क्रियाशीलता को देखते हुये रसायन योगो मे इसकी भावना आदि का भी उपयोग करना चाहिए तथा नवीन रसायन योगो के भोजन मे घटक रूप मे इसका भी समावेश करना चाहिए।

एक अत्यधिक उपयोगी नैमित्तिक रसायन—एक सर्वेक्षण

आमवात रोग की चिकित्सा में अमृत भल्लातक

डा० अजय शर्मा, एम० डी० (ए वाई०)[1] एव डा० राम हर्ष सिंह पी-एच० डी०[2]



डा० अजय शर्मा व्याख्याता श्री लक्ष्मी नारायण आयुर्वेदिक कालेज अमृतसर आयुर्वेदिक एव यूनानी तिब्बिया कालेज के सुयोग्य स्नातक हैं और अपने विद्यार्थी जीवन में सदा ही प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे। बाद में आपने बी० एच० यू० से एम० डी० उत्तीर्ण की। आप एक सरल प्रकृति के परिश्रमशील उत्साही नवयुवक हैं—जिनकी प्रतिभा भविष्य में और प्रखर होगी–इसमें सन्देह नहीं।

अमृत भल्लातक पर यह शोध पूर्ण लेख डा० रामहर्ष सिंह—रीडर बी० एच० यू० के निर्देशन में किए गए शोधकार्य पर आधारित है जो पाठको का ज्ञानवर्धन करने वाला एव उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

'आमवात' रोग एक अत्यधिक कष्टसाध्य रोग है। इसीलिए इस सर्वेक्षण के दौरान इस प्रकार की औषधि ढूंढने का प्रयास किया गया है जो कि सरल, सुलभ, बिना दुष्कर प्रभाव के और प्रभावशाली ढग से 'आमवात' रोग मे प्रयुक्त की जा सके। इसी उद्देश्य से 'अमृत भल्लातक' (भैषज्य रत्नावली, रसायन प्रकरण, श्लोक नं० १७६-१७१) को एक 'नैमित्तिक-रसायन' के रूप मे 'आमवात' रोग के अनेक रोगियो मे प्रयोग किया गया। आयुर्वेद मे 'भल्लातक' को एक रसायन, अग्निवर्धक, कफ नाशक एवं आम पाचक द्रव्य माना गया है। इस प्रकार अपने गुणो के कारण आमवात रोग को दूर करने की पूरी क्षमता इस योग मे होने के कारण ही 'अमृत भल्लातक' को इस सर्वेक्षण के लिए चुना गया। 'आमवात' रोग के रोगी चिरकाल तक इस रोग से ग्रसित होने के कारण अत्यधिक दुर्बल हो जाते हैं। इसीलिए इस प्रकार के रोगियों मे 'रसायन' का प्रयोग सर्वथा वांछनीय है। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए आमवात के कुछ रोगियो मे 'अमृत-भल्लातक' एक 'नैमित्तिक-रसायन' के रूप मे प्रयोग किया गया। उत्तम रसादि धातुओ को प्राप्त करने का जो उपाय है उसे 'रसायन' कहते है। 'रसायन' भैषज का सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु, स्मरण शक्ति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, प्रभा, वर्ण, स्वर का उदार होना, देह एव इन्द्रियो मे उत्तम बल की प्राप्ति, वाक सिद्धि, प्रगति, कान्ति आदि—इन सभी गुणों को प्राप्त करता है (चरक सहिता, चिकित्सा स्थान, अध्याय १/१, श्लोक न० ७-८)। जो रसायन भैषज किसी विशिष्ट रोग की

[1] लेक्चरर—काय चिकित्सा विभाग, श्री लक्ष्मी नारायण आयुर्वेदिक कालेज, अमृतसर, पजाब

[2] रीडर—काय चिकित्सा विभाग, इन्सटीट्यूट आफ मैडीकल साइन्सेज बी० एच० यू०, वाराणसी।

चिकित्सा मे रोगी के बल, उत्साह को बढाने के उद्देश्य से एवं रोग से रोगी को शीघ्र ही छुटकारा दिलाने के ध्येय से प्रयोग किया जाता है, वह रसायन उस विशिष्ट रोग के लिए 'नैमित्तिक-रसायन' कहा जाता है। इस सर्वेक्षण में 'अमृत-भल्लातक' को 'आमवात' रोग के लिए 'नैमित्तिक रसायन' के रूप मे प्रयोग किया गया है।

विधि एवं विधान—

इस सर्वेक्षण का प्रमुख उद्देश्य 'अमृत-भल्लातक' को 'आमवात' रोग के रोगियो मे प्रयुक्त कर उसका 'नैमित्तिक रसायन' प्रभाव देखना था, जिसके लिए विभिन्न तरीके चुने गये जिनका वर्णन सारांश मे नीचे दिया जा रहा है।

अमृत भल्लातक की सेवन विधि—

सर्वेक्षण के लिए चुने हुए रोगियो को अमृत भल्लातक' २ चाय वाले चम्मच की मात्रा मे, दुग्ध से, दिन मे दो बार, ६-८ सप्ताह तक खिलाया गया। इस प्रकार से लगभग ५ ग्राम भल्लातक प्रतिदिन प्रत्येक रोगी को खिलाया गया।

रोगियो का चुनाव—

इस सर्वेक्षण के लिए ३० आमवात रोगियो का चुनाव किया गया। प्रत्येक रोगी का पूर्ण विवरण एकत्रित करके उसे १५ दिन के अन्तर पर २-३ मास तक निगरानी मे रखा गया।

रोगियो को आंकने के तरीके—

(क) आत्म सुधार की अनुभूति—प्रत्येक रोगी से आत्म सुधार की अनुभूति के साथ-साथ मानसिक एव शारीरिक सुधार एव विभिन्न जोडो के लक्षणो मे सुधार के बारे मे भी पूछा गया।

(ख) विभिन्न लक्षणो मे सुधार—प्रत्येक रोगी से उसके विभिन्न जोडो के लक्षणो मे सुधार के विषय मे पूछा गया—(१) जोडो का दर्द (२) जोडो की जकडाहट (३) सूजन (४) कार्य अवरोध (५) स्पर्शासह्यता (६) विकलांगता आदि।

(ग) कार्य सम्बन्धी सुधार—प्रत्येक रोगी से उसके विभिन्न कार्य सम्बन्धी सुधार के बारे मे ज्ञात किया गया जसे कि (१) निश्चित दूरी तय करने का समय (२) निश्चित लेख लिखने का समय (३) हाथो की दबाने की शक्ति आदि।

(घ) शारीरिक सुधार—निम्न विषयो मे शारीरिक सुधार के बारे मे प्रत्येक रोगी से पूछा गया—(१) शारीरिक भार (२) रक्तचाप (३) नाडी गति (४) श्वास गति (५) श्वास रोकने की क्षमता।

(ङ) महास्रोत सम्बन्धी सुधार—महास्रोत से डी-जायलोज का प्रचूषण और बाद मे उसका मूत्रमार्ग से त्याग एव नैमित्तिक रसायन अमृत भल्लातक के प्रभाव के कारण महास्रोत के कार्यो मे सुधार एव आमदोष की उत्पत्ति मे कमी का विवेचन भी प्रत्येक रोगी मे किया गया।

(च) आधुनिक पीडाहर औषधियो की मात्रा मे कमी—सर्वेक्षण के दौरान अनेक आमवात के रोगी कोई न कोई आधुनिक पीडाहर औषधियो का प्रयोग कर रहे थे। सभी रोगियो को एक विशिष्ट क्रम से घटाते हुए यह औषधिया (Disprin Only) खाने की स्वीकृत दी गई। 'अमृत भल्लातक' के सेवन के साथ-साथ यह मात्रा धीरे-धीरे घटाई गई और अन्त मे सभी आधुनिक पीडाहर औषधियो (Anaalgesics) को पूर्णरूप से बन्दकर सिर्फ अमृत-भल्लातक का ही प्रयोग इन रोगियो मे किया गया।

परिणाम एवं निरीक्षण

(१) विभिन्न लक्षणो मे सुधार—जैसा कि तालिका न० १ मे दर्शाया गया है कि अमृत-भल्लातक का सेवन करने के बाद जोडों के दर्द, जकडाहट की अनुभूति, सूजन, स्पर्शासह्यता, कार्य अवरोध आदि लक्षणो मे विशेष कमी आई।

(२) कार्य सम्बन्धी सुधार—तालिका न० २ को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न कार्यों को करने मे अमृत भल्लातक के सेवन के पश्चात् विशेष सुधार हुआ है। विशेषकर हाथो और पैरो के जोडो के कार्य करने की क्षमता मे विशेष सुधार स्पष्ट ही दृष्टिगोचर है।

(३) शारीरिक सुधार—अमृत भल्लातक' के सेवन से 'आमवात' रोग के अनेक रोगियो मे शारीरिक भार मे वृद्धि हुई (तालिका न० ३)। इसी प्रकार सास रोकने की



क्षमता मे भी विशेष सुधार इस बात का समर्थक है कि अमृत भल्लातक से रासायनिक प्रभाव शरीर मे दृष्टिगोचर होता है (तालिका न० ३)।

(४) महास्रोत सम्बन्धी सुधार—'अमृत भल्लातक' को सेवन करने के पश्चात 'आमवात' के रोगियो मे महास्रोत से डी-जायलोज अधिक मात्रा मे प्रचूषित हुआ और साथ ही उसका त्याग भी मूत्र मार्ग से अधिक हुआ। यह इस बात का द्योतक है कि अमृत भल्लातक के सेवन से 'आम दोष' की उत्पत्ति बहुत कम होती है और महास्रोत की प्रचूषण क्षमता बढ़ती है। इस प्रकार 'अमृत भल्लातक' का यह नैमित्तिक रसायनिक प्रभाव कहा जा सकता है (तालिका न० ४)।

विमर्श—

इस सर्वेक्षण मे 'अमृत भल्लातक' को आमवात रोग मे नैमित्तिक रसायन के रूप मे प्रयुक्त किया गया है। भल्लातक को आयुर्वेद मे अग्निवर्धक, आम नाशक, कफहर और रसायन माना गया है। इन गुणों के कारण अमृत भल्लातक आमवात रोग के लिए नैमित्तिक रसायन हो सकता है। आमवात रोग मे महास्रोत की विकृति के कारण 'आम-दोष' की उत्पत्ति शुरू हो जाती है। आम-दोष के कारण मन्दाग्नि की उत्पत्ति होती है। भल्लातक अग्निवर्धक एव कफनाशक होने से परस्पर आम दोष एव मन्दाग्नि का नाशक होता है और इस प्रकार से आमवात को समूल नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त अपने रसायन प्रभाव से अमृत भल्लातक आमवात के रोगियो मे शक्ति एव बल प्रदान करता है।

तालिका नं० १

आमवात के रोगियो मे अमृत भल्लातक के सेवन से विभिन्न लक्षणो मे सुधार (Clinical Improvement)

क्रमांक	निरीक्षण	चिकित्सा से पहले	चिकित्सा के बाद	औसत अन्तर	औसत अन्तर का S. D.	t	p
१.	शूल	२.०६५ (२१)	०.८८३ (२१)	—१.२६२	±०.७८	५.५५०	०.००१
२.	कड़ापन	१.९५२ (२१)	०.६९० (२१)	—१.२६२	±०.७५	५.७३०	०.००१
३.	सूजन (श्वयथु)	१.१९० (२१)	०.३९० (२१)	—०.८०९	±०.६१	३.३८०	०.०५
४.	दवाने पर दर्द	०.९५ (२०)	०.२७५ (२०)	—०.६७५	±०.६८	३.०५०	०.०५
५.	मास क्षय	०.२ (२०)	०.१ (२०)	—०.१	±०.६२	१	०.०५
६.	विकलागता	०.३३३ (२१)	०.३३३ (२१)	०.०	±०.२१	०	०.०५

निरीक्षणो की संख्या कोष्ठक दी गई है।

तालिका नं० २

आमवात के रोगियो मे अमृत भल्लातक के सेवन से विभिन्न कार्य सम्बन्धी सुधार (Functional Recovery)

क्रमांक	निरीक्षण	चिकित्सा से पहले (औसत)	चिकित्सा के बाद (औसत)	औसत अन्तर	औसत अन्तर का S D	t	p
१.	भ्रमणकाल सैकिण्डो में	२१ १० (१५)	०.३३३ (१५)	६ १०	± १६ ४३	२.१४५	० ०५
२.	ग्रिप पावर (in mm Hg) दाहिना हाथ	६० ०४ (२१)	१३६ ७६ (२१)	४६ ७१	± ४६ ८७	४ ५६७	० ००१
	बायां हाथ	८६.०४ (२१)	१२०.१६ (२१)	३४ १४	± ४७ ३५	३ ३०४	० ०१
३.	दबाने की शक्ति (in mm Hg) दाहिना हाथ	४६ ६५ (२०)	७२ ०० (२०)	२६ ३५	± २६ ७२	४ ४१०	०.००१
	बाया हाथ	४६ ७५ (२०)	६८ ५० (२०)	२१ ७५	± २४ ३१	४ ००१	०.००१
४.	लेखन-समय सैकिण्डा मे दाहिना हाथ	२०४ ६० (११)	१७० १८ (११)	३४.७३	± ५२ १७	२ २०८	० ०५
	बाया हाथ	२५०.०६ (११)	२०७ २७ (११)	४२ ८२	± ३६ ८१	३ ८५८	०.०५

निरीक्षणो की संख्या कोष्ठक मे दी गई है।

तालिका नं० ३

आमवात के रोगियो मे अमृत भल्लातक के सेवन से विभिन्न शारीरिक परिवर्तन (Physiological Changes)

क्रमांक	निरीक्षण	चिकित्सा से पहले (औसत)	चिकित्सा के बाद (औसत)	औसत अन्तर	औसत अन्तर का S D	t	p
१	किलो ग्राम मे शरीर-भार	४७.०० (१८)	४७ ६४ (१८)	०.६४४	± २.०२	१ ९८४	०.०५
२	प्रति मिनट श्वास संख्या	२१.३६ (१६)	२१ ४७ (१६)	०.१०५	± ३ ५२	१	० ०५
३.	सैकिण्डो मे	३३ ६० (११)	४३.३६ (११)	८ ४५५	± ११.५०	२ ४३८	०.०५

B H T Breath Holding Time

निरीक्षणो की संख्या कोष्ठक मे दी गई है।



तालिका नं० ४

आमवात के रोगियो मे अमृत भल्लातक के सेवन मे महास्रोत गत सम्बन्धी सुधार (Improved D-Xylose Excretion Rate in cases of Amavta after treament with Amrata Bhallataka Indicating G I T Function)

क्रमाक	D-Xylose Excretion in gms-/5 Hours	चिकित्सा से पहले	चिकित्सा के बाद
१.	Mean	३ ४२ (१०)	४.६६ (१०)
२.	S D	+ ०.५४	+ १ २६
३	t	—	+२ ८०४
४	p	—	० ०५

निरीक्षणो की सख्या कोष्ठक में दी गई है।

अमृत भल्लातक के सेवन से आमवात के रोगियों मे महत्त्वपूर्ण लाक्षणिक लाभ होता है। जोडो के दर्द मे सूजन मे और जकडाहट आदि की अनुभूति मे विशेष लाभ हुआ। हालाकि मास-पेशी नाश मे या विकलागता मे अमृत भल्लातक का कोई विशेष योगदान नही रहा। मगर कुल मिलकर मासपेशियो की काय करने की शक्ति मे महत्वपूर्ण सुधार हुआ। रोग की दारुण अवस्था मे अनेक रोगियो को आधुनिक पीडाहर औषधियो (Analgesic Desprin, का सेवन घटाते हुए क्रम से कराया गया। यह महसूस किया गया कि धीरे-धीरे अमृत भल्लातक के सेवन से आधुनिक पीड़ाहर औषधियो की मात्रा मे महत्वपूर्ण कमी आई। जोडो के कार्यों मे महत्वपूर्ण सुधार के साथ-साथ सभी रोगियो के सुख की अनुभूति मे भी विशेष वढोत्तरी हुई। यह सुख की अनुभूति ही अमृत भल्लातक का नैमित्तिक रसायन प्रभाव है।

अमृत भल्लातक के सेवन के पश्चात आमवात के रोगियो मे शारीरिक भार मे वृद्धि पायी गई। साथ ही साथ श्वसन संस्थान के कार्यों मे भी विशेष सुधार हुआ। यह प्रभाव अमृत भल्लातक का नैमित्तिक रसायन का प्रभाव है।

डी-जायलोज का महास्रोत मे अनुपरण करना अमृत भल्लातक के नैमित्तिक रसायन प्रभाव की पुष्टि करता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि अमृत भल्लातक के कार्य करने का क्षेत्र महास्रोत भी है। अमृत भल्लातक एक ओर तो जोडो की सूजन, दर्द आदि का नाश करता है और दूसरी ओर महास्रोत पर क्रिया करके आमदोष के निर्माण को बन्द कर अग्निमान्द्य को दूर कर आन्त्र की अनुपरण शक्ति को बढाता है। अग्निमान्द्य दूर होने से एव आमदोष का नाश होने से भोजन का पाचन ठीक प्रकार से एव सुचारु रूप से होता है। जिससे रोगी को बल, वर्ण, कान्ति और ओज आदि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि आमवात रोग की चिकित्सा के लिए अमृत भल्लातक एक महत्वपूर्ण नैमित्तिक रसायन है क्योकि न केवल रोगियो मे रसायन प्रभाव दिखाता है—बल्कि आमवात रोग की जड 'आमदोष' के निर्माण को बन्दकर, अग्निमान्द्य को दूर कर, पुन आमवात के रोगी मे बल, ओज, कान्ति आदि को प्रदीप्त करता है।

साराश—

यदि एक रसायन भैषज किसी विशिष्ट रोग की चिकित्सा के लिए प्रयुक्त किया जाय और वह भैषज रसायन प्रभाव के साथ उस विशिष्ट रोग की रोक थाम मे विशेष सहायक हो तो उसे उस रोग विशेष का नैमित्तिक रसायन कहते हैं। आमवात के रोगियो मे अमृत भल्लातक का प्रयोग करने से लाक्षणिक लाभ के साथ-साथ विभिन्न जोडो के कार्यो मे भी महत्वपूर्ण लाभ देखा गया। इसके साथ-साथ महास्रोत की कार्य शक्ति मे भी विशेष सुधार हुआ। अधिकाश रोगियो मे शारीरिक भार मे वृद्धि देखी गई। इस प्रकार से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अमृत भल्लातक का प्रयोग आमवात के रोगियो मे विशिष्ट एव महत्वपूर्ण नैमित्तिक रसायन है, अर्थात् अमृत भल्लातक आमवात रोग के रोगियो के लिए एक विशिष्ट एव महत्वपूर्ण नैमित्तिक रसायन है।

भल्लातक रसायन और जरावस्था

श्री नारायण चौधरी एम०डी० द्वितीय वर्ष छात्र राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, पटियाला।

—(1)—

इस द्रव्य को जरावस्था के लिए अमृत औषधि समझा जाता है विशेषत रसायन के रूप मे इसका प्रयोग श्रेष्ठ माना गया है। जरावस्था जो कि मानव प्राणी के लिये एक अवश्यम्भावी परिवर्तन है उसको प्रशस्तकाल के लिए स्थिर रखना रसायन प्रयोग से ही सम्भव हो सका है।

भल्लातक के पर्याय—भल्लातक (सस्कृत), भिलावा (हिन्दी), चेञ्चा (मलयाली), भिलायो (गुजराती, मराठी) भेला (बगाली) बलाजुर, हब्बुल कल्ब (अरबी,) बिलादुर (फारसी) Semecarpus Anacardium (लिटिन)।

सामान्य परिचय—भिलावे का वृक्ष बडा होता हैं। पर्ण शाखाग्रोद्भूत, लम्बे, चौडे पत्राग्र गोल, पत्रपृष्ठ श्वेताभ, पुष्प पीताभ, फलहृदयाकृति, काले रङ्ग के, कच्चे फल मे दूध सदृश श्वेतवर्ण रस और पक्वावस्था मे कृष्ण वर्ण का हो जाता है। फल के नीचे वृन्त फूला हुआ, मांसल होता है जो फलवत् सेवन करने का विधान है। प्राचीन विद्वानो ने फूले हुए वृन्त को फल माना है। वास्तविक फल को अस्थि या बीज कहते हैं। प्राचीन निघण्टुकारो ने भल्लातक का पर्याय 'पृथग्बीज' दिया है।

गुण एवं कर्म—

दीपनीये, कुष्ठघ्ने, मूत्रसग्रहणीये च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू०अ० ३८) न्यग्रोधादौ, मुस्तादौ च गणे भल्लातक पठ्यते। भल्लातकास्थ्यग्निसमम तन्मास स्वादु शीतलम्। (च० सू० अ० २७)

भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकीन्यग्निसमानि च। भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि ॥ कफजो न स रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन। य न भल्लातक हन्यच्छीघ्र मेधाग्निवर्धनम् ॥ (च० चि० अ० १ सू० ३)

आरुष्करं तौवरक कषाय कटुक रसे। उष्ण कृमि ज्वरानाहमहोदावर्तनाशनम् ॥ कुष्ठगुल्मोदरार्शोघ्न कटुपाकि तथैव च।' (सु० सू० अ० ४६)

"भल्लातक कषायोष्ण. शुक्रलो मधुरो लघु। वात श्लेष्मोदरानाह कुष्ठार्शो ग्रहणीगदान् ॥ हन्ति गुल्मज्वरश्वित्र वह्निमान्द्यकृमिव्रणान्। वृन्तमारुष्कर स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत् ॥ तन्मज्जा मधुरो वृष्यो बृंहणो वातपित्तहा।" (भावप्रकाश)

भल्लातकवृन्त मधुर कषाय वातकोपनम्।
विष्टम्भि दुर्जर शीत रक्तपित्त प्रदूषणम् ॥
(राजवल्लभ.)

नव्य मत—भिलावे का तैल शरीर पर त्वचा को काली कर जलन उत्पादक है। जहाँ लसिकायें होती है वहाँ पर फोडे व फफोले उठ जाते है। मूत्र के सग्रहण से श्वास और व्रण उत्पन्न करता है। ज्वर आता है उसमे मानसिक विचारधारा का अधिक प्रभाव है। शारीरिक बाह्य प्रयोग मे दाहक होने से, अन्त शरीर मे भी ऐसी क्रिया होती हो ऐसी अनुभूति से प्रभाव पडता है। परन्तु ऐसा नही होता है। उचित मात्रा, अनुपान. आहार-विहार से कोई हानि नही होती।

भिलावा तीक्ष्ण, उष्ण, लघुपाक, कटु, दीपन, पाचन, स्वेदजनन, यकृदुत्तेजक, मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, अर्शोघ्न, वाजीकर, नाडी सस्थान के लिए उत्तेजक, आमनाशन, रक्तान्तर्गत श्वेतकणवर्धक और रसायन है। भिलावा रक्त मे शीघ्र मिल जाता है। परन्तु धीरे-धीरे शरीर से बाहर निकलता है। त्वचा को उष्णता अरुण वर्णता तथा कण्डू उत्पादन करने वाला माना गया है। मूत्रपिण्ड (वृक्क), मूत्रनलिका, शिश्नेन्द्रिय, ज्ञानतन्तुओ, रसग्रन्थियो और शरीर के सभी अवयवो मे उत्तेजना उत्पन्न करता है।

भल्लातक को रसायन स्वीकार करना उत्तम है। शीतकाल मे प्रयोग करना प्रशस्त है। प्रयोग काल मे रोगी को दूध, घी, शक्कर और भात देना चाहिए। यदि मूत्र नली मे दाह, या रक्त स्रवित होने लगे तो भिलावो का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए।

हानिकारक लक्षण या चिह्न उत्पन्न होते ही तुरन्त निवारण औषध देनी चाहिए। इसमे नारियल का तैल, घी या राल मरहम लगाना चाहिए। तिल और नारियल खाने को देने का नियम है।

ग्राह्य (शुद्धिकरण या शोधन)—अनुपहत भिलावे के फलो को जो उत्तम हो, किसी प्रकार का दोष न हो, पूर्ण



रूप से रस, वीर्य, प्रमाणयुक्त हो। जो पके हुए जामुन के कृष्णवर्ण सदृश हो, उन्हें ज्येष्ठ या अषाढ मे लेने के पश्चात् जौ या उडद की राशि मे रखे। चार महीने बाद अगहन या पूस या (सितम्बर-अक्तूबर) मे निकालकर प्रयोग करें। शरीर को मधुर रस से संस्कारित करना चाहिए।

भल्लातक क्षीर निर्माण विधि

शुद्ध भिलावों को काटकर, उचित मात्रा में माप तोल कर आठ गुणा जल मे मृदु आंच पर रक्खे। जब भार अष्टमांश हो जाए तो उतारकर छान लें और उसमे दूध मिला दें। पीने से पूर्व मुख के अन्त भाग मे घृत को लेपन करें अर्थात् मुख मे घृत का कवल धारण कर, तत्पश्चात् क्वाथ मिश्रित दुग्धपान करायें।

चरकानुसार विधिविधानयुक्त प्रथम दिवस से १० भिलावो से क्रमानुसार २१ वे दिवस मे ३० भिलावो का योग करायें। उत्कर्ष और अपकर्ष विधि से ४१ वें दिवस तक ८१० भल्लातक प्रयाग मे लाये। पुनरुत्कर्ष से शेष ९० भिलावो को ४२ वे दिवस से ५५ वें दिन तक प्रयोग करे। इस प्रकार १००० भिलावो का प्रयोग किया जाए।

सुश्रुतोक्त प्रथम दिवस से पचम दिवस तक क्रम से एक से पाच भिलावे खिलायें, षष्ठम दिवस से १८ वे दिवस तक पांच भिलावों की प्रत्यक दिन वृद्धि करने से सख्या ७० भिलावो तक पहुच जाती है। उत्कर्ष पश्चात् १९वे दिवस से ३५ वे दिवस तक उपरोक्त क्रम से (ह्रास) अपकर्ष का विधान है। उत्कर्ष और अपकर्ष विधि से १००० भिलावो का प्रयोग है।

वाग्भटोक्त मे अग्राकित विशेषतायें हैं। प्रथम दिवस से आठ भिलावे और २१ वे दिवस मे २८ भिलावें क्रम से प्रयोग मे दें। २२ वे दिन से २५ वे दिन तक ३-३ भिलावो की प्रति दिन वृद्धि से ४० भिलावे और उसी क्रम से अपकर्ष हेतु ३-३ भिलावो का ह्रास के लिए २८ वे दिवस तक क्रम स्थिर रक्खें, २९ वे से ४६ वे दिवस तक क्रम-ह्रास पुन ८ भिलावों तक आना चाहिए। इस प्रकार पूर्ण योग १००० भिलावों का प्रशस्त है।

उपरोक्त विधियो का प्रयोग प्राचीन समय से है परन्तु कल्पना भेद से, वर्तमान परिस्थितियों की दृष्टि से रखते हुए सेवन काल और मात्रा मे परिवर्तन किया जाना आवश्यक माना गया है।

भल्लातक क्षौद्र निर्माण विधि

प्रशस्त भिलावो के टुकडो को पिष्टस्वेदन के पश्चात् एक घडे मे भरकर रख दें। उस घडे के ऊपर भिलावों से भरे घडे को रखें, नीचे वाले घडे को घृत से भावित कर भूमि मे गाड़ देना चाहिए। ऊपर वाले घड़े को पूर्ण काली मिट्टी से लेप कर, सन्धि स्थान को इस विधि से बन्द करे कि वाष्प बाहर न निकले। घडे के ऊपर उपलों की अग्नि दे। अग्नि प्रज्वलित होने से भिलावे विन्न हो जायेंगे। भिलावो से जो तैल निकलेगा उस तैल से दो गुणा घृत और आठ गुणा मधु का सेवन करे।

भल्लातक तैल कल्पना विधि

उपरोक्त विधि अनुसार भल्लातक स्नेह एक पात्र मे गोदुग्ध मुलहठी कल्क डालकर तैल पकावे। इन्ही द्रव्यो से तेल को शतसिद्ध करे। यह रसायन भी अन्य रसायनवत् उपयोगी है।

अन्य सात योगों का वर्णन भी शास्त्रो मे दिया गया है जैसे भल्लातक क्षाप, गुड भल्लातक, भल्लातक यूष, भल्लातक पलल, भल्लातक सत्तु, भल्लातक लवण और भल्लातक तर्पण का विधान, भल्लातक के अपूर्व गुणो का परिचय देती है। नवीन योगो की कल्पना प्रकृति और रोग की साध्यासाध्यता की दृष्टि से की गई है।

महत्व— भल्लातक रोग प्रभाव से मुक्त करने वाला, आयुवर्द्धक, दीर्घायु सहित ब्रह्मसम्बन्धि, ब्रह्मचर्य, अध्यात्मिक चिंतन को चेतनता प्रदान करने वाला, मेधा और अग्नि को तीक्ष्ण करने वाला है। इसीलिए रसायन सेवन काल मे आचार नियमो का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। मानसिक बल की प्रधानता हमारे शास्त्रो मे भी वर्णित है। इसके बिना रसायन सिद्धि कठिन ही नही बल्कि असम्भव है।

रसायन सेवन के वर्जित मनुष्य—१. अज्ञानी २. आलसी ३. दरिद्र ४ प्रमादी ५. व्यसनी ६. पापी ७. भैषज्य का अपमान करने वाला रसायन सेवन के लिये वर्जित माने गये हैं।

भुक्ति मुक्ति च लभते ना रसायनात्

डा० कृष्णकान्त एम०ए०, एम०ओ०एल०, जी०ए०एम०एस०, आयुर्वेदाचार्य
प्रिन्सीपल–श्री लक्ष्मी नारायण आयुर्वेदिक कालेज, अमृतसर।



अनेक उपाधियो से विभूषित विद्वान लेखक डा० के० कान्त पंजाब के ख्यातिनामा आयुर्वेदज्ञ एवं संस्कृतज्ञ पं० नामाधारी जी शास्त्री के सुयोग्य पुत्र हैं। जिन्होंने अपनी अनुवाशिक परम्परा को समुज्ज्वल बनाये रखा है। आप पंचनद आयुर्वेद महाविद्यालय नामक प्राचीन संस्था मे आचार्य पद पर रहे जिसे विशेष प्रयत्न कर श्री लक्ष्मी नारायण आयुर्वेदिक कालेज मे परिणित कराया और गुरुनानक देव विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कराया। सम्प्रति आप इस विद्यालय के प्राचार्य पद को सुशोभित कर रहे हैं और विश्वविद्यालय में आयुर्वेदिक फैकल्टी के डीन है।

आपने रसायन चिकित्सा पर प्रकाश डालते हुए लौह रसायन और शिलाजतु रसायन पर सुन्दर एवं उपयोगी लेख विशेषाक हेतु प्रेषित किया है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं। लेख पठनीय एवं उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

लौह रसायन

रसायन सेवन मे लोह धातु के योग शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म कोषाणुओ मे शक्तिशाली रक्त सचार और रक्त संचय करने मे विशिष्ट प्रभाव रखते है।

प्रयोग—उत्तम क्वालिटी के लोह चूर्ण की भस्म जो, त्रिफला क्वाथ, आमलक स्वरस, जामुन स्वरस, हरिद्रा क्वाथ, घृत कुमारी, मकोय स्वरस, पुनर्नवा स्वरस तथा अजा रक्त की भावनाओ से ५०० पुट मे बनी हो परम रसायन है। इस भस्म के विविध अनुपानो से विविध प्रभाव होते है।

(१) उपर्युक्त विधि से बनी लोह भस्म १ रत्ती, शुद्ध हिंगुल १/२ रत्ती, अजादुग्ध के साथ एक सप्ताह पर्यन्त क्रमश मात्रा बढाते जाना पुन. क्रमश मात्रा घटाते जाना। इस प्रकार निरन्तर दो मास पर्यन्त सेवन करने से यह परम वृष्य और परम रसायन है। ध्वजभग, नपुसकता आदि अवस्थाओ मे यह रसायन शतशोऽनुभूत है।

(२) लोह भस्म को मण्डूर भस्म के साथ तक्रानुपान तथा पुनर्नवाष्टक क्वाथ से प्रयोग करने पर यकृत काठिन्य (Cirrhosis of Liver), कामला, पाण्डु रोग, (Pernicious Anaemia, Aplastic Anaemia, किटाणु वृद्धि (Leucocytoicsis) आदि यकृत सम्बन्धी विकार निश्चित निर्मूल हो जाते हैं तथा रोगी मृत्यु पर विजय प्राप्त करता हुआ रसायनमय नवजीवन को प्राप्त करता है। इस रसायन को अनेक रोगियो पर प्रयुक्त कर मैंने अद्भुत लाभ देखा।

(४) लोह भस्म को अभ्रक भस्म के साथ त्रिफला क्वाथ अथवा आमलक स्वरस के अनुपान से प्रयोग करने पर रक्त रञ्जक (Haemoglobin) की मात्रा मे वृद्धि होती है तथा रक्त कणो (Bloodplatelets) मे रोग क्षमता की वृद्धि होती है। इस योग से रक्ताणुभक्षण (Erythrophagia) की अवस्था मे भी परिवर्तन आ जाता है। इस योग से रक्त परीक्षण (लेबोरेटोरी टैस्ट) द्वारा कई रोगो मे अनुसन्धान किया है।

(४) उपर्युक्त विधि से बनी लोह भस्म प्रवाल भस्म के साथ बट जटा क्वथ से प्रयुक्त करने पर क्षयरोग

—शेषाश पृष्ठ १४० पर देखे।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में रसायन

डा० श्रीमती अनसूया शर्मा, बी०एस-सी०, एम०ए०, पी०एच० डी० एव
डा० ज्योतिर्मित्र, बी आई एम एस, पी.एच डी. (डबल), एफ आर ए एस.
मौलिक सिद्धान्त विभाग, चिकित्सा विज्ञान स०, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

डॉ० श्रीमती अनसूया शर्मा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदीय मौलिक सिद्धान्त विभाग के अध्यक्ष प्रो० ल० वि० गुरु की तनूजा हैं जिन्होने उपर्युक्त विभाग के यशस्वी रीडर डा० ज्योतिर्मित्र के निर्देशन मे हिन्दू विश्वविद्यालय से 'भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य मे निहित आयुर्वेदीय सामग्री' शोध प्रवन्ध पर पी० एच० डी० उपाधि इसी वर्ष प्राप्त की है।

कबीरदास, जायसी, तुलसीदास, सूरदास, सुन्दरदास आदि कवियों ने भक्ति रसायन, अमृत रसायन, आचार रसायन तथा भोजन सामग्री के रसायन गुण का वर्णन किया है—जो सिद्ध करता है कि रसायन का उस काल मे जनजीवन मे बहुत प्रचार था।

लेख ज्ञानवर्धक एव उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

भक्ति रसायन—

कबीरदास जी ने ईश्वर की भक्ति को रसायन के समान गुणकारी कहा है।[1] इसका पान काल और जरा के भय को दूर करने वाला कहा गया है।[2] इसका पान करने से सासारिक यात्रा से उत्पन्न हुई श्रांति दूर हो जाती है और मानव को नवजीवन मिलता है।[3] यह रामभक्ति रूपी रसायन[4] अपने अह को नष्ट करने पर मिलता है।[5] कबीरदास जी, साखी को राम-रसायन कहते हुये कहतेहैं कि यह अमरत्व प्रदान कराने वाला है। साखी के वर्ण और अक्षर वही है परन्तु जो उसका तत्व समझ गया उसे यह अमर कर देती है।[6] ब्रह्मरन्ध्र से टपकने वाला रस, महारस है।[7] और यह रामभक्ति रूपी महारस सर्वश्रेष्ठ रसायन है,[8]

कबीरदास भक्तियोग को कायायोग से श्रेष्ठ बताते हैं और कहते है कि योगी ज्ञान की और भक्ति की अमर-वेल के रस को धीरे-२ पीता है और इस रसायन से युग-युगान्तर तक जीवित रहता है और अमरत्व प्राप्त करता है[9]।

अमृत-रसायन—

कबीरदास जी ने अमृत को महारस कहा है। यह अमरत्व प्रदान कराने वाला है। शरीर का वल जरावस्था मे क्षीण हो जाता है।[10] ब्रह्मरन्ध्र से निकलने वाला अमृत- रूपी महारस का पान करने से व्यक्ति को जरा और काल ग्रस्त नही करते।[11] यह रामरस काल की वाधा को हरने वाला एव मनुष्य को अमरत्व देने वाला है।[12] इस रस का निर्माण इडा और पिंगला की भट्टी, ज्ञान का गुड और ध्यान का महुवा द्वारा होता है। सुषुम्नानाड़ी इस रस को चुआती है।[13] ज्ञान रूपी गुड, काम क्रोध का कस, साधना एव भक्ति की भट्टी से यह रामरस बना और इसे पीकर सनकादिक ऋषि मस्त हो गये।[14] सुश्रुत मे ब्रह्मा द्वारा वृद्धावस्था और मृत्यु को नष्ट करने के लिए सोम नामक अमृत का निर्माण करने की चर्चा की गयी है।[15] यह सोमरस चौबीस प्रकार का कहा गया है।[16] घृत, खाड एव गुड़ मिलाकर अमृत- महारस बनता है।[17]

जरावस्था—

आयुर्वेद मे सोलह वर्ष की अवस्था को वाल्यावस्था कहा गया है। सुश्रुत ने चालीस वर्ष तक मध्यावस्था (किशोर, यौवन, प्रौढ) तथा इसके पश्चात वृद्धावस्था कही है।[18] महर्षि चरक के मत से साठ वर्ष तक मध्यावस्था एव इसके अनन्तर वृद्धावस्था कही गई है।[19]

सुन्दरदास ने प्रत्येक युग मे मनुष्य की न्यूनाधिक आयुष पर विचार करते हुये कहा है कि सतयुग से आरभ कर कलियुग तक दशमाश और कलियुग से सतयुग तक दशगुणी आयु होती है। सतयुग मे एक लाख त्रेता मे दस हजार, द्वापर मे एक हजार तक कलियुग मे १०० वर्ष की आयु होती है।[20]

---

1 कबीरदास—पदावली ८३ 2 परशुराम—पदावली, राग आसावरी २१ 3 कबीरदास—साखी ६/१
4 कबीरदास—पदावली ३० 5 कबीरदास—साखी ६/२ 6 कबीरदास—साखी ३१/७ 7 कबीरदास-पदावली ६६
8 कबीरदास—पदावली ७१ 9 कबीरदास—पदावली २०५ 10 कबीरदास—पदावली २२२
11 कबीरदास—पदावली १६२ 12 कबीरदास—पदावली १६३, सुन्दरदास, पद, रागसारग १२
13 कबीरदास—पदावली ७२ 14 कबीरदास—पदावली ७३ 15 सुश्रुत चि० २६/३ 16 सुश्रुत चि० २६/४
17 कुतुबन मृगावती १६३ 18 सुश्रुत सूत्र ३५/३३, ३४ 19. चरक विमान स्थान ८/१२२
20 सुन्दरदास—आयुर्वेद भेद आत्मा विचार

महर्षि चरक एव वृद्ध वाग्भट न रसायन का सेवन शरीर को प्रभा एव कान्ति देने वाला कहा है।[21] उद्वर्तन शरीर की त्वचा को निर्मल बनाने वाला, अङ्गो को स्थिर करने वाला है।[22] सुश्रुत ने "उद्वर्तन" को स्त्रियो के शरीर को विशेष कान्तिमान बनाने वाला कहा है।[23]

भोजन सामिग्री में रसायन

दूध, घृत एव चीनी का सेवन शरीर की कान्ति और शोभा को बढाने वाला है।[24] रसायन शरीर की प्रभा एवं कान्ति मे वृद्धि करता है।[25] आयुर्वेद मे रसायन का सेवन मनुष्य को युवा, सुन्दर और सिंह के समान बलशाली बनाने वाला कहा गया है।[26]

राजा रत्नसेन ने अलाउद्दीन को भोज के लिए निमन्त्रित किया। इस भोज मे अनेक प्रकार के व्यञ्जन बने। " सारे मास को काट कर अच्छी प्रकार धोया गया उसमे सुगन्ध मिलाई गयी। कुछ को सोधे घृत मे बनाया गया। उसमे केशर और कस्तूरी मिलायी गयी। सब हाडियो मे सेंधा नमक डाला गया। उनमे कन्दमूल की गाठें डाली गयी। थोडा पानी डालकर शोरबा बनाया एव मास के टुकडे डालकर बडे-२ पतीलो मे पकाया गया। बडे-२ साबुत - बकरो को सलाइयो मे चुभो - चुभो कर भूना गया। इस भोजन को जो खाता था वह सिंह के समान गरज उठता था।[27]

इसी प्रकार का एक और वर्णन भी है। " भोजन बनाने के लिए सर्वप्रथम मछलियो को काटा गया। उन्हें दही मे अच्छी प्रकार चार बार धोया गया एव मेथी का धुवार दिया गया। मछलियो को नाना प्रकार से बघारा गया। उनपर आम की खटाई लगायी और लौंग, मिर्च, पीपल आदि पीसकर उन्हे चटपटा बनाया गया। मछलियो के खडेरे नाना प्रकार से तले गये। अनेक अडो को तलकर अलग रखा गया और उन्हे ताजे घी मे तला गया एव केशर, कपूर डालकर सुवासित किया गया तथा काली मिर्च और लवग डाली गयी। इन पकवानो मे इतना घी तैर रहा था कि हाथ पहुचे तक घी मे डूब जाता था। वह इतना शक्तिशाली था कि यदि वृद्ध भी उसका पान करे तो युवा बन जाय एव सौ स्त्रियो से विवाह करने योग्य हो जाता था।[28]

आचार रसायन—

महर्षि चरक ने सत्य बोलना, क्रोध न करना, मद्य सेवन एव स्त्री - सग से दूर रहना, अहिंसा, जप - तप, पवित्रता मे विश्वास रखना, धैर्य, दया, दान देना, देवता, गौ, ब्राह्मण की पूजा एव उनका सत्कार करना, समय से निद्रा एव शैय्या त्याग करना, उत्तम आचार - विचार का होना इत्यादि को रसायन कहा है। जिस मनुष्य मे यह सब गुण हो वह रसायन युक्त है।[29] सत कवि सिंगाजी की दोषो की गणना मे महर्षि चरक के उपर्युक्त कथन से पूर्णत साम्यता प्रतीत होती है।[30]

राम-लक्ष्मण द्वारा ब्राह्म मुहुर्त मे शैय्या त्यागने का उल्लेख आया है।[31] श्री कृष्ण एव बलराम को माता यशोदा द्वारा प्रात काल उठाये जाने का वर्णन है।[32] केशव दास ने भी प्रात काल उठकर नित्य क्रिया करने का निर्देश दिया है।[33] वृद्ध वाग्भट ने भी ब्राह्म मुहूर्त मे उठने का निर्देश दिया है।[34] साहित्य मे जप, तप, दान, दया इत्यादि को धर्म कहा गया है।[35]

आयुर्वेद मे पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को आरोग्य का मूल साधन माना है।[36] याचक को कभी खाली हाथ नही लौटाना चाहिए।[37]

---

21 अ० हृ० उ० स्थान ३९/१, २; चरक चि० १/७ 22 अ०हृ० सूत्र २/१५ 23 सुश्रुत चि० २४/५१–५४ तक
24 कबीरदास—पदावली ९३ 25 चरक चि० १/७,८; अ० हृ० उ० ३९/१, २ 26 सुश्रुत चि० ३०/६
27 जायसी पद्मावत— ४५/५ 28 जायसी पद्मावत—४५/७ 29 चरक चि० १/३०–३३ तक
30 सिंगाजी दोष बोध ग्रन्थ 31 तुलसीदास – रा० मा० ग० का० चौ० २०५
32 सूरदास : सूरसागर—१०२५, १०४९, १२२७
33 केशवदास—रसिकप्रिया ३/४९, कविप्रिया, ४/१७, वीरचरित्र ५/३१ 34 अ० हृ० सूत्र २/१
35 तुलसीदास—रा० मा० उ० का०—४९/४ 36 चरक सूत्र १/१५ 37 अ० हृ० सूत्र १/२४



दान एवं सन्ध्या कर्म करने का उल्लेख स्नान कर्म के पश्चात ही आता है।[38] प्रतिदिन सन्ध्या-पूजा को धर्म कहा गया है।[39]

ग्रहों की शान्ति।[40] पुत्र प्राप्ति।[41] विवाह संस्कार।[42] करने के पश्चात दान करने की प्रथा का उल्लेख मिलता है।

हिन्दी साहित्य में चरक[43] के समान ही मद्य सेवन का निषेध किया गया है। इसके सेवन से मनुष्य अपनी देह की सुध-बुध भूल जाता है एवं वृथा प्रलाप करता है।[44] स्त्री सेवन को कबीरदास ने कूप में गिरने के समान कहा है।[45]

आचार रसायन के अन्तर्गत धोखा न देने के लिए कहा गया है। इन्द्र एवं प्रजापति ने गौतम ऋषि को उपांगों में ही धारण कर हो गया, ऐसा भाव उत्पन्न कर, उन्हें स्नानादि कर्म करने जाने के लिए प्रेरित कर उनकी स्त्री अहिल्या से सहवास किया था। गौतम ऋषि ने क्रुद्ध होकर इन्द्र को एक सहस्र भग धारण करने एवं अहिल्या को शिला बन जाने का शाप दिया।[45]

आयुर्वेद में आचार रसायन के अन्तर्गत ब्राह्मण, गौ एवं अतिथि की पूजा, आदर सत्कार इत्यादि का समावेश किया गया है।[47] इसप्रकार हिन्दी साहित्य के भक्ति युग में भक्ति, रसायन, अमृत-रसायन, आचार रसायन एवं भोजन-सामग्री में रसायन की विस्तार से चर्चा हुई है तथा इससे यह ज्ञात होता है कि रसायन का उस काल के जनजीवन में पर्याप्त ज्ञान एवं प्रचार था।

---

38 केशवदास . छन्दमाल ३९, वीरचरित्र १/११, रामचन्द्रिका ३०/२६, विज्ञान गीता ११/९. गोसाईंदास—दशावतार कृष्णावतार १९, तुलसीदास—रा मा. बा का. चौ २२७, २०१, २३८, सूरदास—सूरसागर ७८, ८३६

39 गोसाईंदास—रत्नज्ञान ११, मत्स्यावतार ८, रामअवतार ४१ 40 गोसाईंदास—दशावतार, कृष्णावतार २८

41 गोसाईंदास-दशावतार, कृष्णावतार १९; नन्ददास भा० द० स्कंध ५ अध्याय, तुलसीदास रा मा बा का.चौ १९२

42 तुलसीदास—रा मा बा. का चौ ३३२ 43 चरकचि० १-४/३०-३३ तक

44 गोसाईंदास—दशावतार, कूर्मावतार १७ 45 कबीरदास—साखी २०/१२

46 गोसाईंदास—दशावतार, कृष्णावतार ४१ 47 चरक चि० १-४/३०-३३ तक

— भुक्ति मुक्ति च लभते ना रसायनात् : पृष्ठ १३७ का शेषांश —

(Pulmonary Tuberculosis) में अभूतपूर्व लाभकारी है। इस रोग में Cavity Formation की अवस्था में भी इससे पूर्ण लाभ होता है। अपने दीर्घकालीन चिकित्सा क्षेत्र में इस क्षेत्र की सफलता प्रत्यक्ष देखी गई है।

(५) लोहभस्म रजत भस्म के साथ मलाई (सतानिका) के अनुपान से दृष्टि शक्ति (Eye Sight) में विशेष लाभदायक है। इस प्रयोग से कई रोगियों में Testing Number में परिवर्तन देखा गया है।

शिलाजतु रसायन

अभावग्रस्त वर्तमान युग में जबकि स्वर्ण, कस्तूरी आदि रासायनिक पदार्थ अर्घ्य और दुर्लभ हैं। शिलाजतु जैसे परम रासायनिक तत्वों के प्रयोग से रासायनिक विधान का सेवन कर गम्भीर रोगों से मुक्ति पायी जा सकती हैं।

(१) शुद्ध शिलाजतु को लोह भस्म के साथ गोदुग्ध अनुपान से एक मास पर्यन्त सेवन करने पर मन, बुद्धि, स्मृति तथा इन्द्रियों में इसका उत्तम होकर रसायन का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

(२) शिलाजतु को गुग्गुल के साथ के रूप में प्रयुक्त करने पर यह परम रसायन, जराजीर्णताहर, एवं लावण्य वर्धक है। यही योग बिल्व स्वरस तथा हरिद्रा कषाय के साथ निरन्तर प्रयोग करने पर मधुमेह तथा प्रमेह पीड़िका Carbuncle में असामान्य लाभदायक है।

(३) शिलाजतु को यवक्षार और मूलक क्षार के योग से कुलथी कषाय के साथ प्रयोग करने पर निश्चित ही वृक्काश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

(४) शिलाजतु कस्तूरी और मकरध्वज के योग में सब प्रकार के वात रोग एवं मांसपेशियों के रोगों में चमत्कारिक प्रभाव रखती हैं तथा प्रौढावस्था का एकमात्र सहायक है।

इस प्रकार शिलाजतु विभिन्न औषध द्रव्यों के सम्भोग से विविध रसायन विधानों में अपना विशेष स्थान और वर्चस्व रखती है।

 रसायन विषयक सामग्री 

डा० विभा देवी,[1] डा० आशुतोष तिवारी, डा० ज्योतिर्मित्र ।

आयुर्वेद तो है ही जीवन विज्ञान—जिसमे स्वस्थ रहना एवं रोग दूर करना बताया गया है परन्तु साहित्य और इतिहास मे ऐसे कितने ही सन्दर्भ मिलते हैं जो स्वस्थ, रोग, चिकित्सा एव रसायन आदि से सम्बन्धित होते हैं। साधारण चिकित्सको एव वैद्यो के लिये आयुर्वेदीय साहित्य ही इतना अधिक है कि उसका अध्ययन नहीं कर पाते अनायुर्वेदीय साहित्य मे ऐसे महत्व के विषयों को ढूढना तो दूर की बात है।

हमारा सौभाग्य है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के महिला महाविद्यालय की भारतीय इतिहास सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग की प्रवक्ता डा० विभादेवी ने चिकित्सा विज्ञान संस्थान के आचार्य ज्योतिमित्र के साथ मिलकर अब से १४०० वर्ष पूर्व से लेकर ८०० वर्ष पूर्व तक के अनायुर्वेदीय स्रोत मे रसायन विषयक सामिग्री को विशेषाक हेतु भेजा है।

लेख मे प्रसिद्ध मुस्लिम पर्यटक अलबेरूनी के वृतान्त दिये हैं—जिसमे रसायनविद्, नागअर्जुन, रसायन शास्त्री वाड़ी का उल्लेख है। वैराग्यशतक एवं सोमेश्वर मे वर्णित सन्दर्भ बताते हैं कि न केवल वैद्यो से अपितु साधारण समाज मे भी जरा निवारक उपायो का प्रचार था। ऐतिहासिक दृष्टि से लेख ज्ञानवर्धक है।

—डा० शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

रसायन की गणना आयुर्वेद के अष्टाग के अन्तर्गत की गई है। चरक[1] एवं सुश्रुत[2] ने इसी नाम से सम्बोधित किया है पर अष्टांग सग्रह एव अष्टाग हृदय[1] ने इसे जरा चिकित्सा नाम से अभिहित किया है। चरक ने जरा एव व्यधिनाशक उपाय को रसायन कहा है। इसके अतिरिक्त जिसके द्वारा रस आदि शरीरस्थ धातु प्रशस्त होकर आप्यायित हो वह रसायन है। सुश्रुत के अनुसार युवावस्था को अधिक समय तक बनाये रखने का उपाय, आयु, मेधा एव बलवृद्धि करने के उपाय एव रोगापहरण सामर्थ्य का जहा वर्णन हो वह रसायनतन्त्र है।[6] सुश्रुत के टीकाकार डल्हण[7] ने रसायन पद की विस्तार से व्याख्या की है।

यशस्तिलककार ने भोजन के साथ घृत, दुग्ध एव तक्र के सेवन के लाभ को रसायन के सदृश बताया है (यश० ८/१६)।

रसायन निर्माण—

बलाशना औषधि का घृत एवं कुंकुम मिलाकर उद्वर्तन एव मुखालेपन करने से स्त्रियो के सौन्दर्य की

---

[1] डा० विभा देवी, एम० ए०, पी० एच-डी०, प्रवक्ता, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एव पुरातत्व विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालव, वाराणसी–५

[2] डा० ज्योतिमित्र, बी०आई०एम०एस०, एम०ए० (द्वय), पी०एच–डी०, (दर्शन), पी०एच०डी०, (आयु०) एफ० आर०ए०एस० (लन्दन), आयुर्वेदाचार्य, दर्शनाचार्य, साहित्याचार्य, पुराणेतिहासाचार्य, विद्यामार्त्तण्ड (गुरुकुल), रीडर-मौलिक सिद्धान्त विभाग, चि० वि० सस्थान्।

[3] डा० आशुतोष तिवारी, आनरेरी क्लीनिक रजिस्ट्रार, मौलिक सिद्धान्त विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५

[1] चरक० सूत्र० ३०/२६ [2] सुश्रुत सूत्र० १/१५ [3] अ० स० सूत्र० १/१० [4] अ० हृ० सूत्र० १/५

[5] चरक०चि० १ [6] रसायनतन्त्रं नामवय स्थापनमायुमेधाबलकर रोगापहरणसमर्थं च। —सु०सू० १/१५

[7] रसानां रसरक्तादीनामयनमाप्यायनं रसायनम् अथवा रसाना रसवीर्य—विपाकादीनामयनमाप्यायनम् अथवा रसानां रसवीर्यविपाकादीनामायु प्रभृति करणाना मयनं विशिष्टलाभोपाय रसायनम् (सु० सू० १/३ पर)



अभिवृद्धि होती है (हर्ष० ४/२४४)। उसी ग्रन्थ मे शबर युवक के नेत्र की लालिमा की तुलना रसायन निर्माण मे प्रयुक्त होने वाली सिंह शोणित से की गयी है (हर्ष० ४१४)।

ह्वेनत्साग ने अपने पर्यटन वृतान्त मे कोशल देश की चर्चा करते हुए किसी रसायनविद् नागार्जुन बोधिसत्व का उल्लेख किया है जिनके द्वारा निर्मित औषधियो के सेवन से कोई सद्वह नामक राजा को कई शतक वर्ष की आयु प्राप्त हुई थी।[8]

रसायन विद्या—

अलबेरुनी (एक मुस्लिम पर्यटक) ने उस काल मे प्रचलित अभिचार पद से तात्पर्य इन्द्रजाल का लिया है और उसके अनुसार यह एक प्रकार का जादू है जो कि किसी प्रपच द्वारा वास्तविकता से पर्याप्त दूर किसी अन्य रूप मे प्रकट किया जाय। इन्द्रजाल की जाति के अन्तर्गत रस विद्या का ही उल्लेख करता है। रस विद्या से उसका पार्थक्य भी बतलाता है। उसके अनुसार रुई को सोना मे परिवर्तित करना इन्द्रजाल है पर चादी को सोने के रूप मे बदलना रसायन है। वह कहता है कि उस समय में कुछ लोग इस विद्या का आदर करते थे और कुछ लोग इसका उपहास भी करते थे। इसके अतिरिक्त वह यह भी कहता है कि हिन्दू लोग इस विद्या को दूसरी जाति को सिखलाना पसन्द नही करते थे यही कारण है कि 'मैं उनसे कोई विद्या सीख नही सका'। वह रसायन विद्या का भी उल्लेख करता है जिनमे विशिष्ट प्रकार की वनस्पतिया और मिश्रित औषधिया प्रयुक्त होती हैं और जिनके उपयोग से जीर्ण रोगी भी रोग मुक्त हो सकता है और जराजीर्ण व्यक्ति पुन युवा बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्वेत केश काले हो जाते है, इन्द्रियो मे बल आ जाता है। स्त्री के साथ समागम करने की शक्ति बढती है तथा शरीर में उत्साह और उपचय की वृद्धि होती है।[9]

यही अलबेरुनी रसायन के एक ग्रन्थ के रचयिता के रूप मे नागार्जुन नाम लेता है जिसको वह सोमनाथ के निकटवर्ती देहक-कोट का निवासी बतलाता है और इस व्यक्ति की प्रादुर्भूति को अपने से सौ वर्ष पूर्व बताता है अर्थात् वह नागार्जुन दशम शताब्दी मे था किन्तु उसकी कृति अलबेरुनी के काल (११वीं श०) मे भी दुर्लभ थी (अ० भा० १७/१४३)।

रसायदविद् नागार्जुन—

कथासरित्सागर में एक आख्यान प्रसिद्ध चिरायुनामक रसायनविद् नागार्जुन का उल्लेख है। राजा के मन्त्री के रूप मे उक्त नागार्जुन का उल्लेख उपलब्ध होता है जिन्हें वहा बोधिसत्व के अश से समुद्भूत, परमदयालु, दानी, विज्ञानवेत्ता, विविध औषधि युक्तिज्ञ तथा रसायन निर्माण मे सिद्धहस्त व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है।

उक्त कथन मे उनके रसायनवेत्ता होने के कारण पर भी प्रकाश दृष्टिगत होता है। जब नागार्जुन का परमप्रिय ज्येष्ठ पुत्र अकाल मे ही कालकलवित हो गया तो उन्हें परमचिन्ता हुई और उन्होंने अमृतत्व के लिए अनेक प्रकार के औषधियो का सयोग करना आरम्भ कर दिया। केवल मात्र एक ही औषधि शेष रह गयी थी जिसको वे खोजकर लाना चाहते थे। यदि वह औषधि मिल जाती तो मनुष्य अमर बन जाते। अत इस प्रक्रिया को रोकने के लिए इन्द्र ने अश्विनी कुमारो को ऐसा न करने के लिए उनके पास भेजा और कहा कि मानव और देवताओ के भेद को आप यो ही रहने दें (कथा० ७/७/१०-३३) यह समस्त विवरण नागार्जुन को १०वी शताब्दी में सम्भूत एक रसायनवेत्ता के रूप मे प्रस्तुत करता है।

सम्भवत: यह वही नागार्जुन है जिसका उल्लेख अलबेरुनी ने अपने ग्रन्थ मे किया है(अ. भा १७/१४३)।

रसायन शास्त्री—

अलबेरुनी व्याहि नामक रसायन शास्त्री का उल्लेख करता है।[10]

जरानाशक रसायन—

रसायन से जराजीर्ण शामकता का ज्ञान क्षेमेन्द्र के काल (११वी श०) मे लोगो को था जिसकी पुष्टि के लिए जराजीर्ण च्यवन की अश्विनीद्वय द्वारा चिकित्सा किए जाने एव ऋषि द्वारा उपकृत होने पर उन्हें सोमपान के अधिकार दिलाने वाली घटना का निर्देश मिलता है (सेव्य० ६/२२१)।

—शेषाश पृष्ठ १४८ पर।

[8] ह्वेन, प० ३५२

[9] अ० भा० १७/१४२—३

[10] अ० भा० १७/१४४

अग्निपुराण के रसायन योग

डा० [सुश्री] सरिता हांडा* सीनियर रिसर्च फेलो [ICHR], प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा
डा. ज्योतिर्मित्र आचार्य, रीडर मौलिक सिद्धान्त विभाग, चि वि. स, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

अग्नि पुराण अष्टादश महापुराणो में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रसायन योगो का जितना खजाना अग्निपुराण में मिलता है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय का स्रोत सम्भवत कोई न कोई रसायनतन्त्र का ग्रन्थ रहा होगा।] इस पुराण का अन्तिम सर्वरोगशामक अमरीकर योग तो अप्रतिम है और ऐसा कोई योग अद्यावधि प्राप्त आयुर्वेद के ग्रन्थों में दृष्टिगत नहीं होता।

डा० (सुश्री) सरिता हांडा ने आचार्य डा० ज्योतिर्मित्र जी के निर्देशन में अग्निपुराण के रसायन योग शीर्षक जो लेख तैयार कर विशेषांक हेतु प्रेषित किया है उसके लिए हम लेखकद्वय के आभारी है। आशा है सरल एव उपयोगी योगो के प्रयोग से पाठक लाभान्वित होगे। —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

अग्नि पुराण मे रसायनपरक सामग्री का उल्लेख भी निहित हैं।

अतिदीर्घ आयुष्कर योग—

(१) त्रिफला, पिप्पली एव शुण्ठी का शतावरी के साथ सेवन करने से यह योग व्यक्ति को सहस्र वर्ष की आयु प्रदान करता है।

उपर्युक्त औषधियो के अतिरिक्त चित्रक तथा शुण्ठी के साथ विडंग का प्रयोग पूर्ववत् फलप्रद है। (२८६/२१)

आयुष्कर उपचार—

(१) घृत स्नान आयु की वृद्धि करता है (२६७/४)।

(२) वचा, दो प्रकार की हरिद्रा और मोथा मिश्रित जल मे किया गया स्नान आयु की वृद्धि करने वाला कहा गया है (२६७/७)।

(३) दुग्ध, घृत अथवा तैल के साथ वचा का सेवन करना चाहिये एव यष्टिक और शङ्खपुष्पी का दुग्ध के साथ सेवन बालक की आयु मे वृद्धि करता है (२८३/३,४)

कवित्व शक्तिकर योग—

(१) एक मास तक विल्व-तैल का नस्य लेने से कवित्व शक्ति प्राप्त होती है (२८३/३)।

कान्तिवर्द्धक योग—

(१) दुग्ध घृत अथवा तैल के साथ वचा का सेवन करना चाहिये एव यष्टिक और शङ्खपुष्पी का दुग्ध के साथ सेवन बालक मे कान्तिवृद्धिकर है। (२८३/३,४)।

केश्य योग—

(१) ताल निम्बपत्र, जीर्ण तैल, जवा कुसुम एव घृत केश के लिए हितकारी माने गये हैं (२७९/५६)।

दीर्घ आयुष्कर योग—

(१) दीर्घ जिजीविषु व्यक्ति को रात्रि मे मधु तथा घृत का सेवन करना चाहिए। शतावरी के रस मे सिद्ध क्षीर एव घृत वृष्य कहे गये हैं। कलम्बिका एवं माष भी वृष्य हैं। मुलहठी (मधुक) सहित त्रिफला भी आयुवर्द्धक है। मधुक आदि के रस से युक्त त्रिफला वली तथा पलित नाशक है (२७९/४९–५१)।

(२) हरीतकी, चित्रक, शुण्ठी, गुडूची और मूसली का चूर्ण गुड के साथ खाने से सभी रोग नष्ट होते है तथा उसे ३०० वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त होती है (२८२/४५,४६)

(३) शर्करा, सिन्धु एव शुण्ठी के साथ अथवा पिप्पली (कृष्णा) मधु एव गुड के साथ प्रतिदिन दो-दो हरीतकी

* वरिष्ठ शोध छात्रा जिन्होने हिन्दू वि० वि० से 'अग्निपुराण की दार्शनिक एव आयुर्वेदिक सामग्री' नामक शोध प्रबन्ध पर डा० ज्योतिर्मित्र के निर्देशन में १९७७ ई० में पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की है।

के सेवन से मनुष्य १०० वर्ष तक जीवित रहता है।
(२८५/६२,६३)।

(४) पिप्पलीयुक्त त्रिफला भी मधु एवं घृत के साथ खायी जाने पर व्यक्ति को शतायु करती है (२८५/६३)।

(५) व्यक्ति मधु, घृत एव गुडूची (अमृता) के सेवन से तीन सौ वर्ष तक की आयु प्राप्त करता है (२८६/१)।

(६) चार तोले, दो तोले अथवा एक तोले की मात्रा मे त्रिफला का सेवन दीर्घ आयु का प्रदाता है (२८६/२)।

(७) एक मास तक विल्व तैल का नस्य लेने से पाँच सौ वर्ष तक की आयु प्राप्त होती है (२८६/३)।

(८) नील कुरण्टक के चूर्ण को दुग्ध अथवा मधु के साथ सेवन करने से या खाडयुक्त दुग्ध के सेवन से शतायु प्राप्त होती है (२८६/४)।

(९) मधु के साथ उच्चटा को एक तोले की मात्रा मे खाकर दुग्ध पान करने वाला मनुष्य मृत्यु पर विजय पाता है—(२८६/६)।

(१०) छः मास तक प्रतिदिन एक तोला पलाश तैल का मधु के साथ सेवन करके दुग्धपान करने से व्यक्ति पाँच सौ वर्षो तक जीवित रहता है (२८६/७)।

(११) वाराहिका, भागरा (भृङ्गरस); लौहचूर्ण एवं शतावरी को घृत के साथ एक तोला की मात्रा मे सेवन से मनुष्य ५०० वर्ष की आयु प्राप्त करता है (२८६/१२)।

(१२) सोने का वरक (सुवर्ण चूर्ण), कान्त चूर्ण एवं शतावरी को भृङ्गराज रस से भावना देकर मधु एवं घृत के साथ सेवन से ३०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है (२८६/१३)।

(१३) शालूक चूर्ण को भृङ्गराज रस की भावना देकर मधु और घृत के साथ सेवन करने पर व्यक्ति को एक सौ वर्ष की आयु प्रदान करता है (२८६/१४)।

(१४) अश्वगन्धा एव त्रिफला तैल, शर्करा एव घृत के साथ सेवन करने से व्यक्ति शतायु होता है (२८१/१४)।

(१५) मधु सहित निम्ब के तैल से नस्य लेने से व्यक्ति शतायु होता है और उसके केश सदा काले रहते है—
(२८६/१८)।

(१६) मधुरादिगण की औषधियाँ और हरीतकी को गुड और घृत के साथ खाकर दुग्धसहित अन्न भोजन करने वाला उपर्युक्त गुण को प्राप्त करता है। (२८६/१९)।

(१७) कटुतुम्बी के एक कर्ष मात्रा मे तैल का नस्य २०० वर्ष की आयु प्रदान करता है (२८६/१९)।

(१८) एक मास तक सफेद पेठे के एक पल चूर्ण को मधु, घृत और दूध के साथ सेवन करने से दुग्धान्न सेवी व्यक्ति सहस्र वर्ष की आयु प्राप्त करता है (२८६/२०)।

(१९) त्रिफला एव शुण्ठी का सतत प्रयोग ३०० वर्ष की आयु का प्रदाता है (२८६/२०)।

(२०) त्रिफला, पिप्पली एव शुण्ठी इनका लौहचूर्ण भृङ्गराज, वला, निम्ब पचाग, खदिर, निर्गुण्डी, कण्टकारी, वासा और पुनर्नवा के साथ अथवा इनके रस की भावना देकर या इनके सयोग से वटी या चूर्ण का निर्माण करके उसका घृत, मधु, गुड जल आदि अनुपान के साथ सेवन करने से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। यह योगराज मृत सजीवनी के समान है (२८६/२२–२४)।

पलित—

(१) सक्षीर मार्कव रस को दो प्रस्थ मधुक एव उत्पल के साथ पकाकर बनाये गये तैल के नस्य लेने से पालित्य रोग नष्ट होता है (२८५/२८, २९)।

(२) मण्डूकपर्णी (माण्डूकी) के चूर्ण का दुग्ध के साथ सेवन पालित्य का नाशक है (२८७/१५)।

बलीहर योग—

(१) माण्डूकी के चूर्ण का दुग्ध के साथ सेवन वली का नाशक है (२८६/५)।

मेध्य योग—

(१) वचा, युग्म-हरिद्रा एव मोथा—मिश्रित जल से किये गये स्नान से मे मेधा की वृद्धि करता है (२६७/७)।

(२) वचा, अग्निशिखा, वासा शुण्ठी, कृष्णा एव निशा इन औषधियो का यष्टिमधु एव सैंधव के साथ प्रात. काल सेवन करने से यह बुद्धिवर्धक है (२८३/४,५)।

(३) शङ्खपुष्पी, वचा एव कूठ (कुष्ठ) को ब्राह्मी रस से सिद्ध कर निर्मित गुटि I के सेवन से मेधा की उत्तम वृद्धि होती है (२८५/१९)।

मृत्युजित योग—

(१) मधु, घृत एव शुण्ठी का एक पल प्रातकाल सेवन करने वाला मृत्यु पर विजय पा लेता है। (२८७/५)

(२) मधु, घृत अथवा दुग्ध के साथ निर्गुण्डी सेवन से मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है। (२८६।६)

(३) रुदन्तिका को मधु और घृत के साथ सेवन करके दुग्धपान करने से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है (२८६।१०

रूप सम्पत्तिवर्द्धक योग—

(१) दुग्ध या घृत अथवा तैल के साथ वचा का सेवन करना चाहिए एवं यष्टिक और शङ्खपुष्पी का दुग्ध से सेवन बालक की रूपसम्पत्ति में वृद्धिकर है (२८३।३,४)।

रोग निवारक योग—

(१) भृङ्गराज के रस मे भावित त्रिफला १०० पल, विडङ्ग एवं लौहचूर्ण दस भाग, शतावरी, गुडूची एव चित्रक प्रत्येक २५-२५ पल सबको एक साथ मिला कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को मधु, घृत एव तैल के साथ चाटने से मनुष्य पलित एव वली रहित हो जाता है तथा वह सर्व रोग विहीन हो शतायु होता है। त्रिफला, तैल, मधु और घृत के साथ सेवन करने पर भी उपर्युक्त लाभ होता है (२८३।४२-४५)।

(२) मधु, घृत, त्रिफला एव अमृता सामान्यतया रोग नाशक हैं (२८६।१)।

(३) चार तोले या दो तोले अथवा एक तोले की मात्रा में त्रिफला का सेवन सभी रोगों को शान्त करने वाला होता है (२८६।२)।

(४) मधु, घृत अथवा दुग्ध के साथ निर्गुण्डी का सेवन रोगनाशक माना गया है (२८७।७)।

(५) मधु घृत अथवा दुग्ध के साथ निर्गुण्डी का सेवन रोगो को दूर करने वाला है (२८६।६)।

(६) नीम के पञ्चाग चूर्ण को खदिर के क्वाथ से भावित कर एक कर्ष की मात्रा मे भृङ्गराज के रस के साथ सेवन करने से रोगो पर नियन्त्रण पाया जा सकता है (२८६।६,१०)।

(७) अशोक की छाल का एक पल चूर्ण मधु और घृत के साथ खाकर दुग्धपान करने से यह रोगनाशक है (२८६।१७)।

रोगजित् योग—

(१) हरीतकी के एक कर्ष चूर्ण को भृङ्गराज रस की भावना देकर घृत और मधु के साथ सेवन करने से व्यक्ति रोगमुक्त हो तीन सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है (२८६।११)।

(२) पथ्या, सैन्धव एव पिप्पली (कृष्णा) के चूर्ण को उष्ण जल के साथ लेने से यह नाराच संज्ञक योग सर्वरोग नाशक है (२८५।७७)।

सर्व रोगनाशक अमरीकर योग—

(३) हरीतकी, विभीतक (अक्ष), आमलक (धात्री) मरिच- पिप्पलीमूल, चित्रक, शुण्ठी, पिप्पली, गुडूची, वचा, निम्ब, वासक, शतमूली, सैंधव निर्गुण्डी (सिन्धुवार) कण्टकारी, गोक्षुर, विल्व, पुनर्नवा, वला, एरण्ड, मुण्डी, रुचक, भृंगराज, क्षार, पर्पट, धनिया (धान्यक), खदिर, करज (कृतमाल), हरिद्रा, जीरक, शतपुष्पी, 'यवानी, विडग, वचा एव सर्षप (सिद्धार्थ) ये छत्तीस संख्या (पदो) मे स्थित (स्थापित) औषधियाँ हैं।

क्रमश एक दो आदि सख्या वाले ये महान औषध समस्त रोगो को दूर करने वाले तथा अमर करने वाले हैं—पूर्वोक्त सभी औषधिया शरीर मे झुरियाँ नही पडने देती तथा वालो को पकना रोकती हैं।

इन औषधियो का चूर्ण या रस से भावित वटी, अवलेह, कषाय (काढा) मोदक या गुड, खाड, घृत या मधु के साथ खाया जाय अथवा इनके रस से भावित घी या तेल का जिस किसी तरह से भी उपयोग किया जाय तो वह सर्वथा मृतसजीवन होता है। आधे पल या एक पल के मान मे इसका उपयोग करने वाला पुरुष यथेष्ट आहार-विहार मे तत्पर होकर तीन सौ वर्षों तक जीवित रहता है। मृतसजीवन कल्प मे इससे वढकर दूसरा योग नही (१४१।१-१०)।

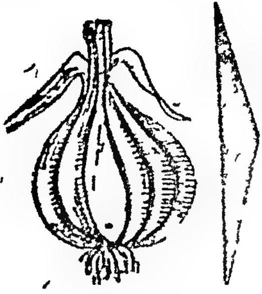
प्रथम नवक योग से बनी औषध का सेवन करके मनुष्य सब रोगो से मुक्ति पा जाता है। इसी तरह द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम एवं षष्ठ षट्क के सेवन मात्र से मनुष्य निरोग हो जाता है।

उक्त छत्तीस औषधियो के नौ चतुष्क होते हैं। उनमे से किसी एक चतुष्क के सेवन से भी मनुष्य के समस्त रोग दूर हो जाते हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठ की औषधियो के सेवन से वातदोष से मुक्ति मिल जाती है।

तीसरी, बारहवी, छब्बीसवी और सत्ताईसवी औषधियो के सेवन से पित्त दोष दूर होता है।

—शेषांश पृष्ठ १५८-पर।

वृद्धावस्था कालीन शरीर शैथिल्य नाशक—




रसायन

वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य
मिश्री जि (भिवानी)

कुटी प्रावेशिक विधि के अनुसार रसोन का सेवन करना चाहिए। आजकल शास्त्रानुसार कुटी निर्माण करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। फिर भी रसोन कल्प सेवन करने वाला सुगन्धित, वातायन युक्त, उत्तम मकान मे रहे। वहां का वातावरण शान्त तथा भय रहित हो।

जिसकी जाठराग्नि एव बल क्षीण नहीं हुए हैं, वह व्यक्ति पौष एव माघ के मास मे आयु को स्थिर रखने के लिये रसोन का सेवन करे।

१—रसोन कन्द एक पोती [जिस लशुन का कन्द एक ही हो] १ नग लेकर निष्तुष कर भली-भांति पीसकर कल्क बनालें। इस कल्क को ५० मिलि० गोदुग्ध में पकावें। जब दुग्ध कुछ गाढा हो जाए तो अग्नि से उतार सुखोष्ण कर पीले। इस प्रकार ४० दिन पीवें। अथवा

२—एक पोती रसोन २५० ग्राम लेकर पीस कल्क बनाले। इस कल्क को २॥ लिटर गोदुग्ध में डाल पकावें। दुग्ध का खोवा बनने पर उसमे समान भाग शर्करा मिला कर उतार लें। इस खोवे के ४० पेडे बनालें।

मात्रा—एक पेडा यदि दो पेडे पच जावें तो दो ले सकते हैं। अनुपान—गोदुग्ध २५० मि०लि० या इच्छानुसार अधिक भी ले सकते हैं।

३—रसोन एकपोती ४ नग लेकर पीस कल्क बनावें। इसमे इच्छानुसार घृत जो ५० ग्राम तो होना ही चाहिए तथा थोडा मधु मिलाकर अवलेह बना नित्य सेवन करें, ऊपर से दूध पीवें।

विशेष—जो व्यक्ति इस प्रकार कच्चे लशुन का प्रयोग न कर सके, उसको घी मे भून कर दें, अथवा

४—लशुन २॥ किलोग्राम पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क को ४० लीटर जल मे डाल कर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उसमे १ किलो गोघृत डाल पुन पकावें। जब घृत सिद्ध हो जाए तो नितार कर रख लें। मात्रा—२० ग्राम। अनुपान—गोदुग्ध।

लाभ—लशुन के सेवन से "स्मृतिमेधाबलवर्णचक्षु प्रसादनम्" स्मृति मेधा, बल, आयु एव वर्ण की वृद्धि होती है। नेत्रो के लिए हितकारी है।

जब शरीर वृद्धावस्था को प्राप्त होने लगता है तो शरीर की मांसपेशिया शिथिल होने लगती हैं। शैथिल्य का आगमन हो जाता है। ऐसी अवस्था मे रसोन का प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होता है। इसके सेवन से ये सभी विकार दूर होकर शरीर सुन्दर, सुदृढ एव बलवान बनता है। लशुन को किसी भी विधि से सेवन करें यह वयस स्थापन परम्' आयु को स्थिर करता है। इसके सेवन से 'दृढमेधा दीर्घायुर्दर्शनीयप्रजा भवेत्।" पुरुष दृढ मेधावी दीर्घायु एव सुन्दर सन्तान युक्त होता है। 'अशक्तो ग्राम्य-धर्मेषु शुक्रधाश्च भवेन्नर ॥" मैथुन मे थकता नहीं तथा शुक्र को धारण करने वाला होता है। इससे शुक्र की वृद्धि होती है। इसके सेवन से शरीर मृदु एव कण्ठ मधुर हो जाता है। ग्रहणी के दोषो की शान्ति होती है और जाठराग्नि प्रदीप्त होती है।

रसोन सेवन काल मे उष्णोदक का सेवन करें। आर्द्रक बिजौरा, हरित वर्ग के पदार्थ सेवन करें। दालचीनी, तेजपात, शुण्ठि, मरिच छोटी इलायची, जायफल, सैंधव लवण आदि का सेवन करें।

"रसोनान्यन्तरा खादेत् पिबेत्सुरां तथाऽन्तरा।"

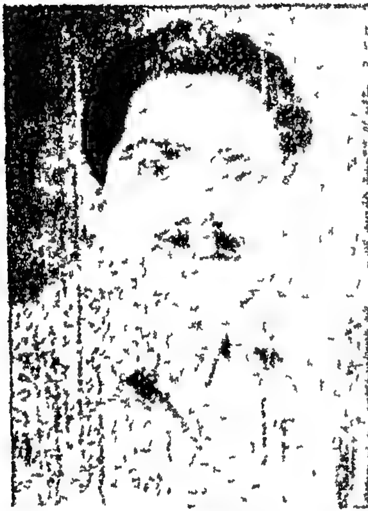
लशुन तथा सजीवनी सुरा का बारी २ से एक दूसरे के बीच मे सेवन करें अर्थात् लशुन खाकर फिर मृतसंजीवनी पिये फिर लशुन खाये और पुन सुरा इत्यादि क्रम से सेवन करे। इस प्रकार धीरे-धीरे तृप्तिपर्यन्त इनका सेवन करे। इसके पश्चात् उष्णजल वा उष्ण दुग्ध पिए।

चालीस वर्ष के पश्चात् जब शारीरिक दौर्बल्य का अनुभव करने लगे तो आप रसोन रसायन का सेवन कर पुन नवजीवन नवयौवन प्राप्त करें।



आयुर्वेदीय रसायन

डा० श्री योगेन्द्र कुमार त्रिपाठी ए० एम० बी० एस०, एम० ए०, पी० एच० डी० नई दिल्ली



श्री त्रिपाठी जी गुरुकुल कागडी के स्नातक है और आपने न्याय सूत्र एव चरक सहिता से सम्बन्धित सामग्री का दार्शनिक एवं आयुर्वेदिक अध्ययन प्रस्तुत कर पी. एच. डी. उपाधि प्राप्त की है। आप श्वित्र रोग विशेषज्ञ है। बहुत ही मिलनसार सरल स्वभाव के अनुवेषक विद्वान हैं।

आयुर्वेदीय रसायन शीर्षक लेख मे उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत की है। —विशेष सम्पादक

रसायन से आयु प्राप्ति—

तिल, आवला, भृगराज को मिश्री, दूध, घी के साथ खाने से वार्धक्य नाश होता है।[1]

गुग्गुलु, हरड, पुराना गुड, सोमलता स्वरस, गगाजल दूर्वा, रुद्री का सेवन करना महा रसायन है जिससे बुढापा तथा विविध सन्ताप नष्ट होते हैं।[2]

ब्राह्मी स्वरस आदि के सेवन से सशोधन होकर अलक्ष्मी, भूत-बाधा दूर होती है तथा विष के प्रभाव नष्ट हो जाते हैं।[3]

श्वेतवचा एव आवलो के सेवन से छत्तीस दिनो मे श्रुतधारी हो जाना और अड़तालिस दिनो में सभी पापो का नाश होता है।[4]

त्रिफला रसायन के सेवन से सौ वर्षो की आयु प्राप्त हो जाती है।।

बेल (बिल्व) के साथ मण्डूकपर्णी का बारह रात्रि विधिवत सेवन करने से मेधावी तथा सौ वर्षों की आयु प्राप्त होती है।।

आमलकघृत के सेवन से श्रुतधारी होकर जरारहित सौ वर्षो की आयु हो जाती है।।

आमलकी चूर्ण, विडंगावलेह, आमलकावलेह एवं नागवला रसायनों के सेवन से जरारहित सौ वर्षों की आयु होती है।।

विडंगतण्डुल से पूर्ण कायाकल्प होकर पुनर्जीवन प्राप्त होता है तथा नख, दन्त, केशो का पुन. उत्पन्न हो जाना

---

[1] लोह रत्नाकर काण्ड ६/१५६ [2] लोह रत्नाकर काण्ड २/२० [3] सु० चि० २८/६ [4] सु० चि० २८/८
[5] च० चि० अ० १/३/४३ [6] सु० चि० २८/४ [7] चरक चि० अ० १/२।११ [8] च० चि० अ० १।२।४



सम्भव है ।[9]

वचाकल्क मे सिद्धघृत को एक द्रोण की मात्रा मे सेवन करने से पाच सौ वर्षो की आयु प्राप्त होती है [10]

लौहादि रसायन से अभिघात, आतंकनाश, वाक्सिद्धि, श्रुतधारत्व–तथा महाधनी हो जाना सम्भव है ।[11]

केवलामलक रसायन सेवन करने से दो हजार या दो हजार वर्षो की आयु, लक्ष्मी, कान्ति, वाक तथा अमरत्व प्राप्त हो जाता है ।[12]

द्रोणी प्रावेशिक रसायन के विधि-विधानानुसार प्रयोग से दस हजार वर्षो की आयु तथा एक हजार योजन दैनिक भ्रमण करने की शक्ति उपलब्ध होती है ।[13]

युक्तरथ रसायन 'बिल्व' आदि के प्रयोग से दस हजार वर्षो की आयु प्राप्त होती है ।[14]

इन्द्रोक्त रसायन के सेवन से विष,अलक्ष्मी,दारिद्रय का नाश हो जाता है तथा अभिलषित भाव की प्राप्ति हो जाती है । [15]

सुश्रुतोक्त रसायन भेद—

१. सर्वोपघातशमनीय कुटीप्रावेशिक ।
२. वातातपिक रसायन ।

दोनो के तीन भेद—

१. प्राणकाम (मेधाकाम श्रीकाम आदि)
२. व्याधिनैमित्तिक
३. आजस्रिक

दिव्य औषधियां—

रसायन योगो मे व्यवहृत होने वाली सभी औषधिया दिव्य औषधिया हैं ।[16] पर निवृत्तसन्तापीय मे रसायन निम्न अठारह औषधियो का उल्लेख भगवान धन्वन्तरि ने किया है । अजगरी, श्वेतकापोती, गोनसी, वाराही, कन्या छत्रा, अतिछत्रा, करेणु, अजा, चक्रका, आदित्यपर्णी, ब्रह्मसुवर्चला, श्रावणी, महाश्रावणी, गोलोमी, अजलोमी, महावेगवती ।[17]

[9] सु० चि० २७।८ [10] सु० चि० २८।८ [11] च० चि० अ० १।३।२४–२२ [12] च० चि० अ० १।३।८–१३ [13] सु० चि० २८।६–२६ [14] च० चि० अ० १।१।५, १२–२५ [15] 'भगवान धन्वन्तरि' सु० चि० २७।८ [16] अग्निपुराण अ० २८५।१–७८ [17] सु० चि० ३०।१–४०

—पृष्ठ १४७ का शेषांश—

अतिव्यवाय के कारण आपतित वार्द्धक्य के दूरीकरणार्थ वैद्य तरुणचन्द्र द्वारा किसी राजा को भूमिगृह मे रखकर (सम्भवत कुटी प्रावेशिक) रसायन सेवन का विधान अंकित है ।[11] अलबेरूनी के विवरण से ज्ञात होता है कि डायोनिस ने वृद्धावस्था की कटुता को दूर करने के लिए मनुष्य को मदिरा रूपी औषधि दी ताकि वृद्ध जन खिन्नता को भूलकर और आत्मा को दुखितावस्था से स्वस्थावस्था मे लाकर पुन यौवन प्राप्त करें ।

दीर्घ आयुष्कर रसायन–

राजतरंगिणी मे दीर्घ आयुष्कर पिण्ड सिद्धि नामक एक रसायन का उल्लेख आता है जिसको एक डोम ने एक राजा को सेवन करवाया था । डल्हण(—७/११/३३)

विषवृक्ष का पत्र आयुरक्षक होता है (यश० ७/३६) । आदि पुराण के एक विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दीर्घायुष्य का परिचय आयुर्वेद ज्ञान के आधार पर सप्तम शतक मे भी किया जाता था (४१/१४६) ।

इसके अतिरिक्त रोगापनयार्थ रसायन द्वारा चिकित्सा का विधान भी मिलता है (दर्प० ३/४६) । औषधि प्रयोग से जीवन स्थिर रहता है । (यश० ३/२६१) पद्मपुराण से ज्ञात होता है कि शाक एव फल का आहार करने वाला व्यक्ति सदैव कुमारावस्था मे बना रहता है (३/१२/५) ।

केश्य औषधि—

कथासरित्सागर के एक कथानक के माध्यम से हमे केश्य औषधि के ज्ञान का निर्देश प्राप्त होता है (१०/५/१८०-१८६) ।

क्षेमेन्द्र के विवरण से ज्ञात होता है कि राग(खिजाब) आदि के द्वारा केशो को काला करने का विधान लोगो को ज्ञात था (समय० ६/२५) ।

आचार रसायन—

आदि पुराण मे तीर्थांकर के श्वास-प्रश्वास या वमन द्वारा निसृत वायु को प्राणी के सर्वविध रोग का शामक बताया गया है (२/७१) ।

जिस प्रकार रसायन से मृत्यु पर विजय पायी जा सकती है उसी प्रकार जगत की मृत्यु के नाश के लिए त्रिरत्न को ही रसायन माना गया है (बोधि०८/२८) ।

[11] कथा० ७/६/४४–५०

रसायन--जरा एवं व्याधि विध्वंसी

डा० श्री नर्मदा प्रसाद शर्मा एम ए०, ए० एम० वी० एस०, प्रोफेसर—गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, पटियाला।

डा० नर्बदा प्रसाद जी शर्मा—भारत प्रसिद्ध ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार के सुयोग्य स्नातक है और राजकीय आयुर्वेदिक कालेज पटियाला के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। आप आयुर्वेदज्ञ एव सस्कृतज्ञ हैं और चरकानुयायी हैं। मेरे निवेदन पर आपने "रसायन-जरा और व्याधि विध्वसी" लेख विशेषाक हेतु प्रेषित किया—जिसमे आपने चरक के सिद्धान्तो का सुन्दर प्रतिपादन किया है। लेख पाठको के लिए उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास [विशेष सम्पादक]

रसायन से पूर्व संशोधन

हरीतकी, वचा, विडग, हरिद्रा, पिप्पली, सोठ, आमलक, सैन्धव लवण एव गुड़ को मिलाकर उष्णजल से पान करायें, तदनन्तर ससर्जन क्रम से रखें, तीन पाच या सात दिन तक पतला जौ का सीरा घृत सहित प्रयोग करायें। शुद्ध कोष्ठ होने पर ही रसायन का विधिवत सेवन कराने से फल प्राप्त होता है।

रसायनो के विधान—

चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय का प्रथम रसायन पाद का नाम 'अभयामलकीय' है। हरीतकी तथा आमलक ये दोनो द्रव्य सर्वोत्तम रसायन हैं। इनका प्रयोग एकाकी रूप मे अथवा योग म प्रयोग किया जाता हे। ये दोनो द्रव्य रोगनाशक तथा आयुष्कर माने है। आमलक तो "आमलक वय स्थापनानाम्" च. सू. अ. २५ इस अध्याय मे हरीतकी को आमलक से भी पूर्व लिखा है, क्योकि हरीतकी रोग हरण की दृष्टि से प्रकर्ष है। हरीतकी मे सयोग एवं सस्कार सर्व रोग प्रशमन गुण प्रकट होते हैं। योगो मे ब्राह्मरसायन जिसके सेवन से ऋषियो ने अमित आयु को प्राप्त किया, ब्राह्मतप को आचरण करते हुये जीवनयापन किया।

च्यवनप्राश— महर्षि च्यवन के लिए प्रयोग की गई इस रसायन का आम प्रयोग रसायन फल के अलावा रोग हरत्व है। इसका प्रचार बहुत अधिक है। यत. ब्राह्म रसायन मे हरीतकी एव आमलक दोनो ही बराबर उपयोग किए जाते है। जबकि च्यवनप्राश मे आमलक का ही प्रयोग विशेष है। अन्य द्रव्य दशमूल के अष्टवर्ग के द्रव्य तथा कुछ क्वाथ के द्रव्य है। उसी मे आमलक स्विन्न करके आमलक पिट्ठी बनाकर घृत तैल मे भूनकर क्वाथ मिला कर प्रक्षेप द्रव्यो को मिलाकर च्यवनप्राश तैयार किया जाता है। यह श्वास, कास, क्षय, स्वरक्षय, वक्ष के रोग, हृद्रोग, वात शोणित, मूत्र व शुक्र के रोग पिपासा तथा बच्चो की वृद्धिनिमित्त प्रयोग किया जाता है। च्यवन ऋषि को इस रसायन से वृद्धावस्था से युवावस्था प्राप्त हुई एव दीर्घायु से युक्त हुए।

आमलकावलेह— आमलक १०००, पिप्पली १००० पलाश क्षारोदक मे रखकर मधु, घृत मिलाकर (चौगुना) छ मास तक अन्तर्भूमि रख फिर प्रयोग करे।

आमलक घृत—आवलो से विदारी आदि के स्वरसो को डालकर घृत सिद्ध करे, अन्त मे मधु - घृत मिलाकर स्वर्ण या रजत मृत्तिका कुम्भ म रख दे फिर प्रयोग करे।

आमलक चूर्ण,—केवल आमलक रसायन इसप्रकार आमलक का प्रयोग प्राथमिकता से किया गया है।

नागबला रसायन—इसका प्रयोग इस सस्था मे स्नातकोत्तर गवेषणा के रूप मे किया गया जिसका लाभ उत्साह, ओज एव शरीर भार मे वृद्धि के रूप मे पाया गया।

भल्लातक रसायन— इस रसायन का विधान यद्यपि केवल शतायु के लिए लिए दिया गया है तथापि इसके



गुणो की दृष्टि से यदि अग्नि रूप भल्लातक का प्रयोग जीर्ण रोगो में यथा कर्कटार्बुद मे किया जाए तो अधिक उपयुक्त होगा । एक हजार मिलावे प्रयोग करने होते हैं । भल्लातक रसायन के १० विधान हैं, यथा भल्लातक क्षीर, भल्लातक क्षौद्र, भल्लातक तैल, भल्लातक घृत, गुडभल्लातक, भल्लातक यूष, भल्लातकपलल, भल्लातकसक्तु, भल्लातकलवण, भल्लातक तर्पण ।

यह अमृत कल्प है । कोई भी कफजरोग ऐसा नही जो इससे नष्ट न हो जाऐ । कोई विबन्ध नही जो न भेदन हो जाये । यह जीर्ण रोगो को शीघ्र ही नाश करके बुद्धिबल एवं अग्निबल बढाती है ।

रसायनो मे काष्ठौषधिया एवं आहार रूप घृत तैल मधु, दूध, शर्करा, सितोपला आदि द्रव्यो का विधान है । जो निश्चित ही आयु को प्रकर्ष, बुद्धि, स्मृति, आरोग्य, ऊर्जसिता, अग्निवृद्धि, सौ वर्ष की आयु को प्रदान करता है । सौ वर्ष की आयु अजर जरावस्था से रहित होकर जीने का उल्लेख है । अर्थात सौ वर्ष की आयु मे अवस्था जन्य जीर्णता या रोगो के द्वारा प्राप्त जीर्णता नष्ट हो जाती है । "अजर" शब्द का प्रयोग रसायन की विशेषता को दर्शाता है ।

उपर्युक्त रसायनो मे अभया - आमलक रसायन बहुश' प्रयुक्त है । अपि च आमलक - हरीतकी–विभीतक (त्रिफला) का ही रसायन रूप मे चरक मे बहुश प्रयोग निर्दिष्ट है ।

यहा पर आरोग्य एव रोगनाशक उपायो के रूप मे दो प्रकार की विशिष्ट रसायनो का उल्लेख करना अप्रासगिक नही होगा क्योकि इन रसायनो का प्रत्येक आयु तथा प्रत्येक व्यक्ति के साथ गुणानुपूर्वी विधान है। अन्य ये रसायनें - मेध्य रसायनें, एव आचार रसायन है ।

'मेध्य रसायन— ये चार 'रसायनें है ।

१. मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) के स्वरस का प्रयोग ।
२. मधुयष्टी (मुलैहठी) के चूर्ण का दूध से सेवन
३. गिलोय के समूल पुष्प पत्र स्वरस का प्रयोग
४. शखपुष्पी चूर्ण का प्रयोग करना ।

इनके गुण आयु प्रदाता, रोगनाशक, बलवर्धक, जठराग्निवर्धक, वर्ण प्रसादकर, स्वर को उत्तम बनाने वाले मेधावर्धक विशेष गुण से युक्त हैं । इनमे (चारों में) भी शखपुष्पी को विशेष रूप से मेध्य उल्लेख किया गया है । इन रसायनो की आवश्यकता बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक होती है । रोग एव नीरोग दोनो को ही आवश्यकता होती है ।

आचार रसायन—

सभी प्राणकामीय रसायनो का उल्लेख करके अन्त मे विशेष रसायन विधान किया है । जिसे आचार रसायन कहते हैं । जिसके सेवन से रसायन के पूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं । अथवा इस रसायन के सेवन किए बिना सभी रसायन प्रयोग व्यर्थ हो जाते हैं । आचार रसायन का विधिवत् सेवन करने वाला व्यक्ति सभी रसायन गुणो को प्राप्त करता है । इनका प्रयोग नित्यप्रति किया जाता है । इसके लिए कुटी प्रवेश या वातातपिक विधि का भी उपयोग करना नही होता । किसी द्रव्य विशेष की भी आवश्यकता नही होती । पुरुष यावदायु अजर रसायन गुणों से युक्त होकर जीवित रहता है ।

मद्य प्रयोग एव मैथुन से निवृत्ति होकर पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहें । सत्यवादी, क्रोध रहित, अहिंसाशक्ति, बहुत अधिक परिश्रम न करे, प्रशान्त, प्रिय बोलने वाला, जप एव पवित्र आचरण करने वाला, धैर्ययुक्त, नित्यदान करने वाला, तपस्वी देव - गौ - ब्राह्मण - आचार्य - वृद्ध को सत्कार दें । मानवता, करुणवेदना से युक्त, स्वप्न तथा जागरण मे साम्यता, नित्य दुग्ध - घृत का सेवन करने वाला, देशकाल प्रमाण को जानने वाला, युक्तिज्ञ, अहंकार से रहित, प्रशस्त आचार वाला, असकीर्ण विचार वाला, अध्यात्मवाद मे रत, इन्द्रियो को नियन्त्रण मे रखने वाला, आस्तिक, जितात्मा, धर्मशास्त्रज्ञ, वृद्धो की उपासना करना आचार रसायन विधान हैं । यह रसायन नित्यप्रति सेवनीय है । इस रसायन के सेवन से रसायन के अभिहित पूर्णफल प्राप्त होते हैं । ये सब शिष्टाचार, सदाचार सभ्य आचरण हैं । इससे शरीर एव मन दोनो ही स्वस्थ होते हैं, दीर्घायु प्राप्त होती है । आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होता है । व्यक्ति के जीवन मे इस लोक एवं परलोक मे भी श्रेय प्राप्ति होती है ।

भांगरा—भृंगराज एक रसायन

डा० रामनिवास, मोहता श्री मोहता रसायनशाला, हाथरस

××××

भांगरा के पौधे वर्षा ऋतु मे विपुलता से उत्पन्न होते हैं और नम जमीन में बारह महीने रहते हैं। यह एक फुट से दो फुट तक ऊँचे होते हैं, कुछ जमीन पर फैल जाते हैं कुछ सीधे खडे रहते हैं। इसकी शाखायें हरी, चमकीले, फूल सफेद रग के और बीज काला होता है। पत्ते एक इन्च से ३ इच तक लम्बे व १/२ इंच से एक इन्च तक चौड़े होते हैं। पुष्प वर्ण से शास्त्रो मे सफेद पीत व काला भागरा तीन प्रकार का वर्णित है किन्तु सफेद ही पाया जाता है और वही काम मे लिया जाता है।

गुण—भागरा कटु, उष्ण, कृमि नाशक, नेत्र ज्योति-वर्द्धक, यकृत, प्लीहा विकार नाशक, पाण्डुरोग, चर्मरोग, हृदय रोग नाशक, श्वेतकुष्ठ, खासी, दमा शामक, केश-वर्द्धक व केश रञ्जक है।

भागरा रक्तशोधक, पित्तशोधक व आयु को बढाने वाला है। भागरा+अश्वगधा+आँवला के समान भाग चूर्ण को २-२ ग्राम की मात्रा में प्रात साय सेवन करें।

भागरा के पत्ते का स्वरस एक एक चाय की चम्मच प्रात. साय पीलिया (Jaundice) और ज्वर मे लाभदायक है। इसके प्रयोग से पेशाब की जलन भी शात होती है।

भागरा के रस प्रयोग से यकृत् की क्रियाशीलता बढती है, पित्त का सचालन व्यवस्थित रूप से होता है। भागरे का प्रतिदिन सेवन वृद्धावस्था को तरुणावस्था मे परिवर्तित करने मे सक्षम है। शरीर में ओज, कान्ति की वृद्धि होती है और नवस्फूर्ति का सचार होता है।

भागरा यकृत और प्लीहा के कार्य को गतिशील करता है नवीन रक्त का सचार होता है, अग्निमाद्य समाप्त करके पाचन शक्ति का सुधार करता है, उदर विकार, कृमि रोग, अर्श रोग और यकृत तथा उदरशूल नष्ट होते हैं। चक्कर आना, शिर शूल, दृष्टिमांद्य और चर्म विकार नष्ट होते हैं। समय से पूर्व जिनके सिर के बाल श्वेत हो गये हो या बाल गिरना शुरु हो गये हो दोनो को रोकता है।

भागरा और विच्छूतप—भागरे के पत्ते विच्छूदश पीडा को दूर करने मे एक चमत्कारिक प्रयोग है। जहाँ तक वेदना हो इसके रस और पत्तो के कल्क का प्रयोग करे।

अर्द्धावभेदक—आधा शीशी अर्थात् आधे शिर के दर्द मे इसके रस को बकरी के दुध मे मिला कान मे टपकाने से लाभ होता है।

अग्निदग्ध मे तुलसी एव भागरा स्वरस को मिलाकर लगाने से वमन शान्त होती है और शरीर पर किसी प्रकार का दाग नही पडता है।

मेदवृद्धि मे भागरा चूर्ण का १ से २ ग्राम की मात्रा मे दिन में दो बार जल के साथ सेवन से मेद नष्ट होता है।

विसर्प मे भागरा का रस एव हल्दी के निरन्तर प्रयोग से लाभ होता है।

शिर शूल और काल पूर्व ही सफेद हुए बालो मे इस के रस से सिद्ध तिल तैल के प्रयोग से लाभ होता है। बाल काले, चमकीले व लम्बे होते है और गिरे हुए बाल फिर से उत्पन्न हो जाते हैं।

भारतीय ज्योतिष के अनुसार

राजयोग से काया कल्प

श्री प० लक्ष्मी नारायण शर्मा—नई दिल्ली



राजयोग से कायाकल्प किस प्रकार सम्भव है, यह बताने से पहले यह जानना आवश्यक है कि राजयोग क्या है और कायाकल्प किसे कहते है ? काया का अर्थ है शरीर और कल्प का अर्थ है–बदलना, नवीनीकरण करना। हमारे प्राचीन महर्षियो ने जिनको पालन करके सफलता प्राप्त की तथा आज भी उनका पालन करने से सिद्धि मिलती है। नियमित आहार विहार व्यायाम ब्रह्मचर्य योग आसन योग साधना, शक्तिदायिनी प्राकृतिक जडी बूटियो की सहायता से बने रसायन आदि के सेवन से अभीष्ट काया कल्प की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त प्राणो पर नियन्त्रण करके राजयोग द्वारा भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने मे सहायता व सफलता मिलती है।

इस शरीर की सभी क्रियाये प्राणो पर ही निर्भर करती हैं। श्वास को ही प्राण कहते हैं। सास आती है सास जाती है और यह शरीर रूपी मशीन चलती रहती है। सास बन्द होने पर मशीन भी बन्द हो जाती है। प्राणवायु नासिका के द्वारा फेफडो मे प्रवेश करती है, खून को नया आक्सीजन प्राप्त होता है और शरीर को नई जीवनी शक्ति मिलती है। इन प्राणो पर नियन्त्रण करने की क्रिया आ जाय तो आयु बढाई जा सकती है। बुढापे को रोका जा सकता है और कायाकल्प प्राप्त किया जा सकता है। आपने अपने प्राचीन ग्रन्थो मे पढा होगा कि किस प्रकार हमारे पूर्वज ऋषि मुनि प्राणो पर नियन्त्रण करके सहस्रो वर्षो की आयु चिरयौवन सुख शान्ति तथा कायाकल्प प्राप्त करने में सफल होते थे। उस समय जैसा वातावरण तथा परिस्थितिया तो आजकल उपलब्ध नही हैं फिर भी उनके चरण चिह्नो पर चलकर गृहस्थ आश्रम मे रहते हुए आज की स्थिति मे भी उन पद्धतियो से लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

श्वास तो हम सभी लेते हैं परन्तु उसमे कोई नियमितता नही होती। यदि प्राणो को राजयोग मे बताये गये प्राणायामो के अभ्यास के द्वारा नियमित करके नियन्त्रित कर लिया जाय तो उनकी गति एक जैसी हो जाती है। यह प्रारम्भिक अभ्यास बहुत सरल होते हैं। महर्षि पातजलि कृत योग दर्शन पर आधारित पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा रचित पुस्तक राजयोग मे इस विषय को बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। हमारे स्वरोदय व राजयोग पाठ्यक्रम भी इन्ही पुस्तको पर आधारित हैं और उनमे इस विषय की जानकारी विस्तार से बताई गई है। लोहे के किसी टुकडे मे उसके अणु बेतरतीबी से पड़े रहते हैं। परन्तु जब उसके ऊपर किसी चुम्बक को फेरा जाता है तो वे सभी अणु एक दिशा मे नियन्त्रित हो जाते हैं और उस लोहे के टुकड़े मे भी चुम्बकीय शक्ति पैदा हो जाती है। इसी प्रकार प्राणायाम करने से शरीर के सैल जो बेतरतीब पडे होते है कोई किसी दिशा मे वे सब एक दिशा मे होकर नियन्त्रित हो जाते हैं और शक्तिवान बन जाते हैं। प्रातःकाल उठकर केवल १०-१५ मिनट तक ही यदि नियमित प्राणायाम किया जाय तो केवल ४० दिन के अभ्यास से ही सतोषजनक प्रगति होती प्रतीत होने लगती है। और शरीर मे शक्ति स्फूर्ति मालूम होने लगती है। हमारे यहाँ प्रातःकाल सध्या करने का प्रचलन था और उसमे श्वास के व्यायाम के रूप मे यही प्राणायाम करने होते थे। यह बहुत सरल साधन हैं और आसानी से किये जा सकते है।

हमारे मस्तिष्क मे परमात्मा के अंश का निवास है जो इस शरीर के सभी क्रिया कलापो को चलाती रहती है। हम सोते होते हैं तब भी इस शरीर की क्रियाओ को कौन चलाता है तो मस्तिष्क से हजारो नाडियो का जाल

निकल कर रीढ की हड्डी से होकर जाता है और कई स्थानो मे नाडिया निकल कर सारे शरीर मे फैली हुई है इन्ही नाडियो की सहायता से मस्तिष्क सारे शरीर पर नियन्त्रण करता है। रीढ की हड्डी के अन्दर तीन मुख्य नाडियां होती है। जिन्हे इडा पिंगला तथा सुषुम्ना कहते है। स्थान - स्थान पर जहा से नाडियो का जाल इनसे बाहर निकल शरीर के विभिन्न भागो मे जाता हैं वहा पर चक्र बने हुए हैं। इन तीन मुख्य नाडियो का सिरा गुदा स्थान के पास सर्प की तरह कुडली बनाकर नीचे की ओर मुडा हुआ रहता है। इसको कुंडलिनी कहते है। इसके अधोमुख के ऊपर की ओर मोड कर धारा को वापिस उपर की ओर प्रवाहित कर दिया जाय तो इसको कुंडलिनी जाग्रत करना कहते है। जितने भी साधन व योग की क्रियायें है वे सब इसी ध्येय को प्राप्त करने के लिए की जाती है। इसके जाग्रत करने पर अपार शक्ति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

हमारे शरीर मे पाच ज्ञानेन्द्रिया है। आत्मा की शक्ति नाडियो के द्वारा इन सबमे धारा रूप से प्रवाहित हो रही है। आखो मे हम इसी शक्ति के द्वारा बाहर की वस्तुओ को देखते है। यदि इस धारा को लौट कर हम ऊपर की ओर देखने का अभ्यास करे तो हमे दिव्य प्रकाश व दिव्य दर्शन हो सकते है। कानो मे आने वाली धारा को लौट कर ऊपर की ओर मोड दे तो दिव्य अनहद नाद सुन सकते हैं। नासिका रन्ध्रो मे आने वाली धारा को प्राणो के साथ ऊपर की ओर मोड दे तो समाधि सुख प्राप्त हो सकता है और जिव्हा को लौटकर तालू के साथ लगा कर अभ्यास कर सकें तो अमृत रस का पान कर सकते है। इस क्रिया को खेंचरी मुद्रा कहते हैं।

लिंग हमारी पाचवी ज्ञानेन्द्रिय है और इसकी धारा को लौटने के साधन भी तन्त्रशास्त्र मे बताये गये हैं। कुडलिनी शक्ति व लिंग व गुदा स्थान के बीच मे होती हे इसको जाग्रत करने के लिए अपनी मन शक्ति, आत्मिक शक्ति को बढ़ाना होता हैं और यह प्राणो पर नियन्त्रण करने से प्राप्त होती है। और आत्मिक शक्ति के मजबूत होने पर शरीर भी शक्तिवान होता है।

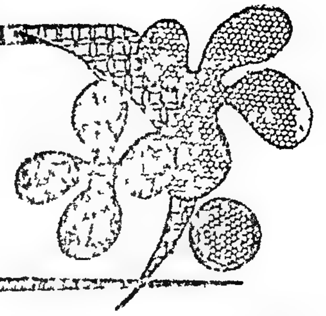
हमारी नासिका मे दो छेद होते हैं। बाया और दाया। कभी श्वास बाये स्वर से चलती हे कभी दाये स्वर से चलती है और कभी - कभी दोनो स्वरो से चलती है। बायें स्वर से जब श्वास चलती है तब वह इडा नाड़ी से प्रवाहित होती है दायें स्वर की श्वास पिंगला से तथा सुषुम्ना से प्रवाहित होने वाले प्राण दोनो नासिका रन्ध्रो से चलते है। दाये स्वर को तीव्र स्वर या सूर्य स्वर कहते है बांये को चन्द्र स्वर कहते हैं। दिन मे अधिकतर चन्द्र स्वर और रात्रि मे सूर्य स्वर चलता है। सान्ध्यकाल मे सुषुम्ना चलती है। सुषुमा चल रही हो उस समय भजन ध्यान प्राणायाम आदि का अभ्यास करने से शीघ्र प्रगति होती है। इसी कारण से प्राणायाम के अभ्यास के लिए सान्ध्यकाल का समय बहुत उपयुक्त होता है। रात्रि के समाप्तिकाल और दिन के आरम्भकाल पर जब दिन और रात का मिलन होता है तब सूर्योदय के आस पास प्रात. सध्या होती है। और सूर्यास्त के आस पास साय सध्या होती हैं। दोपहर बारह बजे मध्यान्ह सध्या और रात्रि के १२ बजे अर्धरात्रि सध्या होती है। यह सभी सान्ध्यकाल अभ्यास के लिए उपयुक्त होते है।

प्राणायाम के अभ्यास के लिए आप एक अलग कमरा या कमरे का कोई कोना तय करले जो शान्त एकान्त स्थान मे हो। जहा तक सम्भव हो सके उस स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश या छाया नही पडने देनी चाहिए। इसका कारण है। वहा पर किसी तख्त या फर्श पर ऊन या कुशा का आसन बिछा ले। आसन मृगछाला का भी शुद्ध होता है। प्रात काल ब्राह्म मुहूर्त मे सूर्योदय से १-२ घण्टा पहले स्नान करके ऋतु अनुसार स्वच्छ वस्त्र पहनकर अभ्यास के लिए बैठ जाय। इसके लिए पद्मासन या सिद्धासन सबसे अच्छा होता है। आलथी पालथी मारकर बैठ जाय। रीढ की हड्डी सीधी हो सीना तना हुआ हो गर्दन सीधी हो और दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर स्थिर होनी चाहिए। नासिका के दो सिरे होते हैं। इसके नीचे के भाग पर नजर रखोगे तो आखे अध-खुली रहेगी और यदि ऊपर के भाग पर दृष्टि स्थिर करोगे तो आखो की पुतलियो को ऊपर की ओर लौट कर दृष्टि अन्तर मे भ्रूमध्य मे स्थिर करनी होगी। पहले नीचे के भाग पर ही दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास करो।



इस प्रकार वैठकर दायें हाथ के अगूठे और तर्जनी को नाक के स्वरो पर रख लो। देखो कौन सा स्वर चल रहा है। जो स्वर चल रहा हो या यदि दोनो ही चल रहे हो तो भी उसी स्वर से जो चल रहा हो या सीधे स्वर से पहला प्राणायाम करो। वायें स्वर को उगली से दवाकर सीधे स्वर से सास अन्दर की ओर धीरे-धीरे लो और पूरी सास अन्दर भर लो। इसमे शुरू मे आप ५ से १० सैकिण्ड लगा सकते हैं। सास को अन्दर लेते समय यदि आप किसी वीज मन्त्र का या ॐ ओकार का मनहीमन उच्चारण करते जाय तो दुगना लाभ होता है। जब हवा पूरी अन्दर भर जाय तव अगूठे व उंगलियो की सहायता से आप दोनो नथुनो को वन्द कर लीजिये वीजमन्त्र या ओकार का जाप करते रहिये और यदि नेत्र वन्द हैं तो अन्तर मे प्रकाश का दर्शन करने का प्रयत्न (ध्यान) कीजिये। सास को शरीर के अन्दर ५ या दस सैकिण्डो तक रोके रहो। यह अवधि अभ्यास से वाद मे वढती जायेगी परन्तु आरम्भ में उतनी देर तक ही सास को रोको जितनी देर तक आपको वेचैनी महसूस नही होती ५ या अधिक से अधिक १० सैकिण्ड वस। आपन सास सीधे स्वर से अन्दर भरी थी अव धीरे-धीरे उसको वाहर निकालो। वाई ओर की उंगली का ऊपर करके वायें स्वर को खोल दो और प्राणवायु को धीरे-धीरे वाहर जाने दो। सास को अन्दर भरने की क्रिया को पूरक, अन्दर रोकने की क्रिया को कुम्भक और वाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। सास वाहर निकालने मे आप ५ सैकिण्ड तक लगा सकते है। सास को धीरे-धीरे वाहर निकालना चाहिए। जव सास पूरा वाहर निकल जाय तव दोनो नथुनो को वन्द करके २-३ सैकिण्ड तक कुम्भक करो यानी सास को वाहर रोका। यह इतनी देर तक ही करना चाहिए कि आपको वेचैनी न हो। यह एक प्राणायाम हुआ। पहले पूरक फिर कुम्भक फिर रेचक। इसके वाद दूसरा प्राणायाम शुरु करो। जिस तरफ से सास वाहर निकाली थी यानी वायें स्वर से उसी को खोलकर सास को धीरे-धीरे अन्दर लेना आरम्भ करो और उपरोक्त प्रकार से पूरा प्राणायाम कर लो। इस प्रकार पूरक कुम्भक रेचक कुम्भक से एक पूरा प्राणायाम वनता है। इस प्रकार नित्य १० प्राणायाम से अभ्यास प्रारम्भ करो। इसमे अधिक से अधिक ५-१० मिनट का समय लगेगा। आपको यदि थकान मालूम हो तो वीच मे थोडा सुस्ता सकते हैं। ठहर सकते हैं। कुम्भक अधिक समय नही करना चाहिए। ज्यादा से ज्यादा ५ सैकिण्ड का या वहुत हुआ तो १० सैकिण्ड का। वैठते समय छाती गर्दन व मस्तक एक सीध मे हो रीढ की हड्डी सीधी रहे इसका ध्यान रखना होगा। इस प्रकार केवल ४० दिन के अभ्यास के वाद ही आप देखोगे कि आपके मुख की कान्ति वढती जा रही है, मुख पर प्रसन्नता आने लगेगी मन मे शान्ति आयेगी स्वर वहुत मधुर हो जायेगा शरीर मे शक्ति वढने लगेगी और आत्मवल वढना आरम्भ हो जायेगा और यदि आपकी आयु ज्यादा है प्रौढ या वृद्धावस्था है तो आप अपनी आयु से १० साल कम के प्रतीत होने लगेंगे। इसके वाद का दूसरा अभ्यास यह होगा कि आप कुम्भक करते समय प्राणवायु को कुंडलिनी की ओर प्रवाहित करके उसपर आघात करके उसे जाग्रत करने का प्रयत्न करें। यह आगे से अभ्यास और उनसे उपलब्धियो का वर्णन आगे के किसी लेख मे किया जाएगा। इस विषय पर कोई वात खुलासा ज्ञात करना हो तो निम्न पते पर पूछी जा सकती है। +

जरा निवारक रसायन



प्राणाचार्य डा० महेश्वर प्रसाद आयुर्वेद बृहस्पति, डा० महेश्वर विज्ञान आश्रम, मगलगढ़ (समस्तीपुर) विहार

नीचे स्वानुभूत जरा निवारक उपचारो एव औषधि-रसायन का उल्लेख किया जा रहा है जो परम गुणकारी सिद्ध हुई हैं—

(१) प्रात ब्रह्ममुहूर्त मे जगकर शौचादि से पूर्व तावे के पात्र में एक काष्ठीय चौकी पर रखे हुए वासी जल को चुल्लू से ५ से १० चुल्लू पीना। तव शौच जाना।

(२) ब्राह्ममुहूर्त में आख मुंह धोकर मुह मे जल भरकर नेत्रो को खोल उसमे जल के छींटे मारना जिससे नेत्रो के अन्दर का भाग भली-भाति प्रक्षालित एव सिंचित हो जाय।

(३) ब्रह्ममुहूर्त मे नाक के छिद्रो को साफ करके उन दोनों नासिका छिद्रो द्वारा जलपान करना (अभ्यास अपेक्षित है)।

(४) प्रात. सूर्योदय से पूर्व खुली हवा जिसमे ओजोन-तत्व (अक्सीजन मे केवल दो परमाणु आक्सीजन रहते हैं जबकि ओजोन मे तीन परमाणु आक्सीजन रहते है) की अधिकता रहती है, मे तीव्र गति से भ्रमण करना या सम्भव हो तो दौड लगाना तथा सूर्योदय होते ही यह कार्य तत्क्षण वन्द कर देना।

(५) प्रात. नाश्ता से पहले ताजा आवला बीज रहित [यदि उपलब्ध न हो तो सूखे आवला चूर्ण]४ से ६ माशा, भुनी हरड चूर्ण ३ से ५ माशा, देशी घी [गोघृत] टासा हुआ १ तोला तथा शक्कर आधा तोला, एकत्र मिलाकर खायें। ऐसा शाम मे भी कर सकते है।

(६) प्रात नाश्ता से पहले पारद भस्म १ चावलभर, भुनी हरड चूर्ण २ माशे, आवला सूखा सूक्ष्म चूर्ण २ माशे, भृगराज सर्वांग चूर्ण ३ माशे, पुनर्नवामूलत्वक् १ माशे तथा गोरखमुण्डी २ माशे। इन्हे एकत्रित मधु मे मिलाकर प्रात साय चटाये। तैल, खटाई एव लाल मिर्च से सदैव परहेज रखे। हर पाच दिन पर हल्का जुलाव दे।

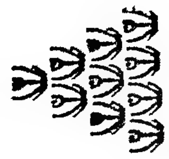
(७) प्रात सायं ४ माशा आवला चूर्ण १ तोला गाय के घी के साथ प्रतिदिन खिलाये। भोजन के बाद २ तोला अभयारिष्ट और १ तोला वायविडगारिष्ट एकत्र मिला वरावर ताजा जल के साथ दिन और रात मे पिलाये।

(८) जरा निवारक रसायन—गेहू विना खाद वाला अकुरित, मूग अंकुरित, चना अकुरित, आवला वीज रहित तथा भुनी हरड का छिलका प्रत्येक १०० ग्राम, भृगराज का सूक्ष्म चूर्ण ५० ग्राम, काला तिल चूर्ण २५ ग्राम तथा मिश्री २५ ग्राम, इन्हे एकत्र मिलाकर चूर्ण करके खरल मे दृढ हाथो से ६ घण्टे तक इतना घोटे कि सूक्ष्म [वारितर] चूर्ण वन जाय। तव कांच की डाट युक्त शीशी मे सुरक्षित रख लें। मात्रा ३ से ६ माशे औषधि प्रात सायं मधु से चाटकर ऊपर से गाय का ताजा दूध एक पाव पी जायें।

(९) गोरखमुण्डी को चैत्र मास मे सोमवार के दिन सूर्योदय से पूर्व जड सहित उखाड लाये। इसे छाया में सुखाकर कूट कपडछनकर एक घडे मे भरकर रख देवे। प्रात एक तोला उक्त चूर्ण जल से प्रतिदिन ६ महीना खायें तो अजरत्व प्राप्त होगा, युवावस्था कायम रहेगी।

(१०) भृगराज के सर्वांग पौधा को छाया मे सुखाकर सूक्ष्म कपडछन चूर्णकर वरावर मात्रा मे काला तिल और आवला चूर्ण मिलाकर सबके वरावर मिश्री और गाय का घी मिलाकर दृढ हाथो से छ घण्टे खरलकर काच पात्र मे रख ले। प्रयोग विधि—एक-एक तोला औषधि प्रात. साय पाव भर गाय के दूध के साथ सेवन करें। मानसिक सन्तुलन विगडने न दे, भीतर से खूव प्रसन्न रहे। खूव हसें।





जरा निवारक कतिपय कल्प



डा० वी० एन० गिरि आयुर्वेद विशारद, ए० एम० वी० एस०, डंगरा (गया) विहार।



विहार प्रान्त मे आयुर्वेदज्ञो के वश मे उत्पन्न हुए डा० गिरि ने ए० एम० वी० एस० परीक्षा उत्तीर्ण की और अपने पितामह एव पिता श्री से आयुर्वेद चिकित्सा का रहस्य समझा और आयुर्वेद सेवा में लग गये। आपने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया और सक्रिय राजनीति में भागीदार रहे। लेखन में विशेष रुचि रखते हैं।

श्री गिरि ने प्रस्तुत लेख में ब्राह्मरसायन, ज्योतिष्मती कल्प, हरीतकी कल्प आदि रसायन योगो का वर्णन किया है, जो बहुत सुन्दर एव उपयोगी है। —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

ब्राह्मय रसायन

योग एव निर्माण विधि—एक चौडे मुख वाले वर्तन मे जिसमे कि लगभग, एक मन दूध अथवा पानी रखा जा सके, इस वर्तन मे दूध अथवा पानी भरकर चूल्हे पर चढ़ा दें। वर्तन के ऊपर मुख पर तार से वनी एक चलनी रख कर उसी चलनी मे १००० एक हजार वड़ा और परिपक्व आँवले (लगभग १२ किलो) रख दें और मन्द-मन्द अग्नि देकर भाप के द्वारा आँवले को सिझाये। आवला नरम होने पर उतार कर गुठली निकाल लें शेष गूदे को छाया मे सुखाकर चूर्ण वनालें। इस चूर्ण मे एक हजार आवलो के रस की भावना दे, सुखाकर रख लें।

शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, नागवला, ब्राह्मी, मड्डूक पर्णी, शतावर, शखपुष्पी, पीलीवच, वायविडङ्ग, कौंच के वीज, गिलोय सत्व, सफेद चन्दन, अगर, मुलैठी, महुए के फूल, नीलोफर, कमल, मालती गुलाव एव चमेली के फूल ५०-५० ग्राम लेकर कूट पीसकर कपडछन चूर्ण वनाकर आंवला चूर्ण मे मिलादें और नागवला के स्वरस को भावना देकर छाया में सुखाकर रखलें। इस प्रकार पाच वार भावना नागवला स्वरस की दें। फिर चूर्ण वना लें चूर्ण के समान भाग घृत तथा घृत के आधा भाग शहद मिलाकर अमृतवान मे भरकर मुख मुद्रा कर जमीन मे एक गड्ढा खोद उसके भीतर चारो ओर राख डालकर अमृतवान को रख दें और मिट्टी से छिपा दे। १५ दिन वाद अमृतवान को गड्ढे मे निकाल लें तथा इस औषधि मे स्वर्ण भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, कान्त लौहभस्म, सतपुटी समान भाग (१२-१२ ग्राम) लेकर अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

नोट—स्वर्ण भस्म वर्तमान समय मे अत्यधिक वहुमूल्य है अतएव ३ ग्राम अथवा ६ ग्राम तक भी लिया जा सकता है। मेरे यहा इसी तरह वनाया जाता है।

मात्रा एव सेवन विधि—६ ग्राम क्रमश वढाते हुए ५० ग्राम तक प्रात काल क्रिया क्रम से निवृत होने के पश्चात्, दूध के साथ खायें। पाचन हो जाने पर दूध भात का भोजन अथवा फल खायें। इसके अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओ का त्याग कर देना चाहिए। दूध भात मे शक्कर मिलाया जा सकता है। इसका सेवन पचकर्म से शरीर शुद्ध कराकर मकर सक्राति से होलिका दहन पर्यन्त प्रत्येक वर्ष करना चाहिए अथवा तीन चार वर्षों तक लगातार (मकर सक्रान्ति से होली तक) सेवन करने के वाद एक दो वर्षो का अन्तराल रखकर पुन सेवन किया जा सकता है। इस प्रकार रसायन के सेवन से दीर्घायु प्राप्त होने के साथ-साथ जरा व्याधि से रहित जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

रोग निर्देश—

इस ब्राह्म रसायन के सेवन से समस्त रोग निवृत होकर दीर्घायु की प्राप्ति होती है, इसमे सन्देह नही। शरीर सुदृढ होता तथा बल स्फूर्ति, कान्ति, वीर्य एव ओज की वृद्धि होती है। शरीर मे किसी सयोग विरुद्ध पदार्थों के सेवन जनित विष अथवा क्षुद्र विष का प्रवेश होने पर वह कुछ भी हानि नही पहुचा सकता है। इस रसायन के प्रयोग से हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, आमाशय, यकृत, प्लीहा वृक्क आदि सभी इन्द्रियो को सबल बनाकर सुदृढ बनाता है। अति स्त्री समागम तथा चिन्ता से जिनके वीर्य और शरीर निर्बल हो गये हो, बाल पक गये हो, चेहरे पर झुरिया पड गई हो, त्वचा सिकुड गयी हो और दृष्टि (रोशनी आख की) कम गयी हो उनके लिए यह रसायन बडे ही महत्व के तथा गुणदायक है।

नोट—मेरे पितामह इस रसायन का सेवन प्रत्येक वर्ष मकर सक्रान्ति से होली पर्यन्त किया करते थे। परिणाम स्वरूप जीवन पर्यन्त स्वस्थ रहकर, स्वय अपनी दैनिक क्रियाये करते एव बिना चश्मा के लिखना पढना, पूजा-पाठ करते रहते थे और ११५ वर्ष की आयु मे स्वर्गवास किये।

ज्योतिष्मती कल्प (मालकांगनी)

योग एव निर्माण विधि—मालकागनी नाम की लता जो पीले रङ्ग और पीले फल वाली तथा उज्ज्वल होती है। इसके उत्तम बीजो को आषाढ मास के शुक्ल पक्ष में लाकर उसे कोल्हू मे पीसकर (पैर कर) तैल से चौथाई भाग शहद मिलाकर तैल विधि से तैल सिद्ध करे। सिद्ध होने पर छानकर शीशी मे भरले। फिर तैल के आठवा भाग द्रव्य, कपूर, तज और जायफल को समानभाग लेकर चूर्ण बना तैल में डालकर मुखमुद्रा करदे पश्चात् धान्य के ढेर मे गाढ दे, जब २१ दिन हो जाय तब निकाल कर वस्त्र से छानकर रखले।

मात्रा एव प्रयोग विधि—प्रतिदिन प्रातः काल चार तोला अर्थात् ५० ग्राम की मात्रा में पान करावे। पीने के पश्चात मनुष्य थोडी देर में बेहोश हो जाता हे। फिर धीरे-धीरे होश मे आकर चिल्लाने और रोने लगता है। जब उसे भूख लगे तब दूध भात खाने को दिया जाय। इस तैल से प्रकृति के अनुकूल होने तक प्रथम दिन की तरह ही रोगी की अवस्था रखती हे। परन्तु कुछ दिनो के अर्थात् १५-२० दिनो तक ही यह स्थिति रहती है फिर सारी बाधाये और यह स्थिति स्वय दूर हो जाती है। इस तैल के गुण शास्त्रो मे निम्न प्रकार से लिखे हैं—

पिबेत्सूर्योदये तैलात्पलं याति विसञ्ज्ञताम्।
तत सञ्ज्ञां शनैर्लब्ध्वा तत क्रन्दति रोदिति ॥१९॥
एव मासे श्रुतधर परस्मिन्सूर्यं सन्निभः।
तृतीय पूज्यते देवैश्चतुर्थे नैव दृश्यते ॥२०॥
खेचर पञ्चमेषष्ठे सिद्धैर्मिलति सप्तमे।
विष्णोः समदिन जीवेज्जीवन्मुक्तोऽष्टमे भवेत् ॥२१॥

—र० र० स०

इस तैल के निरन्तर एक माह के सेवन से मनुष्य सुनी हुई बातो को स्मरण रखने वाला, दूसरे माह के सेवन से सूर्य के समान कान्ति वाला और तीसरे मास के सेवन से देवताओ के समान पूज्यनीय तथा चौथे महिने के सेवन के पश्चात् अदृश्य रहने वाला अर्थात् स्थूल शरीर को गुप्त रखने वाला हो जाता है। पाचवे माह के सेवन के बाद पक्षियो के समान आकाश मे उडने की शक्ति रखने वाला तथा छठे महीने के सेवन पर्यन्त सिद्ध पुरुषो के साथ इच्छानुसार मिलना तथा बात करना और सातवें मास सेवन से विष्णु की जितनी आयु होती है उतने वर्षो तक जीवित रहने वाला एवं आठवें मास के सेवन के बाद मनुष्य जन्म मरण से मुक्त होकर अजर अमर हो जाता है।

नोट—आयुर्वेद के कई ग्रन्थो मे ज्योतिष्मती कल्प का वर्णन मिलता है। इस कल्प मे कहा तक सत्यता एवं सक्षम गुण हैं, इसका परीक्षण योग्य आयुर्वेदज्ञो की देख-रेख मे प्रत्यक्ष प्रयोग कर परिणामो की जानकारी अवश्य करनी चाहिये जिससे कि इस भौतिक युग के रोगग्रस्त मानव का कल्याण हो सके। यदि सचमुच मे इस कल्प मे उपरोक्त गुण परीक्षण के परिणामस्वरूप मिले तो आयुर्वेद जगत को ही नही, विश्व के लिए एक भी नवीन, और विलक्षण उपलब्धि होगी।

हरीतकी कल्प (महा कनक सुन्दर रसायन)

योग एव निर्माण विधि—कान्त लौह सुवर्ण और



गंधक के द्वारा जारण किया हुआ पारा भस्म १६ मासे (१६ ग्राम), सोने का वर्क ४ मासे (४ ग्राम), शुद्ध गंधक ५० निष्क (१५० ग्राम), तीनो को कान्त लौह पात्र मे डालकर अन्ध मूषा मे वन्द कर वडवाग्नि के द्वारा गन्धक को जारण करें। इस प्रकार जारण किये हुए इस रस मे से ४ मासे (४ ग्राम) रस को लेकर अच्छी तरह नारीक कूट पीसकर घृत से चिकने किये हुए पात्र मे डाल दे और इस पात्र को शहद से भर दें तथा शहद और रस को अच्छी प्रकार से मिला दे। फिर ३६० हर्रे को जो स्वच्छ और परिपक्व तथा वडे-वडे हो उसे दूध मे पकाकर, शहद से भरे पात्र मे डालकर मुँह वन्द कर एक मास तक रक्खा रहने दें पश्चात् निकाल कर प्रयोग मे लावे।

नोट—उपरोक्त निर्माण की विधि रस रत्न समुच्चय की है, किन्तु मैं इस योग को निम्न प्रकार से वनाकर कई वार प्रयोग मे लाया हू और सफलता भी मिली है। पारा भस्म (गधक द्वारा जारित) १२ ग्राम, कान्त लौह भस्म ४ ग्राम और सोने के वर्क अथवा स्वर्ण भस्म ४ ग्राम तीनो को कान्त लोह पात्र मे रख १५० ग्राम गन्धक द्वारा मूषा मे रख अग्नि द्वारा जारण किया पश्चात काम मे लाया हू।

मात्रा एव सेवन विधि—पचकर्म द्वारा शरीर शुद्धि कराने के वाद प्रथम दिन एक हर्रे को तीन भाग करे, प्रथम दिन एक टुकडा खिलावें। जब पाचन हो जाय तब दूध भात खाने को दें। दूसरे दिन से तीसरे दिन तक दो-दो टुकडे एक वार दे। चौथे दिन तीन-तीन टुकडे दिन मे दो वार दें। पाँचवें दिन से आठवें दिन तक हरड के तीन तीन टुकडे दिन मे तीन वार दें। नौवे दिन से प्रतिदिन प्रात काल एक-एक हरड दिन मे दो वार अर्थात् शाम सुवह प्रयोग करें। अथवा अवस्थानुसार प्रतिदिन एक-एक हर्रे का ही प्रयोग करे। एक वर्ष पर्यन्त इसका सेवन करना चाहिये तब इससे इच्छित फल प्राप्ति होती है।

सावधानी—हर्रे सेवन अवधि मे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है, खटाई, मिर्च, तैल, तामसिक भोजन विल्कुल ही त्याग देना चाहिये। केवल घृत, दूध, भात, हरी सब्जी जो अधिक मसालेदार न हो तथा फल मे सेव अगूर, केला आदि फल खाने चाहिए।

रोग निर्देश—इस प्रकार उस हरीतकी कल्प करने वाला मनुष्य वली पलित रोग तथा जराव्याधि से रहित होकर १०० वर्ष तक अवश्य जीवित रहेगा। इस रसायन के सेवन से वृद्धावस्था मे होने वाले रोगो से मुक्त होकर वलवान, वीर्यवान, समस्त इन्द्रियो की पूर्ण शक्ति सम्पन्न हो जाता है। इसमे किञ्चित मात्र भी सन्देह नही। इस हरीतकी कल्प के नियमित एक मास के सेवन से नेत्र रोग, सम्पूर्ण कुष्ठरोग, पाण्डु, सग्रहणी, प्रमेह, अर्श, गुल्म शूल, स्थूलता, अत्यधिक मन्दाग्नि तथा अन्य रोगो को नष्ट करता है। इसमे अग्नि अत्यन्त दीपन होकर खाये हुए पदार्थों का शीघ्र पाचन करता है और भावी रोगो का अवरोध करता है। मैंने इसे कुष्ठरोग पर प्रयोग करके देखा है। साथ मे अन्य कुष्ठ निरोधक औषधियो का भी प्रयोग किया था। सफलता शतप्रतिशत प्राप्त हुई थी एव ओज और कान्ति की वृद्धि होकर रोगी आज भी पूर्ण स्वस्थ है।

एक साधारण सा योग किन्तु विशेष लाभप्रद है। इस लेख मे समावेश और कर रहा हू। मैंने कई वार इस योग की परीक्षा की है और लाभ उठाया है। योग इस प्रकार है—

पीपल, वायविडग के वीजो की गिरी, त्रिफला, विधारा, अश्वगध, मिश्री। मिश्री को छोडकर शेष सभी समान भाग लेकर कपडछन चूर्ण वनालें और चूर्ण के वरावर भाग मिश्री चूर्ण कर मिलावें। वाद मे घृत से चिकने पात्र मे रखें।

मात्रा एवं सेवन विधि—६ ग्राम से १२ ग्राम तक मधु के साथ खाकर ऊपर से गौदूध एक पाव पीयें दिन मे दो वार तक। इस चूर्ण का सेवन जनवरी से मार्च तक नियमानुसार करें।

इससे वल, वीर्य तथा ओज की वृद्धि होती है, वाल पकना रुक जाता एवं नवीन कान्ति तथा स्फूर्ति आ जाती है। इसमे सप्त धातुओ की पुष्टि करने का गुण विद्यमान है। वाजीकरण औषधियो मे यह साधारण होते हुए भी विशेष लाभप्रद है। परीक्षा कर देखें।

—+—

च्यवनप्राश रसायन पर मेरे विशेष अनुभव

डा० भागचन्द जैन आयु० वृह०, आयु० वारिधि (एम०एस-सी०ए०), आयु०वृह० (डी०एस-सी० ए०)
स्त्री एव पुरुषो के गुप्त रोगो के विशेषज्ञ। बुन्देलखण्ड आयुर्वेद महाविद्यालय सागर के सन्चालक,
भारतीय आयु० शोध संस्थान के सन्चालक, जनता आयु० औष०परकोटा वार्ड, सागर।

च्यवनप्राश आयुर्वेद के सर्वोत्तम काया कल्पकारी योगो मे है। इसके निर्माण मे जो वनस्पति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह आमला है। अरणी, खभारी, पाटला, वेल, अर्रलू, वड़े गोखरू, छोटी पीपल, काकडा सिंगी, दाख, गिलोय, हरड और खिरैटी दो दो तोले लेकर जौकुट करलो। वराही कन्द, विदारी कन्द, मोथा, पोहकर मूल, वन उडद, बन मूग, असगध, कमल गट्टा की गिरि, मुलहठी इलायची अगर और सफेद चन्दन का बुरादा इन सवको चार चार तोले लेकर जौकुट करलो।

पके हुए आमले ५०० ऊपर के चूर्ण और आमलो को वीस सेर जल मे डालकर, एक मिट्टी के बर्तन मे पकाओ। जव अढाई सेर जल वाकी रहे काढे को मलकर छानलो और आमलो को अलग चुनलो। आमलो की गुठली निकालकर, सिलपर पीसकर लुगदी वनालो। फिर तीन पाव गाय के घी मे आमलो की लुगदी को भून लो उस छने हुए काढे में अढाई सेर मिश्री डालकर चाशनी वनाओ। फिर उसमे, घी मे भुनी आमलो की पिट्ठी मिला दो और उतार लो। चाशनी ढीली रखना जिससे जम ना जाय। फिर शीतल होने पर डेढपाव मधु डालकर ऊपर से तेजपात, छोटी इलायची और बशलोचन दो दो तोले पीसकर मिलादो। वस यही च्यवनप्राश अवलेह है। यह नुसखा प्राय सभी ग्रथो मे लिखा है। इसके सेवन से च्यवन ऋषि वूढे से जवान हुऐ थे। इसको सेवन करके वूढे से जवान होते तो आज तक किसी को नही देखा पर हा यह वीर्य दोष मिटाने मे वहुत ही उत्तम चीज है। क्षय, राजयक्ष्मा और रक्तपित्त मे भी खूब लाभदायक है।

तपेदिक (क्षय) पर हमारा विशेष अनुभव—

पुराने से पुराना तपेदिक हो रामवाण कार्य करता है। अभ्रक भस्म ५०० पुटी, गुरमे का सत (गुडूची सत्व), प्रवाल भस्म, शख भस्म १-१-रत्ती की मात्रा मे सुवह शाम शहद के साथ सेवन करे।

च्यवनप्राश अवलेह सुवह + शाम दूध के साथ सेवन करें ४० दिन तक। पुराने से पुराना क्षय (तपेदिक) रोग ठीक हो जावेग। यह प्रयोग परीक्षित है।

पृष्ठ १४५ का शेषाँश

पचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम एव पचदशम औषधियो के सेवन से कफ दोष की निवृत्ति हो जाती है।

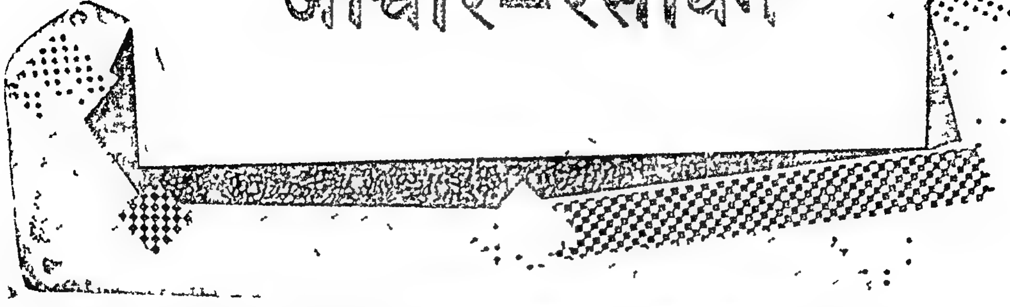
चौतीसवे, पैंतीसवे और छत्तीसवे कोष्ठ की औषधियो के धारण से वशीकरण की सिद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त ग्रहवाधा, भूतवाधा- आदि से लेकर निग्रह पर्यन्त सकटो से मुक्ति मिल जाती है (१४१।११-१५)

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ट, सप्तम, अष्टम, नवम, एकादश सख्या वाली औषधियो तथा बत्तीसवी, पन्द्रहवी एव वारहवी सख्या वाली को धारण करने से भी उक्त फल की प्राप्ति होती है (वशीकरण की सिद्धि एव भूतादि वाधा की निवृत्ति)। इसमे कोई अन्यथा विचार नही करना चाहिए। छत्तीस पदों मे निर्दिष्ट इन औषधियो का ज्ञान जैसे-तैसे हर व्यक्ति को नही देना चाहिये।

(१४१।१५-१६)।

अग्निपुराण मे रसायन पक्ष पर उस काल मे प्रचलित अनेक सिद्ध योगों को सम्मिलित कर लिया है। इनका स्रोत समवत' कोई न कोई रसायनतन्त्र का ग्रन्थ रहा होगा। इस पुराण का अन्तिम सर्वरोगशामक अमरीकर योग तो अप्रतिम है और ऐसा कोई योग अद्यावधि प्राप्त आयुर्वेद के ग्रन्थों मे दृष्टिगत नही होता यद्यपि बहुत कुछ एतद विपयक सामग्री वृन्दमाधव के 'सिद्धयोग सग्रह' एव चक्रपाणि के 'चक्रदत्त' से ग्रहण की गई है।



डा० नीरजकुमार, रसशास्त्र विभाग, डा० भृगुपति पाण्डेय, मौलिक सिद्धान्त विभाग
चिकित्सा विज्ञान सस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

आयुर्वेद मे प्रज्ञापराध ही सब दोषो का प्रकोपक कहा गया है और उससे रोग-कष्ट उत्पन्न होते हैं। आचार रसायन प्रज्ञापराध से बचने का साधन है। जहा अनेक योगो औषधो का प्रयोग की आवश्यकता ही नही रह जाती वह गुण आचार रसायन मे है।

चिकित्सा विज्ञान सस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डा० नीरज कुमार एव डा० भृगुपति पाण्डेय ने सरल सुन्दर ढग से आचार रसायन का विवेचन किया है जो पाठको के लिये उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

दीर्घमायु' स्मृति मेधामारोग्य तरुण वय ।
देहेन्द्रियबल कान्ति नरो विन्देद्रसायनात् ॥

रसायन सेवन करने मे मनुष्य दीर्घायु, स्मरण शक्ति, धारणा शक्ति, आरोग्य, तरुणावस्था, शरीर एवं इन्द्रियो का बल और कान्ति प्राप्त होती है। रसायन औषधियो के सेवन का लाभ वही उठाते हैं जो अपने शरीर को वमन विरेचनो के द्वारा तथा मन को यम नियम आदि के द्वारा दोषरहित कर लेते हैं। आचार्य सुश्रुत ने अस्थिर मन वाले को रसायन सेवन के अयोग्य बताया है।

इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर आयुर्वेद मे शारीरिक रसायन के साथ-साथ मानसिक रसायन अर्थात आचार रसायन की कल्पना की गयी है। जिस प्रकार शारीरिक रसायन द्वारा शरीर को बल प्राप्ति होती है उसी प्रकार आचार रसायन द्वारा मन को शक्ति मिलती है। शारीरिक रसायन द्वारा शरीर को स्थिरता तथा आचार रसायन द्वारा मन को स्थिरता मिलती है। महर्षि चरक ने आचार रसायन का सुन्दर वर्णन किया है।

सत्यवादिनमक्रोध निवृत्त मद्यमैथुनात् ।
अहिंसकमनायास प्रशान्त प्रियवादिनम् ॥
जपशौचपर धीर दान नित्य तपस्विन ।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने - रतम् ॥
आनृशस्यपर नित्य नित्य करुणवेदिनम् ।
समजागरणस्वप्न नित्य क्षीरघृताशिनम् ॥
देशकालप्रमाणज्ञ युक्तिज्ञमनहड कृतम् ।
शस्ताचार मसकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥
उपासितार वृद्धानामास्तिकानाजितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्रपर विद्यान्नर नित्यरसायनम् ॥
गुणैरेतै समुदितै प्रयुड्क्ते यो रसायनम् ।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते ॥

सत्य बोलने वाले, क्रोध न करने वाले, मदिरा सेवन, मैथुन से दूर रहने वाले, हिंसा न करने वाले, श्रम न करने वाले, शान्त, प्रियवादि, जप एव पवित्रता मे तत्पर, धीर दान देने वाले, तपस्वी, देवता, गाय, ब्राह्मण, गुरु, आचार्य, एव वृद्धजनो की पूजा करने मे तत्पर, क्रूरता से दूर रहने वाले, दया से ओत प्रोत, उचित समय पर निद्रा त्यागने एव शयन करने वाले, नित्य दूध एवं घृत खाने वाले, देश, काल, मात्रा को जानने वाले, अहकार न करने वाले, उत्तम, आचार विचार वाले, सकीर्ण विचार से रहित, आध्यात्म विषयो मे अपनी इन्द्रियो को लगाने वाले, आस्तिक जितात्मा, वृद्ध मनुष्यो की सेवा करने वाले, धर्मशास्त्र को पढने वाले मनुष्य सदा रसायन से युक्त होते हैं। इन गुणो से युक्त जो मनुष्य रसायन का

—शेषांश पृष्ठ १६३ पर।



जवान बनने और बुढ़ापा रोकने का भोजन



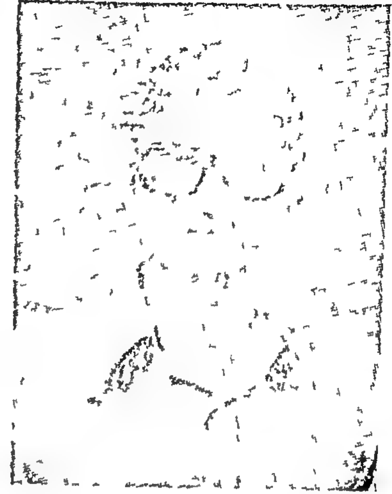


विद्यारत्न डा० प्रकाश चन्द्र गगराडे, बी एस-सी, एम एस-सी. ए, आयु वारिधि. एम ए एम-सी. साहित्यालकार, डी. फार्मा।

बुढापे मे पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है। पेट की थैली युवावस्था मे जितनी फैल जाती है उतनी ही बुढापे मे रहती है और पुरानी आदत के अनुसार खूब भरना ठीक नही क्योकि पाचन शक्ति कम होने से भोजन भली प्रकार से पच नही पाता। अपच होने पर पेट की अनेक तकलीफो का सामना करना पडता है। हमारा यह सोचना कि कम खायेंगे तो शक्ति कैसे मिलेगी, गलत है। भोजन के सम्बन्ध मे एक बात यहा समझ लेनी उचित होगी। भोजन का उतना ही अंश हमारे लिये लाभकारी है जितना हम पचा सकें। अत बुढापे मे भोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिए। जितनी भूख लगे उसी के अनुसार भोजन करें। युवावस्था की तुलना मे बुढापे का भोजन आधा कर देना ही स्वास्थ्यप्रद होता है। एक समय भोजन दूसरे समय दूध, फल आदि हल्की चीजें खाने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। जहा तक हो सके गरिष्ठ भोजन सेवन न करें और सात्विक भोजन को ही सेवन करने मे प्राथमिकता दें। भोजन के मध्य मे कम और दो घण्टे बाद एक गिलास पानी पीने की आदत बना लेने से मल मे कठोरता नही आती और आसानी से निष्कासित होता है।

जर्मन देश के प्रसिद्ध अनुसन्धानकर्ता डाक्टर मेचिनकाफ का कहना है कि दूध, दही और लस्सी का नियमित सेवन जो व्यक्ति करता है उसकी आयु बहुत बढती है। ऐसे व्यक्ति अपनी वृद्धावस्था मे भी जवानो की तरह मेहनत का कार्य कर सकता है। बलगारिया को शतायु लोगो का देश कहा जाता है। डा० मेचिनकाफ ने बलगारिया जाकर ज्ञात किया कि वे लोग दही अधिक खाते हैं। इससे न केवल वे स्वस्थ व रोगमुक्त रहते हैं बल्कि लम्बी आयु प्राप्त करते हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि जवानी व बुढापे दोनो अवस्था मे भोजन के साथ नियमित रूप से दही का सेवन करना चाहिए।

व्यक्ति के रक्त, मास, स्नायु और हड्डियो का निर्माण



और विकास सब भोजन के परिणामस्वरूप ही प्राप्त होता है। शरीर मे निरन्तर नष्ट होने वाली रचनाओ का निर्माण भोजन की बदौलत ही होता है। जीवन शक्ति को स्थिर रखना और कोषो के पोषण व मरम्मत का कार्य भोजन का होता है। जब भोजन इतना महत्वपूर्ण स्थान रखता है तब स्वास्थ्य और यौवन का उसको रखवाला कहा जाये तो उसमे अनुचित क्या होगा ?

हमारे देश मे शक्तियुक्त भोजन की कमी और दोष के कारण निम्न वर्ग के लोग विभिन्न बीमारियो से ग्रस्त होते रहते है। इसके विपरीत धनी देशो के लोग सम्पन्नता के कारण भोजन के स्वाद पर अधिक ध्यान देते है और स्वाद के वशीभूत होकर आवश्यकता से अधिक और अनुचित भोजन करने के कारण दुख पाते है तथा अनेक पेट की बीमारियो से ग्रस्त रहते है। आवश्यकता से अधिक भोजन करने से पेट और आतो को सामान्य से अधिक कार्य करना पडता है।

स्वास्थ्यप्रद भोजन वह है जिसमे—

१. प्रोटीन, जो सोयाबीन, मास व मूगफली आदि मे अधिक मिलता है।



२ कार्बोहाइड्रेट जो शक्कर (सुगर) वाले भोजन मे मिलता है।

३. फेट्स जो घी, तेल व चिकनाई वाले पदार्थों से मिलता है।

४ साल्ट्स अर्थात् लवण ⎤ जो फलो और सब्जियो
५ विटामिन्स ⎥ से मिलता है।
६. पानी, होता है। ⎦

प्रोटीन समस्त कोषाओ के निर्माण के लिए आवश्यक है जो अण्डा, दूध, दही, पनीर, मास, मछली से प्राप्त होता है। भोजन मे इसका होना बहुत जरूरी होता है।

कार्बोहाइड्रेट से शरीर मे शक्ति और गर्मी पैदा होती है जिसके द्वारा चर्बी बनती है। ये गेहू, आलू, चावल, शक्कर मे मिलती है।

फेट्स के द्वारा भी शरीर मे शक्ति और गर्मी पैदा होती है। इसे तेल, घी, मक्खन से प्राप्त होता है।

लवण शरीर की क्षति पूर्ति व पाचन शक्ति को बढाने मे सहायक होते है। लवणो मे कैल्शियम, फास्फोरस, आयोडीन साधारण नमक व गन्धक आते है। इनके अलावा तावा, लोहा, मेगनीज, फ्लोरीन व मेगनेशियम खनिज पदार्थों की भी शरीर को आवश्यकता होती है।

विटामिन्स के द्वारा शरीर का उचित पोषण होता हैं। इनकी कमी से शरीर मे विभिन्न प्रकार की बीमारिया पैदा हो जाती हैं।

भोजन के पाचन मे पानी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। पानी की सहायता से भोजन के अंश रक्त मे शोषित होते हैं और व्यर्थ के पदार्थ मूत्र, पसीने के रूप मे तथा मल के रूप मे निष्कासित होते हैं।

संक्षिप्त मे भोजन के सम्बन्ध मे उपर्युक्त विवरण दिया गया है। अब विभिन्न प्रकार के पौष्टिक भोजन का वर्णन किया जायेगा जिनकी सहायता से जवान बनने और बुढापा रोकने मे मदद मिलेगी।

फल और दूध तथा उनसे निर्मित पदार्थों को सर्वश्रेष्ठ भोजन माना गया है। इसके पश्चात् सब्जियो और अनाजो का नम्बर आता है। फलो और दूध से निर्मित पदार्थों मे पौष्टिक गुण बहुत होते हैं इसलिए जवान तथा बूढो को समान रूप से लाभ प्रदान करते हैं। हां, इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि इनका सेवन जितना पचा सके उसी आधार पर किया जाना चाहिए अन्यथा लाभ की जगह हानि होने की सम्भावना भी होती है। जिन व्यक्तियो को दूध पचाने मे कठिनाई होती है उन्हे दूध मे थोडा सा सोडाबाईकार्ब मिलाकर सेवन करना चाहिए। इसके अलावा यदि वे चाहे तो दही, छाछ, मक्खन आदि का सेवन दूध की जगह कर सकते हैं।

हर मौसम मे उस मौसम के सस्ते फलो का सेवन हर व्यक्ति कर सकता है। आवश्यक नही कि बिना मौसम के एक ही प्रकार के अथवा महगे फलो का ही सेवन किया जाये। फलो के गुण किसी से छिपे नही हैं।

खाना खाने के बाद नियमित रूप से किसी भी एक फल का नियमित सेवन करना बहुत गुणकारी होता है। ऐसा नियम बना लेने पर आप अधिक समय तक जवान बने रहेंगे और वृद्धावस्था को दूर भगा देंगे।

गाजर का हलवा, आम का हलवा उत्तम काया पलट करने वाले भोज्य साबित होते हैं। इनके सेवन से शरीर मे स्फूर्ति, शक्ति महसूस होती है। बुढापे मे जवानी का अनुभव होता है।

मासाहारी व्यक्ति आमलेट, मुर्गा, चूजा, बकरा आदि का सेवन कर शरीर मे शक्ति सचय कर सकते हैं और अधिक उम्र मे भी कम उम्र सी स्फूर्ति, ताकत महसूस कर सकते हैं।

अग्रलिखित खाद्यानो एवं खाद्य पदार्थों के सेवन से निर्दिष्ट लाभ की प्राप्ति की जा सकती है। हमारे दैनिक भोजन की खुराक उसी के अनुरूप बनाई जा सकती है।

गेहू की रोटी बनाते समय चक्की से पिसे आटे को छाना नही जाना चाहिए क्योकि छानने के बाद बचे हिस्से से शक्तिवर्धक अश पृथक हो जाता है। बिना छने आटे की रोटिया पौष्टिक गुण लिए होती हैं तथा अजीर्ण और कब्ज दूर करती हैं। मोटे आटे की बनी रोटी दिखने मे भले ही ठीक न लगे परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से उसका सेवन करना लाभकारी होता है।

सब्जियो मे शलजम, गाजर, टमाटर, पालक, चुकन्दर आदि कच्ची ही खाना अति लाभकारी होता है। इनका जूस निकालकर भी सेवन किया जा सकता है। प्याज, पोदीना, बन्दगोभी, पत्तागोभी, कद्दू भी कच्चा ही खाया

जा सकता है। ये सभी स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

बादाम, छुहारे, खजूर, तिल, आवला भी जवानो और बूढो को शक्ति प्रदान करते हैं। शहद, प्याज का रस भी शक्ति प्रदान करता है।

दूध और इससे बने पदार्थ जैसे दही, मक्खन, छाछ, मलाई, पनीर, घी का उचित मात्रा मे सेवन करना मानसिक, शारीरिक और मर्दाना शक्ति प्रदान करता है। वजन और ताकत बढ़ाने के लिए दूध का सेवन करना उचित होगा। दूध एक सास मे न पीकर घूट-घूटकर पीना चाहिये। उसे अधिक गरम भी नही करे वरन् एक-दो उबालकर सहन करने योग्य गर्म हालत मे पीवें।

आयु बढाने, शक्ति व स्फूर्ति बढाने के लिए दही का निरन्तर खाने के समय प्रयोग किया जाना चाहिये।

मक्खन, घी की अपेक्षा आसानी से पचकर शोषित हो जाता है। शरीर को ताकत देता, वजन बढाता, मर्दानगी उत्पन्न करना आदि मक्खन के मुख्य लाभ है।

मलाई आसानी से हजम होने वाली वजन और ताकत बढाने वाली वस्तु है। जिन्हे दूध के अन्य पदार्थ माफिक नही आते वे मलाई सेवन करे।

मास और अण्डों के मुकाबले की ताकत पनीर पैदा करता है। यह शक्तिशाली होने के साथ-साथ मास, अडे के समान हानिप्रद लक्षण नही छोडता।

घी मोटा ताजा बनने के इच्छुक व्यक्तियो के लिए मुख्य वस्तु है। घी और दूध का सेवन अधिक शक्तिप्रद है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जवान बनने या जवानी कायम रखने और बुढापा रोकने के लिए पौष्टिक भोजन लेना ही आवश्यक होता है। रोटी, फल, सब्जी, दूध, घी, दही की निश्चित मात्रा नियमित सेवन करने से इच्छित फल की प्राप्ति की जा सकती है। भोजन सम्बन्धी नियमो का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है, अन्यथा पूर्ण लाभ सम्भव नही।



× आचार रसायन : पृष्ठ १६० का शेषाश ×

सेवन न करें तो भी रसायन के सभी गुण उसे प्राप्त होते हैं। तथा इन गुणो के साथ - साथ जो व्यक्ति रसायन का सेवन करता है तो सभी शास्त्रोक्त रसायन गुणो को उचित रूप मे प्राप्त करता है।

अत मनुष्य को शारीरिक एव मानसिक दोषो को त्यागकर रसायन का सेवन करना चाहिए तभी उसे पूर्ण रसायन लाभ प्राप्त होता है। जिनकी आत्मा अपने वश मे होती है, जिनका मन एव शरीर शुद्ध होते है यदि ऐसे मनुष्य रसायन का सेवन करते हैं तो उनको रसायन गुणो की पूर्ण प्राप्ति होती है। तथा वे मनुष्य यदि आयु को बढाने वाले रसायन का सेवन करते हैं या जरा एव रोग को दूर करने वाले रसायन का सेवन करते है तो उनके मनोरथ की सिद्धि होती है।

मानस· पुनुरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च ॥
मानसो ज्ञान विज्ञान धैर्य स्मृति समाधिमि ॥

आयुर्वेद मे प्रज्ञापराध को रोगो का कारण माना गया है। अत आचार रसायन का पालन करने वाले प्राणी के जीवन मे प्रज्ञापराध की सम्भावना नही रहती है तथा वह रोगरहित रहता हुआ दीर्घायु को प्राप्त होता है। यदि कभी बाह्य कारण से मनुष्य रोग से पीडित हो जाता है तो उसको आचार रसायन के साथ - साथ रसायन औषधियो का सेवन करना चाहिए, जिससे उसका मन तथा शरीर दोनो दोषरहित हो जाते हैं तथा वह अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करता है।



जरात्वं नोप गच्छति



वैद्यरत्न श्री द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य, खोड़े जिला नवादा ।

वैद्यरत्न श्री द्वारका मिश्र ने वैवर्त्त पुराण से ऋतुचर्या का वह सन्दर्भ इस लेख में दिया है जिसके सेवन से 'जरावस्था' उत्पन्न नहीं हो सकती । साथ ही जरा के कारण एव निवारण पर भी प्रकाश डाला है । पुराणो के इस प्रासगिक विषय से पाठक लाभान्वित होंगे, ऐसी आशा है ।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

ब्रह्म वैवर्त्त पुराण ब्रह्म खण्ड नारद की स्त्री माता के सम्वाद मे ब्राह्मण कुमार ने यह कहा है ।

जरात्वनोप गच्छति--अर्थात् जरा-रोग इन्हे नही सताता है ।

१—'चक्षुर्जल च व्यायाम पादाघन्तल मर्दनम् ।
कर्णयो मूर्ध्नि तैल च जराव्याधि विनाशनम् ॥'

अर्थात्-नेत्रो को निर्मल जल से धोना, प्रतिदिन टहलना, व्यायाम, पैरों के तलवे मे रात मे तेल मर्दन, कान मे सर्षप तेल डालना, मस्तक पर तेल मर्दन । यह सब उपचार वृद्ध रोग के नाश मे सहायक है ।

२—'वसन्ते भ्रमण वह्नि सेवा स्वप्न करोति य ।
वालाच सेवते काले जरात्व नोप गच्छति ॥'

अर्थात्—वसन्त ऋतु मे भ्रमण [ठहलना], वस्ति का प्रयोग, उचित निद्रा और उचित समय पर वाला के सेवन से जरा से वचाता है ।

३—'खात शीतोदके स्नायी सेवते चन्दनद्रवम् ।
नोपयाति जरात च निदाघे अनिल सेवनम् ॥'

अर्थात्—निदाघ मे तालाव, पोखर, मल के स्नान, चन्दन का लेप, शीतल मन्द सुगन्ध वायु का सेवन से जरा नही आती हे ।

४—प्राविष्यु उष्णोदकम् स्नायी वनतोय न सेवते ।
समये च समाहारी जरा त्व नोपगच्छति ॥'

अर्थात्—प्रावृट मे गर्म किया उष्णोदक मे स्नान, जङ्गली झरनों का जल न पीना, ठीक समय पर समतुलित भोजन करने से जरा नही सताता ।

५—'शरदी न गृहणाति भ्रमण तत्र वर्जयेत् ।
खात स्नायी समाहारी जरात्वनोपगच्छति ॥'

अर्थात्—शरद मे भ्रमण सेवन न करे । वावरी तालाव के जल मे स्नान समाहार से जरा पीडित नहीं होता ।

६—खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निन सेवते ।
भुक्ते नवान्नमुष्णाच जरात्व नोपगच्छति ॥

अर्थात्—हेमन्त मे वावटी, तालाव में स्नान, समय पर अग्नि का सेवन, नवान्न उष्ण भोजन से जरा दूर रहता ।

७—शिशिरऽग्नुक वह्नि च नवान्न च सेवते ।
मच्छाष्णोवक स्नायी जरात्व नोप गच्छति ॥

अर्थात्—शिशिर मे अग्नि सेवन धूप सेवन, नवान्न गर्म भोजन उष्ण जल से जरा दूर रहती है ।

जरा के कारण एवं वचने के उपाय

१ शुष्क मांसम् स्त्रिय वृद्धा बालकं तरुण दधि
स सेतन्तं जरा याति प्रसृष्ठा भ्रातृभि सह ।

अर्थात्—शुष्क मास, वृद्ध स्त्री, नवोदित सूर्य, तरुण (तुरन्त, का जमा) दधि एव रात मे दधि सेवन, रजस्वला गमन वैश्या शूद्र स्त्री सेवन मना है । इनके घर भोजन न करे । गुरु स्त्री ब्राह्मणी ब्रह्मचारणी यति योगनि स्त्री सेवन से जरा होती है ।

२. यया–रात्रौ येदधि सेवन्ते पुष्कलोश्च रजस्वला ।
तानुयाति जराकष्ट भ्रातृभि सह सुन्दरी ।

३ रजस्वला च कुलटा कावीरा यार दुतिका ।
शुद्राया चाक्र पत्निचा कृतुहीना च या सति ।
जोहि तासा सन्नभोजी ब्रह्महत्या लभेन्तुस ।
तेन पापेन सार्धं सा जरा नामुपयापते ।

४ पापाना व्याधिभि सार्धम मित्रता सतत ध्रुवम्

—शेषांश पृष्ठ १६७ पर देखें ।

पुनर्यौवन और हार्मोंस

कविराज श्री हरिकृष्ण सहगल, सदर थाना रोड, दिल्ली

कविराज श्री हरिकृष्ण सहगल उन लेखको में से हैं जो बड़ी से बड़ी गुत्थियों को सरल एव सुबोध भाषा शैली के माध्यम से सुलझाकर रख देते हैं जिससे कोई भी उसे समझ सकता है। हार्मोंस जैसे गूढ़ विषय पर आपने आयुर्वेद एव यूनानी के विविध योगो में हार्मोन्ज के भण्डार का गहन [illegible] है। यूनानी चिकित्सा में प्रयोग होने वाले हलवों, लबूबो से लेकर अर्क माउल लहम तक की व्याख्या करते हुए इन सब में हार्मोंस की उपस्थित बताई है। चरक सहिता के वाजीकर अध्याय तक को अछूता नहीं छोड़ा है। इन तथ्यो से पूर्ण यह लेख वास्तव में देशी पद्धतियो मे हार्मोंस के स्थान पर प्रयोग होने वाली चिकित्सा का दिग्दर्शन कराने वाला है। पाठक इसे रुचिकर एव लाभप्रद पायेंगे। —शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

आयुर्वेद के अनुसार आहार रस - शरीर अग्नियों और ओज के आश्रित, शरीर इन्द्रिया हैं। पाश्चात्यो के अनुसार शरीर क्रियाये एन्जाइम्स जलकणो और हार्मोन के आश्रित है। बात एक ही है कहने के ढग दो हैं। वृद्धावस्था में यह तीनो कम हो जाते हैं। अगर इनमे कमी न हो तो युवावस्था देर तक चलती चली जाती है। वृद्धावस्था मे भी युवावस्था का भास होता है। दृष्टि श्रवण शक्ति स्मृति, उत्साह - काम शक्ति सब युवको के समान होती है।

यह एन्जाइम - जल कण और हार्मोन क्या हैं?

आन्तो मे बैक्टीरिया आहार के विटामिनो से एन-जाइम बनाते हैं। इन ऐनजाइमो को एसिड भी कहते है यह कई प्रकार के है। यह ऐन्जाइम जलकणो से मिलकर हार्मोन उत्पादक ग्रथियो हार्मोन को बनाते है। वृद्धावस्था मे हार्मोन की कमी हो जाती है। शरीर उष्मा (प्राण-शक्ति) कम हो जाती है।

शरीर की सर्व हार्मोन उत्पादक ग्रथियो का नियत्रण पीयूष ग्रन्थि करती है। यह ग्रन्थि स्वय १२ हार्मोन बनाती है। मस्तिष्क की ही दूसरी ग्रन्थि हाइपो-थैलमस ग्लैंड दो हार्मोन F.S.H और L.H. बनाती है। दोनो विशेष रक्त वाहिनियो द्वारा पीयूष ग्रन्थि मे आते है पीयूष ग्रन्थि मे गोनेडोट्रोफिन नाम का हार्मोन बनता है। इस हार्मोन के द्वारा शुक्र ग्रन्थियां भी हार्मोन बनाती है। एक से लिंग हर्ष और दूसरे से वीर्य उत्पत्ति होती है। हार्मोन F S H के द्वारा डिम्ब ग्रथियो मे डिम्ब और शुक्र ग्रथियो मे शुक्राणु बनते है। शुक्र ग्रथियो के हार्मोन टैस्टेस्ट्रोन द्वारा शुक्राणुओं का पाक होता है। उपवृक्क ग्रथियो मे उत्पन्न हार्मोन स्त्री पुरुषो के लिंगो का निश्चय करते है। पीयूष ग्रन्थि के पूर्व भाग से उत्पन्न हार्मोन, प्रोलान ए और प्रोलान बी से डिम्बग्रथियो मे इस्ट्रिन और प्रोजेस्ट्रोन पैदा होते है। पुनर्यौवन के लिए यूरोप मे डाक्टर हार्मोन के इजक्शन लगाते है अथवा विद्युत के झटके देते है।

आवे हयात—

आवे हयात उस द्रव का नाम है जिसके पीने से मानव अमर हो जाता है। कहते है सिकदर आवे हयात की तलाश मे उसके चश्मे तक पहुच गया था, परन्तु उसके बाज ने और एक कौवे ने उसे आवे हयात पीने से रोक दिया कि जीवन मे कभी मृत्यु का आचल भी, माता की ममता से अधिक सुखदाई होता है। वृद्धावस्था मे जब आखो पर मोटे शीशो की ऐनक, चेहरे पर झुर्री, मुँह मे दात न पेट मे आत, झुकी हुई कमर होती है तो जीवन मे कोई आनन्द

नही होता। पाकिस्तान मे प्रति वर्ष १०,००० व्यक्ति आत्म हत्या करते हैं, स्वीडन मे आत्म हत्या करने वालो की सख्या दुनियाँ मे सबसे अधिक है। सिकन्दरे आजम लौट गया।

यूनानी हकीमो का कहना है कि दिये की रोशनी जिस प्रकार उसके तैल के आश्रित है उसी प्रकार युवावस्था और जिन्दगी भी एक तैल के आश्रित हैं। उन्होने इस जिदगी के तैल की खोज आरम्भ की। आयुर्वेद के अनुसार जिदगी का तैल वीर्य है, ओज है, यूनानी का रूह है।

बादाम चिलगोजा, पिस्ता, अखरोट, चिरौंजी, खश-खश गिरि कद्दू गिरि खरबूजा, गिरि नारियल आदि की गिरियो मे वह स्नेह है, विटामिन हैं जो मस्तिष्क मज्जा उपवृक्क ग्रन्थियो और अन्य हार्मोन उत्पादक ग्रन्थियो मे हैं। इसी स्नेह से हार्मोन उत्पन्न होते हैं। यूनानियो ने पुनर्यौवन और यौवन की रक्षा के लिए इन गिरियो से हलवा बादाम (बादाम मे विटामिन ए है) हलवा सालव, हलवा गाजर (विटामिन ए का भण्डार है), हलवा बैजा मुर्ग आदि बनाने आरम्भ किये। वह इन हलवो मे पीयूष ग्रन्थि और हाइपोथैलामस के हार्मोन को शामिल कर लेते हैं। वह जब चिडो के मस्तिष्क भूनकर डालते थे शरीर बल-वीर्य और ओज इन हलवो से बनते थे। आज की ओवलटीन और बोर्नविटा इनके मुकाबले मे कुछ भी नही। प्राचीनकाल मे लोग सर्दियो मे इन्ही हलवो का सेवन करते थे। बकरे के मगज को भूनकर खाना हार्मोनो को शरीर मे बढाना है। हमारे भारतीय पहलवान मिश्री का शोरबा इसी अर्थ पीते थे—यकृत मे विटामिन से होता है।

हलवों की इजाद के बाद लबूबो की इजाद हुई। लबूब उल अहरार, लबूबे बारद-लबूबे सगीर—और लबूब कबीर, प्रसिद्ध लबूब हैं। इनमे गिरियो से अन्य मूली, गाजर, प्याज शलजम आदि अनेक वनस्पतियो के बीज—चिड़ो के मगज—केशर, कस्तूरी अम्बर—स्वर्ण रजत पत्र और बैल के लिंग का बुरादा भी पड़ते हैं। हमदर्द वाले आज भी लबूब बनाते हैं। एक बार खाकर देखिये स्वास्थ्य बनता है या नही ? जवानी आती है या नही ? इनके प्रयोग से बृद्धावस्था मे आ रही बात वृद्धि रुक जाती है। चरक ने भी तो स्नेहो द्वारा बात चिकित्सा करने को कहा है। घृत मे विटामिन ए और आवश्यक प्रोटीन हैं। चरक सहिता मे वाजीकरण अध्याय मे जो प्रयोग लिखे हैं वह भी आयुर्वेदिक लबूब हैं। उनमे भी प्राणिज द्रव्य है।

इन गिरियो के तैलो मे कितनी शक्ति हैं आप इसका अनुमान गेहू के तैल, विटामिन ई (Viteolin) से लगा सकते हैं। वह अविकसित जननेन्द्रियों को विकसित करता है। शुक्राणुओ को उत्पन्न करता है। हृद्रोग को दूर करता है शक्ति देता है और गिरिया नवयौवन देती हैं। प्राचीन लोग सर्दियो मे दूध मे बादामरोगन पीते थे। वह वृद्धावस्था का इलाज था शरीर को विटामिन ए की पूर्ति थी। चरक की घृत चिकित्सा वास्तव मे विटामिन और हार्मोन चिकित्सा है।

मुगल राज्यकाल मे ऐयाशी का दौर दौरा था। बादशाह वजीर कर्मचारी व्यापारी सभी ऐश ग्रस्त थे। उस वक्त के हकीमो के लिये सबसे बढिया धन्धा ऐसे योग निर्माण करना था, जिन से जवानी खत्म न हो। वृद्धावस्था जल्द न आये, लिंग मे अपूर्व शक्ति और शरीर मे वीर्य का अथाह भण्डार हो। हकीमो ने उस काल मे माजूनो की ईजाद की। माजून वास्तव मे ही शरीर मे हार्मोनो की फैक्टरी लगा देती थी। वृद्ध भी तरुणवत मैथुन करने मे समर्थ हो जाता था। माजून मगजियात-माजून आर्द खुर्मा, माजून प्याज—माजून सालब आदि बनाये गये। इनमे रेग-माही (यह एक प्रकार का Lizard है जो रेगिस्तान मे मिलता है, गिरगिट की तरह इसके हाथ पैर होते हैं। कुछ वर्ष पूर्व पत्रो मे छपा था कि इग्लैण्ड मे एक पाकिस्तानी सेक्स स्पैशिलस्ट का सैक्सविगर केवल यह रेगमाही है।) जिंद बदस्तर (यह बगाल मलाया मे पानी किनारे रहने वाले जीव, ऊद बिलाव के सूखे खुसिये होते है। जिंदे बदस्तर का दुनिया मे बदल नही। इसका प्रयोग हार्मोन इन्जेक्शन की तरह काम करता है।) पड़ते हैं।

चरक सहिता के रसायन अधिकार के आरम्भ मे वर्णित, ब्राह्मरसायन मे रत्नो का भी समावेश है। आकाश मे चांद सतारे सूर्य से प्रकाश लेकर टिमटिमाते हैं। रत्न भी सूर्य के उसी प्रकाश को लेकर चमकते हैं। माफिक होने पर यह सूर्य की जीवनदायनी साबित्री रश्मिया शरीर मे

प्रविष्ट करते है और जब यह गायत्री किरणों लेते है तो नामर्द हो जाते है। यह एक प्रकार की जीवनदायनी वृद्धावस्था रोकने वाली और दीर्घ युवावस्था प्रदान करने वाली सूर्य थैरेपि है। हकीमों ने माजून फलके सेर मे इन रत्नों को भी शामिल किया है।

नाजुक मिजाज नवाबों के लिये हकीमों ने अर्क अम्बर, अर्क माउल लहम को बनाना आरम्भ किया। इस अर्क मे आवश्यक प्रोटीन भेड़ के बच्चे का मांस, बटेर, कबूतर, तोता तलवी, चूजा, मुर्ग के मांस, चिड़ों के मगज और बैल के लिंग का बुरादा पड़ते है। और विटामिनों से भरपूर मेवे और अंगूर भी पड़ते है। आप हैरान न हों, चरक संहिता मे वाजीकरण चिटक-चटक (चिड़ा) मांस, वृष्य कुक्कुट मांस रस, वृष्य अण्डरस का वर्णन किया है। भेद इतना ही है कि हकीमों ने मास रसों का अर्क निकाला है। अर्क माउल लहम से हार्मोन उत्पादक ग्रन्थियां सुचारु रूप से हार्मोन बनाने लगती है। चरक के वाजीकरण योगों से भी यही हार्मोन बनते है।

आज से एक हजार वर्ष पूर्व और महर्षि चरक के एक हजार वर्ष बाद बुखारा के निकट एक गांव मे एक अजीब हकीम बू अली सीना का जन्म हुआ था। उन्होंने जो पुस्तक कानून उल तिब, पांच जिल्दों मे लिखी है वह अधिकांश मे चरक संहिता से मिलती जुलती है। आपने लिखा है कि एक बाकरा लड़की (आयु १३-१५ वर्ष) से साठ वर्ष का वृद्ध भी सम्भोग कर युवावस्था प्राप्त कर सकता है। आचार्य चरक ने भी चरकसंहिता मे वाजीकरण मे स्त्री की महत्ता को स्वीकार किया है। जो स्त्री प्रहर्षण देने वाली है वह श्रेष्ठ वाजीकरण है। परिणाम यह है कि तेल की दौलत से माला‌माल वृद्ध शेख जवानी खरीदने के लिये, निजाम हैदराबाद के काल से हैदराबाद आ रहे हैं। सितम्बर १९८० के पत्रों मे आपने पढ़ा होगा कि एक ६० वर्षीय अरब को गिरफ्तार किया गया है। यह एक मास पूर्व यहां आया था। इसने एक १३ वर्षीय लड़की से २४ अगस्त को शादी की थी। इस मास मे वह पहले ऐसी ३ लड़कियों से शादी कर चुका है। प्रश्न उठता है अरब ने ऐसा क्यों किया?

वृद्ध अगर बाकरा लड़की से मैथुन करे तो वह जवान हो जाता है। इसी धारणा के साथ उसने ४ कमसिन लड़कियों से शादी की और मैथुन किया।

कथानक है कि एक बार हिन्दुओं के देवता महादेव जी ने कामदेव को भस्म कर दिया। रति विधवा हो गई। देवता इन्द्र ने जो उपदेश ऋषियों को तरुणावस्था, दीर्घायु वृष्यता, बल वीर्य उत्पादक ओजस्कर रसायनों का दिया था कामदेव के निधन से उनका अन्त हो गया।

चरक संहिता के वाजीकरण और रसायन अधिकार उस दिन से कोल्ड स्टोरेज मे बन्द हो गये जिस दिन म० बुद्ध ने गृहस्थ को त्याग दिया। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों ने रसायन औषधियों का निर्माण रोक दिया। आपको आयुर्वेद के किसी योग के साथ लिखा नहीं मिलेगा कि यह मदवत लाता है लिंग दृढ़ करता है, वीर्य को गाढ़ा करता है अगरचे यह गुण यूनानी योगों के साथ लिखे मिलेंगे।

ले देकर एक वैद्य लालिम्बराज रह जाते है जो अपनी स्त्री रत्ना से कहते है कि आज मैंने शतावरी रस पिया है मैं १०० स्त्रियों को सन्तुष्ट कर सकता हूं। शतावर मे जवानी उत्पादक हार्मोनों का भण्डार है।

पृष्ठ १६४ का शेषांश

पापव्याधि जरा बीज विघ्न बीजञ्च निश्चितम्।
पापेन जायते व्याधि पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्य दुःख शोको भय तथा।

रोगों का सम्बन्ध निश्चित पाप से है। पाप ही रोगों का जरावस्था तथा नाना प्रकार के रोगों का देन है। विष है। पाप से रोग, वृद्धावस्था दुःख शोक भय सब पाप रोग के कारण हैं।

बचने के उपाय—

१—साधर्माचार संयुक्तं च दिक्षित हरिसेवनम् गुरुसेवा तिथिनाच भ सन्तक्ते तय. सुच॥ व्रतोपवास युक्तं च सदा तीर्थं विशेषणम्। रोगा सन्तर्त दृष्ट्वा वैनतेय मिवोरगा एता जरा न सेवेत व्याधि सचास्च दुर्जय।

जो अपने धर्म मे लगा है आचरण युक्त है भगवान का मन्त्र ग्रहण किया है। विष्णु की उपासना करता है। गुरु देवता अतिथि के भक्त हैं। तीर्थादि म व्रतोपवास करता है। ऐसे को देखकर रोग भाग जाता है और जरावस्था तुरन्त नहीं आता।

भाव प्रकाश निघण्टु के

जरा निवारक द्रव्य

श्री डा० विवेक भूषण अशोल बी० आई० एम० एस०
विवेचक—आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, करोल बाग, नई दिल्ली-५



श्री० डा० विवेक भूषण अशोल आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली के एक होनहार स्नातक हैं और सम्प्रति अपनी मातृ संस्था में सेवारत है। आप परिश्रमी, सुयोग्य एवं सरल स्वभाव के व्यक्ति है आपने परिश्रम कर भावप्रकाश निघण्टु के जरा निवारक द्रव्यो पर लेख दिया है जो बहुत उपयोगी है।

—डा० शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

प्राचीन निघण्टुओ मे जो सामग्री है—उनका बाद के निघण्टुओ मे समावेश होता रहा है। भावप्रकाश बाद का एक पूर्ण निघण्टु है—जिसका अपना विशेष महत्व है। हम इस निघण्टु मे आये हुये उन द्रव्यो को लिख रहे हैं जो जरा निवारक हैं। चिकित्सक इनका प्रयोग कर लाभ उठा सकते है।

१. हरीतकी—हरीतकी पञ्चरसा लवणा तुवरा परम्।
रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी ॥

अर्थात् हरीतकी मे लवण रस के अतिरिक्त पाचो रस (मधुर, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल) पाये जाते है। यह रूक्ष, उष्ण, दीपन, मेध्य, मधुर पाक वाली एव रसायन है।

लवणेन कफ हन्ति पित्त हन्ति सशर्करा।
घृतेन वातजान् रोगान्सर्वरोगान्गुडान्विता ॥
सिन्धूत्थशर्कराशु ठीवणामधुगुडै. क्रमात्।
वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायन गुणैषिणा ॥

अर्थात् नमक के साथ कफ को, शक्कर के साथ पित्त को, घृत के साथ वात विकारो को और गुड के साथ समस्त रोगो को दूर करती है। जो रसायनार्थ हरीतकी का सेवन करना चाहते हो उन्हें वर्षाऋतु मे नमक से, शरद् में शक्कर से, हेमन्त मे सोठ से, शिशिर मे पीपल के साथ, वसन्त मे मधु से एव ग्रीष्म मे गुड के साथ हरड का सेवन करना चाहिए।

२. आमलकी—हरीतकीसम धात्रीफल किन्तु विशेषतः।
'रक्तपित्तप्रमेहघ्न पर वृष्यं रसायनम् ॥

अर्थात् जो गुण हरड के हैं वही गुण धात्रीफल के है किन्तु विशेषता यह है कि यह रक्तपित्त तथा प्रमेह को हरने वाला एव अत्यधिक धातुवर्धक वा रसायन है।

३ पिप्पली—'पिप्पली दीपनी वृष्या
स्वादुपाका रसायनी।'

अर्थात् पिप्पली अग्निवर्धक, वीर्यवर्धक, पाक से मधुर एव रसायन है।

४ रसाजनम्—'दार्वीक्वाथसम क्षीर पाद
पक्त्वा यदा घनम्।
तदा रसांजन ख्यात नेत्रयो. परम हितम् ॥
रसांजन तार्क्ष्यशैल रसगर्भ च तार्क्ष्यजम्।
रसाजन कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत्।
उष्ण रसायन तिक्त छेदन व्रणदोषहृत् ॥

अर्थात् दारुहल्दी के क्वाथ मे सममात्रा मे दूध डाल-

कर पकाते हैं, जब यह चतुर्थांश रहकर गाढा हो जाता है तब उसे उतार लेते हैं इसीको रसाञ्जन या रसौत कहा करते हैं। यह कटु है, कफ विष एवं नेत्र विकारों को हरती है, उष्ण, रसायन, तिक्त, छेदन है तथा व्रणदोषों को हरने वाली है।

५. वाकुची—वाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी॥

अर्थात् वाकुची मधुर, तिक्त, कटु विपाक एवं रसायन है।

६. रसोन—लशुनस्तु रसोन उग्रगन्धो महौषधम् '''

अर्थात् लशुन, रसोन, उग्रगन्ध, महौषध ये नाम हैं तथा यह बल, वर्ण के लिए उत्तम, मेधा को हितकारी, नेत्रों को गुणदायक एवं रसायन है।

७. गुग्गुल—गुग्गुलुर्विशदस्तिक्तो वीर्य्योष्णः पित्तलः सरः।
कषायः कटुकः पाके कटूरूक्षो लघुः परः॥
भग्नसन्धानकृद्वृष्यः सूक्ष्मस्वर्यो रसायनः।

अर्थात् गुग्गुल विशद, तिक्त, उष्ण, पित्तवर्धक एवं दस्तावर है। यह कषाय, कटु, पाक में कटु, रूक्ष, लघु, टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाला, वीर्यवर्धक, सूक्ष्म, स्वर को हितकारी एवं रसायन है।

८. गुडूची—जीवन्तीतन्त्रिका सोमा सोमवल्ली च कुण्डली।
चक्रलक्षणिका धारा विशल्या च रसायनी॥
चन्द्रहासा वयस्था च मण्डली देव निर्मिता।
गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी॥

अर्थात् जीवन्ती, तन्त्रिका, सोमा, सोमवल्ली, कुण्डली, चन्द्रलक्षणिका, धीरा, विशल्या, रसायनी, चन्द्रहासी, वयस्था, मण्डली, देवनिर्मिता ये गुडूची के नाम हैं। गुडूची कटु, तिक्त पाक में स्वादिष्ट एवं रसायन है।

९. गम्भारी—गभारी '' '' ''' ''' ''''॥
तत्फलं बृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम्।

अर्थात् गम्भारी फल वीर्यवर्धक, बलदायक, गुरू, केश्य एवं रसायन है।

१०. शालपर्णी—शालपर्णी गुरुश्छर्दिज्वरश्वासातिसारजित्।
शोषदोषत्रयहरी बृंहण्युक्ता रसायनी॥

अर्थात् शालपर्णी गुरु है। यह ज्वर, श्वास, अतिसार, शोष, तीनों दोषों को दूर करने वाली तथा पुष्टिकारक एवं रसायन है।

११ जीवन्ती—जीवन्ती शीतला स्वादुः
स्निग्धा दोषत्रयापहा।
रसायनी बलाकारी चक्षुष्याग्राहिणी लघुः॥

अर्थात् जीवन्ती शीतल, मधुर, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, बलकारक, नेत्रों को हितकारी ग्राही एवं लघु है।

१२ वाराही—विदारी मधुरा स्निग्धा
बृंहणी स्तन्यशुक्रदा।
शीता स्वर्य्यामूत्रला च
जीवन्ती बलवर्णदा॥
गुरुः पित्तास्रपवनदाहान्
हन्ति रसायनी।

अर्थात् विदारी मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, दुग्धवर्धक, वीर्यवर्धक, शीतल, स्वर को हितकारी, मूत्रल, जीवनीय, बल तथा वर्ण देने वाली, गुरू रसायन एवं पित्तशामक, रक्तविकार नाशक, वातशामक एवं दाहनाशक है।

१३ तालमूली—मूसली मधुरा वृष्या
वीर्योष्णा बृंहणी गुरुः।
तिक्ता रसायनी हन्ति
गुदजान्यनिलं तथा॥

अर्थात् मूसली मधुर, वीर्यवर्धक, उष्ण, पुष्टिकारक, गुरु, तिक्त एवं रसायन है। यह बवासीर तथा वातरोगनाशक है।

१४. शतावरी—शतावरी गुरुः शीता
तिक्ता स्वाद्वी रसायनी।

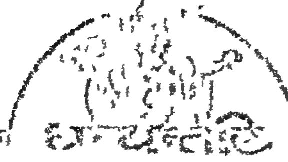
अर्थात् शतावरी गुरू, शीतल, तिक्त, मधुर एवं रसायन है एवं महाशतावरी मस्तिष्क के लिए हितकर, हृदय को ताकत देने वाली, वीर्यवर्धक एवं रसायन है।

१५ अश्वगंधा—अश्वगन्धानिलश्लेष्मश्वित्रशोथक्षयापहा।
बल्या रसायनी तिक्ता
कषायोष्णातिशुक्रला॥

अर्थात् अश्वगन्धा बलदायक, रसायन, तिक्त, कषाय, उष्ण, वीर्यवर्धक एवं वात, कफ, श्वेत कुष्ठ, शोथ एवं क्षय को हरने वाली है।

१६ वृद्धदारक—वृद्धदारः कषायोष्णः
कटुस्तिक्तो रसायनः॥

अर्थात् विधारा कषाय, उष्ण, कटु, तिक्त एवं रसायन है।



१७. घृतकुमारी—कुमारी भेदनी शीता

तिक्ता नेत्र्या रसायनी ॥

अर्थात् कुमारी दस्तावर, शीतल, तिक्त नेत्रो के लिए हितकर एव रसायन है।

१८. भृङ्गराज—भृङ्गराजो .... ।

दन्त्यो रसायनो बल्य'

कुष्ठनेत्रशिरोर्तिनुत् ॥

अर्थात् भृङ्गराज दांतो को उत्तम करने वाला, रसायन, बल्य तथा कुष्ठ, नेत्र एव शिरो रोगो मे लाभकर है।

१९. काकमाची—काकमाची ... ... ॥

तिक्ता रसायनी शोथ कुष्ठार्शो-

ज्वरमेहजित् ।

अर्थात् मकोय, तिक्त, रसायन एव शोथ कुष्ठ, अर्श ज्वर, प्रमेह आदि मे लाभकारी है।

२०. सोमवल्ली—सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी

कटुस्तिक्ता रसायनी ॥

अर्थात् सोमलता त्रिदोषनाशक, कटु, तिक्त एवं रसायन है।

२१ शङ्खपुष्पी—शङ्खपुष्पी ... . ॥

रसायनी कषायोष्णा

स्मृतिकान्ति बलाग्निदा ।

अर्थात् शखपुष्पी रसायन, कषाय, उष्ण, स्मृति, कान्ति, बल तथा अग्नि को बढाने वाली है।

२२ मण्डूकपर्णी—ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता

लघुर्मेध्या च शीतला।

कषाया मधुरा स्वादु-

पाकायुष्या रसायनी ॥

अर्थात् ब्राह्मी शीतल, सर, तिक्त, लघु, मेध्य, शीतल, कषाय, मधुर एव स्वादिष्ट पाकयुक्त, आयुवर्धक एवं रसायन है।

२३ तिलक—तिलक. ... ... ।

तिलक कटुक. पाके रसे चोष्णो रसायन ।

अर्थात् तिलक रस तथा पाक मे कटु, उष्ण एव रसायन है।

२४ बीजक (विजयसार)—

बीजक. कुष्ठवीसर्पश्वित्रमेहगुदक्रिमीन् ।

हन्ति श्लेष्मास्रपित्त च शाल्मः केश्यो रसायन ॥

अर्थात् विजयसार कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र आदि त्वक्-रोगों को, गुदारोग एवं कृमि रोगों मे लाभकारी है। यह कफ, रक्तविकार तथा पित्तनाशक है एवं त्वचा को हितकारी, केश्य एवं रसायन है।

२५. शाल्मली—शाल्मली शीतला स्वाद्वी

रसे पाके रसायनी ।

अर्थात् शाल्मली शीतल, मधुर, पाक मे मधुर एवं रसायन है।

२६. स्वर्ण—सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् ।

अर्थात् स्वर्ण शीतल, वीर्यवर्धक, बलदायक, गुरु एवं रसायन है।

२७. स्वर्णमाक्षिक—सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं

वृष्यरसायनम् ॥

अर्थात् शुद्ध स्वर्ण माक्षिक स्वादु, तिक्त, वीर्यवर्धक एव रसायन है।

२८. शिलाजतु—शिलाजं कटु तिक्तोष्णं

कटु पाके रसायनम् ।

अर्थात् शिलाजतु कटु, तिक्त, उष्ण पाक मे कटु एवं रसायन है।

२९. रस (पारद)—रसायनार्थिभिर्लोकैः

पारदो रस्यते यतः ।

अर्थात् इसे रस इसलिए कहा गया है क्योंकि मनुष्य पारद को रसायनार्थ खाते हैं।

श्वेत शस्त रुजा नाशे रक्तं किल रसायने ।

अर्थात् श्वेत पारद रोगो को नष्ट करने मे उत्तम है, लाल पारा रसायन है।

पारद' षड्रस स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायन ।

अर्थात् पारद छ रसों से युक्त, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक एव रसायन है।

३० गधक—रक्तो हेमक्रियासूक्त पीतश्चैव रसायने ।

गन्धक. ... ... ॥

हन्ति कुष्ठ क्षय प्लीह कफवातान् रसायनः ।

अर्थात् सवर्ण बनाने मे लाल एव रसायन के काम मे पीला गन्धक प्रयुक्त होता है। गन्धक कुष्ठ, क्षय, प्लीहा, कफ एव वात विकारो को नष्ट करता है तथा रसायन है।

३१. अभ्रक—प्रशस्यते सित तारे रक्त तत्तु रसायने।
पीत हेमनि कृष्ण तु मदेषु द्रुतयेऽपि च॥

अर्थात् रजत आदि बनाने मे श्वेत, रसायन कर्म के लिए लाल, सुवर्ण बनाने के लिए पीला तथा रोगों को नष्ट करने के लिए कृष्ण अभ्रक उत्तम है।

३२ हरिताल—

पत्राख्यं तालक विद्याद्
गुणाढ्य तद्रसायनम्॥

अर्थात् अभ्रक के पत्रो की तरह पत्र वाला हरताल गुणो से युक्त एव रसायन है।

३३ हीरक—हीरक ... . ।
रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः।

अर्थात् ब्राह्मण जाति का हीरा रसायन कार्य मे लेना चाहिए तथा यह सर्वसिद्धिप्रद होता है।

३४ ब्रह्मपुत्र विषः—

रसायन विष विप्र
क्षत्रिय देहपुष्टये।

अर्थात् रसायन कार्य मे ब्राह्मण विष, देह की पुष्टि के लिए क्षत्रिय विष लाना चाहिए।

३५. गुडूची पत्र—गुडूचीपत्रमाग्नेय सर्वज्वरहरं लघु।
कषाय कटु तिक्तं च
स्वादु पाके रसायनम्॥

अर्थात् गिलोय पत्र अग्निवर्धक, सर्वज्वरनाशक, लघु, कषाय, कटु, तिक्त, पाक मे मधुर रसायन है।

३६ वाराही कन्द—वाराही पित्तला बल्या
कटुवी तिक्ता रसायनी।

अर्थात् वाराहीकन्द पित्तकारक, बल्य, कटु, तिक्त एव रसायन है।

३७ धाराज जल—

धारनीर त्रिदोषघ्नमनिर्देश्यरस लघु।
सौम्य रसायन बल्य तर्पणं ह्लादि जीवनम्॥

अर्थात् धाराज जल त्रिदोषनाशक, अपूर्व रस वाला, लघु, सौम्य रसायन है। बलदायक, तृप्तिकारक, आनन्ददायक एव जीवन रूप है।

३८ दुग्ध—दुग्ध
वय. स्थापनमायुष्य सन्धिकारि रसायनम्॥

अर्थात् दुग्ध आयु को स्थापन करने वाला, आयुष्य, सधानकारक एव रसायन है।

३९. गव्य घृत—गव्य घृत .... ।
बल्य पवित्रमायुष्य सुमंगल्य रसायनम्॥

अर्थात् गाय का घी बल्य, पवित्र, आयुवर्धक, मगल रूप एव रसायन है।

४०. नर मूत्र—नरमूत्रं गर हन्ति सेवित तद्रसायनम्।

अर्थात् मनुष्य का मूत्र विष को नष्ट करने वाला और सेवन करने से रसायन है।

लेखक मार्ग निर्देशन एव सहयोग के लिए विभागाध्यक्ष एव विशेपाक सम्पादक गुरवर डा० शिवकुमार व्यास का आभारी है।

चीन की विश्व प्रसिद्ध, जराव्याधि निवारक औषध

जिन्संग

श्री अनिल कुमार शर्मा एम० फार्म० (रिसर्च स्कालर) एल० एम० कालेज आफ फार्मेसी
(गुजरात विश्वविद्यालय) नवरंगपुरा, अहमदाबाद



रसायन का आयुर्वेद मे अष्टाग-सग्रह, सुश्रुत सहिता एवं चरक सहिता मे वर्णन किया गया है। सुश्रुत मे दी गई परिभाषा उचित मानी जाती है। परिभाषा मे कहा गया है कि रसायन द्रव आयु बढाते हैं, स्वास्थ्य बनाये रखते हैं, मस्तिष्क कार्य व स्मरण शक्ति बढाते हैं एव रोगादि के प्रतिरोधात्मक शक्ति बढाने वाले होते है।

मनुष्य की सबसे बड़ी इच्छा पूर्ण स्वस्थ जीवन है। अर्थशास्त्र मे भी कहा गया है कि—जीवेम शरद शतम्। पश्येम शरदः शतम् ॥

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य का जीवन श्रवण एव दृष्टि सज्ञा से पूर्ण सौ वर्ष का हे।

बचपन व बुढापा मनुष्य जीवन के दो किनारे हैं, लेकिन मनुष्य दोनो को ही नही चाहता। मनुष्य को प्रिय है यौवन। जीवन मे जन्म के साथ ही भिन्न-भिन्न मनुष्यो मे भिन्न-भिन्न गति से दो क्रियाये चलती रहती हैं—जिनमे एक वृद्धि (growth) एवं दूसरी क्षय (atrophy) है। जीवन के प्रथम बीस-पच्चीस वर्षो मे प्रथम क्रिया दूसरी से अधिक सबल होती है, चालीस से पचास वर्ष तक की आयु मे दोनो क्रियाये समानता (balance) से चलती है, इसके पश्चात् द्वितीय क्रिया सबल हो जाती है, जिससे शरीर मे क्षीणता व कमजोरी आ जाती है एव शरीर झडने लगता है। वृद्धावस्था मे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए ही आयुर्वेद मे रसायन का प्रयोग बताया गया है। आवला, हरड, जीवन्ती आदि आयुर्वेद के प्रसिद्ध रसायन द्रव्य (Rejuvenating agent) हैं। ऐसा ही एक विश्व प्रसिद्ध रसायन द्रव्य है—"जिन्सङ्ग"।

जिन्सग (Ginseng) चीन मे पाया जाने वाला एक ऐतिहासिक रसायन है। चीन के सबसे पुराने मेटेरिया-मेडिका, "शिन-नग पन हीसाओ चिंग", जिसका निर्माण आज से लगभग २,००० वर्ष पूर्व हुआ था, मे इस औषध का निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है—

जिन्सग मस्तिष्क को शात करने वाला, इच्छा बढाने वाला, स्मरण शक्ति बढाने वाला, दृष्टि बढाने वाला एव रोगादि को दूर भगाने वाला द्रव्य है। चीन तथा पूर्वी एशिया के विभिन्न देशो मे इसका प्रयोग रसायन, आयु-वर्द्धक एव सम्पूर्ण रोगनाशन के लिए किया जाता है। ऐसी भी धारणा है कि इस औषध के प्रयोग से मनुष्य की आयु दुगुनी हो जाती है एवं वृद्ध भी युवावस्था का अनुभव करने लगता है।

वर्षो पुरानी इस औषध का महत्व आज भी कुछ कम नही हो गया है। विदेशो मे विशेषकर जापान, कोरिया एव रूस मे इस औषध पर अनुसधान कार्य प्रगति पर है जिसमे वैज्ञानिको ने औषध मे उपस्थित प्रभावकारी एव अन्य रसायनिक तत्वो का परिचय दिया है एव शास्त्रो मे बताये इस औषध के अधिकतर प्रभावो को सत्य प्रमाणित किया हे।

जिन्सग को लैटिन में पेनेक्स (Panax) वर्ग का सदस्य बताया जाता है, जिसका कुल एरालिएसी (Family-Araliaceae) है। यह कई वर्षो तक रहने वाला क्षुप है, जोकि पूर्वी एशिया एवं उत्तरीय अमेरिका के विभिन्न भागो मे पाया जाता है। चीन से प्राप्त होने वाले जिन्सग को पेनेक्स जिन्सग सी. ए मेयर (Panax Ginseng C A Meyer) अथवा पेनेक्स शिसग नीस (Panex schinseng Nees) के नाम से एव अमेरिका से प्राप्त होने वाले जिन्सग को पेनेक्स क्विनक्वीफोलियम (Panax quinquifolium L.) के नाम से जाना जाता है। प्रारंभ में पेनेक्स जिन्सग केवल उत्तरीय चीन, कोरिया एव साइबेरिया के पूर्वी भागो के वनो से पाई जाती थी, लेकिन

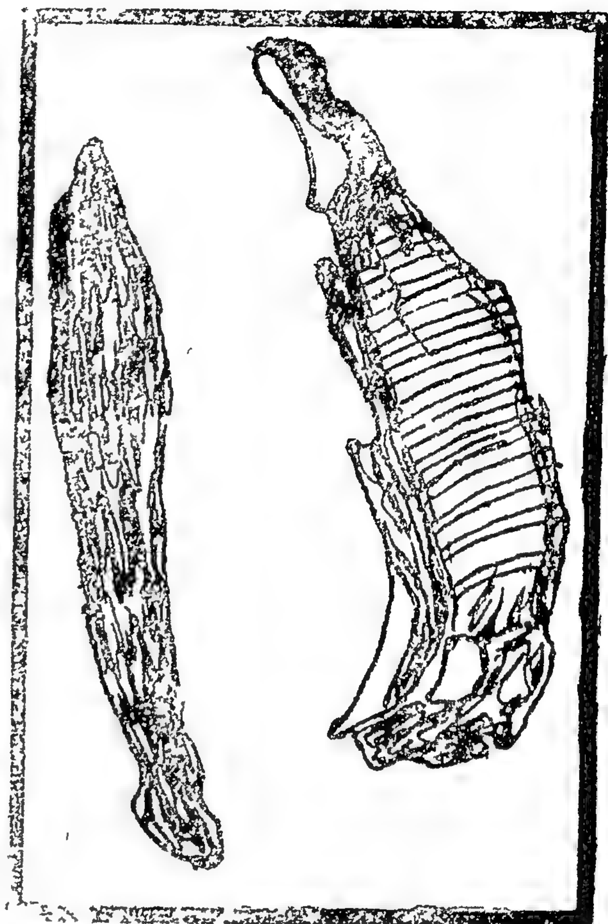
आजकल कोरिया एव जापान मे इसकी फसल भी उगाई जाती है। इसको कोरियन 'अथवा' चीन की जिंसग भी कहते हैं। पेनेक्स किवनक्वी फोलियम अमेरिका के जगलो से प्राप्त होता है। इसकी फसल भी उगाई जाती है। इसको 'अमेरिक जिन्स ग' के नाम से जाना जाता है। तालिका के दिए अनुसार सन् १९६३ मे,लगभग१,३६,००० पौड जिंमग का, जिसका कि अनुमानित मूल्य लगभग तीन मिलियन डालर है, का अमेरिका से निर्यात हुआ। इसका लगभग १०% भाग हाँग-काँग ने आयात किया। चीन मे भी इस औषध का आयात किया गया। वताया गया है कि सन् १७७३ मे सयुक्त सघ अमेरिका के बोसतन नामक स्थान से ५५ टन जिसंग का एक जहाज चीन द्वारा खरीदा गया ताकि विश्वभर की माँग पूरी हो सके, इसलिए अमेरिका के भी कुछ भागो मे जिन्स ग की फसल उगाई जाती है।

'साँची जिन्स ग' (San-chi Ginseng) दक्षिण-पश्चिम चीन, युन-नान (Yun-Nan) एव क्वान-सी (Kwan-Si) से उत्पन्न हुई जाति है, जिसको पेनेक्स सूडोजिन्सग जाति-नोतोजिन्सग (Panax pseudoginseng var notoginseng) के नाम से जाना जाता है। एशिया मे पूर्वी हिमालय से दक्षिण-पश्चिम चीन तक यह औषधि उत्पन्न होती है। जापान मे भी यह जाति पाई जाती है। जहा इसको पेनेक्स जेपोनिकम सी० ए० मेयर (Panax Japonicum C A Meyer) के नाम से जाना जाता है।

जिन्संग का स्वरूप—

जिन्सग कई वर्षों तक जीवित रहने वाला क्षुप है, जोकि लगभग एक से डेढ फुट ऊँचा होता है। इसका मूल भाग औषध स्वरूप प्रयोग होता है, जो बन मे उगे अथवा उपजाए क्षुपो से प्राप्त की जाती है। पाँच से ६ वर्ष के क्षुप की जडे शरद ऋतु मे उखाड ली जाती है तथा उसकी मिट्टी आदि धोकर तथा सुखाकर प्रयोग मे लिया जाता है।

जिन्सग मूल वेलन के समान आकार वाली, बीच से उभरी हुई तथा विभाजित होती है। इसकी साधारण लम्बाई पाँच इन्च एव मोटाई एक इन्च होती है। अमेरिकी जिन्सग पीत-श्वेत वर्ण एवं कोरियन जिन्संग पीत रक्त वर्ण होती है। इससे विशेष तेज गन्ध आती है, स्वाद मे यह मधुर, तीखा एवं वाद मे कुछ कटु है जोकि कुछ मधुयष्ठी मूल के समान है। चित्र ३ मे दोनो प्रकार की जिन्सग दिखाई गई है।



रूस के फार्माकोपिया मे इसका वर्णन करते हुए वताया गया है कि यह वेलनाकार सीधी अथवा दो से पाँच भागो मे विभाजित हुई मूल है जिसकी लम्बाई २५ सेमी. तक एवं मोटाई ० ७ से २ ५ सेमी० तक होती है। इसकी वाहरी सतह दानेदार होती है। मूल का ऊपरी भाग दवा हुआ होता है, जिसमे वृत्ताकार रूप मे दाने (tranverse wrinkles) रहते हैं। इसको 'मूल-—कण्ठ' (Root-Neck) कहते है। शेष भाग मे लम्बाई के अनुसार मे दाने रहते हैं। मूल को जल मे डुबाये रखने से ये दाने घुल जाते है एव सतह मुलायम हो जाती है। इसके साथ ही फार्माकोपिया मे मूल के सूक्ष्मदर्शिक गुणो का वर्णन किया गया है।



औषध को सुरक्षित रखने के लिए बताया गया है कि फार्मेसी मे चौडे मुँह के वर्तन मे ढककर अथवा सिलोफेन के बैग मे १-१ किलो के पैक बनाकर अथवा लकडी के केस मे १०-१० किलो रखी जानी चाहिए। औषध को पानी से अथवा वाष्प से बचाकर रखें। इसी फार्माकोपिया मे ही असली जिन्सग की रसायनिक परीक्षा के लिए नियम बताये है, जिससे इसको अन्य मिलावटी द्रव्यो से दूर रखा जा सके। ये परीक्षण निम्न है—

औषध चूर्ण पर आयोडीन घोल डालने से गाला रंगी उत्पन्न होता है। यह रग औषध मे उपस्थित स्टार्च के कारण उत्पन्न होता है।

औषध चूर्ण पर एक बूद सान्द्र गन्धकाम्ल डालने पर १-२ मिनट मे लाल वर्ण उत्पन्न हो जाता है। जो कि बाद मे जामुनी वर्ण मे परिवर्तित हो जाता है। मिलावटी औषधियाँ यथा—Aralia mandshurica Ruper et Maxim, की मूल, Eleutherococcus Senticosus Maxim की मूल एव Echinopanax elatum Nukai की मूल ऐसा रग नही देती।

निनहाइड्रिन घोल—० १७ प्रतिशत मे नीला जामुनी वर्ण उत्पन्न होता है।

एक परखनली मे औषध क्वाथ की तीन-चार बूँदे डालकर गर्म पानी मे सुखा लो। शुष्क परत पर ० १ प्रतिशत बेन्जीडीन घोल सान्द्र गन्धकाम्ल मे की दो-चार बूँदे डालो। लाल रग उत्पन्न होता हे जो कि कुछ समय बाद रक्तीय जामुनी वर्ण मे परिवर्तित हो जाता है।

रासायनिक सगठन—

औषध के रसायनिक द्रव्यो की पहचान एव निष्कासन मे पश्चिमी देशो के वैज्ञानिक अधिक सफल नही रहे। उन्होने केवल ओलिएलिनिक एसिड एव बीटा-सीटोसटीराल जैसे अन्त कणो का ही परिचय दिया। रूस, चीन एव जापान आदि देशो के वैज्ञानिक इस क्षेत्र मे अधिक सफल रहे? और उन्होने इस औषध मे उपस्थित कई प्रभावकारी कणो का परिचय दिया। इन कणो पर अनुसधानिक कार्य हाल के तीस-चालीस वर्षो मे ही हुआ है।

प्रारम्भ मे पाया गया कि चीन एव अमेरिका दोनो की जिन्सग मे पेनाक्वीलोन नामक ग्लूकोसाइड होता है। इसके साथ ही कटु स्वाद वाला सेपोनिन—०.७५ से १ प्रतिशत की मात्रा मे, रेसिन्स, टेनिन्स, वाष्पशील तैल [जिसमे पेनासन नामक टरपीन है], शर्करा, स्टार्च एवं लेह (mucliage) आदि द्रव पाये गये। चीन की जिन्सग में विटामिन 'बी' ग्रुप, कोलीनी एव स्टीरायड हार्मोन की उपस्थिति भी पाई गई। तत्पश्चात् हुए अनुसंधान मे रूस के वैज्ञानिको द्वारा, औषध मे दो प्रकार के ग्लूकोसाइडस पैनेक्साइट 'ए' व 'बी' की उपस्थिति की जानकारी हुई। सन् १९६२ के आस-पास शिबाटा आदि वैज्ञानिको ने औषध के विभिन्न सेपोनिन्स का निष्कासन किया। इनको ',जिन्सनोसाइडस" कहा जाता है। ये विभिन्न जिन्सनोसाइडस है—Rx (x=b, a, b_1, b_c, b_{12}, c, d, e, f, 20 gluco-f, g_1 तथा g_2)।[15]

वैज्ञानिको की रिपोर्ट के अनुसार यह सिद्ध हुआ है कि जिन्सग औषध क विभिन्न तत्व, औषधि के भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव के कारक हैं। पेनाक्वीनोन ग्लाइकोसाइड को प्रणालीहीन ग्रन्थियो को उत्तेजित करने वाला, पेनाक्सिन को हृदय एवं मस्तिष्क उत्तेजक तथा रक्त सस्थान को तेज करने वाला, पेनक्सिक अम्ल को हृदय एवं रक्तवाहिनियो को सहायता एवं मजबूती देने वाला, पेनासन को वेदनाहर एव शामक प्रभाव वाला तथा जिन्सेनिन को मधुमेहहर तत्व बताया गया है[3]

प्रभाव एवं उपयोग—

यद्यपि भारत के अधिकतर शास्त्रो-ग्रन्थो मे इस औषध का वर्णन नही मिलता, तो भी प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैल्थ ऑफ इण्डिया" मे इस औषध का परिचयित समावेश किया गया है। प्रभाव एव उपयोग का वर्णन देते हुए कहा गया है कि यह औषध कटु (bitter) प्रकार की औषध है जो कि दीपन, पाचन, बलकारक, ज्वरहर एव कफनाशक प्रभाव रखती है। मस्तिष्क के सैरीब्रम भाग मे इसका शामक एवं वाइटल भाग मे उत्तेजक प्रभाव है। गोनेडोट्रोपिक प्रभाव के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। चयापचय क्रिया पर भी इसका पूर्ण प्रभाव है, अत. एथ्रोस्क्लेरोसिस रोग की उत्पत्ति नही होती। ऐसा भी बताया गया है कि यह औषध बढे हुए रक्तदाब को कम कर, एव कम हुए रक्तदाब को बढाकर, सामान्य मान पर स्थिर करने की शक्ति रखती है। इसी कारण दोनो अवस्थाओ मे इस औषध का प्रयोग लाभकारी है। औषध



का मूत्रल प्रभाव भी पाया गया है। रक्ताल्पता, उदररोग-विशेषत- वायुरोग, अनिद्रा, नाडीप्रदाह एव नाडी सस्थान प्रदाह, मधुमेह एव नपु सकता मे इमका प्रयोग अति लाभकारी वताया गया है। औषध का वलकारक एव रसायन के रूप मे भी प्रयोग वताया गया है, क्योकि यह शरीर मे प्रोटीन एवं न्यूक्लिक एसिड के सश्लेपण मे उत्तेजना करती है।

एक शास्त्र ने दिए वर्णन के अनुसार इस औषध की टेवलेट मिलती है, जिसमें १५० मिग्रा० प्रति टेवलेट औषध मूल होती है। एक से दो ग्राम की मात्रा मे इसका प्रयोग किया जाता है।[16]

औषध प्रभाव पर अनुसंधानिक दृष्टिकोण—

आज के युग मे वैज्ञानिक शास्त्रो मे वताये जिन्सग के विभिन्न गुणो का आधुनिक अनुसधानिक दृष्टि से अवलोकन कर रहे है। इसके लिए औषध के क्वाथ या एक्सट्रेक्ट तथा उसमे से निष्कासित अ श या अ शो का विभिन्न जानवरो पर प्रभाव देखा गया। निम्नलिखित इसी प्रकार के अनुसधानो का परिचय है—

एशिया के प्रसिद्ध वैज्ञानिक टाकाशी ने हाल ही मे, इस औषध से प्राप्त हुए विभिन्न सैपोनिन्स के मूपकादि के वातनाडी संस्थान, रक्तवान, श्वसन तथा आन्त्र आदि पर प्रभाव देखे।[12] इनसे प्राप्त परिणाम के अनुसार निम्न जानकारी प्राप्त होती है—

केन्द्रीय मस्तिष्क मे मन्द उत्तेजना एव थकान दूर करने का प्रभाव जिन्सनोसाइडस एक प्रोटोपेनाक्सोट्रायोल (Protopanxotriol) के कारण होता है।

मस्तिष्क पर शामक प्रभाव (Tranquilizing action) जिन्सनोसाइडस एक प्रोटोपेनाक्सोडायोल के कारण होता है।

वैज्ञानिक ओरा व अन्य [6,7] ने वताया कि औषध मे प्रभावकारी अश सैपोनिन है, जिसका मुख्य प्रभाव रसायन एवं शक्तिदायक है। सन्दर्भ मे यह भी वताया गया है कि यह प्रभाव R. N A (Ribose Nucleic Acid) के सश्लेपण मे हुई वृद्धि से, पोलीसोम मात्रा अधिक होने से तथा प्रोटीन निर्माण की तेजी से हो सकता है। ऐसा भी देखा गया है कि मूपको को औषध के जलीय क्वाथ के कुछ अश देने से यकृत में R N. A एव सीरम प्रोटीन का निर्माण अधिक होता है। 'हिरोषी' आदि ने प्रमाणित किया है कि ये जिन्सनोसाइडस R N A प्रोटीन व कोलेस्ट्रोल का शरीर मे निर्माण वढाते है, जो कि किसी प्रकार के हार्मोन आदि के द्वारा होता है।[5]

जापान से उपलब्ध एक प्रकार की जिन्सग–पेनासिस-जेपोनिका राहिजोमा पर मुख्य सशोधनकार्य 'सैही व ताकागी' वज्ञानिक एव इनके साथियो द्वारा हुआ। इन्होने वताया कि औषध के सैपोनिन III मे शामक, ज्वरनाशक, कासनाशक तथा कफमारक प्रभाव है। यह व्रण-क्षुब्ध (Stress ulcer) को हरता है, आन्त्र गतिको वढाता है एव वात रक्त नाशक है। सैपोनिन IV एक्सपेक्टोरेन्ट, व्रण क्षुब्ध नाशक एवं आन्त्रगति मे वृद्धिकारक है। सैपोनिन V मे शोधनाशक प्रभाव है। इस औषध मे ऐसा थकान दूर करने का एव मस्तिष्क उत्तेजना का प्रभाव नही पाया गया, जैसा कि कोरियन अथवा चीन की जिन्सग से प्राप्त जिन्सनोसाइडस Rg-1 से पाया गया था।

अन्य अनुसन्धानिक लेख के अवलोकन से ज्ञात होता है कि औषध के क्वाथ का थकावट दूर करने वाला प्रभाव देखा गया है। इन्होंने वताया कि यह प्रभाव शर्करा के अधिक मात्रा मे मुक्त होने से है। औषध का स्थानिक शून्य प्रभाव (Local anaesthetic action) भी देखा गया। इसके लिये चीन का प्रसिद्ध योग 'सैको-केशीटो' (Saiko-Keishi-To) का प्रयोग किया गया. जिसका जिन्सग मुख्य द्रव्य है। योग के २ प्रतिशत क्वाथ के प्याले स्थानिक शून्य प्रभाव प्रोकेन हाइड्रोक्लोराइड के ० ५ प्रतिशत घोल से ० ३ गुना शक्ति रखता है। इसके अलावा औषध का घोघे द्वारा उत्पन्न हुए नाडी प्रदाह मे एव अपस्मार मे लाभदायक प्रभाव देखे गये हैं।[9,10]

एक अन्य वैज्ञानिक ने जिन्सग एव इसका उपर्युक्त (Substitute) औषध एल्युथ्रोकोकस वर्ग के प्रभावो पर तुलनात्मक कार्य किया, एव ज्ञात किया कि दोनो के प्रभाव विस्तृत क्षेत्र तक, और कम विषाक्तता वाले हैं। ये योग शक्तिदायक एव रसायन प्रभाव वाले, मानसिक एव शारीरिक तौर पर कार्य क्षमता को वढाने वाले तथा कार्वोहाइड्रेटस एव एल्युमिनिन के चयापचय क्रिया मे एनावोलिक क्रिया सक्रिय करने वाले द्रव्य हैं। प्रयोगात्मक दृष्टि से ये योग एलोक्सोन द्वारा उत्पन्न हुये मधुमेह मे नाडी प्रदाह,



कैन्सर एव रेडिएशन सिकनेस मे शामक अथवा अवरोध प्रभाव रखते हैं। बताया गया है कि यद्यपि दोनो औषधियो कि एक प्रकार के प्रभाव है तो भी कुछ प्रभावों मे एल्युथ्रोकोकस वर्ग की औषध अधिक उपयोगी है। पाया गया कि मनुष्य अथवा जीव के कार्यक्षमता अधिक करने की शक्ति जिन्सग मे एल्युथ्रोकोकस की अपेक्षा कम होती है, एव कुछ समय तक के लिये ही होती है। उत्तेजना प्रभाव के कारण जिन्संग मे मनुष्य अति उत्तेजित हो जाता है, जबकि एल्युथ्रोकाकस औषध से ऐसा अधिकतर नही पाया जाता। अति सक्रिय दशा मे एल्युथ्रोकोकस का शान्त प्रभाव भी है। जीर्ण एव चिरकारी, दोनो प्रकार के रेडियशनसिकनेस, मधुमेह एवं कुछ कैन्सर अवस्थाओ मे भी इस औषध का जिन्संग की अपेक्षा बेहतर प्रभाव देखा गया है। एक लाभकारी तथ्य यह भी है कि इस औषध मे वातावरण एव समय के अनुसार औषध के प्रभावकारी तत्वो मे अधिक परिवर्तन नही होता, जबकि जिन्सग मे ऐसा देखा गया है।

आज भी इन औषधियो पर अनुसन्धान कार्य जारी है। लेख विस्तार अधिक होने के भय से संक्षिप्त मे ही इनका वर्णन किया गया है। आयुर्वेद चिकित्सको से निवेदन है कि ऐसी औषध को हिमालय के क्षेत्रो से प्राप्त करें अथवा चीन आदि देशो से सम्बन्धित व्यापारियो से मगावें एव चिकित्सा की दृष्टि से इसका उपयोग करें।

आभार—लेखक डा० डी० मावसर, प्रोफेसर एल० एम० कालेज आफ फार्मेसी, अहमदाबाद के अमूल्य एवं सहायक विचार तथा निर्देशन के लिये आभारी है।

Refȩrences

1 Avakian e. v., Evonuck e. et al; Planta Medico, 36, 43 (1979)

2 Brekhman I. I., Dardymov I. V.: Lloydia, 36, 46 (1970).

3. Claus E p, Tyler v e, Brady L R.; Pharmacognosy VIth Edition, 113

4 Chul kim, Chung kim et al : Lleydia 33, 43, (1970).

5. Gommosi K, Mejamota F, Higashi T et al, chem Pharm bull. (Tokyo), 24, 2400, (1976)

6 Hiai S. Oura H. Hamauk H et al; Planta Medica 28, 131, (1975)

7 Oura H, Hiai S, Nebetani Ser al. Planta Medico 28, 76, (1975).

8 Saito H, Lee Y M et al, Japan J. Pharmacology, 23, 43, (1973).

9. Sugaya e et al-manuscript in preparation.

10. Sugaya A, Tsuda T et al, Pianta Medico 34, 294 (1978)

11 Sugaya A, Tsuda T, Sugaya e et at Planta Medico 37, 274, (1979)

12 Takagi K, Saito H, Tiuchiya M: Japan J Pharmacology, 22, 245

13. Takagi k, Saito H, Truchiya M. Japan J Pharmacology, 22, 339 (1972)

14. Trease G E, Evans W C., Pharmacognosy XIth Edition, 483 (1970).

15. Wagner H, Wolff P. New Natural Products and Plant drugs with Pharmacological, Biological or Therapeutic activity, 185, 1977)

16 Martindale Extra Pharmacoepia XXVIth Edition 2016

17 State Phaimacopeia of the Union of Soviet Socialist Republics (Ussrp) Xth Edition, 527.

18. The Wealth of India, Raw materials (N-Pe), Vol VII, 215, (1966)

वृद्धावस्था में उपयोगी क एअमूल्य प्रभावकारी योग

अश्वगन्धा

श्री पी० रमेश कुमार एम० फार्म०, श्री अनिल कुमार शर्मा आयु० रत्न फार्म०
एल० एम० कालेज आफ फार्मेसी, अहमदाबाद ।

अश्वगधा आयुर्वेद की एक प्रसिद्ध औषधि है, जिसका कि रसायन के रूप मे सबसे अधिक एव सामान्यत प्रयोग होता है। आम लोगो मे इसका प्रचार मस्तिष्क को शक्ति देने वाली, स्मरण शक्ति बढाने वाली, आमवात रोग को दूर करने वाली एव शरीर से निर्बलता एव पीडा दूर करने वाली औषधि के रूप मे होता है। वृद्धावस्था मे अधिकतर चिकित्सक इसका प्रयोग बताते हैं, क्योकि इससे वृद्धावस्था मे उत्पन्न हुई कमर एव जोडो की पीडा दूर होती है। मस्तिष्क मे शातिकारक प्रभाव एव शारीरिक स्फूर्ति बनी रहती है। लोकप्रिय होने के कारण ही इस औषधि के विभिन्न प्रभावो पर उपलब्ध विभिन्न ग्रथो एव अनुसधानिक लेखो का अवलोकन किया गया। प्रस्तुत लेख मे इन्ही अवलोकित ग्रन्थो से उपलब्ध जानकारी दी जा रही है।

अश्वगधा को हिन्दी मे असगध, मराठी में आसकन्द, तथा गुजराती मे आसोद एव आखसध के नाम से भी जाना जाता है। लैटिन मे इसे विदानिया अश्वगधा अथवा विदानिया सोमनिफेरा (Withania Ashwagandha or Withania Somnifera) के नाम से जाना जाता है, जो कि 'सोलानेसी कुल (Family Solanaceae) का सदस्य है। यह क्षुप सर्वत्र मिलता है। क्षुप २ से ४ फुट ऊचा होता है, जिसके पत्र गोल, नोकदार रोमश एव मांसल होते हैं। इसके पुष्प और फल प्राय शाखाओ व पत्रो के कोण मे लगते हैं। फल आकृति से काकमाची के फल के तुल्य गोल होते हैं। तरुण, आर्द्र मूल को तोडने पर अश्व मूत्र के समान गध आती है, जिससे ही इसको अश्वगधा नाम दिया गया। इसकी मूल पतली, परन्तु मूलकवत शकाकार (Conical) भीतर से सफेद होती है, जो स्वाद मे तिक्त मधुर है। बाजार मे उपलब्ध अश्वगधा मूल अधिकतर नागपुर तथा बम्बई के आस पास के क्षेत्र से प्राप्त किया जाता है। इसको "नागौरी असगध" के नाम से जाना जाता है। पजाब क्षेत्र से भी यह मूल प्राप्त होती है। ऐसा कहा गया है कि जहा चूर्ण की आवश्यकता हो, वहा नागौरी असगध तथा क्वाथादि के लिए पजाब क्षेत्र से प्राप्त की गई असगध का प्रयोग करना चाहिये। अश्वगधा की एक जाति के फल व उसके क्वाथ को दूध मे डालने से दूध जम (Coagulate) जाता है। इसलिए इस प्रकार की जाति को विदानिया कोएगुलैंस (W Coagulans) कहते हैं।

भावप्रकाश निघण्टु मे इसका परिचय देते हुए कहा गया है कि अश्ववाचक जितने नाम हैं, उनको आदि मे रखकर गधा शब्द अन्त मे रखने से जितने शब्द हो वे सब अश्वगधावाचक है। अश्वगधा, वाजिगधा, हयगधा तुरङ्गगन्धा, सैंधवगन्धा, किक्मनगन्धा इत्यादि तथा वाराहकर्णी, वरदा, वलदा, कुष्ठगन्धिनी, अश्वगन्धा, व घोडे के जितने नाम है, सब अश्वगन्धा के नाम हैं। औषधि प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा है कि—

'बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णाति शुक्रला ॥'

अर्थात यह औषधि बलकारी, रसायन, तिक्त, कषाय, उष्ण एव शुक्रल स्वभाव वाली है।

कैयदेव निघण्टु मे भी इस औषध का परिचय दिया है। कहा गया है कि—

अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्त वृष्या रसायनम्।
बलपुष्टि प्रवाहन्ति कफकासानिल व्रणाम् ॥
शोफकण्डु विषश्वित्रकृमि श्वासक्षत क्षयान् ॥

प्रभावो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अश्वगधा मूल एक उत्तम वीर्यवर्धक और मासकर रसायन है। दुग्ध व मक्खन और मधु से मिलाकर अश्वगन्धा चूर्ण खिलाने से दुर्बल शिशु तथा व्यवाय क्षीण व श्रमक्षीया पुरुष सबल और पुष्ट हो जाते हैं। स्तन्यवृद्धयर्थ स्त्रिया



सेवन कर सकती है। वातरोग, उन्माद, यक्ष्मा, निद्रानाश शुक्रक्षय, और साधारण दौर्बल्य में यह रसायन के रूप मे दिया जा सकता है। रजोदर्शन के पश्चात कुछ दिन सेवन करने से स्त्रियो मे गर्भ की स्थिति हो सकती है।

आधुनिक मत—औषध पर आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत विचार किया गया जिसके फलस्वरूप बहुत सा अनुसधान हुआ एव आयुर्वेद शास्त्रो मे बताये इसके बहुत से प्रभावो की पुष्टि हुई।

वैज्ञानिको ने इस औषध के क्षुप के विभिन्न गुणो को देखकर इसे सोलानेसी कुल का सदस्य बताया। लेकिन इस कुल के अन्य सदस्यो के समान इसमे नेत्र पुतली फैलाने वाले (Mydriasis) प्रभाव वाले एल्केलायडस यथा एस्ट्रोपिन व होमेट्रोपिन की उपस्थित नही पाई जाती। इसमे उपस्थित बहुत से रसायनिक कणो (Chemical costituents) पर अध्ययन किया गया, जिसके फलस्वरूप निम्न तथ्य प्रकाश मे आये —

औषध के मूल मे एल्केलायडस (Alkaloids) पाये जाते है, जिनकी कुल मात्रा ०.१३ से ०.३१ प्रतिशत होती है। कही-कही पर यह मात्रा ४.३ प्रतिशत तक भी बताई गई है। प्रमुख एल्केलायडस सोमनीफेरिन (Somniferine) एव विसामिन (Visamine) है। इसके अतिरिक्त वाष्पशील तैल के भी कुछ अश पाये जाते है। जलीय क्वाथ मे एक काले रग का रेसिन प्राप्त होता है, जिसमे हेन्ट्राकोटेन (Hentriacontane) फाइटोस्टीरोल (Phytosterol) तथा वसीय अम्ल (Fatty acids) यथा पामिटिक अम्ल, स्ट्रीक अम्ल, ओलिक अम्ल, सिरोलिक (Cerolic acid) एव लिनोलिक अम्ल का मिश्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त आइपुरेनाल (Ipurenol), विदानोल (Withanol) एव एक अन्य प्रकार के एल्केलायड की उपस्थिति देखी गई।

एक अन्य पुस्तक का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि औषध मे कुछ अन्य प्रकार के एल्केलायडस भी मिलते है, जिनमे हाइग्रीन (Hygrine) आइसोपेलेट्रीन (Isopelleterine) कुस्कोहाइग्रीन, एनोफेरिन (Anoferine) एव ऐनोहाइग्रीन प्रमुख है।[5] ऐसा भी पाया गया है कि इस औषध मे तीन प्रकार के अन्य रासायनिक कण मिलते है, जिनको उनकी रासायनिक सरचना के अनुसार स्ट्रीरायडल लेक्टोन (Steroidal lectone) कहते है। इनमें एक कण विदाफेरिन-ए (Withaferine-A) है, जो कि ०.२ प्रतिशत की मात्रा मे उपस्थित होता है। इसको औषधि के कीटाणु शामक (Bectcriostatic) एव कैन्सर विरोधी (Antitumor) प्रभावो के कारण बताया गया है। दूसरा कण भी लगभग इसी प्रकार का है। तीसरे प्रकार के कण को विदानोलायडस (Withanoloides) के नाम से जाना जाता है।[4] औषध मे से निकोटिन (Nicotine) एव छ अन्य एल्केलायडस - सोमनिफेरिन (Somniferine) सोमनिफेरनिन (Somniferinine) सोमिन (Somine), विदानिन (Withanine), विदामिन (Withamine) एव कीटनाशक प्रभाव वाले पीतवर्ण एक अन्य एल्केलायड की उपस्थिति देखी गयी एवं निष्कासन किया गया।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक कर्नल आर० एन० चोपरा द्वारा रचित पुस्तक "दी इण्डिजीनस ड्रग्स आफ इण्डिया" में इस औषध के प्रभावो का वर्णन मिलता है। इन्होने बताया कि औषध मे मृदु शामक प्रभाव है, जो इसमे उपस्थित ऐल्केलायड्स के कारण है। कही-कही तो पूर्ण पौधे-पचाङ्ग को ही प्रयोग मे लिया जाता है। इसके पत्तो को कैंसर की गाठ तथा क्षयगत ग्रन्थि पर लगाने का आयुर्वेद मे सिद्धान्त है—बताया गया है। मूल तेज, कटु एवं तीखे स्वाद वाली होती है। इसका शोथ (Inflammation), त्वचागत रोग विशेषत सोरोसिस (Psoriasis), कास (bronchitis), व्रण (ulcer) एवं स्केबीज (Scabies) आदि रोगावस्थाओ मे स्थानिक प्रयोग लाभकारी है। राजपूताना क्षेत्र मे इसका प्रयोग आमवात (rheumatism एव अजीर्ण (dyspepsia) मे किया जाता है। जोड़ो के दर्द, विशेषत पीठ के दर्द (Lumbar pain) मे इसका प्रयोग बहुत लाभकारी बताया गया है। इसके फल का मूत्रल प्रभाव बताया गया है।

श्री कीर्तिकर एव वसु द्वारा रचित पुस्तक "इण्डियन मैडीसनल प्लान्टस" मे इस औषध के बलकारक (tonic) वाजीकरण द्रव (aphrodisiac agent) आदि प्रभाव बताये हैं। वृद्धावस्था मे उत्पन्न दुर्बलता मे, बालको मे उत्पन्न

क्षीणता (emaciation) मे तथा आमवात (rheumatism) मे इसका प्रयोग अति लाभकारी है।

सी० एस० आई० आर० द्वारा प्रकाशित हुई "दी वैल्थ आफ इण्डिया" मे इस औषध का वर्णन करते हुए बताया है कि इसके प्रभाव इसमे उपस्थित एल्केलायड्स के कारण ही हैं। एल्केलायड विसामिन (Visamine) का मूषक जाति माइस (mice) मे १२५ मिग्रा० प्रति किग्रा० मीटर के भार के अनुसार प्रभाव देखे गये। रिपोर्ट के सदर्भ मे पुस्तक मे बताया गया है कि यह हैक्सेनल (Hexanal) एक निद्राकारक औषध के निद्रा प्रभाव को बढाता है। भारत के फार्माकोपिया मे भी इस औषध का शामक वर्ग के अन्तर्गत परिचय दिया है।

एक अन्य रिसर्च लेख मे बताया गया है कि मूल मे उपस्थित एल्केलायड्स से कम रक्तदाब, मन्द हृदयगति एव श्वसन उत्तेजना के समय मे वृद्धि होती है। रक्तदाब कम करने का प्रभाव औषध के आटोनोमिक गेगलिगोन (autonomic ganglion) का अवरोध करने से होता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय मस्तिष्क पर भी शामक प्रभाव होने से यह प्रभाव हो सकता है। प्रयोगशाला के विभिन्न जन्तुओ पर इन एल्केलायडस का शामक (Sedative) प्रभाव देखा गया है। एक और लेख से ज्ञात होता है कि कुल एल्केलायड्स आन्त्र, गर्भाशय, श्वासनलिका एव रक्त वाहिनियो की मासपेशियो के खिचाव को दूर करते है—(antispasmodic action) और इनका फैलाव करते है इस कारण से इसका उदर पीडा, श्वास रोग (asthma) एव गर्भाशय क्षोभ मे प्रयोग लाभकारी है।

अश्वगधा का शोथ (inflammaion) व्रण एव स्केबीज की अवस्थाओ मे प्रयोग की जानकारी के पश्चात् इसका वात रोगादि (arthiopathic diseases) पर परीक्षण किया गया। ज्ञात हुआ कि विदाफेरिन 'ए' (withaferin A) एक तेज आमवात नाशक एव शोथनाशक (antirheumatic and antinflammatory) प्रभाव वाला द्रव्य है। जन्तुओ पर यह प्रभाव देखा गया। प्रभाव देखने के लिए चूहे प्रयोग मे लिये गये। पाया गया कि आरथ्राइटिस (arthritis) प्राप्त किए मूषको मे, जिनकी चिकित्सा विदाफेरिन 'ए' से की गई, हाइड्रोकोर्टिसोन से चिकित्सा किये गये मूषको की अपेक्षा अधिक एण्टी-आरथ्राइटिक प्रभाव देखा गया एव इनके शरीर भार मे भी वृद्धि पाई गई जबकि हाइड्रोकोर्टिसोन द्वारा चिकित्सा प्राप्त मूषको के शरीर भार मे कमी आई। विदाफेरिन ए का कैन्सर की कोषिकाओ पर भी प्रभाव देखा गया। यह प्रभाव जन्तुओ मे विशेषत माइस (mice) मे, कैन्सर उत्पन्न कर देखा गया तथा ज्ञात हुआ कि इस औषध का कैंसर मे प्रति अवरोधक प्रभाव है।

एक अन्य अनुसधान लेख मे इस औषध के विभिन्न प्रभावो का अध्ययन किया एव निम्नलिखित जानकारी दी—

औषध मे उच्च रक्तदाब शामक (anti hypertensive), हृदयगति मन्द करने वाला एव श्वसन संस्थान की उत्तेजना का प्रभाव है। कुत्ते पर श्वसन सस्थान उत्तेजना एव रक्तदाब पर प्रभाव देखे गये। मेढक के सामान्य एव निर्बल हृदय पर इसका प्रभाव देखा गया एव पाया गया कि इसका मन्द किन्तु अधिक समय तक रहने वाला हृदय बलकारक (cardio-tonic) प्रभाव है। बताया गया है कि औषध से निष्कासित कुल एल्केलायेड्स का प्रभाव इसके क्वाथ प्रभाव से दुगने से भी अधिक होता है।

अन्य वैज्ञानिको ने भी इस औषध के क्वाथ को रक्त दाब शामक (Hypotensive), श्वसन उत्तेजना एव शामक प्रभावा पर अध्ययन किया एव ऊपर बताये प्रभावो को सत्यापित किया। बताया गया है कि औषध का शामक प्रभाव नेम्बुटाल (Nembutal) एक निद्राकारक औषध के प्रभाव को बढाती है। श्वसन गति मे उत्तेजना केन्द्रीय मस्तिष्क की उत्तेजना से होती है।

"रीजनल रिसर्च लैबोरेटरी, जम्मू" से भी एक अनुसधानित लेख[12] प्रस्तुत किया गया जहाँ इस औषध के चूहो एव माइस (mice) पर रसायन, बलकारक एवं वाजीकरण प्रभाव देखे गये। इसमे उन्होंने तैरने की शक्ति, वीर्य मे शुक्राणु मात्रा, आदि पर अध्ययन किया, जहाँ उन्हे औषध से लाभकारी प्रभाव मिले। औषध का गहरे एव तीव्र प्रकार की पीडा मे अच्छा वेदनाहर (analgesic) प्रभाव देखा गया।[10] विदानोलाइडस का कीटाणुनाशक प्रभाव देखा गया। ग्राम पाजीटिव कीटाणुओ पर इसका अधिक प्रभाव है। फफूँद के प्रति भी इसका नाशक प्रभाव है।[13]



श्री आर० एच० सिंह व श्री पी० सी० मालवीय ने इस औषध का मस्तिष्क पर चिकित्सागत अध्ययन किया। नाडी विकार—विशेषतः चिन्तित ३० रोगियों पर औषध का प्रभाव देखा गया। औषध की एक मास चिकित्सा से लक्षणानुसार आराम मिलने लगा, साथ ही चिन्ता, मस्तिष्क की थकावट कम करने का एवं स्मरण शक्ति मे वृद्धि करने के परिणाम देखे गये। इन रोगियो के शरीर भार मे वृद्धि एवं श्वास व रक्त सवहन सस्थान मे भी उपयोगी परिणाम पाये गये।

ऊपर बताये सभी तथ्यो से यह साराश निकलता है कि औषध वृद्धावस्था मे अति उपयोगी है, क्योकि बलकारक एव रसायन प्रभाव के साथ-साथ ही यह वृद्धावस्था मे उत्पन्न होने वाले विभिन्न रोगो मे यथा चिन्ता, आमवात (Rheumatism), शोथ (inflammation) तथा उच्च रक्त दाब व निर्बल हृदय मे भी लाभकारी प्रभाव करती है। अत वृद्धावस्था मे इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। आयुर्वेद ने इसके निम्न योग बताये हैं—जोकि बाजार से प्राप्त किए जा सकते हैं अथवा स्वय बनाये जा सकते है। ये योग है—अश्वगन्धादि चूर्ण, अश्वगन्धा घृत, अश्वगन्धावलेह, अश्वगन्धारिष्ट एव अश्वगन्धा क्वाथ।

References

—Bhav Prakash Nighantu, Page 219, by Pt Vishwanath Diwedi

—Kaidev Nighantu, Page 343

—The Indigenous drugs of India, by col. R N chopra, 1958, 437.

—Phatmacognosy by Trease & Evans Xth Edition, 232

—Pharmacognosy by Claust & Tyler VIth Edition, 239.

—The Medicinal Plants of India, Kirtikar & Basu Page, Vol III, 1874

—The Wealth of India, Vol X, 1976, 581.

—Ind Journal of Med Research, 49, 448-60,

—Planta Medice, II, I45,

—Journal of Research in Indian Medicine, V--2, 25I,

—Journal of Research in Indian Medicine, I3 I I5,

—Indian Journalof Pharmacy, 39, I63,

—Indian J of Pharmacy, 32, 707.

— ❀ —

धन्वन्तरि

जराव्याधि चिकित्साङ्क

बाजीकरण खण्ड

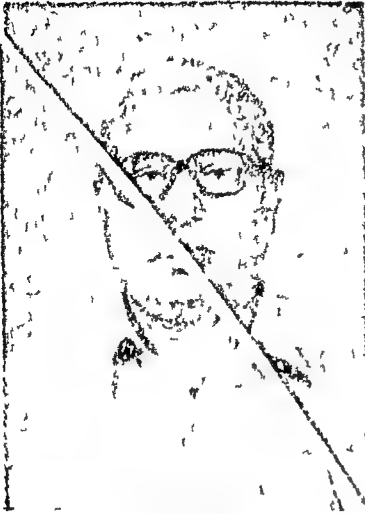
फरवरी+मार्च १९८१

—प्रकाशक—

निर्मल आयुर्वेद संस्थान अलीगढ़

वाजीकरण विवेचन

वैद्य श्री चौधरी रामचन्द्र प्रसाद "चन्द्र" बी ए , ए वी एम.एस , एच् पी ए., साहित्यालकार, साहित्याचार्य



स्वास्थ्य ओजस्कर चिकित्सा मे जितना रसायन का सम्बन्ध है वाजीकरण का भी उससे कम नहीं है। अष्टाग आयुर्वेद के ये दोनो अङ्ग एक दूसरे के परकानुपूरक है। इसीलिए 'जराव्याधि चिकित्सांक' में जहाँ रसायन का विस्तृत विवेचन किया है वहाँ इस अङ्ग की पूर्णत. उपेक्षा सम्भव नहीं कारण कि वार्धक्य में पुनर्यौवन हेतु उपायो में वाजीकरण चिकित्सा की भी आवश्यकता पडती है। इसीलिए वाजीकरण विषय पर दो विद्वान चौधरियों के लेख इस विशेषाक में सुशोभित हैं।

अनेक उपाधियो से अलकृत गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय के श्री गुलाब कुवरबा आयुर्वेद कालेज एव चिकित्सालय के प्रिंसिपल एव चिकित्साधीक्षक वैद्य श्री चौधरी रामचन्द्र जी प्रसाद 'चन्द्र' आयुर्वेद एवं सस्कृत के विद्वान एव अनुभवी वैद्य हैं जो विगत २५ वर्षों से विभिन्न संस्थाओं में विभागीय पदो पर रहकर आयुर्वेद की सेवा करते आ रहे हैं। आप ने वाजीकरण विवेचन विषयक सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला है वहाँ 'अवृषा' अथवा 'अवाजी' बनाने के कारणों पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला है। लेख पाठको के लिए ज्ञानवर्धक है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

"वजति विशिष्टा गति करोति अनेन इति वाज" "वजगतौ" धातोः "हलश्च" ३/३/१२१ इत्यनेन "घञ्"। वाजो-वाजो,बल वेगोवा निश्वनपक्षयो। वेगो पुमानय क्लीबे घृतयहज्ञानवारिषु "इतिमेदिनी" वाजोऽस्यालीति वाजीअश्व। न वाजी अवाजी; अवाजो वाजी क्रियते अनेन इति वाजीकरणम्।

अर्थात् बल और वेग को 'वाज' कहते हैं और वह जिसमे हो उसे वाजी, अश्व, घोडा कहते हैं। जो वाजी न हो अश्व जैसा बल वेगशाली न हो उसे वाजी बनाने की क्रिया का नाम "वाजीकरण" हैं।

निरुक्तकार महर्षि यारक ने "वाजी" शब्द का अर्थ 'वेजनवान्' किया है और "ओविजीभय चलनयो" धातु से उसे निष्पन्न किया है। श्री दुर्गाचार्य ने उसका अर्थ "भगवान् परेभ्यो भयदाता, परेषा हित दृष्टवाभयमुत्पद्यते, चलनवान् महिनित्य चलनशील" इस प्रकार दिया है। परन्तु निरुक्त की वह निरुक्ति युद्ध प्रसङ्ग को लेकर अश्व के गुण वर्णन से सम्बन्ध रखती है। आयुर्वेद के तन्त्र विशेष मे जो उसका अर्थ विवक्षित है वह निम्नलिखित श्लोको से प्रकट होता है—

> वाजीवातिबलोयेन यात्यप्रतिहतः स्त्रियम्।
> येननारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः।
> व्रजेच्चाऽभ्यधिकं येन वाजीकरणमेवतत्॥
>
> —च. चि अ २ पा १ से ४

वाजीकरण का विषय वेद मे भी बहुलता से पाया जाता है परन्तु जिस प्रकार आयुर्वेद की सहिताओ मे उस विषय के लिए "वाजीकरण' शब्द प्रयुक्त हुआ है उस प्रकार वेद की सहिताओ मे नही। वहा इस विषय के लिए वृष्य, वृषा, वृषन् ऐसे शब्दो का बहुत प्रयोग हुआ है अनेक जगह "रतोधा" शब्द का भी वेदो मे प्रयोग पाया जाता है। परन्तु शब्दो का प्रयोग वैदिक और आयुर्वेद सहिताओ मे चाहे जिस किसी रूप मे पाया जाता है मुख्य आशय में किसी प्रकार का भेद नही है।

वाजीकरण का मुख्य आशय

कुछ वातों से मानव "अवाजी" और अवृपा" वन जाता है उनमें से निम्नाकित मुख्य है—

१ प्राक्तन पापकर्म—जीव जो मानव का आकार धारण करता है उसमें स्त्री और पुरुष सम्बन्धी भावो से अतिरिक्त एक और भाव और भी पाया जाता है जिसे तृतीया प्रकृति" वा "नपु सक" कहा जाता है। नपु सक शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण में "न स्त्री न पुमान् इति नपु सकम्" इसका अभिप्राय यह है कि कुछ व्यक्तियो मे कतिपय स्त्रीत्वकारी भाव होते हुए भी मुख्य स्त्रीत्व नही होता। वह मुख्य स्त्रीत्व "स्त्यायेते गर्भरूपेण वृद्धिगच्छत शुक्रशोणिते यत्र सा स्त्री' इस व्युत्पत्ति से ज्ञात हो सकता है। यद्यपि वन्ध्या में भी इस प्रकार का स्त्रीत्व नही होता परन्तु इस मुख्य क्रिया के लिए की जाने वाली अंगभूत क्रिया जिसे 'ससर्ग' 'व्यवाय' 'सगम' आदि शब्दो से भी कहा जाता है, उसकी योग्यता से रहित प्रत्येक स्त्री "स्तन केशवती स्त्रीस्यात्" इस अप्रधान लक्षण से युक्त होने पर भी स्त्री नही कही जा सकती। इसी प्रकार कुछ पुरुषाकार भी ऐसे मानव होते हैं जो प्राक्तन कर्म के फलस्वरूप "पून्यति–पूर्ण करोति प्रजननाय स्त्रियाः गर्भाशय शुक्रेणऽति पुरुष । पुरी आप्यायने धातो वाहुलकात् कुशन् प्रत्यय" इस व्युत्पत्ति से लभ्य अर्थ से सर्वथा शून्य होता है। ऐसे पुरुषाकारधारी मानव को वास्तविक पुरुष न कह करके "तृतीया प्रकृति" मे गिना जायेगा। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि "न स्त्री न पुमान् इति नपुसकम्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमे स्त्रीत्व और पुस्त्व दोनों धर्म न हो वे "नपु सक" कहलाते हैं। ऐसे दोनो प्रकारो के नपु सको को चरक ने नरपण्ढ और नारीपण्ढ नाम से कहा है।

२. दूसरा कारण है इस जन्म के असत्कर्म—देश की सतति (नस्ल) की तथा उसके गुणो एव विशेषताओ की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि जब तक मानव के देह और मन की परिवृद्धि का काल हो तब तक शारीरिक शक्ति के अपव्यय से वचाकर उसे सच्चरित्र बनाया जाय। परन्तु साधारण समाज की बात कौन कहे "ब्रह्मचर्याश्रम" जैसा नाम धारण करने वाली सस्थाओ मे भी ऐसी कुप्रवृत्तियां देखने मे और सुनने मे आती है कि छोटे वालको को उनसे वडी उम्र वाले कुमार्ग मे प्रवृत्त करते है और सवसे भयकर वात तो यह है कि अवोधावस्था के वालक स्वय अपने हाथ मे अपना सर्वनाश कर डालते है। जब उनके वनने का वास्तविक समय आता है उस समय वे चाहे देखने मे हृष्ट-पुष्ट और लाल चिट्टे क्यो न हो एक प्रकार के हड्डी मास और चमडी के पुतले मात्र रह जाते है। उनकी गिनती भी नपु सक मे होती है।

(३) तीसरा कारण विवाहित जीवन व्यतीत करने वाले मानव भी शास्त्र की अवज्ञा "ऋतु कालाभिगामी स्यात्स्वदारानिरतस्तदा। ब्रह्मचर्य मेव भवति" इस रूप मे होने पर भी" ऋतुकालाभिगामी" सयमाभाव से प्राकृतिक नियमो का उल्लघन करते हुये शक्ति का अतिशय दुरुपयोग करते है और नपु सक वन वैठते है। पशु, पक्षी तक भी प्राकृतिक नियमो का पालन करते हैं और दृढता से ऋतुकालाभि गमन के नियमो का अनुसधान रखते हैं। परन्तु मननशील मानव की स्थिति सभी से अजीवो गरीव है। शतपद ब्राह्मण के उपदेष्टा भगवान् याज्ञवल्क्य कहते है कि "नैव देवा न पिशाचोनतिर्यश्चोऽतिक्रामन्ति, मनुष्यास्त्वेवातिक्रामन्ति" अर्थात् प्राकृतिक नियमो को न देव उल्लघन करते हैं, न पिशाच आदि असुर और न पशु, पक्षी आदि तिर्यक योनि के जीव किन्तु मनुष्य ही ऐसे हैं जो उनका उल्लंघन करते है। फलस्वरूप जिन यातनाओ को ये भोगते हैं उसका एक स्वरूप 'नपु सकत्व' है।

४ चतुर्थ कारण—कुछ ऐसे भी उद्धृतसत्व (औंधी खोपडी के) होते है जो सव प्रकार की धार्मिक, सामाजिक और लौकिक मर्यादाओ को भग कर गदी नालियो और मोरियो मे सडने को ही अपने लिये श्रेयस्कर समझते है। ऐसे पारदारिक, व्यभिचारी, वेश्यागामी आदि समाज के कीडे अपने कर्मो के फलस्वरूप पूयमेह (सुजाक), फिरङ्गोपदश (सिफलिस) जैसे रोगो के शिकार बनते हैं। उनमे से बहुत से तो कुण्ठा, उन्मादी वनकर समाज के भारभूत वनते है, जो वच जाते है वे सदा के लिये वेकार होकर नपु सक वने हुए सिर और छाती पीटते रहते है।

५ पचम कारण—कतिपय अवसर ऐसे भी है कि खान-पान दुर्व्यवस्था अथवा अज्ञेय कारणो से तथा प्रमेह आदि रोगो की चिर-स्थिति से ऐन्द्रियिक दुर्वलता से ग्रस्त होकर मनुष्य नपु सक वन जाते है।



६ षष्ठ कारण—छठा कारण वाजीकरण विधियों का असेवन है। वाजीकरण की छठी स्थिति चरक संहिता मे इस रूप मे कही गयी है—

वाजीकरणमन्विच्छेत् पुरुषोनित्यमात्मवान ।
तदायत्तौहि धर्मार्थौ प्रीतिश्च यश एव च ॥
पुत्रस्यायतनह्येतद् गुणाश्चैते सुताश्रया ॥

—च चि अ २ पा १

उपर्युक्त छ कारणो अथवा वाजीकरण की स्थितियो का कुछ गम्भीर विचार करने पर एक शका उपस्थित होती है कि आयुर्वेद स्वस्थातुरपरायण है और उसकी चिकित्सा भी स्वस्थहित और आतुरहित है। इनमे से स्वस्थहित के रसायन और वृष्य इन दो भेदो मे से वृष्य भेद ही वाजीकरण है। परन्तु यह वाजीकरण केवल ऊपर चरक निर्दिष्ट षष्ठ स्थिति मे ही स्वस्थहित कहला सकता है। अवशिष्ट पाँचो स्थितिया तो केवल आतुरहित चिकित्सा मे ही अन्तर्भूत हो सकती हैं। इसी प्रकार चिकित्सा शब्द "किल रोगापनयने" धातु से बना है अत चरकोक्त वाजीकरण की स्थिति मे किसी प्रकार का 'रोगापनयन' लक्षित न होने से वाजीकरण को चिकित्सा की परिधि मे लेना भी सङ्गत प्रतीत नही होता। इसका समाधान यह है कि चिकित्सा जिस प्रकार अतीता वर्तमाना वेदना की स्थितियो मे होती है उसी प्रकार भविष्यन्ती वेदना की स्थिति मे भी होती है। इस विषय को महर्षि चरक ने अपनी चरक संहिता मे—

अथ चार्तस्य भगवंस्तिसृणां काचिकित्सति।
अतीता वेदनां त्रैद्योवर्तमाना भविष्यन्तीम् ॥
भविष्यन्त्या असम्प्राप्तिरतीताया अनागमः।
साम्प्रतिक्या अपिस्थान नास्त्यर्त्ते संशयोह्यतः ॥

ये प्रश्न उठाकर तथा—

चिकित्सति भिषक् सर्वास्त्रिकाला वेदना इति।
यथायुक्त्या वदन्त्येके सायुक्तिरुपधार्यताम ॥
पूर्वरूप विकाराणा दृष्ट्वा प्रादुर्भविष्यताम्।
याक्रिया क्रियतेसाच वेदनां हन्त्यनागताम् ॥
युक्तिमेतां पुरस्कृत्य त्रिकाला वेदनां भिषक्।
हन्तीत्युक्तं चिकित्सातु नैष्ठिकी याविनोपधारी ॥

—च. शा अ १/११,१२,८६,६४

इस प्रकार उत्तर देकर निर्णीत किया है। सारांश यह कि रसायन सेवन जिस प्रकार जरा के आगमन के पूर्व ही किया जाता है जिससे कि आशकित जरागमन पर रोकथाम लगाकर दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सके। उसी प्रकार "वाजीकरण सेवन" से भी शरीर मे होने वाली धातुओ के व्यय की पूर्ति के लिए उसे सदैव सेवन करते रहने का विधान है जिससे पूर्ति रहित केवल व्यय से वह क्षय अथवा रोग की स्थिति मे न पहुच जाय। इस प्रकार एक "भविष्यन्ती" वेदना की चिकित्सा है।

७. वाजीकरण सेवन की पांच परिस्थितियो का विषय केवल षण्ढ या नपुसक परिस्थिति ही "वाजीकरण सेवन" अथवा वाजीकरण नाम के एक आयुर्वेदाग का विषय स्थापित हो जाने से शङ्का होती है कि फिर पूर्वोक्त पांच परिस्थितियो का आयुर्वेद के किस अङ्ग मे अन्तर्भाव है? इसका समाधान यह है कि जिस प्रकार स्त्रीमात्र भावी रोगो के लिए "योनिव्यापत् तन्त्र (गायनाकोलोजी) नाम के एक पृथक ही तन्त्र की व्यवस्था है उसी प्रकार के प्रजननाग सम्बन्धी रोग केवल पुरुष मात्र भावी है और उनके लिये "नपुसक चिकित्सातन्त्र" की व्यवस्था ही होनी उचित है अथवा जैसे अब तक उपदश पूयमेह, ध्वजभग, क्लैव्य चिकित्सा आदि के रूप मे यह विषय काय चिकित्सा आदि के साथ मिश्रित रूप मे है, उसी रूप मे रहने दिया जाकर इस परिस्थिति के अनुसार और परिष्कृत बना दिया जाय। उत्तम तो यह होगा कि आयुर्वेद के इस विलुप्त अग के उद्धार के लक्ष्य से स्वस्थहित और आतुरहित इन विभागो के अनुसार एक पृथक् ही तन्त्र सघठित किया जाय।

वैद्य श्री चौधरी रामचन्द्र प्रसाद 'चन्द्र' बी० ए०,
ए० बी० एम० एस०, एच० पी० ए०,
साहित्यालकार, साहित्याचार्य



वृद्धावस्था में कामवासना

—श्री डा० तेज बहादुर चौधरी आयु० वृ०, नवागढ़ (दुर्ग)



धन्वन्तरि परिवार के चिरपरिचित विद्वान लेखक डा० तेज बहादुर चौधरी की लेखन शक्ति से सभी सदस्य परिचित होंगे। आप धन्वन्तरि के कई विशेषांकों के विशेष सम्पादक तथा धन्वन्तरि के कृपालु लेखक हैं। वाजीकरण विषय आपका प्रिय विषय है और उस पर कितने ही महत्व के लेख आप प्रकाशित करा चुके हैं परन्तु यहाँ एक नवीन रूप में 'वृद्धावस्था में कामवासना' शीर्षक से दिया है जो इस विशेषांक के लिये उपयोगी है। जहाँ वृद्धों में शारीरिक एवं मानसिक बल की पूर्ति की आवश्यकता है वहाँ कामशक्ति को भी छोड़ा नहीं जा सकता। इस उद्देश्य के लिये यह लेख अपने में सांगोपांग एवं उपयोगी है। यद्यपि लेख का कलेवर बहुत बड़ा है तो भी उसकी उपयोगिता को देखते हुए ज्यों का त्यों प्रकाशित कर रहे हैं। श्री चौधरी ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज के सुयोग्य स्नातक हैं। सत्रह वर्ष तक राजकीय चिकित्सालयों में चिकित्साधिकारी रहने के बाद अब नवागढ़ में अपना निजी चिकित्सा कार्य कर जनता जनार्दन की सेवा में लगे हुए हैं।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

बुढ़ापा प्राणियों के शरीर में होने वाली विविध प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप होने वाला ऐसा अपरिवर्तित परिणाम होता है जहाँ यद्यपि जीवन भर का अमूल्य अनुभव होते हुए भी शरीर की शक्तियों का क्रमश क्षय होता रहता है या हो जाता है। इसी को चरक ने योनिव्यापत चिकित्सान्तर्गत एक ही श्लोक में कह दिया है—

बल वीर्येन्द्रियाणामन्च क्रमेणैव परिक्षयात्।

—चरक चि० ३०/१७२

बल, वीर्य, इन्द्रियों का क्रमपूर्वक क्षय—फिर साथ-साथ।

अतिप्रवयसा शुक्रं प्रायश क्षीयते नृणाम्।

अत्यधिक प्रवयस् (वृद्ध) होने पर प्राय शुक्र क्षीण हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ शुक्र तो क्षीण हो जाता है पर पूर्णतया नष्ट नहीं होता है, उधर डाक्टर वाकर ने परीक्षणोपरान्त पाया है कि नव्वे वर्ष के पुरुषों के शुक्र में जीवित शुक्राणु उपस्थित थे। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पुंबीजों (Sperm) की उपस्थिति जब है तो उसी अनुपात से प्रकृति उनमें सम्भोग शक्ति या भोगेच्छा अथवा कामवासना भी पैदा करेगी।

यद्यपि प्रजोत्पादन शक्ति (Fertility) कुछ कम अवश्य हो जाती है परन्तु पाश्चात्य डाक्टरों का कथन है कि उन्होंने ऐसे बहुधा वृद्ध रोगी और व्यक्ति देखे हैं जिनमें शुक्रनिर्माण (शुक्राणु निर्माण) क्रिया अपेक्षाकृत कम जरूर हो जाती है (Hypospermatogenesis) परन्तु सन्तानोत्पत्ति होती रहती है। इस शुक्र निर्माण क्रिया के ह्रास का प्रमुख कारण उन शुक्र निर्माण करने वाली नलिकाओं के अन्दर की झिल्लियों (Basement membranes of the tubules) का मोटा हो जाना होता है, वैसे तो यह



निर्विवाद ही है कि जब तक कोई विशेष रोग हो उस शुक्र निर्माण में बाधा न डाले तब तक शुक्राणु का निर्माण कभी भी सहसा बन्द नहीं होता। पुरुषों के बारे में तो यही बात है। उधर यहाँ तक पाश्चात्य मत प्रगट किया गया है कि आयु वृद्धावस्था में शुक्राणु निर्माण कार्य में या तो बहुत कम या बिल्कुल ही बाधा नहीं डालता।

चूंकि सम्भोग का सम्बन्ध या प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति के लिये ही होता है। उधर सम्भोग के लिये पर्याप्त पौरुष सम्भोग सामर्थ्य शरीर इत्यादि आवश्यक है, अत. सम्भोग और सन्तनोत्पन्न करने की क्षमता में महान अन्तर भी है। इसकी मोटी मिसाल नसबन्दी कराये हुये पुरुष ही दे सकते हैं जहा वे सम्भोग करने में तो समर्थ हैं परन्तु सन्तानोत्पन्न करने में नितान्त असमर्थ। परन्तु यहा यह असमर्थता विशेष विधि (शल्य कर्म) द्वारा बीज वाहिनियों शुक्र नालों को काट देने से उत्पन्न की गई है वैसे वह व्यक्ति सम्भोग और सन्तानोत्पन्न करने में भी पहले समय था। परन्तु वृद्धावस्था में दशा कुछ विपरीत हो जाती है, प्राय सम्भोग शक्ति में भी उत्तरोत्तर कमी आने लगती है और उसी अनुपात से तो नहीं, कुछ और भी कारणों से सन्तानोत्पन्न करने में भी कमी हो जाती है। हमने इसीलिये कामवासना के साथ-साथ प्रजोत्पादक-सन्तानोत्पादन के विषय में थोड़ा बहुत संकेत दे दिया है। ताकि पाठकों का यह भ्रम न रहे कि वृद्धावस्था में जब सम्भोग शक्ति नहीं रह जाती तो सन्तानोत्पन्न करने की भी क्षमता नहीं रह जाती होगी। सो बात नहीं है। हम आगे उन सभी कारणों को देंगे जिनके कारण वृद्धावस्था आते-आते कामवासना या तो दब जाती है या दबा दी जाती है बिल्कुल मर नहीं जाती। यह बात पुरुषों पर लागू है।

वृद्ध स्त्रियां न पुरुषों से भिन्न वासना और कामेच्छाये होती हैं उसका उल्लेख संक्षिप्त रूप में इसी लेख में अन्यत्र देंगे। अभी तो पुरुषों की कामवासना सम्बन्धी चर्चा चल रही है।

वृद्धावस्था की कामवासना पर चर्चा यद्यपि अनुपयुक्त एवं अप्रासंगिक सा लगता है, परन्तु चूंकि यह भी एक महत्वपूर्ण विषय है और इसका विशेष प्रयोजन विशेषकर वृद्धजनों से तो है ही, लेकिन उससे भी अधिक महत्व का उन युवाजनों के लिए भी पथ प्रदर्शक रूप में है, जो प्रौढ़ावस्था के द्वार पर पहुँचेंगे, फिर वृद्ध होंगे और तब यदि वे अपनी इस अमूल्य निधि (काम सम्बन्धी सामर्थ्य) को अज्ञानवश विकृत कर देंगे, तो सिवाय पछताने के कुछ हाथ नहीं लगेगा। अत यह लेख उन युवाओं के लिए भी विशेषकर उपयोगी होगा, जो अभी से अपनी वृद्धावस्था के प्रति सचेत होकर अपनी कामवासना, पौरुष बल, पुष्टि, शुक्र इत्यादि की समुचित रक्षा कर वृद्ध होकर भी सुख एवं आनन्द प्राप्त करने में समर्थ हो सकना चाहते हैं।

कहा तो यह जाता है कि मनुष्य सभी सम्पदा, वस्तुओं का मापक है। चाहे जैसी दूरी तय कर मनुष्य ने उसे भी नाप लिया, परन्तु स्वयं को जब वह नापता है तो समझता है कि मेरा नाप जोख मेरे सम्भोगेन्द्रिय लिंग पर ही केन्द्रित है, अपनी वासना, अपने सम्भोग सामर्थ्य एवं लिंग की लम्बाई इत्यादि पर उसका ध्यान प्राय. केन्द्रित रहता है। चर्चा चूंकि काम सम्बन्धी है अत उसी सम्बन्ध में सब कुछ कहा जा सकता है।

चूंकि वृद्धावस्था में कामवासना सम्भोग इत्यादि की चर्चा जिज्ञासा, आलोचना और भ्रामक सा लगता इसीसे बहुधा वैज्ञानिक और विचारक इस विषय पर मौन रहना ही उचित समझते हैं। वास्तव में वासना ही जीवन का आधार और सभी प्राणियों में उत्पत्ति का मूल कारण या भाव है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों में काम को भी रखा गया है। काम को जीवन से प्रथक नहीं किया जा सकता। सभ्य एवं सभी समाजों में विवाह की रचना काम के द्वारा सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य को रखकर की जाती है। इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा कि जगली से जगली जातियों में स्त्री एवं पुरुष का संयोग और सम्भोग अवश्यमेव है।

परन्तु यह सम्भोग का संयोग स्त्री पुरुष दोनों में अपने-२ शरीर की रचना एवं उनकी कामेन्द्रिय जननेन्द्रिय सम्बन्धी शरीरस्थ ग्रंथियां (Sex glands) के कार्य प्रणाली के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। पुरुषों के अण्डकोष, एवं स्त्रियों में डिम्बग्रंथियां, (Ovaries) का प्रभाव प्रमुख लक्षण उत्पन्न करता है। ये ग्रंथियां केवल सन्तानोत्पन्न या सहवास में सामर्थ्य सुख ही प्रदान नहीं करती वरन स्त्री एवं पुरुष की मनोदशाओं, चेष्टाओं,



वहा मात्र प्रकृति, स्वभाव इत्यादि को भी विशेष प्रभावित करती रहती है।

जो भावना बाल्यकाल में काम के प्रति नही के बराबर थी यद्यपि कुछ विचारक यह मानते हैं कि शैशव काल से ही मनुष्य स्तन पान स्पर्श, प्यार, पुच्कार इत्यादि (काम) वासनाओ का प्राथमिक स्वरूप दिखाई देने लगता है। युवावस्था में यह परन्तु एव उग्र रूप धारण कर पुरुष एव स्त्री को युवावस्था में उन्मत्त बनाए रखती है, दिन रात उसी का बोलबाला रहना है, अर्थात मनुष्य की मनोदशा पर उनकी कुछ विशेष छाप ऐसी पड जाती है कि वृद्धावस्था जब शरीर सम्भोग करने मे असमर्थ या अशक्य हो जाता है तब भी वे अन्य विचार काम वासना, स्त्री के प्रति आकर्षण, बेबसी मे अभिलाषा, जीवन भर के अनुभवों के आधार पर उसे फिर भी सम्भोग, काम सम्बन्धी चर्चाओ से परोक्ष रूप मे लगाव सा रहता ही है। वे बातें भूली नही जाती।

इनमे भी जो सदैव रोगी रहे हैं या किसी विशेष रोग जैसे मधुमेह, हृद्रोग, उदर, फेफडे या यकृत इत्यादि के रोगो से ग्रसित रहते रहे हैं उनकी वासनाओ और जो सदैव स्वस्थ और चिंता रहित रहे हो उनकी वासनाओं की दशाओ मे काफी अन्तर होता है।

इस कामेच्छा या कामवासना का अच्छी दशा मे बने रहने का सौभाग्य उन्ही लोगो को प्राप्त होता है जो जीवन मे अचिन्त्य, चिन्ता रहित, निरोग और सादे जीवन से रहे हो, वे लोग बुढापे मे भी काफी हद तक सभोग मे समर्थ और येन केन प्रकारेण इधर उधर भी अनैतिक सम्बन्ध बनाए रखना चाहते हैं, कभी-कभी यह भी देखा गया है कि जिन ऐसे व्यक्तियो को, चाहे वे पुरुष हो चाहे स्त्री, अगर सम्भोग के लिए स्त्री या पुरुष उपलब्ध नही होता है तो वे अपनी वासना की तृप्ति के लिए अन्य उपायो का सहारा लेते हैं यथा गुदा मैथुन, या हस्तमैथुन और स्त्रिया उगली या मोम इत्यादि की बनी लिंगाकार किसी वस्तु से अपनी वासनाओ को शात करने का प्रयास करती है। कामवासना के सताने पर वे उपलब्ध किसी भी विधि का सहारा ले लेते हैं।

कामवासना समृद्ध लोगो मे तो थोडी बहुत बनी रहती है परन्तु श्रमिको, परिश्रम करने वालो मे भी जवानी मे तो पर्याप्त वासना जाग्रत रहती है परन्तु अपोषण, अभाव, गरीबी, चिन्ताओ, समस्याओं, घरेलू व्यवहार, दुःख एव मनोदशा की अस्थिरता के कारण लुप्त प्राय या दबी दबी सी मात्रा मे रहती है। इस प्रकार वृद्धावस्था मे वासना के ह्रास का कारण, शुक्र क्षय के कारणों के साथ जुडा रहता है। चरक के शब्दो मे शुक्र क्षय के कारण ये हैं—

> जरया चिन्तया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्षणात्
> क्षयं गच्छत्यनशनात् स्त्रीणाञ्चातिनिषेवणात् ॥
> क्षयाद्भयादविश्रम्भाच्छोकात् स्त्रीदोषदर्शनात्
> नारीणाम रसज्ञत्वाभिचारादसेवनात्
> तृप्तस्यापि स्त्रियो गन्तु व शक्ति रूपे जायते।
> देहसत्वबला पेक्षी हर्ष शक्ति तश्च हर्ष जा ॥
> — चरक चि० २-४२-४४

इतना स्पष्ट कथन है। प्रथम कारण माना है बुढापे को। यदि बुढापे मे हर्ष इत्यादि है तब तो ठीक है वरना आगे के श्लोको मे दिये गए कारण युवा एव वृद्धो दोनो की कामवासना पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले निश्चय रूप से होते ही है यथा —

चिंता, रोग, परिश्रमजन्य दुर्बलता, अनशन (भूखा रहने) अधिक स्त्री सम्भोग, धातु, रसरक्तादि के क्षीण होने, अविश्वास, शोक से, स्त्री मे दोष दीखने से, अविचार या भय, अभिचार से, बहुत दिनो से स्त्री गमन न करने से, मैथुन करके तृप्त हो जाने पर, सम्भोग के लिए शक्ति उत्पन्न नही होती क्योकि शरीर और मन को कामवासना के लिये हर्षित होना या कामेच्छा के लिए तैयार होने के लिए हर्ष की परमावश्यकता होती है। हर्ष से ही सम्भोग शक्ति उत्पन्न होती है। अत चरक के अनुसार बुढापे मे जाकर उपरोक्त एव अनेक अन्य कारणो से मन मे हर्ष नही रहता, जीवनयापन भर के लिए चिंता रहती है, फिर वासना कैसे जाग्रत हो?

वृद्धावस्था मे काम सम्बन्धी अनेक समस्याये उत्पन्न हो जाती है। डा० किन्सले एव सुर्रे का कथन है कि अमरीका मे साठ वर्ष मे कुछ ज्यादा वर्ष के व्यक्तियो मे से ६० प्र. श. सम्भोग मे समर्थ होते हैं। उनका कहना है कि जो लोग युवावस्था मे भी सम्भोग कार्य मे अधिक सलग्न और



समर्थ रहे हैं वे ही प्राय वृद्धावस्था मे भी न्यूनाधिक सतोष जनक रूप से सलग्न देखे गए हैं।

अब शरीर क्रिया सम्बन्धी परिवर्तनो मे विशेषकर स्त्रियो मे Senile Vaginitis मे (वृद्धावस्था मे ऐसा योनि शोथ, जिसमे योनि के अदर व्रण युक्त चकत्ते पड जाते हैं और फिर वे चू कि समीप-समीप होते हैं तो परस्पर इधर उधर के भाग परस्पर जुड जाते हैं और योनि मार्ग अवरुद्ध होकर सम्भोग मे अडचन पैदा करता है) योनि का भाग सकुचित हो जाने से तथा पुरुषो मे प्रायः पौरुष ग्र थि(Prostate Gland) के कुछ विकार सम्भोग से विरत होने को वाध्य करते हैं। वैसे बूढ़े भी जवानो की तरह सम्भोग करना चाहते हुए भी चिंताओं, मानसिक अवसाद (Depression) के कारण अपने को काफी से ज्यादा रति कर्म के अयोग्य मानने लग जाते हैं।

चू कि वृद्धावस्था मे हृद्रोग, श्वास, ब्लडप्रेशर सरीखे कुछ ऐसी व्याधियां स्थाई रूप से बनी रहती हैं अत. उनको यह भय लगा रहता है कि सम्भोग मे थोडा बहुत परिश्रम करने से हृदय एवं रक्त सचार प्रणाली Circulatory System पर विपरीत प्रभाव न पड़ जाय। और इस प्रकार का भय की शका उत्तरोत्तर बढती ही रहती है और वे सम्भोग से यथासम्भव विरत ही रहते हैं। जिस प्रकार युवावस्था मे अनैतिक सम्बन्धो का एक सिलसिला चलता हुआ भिन्न-भिन्न स्त्रियो से सम्भोग सम्भव रहता है, उसके विपरीत वृद्धावस्था मे एक ही स्त्री के साथ मजबूरी मे बहुत दिनो तक रहते रहने से पारस्परिक आकर्षण का अभाव सा होकर सम्भोग मे भी आन्तरिक अनिच्छा सी स्थाई रूप से बनी रहती है और सम्भोग नही होता। इसके विपरीत यह भी आश्चर्य की बात है कि बहुत सी स्त्रियां और पुरुष जिनकी आयु सत्तर या अस्सी वर्ष की हो गई है वे भी इश्कबाजी, प्रेम एव कामवासना युक्त होकर रतिकर्म को सफलतापूर्वक निभा लेते हैं। वस लोगो मे फैली हुई आम धारणा कुछ इस प्रकार की है कि वृद्ध लोगो मे कामवासना का अभाव रहता है यद्यपि यह बात पूर्णरूपेण सत्य नही है, उनमे वासना और कामेच्छा होती है। चाहे अधिक हो चाहे दबी दबाई दशा मे हो, पर होती अवश्य है। दूसरी यह धारणा कि चू कि वृद्ध लोग शरीर से काफी दुर्बल होते हैं सम्भव है कि रतिकर्म उनको हानि पहुचाये, यह भी लोग मानते हैं कि बूढे व्यक्ति अगर चाहें तो भी वे सम्भोग या काम सम्बन्धी प्रेम नही कर सकते। कुछो का यह भी विश्वास है कि वे शरीर से इतने सबल, और रूप रंग से इतने आकर्षक नही रहे जिससे कोई स्त्री या पुरुष उनकी ओर कामवासना युक्त होकर आकर्षित हो सके। लोगो का यह भी ख्याल है कि चू कि यह सम्भोग, मैथुन, काम सम्बन्धी क्रियाकलाप इस बुढापे की उम्र मे हास्यप्रद एव उनकी मर्यादा के विपरीत है तथा चू कि उनके नाती पोते हो गये हैं, वे दादा नाना बन चुके हैं अब उन्हे इन काम क्रीडाओ के धन्धे से अलग ही रहना चाहिये।

यद्यपि उपरोक्त बातो मे सभी बातें कुछ अंश तक उचित लगे, पर वास्तविकता कुछ और ही होती है। यद्यपि आकड़ो से पाया गया है कि प्राय. पचपन वर्ष की आयु के उपरान्त सम्भोग सम्बन्धी अयोग्यता आने लगती है, परन्तु पचपन वर्ष या किसी भी आयु और नपुसकता या अयोग्यता का कोई विशेष अनुपात नहीं है, आयु से कामवासना का कुछ भी कोई भी सम्बन्ध विशेष नही होता। आधुनिक काम विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान Masters and Johnson का कथन है कि वृद्धावस्था की एक सुविधा या दशा यह भी है बडी आयु मे भी लिंग दृढ, उत्थान, उत्तेजना भी जाती है और शुक्र स्खलित होने से पूर्व परस्पर क्रीडाचार इत्यादि किया जा सकता है। कभी-कभी। मतलब यह कि वासना की नितान्त ही लोप नही हो जाती है। वह जरूर है कि लिंगोत्थान की सामर्थ्य अधिक आयु तक बना रहता है, तथा कामवासनान्तर्गत लिंगोत्थान मे युवाकाल की अपेक्षा जरा देर मे होता है और कुछ जल्दी समाप्त हो जाता है। इसके अलावा एक हितकर बात उनके लिये यह भी होती है कि जो काम सम्बन्धी अनुभव और सम्भोग पूर्व प्रेमालाप इत्यादि की विशेष विधियों का अनुभव स्त्री पुरुष दोनो को होता है उसी के आधार पर वे आपस मे एक दूसरे को सन्तुष्ट करने मे सफल और समर्थ हो जाते हैं।

बुढापे मे कामावासना सम्बन्धी चर्चा, या उद्देश्य बूढो के लिये प्रमुख समस्या हो जाती है और कामवासना या सामर्थ्य पौरुष, या शुक्र के कम हो जाने का भय अकारण ही उनकी मनोदशा को रूखा बना देती है कि वे वास्तव



मे अपने को अयोग्य न होते हुये अपने आपको अयोग्य असमर्थ समझने लगते हैं। यह भय बराबर बढता ही जाता है। फिर यह बात भी है कि वृद्ध पुरुषो मे या स्त्रियो मे विशेषकर कभी-कभी कामवासना जाग्रत होकर सम्भोग की प्रबल इच्छा होने लगती है परन्तु विशेषकर स्त्रिया इस अवसर पर भी सम्भोग करने से झिझकती हैं क्योंकि वे समझती हैं कि इस उम्र मे ऐसा कार्य मर्यादा विपरीत और असगत एव अनुचित है। बहुत से वृद्धजन यद्यपि काम सम्बन्धी बातो चर्चाओ एव चर्याओ मे सलग्न रहना चाहते हैं और उनकी इच्छा भी करती हैं, परन्तु उनके लडके बच्चो को यह अच्छा नही लगता, और वे ऐसा व्यवहार करने लगते है जिससे उन बूढे आदमियो को दोषी ठहराया जाने लगता है। इसका परिणाम यही होता है कि सभी वर्गों मे हस्तमैथुन को यद्यपि छोटा मोटा पाप या दुष्कर्म माना जाता है परन्तु वे ही बूढे अत्यधिक कामातुर हो उठने पर कभी - कभी हस्तमैथुन का सहारा लेकर अपनी उत्तेजना शात करने का प्रयास कर लेते है। डा० ड्यूक Duke के अध्ययन के अनुसार ६० से ६५ वर्ष की आयु के ७४ पुरुषो मे से १५% पुरुष ऐसे निकले जिन्होंने अपनी रतिशक्ति, कामवासना का इतनी आयु तक उचित दशा और मात्रा मे सन्तोषजनक रूप से बनाये रखने मे सफलता प्राप्त कर रखी थी। जब वासना को शात करने का कोई उपाय उपलब्ध नही होता तब हस्तमैथुन से ही वे लोग अपनी उत्तेजना शात करते हैं यद्यपि आयु के उत्तरोत्तर बढ़ने के साथ साथ शुक्र की मात्रा मे भी न्यूनाधिक कमी आ जाती है।

चूकि विषय वृद्धावस्था मे कामवासना का है हम दोनो (स्त्री एव पुरुष) की कामवासना की व्याख्या करते चलेंगे। एक सिद्धात पाठक सदैव याद रखे कि पुरुष हमेशा मैथुन के लिए तुरन्त तैयार हो जाता है बशर्ते कि कोई रोग या भय इत्यादि बाधा न हो, उधर स्त्री की वासना तुरन्त नही उभरती। उसे कामातुर होने मे विलब होता है, आलिंग, प्रेमालाप, चुम्बन इत्यादि रतिपूर्ण काम क्रीडयें उसकी कामवासना को जाग्रत कर देती है, फिर वह भी पुरुष की तरह अत्यन्त कामातुर होकर सम्भोग में पुरुष का साथ निभा देती है।

तो युवती होते ही स्त्रियों की डिम्बग्रन्थिया अपना - अपना कार्य करने लगती है और निवृत्ति Menopaus तक यह सिलसिला चलता रहता है, लगभग ४५ - ५० वर्ष की आयु मे जाकर रजो निवृत्ति हो जाती है, फिर उनमे बुढापे के लक्षण प्रगट होने लगते है और रजोनिवृति के अवसर के उपरान्त, अत सार्वो Endocrine Hormones के असन्तुलन, न्यूनाधिक होने से वासना पर प्रभाव पडता ही है। साथ साथ उनके शरीर की बनावट मे भी ऐसा अन्तर आने लगता है जिसके कारण उनका आकर्षण दिन प्रतिदिन उत्तरोत्तर घटता चला जाता है, उधर उनकी मानसिक धारणा भी बदलती रहती हे, और देखा गया है कि प्राय पुरुष ६९ वर्ष एव स्त्रियाँ ६० वर्ष के उपरान्त सम्भोग से विरत हो जाते है, या फिर विरत होने लगते है।

इसके विपरीत पुरुषो मे स्त्रियो की तरह की रजो-निवृत्ति जैसी स्थिति, मतलब वासना सामर्थ्य इच्छा शक्ति पौरुष के ह्रास या कमी आने की कोई विशेष बधी हुई आयु निश्चित नही होती। बहुत अधिक लम्बी आयु तक भी वे सम्भोग के इच्छुक, वासना से युक्त, काम चर्चाओ के प्रति रुचि लेते रहते है।

जब बूढे पुरुषो से अथवा बूढी स्त्रियो से उनकी कामवासना सम्बन्धी स्थिति एव दशा के बारे मे पूछना चाहा गया तो प्रथम तो पूछने का साहस नही होता, और अगर साहस करके पूछा भी गया तो उनकी तरफ से बताने मे असमर्थता, लज्जा, और असमर्थता प्रगट की जाती है। पुरुषो से पुरुष भले ही कुछ पूछ लें, परन्तु अधेड़ वृद्धा स्त्रियो से पुरुष पूछने का साहस नही करते। हा स्त्रियां भले ही कुछ पूछ लें।

फिर हमारे भारत मे बडे अजीब और बडे कठोर बधन एव रीति रिवाज हैं, हिन्दुओ एव मुसलमानों दोनो मे। अत बचपन से बुढापे तक या कहिये मरते समय तक इन रीतिरिवाज बंधनो से बंध कर ही एक भारतीय के जीवन का ढग ढलता है, उसे उसी सामाजिक धार्मिक रीति रिवाज के ढर्रे पर मजबूरी से चलना पड़ता है। अत जब ये वृद्ध या वृद्धाये युवा या युवती रही होगी उस समय के सामाजिक नियम बधन और धार्मिक पद्धतियां अब बुढापे के समय से बहुत भिन्न रही होगी, और उन्हीं रीति रिवाजो का प्रभाव उनके स्वभाव के निर्माण पर



ज्यादा पडा होगा अत उस समय के वातावरण को देखते हुए ही भारतीय वृद्धो के काम सम्बन्धी या मानसिक परिवर्तनो को आका जाना चाहिए।

हिन्दू धर्म मे प्राय माता पिता ही विवाह तय कर देते हैं और कभी - कभी अल्पायु मे भी विवाह हो जाते थे, फिर हिन्दू समाज मे तलाक प्रथा न होने से धार्मिक बधनो मे बधे रहते हुए उसी पति पत्नी के साथ जोडे को साथ –साथ रहने पर मजबूर होना पडता है। प्राय यह भी होता है कि पत्नी की आयु पति की आयु से न्यून ही रहती है।

बुढापा आने के साथ साथ इधर उधर के अनैतिक सम्बन्ध भी टूटने शुरू हो जाते हैं, पति पत्नी को एक दूसरे के इन सम्बन्धो का ज्ञान रहता है, पर कुछ ऐसी विवशता होती है कि सभी कुछ भूलकर साथ निभाना होता है, और तब तक एक विचित्र मनोदशा एव काम वासना जिसमे सार कुछ नही होता, निरर्थक वासना के लिए जीना ही होता है, इतना होने पर भी अवसर मौका लगने पर कोई कोई नया अनैतिक सम्बन्ध या तो स्थापित करने की कोशिश करते है, या फिर ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने मे सफल भी हो जाते हैं। प्राय ऐसे सफल प्रयास करने वाले धनी वर्ग के लोग होते है, या फिर दादा टाईप के, अथवा किसी की मजबूरी से फायदा उठाने वाले, या फिर जब दूसरा साथी भी अनैतिकता मे सिद्ध हस्त होता है और शिकार की तलाश मे घूमता मिल जाता है। धन के लोभ मे प्राय लडकिया, जवान औरते, लडके इन धनवानो के चक्कर मे फस जाते है, ये धनवान यद्यपि कुछ ज्यादा कर धर नही पाते फिर भी अपने पिछले काम सम्बन्धी अनुभव के आधार पर बहुत अशो मे अपनी पूर्ण सन्तुष्टि कर ही लेते है। एक ७०-८० वर्ष के वृद्ध को मैं जानता हू, जिसके यहा पैसे की कमी नही रही, और उनके यहा बारहो महीने दर्जनो वेश्यायें पडी रहती हैं, वे कभी-कभी उन्हे अपने बाहुपाश मे ले लेते थे, कभी गाना सुनते थे, कभी चुम्बन, कभी कुछ। अपनी वासना की तृप्ति उन्हे अपने पैसे के बल पर ही करनी होती थी, वैसे ये सम्भोग के बिल्कुल अयोग्य थे। छोटी-छोटी लड़कियो के साथ अश्लील क्रियाये, योनि गुप्तागो, स्तन, गालो, जघाओ, नितम्बो पर हाथ फेरने पर वासना उठती थी फिर भी सम्भोग करना असम्भव था। इसका अर्थ यही हुआ कि पुरुषत्व के उपरान्त भी जो वासना रह जाता है वही पर्याप्त होता है चलने फिरने के लिए, मार्ग देखने के लिए। इसी प्रकार यद्यपि किसी कारणवश जैसे पौरुष ग्रन्थि शोथ, मधुमेह, हृद्रोग, हार्मोन के कारण सम्भोग मे असमर्थ परन्तु अपनी तृप्ति के लिए सम्भोग के अतिरिक्त और जो भी कुछ कर सकते हैं उसे करने से नही चूकते। यह पुरुषो का हाल है।

चू कि भारतीय समाज ने जितनी स्वतन्त्रता पुरुषो को दी है उतनी स्त्रियो को नही दी, एक स्त्री से यही आशा की जाती है, कि उसका अपने पति के प्रति निष्ठा-पूर्वक पतिव्रत धर्म निभाने में ही कल्याण है।

जब स्त्रियो से उनके सहवास के बारे मे पूछा गया तो लज्जा के कारण कुछ बताने से इनकार किया गया। फिर भी जितनो से सम्पर्क स्थापित किया गया उससे यही बात मिली कि पुरुषो की अपेक्षा जिन स्त्रियो ने सम्भोग बन्द कर दिया या कम कर दिया, ऐसी नारियो की सख्या कम होते हुए भी यह ज्ञात हुआ कि उन्होने रजोनिवृत्ति के उपरान्त या उससे भी कम आयु मे सम्भोग मे कमी कर दी थी। विवाहोपरान्त तो दाम्पत्य जीवन मे सुअवसर एव स्वतन्त्रता मिलने पर तो सहवास इच्छानुसार होता ही रहता है, परन्तु सभी ने बताया कि विवाहोपरान्त सभो-गादि की क्रिया कुछ वर्षो तक अत्यधिक चरम सीमा पर रही, फिर शनै शनै इसमे ह्रास होता गया और लगभग ३० प्रतिशत वे लोग जो अत्यधिक सभोग मे लिप्त थे बाद मे भी थोडा बहुत रतिकर्म मे लगे रहे।

पूछे गए व्यक्तियो मे से लगभग ५६ प्रतिशत ने बताया कि उन्होने सभोग कर्म को बहुत कम किया। इतना कम कर दिया कि पन्द्रह दिन मे मुश्किल से एक बार संभोग करते थे। ५०-६० वर्ष की आयु मे १५ प्रतिशत ने सभोग कम कर दिया, परन्तु ५०-६० वर्ष की इसी आयु मे १५% ने सम्भोग को बिल्कुल ही बन्द कर दिया था—७०-७५ वर्ष की आयु मे तो थोडे ही थे जिन्होने सम्भोग जारी रखा। वरना अनेको कारणो से उन्हें सम्भोग से विरत रहना पडता था।

चरक के अनुसार—बाल्य काल को सोलह वर्ष पर्यन्त माना है, युवावस्था को १६ वर्ष से ३० वर्ष तक फिर मध्यमावस्था ३० से ६० वर्ष तक और ६० वर्ष से १०० वर्ष की अवस्था को वृद्धावस्था माना है। इस वृद्धावस्था के बारे मे उनका कथन है—

अत पर परिहीयमाणधात्विन्द्रिय बल पौरुष पराक्रम ग्रहण धारणस्मरण वचन विज्ञानं भ्रश्यमान धातु गुण वात प्रायं क्रमेण प्रजीर्णमुच्यते आवर्ष शतम्।

चरक विमान ८/१४१

इसके उपरान्त (६० वर्ष के उपरान्त) मनुष्य की धातुयें, इन्द्रिय, बल, पुरुषार्थ, पराक्रम, ग्रहण शक्ति, स्मरण शक्ति, वचन शक्ति और विज्ञान शक्ति घटने लग जाती है सम्पूर्ण धातुयें अपने गुणो से भ्रश्यमान हो जाती है, इस अवस्था को वृद्धावस्था कहते हैं। इसमे वायु की प्रधानता रहती है साठ साल से सौ वर्ष तक वृद्धावस्था मानी जाती है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रकार की शक्तियो का ह्रास हो जाता है, स्वयमेव क्षीण होने लगते हैं। उसी अनुपात मे वासना एव सम्भोग कर्म इत्यादि मे भी न्यूनता आ जाती है।

इतना जो कुछ हमने लिखा है या दर्शाया है वह केवल शारीरिक वासना के क्रियात्मक भावो के बारे मे ही है, परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी सभोग एव काम सम्बन्धी क्रियाओ से यद्यपि शरीर कुछ अशो मे विरक्त हो जाता है परन्तु मन और ध्यान काम सम्बन्धी विकारो को सम्पूर्ण रूप से त्याग नही सकता। वृद्धावस्था में युवतियो को देख-देख कर उनकी चपलता, चचलता, अदाओं और मनमोहक वार्ता, व्यगो के प्रति वृद्ध पुरुष जागरूक रहते है और उसके सम्पूर्ण हाव-भाव को समझते हैं, केवल उस प्रसङ्ग मे वे सहवास से ही वचित रह जाते हैं। वरना वे सभी कुछ ऐसा करने मे भी समर्थ हो सकते हैं जो युवाजन नही कर सकते, क्योकि उनके पास काम क्रीडाओ के विषय मे विस्तृत अनुभव होता है। फिर एक बात और भी है कि जब मनुष्य ठाली यानी बेकार रहता है, जैसे कि बुढापे मे प्राय पुरुष एव स्त्रियाँ रहती हैं तब उन्हे कुछ काम तो होता नही, वे कामवासना पर ही और अपने आस-पास के घटित होने वाले काम चर्चाओ के प्रति अधिक जागरूक एव उस ओर परोक्ष रूप मे आकर्षित रहते है, यद्यपि वे कर कुछ नही पाते।

एक व्यक्ति जो कि सम्भोग कर्म से यद्यपि विरम मालूम होता है, परन्तु मानसिक रूप मे काम सम्बन्धी विचारो मे लिप्त रहता है। उसको गीता मे 'मिथ्याचारी' सज्ञा दी गई है—

कर्मेन्द्रियाणि संयमय अस्ति मनसास्मरन्।
इन्द्रियार्थाण्य मूढात्मा मिथ्याचारः सउच्यते॥

—गीता ३–६

अर्थात् जो मूढ पुरुष या मूढ बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियो को हठ से रोककर इन्द्रियो के भोगो का मन से चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि वृद्धावस्था मे यद्यपि कर्मेन्द्रिया शिथिल और असमर्थ भी हो जाती हैं फिर भी मन उसी ओर लगा रहता रहता है, फिर भी समाज के भय, अपनी अवस्था का ध्यान रखते हुए लोक लाज के कारण वासना के कर्मों से क्यो विरक्त या अनासक्त होने का स्वाग रचा जाता है। इसके अनेको कारण होते हैं—कुछ प्रमुख कारणो को यहा देते है। यथा—

आर्थिक समस्या के कारण मन सम्भोग की ओर भटकने के बजाय पेट पालन और गृहस्थी के पालन पोषण का जुगाड करने की ओर ज्यादा लगा रहता है। फिर अपने साथी से अपनी प्रकृति मेल नही खाती, अपने पसन्द का सहगामी या सहगामिनी नही मिलने से भी सम्भोग के प्रति एक प्रकार से उदासीनता हो जाती है, सम्भोग तभी सार्थक और सफल होता है जब अपने मन और इच्छा के अनुरूप साथी (स्त्री या पुरुष) हो। कभी-कभी पुरुष या स्त्री के स्वर्गवास के उपरान्त भी सम्भोग का अवसर प्राप्त नही होता, मजबूरी मे सहवास बिना रह जाता है। कभी कभी ज्यादा बुढापे की उम्र नही भी आने पर किसी विशेष रोग के कारण (जैसे हृद्रोग, श्वास, क्षय, मधुमेह इत्यादि) भी सहवास सम्भव नही होता अथवा सम्भोग की इच्छा रोग के कारण या सहवास परिश्रम से रोग के बढ़ने के भय से भी सम्भोग नही हो पाता। या सम्भोग



करने से भय लगता है। कभी-कभी रक्तचापाधिक्य के रोगियों को उनके चिकित्सक ऐसी सलाह देते हैं कि देखिये अगर आपने सम्भोग में ज्यादा परिश्रम किया तो आपको हार्ट अटैक होने की सम्भावना हो सकती है अत सम्भोग: वर्जित हो जाता है। ऐसी दशा में भी वृद्ध लोग डर के मारे सम्भोग नहीं करते।

अब नम्बर आता है मानसिक प्रभाव का। कुछ लोगों को तो अपने ऊपर विश्वास ही नहीं रहता कि वे सम्भोग क्रिया में सफल भी उतरेंगे या नहीं। अत अवसर और साथी मिलने पर भी असफलता के भय से वे प्राय अपने को सम्भोग से विरत (अलग) रहने में ही अपनी कुशलता समझते हैं। ऐसे व्यक्ति प्राय १०% होते होंगे।

कुछ व्यक्तियों में सम्भोगोपरान्त किसी प्रकार की पीडा हो जाती थी (६) चाहे यह पीडा वृक्कशूल या पित्ताशय शूल Gall Bladder Wlic के रूप में होता हो, कुछ लोगों में रति कर्म में परिश्रम करने के उपरान्त कटि पीडा होने लगती थी। (४) जोडों में दर्द (१), कुछ में जडता या शून्यता का अनुभव होने लगता था (२) और लगभग ६ स्त्रियों ने बताया कि जब उनका गर्भाशय शल्य क्रिया द्वारा निकाल दिया गया तो उनको सम्भोग के प्रति कुछ भी रुचि नहीं रही।

अब सम्भोग तो होना ही है, उसका परिणाम भी तो कुछ निकलना चाहिए। यदि स्त्री पुरुष दोनों प्राणी स्वस्थ हैं तो सम्भव है कि प्रकृति भी कुछ अपना असर दिखाये। देखा गया है कि ६१ वर्ष की आयु में पुरुष को सन्तान प्राप्ति हुई और इसी प्रकार ५३ वर्ष की आयु में स्त्री के सन्तान पैदा हुई।

जो पुरुष जीवन भर बवारे बिना व्याहे रहे थे उनमें ८० वर्ष की आयु में भी हस्तमैथुन की क्रिया वासना शान्त करने के लिए देखी गई। ६७ एव ६६ वर्ष के दो व्यक्तियों ने स्वीकारा कि हस्तमैथुन से उनका मानसिक तनाव कम हो जाता है और उनको कुछ न कुछ राहत भी मिलती है।

इधर स्त्रियों में रजोनिवृत्ति(menopause)के उपरान्त एक प्रकार से सन्तानोत्पत्ति की शंका से मन चिन्तारहित हो जाता है, और सम्भोग के परिणामस्वरूप गर्भ धारण का भय नहीं रहता। इसी धारणा से कुछ स्त्रियां रजोनिवृत्ति के उपरान्त अधिक स्वच्छन्द और इच्छाचारी हो जाती हैं। और उनके लिए स्वच्छन्द विचरण का मार्ग खुल जाता है, वे कुछ काल तक पुन कामना का शिकार बन जाती हैं। यदि वे देखने में कुछ सुन्दर और आकर्षक हुई तो लगभग ५५-६० वर्ष तक इनकी भी कामवासना पूर्णरूपेण किसी न किसी प्रकार शान्त होती है और वे रोकटोक इस व्यापार में संलग्न रहती हैं।

ऐसी स्त्रियों के लिए एक और सुविधा स्वय मिल जाती है, वह यह कि वे अकेली कहीं भी आयें जायें, उनको यह मालूम रहता है मुझे कोई क्या दोष दे सकेगा? अगर किसी ने कुछ कह भी दिया तो उनका स्पष्ट उत्तर होता है, "आप मुझ बुढ़िया के ऊपर ऐसा दोष लगाते हैं, जवान होती तो बात दूसरी थी" इसका क्या उत्तर दिया जा सकता है।

पाश्चात्य देशों में मदनव्यापार सम्भोग इत्यादि की एव ऐसे ही अन्य बातों की छूट भी है, वहां मैथुन अधिक दिनों तक और अधिक मात्रा में तथा बे रोकटोक चलता है। मेरी एक पेन फ्रेन्ड Pen Friend अमरीका में थी, उसकी आयु लगभग ५०—५५ की होगी। उसने एक बार मुझे लिखा कि आप अमरीका आ जाइये, मैं आपसे शादी करके अपने आप को आपको सौंप दूंगी। ५०—५५ वर्ष की आयु में भी शादी करने की उमग थी उसे। कहने का तात्पर्य यह कि वे लोग कुछ कहने कुछ करने में स्वतन्त्र हैं जितने कि भारतवासी परतन्त्र। यहां एक ही स्त्री से बंधे रहना होता है। यदि स्त्री का स्वर्गवास हो गया तो फिर उसे न तो अपने लिए साथी ही जल्दी मिलेगा और न जल्दी या निर्भीक रूप से किसी स्त्री के सम्मुख काम सम्बन्धी प्रस्ताव व चर्चा ही कर सकने का साहस करेगा। फिर भी अनेकों स्त्रियों से प्रश्न करने पर यही बात निकली कि चूं कि इन वृद्धाओं को जीवन भर का यह अनुभव स्पष्ट रूप से होता है कि पुरुष जब मदान्ध हो उठता है तो वह स्त्री के कहने से सभी कुछ कर गुजरने को तैयार रहता है, वृद्धावस्था के पुरुषों को यदि ऐसी स्त्री मिल जाती है तो वे उसके लिए अपनी वासना शान्त करने के निमित्त, अनेकों प्रकार से अपनी सामर्थ्यानुसार सभी कुछ करने के लिए तत्पर रहते हैं। इसमें भी यदि पुरुष कुछ पौरुषयुक्त सम्भोग समर्थ हुआ तो उस प्रौढ़ा की

वासना को शान्त करने के साथ-साथ उसको ज्यादा सेवाये नही करनी पडती ।

चू कि स्त्रिया देर मे स्खलित होती है, वृद्धावस्था मे और भी देर लग सकती है, परन्तु जो चतुर और अनुभवी स्त्री पुरुष हैं वे अपने अनुभव के आधार पर परस्पर एक दूसरे को काममोहित कामोद्दीप्त करके पूरी तरह अगर नही, तो कुछ अशो मे तृप्त कर ही देते है । यदि पुरुष बलवान हुआ तो—

बलेन् नारी परितोषयति
न हीन वीर्यस्य कदापि सौख्यम् ।

और अगर हीनवीर्य हुआ तो स्वय की थोडी बहुत तृप्ति उसे हो गयी बाकी की नही । ऐसा यौन व्यापार प्राय पिछडी जातियो एव अशिक्षित वर्ग के लोगो मे काफी चलता है । परन्तु जब सभ्य समाज अथवा शिक्षित समाज मे कामवासना का प्रश्न उठता है तब यही देखा गया है कि स्त्रिया अधिकतर अपने को जहा तक सम्भव होता है इस कर्म से विरत रखती हैं और पुरुषो को ऐसे हथकण्डे हथियाने पडते है कि दूसरो को जहां तक सम्भव हो पता न लगे । कामवासना ऐसा नशा होता है कि कितना भी वृद्ध पुरुष होगा और यद्यपि वह सम्भोग करने मे बिल्कुल असमर्थ है फिर भी उसके मन, दिलोदिमाग से काम सम्बन्धी विचार, स्त्रियो के प्रति आकर्षण, लोलुपता और इच्छाये अवश्य लहरा लेती हैं, पिछले किये हुए युवावस्था के कामकर्म भुलाये नही जा सकते, उन्ही स्मृतियो के बार-बार मन पर छाने से वासना उनके मन से नही निकल पाती । उनका कहना है कि यादें अवश्य आती है, पर किया क्या जा सकता है ? उनके आगे अन्य समस्याये इतनी ज्वलन्त और भीषण रूप से खडी रहती है कि उनके सामने कामवासना सम्बन्धी बात सोचने की भी इच्छा, या फुर्सत नही होती । प्रमुख समस्यायें जो वासना पर हावी रहती है प्राय है—निर्धनता, आर्थिक समस्या, हृद्रोग, श्वास, मुकदमे, जवान बेटी-बेटो की शादी, घर मे कलह चिन्ता, शोक, भय, गम्भीर रोग जैसे कैसर, मधुमेह, राजयक्ष्मा, पक्षाघात, कुष्ठ इत्यादि । इनसे मुक्ति सहसा नही मिल पाती, अत ऐसो की कामवासना दबी-दबी सी या लुप्त रहती है ।

इनके अतिरिक्त एक और वर्ग होता है जो पचास वर्ष के होते हैं । अपने आपको बुजुर्ग और बडा-बूढा, अब उम्र ज्यादा हो गई मानने लगता है । धर्म कर्म मे दिखावटी रुचि प्रदर्शन भी होता है, अन्दर-अन्दर भले ही काम मथन चलता रहे, परन्तु प्रगट रूप से वे दिन प्रतिदिन और गभीर उदासीन मुद्रा मे बडे बूढो का रोल अदा करते है । ऐसे लोगो की मानसिक दशा उत्तरोत्तर इतनी परिपक्व हो जाती है कि फिर वे सम्भोग करने से कतराने लगते हैं, और एक समय आता है जब मैथुन से किनारा कर लेते हैं । इनमे अधिकाश वह व्यक्ति होते हैं जो सामाजिक सस्था, शिक्षा सस्था या धार्मिक सस्थाओ मे नेता या उच्च पद पर काफी दिनो तक सलग्न रह चु होते हैं । अथवा उनकी पत्नी का वृद्धावस्था आते-आते स्वर्गवास हो चुका होता है, स्वय अपने आपके लिए प्रबन्ध करना होता है, या फिर बडे परिवार से इतने घिरे रहते है कि उन्हे स्वय तो काम विचार सताते है पर परिवार वालो की निगाह मे अब इस प्रपच से दूर ही रहने योग्य माने जाने लगते हैं ।

ये लोग मानसिक रूप से भी अपने आपको कालान्तर मे सम्भोग के अयोग्य समझने लगते हैं किसी-किसी को डाक्टरो की सलाह से भी सम्भोग त्यागने पर विवश होना पडता है जैसे हाई ब्लडप्रेशर एव हृद्रोग अथवा क्षय के रोगी । इनका रोग परिश्रम से और भी बढजाता है, फिर क्रमश वे लोग भी चाहते हुए भी रतिकर्म से विमुख या उदासीन रहते-रहते विरक्त हो जाते हैं ।

कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि कुछ लोगो ने किसी विशेष कारण से ४० वर्ष की अवस्था मे ही सम्भोग का पूर्ण रूपेण त्याग कर दिया ।

हम समझते है कि हमने इस लेख मे सक्षेप मेवृद्धावस्था मे काम सम्बन्धी सभी पक्ष पर कुछ न कुछ प्रकाश डाल दिया है । अब कुछ ऐसे प्रकरणो को लेते हैं जिनका प्रभाव कामवासना पर परोक्ष रूप से पडता है ।

प्रथम हम त्वचा, विशेषकर चेहरे की त्वचा को लेते है । यदि किसी व्यक्ति का जवानी का फोटो और बुढापे के फोटो का मिलान किया जाय तो ऐसा लगेगा कि उम्र के बढने के साथ जवानी के खेल खेलने मे भी कमी आती गई है और अबप हले जैसा खिलाडी नही होगा । लगभग ८५% पुरुष और ७८% स्त्रियो मे बुढापे के बढने के साथ चेहरे पर झुर्रियां पड गई थीं, उनके चेहरे पर आकर्षण समाप्त



हो गया था फिर भी वे अपने को यथाशक्ति नानाप्रकार (Cosmetic) द्वारा कुछ वर्षों तक युवा प्रदर्शन करने का प्रयास करते रहे, मगर अन्त में उन झुर्रियों ने स्थाई रूप ले लिया। हाथ पांवों तथा गालों, गरदन, पेट, छाती की खाल लटक जाती है। सूखी खाल, दाद, गठिया के कारण Gouty Tophv, Fungus Infection इत्यादि के कारण शरीर और भी भद्दा तथा बूढ़ा लगने लगता है। काम वासना सम्बन्धी कोई भी आकर्षण व्यक्ति शरीर में नहीं रहता फिर भी मन में कामवासना कुछ अंशों में जागृत रहती है पर कौन पूछता है? इसी प्रकार सभी कुछ होते हुए कमर झुक जाना, लकवा में बेढंगी चाल, बालों का सफेद पड़ना, सर में गंजापन, दांतों का गिर जाना, आंखों में कम दिखाई देने के कारण मोटे लेन्स का चश्मा, कानों का कम सुनाई देना लाठी का सहारा लेकर चलना, हर समय सुस्त एक जगह ज्यादा बैठना, इत्यादि ऐसे प्रकट लक्षण है कि दूसरा उसे काम सम्बन्धी चर्चा के अयोग्य समझने लगता है और आकर्षणहीन बन जाता है।

इसके अतिरिक्त जो जो बातें उसके कामवासना पर अपना विशेष प्रभाव डालती है, अथवा शरीर के अंगो के विकार उसकी वासना को विकृत या हीन करते है उनमे प्रमुख है संचार के रोग Circulatory Diseases इसमे Hypertension रक्तदाबाधिक्य Angiaa, रक्तहीनता, इत्यादि पाचन संस्थान उदर सम्बन्धी रोग, अपोषण, अपच पाचन सम्बन्धी रोग, मूत्र संस्थान के रोग, मधुमेह, Nephrites, प्रमेह सुजाक उपदंश Syphilis स्नायु संस्थान Nervous System इसमे parasis, पक्षाघात Chorea कम्पवात, इत्यादि। इन संस्थानो के कुछ रोग ऐसे होते हैं जो मनुष्य को जल्दी बूढा बना देते हैं, और उसकी कामवासना पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

वासना के ह्रास तथा सहवास मे असमर्थता या अयोग्यता किसप्रकार उत्पन्न हो जाती है ऐसी आयु मे तथा शरीर मे किन - किन अंगो और संस्थानो मे उसका, योग होता है। यह बात समझनी इसलिए भी आवश्यक है कि इसको समझ लेने के उपरान्त वृद्धावस्था मे काम-वासना सम्बन्धी विकारों की चिकित्सा भी तो चिकित्सको को करनी है। केवल कामवासना की व्याख्या से तो काम सह नहीं सकता। उसे और भी गम्भीरता से समझना होता है। अब तक भी किसी वृद्धावस्था वाले पुरुष की चिकित्सा का प्रश्न आये तब इन बातों का पहले ही समझ लेना चाहिये।

हमको यह देखना होता है कि कामशक्ति क्षीण हो गई है उसके स्नायविक क्रियाओं मे Neuro physiological अथवा मानसिक कल्पनाओं (psycho - Dynomical) मे गड़बड़ी हुई है। इन्हीं दोनों को व्यवस्थित कर देने मात्र से लाभ की आशा की जा सकती है। रोगजन्य असमर्थता के लिए उस रोग का ही इलाज प्रमुख चिकित्सा होगी। यहां सामान्यतया जो विकार हो गया है उसी बारे में कहेंगे।

संभोग की क्रियाओं को क्रमशः समझना बहुत आवश्यक है। प्रथम यह जानना चाहिए कि मनुष्य के संभोग मे मोटे तौर पर दो चरण होते है जैसे चार चरण माने गये हैं या अवस्थायें पाई गई हैं। प्रथम उत्तेजना यानी Excitemeat, अर्थात पुरुष कामातुर हो जाता है, द्वितीय अवस्था संभोग मे संलग्न रहने की जब तक स्खलन न हो तीसरी अवस्था स्खलन, और चौथी अवस्था स्खलनोपरांत तृप्तावस्था Resolution stage। इसी को फिर दो भागो मे मोटे तौर पर बाटा गया है प्रथम द्वितीय एक भाग तृतीय और चतुर्थ भाग दूसरा भाग।

इन सभी दशाओ मे Autonomic Nervous System ही कामवासना क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है इस Aut Ner. system के दो भाग है एक Para-sympethetic भाग जो पहले भाग मे उत्तेजित होकर कामांगो की धमनियो को प्रसारित करके लिंग हर्ष और तत्सम्बन्धी Cowpers Glond, prostate Glond इत्यादि को रक्त से भर देता है एवं लिंग हर्षित हो जाता है साथ साथ शिराओ को संकुचित करके लिंग मे भरे रक्त को वापस लौटने मे बाधा होती है। तत्पश्चात दूसरे चरण मे Sympethetic भाग उत्तेजित होकर शुक्र क्षरण या स्खलित होने के उपरान्त विराम या शान्ति सी पैदा हो जाती है। अतः दूसरे चरण के लिए पहला चरण आवश्यक है चाहे स्त्री गमन हो चाहें हस्त मैथुन या अन्य प्रकार की अयोसे मैथुन क्यो न हो।

वृद्धावस्था मे चू कि नाडी मण्डल विकृत और असन्तुलित एव क्षीणवस्था मे हो जाता है, अत ये दोनो नाडी मण्डल अपना कार्य सुचारु रूप से नही कर पाते । उधर शरीर जब क्षीण हो जाता है तब शरीर के सभी सस्थान भी दुर्बल अशक्त और व्यवहार कुशल नही रहते अपना-अपना कार्य ठीक नही कर पाते । वृद्धावस्था मे एक तो स्वय रक्त की कमी होती है फिर अगर Sympethetic कुछ जोर से भी मारे तो रक्ताल्पता के कारण लिंग मे अधिक रक्त नही भर पाता, या देर से भरता है और उसका हर्ष तदर्थं शीघ्र शान्त भी हो जाता है ।

होता यह है कि प्रथम चरण को प्रभावित करने वाली ParaSympathetic नाडी मण्डल वृद्धावस्था मे कुछ दुर्बल हो जाते है, उधर Sympethetic जो कि दूसरे चरण मे भय शोक चिन्ता इत्यादि के कारण एड्रिनलीन Adrenalin का स्राव होकर रक्त मे मिलता है और यही लिंगोत्थान और हर्ष को नही होने देता । फलत काम सस्थान के सभी काम ढीले रहते है । अत यदि प्रथम चरण को साधने वाली नाडी मण्डल Para Sympethetic स्वस्थ और चैतन्य रहे तो समय पर उत्तेजना और हर्ष उत्पन्न हो जायेगा और फिर मैथुन स्खलन तथा तृप्ति या शान्ति तो आनी अनिवार्य ही है । इस वृद्धावस्था मे ये दोनो सिस्टम कुछ ऐसे बेढगे ढग से एक दूसरे के विपरीत हो जाते है कि परस्पर एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य नही कर सकते ।

परेशानी तब और भी बढ जाती है जब इन दोनो सिस्टम मे एक शारीरिक क्रियाओ मे भी बाधा डालने लगता है, उदाहरणार्थ यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी के पास सोने जाता है, यदि उस समय Para Sympethetic का प्रभाव रहा तो सफलतापूर्वक हर्ष और कामवासना जागृत रहेगी और अगर कही सोने जाते समय अपने मन मस्तिष्क मे चिन्तायें, अविश्वास, अरुचि भय शोक को लेकर जाता है तो बजाय Para Sympethetic के Sympathetic होकर उसके शरीर मे बोलबाला रहेगा और वह अकर्मण्य, अयोग्य और काम सम्बन्धी उत्तेजना हर्ष इत्यादि से रहित ही रहेगा । अत यह आवश्यक है कि कामवासना के जागृति के लिये Para Sympethetic सिस्टम जागरूक और स्वस्थ रहे । इसीलिये जब कभी ऐसा रोगी सामने आता है तो सबसे पहले उसकी मानसिक दशा का पता लगाया जाता है और उसको केवल सन्तोष देकर निर्भय, शका, भय रहित करने का उपाय किया जाता है, कभी कभी Tranquilliser की सहायता से कुछ दिनो तक उसके मन को शात रखकर समझाना पडता है उसकी मनोदशा को रास्ते पर लाकर स्थिति सामान्य करनी पडती है ।

ऐसा क्यो होता है । इसके कई कारण होते है । चू कि उसका ध्यान अपने लिंग एव अपनी सामर्थ्य के ऊपर कुछ विश्वास के रूप मे होता है, उसे डर रहता है कि सम्भवत सफलता न मिले । तथा असफलता का भय असफलता ही पैदा करेगा । ऐसे व्यक्तियो के लिये मनोपचार (Psycho-therapy) करना पड सकता है ।

कभी-कभी सम्भोग के समय असफल रहने पर स्त्री की तरफ से कुछ कटु ताने या उपहास रूप मे यदि उसे अयोग्य होने की बात कह दी जाती है तो दशा और भी बिगड जाती है । अत जब चिकित्सा करनी ही अभीष्ट हो तो उसकी स्त्री या जिससे सम्बन्ध हो उसको भी बुलाकर समझा देना चाहिए कि बिस्तर या शय्या पर उसे ऐसी कोई भी बात नही कहनी चाहिये जिसका कुप्रभाव उसके मन मस्तिक पर विपरीत पडे, तथा यह कि बजाय पुरुष की आलोचना करने के उसको प्रोत्साहन ही देना चाहिये । चाहे झूठ ही उसके पौरुष की प्रशसा करनी पड जाय । कभी-कभी बिना स्त्री के सहयोग के उसका ठीक होना कठिन हो जाता है । उधर वासना को बढाने वाले द्रव्य दवाइया ऐसी विकृत मनोदशा मे उल्टा हानि ही करती है । उसको औषधियो पर से भी विश्वास हट जाता है वह समझता है कि मेरे लिये इस दुनियां मे दवा नही रही, और उसको अधिक हताश हो जाना पडता है । फिर ऐसे व्यक्ति को भय रहित, एकान्त स्थान जहा वह स्वतन्त्रता पूर्वक जो चाहे करे ऐसे स्थान मे प्राय रखना चाहिये । परन्तु वृद्धो के लिये इसके विपरीत प्रबन्ध होता है । बूढा आदमी बाहर बैठक मे जहा सब आते जाते रहते है सोता है, उधर उसकी बुढिया अन्दर बहुओ नाती पोती लेकर सोती है । यह नही सोचा जाता कि ये अब चन्द रोज के



चाहते हैं [illegible] उतना बैठना सोना चाहिए।

रोग निवारण के साथ-साथ शारीरिक बल भी बढ़ाने का उपाय होना चाहिये। अब इसी सम्बन्ध में दूसरी बात और सिद्धान्त समझने योग्य है। शरीर के सभी अंग मांस के बने हुए हैं जैसे लिंग अण्डकोष, स्नायु इत्यादि, यहाँ तक कि शुक्र एवं अन्य ग्रन्थियाँ और उन ग्रन्थियों के बाद जो उन मांसपेशियों के साथ-साथ प्रोटीन के ही द्वारा बनते हैं। प्रोटीन के विविध रूप हैं जैसे रक्त शुक्र इत्यादि और Hormone इत्यादि सभी में अधिकांश प्रोटीन का ही अंश अधिक होता है। अतः यदि इन अंग विशेष को पुष्ट और कार्य कुशल बनाने के लिए सर्व प्रथम प्रोटीन की जरूरत पड़ेगी। जैसे मांस, अण्डा, दालें, मूंगफली, बादाम, पनीर, सोयाबीन इत्यादि। इन सब में दूध प्रमुख माना गया है। इसमें प्रोटीन के साथ-साथ कुछ विटामिन भी होते हैं। प्रोटीन के खाने मात्र से भी काम नहीं चलता, इस खाई हुई प्रोटीन को शरीर में आत्मसात (Assimilation) भी हो जाना आवश्यक है, शरीर में खपने के उपरान्त ही उसके गुण प्रगट होते हैं उधर खाया, उधर मल द्वारा निकल गया, तो क्या लाभ केवल खाने भर का नाम होता है, उसको शरीर में पचाकर, खपा देने के लिए कुछ दवाइयों का प्रयोग करना पड़ता है जैसे Methandienone की गोलियां जो प्रायः ५ मिलीग्राम की विविध नामों से मिलती हैं जैसे Dianabol, Anabolex, Anabolex iron B12, Anastaron Trinergic इत्यादि उनमें से किसी भी एक गोली को प्रतिदिन खाने से खाई प्रोटीन हजम होती है, शरीर कुछ मोटा होता है वजन बढ़ता है।

इसको औषध न दें कि कैन्सर के रोगी, घोर यकृत के रोगी तथा गर्भावस्था, या जो माताएँ दूध पिलाती हैं उन्हें सेवन नहीं कराना चाहिए। इसके इंजेक्शन भी आते हैं। उनका प्रयोग कर अगर शीघ्र प्रभाव देखना है तब करना चाहिए। रोगी के शरीर में जब जान आने लगेगी तब उसे आश्वस्त करके उसकी मनोदशा को सुधारना चाहिये।

जैसा पहले कह आए हैं कि सम्भोग सामिग्री के लिए Autonomic Nervous System का, स्नायु संतुलन आवश्यक होता है, यदि किसी रोगी में उत्तेजना न आती हो तब उस व्यक्ति के साथ मधुमेह के लिए जाँच करनी चाहिए। प्रायः इस रोग में Autonomic Neuropathy हो जाती है अर्थात आटोनामिक स्नायु-मण्डल की विकृति हो जाती है, तब यह समस्या हो जाती है।

ऐसे रोगियों के रक्त जाँच की चिकित्सकों को प्रायः कल्पना रहती है पर ऐसे प्रायः पता कि अण्डकोषों में Autonomic Nervous System में खराबी आ गई है या नहीं अर्थात Autonomic Neuropathy पैदा हो गई है या नहीं। इसके लिए एक साधारण परीक्षा से पता शीघ्र लगाया जा सकता है। वह विधि यह है कि रोगी के अण्डकोषों को एक हाथ की दो उंगलियों और अंगूठे के बीच पकड़ कर दबाने की कोशिश करनी चाहिये कि दर्द पैदा होने लगे। सामान्य दशा में थोड़े से दबाने मात्र से ही एक प्रकार का ऐंठना सा दर्द पेट या अण्डकोषों में अनुभव होता है, परन्तु जब Autonomic Neuropathy यानी अण्डकोषों में हर्ष उत्साहादि उत्पन्न करने वाली नाड़ियों की दशा क्षीण स्वयं में होगी तो या तो दर्द बिलकुल नहीं होगा वे सुन्न से होंगे अथवा जितनी नाड़ियों की दशा ठीक है उसके अनुपात से थोड़ा बहुत दर्द होगा। यह परीक्षा विशेषकर मधुमेह के रोगियों में, पक्षाघात के रोगियों में अधिक सफल रहती है। इसमें दोनों अण्डकोषों को दबाकर देखना चाहिये। शायद एक में दर्द सामान्य हो दूसरे में कम हो।

वृद्धजनों में जब भी चिकित्सा आरम्भ करनी हो तो पहले उनके आहार की ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए, जो कि मात्रा में कम और बलवर्धक गुणों में अधिक होना चाहिए। दूसरी बात ध्यान में रखने की यह भी है कि जवानों की अपेक्षा चूं कि वृद्ध लोग परिश्रम कम करते हैं अतः उनको कम मात्रा में आहारऊष्मा (Calories) की जरूरत पड़ती है जो कि लगभग १८०० से २३०० Calories तक ठीक रहती हैं। इसमें प्रोटीन की मात्रा भी पर्याप्त होनी चाहिए।

जो लोग धनवान हैं, समर्थ हैं उनको जवानी से बुढापे पर्यन्त अधिक कैलारी का भोजन सुलभ रहता है अत. वे स्थूलकाय-मोटे हो जाते है। इसके विपरीत सामान्य अथवा निर्धन लोगो मे इसके विपरीत ही होता है।

आहार के बारे मे विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। सबसे उत्तम दूध के आहार को माना गया है। वैद्य शिरोमणि लोलिंवराजने अपने ग्रथ वैद्य जीवन मे दूध के बारे मे सुन्दर गुणगाथा गाई है –

सौभाग्यपुष्टि बल शुक्र विवर्द्धमानि
कि सन्तिनोवहनि रसानयानि
कन्दर्प वधिनी, परन्तु सिताज्य युक्ता
दुग्धाहते न ममकोऽपि मतः प्रयोगा।

सौभाग्यबल, पुष्टि, शुक्र और कामवासना को बढाने वाली अनेको रसायन दुनिया में है, परन्तु ऐसा दूध जिसमें मिश्री और घृत पडा हो इससे उत्तम प्रयोग मेरे मत मे आज तक नही आया।

और वास्तविकता भी यही है। जिन लोगो ने सभी प्रकार के अन्य पेय त्यागकर दूध का ही सेवन किया है, वे ही इसके गुणो को स्वय पर परीक्षण करके इसका गुणगान कर सकते है। जैसा कि वे कह आये है कि वृद्धावस्था मे वातदोष प्रधान रहता है अत उसकी चिकित्सा मे भी स्निग्धान्नपान से करने का विधान है।

वातकान् रूक्ष देहाश्च व्यवायापहतास्यता।
व्यायामामिनश्चापि नरान स्निग्धान्न रुपाचरत्॥
सुश्रुत उत्तर ६४–५९

फिर चरक मे भी जरासभव (बुढापे के कारण) क्लैब्य (नपुसकता) मे भी इसी प्रकार स्नेह स्वेद इत्यादि का निर्देश दिया है -यथा -

जरासम्भवजे क्लब्ये क्षयजे चैव कारयेत्।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य सस्नेह शोधन हितम्॥
चरक चि० ३० - २००

इस युग मे न तो दूध ही शुद्ध प्राप्त हो सकता है और ना ही घृत अत जो भी प्राप्त होता है उसी पर सन्तोष करना होता है। हम लगातार तीस चालीस वर्षो से दूध का नियमित सेवन करते चले आ रहे है, अब लगभग १२–१३ वर्षो से उसमे परिवर्तन कर दिया। अब दूध मे हरिद्रा चूर्ण उबालकर एक समय प्रात पीते है, रात्रि को सादा फीका दूध। अवस्था हमारी लगभग ६८ वर्ष की है, परन्तु शरीर और चेहरे पर झुर्रियो का नाम नही है, परिश्रम करने पर थकावट नही आती, भूख भी दोनो समय उतनी ही लगती है जितनी अब से बीस वर्ष पहले लगती थी, नीद भी एक बार मे ५-६ घण्टा लगातार आ जाती है स्मृति पूर्ववत् है, कामवासना अथवा सभोग शक्ति मे किंचित अतर नही आया है। हा हृद्रोग का कभी २ सास फूलने जैसा उपद्रव हो जाता है। वह भी कभी - कभी पूर्णतया नष्ट हो जाता है स्थाई नही है। लगातार ४-५ घण्टे बैठकर लिखने पढने पर भी कुछ थकान नही आती, लगता है दूध की ही महिमा है सब कुछ। चाय तम्बाकू कभी नही लेता हू एक बात विशेष मेरे जीवन में रही है कि चू कि यहा मै अकेला हू परिवार चदोसी उत्तर प्रदेश मे है परिवार इत्यादि की चिन्ताओ से मुक्त रहा हू मन पर किसी प्रकार का अप्रिय प्रभाव नही पड़ा।

दूध के बारे मे तो सभी ग्रथो ने गुणगाथा गाई है चरक ने भी वाजीकरण अध्याय मे-

केवल तु पयस्तस्या शृत वाऽशृतमेव वा।
शर्करा मधु सर्पिर्भियुक्त तद्वृष्यमुत्तमम्॥
—चरक वाजी०

दूध की अपनी अलग महिमा होती है, उसका सेवन करने वाले को ही उसके गुणो का पता होता है। कहते है कि बचपन का खिलाया पिलाया जवानी मे काम देता है, जवानी का खिलाया पिलाया बुढापे मे, और बुढापे का खाया पिया यानी उसे टच यानी स्वस्थ रखता है। अत. अगर बचपन मे नही भी कुछ पौष्टिक आहार उपलब्ध हुए हो, परन्तु जवानी मे प्राप्त हो गए हो तो भी बुढापे मे शरीर टिका रहता है, वासनाये जागी रहती है परन्तु यह भी शर्त है कि अन्य किसी भी बुरे मादक द्रव्यो या पेयो का सेवन नही किया जाता रहा हो।

हमने देखा है कि जो व्यक्ति चाय के नित्य दो चार बार लेने के आदी हो गए है साथ-साथ तम्बाकू भी लेते है, या नही भी लेते, उनकी पाचन क्रिया सदैव बिगडी रहती है। वे समय से पहले वृद्ध हो जाते है और जल्दी उनके बाल पकते है, चेहरे पर बुढापा जल्दी आ बैठता है। स्त्रियो मे तो यह चाय तम्बाकू की लत या आदत उन्हे

समय स पूर्व वृद्धया बना देती है। जो सम्पन्न हैं वे चाय के कुप्रभावो से थोडा कुछ काल तक इसलिये बचे रहते हैं कि वे लोग फल एव अन्य पौष्टिक भोजन नाश्ता पानी करके उस कमी को कुछ अशो मे पूरी कर देते हैं। अत अगर वृद्धजनो की कामवासना अथवा शारीरिक क्षय को रोकना ही अभीष्ट है तो चाय तम्बाकू एव अन्य नशे तुरन्त बन्द करके आहार द्वारा उनके शरीर मे पहले कुछ शक्ति लानी चाहिए, फिर दूध का निरन्तर सेवन चलना चाहिये। अगर दूध उपलब्ध न हो तो नीचे लिखे योग को बनाकर प्रोटीन की जगह काम मे लाया जा सकता है। भुनी हल्दी का सूक्ष्म चूर्ण ७५ ग्राम, भुनी फली (मूगफली)का छिलके रहित चूर्ण २५० ग्राम, गुड उत्तम १०० ग्राम।

सबको मिलाकर किसी चौडे मुह वाली शीशी मे रख ले। दो चम्मच प्रात और दो बडे चम्मच साय (सोते समय) एक कप गरम पानी मे मिलाकर पीलें, अथवा वैसे ही खाकर पानी पी ले। साथ मे Dianabol की एक गोली दिन मे एक वार ले लिया करे। मूगफली की प्रोटीन शरीर मे हजम होने लगेगी। हल्दी सस्तो रसायन है अपना प्रभाव समस्त शरीर मे करेगा, यह योग उन वृद्धो के लिये उपयोगी है जिनको श्वास, कास, eosinophelia जुकाम, सर्दी ज्यादा रहती हे। अगर मूगफली का प्रोटीन सात्म्य न हो तो कुछ दिनो तक केवल हरिद्रा चूर्ण लेकर फिर उपरोक्त योग आरम्भ कर, जब तक लेना चाहिए। Dianabol की आधी गोली भी ली जा सकती है।

जब Autonomic Nei System असन्तुलित हो तब अण्डकोष सार जैसे Perendien वगैरा नही देने चाहिये, क्योकि ये कुछ भी नही कर सकते, उल्टो हानि कर देते है। ऐसी आयु के लोगो के लिये प्रभावकारी तथा हानि रहित औषधिया ही लाभ करती हे। आयुर्वेदिक पेटेन्ट दवाओ मे हिमालया ड्रग कम्पनी की जेरीफोर्ट (Geri-forte) गोलियो का परीक्षण अनेको जगह वृद्ध लोगो पर किया गया और उसके परिणाम भी उत्साह वर्धक रहे।

लखनऊ के किंग जार्ज मैडीकल कालेज मे ८० रोगियो पर इसका परीक्षण एक मास तक किया गया। वृद्ध रोगी चिन्ता, स्नायुविक असन्तुलन, कामवासना को न्यूनता साथ-साथ भी और किसी-किसी मे नपुसकता था। परिणामो के बारे मे जो आकडे दिये गये वे उत्साहवर्धक हैं।

जिनको Geriforte तथा मन प्रसादक Tranquilliser साथ-साथ दिया गया उनमे ५०% से १००% तक लाभ हुआ। अकेली Geriforte से ठीक किये रोगी ८२.५% थे। जिनको Geriforte न देकर उसी रग रूप की हानिरहित अन्य गोली placebo या मनः प्रसादक Tranquilizer मात्र दी गई थी उनमे लाभ १०.५% हो रहा। एक बात और रोचक हुई कि जिन वृद्ध रोगियो मे मानसिक निरुत्साह, चिन्ता इत्यादि के साथ-साथ काम सम्बन्धी नपुसकता के भी लक्षण थे, उनमे से ६ रोगियो का परीक्षण के रूप मे लिया गया। इनमे से ५ को केवल Geriforte १-१ गोली दिन मे चार बार दी गई, बाकी १ को केवल शामन(Tranquilizer)ही दी गई। इसका परिणाम अत्यन्त अच्छा रहा। १ रोगी की तो कामवासना पूर्णतया पूर्ववत् हो गई, तीन रोगियो मे ७५% से भी अधिक लाभ हुआ, अन्य दो को ५०% से अधिक लाभ रहा। यह लाभ केवल ५ सप्ताह तक दवा लेने पर ही रहा। जिन वृद्धजनो मे लाभ कम रहा उन्हे पूर्णरूपेण लाभ हो जाने तक औषधि Geriforte जारी रखने की सलाह दी गई थी।

विटामिन का युग है ही। परन्तु जहाँ विटामिन देना चाहिए वहो तो इसका प्रयोग होना चाहिए, अन्यथा इसका प्रयोग बेकार है। अब कामवासना को ठीक करने के लिए मनोपचार किया जाता है, तब साथ-साथ अच्छा वाला बी-कम्प्लक्स का या तो १ कैपसूल (Capsule अथवा Lederplex एक चम्मच अथवा अन्य अच्छा वाला B-Complex (बी-कम्प्लेक्स) कुछ दिन देने मे शरीर म तनाव चिन्तायें इत्यादि कम होकर रोग से लडने की शक्ति पैदा हो जाती है, एक प्रकार का टोन (Tone) आ जाता है। जो कीमती विटामिन (Vitamin)नही खरीद सकते उनके लिए १/२ से १ का अकुरित गेहू सबसे अच्छे रहते हे। दो-तीन दिन से गेहू अकुरित हो जाते है। साफ गेँहू को भिगो देना चाहिए और पानी उतना ही हो कि वे भीगकर फूल जाये। दो-तीन दिन अलग अनाज भिगो

देने से फिर रोजाना अकुरित गेंहू मिलते रहते है। जिम पात्र के गेंहू आज खाए हैं उसमे पुन गेहू डालकर भिगो दें, तीसरे दिन काम दे जायेगे। रोजाना उसका क्रम बध जाएगा। ये सस्ता बी-कम्प्लेक्स उतना ही लाभ करेगा।

रक्ताल्पता(Anaemia) भी एक ऐसा रोग या ऐसी दशा है कि शरीर मे रस की कमी होने से लगभग सभी अङ्गो का पोषण न होने से उनमे न तो tone रहती है और वे समुचित रूप से कार्य कर सकते है। जैसे किसी साईकिल मे हवा कम होने से उसका पहिया लचर रहता है वैसे ही रक्त की कमी से सभी अङ्ग अपुष्ट क्रिया शिथिल, लगभग निर्जीव से रहते है अत रक्तवर्धक चिकित्सा आवश्यक है। इसके लिए देखा गया है कि लौह के योग अगर माफिक आ जायें तो ज्यादा उत्तम और शीघ्र लाभ देने वाले होते है। यदि लौह सम्भव नही हुआ तो फिर अन्य उपायों, जैसे Vit B/१२, Liver. extract से काम लेना चाहिए। macalvit I m. इन्जेक्शन धीरे-धीरे परन्तु अच्छा कार्य करते है, क्योकि वृद्धावस्था मे अस्थिया भीनी सी Osteoporosis रोग से Calcium की कमी के कारण अस्थिया Sponge की तरह झीनी हो जाती है। इनमे दर्द होता ह। Calciumकी कमी के कारण शुक्र म भी इसकी कमी से वह गुण ठीक हो जाता है। अत macalvit की ५-१० इन्जेक्शन देने के उपरान्त अच्छा सा लगने लगता है, रक्त की भी वृद्धि हो जाती है और फलस्वरूप कामवासना मे भी सुधार होता है। इन सभी वृद्धावस्था वाले पुरुषो-स्त्रियो को दृढ़ता से चाय, तम्बाकू, पान एव अन्य नशो को त्याग देना चाहिए।

अगर यह पता लगता है कि अण्डकोषो से निकलने वाले स्रावो Hormons की कमी हो गई हे तो वृद्धावस्था मे उसक चार प्रमुख लक्षण होते हैं—

१. अपने आस-पास के वातावरण इत्यादि मे उदासीनता (रुचि न रहना)।

२. भूख की कमी।

३. हड्डियो मे दर्द।

४. नीद का कम या न आना।

ऐसे लक्षणो की उपस्थिति मे Testosterone (Perendren) के साप्ताहिक इन्जेक्शन लगाने मे कुछ दशा सुधरती है, परन्तु उपरोक्त चाय, तम्बाकू का कडा परहेज परमावश्यक है अन्यथा लाभ नही होगा।

कुछ ऐसे रोग भी है जिनके होते हुए दशा सुधरनी मुश्किल होती है यथा मधुमेह, मानसिक रोग, पक्षाघात।

क्योकि ये रोग प्राणलेवा होते हैं, इनके द्वारा प्रदत्त शारीरिक क्लेश और कष्ट असमर्थता दुर्बलता, क्षीणता, उपद्रवो के सामने काम सम्बन्धी सुधार की न तो वृद्धा व्यक्तियो को और न घर वालो को ही सूझती है और न उस ओर ध्यान ही जाता है, फिर ये रोग असाध्य एव स्वय वृद्धावस्था की अन्य दुर्बलताओ को और अधिक बढाने वाले होते हैं, दशा उत्तरोत्तर बिगडती चली जाती है।

वृद्धावस्था मे पौरुषग्रन्थि शोथ (Prostitis) प्राय ज्यादा परेशान करता है और फलस्वरूप कोई आप्रेशन द्वारा उसे निकलवा देते है अथवा बढे हुए हिस्से का निकलवा देते हैं। चूकि शुक्र के तरल मे इस ग्रन्थि का भी स्राव सम्मिलित रहता है अत इसके स्राव मे शुक्रयुक्त होने से शुक्र तो वचित हो ही जाता है, परिणामस्वरूप एक प्रकार से नपुसकता और वासनाहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि के लक्षण वृद्धावस्था या युवावस्था मे प्राय ये होते ह —

१ पेशाब के लिए बार-बार जाना, पेशाब भी अपेक्षाकृत कुछ थोडा होता है।

२ पेशाब मे जलन होनी, कभी-कभी नही भी होती।

३. पेशाब की रुकावट (मूत्रावरोध)।

४, पेशाब करने मे कठिनाई, बूद-बूद पेशाब टपकना पेशाब की धार पतली।

५ कभी-कभी रक्त मूत्रता Haematuriea (पेशाब के साथ रक्त आना) अभी हाल मे ही रोहतक (हरियाणा) के मेडिकल कालेज मे किए गए परीक्षणो मे हिमालया ड्रग कम्पनी' की spemen से ऐसे रोगियो मे आशाजनक लाभ देखा गया है। रोगियो को जब पेशाब बार-बार आने लगे तभी चिकित्सा करा लेनी चाहिए। फिर आगे चलकर जब मूत्रावरोध उपद्रव होने लगते है तब चिकित्सा कठिन हो जाती ह। ऐसे रोगियो के ऊपर spemen का प्रयोग किया। दो गोली दिन मे तीन बार १ माह



तक, फिर १ गोली तीन बार १ माह तक। देखा गया है कि अधिकांश मे मूत्र त्याग की परेशानी कम हो गई, पौरुषग्रन्थि सिकुड़ गई और उसमे सुधार आने पर कुल मिलाकर मानसिक परेशानी ठीक होकर वासना मे भी सुधार हो गया। वृद्धावस्था मे आप्रेशन कुछ खतरनाक भी होता है।

इतना अवश्य बिना पैसा खर्च किए तो किया ही जा सकता हैं, कि इन परित्यक्त असहाय, पराश्रित और अन्दर ही अन्दर अपनी जीवन भर की व्यतीत रग-रगेलियो के स्मरण सजायें, अनुभवो से परिपूर्ण दया के पात्र, वृद्धो की मानसिक दशा को, हितैषी स्वजन अपने व्यवहार, वार्ता एव सेवा से बहुत कुछ परिवर्तित करके उनमे आत्म विश्वास, चिन्तामुक्ति पैदाकर अपनी दैनिक क्रियाओ, साथ में यदि उनकी धर्मपत्नी जीवित हो तो उनके साथ अलग रहने की स्वतन्त्र व्यवस्था कर उनको अपने शेष जीवन के दो-चार वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत करने के योग्य बना सकते है। वृद्धो ने भी घर के युवा-युवतियो की तरह जवानी के दिन देखे होगे और यह भी कि कभी न कभी ये जवान स्त्री पुरुष भी बूढ़े होगे। जो भी मानसिक शांति के लिए किया जा सके उतना अवश्य करना चाहिए। यह कभी न भूलना चाहिए कि कामवासना तो सभी के अदर थोड़ी बहुत रहती है, वृद्धो के अन्दर भी होती होगी।

अन्त मे हम अपने पाठको को अपना खोज द्वारा आविष्कृत चौधरी विधि—एक ऐसी विधि को व्याख्या सहित बताते हैं जिसमे अण्डकोषो के कार्य मे पर्याप्त सुधार हो सका है। कभी-कभी जिनके अण्डकोषो मे शुक्राणु निर्माण का अभाव था, उनमे शुक्रबीज भी बनने लगे। स्वाभाविक रूप से शरीर कुछ दिनो मे अण्डकोषो के स्वस्थ होने के फलस्वरूप जो भी लाभ अण्डकोष दे सकते है, उनका अनुभव करने लगते हैं और खर्च कुछ नहीं होता। विधि नीचे लिखे अनुसार करनी चाहिए—

विधि—वृद्धजनो को और अगर चाहे तो युवाओ को भी जिनका शुक्र ज्यादा स्वस्थ नही है उनको भी पहले एक गिलास मे ठण्डा पानी ले फिर दोनो अण्डकोषो को उसमे लगभग २ से ५ मिनट तक डुबोये रखना चाहिए। अब पानी से बाहर अण्डकोषो को निकालकर पोंछ लें, और दोनों हाथो की अगुलियो और अगूठे से धीरे-धीरे (जोर न लगावें और नाही अधिक जोर से दबायें) जितना सहन और सह सकें उतने जोर से दबाते हुए इतनी देर मले कि उससे अण्डकोष फूल जाये। अर्थात् रक्त से भर जाये) तब उनको छोड दें। चार-पाच मिनट के उपरान्त अण्डकोष पुन अपनी पहली वाली दशा मे आ जायेंगे।

क्या होगा कि अण्डकोषो को धीरे-धीरे मलने से उनके अन्दर के Interstitial cell जो पौरुष सार भी बनाते हैं और पु० बीज भी बनाते है उनके अन्दर दबाने, मलने से चैतन्यता आयेगी, जैसे किसी अग की मालिश करने से वह अग कुछ चैतन्य हो जाता है। उसी समय उनमें रक्त भी अधिक मात्रा मे (सामान्य से अधिक) भर जाता है, रक्ताधिक्य के कारण उनका कार्य कुछ अधिक सुचारु रूप से थोडी देर के लिए हो जाता है, फिर जब शनै. शनै अण्डकोष फूलने से सुकडने लगते है, तब जो फालतू रक्त इनके अन्दर से आ गया था, जब यह निकलकर शरीर मे जाएगा तो अत्यल्प प्रमाण मे ही क्यो न हो कुछ न कुछ अण्डकोषो के सार को भी अपने साथ लिये हुए शरीर मे रक्त के साथ घुमाएगा। और चू कि यह अण्डकोष सार स्वय अपने ही शरीर का होगा, इससे किसी भी प्रकार के विरोधी प्रमाद या हानि होने की लेशमात्र सम्भावना नही हो सकती, उधर धीरे धीरे रोजाना अण्डकोषो की मालिश करने से वे बलवान पुष्ट और अपना स्राव निकालने मे सुचारू रूप से समर्थ होने लगेंगे। रोगी को बाहर से अलग से parendiene या अण्डकोष सार लगवाने की आवश्यकता नही होगा। इसका लाभ कालान्तर मे ही प्रकट होने लगता है। तलाभ्यग मे मालिश के साथ अगो का मर्दन भी तो होता है।

अन्त मे इस छोटे से लेख मे यदि कही कुछ आवश्यकतानुसार अश्लीलता आ गई होगी तो गम्भीर पाठक उसे विषयानुसार आवश्यक समझते हुए उसे अश्लील नही मानेंगे। जो भी बात अगर स्पष्ट न हो सकी हो उसे सदैव पूछने के लिए हमारे विद्वान पाठक अपने को स्वतन्त्र और नि.सकोच समझें।



वृद्धावस्था में—

शुक्र-क्षय जनित विकृतियां

चिकित्सा सूत्र

क्षयजे क्षयनाशाय कर्तव्यो बृंहणो विधि ।
पानेनस्ये च सर्पि स्याद्वातघ्नैर्मधुरै भृतम् ॥
योजयेत्सगुणं सर्पि घृतपूराश्च भक्षयेत् ।
नावन क्षीर सर्पिभ्या पानं च क्षीर सर्पिषा ॥
क्षीर पिष्टैरस्तिग्धै स्वेदो जीवनीयैश्चशस्यते ॥

जीवनीय गणो से, या मधुरादिगणो से सिद्ध घृत एवं क्षीर का सेवन बतलाया गया है। बृंहण या वृष्य योगो के सेवन से धातुयें वर्धन होती हैं और रोग शमन होता है।

प्रयोग— यहा कुछ प्रयोगो का सकेत दिया जाता है रोगानुसार उन्हे सेवन कराना चाहिए—

१. चोपचीनी पाक— फिरग या उपदशजनित व्याधि मे लाभकारी हे। यदि विकार है तो उसे सफल चिकित्सा द्वारा दूर कर फिर पाक सेवन करना चाहिए।

२ बृ० मुसल्यादि पाक—शुक्रक्षयजनित शिरोशूल आदि रोगो को दूर करता है। ३-४ मास पथ्यसह सेवन करें।

३. बादाम पाक—इसके सेवन से शुक्रक्षय जनित अनेक रोग दूर होते हैं। मस्तिष्कगत एव दृष्टिगत निर्बलता भी दूर होती है। दोनो पाको के सेवन से ३-४ मास मे शरीर का रूप रग बदल जाता है।

४. जवाहर मोहरा—यह रत्न प्रधान योग हे। १-१ रत्ती मधु से चाटकर दूध पीते रहना चाहिये। इसके सेवन से हृदयगति वृद्धि या धड़कन दूर हो जाती है। थोडे श्रम मात्र से जो श्वास उभरने लगता हे वह भी दूर हो जाती है। इसमे स्वर्ण कस्तूरी और अम्बर भी हैं अत हृदय को शक्ति प्रदान करता हे।

५. काम चुडामणि रस— २-२ रत्ती मधु या मलाई मे मिलाकर चाटा जाता है, प्रत्येक ऋतु मे सेवन कर सकते हैं। यह धीरे - धीरे पुसत्व प्रदान करता है, अशक्ति दूर करता है। पुरुषेन्द्रिय मे दृढ़ता आ जाती है, यह शीघ्र कामोत्तेजक नहीं है पर सप्त धातु बर्धक है।

६ लक्ष्मीविलास रस — २–३ रत्ती प्रतिदिन दूध से सेवन करने से उक्त सभी रोग दूर होते हैं। अशक्ति, शिरोशूल, सर्व अंग उपांग के शूल को दूर करता है। स्वर्ण सहित या स्वर्ण रहित भी सेवन कर सकते है।

७ रजतावलेह—३-३ माशे गर्म किए हुए मीठे दूध से सेवन करना चाहिए।

८ सहयोग रूप से सारस्वतारिष्ट, अश्वगधारिष्ट, दशमूलारिष्ट, द्राक्षासव आदि भी सेवन किए जा सकते हैं इन्हें भोजन के बाद २-३ या चारो को मिलाकर २-२ तो. सजल पीना।

९ बग भस्म या त्रिबंग भस्म २-३ रत्ती मलाई मिश्री मे मिलाकर चाटना चाहिए। पाक सेवन के बाद सेवन करना चाहिए। इससे स्वप्नदोष, प्रमेह, प्रदर भी दूर होता है।

१० चन्द्रप्रभा वटी ४-४ रत्ती मलाई मिश्री मे मिला चाटना चाहिए, दूध का सेवन अनिवार्य है।

११ बृ० वंगेश्वर या वसन्तकुसुमाकर रस २-२ रत्ती मधु से चाटकर दूध पीवें।

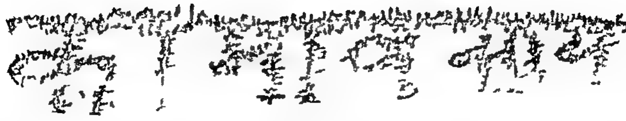
१२ कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म २-३ रत्ती मधु या मलाई + मिश्री में मिलाकर चाट लें। साथ ही उक्त पाक मे से कोई भी एक सेवन करे।

१३ मासमेवी बकरे के अण्डकोष पका सेवन करें।

१४ शुक्र मातृका वटी—२-४ रत्ती दूध से सेवन करने से स्वप्नदोष और वीर्य का पतलापन दूर होता है।

१५. कामशक्ति केशरी + नपुसकत्वारि वटी + वसन्त कुसुमाकर रस तीनो एक साथ या अलग-अलग प्रात साय मध्य दिन मे सेवन करने से पुरुषेन्द्रिय मे अतिशय दृढ़ता आ जाती है। स्त्री प्रसग के बिना रहना कठिन होता हे दो दिनो मे स्फूर्ति आती है। १ मास में ४-५ सेर दूध पचन हो जाता हे, शरीर का रूप रग बदल जाता हे। यदि शरीर में कोई रोग है तो उसे दूर कर दिसम्बर, जनवरी, फरवरी ३ मास इसी सेवन अवश्य करना चाहिए। „यह " औषधियां निर्मल आयुर्वेद सस्थान मामूभाजा रोड अलीगढ़ से मगा कर प्रयोग करें।

—श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव ,वैद्य
अरौल (कानपुर) उ०प्र०



वैद्यराज मोहर सिंह आर्य आयुर्वेद वाचस्पति,मिसरी (महेन्द्रगढ) हरियाणा।

परिचय—जो पुरुष स्वकीय नवयौवना सौन्दर्यशीला भार्या अथवा अन्य प्रेमिका के साथ सम्भोग करने मे असमर्थ हो उसे नपु सक कहते है।

पर्याय—ध्वजभङ्ग, क्लैव्य, पु स्त्वहीनता, नामर्दी, जोकेवाट, इनानत, Impotency, Sexual Debility।

कारण—१ वीर्य की कमी।

वीर्याल्पता के हेतु—

१ सम्यक् तथा पूर्ण आहार की कमी—आहार से ही रस, रक्त, मास-मेदा, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र ये सात धातुयें बनती हैं। सम्यक्तया पूर्ण आहार न मिलने पर यह धातुये नही बनने पाती अपितु क्षीण होने लगती हैं।

२. रोग—जीर्ण ज्वर, एवं मधुमेह, शीघ्रपतन तथा स्वप्नदोष आदि—जीर्ण रोगो मे भी क्रमश. धातु क्षीण होती है। जब धातुयें क्षीण होगी तो शुक्र भी क्षय को प्राप्त हो जाता है क्योकि शुक्र सब धातुओ का सार है।

३. हस्त मैथुन—छोटी आयु मे हस्तमैथुन—आजकल तो जवानी उगने से पहले ही हस्तमैथुन, पशुमैथुन, गुदमैथुन (छोकरे बाजी लौंडेबाजी) द्वारा वीर्य का नाश आरम्भ कर देते हैं। जब जवानी के दिन आते हैं तो जवान मे वीर्य की इतनी कमी होती है कि वह मात्र हड्डियो पर चमड़ा लपेटे होता है।

४ अत्यधिक स्त्री समागम, 'अति सर्वत्र वर्जयेत' अति स्त्री प्रसग के परिणामस्वरूप वीर्य क्षय होता है।

२ वीर्यदोष जन्य विकार—

१ स्वप्नदोष—स्वप्न तो प्राय सभी देखते हैं, परन्तु दोषी कौन से होते हैं? जिस स्वप्न मे स्त्री से क्रीडा-आलिगन करते-करते वीर्य गिर जाये अथवा कामोत्तेजना होकर शुक्रपात हो जाए वह दोषी होता है। इसे ही स्वप्न दोष कहते हैं। मास मे १-२ बार नही अपितु कई रोगी तो ऐसे भी मिले हैं जो एक-एक रात्रि मे ४-५ बार इसके शिकार बन जाते हैं। स्वप्नदोष से निर्बलता आयेगी और वीर्य की कमी हो जाएगी।

२. प्रमेह—इसे धातु गिरना भी कहते है। इस दशा मे मूत्र त्याग के साथ वीर्य गिरता है। कई रोगी ऐसे भी मिले है जिनका वीर्य अपने आप बहता रहता था। इस अवस्था मे वीर्य को नियन्त्रण मे रखने वाली नसें ढीली पड़ जाती हैं। अत्यधिक वीर्य निकल जाने से निर्बलता तथा वीर्य क्षय वा कमी अपना घर कर लेते हैं।

'३ शीघ्रपतन-उस दशा का नाम हैजिसमे स्त्री समागम प्रारम्भ करते ही थोडे समय मे ही वीर्य निकल जाए। शीघ्रपतन का शोचनीय रूप है—योनिद्वार मे शिश्न प्रवेश के पहले ही पुरुष का स्खलित हो जाना, रतिक्रीडा के बीच मे पुरुष उत्तेजित होकर कामवासना के महत्तम शिखर पर पहुचता है—योनिद्वार के स्पर्श मात्र से पुरुष का वीर्य स्खलित हो जाता हे। उधर अतृप्त नारी विकल होकर तडप कर रह जाती है।

३. उत्तमाग के रोग—

१. हृद्रोग—इस अवस्था मे कामोत्प्रेरक ओज उत्पन्न नही होता।

२ मस्तिष्क रोग—इस अवस्था मे मस्तिष्क कामेच्छा की सूचना पहुचने वाली शक्ति कम हो जाती है।

३. यकृत रोग—यकृत विकार होने पर शुद्ध रक्त की उत्पत्ति नही होती, जब रक्त कम उत्पन्न होगा तो शुक्रोत्पत्ति कम होगी।

४ वृक्क रोग—इस अवस्था मे स्वाभाविक कामेच्छा मे ह्रास हो जाता है।

४. प्रजननाग के विकार—

१ सहज विकार—शिश्न का छोटा सा होना या लिग का वृषणों के साथ चिपका रहना।

२. जन्मोत्तर विकार—शिश्न दण्डिकाओ मे विकार, अगघात, पक्षवध आदि।

३. शुक्र यन्त्र के विकार—आजकल नसबन्दी भी प्रमुख है।

५ मानसिक विकार—इस अवस्था मे बहुत से विचार भावनायें, विश्वास ऐसे होते हैं जो पुरुष को सामयिक रूप

से नपुसक बना देते हैं, अत्यन्य भय-विराग, अत्यन्त दुख, श्रम, लज्जा, चिन्ता, शोक आदि से नाडी मण्डल निर्बल हो जाता है।

६ अत्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन—जो व्यक्ति दीर्घकाल तक कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है—स्त्री समागम नहीं करता उसके कामाग सम्बन्धी वात तन्तु निष्क्रिय हो जाते हैं।

७. मादक द्रव्य सेवन वा कामावसादकर द्रव्य सेवन- इनका दीर्घकाल तक अति सेवन नाडियो को अत्यन्त दुर्बल बना देता है। अतत. नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है।

८. सवारी—बाइसिकिल, घोड़ा, ऊँट, रिक्शा आदि की सवारी अधिक समय तक करते रहने से कामांग वात तन्तु निष्क्रिय होकर क्लीबता उत्पन्न हो जाती है।

९ प्रेम मे निराश—जब व्यक्ति अपने प्रेम मे किसी प्रकार की बाधा से असफल हो जाता है तो उसे मानसिक आघात पहुचता है, परिणामस्वरूप ध्वजभंग हो जाता है।

१०. घृणा—ग्लानि, विरक्ति, नापसन्द स्त्री, उपवास अति व्यायाम, ईर्ष्या, घरेलू झगडे-समस्यायें, असमय मे मैथुन, लघु योनि मे विषय, बालिका के साथ विषय, वृद्धा स्त्री मे गमन, कठोर या पिलपिली योनि मे विषय आदि हेतु हैं।

क्लैब्य भेद

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने क्लीबता के भिन्न-भिन्न भेद लिखे हैं यथा—चरकाचार्य ने चार, सुश्रुत ने पाच तथा भावप्रकाश ने सात प्रकार माने हैं। प्रत्येक्षता की दृष्टि से—चिकित्सा की सुविधा से निम्न पाच भेद प्रमुख हैं—

१ सहज क्लैब्य—२. व्याधिजन्य नपुसकता ३. जरा सम्भव क्लीवता ४ मानसिक क्लैब्य ५ वीर्य क्षयजन्य

(१) सहज क्लैब्य—जन्म से ही जननेन्द्रिय मे विकार होता है यथा-१. अण्डकोषो का अभाव या अविकसित होना जैसे हिजड़े होते हैं। २ लिंग का आकार छोटा होना।

(२) व्याधि जन्य नपुसकता—१ जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग, लिंगक्षत, लिंगनाश, अण्डकोप, अण्डक्षय, उपदंश, सूजन आदि।

२ शारीरिक रोग—जीर्ण ज्वर, मधुमेह, रक्ताल्पता, वृक्क शोथ आदि रोग निर्बलता उत्पन्न कर कामशैथिल्य के कारण हैं।

३. जरा सम्भव क्लीवता—यह तो प्राकृतिक नियम है वृद्धावस्था में शरीर की सब धातुयें क्षीण होने लगती हैं। शक्ति, उत्साह, बल आदि का क्रमश घटना-न्यून होना इस अवस्था मे स्वाभाविक है। इसके साथ-साथ कामशक्ति भी क्षीण होती है।

४ मानसिक क्लैब्य—मैथुन करने वाले व्यक्ति का मन भय, शोक, चिन्ता आदि विकारो से अस्वस्थ होकर वा मनोमालिन्य रखने वाली स्त्री अथवा हार्दिक प्रेम न रखने वाली स्त्री का साथ होने के कारण मैथुन इच्छा होने पर भी लिंग का उत्थान नही होता अथवा कुछ होता भी है तो शीघ्र ही मुर्झा जाता है।

मन की विचित्र लीला है। प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि उसका शरीर शक्तिवान रहे—चाहे वह कुकर्म करता रहे दुनिया भरके, परन्तु मन के भीतर भय-सशय, लज्जा आदि आ जाने से सारी की सारी शक्ति न जाने कहा चली जाती है। ऐसे भी रोगी देखने मे आये हैं जो अपनी स्त्री के साथ सम्भोग नही कर सकते, उन्हे कामेच्छा ही नहीं होती और अन्य किसी स्त्री के साथ वही पुरुष सफलता-पूर्वक मैथुन करता है—चोरी का गुड़ मीठा घर की खाण्ड किरकिरी।

'मनसोनैवलमम्' जिन व्यक्तियो के मन गुण (धी, धृति स्मृति) धैर्य छूट जाते है तो उनका मन निर्बल हो जाता है, जो शोक, चिन्ता, भय, क्रोधादि आवेग मे ग्रस्त हो उनमे कामवासना का विचार कहा ? रत होने की प्रवृति तो दूर रही।

५ वीर्य क्षयजन्य नपुसकता—स्वप्न, प्रमेह तथा शीघ्रपतन के पश्चात् वीर्य क्षय वा नपुंसकता की बारी आती है। इन सबका मूल कारण बचपन की त्रुटिया गलतिया है जिनमे प्रमुखत अत्यधिक हस्त मैथुन, गुद मैथुन, पशु मैथुन तथा अत्यधिक स्त्री प्रसग। इस अवस्था मे काम तृष्णा तो होती है परन्तु लिंग मे चेतना नही आती या कम आती है।

लक्षण

१ मैथुन की इच्छा न होना २ दिल मे बेचैनी-घबराहट, अविश्वास अर्थात् मैथुन की सफलता में अपने पर भरोसा न होना ३ स्वप्नदोष, प्रमेह, शीघ्रपतन होना ४ लिंग का पतलापन, टेढापन, शिथिलता, लिंग पर नीली-



नीली नसें उभर आना, लिंग का मूल पतला, शिरा मोटा, छोटापन, लिंग का मणि भाग पिचक जाना, लिंग अपूर्ण हो। ५ अण्डकोषो का छोटा होना, पिलपिला होना, शोथ युक्त होना। ६ मन में लिंग मे उत्तेजना का अभाव या देरी से आना। ७ जिनके मुंह पर कान्ति कम हो, चेहरा हरा सा, पीलापन लिए श्वेत सा हो, ८. मैथुन (स्त्री प्रसग) सम्यक् करने मे असमर्थ हो, ९ वीर्य पानी के समान पतला हो १० इन्द्रिय शिथिल-ढीली हो, ११ पाचन शक्ति मन्द हो गई हो, १२ रोगी दीन उत्साहहीन हो १३. स्त्री प्रसग की इच्छा हो, परन्तु सम्भोग करने में असमर्थ हो।१४. लिंगेन्द्रिय की दुर्बलता के कारण स्त्री के पास जाने से डरता है। यदि कुछ साहस बटोर कर स्त्री प्रसङ्ग करता भी है तो सांस फूल जाता है, शरीर मे पसीना आ जाता है। इन्द्रिय ठीक उत्तेजित-कठोर नही होती।

चिकित्सा सिद्धान्त

१. सर्व प्रथम कारण को दूर करें।

२. मानसोपचार करे।

औषधि व्यवस्था

(१) मर्दनार्थ तैल—जिससे कामांगो मे चैतन्यता आ जाये, जाग उठे।

(२) पोटली—जहा-जहा पहले मर्दन किया गया है, वहा-वहा पोटलियो से सेक करें। इसमे लिंग मे उत्तेजना एव हर्ष बढेगा।

(३) तैल-तिला—इससे छोटे-छोटे फफोले पढकर लिंग से विजातीय द्रव्य एव पानी निकलकर लिंगेन्द्रिय निरोग हो जाती है।

(४) औषधि—निर्वीर्यता तथा स्नायिक दुर्बलता दूर करने के लिए वीर्यवर्धक एवं वृष्य औषधि है।

१ मर्दनार्थ तैल—जायफल, जावित्री, केशर, लौंग, रुदन्तीब, प्रत्येक २-२ ग्राम, कुपीलु ४ ग्राम, कस्तूरी १ ग्राम, जदवार खताई-मालकागनी प्रत्येक ५ ग्राम लें। सब द्रव्यों को सूक्ष्म पीस लें। मोम देशी ४८ ग्राम, जैतून का तैल ३६ ग्राम लवङ्ग का तैल ६ ग्राम, दालचीनी का तैल ६ ग्राम मालकागनी का तैल २२ ग्राम लें। सबको एक पात्र मे गरम करें, मोम पिघलने पर उतार शीतल कर पिसी औषधियों का वस्त्रपूत चूर्ण डाल खूब मिलालें।

स्थान जहा मर्दन करना है— जंघा, अण्डकोष, पेड़, चूतड़ तक, रागो के बीच, कटि तथा लिंगेन्द्रिय पर मालिश करें।

मर्दनोपाय—एक कटोरी मे उक्त मिश्रण डाल किंचित गरम कर हथेली से मर्दन करें।

लाभ—मर्दन से मृत शिरायें, मूर्छित नसें तथा मांस पेशिया चैतन्य होगी—उनमे रक्त सचार बढेगा। लिंग में उत्तेजना तनाव तथा चेतना आयेगी। एक सप्ताह तक मर्दन करे। शीतल जल का स्पर्श न होने पावे।

२—स्वेदनार्थ पोटली—

हाथी दात का चूर्ण, आवाहल्दी, मालकांगनी, तिल काला, सडे नारियल की गिरी प्रत्येक १२ ग्राम, जायफल, जावित्री, लौंग, अकरकरा प्रत्येक ६ ग्राम, प्याज के बीज, कलौंजी प्रत्येक ९ ग्राम लें। सबको कूट पीस एकरस कर वस्त्रपूत करलें। फिर सात पोटली बनालें।

स्वेदन विधि—निम्नलिखित तैल की एक कटोरी मे गरम करें। अब तैल मे पोटली डुबो-डुबो कर सभी अङ्गो पर सेंक करें, जहा जहा मर्दन किया है। पोटली से लगे तैल को भी मदन करते रहें।

तैल सुर्ख—मजीठ २०० ग्राम, कायफल, तज, छड़ीला प्रत्येक ४० गाम, बालछड़, नागरमोथा, सफेद चन्दन २०-२० ग्राम, तेजपत्ता लौंग, कलमी दालचीनी १०-१० ग्राम, नरकचूर २० ग्राम, छोटी इलायची २० ग्राम, कुचला २० ग्राम, जावित्री ५ ग्राम, कस्तूरी २ ग्राम, मैदालकड़ी २० ग्राम, केशर ४ ग्राम, हल्दी, दारु हल्दी, काली अगर १०-१० ग्राम, गुलाब अर्क १ लीटर तथा तिल तैल दो लीटर लें। इन सब द्रव्यो को यवकुट कर रात्रि को गुलाब अर्क मे भिगो दें। प्रातः काल उसे कलईदार पात्र में पकावे। जब आधा अर्क जल जाए तब तिल का तैल मिला कर इतना पकावें कि जल मात्र जल जाए और केवल तिल तैल रह जाय उस समय उतार छानकर बोतलो मे भरलें और एक सप्ताह भूमि मे गाड़ दें। फिर निकाल काम मे ले।

विधि—इस तैल मे से १५० मिलि० लेकर एक कटोरी में गरम करें। फिर एक पोटली लेकर तैल में डुबोकर उन सभी स्थानो पर सेक करें जहां-जहा मर्दन किया गया है।



प्रतिदिन १॥ घण्टे तक सेंक करें। सेंक करते समय पोटली से तेल शरीर पर लगता है उसे धीरे धीरे मालिश करके सुखा दें। इस प्रकार एक सप्ताह तक करे। प्रतिदिन नई पोटली लें।

२—तिला नामर्दी नाशक—

शुद्ध पारद, शुद्ध गधक, हरताल तबकिया, सफेद सोमल, कुचला, वच्छनाग, सफेद कनेर मूलत्वक माल-कागनी, जायफल, जावित्री, सफेद चिरमी, कोडिया लोबान अकरकरा, सोंठ, दालचीनी, लौंग, बडी कटेरी के फल, जमालगोटा, एरण्ड बीज, अजवायन, हरमल, बुरादा हाथी दात प्रत्येक ६ ग्राम, बीरबहूटी, केचुए सूखे, प्याज के बीज मूली के बीज प्रत्येक १२ ग्राम, शेर की चर्वी, जगली सूअर की चर्वी, मुर्गी के अण्डो की पीतता तथा चमेली का तेल प्रत्येक ६० ग्राम लें।

पारद गधक की कज्जली कर हरमल, सोमल, वच्छ-नाग को क्रमशः मिलावें। फिर शेष काष्ठादि द्रव्यो को यवकुट चूर्ण करे, उस चूर्ण के साथ हाथी दात का बुरादा बीरबहूटी और केचुए खरल कर मिलावें। पश्चात् सवको मिला अच्छी तरह मर्दन करे। जब सब एक रस हो जाय तो एक सात कपडमिट्टी की हुई बोतल में भरें और बोतल के मुँह पर लोह के तार लगा पाताल यन्त्र की विधि से तेल निकाल लें।

इस तैल मे से चने बराबर लेकर धीरे-धीरे लिंग पर मर्दन करे। सुपारी सीवन तथा वृषणो को बचाए। मर्दन के बाद पान का पत्ता कच्चे धागे से बाध दे।

परिणाम—५-७ दिन मे छोटी-छोटी फुंसिया निक-लेंगी, फफोले होंगे, तब मर्दन बन्द करदें। इन फफोलो पर तेल लगादें। ऐसा २२ दिन करें।

लाभ—हस्तमैथुन-गुद मैथुन पशु मैथुन से बिगड़ी हुई लिंग को फिर से काम के योग्य बना देता है। ढीला-पन, टेढापन और नसों की दुर्बलता को दूर करने में शर्तिया है। परम अनुभूत है।

४—बृहन्मकरमुष्टि—

अकरकरा १२ ग्राम, लौह भस्म शिगरफी, सिद्ध मकर-ध्वज, शुद्ध कुपीलु १-१ भाग, स्वर्ण भस्म १/४ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करें।

मात्रा—५०० मिग्रा०। अनुपान-पान स्वरस+मधु।

गुण—बलप्रद है। नपुसकता नाशक है।

५—आनन्द चूर्ण

असगध, गोखरु, तालमखाना, कौंच के बीज की गिरी उटंगन, श्वेत व काली मूसली, शतावर, दोनो वहमन, तोदरी, सालव मिश्री, शकाकुल मिश्री, छोटी इलायची बीज, वंशलोचन, गिलोयसत्व, तोदरी सफेद, लिसोडा, रूमीमस्तगी, भुसी ईसबगोल, ढाक का गोद प्रत्येक १२ ग्राम, त्रिवङ्ग भस्म, अभ्रक भस्म, लौहभस्म, ताम्रभस्म, रजत भस्म, कुपीलु, वैक्रान्त भस्म, स्वर्ण भस्म, हिंगुल रसायन, शुद्ध ताल, शुद्ध शिलाजीत, अग्निस्थायी गंधक प्रत्येक ६ ग्राम। चूर्ण द्रव्यो का वस्त्रपूत चूर्ण कर भस्मो सहित खरल में डाल मर्दन कर शतावर स्वरस, असगन्ध स्वरस की ५-५ भावना दे फिर एक भावना आर्द्रक रस की दें। खरल कर सुखा रखलें।

मात्रा—१ ग्राम। अनुपान—पान स्वरस।

सहपान—मिश्रीयुक्त दुग्ध।

लाभ—इस प्रकार उपचार करने से गतध्वज गये बीते नपुसको-नामर्दों को मर्द बनाया है। परीक्षा करें जीवन मिलेगा।

卐 卐 卐

धन्वन्तरि में पूर्व प्रकाशित

बाजीकरण योगों का उपयोगी संकलन

संग्रहकर्त्ता—श्री डा० प्रेमशंकर शर्मा ए. एम, बी एस.
चिकित्साधिकारी–राजकीय आयु० चिकित्सालय, तसींमो, (भरतपुर) राज०

क्लैब्यहर वटी

अभ्रक भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म, लोह भस्म, मुक्ता शुक्तिभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सिंगरफ भस्म, मल्ल चन्द्रोदय, शुद्ध कुचला, शुद्ध अफीम, शुद्ध धतूरे के बीज, जायफल जावित्री, अकरकरा, खुरासानी अजवाइन, सफेद मिर्च, इलायची के बीज, छोटी पीपल, लवंग ये सब १-१ तोला, केशर ६ माशा, कस्तूरी ६ माशा।

विधि—समस्त काष्ठादि औषधियो का सूक्ष्म चूर्ण तथा रस भस्मादि को खरल मे पृथक खरल करके क्रमश. पूर्वोक्त औषधिया मिला ले। सब वस्तुओ के मिल जाने पर तीन भावनाये अदरक के स्वरस की और तीन भावनाये पान के रस की देकर २-२ रत्ती की गोलिया बनालें।

प्रात साय १-१ गोली गर्म दूध के साथ सेवन करने से बलवीर्य की वृद्धि होकर २० प्रकार के मेह तथा नपुंसकता नष्ट होती है। योग उत्तम है।

—श्री आचार्य गयाप्रसाद शास्त्री आयु' वृह., भिषक् रत्न

रूप विलासगुटिका

शुद्ध कुचला ५० ग्राम, अकरकरा, लौंग, जायफल, जावित्री, वंगभस्म १०-१० ग्राम, केसर ५ ग्राम, अफीम ५ ग्राम, नागरवेल के १५० पान का रस निकाल उपरोक्त औषधिया घोटकर मटर से थोडी बडी गुटिका बनाले।

१ से २ गोली सुबह शाम दूध के साथ नामर्दी को दूर करती है। स्तम्मन शक्ति बढती है। जातीय (Sexual) निर्बलता को दूर करती है। उत्तेजक है।

सूचना—इसमे जो बहुमूल्य औपधिया एवं भस्म आदि हैं, निर्मल आयु०. सस्थान, अलीगढ से या किसी विश्वास-पात्र वैद्यराज से ही प्राप्त करें। वर्ना इतना लाभ नही होगा। —आर्यवैद्य श्री पं० मिलिन्द वैद्य वाच. दिवानपुरा, भावनगर (गुजरात)

मदन मञ्जरी गुटिका

अभ्रक भस्म ४ भाग, वगभस्म, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, सौठ, लवग, जावित्री, काले तिल प्रत्येक २-२ भाग, मिश्री इन सबसे आधी, घृत, मधु विषम भाग (अर्थात् दोनो बराबर न हो) सबको मिलाके चने प्रमाण गोली बनावें। प्रात साय १-१गोली गोदुग्ध के साथ सेवन करावें। ४० दिन सेवन करने से सम्पूर्ण वीर्य विकार दूर हो जाते हैं। चन्द्रप्रभा वटी एव विजयापाक भी इस रोग मे विशेष लाभ करते हैं।

नोट—धातुरोग आराम होने के पश्चात् निम्नलिखित योगो को सेवन करना चाहिये—

घृत—श्वेतगुंजा, मालकागनी, श्वेत कनेर की जड का छिलका, अकरकरा, छोटी इलायची प्रत्येक १-१ छटाक बारीक कूट पीसकर १० सेर दूध में मदाग्नि से पकावें। ६-७ सेर दूध रहने पर दही जमाकर घी निकाल लेवें। इसे २ से ४ माशे तक आधा पाव मे १ तोला मिश्री डालकर प्रात. साय पीवें। इसी को लिंग पर मल ले। और खूब घी दूध खावें पीवें।

अथवा—कुचला मालकागनी, धतूरे के बीज प्रत्येक १।-१। तोला, ५ सेर गोदुग्ध मे तीनों की पोटली बाधकर मन्दाग्नि से पकावे। पकते-पकते लाल होने पर निचोड के दही जमा दें, जब दही जम जाये तब उसे चलाकर मक्खन निकालकर घी निकाल लें। पोटली मे बचे हुए द्रव्य का तेल निकालकर इन्द्री पर मले, इससे पुरुपत्व बढ़ता है। —श्री कवि वेदव्यासदत्त शर्मा

लिंगेन्द्रिय की शिथिलता पर

श्वेतमल्ल ६ माशे लेकर २॥ तोला सूअर की बसा मे खूब घोटे। ६-७ दिन घोटने के पश्चात् उसको हल्की

अग्नि पर रखें और उसमे एक सूखी हुई लालमिर्च डालदें। जब वह मिर्च जलकर राख हो जाय तो उसको उतारकर छानलें, इस तरल को रात्रि के समय काम मे लावे।

इससे इन्द्री मे कितनी भी शिथिलता क्यो न आ चुकी हो, लगाते रहने से ठीक हो जायगी। इससे कभी-कभी इन्द्री पर दाने से हो जाते हैं, उस समय थोडा सा सौ बार का धोया हुआ घृत अथवा मक्खन उस स्थान पर चुपड दें। खाने के लिये बलानुसार रोगी को कोई अन्य औषधि दें, पर उसमे बल और आयु का ध्यान रखें।

—स्व० कविराज प्रोफेसर धर्मदत्त जी चौधरी
आयुर्वेदाचार्य, चण्डीगढ

शाही तिला

(अकबर बादशाह के समय का यह तिला है)

एक तोला मान्न बैंगन लेकर उसमे बडी सुई से छिद्र करके चारों ओर ६० बडी पीपल घुसा देवें और छाया मे सुखालें। सूखने पर सूखे केंचुए ५ तोला, रेगामाई मछली, बीरबहूटी, एकपोथिया लहसुन तीनो २-२ तोला। सबको कूटछानकर आधा सेर तिल का तेल डालकर लोहे की कढाई मे पकालें। फिर लोहे की करछली से सबको रगडकर रख छोडें। इन्द्री का अग्रभाग छोडकर प्रात सायं मालिश करके ऊपर से पान बाँध दें। नपुंसकता का निशान तक न रहेगा।

—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री प शिवचन्द्र जी राजवैद्य, हरिद्वार

नपुंसकत्वारि तिला

हस्त क्रिया से उत्पन्न विकारों को दूर करने के लिए अत्युत्तम है। इससे छाला भी नही पडता।

बादाम की गिरी, अखरोट, पिस्ता, जमालगोटे की गिरी १-१ तोला। इनको खरल मे रगडकर धूप मे रखें। जब गर्म हो जावें थोडी सी खाड इसमे डालकर ऊपर से पानी का छींटा दें। कुछ देर ऐसा करने पर तेल चमकने लगेगा। दबाकर बादाम रोगन की तरह उसका तेल निकाल लें। इस तेल को धूप मे बैठकर आध घण्टा तक रुई से इन्द्री का सिर सीवन छोडकर मालिश करें। ऊपर से पान का पत्ता ७ दिन तक बाँधें। एक-एक दिन छोड़ कर ऐसा करने से बारीक फुन्सिया निकलेगी उन्हे रुई से साफ करके मोम घी का मरहम बनाकर एक सप्ताह लगावे। सम्पूर्ण दोष दूर हो जायेंगे।

—श्री कविराज वेदव्यास दत्त शर्मा, जालन्धर (पंजाब)

अपूर्व शक्तिप्रद घृत

सफेद कन्नेर की जड, केवाच की जड १-१ सेर, विदारीकन्द, असगन्ध नागौरी, शतावरी सफेद, मूसली ये ४०-४० तोले, क्वाथार्थ जल २० सेर।

विधि—पूर्वोक्त औषधियो को जवकुट करके २० सेर जल मे ४८ घण्टे भिगोकर क्वाथ विधि से ५ सेर क्वाथ सिद्ध करना चाहिए।

कल्क द्रव्य—शुद्ध सफेद सखिया ५ तोला, शुद्ध हिंगुल शुद्ध मैनसिल शुद्ध गन्धक, शुद्ध कुचला, सीगिया, शु. शिलाजीत प्रत्येक २॥-२॥ तोला।

शु. अफीम, कपूर, केशर १-१ तोला, कस्तूरी ६ मा., सफेद चन्दन का चूर्ण, कौडिया लोबान, हाथीदांत का चूर्ण, राल सफेद, सफेद घुघुची, छोटी कटेरी के बीज, शुद्ध धतूर के बीज, बडी इलायची के बीज, मालकागनी, कूठ, छोटी पीपल, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, लौंग, जायफल, जावित्री, भाग से १७ द्रव्य समान भाग प्रत्येक २॥-२॥ तोला ले।

काष्ठादि औषधियो तथा सखिया आदि को कूटपीस छानकर चूर्ण बनाना और उसे किसी बडे खरल मे डाल कर दुग्ध के योग से कल्क बनाना। कल्क बन जाने पर २५ सेर के किसी बडे ढक्कनदार पात्र मे पूर्व सिद्ध काढा ५ सेर, गौ दुग्ध २॥ सेर, मूर्छित (गर्म करके शीतल किया हुआ) गाय या भैंस का उत्तम घी १ सेर तथा कल्क आदि सभी द्रव्यों को डालकर पात्र का मुख बन्द करना। उसे अग्नि पर चढाना और मध्यमाग्नि के द्वारा घृत सिद्ध के प्रकार से घृत सिद्ध करना। जलीयांश जल जाने पर और कल्क पक जाने पर घृत को अग्नि से उतारकर और छानकर साफ शीशे के बर्तन मे रख लेना चाहिये। भोजन के अनन्तर १ से २ रत्ती तक इस घृत को लगे हुए पान मे खाने तथा लिंगेन्द्रिय पर मालिश करने से पुरुषत्व की प्राप्ति होती है।



नोट—केवल कल्क द्रव्यो को ४० तोला घृत मे मसल कर पाताल यन्त्र के द्वारा भी घृत सिद्ध किया जा सकता है। यदि उपर्युक्त विधि से घृत सिद्ध किया जाय तो घृत के पकने के समय विष द्रव्यो की भाप से आख और मुख की रक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। पात्र के मुख पर ढक्कन रखकर और उसकी सन्धि को गेहू के सने हुए आटे से बाद कर यदि घृत को पकाया जाय तो अधिक अच्छा है। १०-१२ घण्टे क्रमश मन्द तथा मध्यम अग्नि देने से अत्युत्तम घृत सिद्ध होता है।

—आचार्य श्री गगाप्रसाद शास्त्री आयुर्वेद बृहस्पति,
प्रिंसिपल—श्री नागार्जुन आयुर्वेद विद्यापीठ
मुरलीधर बाग, हैदराबाद

लिंग तेलों का सरदार

श्वेत संखिया, पीत सखिया, काला सखिया, लाल सखिया प्रत्येक ६-६ माशा इन सबको सिंह वसा (यदि न मिले तो ऋक्ष वसा) के साथ खरल करे। ६ माशा चर्बी मिलाकर एक दिन खरल करे। इसी प्रकार १० दिन तक करे। फिर—

पान १० नग, जायफल १ नग, जमालगोटा ५ नग बादाम गिरी १० नग, अकरकरा श्वेत, मोम, रेगमाही नर, लौहबान का जौहर ये सब ६-६ माशा, केशर, जावित्री ३-३ मा, पिस्ता गिरी १२ मा, वानर पुरीष, मालकागनी १-१ तोला, कुचला १ नग, गोदबोल (गधे के पेशाब के नीचे की गाद) ५ तोला सबको एकत्र करके खरल करें और छोटी-छोटी गोलिया आतशी शीशी मे डालकर पाताल यन्त्र द्वारा तेल निकालें। तिलाओ का बादशाह तैयार है।

गुण—किसी नस पर मलो। तेल खपने पर वह नस तत्काल कठोर मालूम होगी। ७ दिन के भीतर ही पर्याप्त बल उत्पन्न हो जाता है। रग इसका लाली पर होता है। यदि काला हो जावे तो समझो कि कुछ खराब हो गया है।

—स्व० प० ठाकुरदत्त शर्मा, अमृतधारा, देहरादून

आनन्द विहार वटिका

१—अकरकरा, ककोल मिरच, जायफल, जावित्री, मुलहठी, मलयागिरि चन्दन, लौंग, कलमी तज, उड़द की दाल प्रत्येक १-१ तोला, केशर, गुडुच का सत्व, कपूर प्रत्येक ६-६ माशा, भाग धुली हुई २॥ तोला, मिश्री ५ तोला। सबको कूट पीस छान कर उसमे इतना शहद डालें कि वह चूर्ण गोली बनाने योग्य हो जाय। तब उसकी बेर के बराबर गोली बना चन्दन के चूरा मे लपेट-लपेट कर किसी उत्तम पात्र मे रखलें।

गुण—प्रात साय दूध के अनुपान से १-१ गोली लें और सयम से रहे तो नि सन्देह धातु पुष्ट हो, वाजीकरण हो, स्तम्भन हो। —श्री अम्बिकाप्रसाद अवस्थी

उड़द की खीर

उडद की दाल घी मे भून कर दूध में पका कर रोजाना खाया करें, तो वीर्य बढ़ेगा और गाढा होगा। यह शीघ्रपतन को भी हितकर है।

नारियल के लड्डू

जावित्री, जायफल, केशर तीनो ६-६ माशा, ईसबगोल की भुसी १ तोला। एक नारियल लेकर इसमें छेद कर और उपर्युक्त चारो चीजें डाल दे, फिर वही नारियल का टुकडा लेकर वहा जरा सा आटा लगा दे और उसे ५ सेर दूध मे इस गोला (नारियल) को डाल दें और साथ ही छोहारा, चिरौंजी, अखरोट की गिरी, बादाम की गिरी, नारियल की गिरी प्रत्येक १-१ छटाक डाल दें। जब खोया हो जावे तो उतार कर पीस लें और बारीक होने पर दो सेर के लगभग मिश्री पीस कर मिला देवें। एक-एक छटाक के लड्डू बनावे। आधा या एक नित्यप्रति दूध के साथ खावें। शक्कर आना, शुक्रमेह और शीघ्रपतन को दूर करता है। शक्ति देता है, वीर्य को गाढा करता है और स्तम्भन पैदा करता है।

पुंस्त्ववर्धक खीर

उड़द की धुली हुई दाल दो सेर, कौंच की गिरी दो सेर दोनो को कूट छान कर गाय के घी मे भूनें। एक तोला लेकर पाव भर गाय के दूध मे जोश देकर मिश्री मिला कर पीवें।

चंडालिनी योग

सफेद पुनर्नवा की जड को सेमल के रस की सात भावना देवें। फिर इसके बराबर सेमल का गोद और

दोनो के समान गन्धक मिलावे । चूर्ण करके रख ले । ३ माशा सेवन करे । पीछे यथेष्ट दूध पीवें । रमणार्थ यदि यदि स्त्री पास न हो तो मृत्यु हो सकती है ।

बूढों को युवा बनाने वाला योग

छुहारा चूर्ण ४० तोला, उडद की धुली हुई दाल का चूर्ण ४० तोला, इमली बीज की गिरी, जामुन की मीगी, तालमखाना, मोचरस, कलमीतज, बडी इलायची के दाने बहमनलाल, इद्रयव पिष्ट, उटङ्गन बीज, शालम मिश्री, शकाकुल मिश्री, ढाक का गोद, कीकर का गोद, बिनौले की गिरी, तोदरी श्वेत, बीजवन्द, चमडालाल, ऊटकटारा मूल प्रत्येक १-१ तोला । सेमल मूसली २ तोला, भुने चने छिलका सहित २ तोला । अन्जीर विलायती ६ माशा, रूमी सोफ २ माशा । पहले छुहारो के टुकडे टुकडे करके खटाई के रस मे जिसको लोग मटकटैया भी कहते हैं, ३ दिन तक भिगो रखें, फिर शुष्क करके चूर्ण करे ।

उडद की दाल रात्रि को गाय के दूध मे मिश्री भिगो कर प्रात साफ करके छाया मे शुष्क कर ले और पीसले, फिर दोनो को घृत मे भूने । जब लाल हो जावे तो सबका चूर्ण करके एकत्र करें ।

एक पाव पारद को ५ सेर पानी मे औटावें । जब एक सेर पानी शेष रहे तो उतार कर पारा पृथक करे । और सब औषधियो के समान भाग मिश्री इस पानी मे घोले और चाशनी तैयार करें । जब तैयार हो जावे तो थोडा गुलाब या केवडा सुगन्धि के लिए डालकर सब औषधियो को डाल दें और ऊपर से बादामगिरी, चिरौजी, गिरी, पिस्तागिरी, नारियल गिरी सब १-१ तोला, दाख ४ तोला डालकर २-२ तोला के मोदक बनावे और प्रात काल ही बासी मुख एक मोदक खाकर ऊपर से आधा सेर दूध पीवें । २१ दिन तक स्त्री-सहवास न करें । कई बार का अनुभूत है । यदि युवको के लिए बनाना हो तो पारा का पानी आवश्यक नहीं है । केवल जल ही डाले ।

वृद्धावस्था में शक्तिवर्धक मोदक

कद्दू, तरबूज, पेठा, घिया खरबूजा, खीरा, ककडी, काहू इन सबके बीजो की गिरी हर एक १०-१० तोला ले । कीकर का गोद ४० तोला, मखाने की खील २० तोला इन सब चीजो को घी मे तल ले । इतना ही भूने जिससे कूटने पर बारीक हो जायें । सब गिरियो को एक जगह और गोद व मखाना को जुदा-जुदा भूने । फिर खूब भूनकर और कूटकर सबको मिला ले और दो सेर मिश्री की चासनी करे और तार बनने पर सबकी सब चीजे मिला दे । इन सबको मिलाकर अच्छी तरह ठण्डी होने पर २-२ तोला के लड्डू बाध ले । एक खुराक मे एक लड्डू दे । जो अधिक पचा सके, वह अधिक भी खा सकता है । जिनको एक भी न पच सके वह इससे भी कम खावे । ऊपर से जरा गरम दूध मिश्री डालकर पीवें । यह हर प्रकृति के अनुकूल होते है और प्रत्येक ऋतु मे खाये जा सकते हे । बालकों को बाजारू लड्डुओ की जगह यही लड्डू दिया जावे तो बहुत पौष्टिक होता है । इन्हे प्रत्येक ऋतु मे जो लोग खावेगे उनको शिर पीडा और कटि पीड़ा न होगी । यह एक प्रकार का उत्तम रसायन है और अत्यन्त उत्तम स्वादिष्ट बनते हैं ।

उड़द के लड्डू

उडद की दाल का आटा, गेहू का आटा दोनो २०-२० तोला, छिलका उतारा हुआ जौ का आटा और चावलो का आटा २०-२० तोला । इनको कढाही मे गाय का घी डालकर भूनले । फिर २ सेर खाड की चाशनी तीन सेर पानी मे डालकर करे । जब यह चाशनी पाक बनने योग्य हो जावे तो उपर्युक्त चीजे इसमे डाल दे और १-१ छटाक के लड्डू बनावे । रात को खाकर ऊपर से दूध पीवे । खट्टी, खारी वस्तुओ से परहेज करे । इसके सेवन से वीर्य गाढा होता है और बहुत शक्ति आती है ।

शक्तिदायक पूरी

उडद और चावलो को पीसकर आटा बनावे और इस आटे को गूथकर पूरी बनाकर घी मे तल लेवे । नमक आदि के बिना यह पूरी खाकर ऊपर से दूध (शहद और मिश्री मिला हुआ) पीवे तो बहुत शक्तिदायक है । ऐसी वस्तुये तो नवावराजे बहुधा ही खाते रहते हैं ।

वृद्धावस्था मे शरीर तथा मस्तिष्क पुष्टिकर

(वीर्य गाढ़ा करने वाली तथा पौष्टिक पन्निया)

उड़द की दाल (धुली हुई) लेकर चक्की मे पीसलें । उडद का आटा ३ सेर, घी ३ सेर, गोद कीकर, गोद मिम्बरी, बादाम की गिरी तीनो १-१ पाव । चारो मगज



किशमिश दोनों १०-१० तोला। नारियल; छोटी इलायची पिस्ता तीनों १-१ छटाक। खाड ४ सेर खोया १ सेर। जब यह फूलकर तल जावें और लाली आ जावे तो शीघ्र निकाल ले। फिर गोंद मिस्वरी डाल दें। यह डालते ही फूल जाता है। ख्याल रहे कि जल न जावे। इसको भी निकालकर पृथक रखले। बादाम की गिरी पानी मे भिगो कर छीलले और किशमिश को कुतर लें। फिर घी मे आटा (उडद की दाल) भूने। जब आधा भुन जावे तो खोया डाल दे और भूने। जब यह सब लाल हो जावे तो उपर्युक्त सब चीजें मिलाकर ४॥ सेर खाड की चाशनी एक तारी करके सब उसमे डालदें और पृथक रखे। जब ठण्डी होकर गाढी हो जावे तो पिन्नियां बनावें और एक चिकने वर्तन मे रखे। चादी या सोने के वर्क जो मिलाना चाहे मिलालें। प्रतिदिन छटाक या आधा पाव तक खाया करें। ऊपर से दूध पीवे तो अच्छा है। इससे वीर्य गाढा होता है। मस्तिष्क की पुष्टि होती है और मस्तिष्क की निर्बलता के कारण वृद्धावस्था मे जो सिर पीडा हो तो वह भी दूर होती है।

वृद्धावस्था में शारीरिक तथा दिमागी शक्ति बढाने और अन्य शारीरिक निर्बलताओं को दूर करने वाला अनुभूत प्रयोग

मिस्वरी गोंद जिसे सेंचिया गोंद या चीनियां गोंद कहते हैं, ३२ तोले लेकर खूब साफ करके और तनिक बारीक पीस लो, घी अधिक हो तो हरज नहीं। फिर बादाम की गिरी का छिलका उतारकर उसमे ३२ तोले घी डालकर खूब बारीक पीस लो और इतना ही खोया (गाय-दूध का) ले लो। फिर २० तोले मिश्री की चाशनी करके जब तार की सूरत मे आ जावे, तो इसमे एक माशा सौंफ या पिपरमेंट तेल डाल दो और खूब ही हिलाकर सबसे पहले पिसे हुए गिरी बादाम डालकर खूब हिलाकर और फिर खोया और पिसी हुई इलायची तथा मिस्वरी गोंद डालकर, खूब हिला मिलाकर घी से तर किये हुए थाल या परात मे जो कि काफी चौडी हो, उलटाकर चारो ओर फैलाकर ऊपर मे सब ओर चादी के वर्क लगा दो, आधा घण्टा के बाद चाकू से बर्फी की तरह टुकड़िया काट लो। १०-१० तोला प्रातः-साय खाकर ऊपर से गाय का दूध पीवें। इससे बहुत शक्ति बढेगी। बाजारू मिठाइया जो कि पाचन शक्ति को बिगाडती हैं, इसके खाने से छूट सकती है। बालकों की दिमागी तथा शारीरिक शक्ति के लिए बहुत ही अद्भुत हैं। जो हठी बाजारू मिठाई खाने का स्वभाव डाल लेते हैं, उनके लिए बहुत हितकर है और दिमागी काम करने वालो के लिए परीक्षित है। शरीर के बहुत से रोग जैसे—वीर्य का पतला होना, बवासीर खूनी व बादी, कमर का दर्द, शिर दर्द, पाचन शक्ति की कमी आदि मे हर एक के लिए लाभकारी है।

यह बूढो की शिर-पीड़ा दूर करने का बहुत ही अच्छा और अद्भुत योग है।

जलेबी

उडद (धुले हुए) का आटा, निशास्ता मैदा, सफेद मूसली का आटा, कतीरा बारीक किया हुआ प्रत्येक १-१ सेर। बादाम, पिस्ता, खीरा की गिरी, रीठा की गिरी, नारियल, बडा मुनक्का, छुआरा, इलायची का दाना प्रत्येक १-१ तोले, जायफल, जावित्री, पान की जड़, तीनो २-२ माशा, केवडा २ तोला। उडद का आटा, निशास्ता मैदा, सफेद मूसली का आटा, कतीरा एक वर्तन मे डालकर गाय के १ सेर दूध मे बादाम, पिस्ता, खीरा, रीठा, नारियल के बीज निकालकर, मुनक्का, छुआरा, तथा इलायचीदाना खूब पीस-छान लिया जावे और यह दूध आटे मे मिलाकर जावित्री, जायफल, केवडा, पान की जड डालकर गरम जगह मे रख लिया जावे। जब खमीर उठ आवे तो किसी हलवाई से जलेबी बनवाली जावें। यह काम अभ्यास पर निर्भर है। मगर इसकी तरकीब यह है कि यदि खमीर तैयार हो जावे तो थोडा मैदा और मिला लिया जावे और एक कपड़े मे छेद करके खमीर इसमे मिलाकर जलेबी की तरह गरम किए हुए घी मे छोड़कर तलती जावे और उसी समय चाशनी मे छोडते जावें और निकालकर सुरक्षित रखते जावे। यह अद्भुत पुंसत्व शक्ति देने वाला और शरीर के लिए पुष्टकर योग है, जिसको खाने मे बहुत स्वाद आता है। एक-दो जलेबी प्रातःकाल निराहार ही दूध मे डालकर खा लिया करें। खटाई तथा

मैथुन से पहहेज रखे। यह शरीर को पुष्ट करने वाला अद्वितीय योग है।

—स्व० प० ठाकुर दत्त शर्मा
अमृतधारा, देहरादून

विषनिन्दुकादि वटी

शुद्ध कुचला ४ तोला, रससिंदुर, लवङ्ग, शीतलचीनी, लोह भस्म चारो १-१ तोला।

विधि—दशमूल के क्वाथ की सात भावना देकर मूंग के बराबर गोली बनावे। मात्रा—१ गोली।

अनुपान—बटदुग्ध को लेकर छुआरे की गुठली निकाल कर उसमे दूध भर लेवे। यदि ताजा दूध मिलने मे असुविधा हो तो तीन दिन के लिए छुआरो मे दूध भर रख लेवें। ताजा दूध मिले तो अत्यन्त लाभदायक है। दूध से पूर्ण छुआरे के ऊपर गोली रखकर प्रात और रात्रि के समय सेवन करे। ऊपर से गोदुग्ध एक पाव पीवे।

गुण—वात सस्थान के सब विकार, निद्रानाश, शिरोवेदना मे लाभकारी है।

चन्द्रप्रभावटी की सेवन-विधि

शीतलचीनी का चूर्ण ३ माशा लेकर उसके साथ चन्द्रप्रभावटी १-१ गोली जल के साथ सेवन करे।

—श्री प्रोफेसर बालकराम जी शुक्ल आयु०,
शुक्ल चिकित्सालय, ऋषीकेश (देहरादून)

शतावर्यादि चूर्ण ३ माशा, स्वर्ण वग १ रत्ती, त्रिवंग भस्म २ रत्ती, यह तीनो मिलाकर १ मात्रा है, मधु के साथ देनी चाहिए।

चन्द्रप्रभा वटी, शुक्रमातृका वटी या चन्द्रकला रस, का भी साथ ही साथ सेवन कराया जा सकता है।

—कवि० श्री महेन्द्रनाथ जी शास्त्री, ममफोर्डगज, प्रयाग

असगन्ध नागौरी ५ तोले, शतावर ५ तोले, प्रवाल भस्म १ तोला, वंशलोचन १ तोले, कूजा मिश्री १० तोले।

अगर क्षीणता अधिक हो तो लोह भस्म १ तोला ले सकते हैं। इसकी १॥ से ३ माशा तक की खुराक दूध के साथ दिन मे दो बार ले, लाभकारी है।

—कवि० श्री अशोककुमार आयुर्वेदालंकार, मुल्तान शहर

असगंध आध पाव, शतावर पाव भर, सफेद मूसली डेढ पाव, सेमर का मूसला २ पाव, बबूल का गोद १ छटाक, खाड १ सेर। सबको कूट छानकर उसमे से ३ तोले चूर्ण नित्य गाय को आध सेर आटे की रोटी के साथ दे दिया जाय तो ऐसी गाय का दूध सोने मे सुगन्ध का काम करता है।

—श्री डा० कृष्ण विहारीराय, इलाहाबाद।

योग—हरिद्रा चूर्ण १ तोला, ताजे आवले का रस १ तोला, जायफल, जावित्री, लौंग २-२ माशा, वंशलोचन, श्वेत मूसली २-२ माशा, वंग भस्म, गेरू रक्त १-१ तोला।

इन सब दवाओ को बारीक पीस कर ३ तोला शुभ्रा भस्म मिलाकर खूब घोटे, जितना अधिक घोटेंगे उतना ही फायदा होगा। ३ ग्राम (३ माशा) दवा, १ तोला शक्कर मिला कर पानी के साथ दिन मे तीन बार लेने से शीघ्र पतन, स्वप्न दोष, सिर दर्द, कमर दर्द, चक्कर आना व वीर्य दोष चाहे स्त्री का रज दोष हो दोनो मे फायदा करता है। इसके ३-४ दिन के सेवन से ही फायदा मिल जाता है परन्तु पूर्ण लाभ के लिए २१ दिन सेवन करें।

पथ्य—केवल गरम मिर्च मसाले व कब्जकारक भोजन छोड कर सब हल्के भोजन सेवनीय हैं। सहवास का भी परहेज रखें। —श्री डा० एस० नारायण हरी
शमशाबाद (म० प्र०)

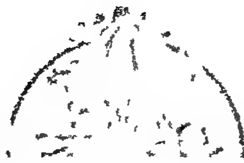
वृद्धावस्था में तरुणजीवन चूर्ण

असगन्ध, शतावरी, मुलहठी, बड़ी हरड, गोखरू, काली मिर्च, ईसबगोल की भूसी बराबर की मात्रा मे लेकर कूटपीस कर शीशी मे भर लेवें।

मात्र—सुबह शाम ४-४ माशा दूध से लेवे।

गुण—धातु पौष्टिक, वीर्य वर्धक, स्वप्नदोप, शीघ्र पतन नाशक, शक्तिदायक एवं पौष्टिक योग है। इसके खाने से कब्ज नही रहती है, भूख मे कमी नही आती है। ४१ दिन लगातार लेने से पूर्ण रासायनिक कार्य करता है।

—श्री वैद्य लक्ष्मीचन्द्र जमोरिया, नसीराबाद (राज०)



शीघ्र पतन से बचने के लिए वीर्य का शुद्ध अर्थात् गाढ़ा व ठण्डा होना अति आवश्यक है। यदि आपका वीर्य पतला तथा गर्म हो तो निम्न प्रयोग कम से कम ११ दिन तक अवश्य सेवन करें।

त्रिफला १ तोला, [illegible] १ तोला, कबाबचीनी २ तोला, फिटकरी भस्म ३ तोला।

मात्रा— ३ से ७ माशा ठण्डे जल के साथ दिन में ४ बार। इस प्रयोग से वीर्य की गर्मी निकल जायेगी।

२—वीर्य को गाढ़ा करने के लिए अकरकरा १ तोला, तुखमरिहा ८ तोला, मिश्री ६ तोला का कपड़छन चूर्ण बनावें। १-१ तोला चूर्ण सुबह शाम गोदुग्ध से ४० दिन तक सेवन करें। इससे वीर्य गाढ़ा होकर स्खलन का समय बढ़ जायेगा। जिन लोगों का वीर्य शुद्ध है वे मैथुन के १ घन्टा पूर्व १ तोला चूर्ण दूध से सेवन करें। पर्याप्त स्तम्भन होगा। यह प्रयोग [illegible] शरीर को मोटा करने वाला भी है।

अन्य प्रयोग—

मालकांगनी १ भाग, दालचीनी १ भाग, अकरकरा १ भाग, लौंग १ भाग, जायफल १ भाग, जावित्री १ भाग, रेगमाही ४ भाग, भीमसेनी कपूर १/८ भाग, पीस कर समान चूर्ण करके दो भाग करें। एक भाग में शुद्ध भांग १/८ भाग तथा दूसरे भाग में सुहागा १/८ भाग मिलावें। इसमें से भांग मिश्रित औषधि १ माशा लेकर रात में [illegible] खावें तथा दूध पीवें। सुहागा मिश्रित दवा [illegible] निकालकर सेवन करें। १ घण्टे बाद कपड़े से इन्द्री को पोंछकर विषय करें। इस प्रयोग से स्त्री को योनि में विचित्र प्रकार की अनुभूति होती है और वह शीघ्र ही स्खलित हो जाती है।

—वैद्य श्री उमानन्द [illegible]
गोपीपुरा, इन्दौर सिटी

—+—

धन्वन्तरि

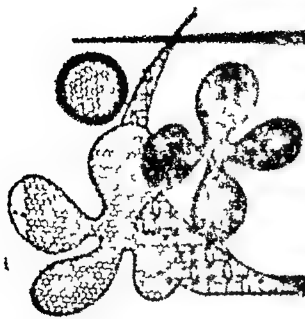
जराव्याधि चिकित्साङ्क

चिकित्सा खण्ड

फरवरी+मार्च १९८१

—प्रकाशक—

निर्मल आयुर्वेद संस्थान अलीगढ़



जरावस्था निवारणोपाय:





परमादरणीय श्री स्वामी जी का 'धन्वन्तरि' के प्रति अपार स्नेह है। इस वर्ष आपने 'धन्वन्तरि' के अनेकों ग्राहक बनाये हैं तथा आगे भी बना रहे हैं। आपके गुरु श्री गदाधरदास जी देवधुनी (उ० प्र०) हैं। गुरुदेव की कृपा से योग क्रिया मे रम गये तथा सभी तीर्थों की पैदल यात्रा की। अब आप अमरावती कटक मे सिद्धाश्रम मे निवास कर रहे हैं। आपने नमक मिर्च आदि मसालो का परित्याग कर दिया है तथा अत्यन्त सरल भक्तिमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

आपने वृद्धावस्था के निवारण के सरल उपाय बताये हैं। यह उपाय अत्यन्त सरल एवं कारगर हैं। आशा है कि पाठको को यह रुचिकर प्रतीत होगे तथा श्रद्धेय स्वामी जी भी 'धन्वन्तरि' के प्रति अपना कृपाभाव रखते हुए तथा नित नवीन ग्राहक बनाते हुए अपना प्रेम बरसाते रहेंगे।

—दाऊदयाल गर्ग (सम्पादक-धन्वन्तरि)

१. विगत घन निशीथे प्रातरुत्थाय नित्य
पिवत खलु नरो यो नासिका रन्ध्रवारि. ।
स भवति मति पूर्णा चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो
वलि पलित विहीनै सर्व रोगै विमुक्त ॥

सबसे सुगम सुलभ व सुन्दर रसायन ऊष पान करना है। सूर्योदय के पूर्व ही ब्रह्म मुहूर्त मे उठकर मिट्टी पात्र में रखा हुआ शीतल बासी जल नासिका या मुख से पीना चाहिये। इससे मनुष्य महा बुद्धिमान, सर्प जैसी तीव्र दृष्टि वाला, शरीर सिकुड़न व मुख की झुर्रियो से रहित, कृष्ण केशी कान्तिमान नवयुवक बन जाता है। सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

२. अभिवादन शीलस्य नित्य वृद्धोपि सेविन.।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोवलम् ॥

यद्यपि वर्तमान युग में शिक्षित समाज इस नियम की उपेक्षा कर रहा है तद्यपि आर्ष ग्रन्थो में वर्णित यह नियम महर्षियो द्वारा अनुमोदित है। अपने गुरुजनो को सादर प्रणाम करने, उनके सामने विनम्र रहने तथा उनकी आज्ञा मानने व सेवा करने से आयु, विद्या, यश एव बल चारो की सदा वृद्धि होती रहती है। इन चारो के प्रभाव से अवस्था स्थिर सी हो जाती है। बुढ़ापा जल्द नहीं आने पाती।

३. शीतोदक पय क्षौद्र [घृत मेकैक शोद्विश।
त्रिश समस्य मथवा प्राक्पीत स्थापयेद्वय ॥

मिट्टी पात्र में रखा हुआ शीतल वासी जल, धारोष्ण गौदुग्ध, शुद्ध शहद एव गोघृत। इन चारो में से किसी भी एक को, या किसी भी दो को, या किसी भी तीन को, या चारो को मिश्रित कर नित्य प्रात रसायन विधि से सेवन करने से युवावस्था बनी रहती है। [किसी आचार्य के मत से जल, दुग्ध, शहद व घृत क्रमशः शीत, पीत, कफ एव वात प्रकृति वालो को सेवन करना चाहिये।

४. मक्षिकेण तुगाक्षीरी, पिप्पल्या लवणेन च।
त्रिफला सीत या वापि युक्त सिद्ध रसायनम् ॥

नित्य प्रात साय २ मासा शहद में ६ मासा वंशलोचन या १ माशा पिप्पली चूर्ण में ६ मासा सेंधानोन या ६ मासा त्रिफला चूर्ण में सममाग मिश्री मिलाकर सेवन करते रहने से युवावस्था बनी रहती है। यह सर्वोत्तम सिद्ध रसायन है।

५ पुनर्नवास्यार्द्धपल नवस्य, पिष्ठ पिवेद्य पयसार्द्धमासम्।
मासद्वय तत्त्रिगुण समवा, जीर्णोपि भूय पुनर्नव स्यात् ॥

जो नित्य प्रात काल कम से कम १५ दिनो तक पुनर्नवा (पत्थर चट्टा) बूटी को जड़ समेत उखाडकर ताजे पचाग को कल्क बनाकर २ तोला मात्रा मे गौदुग्ध के साथ सेवन करता है वह युवावस्था स्थिर कर लेता है तथा जो कम से कम दो मास से १२ मास तक बराबर सेवन करता है तथा केवल दुग्ध साठी चावल का आहार करता है तो वह वृद्ध मनुष्य भी पुन. नवयौवन प्राप्त कर लेता है।

६ ये मास मेक स्वरस पिवन्ति दिने-दिने भृङ्गरज समुत्थम्
क्षीराशिनस्ते वलवीर्य युक्तो समाशत जीवनमाप्रवन्ति ॥

जो नित्य प्रात.काल भृगराज (भागरा घमीरा) बूटी का ताजा स्वरस बलानुसार १ तोला से ३ तोले तक समभाग दूध के साथ मिलाकर पीता है तथा पच जाने पर केवल गौदुग्ध आहार करता है वह केवल एक मास में ही वलवीर्य से युक्त हो हृष्ट पुष्ट हो दीर्घायु प्राप्त करलेता है।

७. धात्री तिलान्भृंग रजो विमिश्रान्
ये भक्षयेयुर्मनुजा क्रमेण ।
तेकृष्ण केशा निर्मलेन्द्रियाश्च
निर्व्याधयो वर्ष शत भवेयु ॥

सूक्ष्मीकृत भृगराजस्यचूर्णं तिलार्द्धक चामलकार्द्धक च।
सशर्कर भक्षयन्तो गुडैर्वा न तस्य रोगा न जरा न मृत्यु ॥

भृंगराज पचाग का छायाशुष्क कपडछन चूर्ण २ भाग, काली तिलका चूर्ण १ भाग, आवला का कपड़छन चूर्ण १ भाग, तीनो के बराबर मिश्री या खांड़ या पुराना गुड मिलाकर बलानुसार १ तोला से २ तोला तक नित्य प्रात काल खाकर ऊपर से गौदुग्ध धारोष्ण या कदूष्ण पीवे तथा भोजन केवल दूध भात खाये पथ्य से रहे तो सभी रोग दूर हो, युवावस्था स्थिर हो, बुढ़ापा आने ही न पावे तथा दीर्घायु प्राप्त हो।

८ शतावरी मु डितिला गुडूची सहरितकर्णा सहतालमूली।
एतानि ऋत्वा सममाग युक्तान्याज्येन किंवा मधुना वलिह्यात्।
जरा रुजामृत्यु विमुक्त देहो भवेन्नरो वीर्य वलादि युक्त।
विभाति देव प्रतिम सनित्य प्रभामयो भूरि विवृद्धि बुद्धिः

शतावरी, गोरखमुण्डी, कालीतिल, गिलोय, हस्तीकर्ण



(पलास या एरण्ड की जड) एव काली मूसली इन छहो औषधियो का चूर्ण कपडछान कर बराबर-बराबर तौलकर मिला लें। इस मिश्रित चूर्ण को बलानुसार १-२ तोला को गौघृत तथा शहद में मिलाकर चटनी जैसा बनाकर नित्य प्रातः काल सेवन करे। ऊपर से मीठा कदूष्णदूध पीवे सो सभी रोग दूर हो, शरीर हृष्ट पुष्ट तथा देवता जैसा कान्तिमान हो जाय। बुढापा दूर हो जाय एव महाबुद्धिमान तथा दीर्घजीवी हो जाय।

९ पीत्वाश्वगधा पयसार्द्धमास
घृतेन तैलेन सुखाम्बुनावा।
वीर्यस्य पुष्टिं वपुसो विधत्ते
वालस्य सस्यस्य यथावुवृष्टि ॥

नागौरी असगध का कपडछन चूर्ण बलानुसार आधा तोला से एक तोला मात्रा को केवल कदूष्ण दूध या केवल सुहाता-सुहाता गर्म गौघृत या मात्र गर्म काली तिल के तैल या केवल कुनकुना गर्म जल किसी भी एक के साथ प्रात. साय केवल एक पक्ष यानी १५ दिन तक ही सेवन करे पथ्य से रहे भोजन मे केवल दूध भात करे तो दुर्बल मनुष्य भी हृष्ट पुष्ट मोटा ताजा हो जाय जिस प्रकार धान का नया पौधा वर्षा का जल पाकर हरा भरा मोटा हो जाता है।

१० गुडेन मधुनाशुठ्या कृष्णया लवणेन वा।
ये द्विखादन्सदापथ्ये जीवेद्वर्ष शत सुखी ॥
सिन्धूत्थ शर्करा शुण्ठी कणा मधु गुडै क्रमात्।
वर्षादिष्वभयाप्राश्या रसायन गुणैपिणा ॥

जो नित्य बीजरहित बड़ी हर्र का कपड़छना चूर्ण मात्रा ४ माशा को निम्नाकित विधि से सेवन करता है वह इस रसायन के प्रभाव से सर्व रोग रहित होकर युवा बना रहता है तथा दीर्घायु प्राप्त करता है।

सेवन विधि—

वर्षा (श्रा० भा०)—	१ माशा	सेंधानोन के	साथ
शरद (क्वा०का०)—	४ ,,	खाड (मिश्री)	,,
हेमन्त (अ० पौ०)—	१ ,,	सोंठ	,,
शिशिर (मा फा.)—	१ ,,	पीपर	,,
बसन्त (चै० वै०)—	१ ,,	शहद	,,
ग्रीष्म (ज्ये० आ०)—	४ ,,	पुराना गुड़	,,

इस योग को खाकर ऊपर से थोडा शीतल जल पी लेवें।

११. शीताम्बु पूरित मुख प्रति वासर यो
वार त्रयेऽपि नयन द्वितिय जलेन।
सिंचत्यसौ स मुदमेति कदापि नाक्षि
रोग व्यथा विधुरता भजते मनुष्य. ॥

जो नित्य नियम से प्रातः मध्यान्ह एव साय काल अपने मुख मे शीतल जल भरकर दूसरे शीतल जल से, दोनो नेत्रो को खोलकर उनमे युक्तिपूर्वक (छींटा) छपका मारता है उसके नेत्रो के जाला धुन्ध आदि सभी रोग नष्ट होकर दृष्टि तीव्र हो जाती है। मुखमण्डल की झुरियां नष्ट होकर चेहरे की शोभा बढ़ जाती है। चित्त प्रसन्न हो जाता है—वृद्ध मनुष्य भी युवावस्था का आभास पाने लगता है।

कतिपय एकांगिक व्यायाम जिनके द्वारा अंशतः बुढ़ापा दूर रखा जा सकता है

(१) केवल शिर मात्र का व्यायाम—

पद्मासन से बैठकर सारे शरीर को स्थिर रखकर केवल शिर को अर्द्धवृत्ताकार रूप मे घुमाना चाहिए।

अ—प्रथम शिर को गर्दन पर जल्दी-जल्दी दायें-बायें दोनों ओर इस प्रकार घुमायें कि ठुड्डी दोनो ओर घूमकर कन्धो पर केहुनी के सम्मुख हो जाया करे।

ब—शिर को अपने आगे पीछे जल्दी-जल्दी इस प्रकार घुमावें कि ठुड्डी सामने छाती को, तथा पीछे शिर कन्धा को छू लिया करे।

स—शिर को कन्धो की तरफ दोनो ओर इस प्रकार जल्दी-जल्दी मोढो कि दाहिनी कनपटी दायें कन्धे को, बाईं कनपटी बायें कन्धे को छू लिया करे।

विशेष सूचना—इन तीनो का अभ्यास बलानुसार कम से कम ५ अधिक से अधिक ४० बार करना चाहिए।

इस अभ्यास से गर्दन के ऊपर की सभी इन्द्रियां नेत्र, कान, मुख, शिर की नसें सशक्त बनी रहती हैं। मुख मण्डल की कांति बढ़ती रहती है—गले के पास की सूक्ष्म ग्रन्थियां क्रियाशील रहती हैं।

(२) केवल नेत्रो का व्यायाम—

पूर्ववत् पद्मासन पर बैठ सभी अंगो को, शिर को

क—दायें-बायें दोनों ओर जल्दी



ख—ऊपर-नीचे दोनों ओर जल्दी



ग—तिरछा-तिरछी दोनों ओर जल्दी



घ—तिरछा-तिरछी विरुद्ध-दिशा दोनों ओर जल्दी



ङ—ऊपर-ऊपर अर्द्ध-वृत्त दोनों ओर जल्दी



च—नीचे-नीचे अर्ध-वृत्त दोनों ओर जल्दी



छ—पूर्ण वृत्त दायें से बायें



ज—पूर्ण-वृत्त बायें से दायें



स्थिर रख केवल नेत्र की पुतलियों को अपने अपने गोलक में ही घुमाना चाहिए।

विशेष सूचना—आठों में से प्रत्येक अभ्यास कम से कम १२ बार तथा अधिक से अधिक २४ बार करे, अधिक नहीं। प्रत्येक दो के मध्य विश्राम नहीं करना है। आठो अभ्यास के बाद—

झ—दोनो हाथों की हथेली, गहरी कटोरी सी बनाकर दायें से दाया नेत्र, बायें से बायां नेत्र हलके भार से ढक लें। ध्यान करें घोर अन्धकार का। इसे ५ से १० मिनट तक करें। इस क्रिया को अग्रेजी में पामिंग कहते हैं। इससे नेत्रो को विश्राम मिलता है।

नेत्रो के व्यायाम के अभ्यास से नेत्र की दृष्टि कभी कम नहीं होती—बढ़ती ही रहती है। जाला धुन्ध तिमिर नष्ट हो जाते हैं। नेत्र स्वच्छ व स्वस्थ सुन्दर बने रहते हैं।

३ केवल मुखोष्ठों का व्यायाम—

किसी भी साधारण आसन पर बैठकर या खड़े खड़े भी इस अभ्यास को किया जा सकता है।

१ ओ की आवाज मुख से करते हुए दोनो होठो को एक साथ ही फूक मारने जैसी मुख मुद्रा बना दें। पुन शीघ्र ही (न० २)

२. म की आवाज मुख से करते हुए दोनों होठो को एक साथ ही दायें बायें दोनो ओर तान दें।

विशेष सूचना—नं० १ में दोनो होठ परस्पर सट जायें, नं० २ दोनो होठ सटे रहे कि दन्त दीखें। ओऽ मऽऽ ओ ऽ मऽऽ कम से कम २० बार करनी चाहिए।

इस मुद्रा से होठस्थ सभी स्नायु सशक्त बने रहते हैं जिससे होठ वृद्धों की तरह सिकुड़ने नहीं पाते, मुख की शोभा सुन्दरता बनी रहती है।

नोट—इन एकांगिक तीनो व्यायामो को किसी पूर्ण जानकार से सीख कर ही अभ्यास करना चाहिये।

बुढापा दूर करने के चुटकुले

१—काले रंग का घोड़ा जिसका नख शिख सभी काले हो कही भी दूसरा रंग न हो। उसके नखो का कतरन चूर्ण जैसा बना, तिल तैल में डालकर आच पर चढा दें। मन्दाग्नि से पकाकर तैल छान लें। इस तेल को सिर पर लगाने, मालिश करने से वृद्धो के सफेद बाल भी काले हो जाते हैं।

२—३-४ वर्ष के आयु के बालक को पत्थर के बर्तन में मूत्र करावें। रोज कराता रहे एवं उस मूत्र को युवा पुरुष अपने पैर की एड़ी द्वारा किसी वृद्ध को किसी के सहारे बैठाकर पीठ की रीढ़ पर खूब रगड़ा करें तो ६ मास में वृद्ध युवावस्था प्राप्त कर ले।

ये दोनो नुस्खे स्वर्गीय यादव जी त्रिक्रम जी के हैं।

जरा व्याधि निरोधक औषधियां

प्राणाचार्य प० हर्षुल मिश्र बी० ए० आनर्स आयुर्वेद प्रवीण, आयुर्वेद रत्न, आयुर्वेदाचार्य
सेवा निवृत्त सभागीय आयुर्वेदीय निरीक्षक रायपुर (म० प्र०)



प० हर्षुल जी मिश्र ने पिचत्तर वर्ष की इस वृद्धावस्था में स्वय अजर रह कर जरा निरोधक औषधियो पर यह लेख भेजा है जिसमें अनेक औषध योगो का वर्णन किया गया है। इस अवस्था में धन्वन्तरि के लिए लेख भेजना श्री मिश्र का धन्वन्तरि के प्रति अगाध प्रेम का द्योतक है। हम आपके आभारी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

जरावस्था मे, जब प्राणयोजना कठिन प्रतीत होने लगती है, तब जरा की अन्तिम अवस्था आ जाती है। जरा की इस अन्तिम अवस्था मे यमराज इस शरीर से प्राण को खीचकर घसते वनते है। जरा के कारण मानव शरीर व्याधियो का मन्दिर वन जाता है, शरीर जर्जर हो जाता है। शरीर और प्राण का योग आयु है, जीवन है। शरीर और प्राण का वियोग मृत्यु हे। शरीर और प्राण योग दीर्घकालक वनाये रखने के लिये हमारे ऋषि-मुनियो ने अनेक प्रकार की औषधियो की रचना की है। दीर्घायु प्रदायक, जरानिरोधक व्याधी नाशक औषधि योगो वाले शास्त्र का नाम ही आयुर्वेद है तथा दीर्घायु प्रदान करने वाली व्याधि नाशक औषधियो का नाम रसायन है। खनिज औषधियो मे पारद भस्म सर्वश्रेष्ठ रसायन है, वनस्पतियो मे आवला सर्वश्रेष्ठ रसायन है। रसायनयुक्त योगो मे जरा निवारण शक्ति है।

योग जो जरा रोधक तथा जरा व्याधि नाशक सिद्ध हुए हैं—

१. मूलधौति—प्रत्येक मनुष्य को जरा रोकने के लिए नित्य मूल धौति करना चाहिए। मूलधौति का अर्थ गुद वल्ली प्रक्षालन है। जरा व्याधी और उदर व्याधी को रोकने वाला सफल आचरण योग है। जैसे ही मल विसर्जन हेतु गुदद्वार खुले तो उसके वन्द होने के पहले गुदद्वार स्थित शक्ति नाडो को, जल हाथ मे लेकर धीरे-धीरे मले। इस क्रिया से गुद द्वार खुला रहेगा और गुदांत-मार्ग से मल निकलता रहेगा। जब तक गुदा मार्ग से मल मिलता रहे, हाथ मे मल लगता रहेगा। गुद का मुख और अन्तवल्ली, जव मल रहित हो जाय और मल हाथ मे न लगे, तव गुदमार्जन वन्द कर देना चाहिए और गुद मुख को वन्द होने देना चाहिए। इस आचरण योग से उदर व्याधी, मन्दाग्नि, अर्श व्याधी, कोष्ठवद्धता का निवारण होता है। नेत्रो की ज्योतिर्हीनता थम जाती, आध्मान, शिरोरोग नही होते। क्षुधा वढती रहती है। दन्त पीड़ा, दंत क्षय रुक जाता है।

२ दन्त धावन—दातो पर नित्य ववूल की वा निम्ब की कषाय रस युक्त प्रवाल मूल पिष्टी और स्फटिका भस्म का समभाग चूर्ण कर सरसो के तैल मे मिलाकर मंजन करे। दाँत वृद्धावस्था आने पर भी निरोग रहते है।

दन्त धावन के वाद २ तोला सरसो तैल मुँह मे भरकर मुँह को १५ मिनट तक अचर बनाये रखने से दांत दृढ मूल वाले होते हैं। दातो के इस आचरण योग को गण्डूष कहते है। इस क्रिया से ८० वर्ष से ऊपर की आयु तक दात ज्यो कि त्यो बने रहते हैं।

३. स्नान—नारियल के ब्रुश से सारे शरीर को १५ मिनिट तक विना तैल लगाये सूखा ही रगडे, फिर काली तिल का तैल लगाकर सारे शरीर की धीरे-धीरे मालिश करे। जव तैल शरीर मे शोषित हो जाय, तब गाय के थन दुहे दूध मे मल-मल कर अगोछा भिजाकर सारे शरीर मे उससे वार-वार मले। सिर को तो शीतल जल से धोवे और ग्रीवा के नीचे के अङ्गो को सुखोष्ण जल से धोवें। इस प्रकार के औषधि योग द्वारा स्नान करने से, अस्सी

वर्ष से ऊपर की आयु मे भी शरीर मे झुरियाँ नही पडती परन्तु साबुन लगाकर कभी स्नान न करें।

४ सरसो के तैल मे हींग और लशुन चुराकर तैल सिद्ध करलें। फिर इस तैल से नित्य कर्ण तर्पण करें तो अस्सी वर्ष से ऊपर की आयु मे भी अर्थात् मृत्यु तक बाधिर्य (बहरापन) नही आता। इस आचरण और औषध योग को कर्णतर्पण कहते है।

५ नेत्राञ्जन—रसाञ्जन को जल मे घिसकर नेत्रो मे नित्य आजने से नेत्र रोग नही होते, ज्योतिर्हीनता नही होती। अस्सी वर्ष के ऊपर की आयु मे भी दृष्टिक्षमता बनी रहती है। लिंगनाश (मोतियाबिंदु) जैसे ज्योति नाश करने वाले रोग नही होने पाते। तिन्दुक गोद के १ रत्ती महीन चूर्ण को नवनीत मिलाकर आजने से मोतियाविंद (लिंगनाश) मिटता है।

६ नेत्र प्रक्षालन—त्रिफला के हिमतोय से नित्य आखे धोने से नेत्र रोग नही होते और ज्योतिहीनता नही आती।

७. शिर मे तैल मर्दन—नित्य सोते समय, शिर मे बहेडे की मीगी का तैल मर्दन करने से शिरःपीडा नही होती, स्मरणशक्ति बढती है। मस्तिष्क विकाररहित रहता है। सोते समय पैरो और हाथो के तलुओ मे १५ मिनिट तक ताजा मक्खन या गोघृत मलने से अस्सी वर्ष की उम्र आते तक मस्तिष्क मे सुखावह अवस्था बनी रहती है। पाददाह, अगदाह, अनिद्रा रक्तदाबवृद्धि नही होती। यह क्रिया हृद्य होने से निम्न रक्तचाप भी नही होता।

८ सधिस्नेहन तथा उष्णसेक—एरण्ड तैल लगाकर अर्क (मदार) के पत्र को अग्निताप दिखाकर बार-बार पैर की और हाथो की सधियो को १५ मिनिट तक सेकने से सधि पीडा वृद्धावस्था मे नही होती। सधियाँ बलवान और स्फूर्ति युक्त रहती है।

९ आमले के चूर्ण को रात्रि मे पानी मे छोड दें, फिर उस पानी से नित्य शिर धोये। साबुन कभी न लगावें तो बाल वृद्धावस्था आने पर भी नही पकते।

उपर्युक्त औषधि योग इतने सरल हैं कि प्रत्येक व्यक्ति आने वाली जरा से बचने के लिए उनका प्रयोग नित्य कर सकता है। उपर्युक्त औषधि योग और आचरण योग का प्रयोग दैनिक चर्या के रूप मे ३० वर्ष की उम्र के बाद निरन्तर करते रहना चाहिये, तभी जरा टाली जा सकती है। वृद्धावस्था मे जरा के आक्रमण के बाद उपर्युक्त औषधि और आचरण योगो से जरा के कष्ट कम हो जाते है और जरा की गति धीमी पड जाती है। जरा के साथ मनुष्य अपनी जीवन गाडी कुछ हद तक सुखपूर्वक खीच लेता है, इसमे सदेह नही।

जरानाशक, आयुवर्धक स्वयोजित सफल अनुभूत औषधि योग

जरानाशक तथा आयुवर्धक अनेक औषधिया आयुर्वेद के औषधि शास्त्र मे वर्णित है, परन्तु आयुर्वेदीय चिकित्सको द्वारा उनका सफल प्रयोग किस हद तक हुआ है, यह विचारणीय है। शास्त्रीय रसायन औषधियो का सम्पादन तो लेखनी द्वारा बार-बार होता है, परतु उनका सफल प्रयोग निश्चित रूप से यदा-कदा ही येन-केन व्यक्ति द्वारा हुआ हो ऐसी मेरी मान्यता है। इसलिये मै सर्वप्रथम अपने स्वयोजित और सफल औषधि योगो को ही यहाँ प्रस्तुत कर रहा हू जिनकी उपयोगिता, वैद्य बन्धुओ और पाठको की अनुभव की कसौटी पर कसे जाने पर निश्चित रूप से प्रमाणित होगी ऐसी मेरी मान्यता है।

जरानाशक और आयुवर्धक सफल औषधियों मे स्त्रियो और पुरुषो के लिए सामान्य रूप से उपयोगी

पारा मारन विधि—शुद्ध पारद को लशुन स्वरस की सात भावना देकर उसे मकोय रस की दो गुनी मात्रा के साथ, एक काच की शीशी मे डालकर खूब हिलावे। थोडी देर उसे थिरने दे। पारा जब पेंदी मे बैठ जाय, तब उस मकोय का रस निथार कर पेदे मे स्थित पारे को धीरे से एक कप मे निथार ले। फिर उसे पत्थर के खरल मे डाल कर उदुम्बर वृक्ष के दूध के साथ इतना मर्दन करे कि पारा बद्ध होकर टिकिया बनाने योग्य हो जाय। फिर उसे धातु गलाने के मूषा मे डालकर उसका मुख दूसरे मूषा से भलीभाँति बन्द करदे। उस पर मुलतानी (पीली मृदु मिट्टी) और कपडे की पट्टी के योग से ७ कपडपट्टी करके सूर्य ताप मे पूर्णत. शुष्क करलें। फिर गजपुट मे रख उसे फूक दें। अग्निताप से जब कपडमिट्टी लाल हो

जाय तब समस्त अग्नि सावधानीपूर्वक हटाकर स्वाग शीतल होने दें। स्वाग शीतल होने पर मूसा की कपड़-मिट्टी अलग कर उस मूषा मे स्थित पारद भस्म पर धत्तूर पचाङ्ग का रस धीरे-धीरे छोड़ते हुए पुन अग्निताप दे १२ घण्टे। इस प्रकार पारद भस्म को अग्निताप देकर स्वाग शीतल होने पर निकाल ले। इसका प्रयोग जरा-व्याधी नाशक औषधि योगों मे करे।

हर्षुल जीवन सुधा रसायन

उपरोक्त विधि से बनी हुई पारद भस्म ४ तोला+स्वर्ण भस्म कज्जली योगेन जारित रक्तवर्ण ४ तोला+मोती भस्म अथवा मोती पिष्टी ४ तोला+कातलौह भस्म हिंगुल योगेन जारित ४ तोला+वग भस्म तवकिया हर-ताल योगेन जारित ४ तोला+नाग भस्म तिल पर्णी स्वरस मे भावित अग्नि पुटी जलतर ४ तोला, निर्गुण्डी (सम्हालू) मूलत्वक महीनचूर्ण-१०० तोला, पलाश पिण्ड मे अग्निताप से पक्व आमला का महीन चूर्ण १०० तोला, मधुयष्टी चूर्ण १०० तोला, ककुभत्वक् का महीन चूर्ण १०० तोला, एक गाठ वाले (एकपोती) लशुन को छील कर, उसे सूर्य ताप मे सुखाकर बनाया गया महीन चूर्ण १०० तोला+२ सेर अनबुझे चूने और ४ सेर जल के साथ एक मटके मे दो मास तक सधान की गई हल्दी की गाठ का चूर्ण १०० तोला, २०० तोला मधु+२०० तोला गोघृत। सब द्रव्यों को स्टेनलेस स्टील के बड़े चौड़े बर्तन मे अथवा मृत्तिका पात्र मे वा काच पात्र मे डालकर खूब साने। फिर पत्थर की स्वच्छ शिला पर डालकर पत्थर के मूसले से धीरे-धीरे खूब कूटे। जब सपूर्ण द्रव्य पूर्ण रूपेण मृदु हो जाय, तब उसका बडा गोला बनाले। उस पर एरण्ड पत्रो को लपेटकर उन्हे तागे से बाध दे। फिर इसे धान के ढेर के बीच मे १५ दिन रखकर निकाल ले। काच की बरनियो मे भरकर रख दें। एक से दो तोला तक, व्यक्ति के बलाबल के अनुसार, नित्य प्रात साय धारोष्ण गो दुग्ध के साथ सेवन करें। खटाई, लाल हरी मिर्च, नमक बिल्कुल सेवन न करे।

विशिष्ट निर्देशन—पचकर्म के बाद यदि इस का सेवन किया जाय तो सर्वोत्तम है। पचकर्म के अभाव मे १ पाव गरम मीठे दूध मे ५ तोला एरण्ड तैल का सेवन विरेचनार्थ श्रेयस्कर है। विरेचन के बाद ही, इस रसायन का सेवन, निश्चित रूप से प्रभावशाली है। पथ्य के रूप मे नित्य गेहू के जवकूट चूर्ण की दुग्धयुक्त यवागु, कुलथी यूष, शाली चावल, गोदुग्ध सुखोष्ण वा धारोष्ण, मधुर फलो के रस, बनारसी आमलो का तथा हरड का मुरब्बा, गाजर का मुरब्बा, गाजर का स्वरस। बिना नमक की परवल, चौलाई, लौकी, अमरकंद (आरु कोदा) छोटी अरुई, बडी अरुई (साकीन कोदा) आदि की शाक, गोघृत, गोदूध का मक्खन मधु, मिश्री, द्राक्षा बिना बीज वाले मीठे अगूर। बनारसी लगडा पका मधुर आम्रफल का सेवन सुखावह है। उपर्युक्त सम्पूर्ण योग लगातार १ वर्ष से १। वर्ष तक सेवन करना चाहिये तभी जराव्याधि का स्थायी रूप से नाश होगा और व्यक्ति १०० वर्ष से ऊपर जीने योग्य स्वास्थ्य लाभ करेगा।

हर्षुल जीवनसुधा पर हमारा अनुभव

अभी तक उपर्युक्त रसायन को १ वर्ष तो क्या ६ माह तक सेवन करने वाला व्यक्ति हमे नही मिला। हमे पन्द्रह दिन, १ माह, २ माह तक सेवन करने वाले व्यक्ति मिले। उन्ही का अनुभव पाठको की जानकारी के लिये प्रस्तुत कर देना उचित समझता हू—

(१) भुजबल नाम के व्यक्ति तरेशर ग्राम जिला राय-पुर मे रहते थे। सन् १९६० मे उनकी उम्र ५५ की रही होगी। वे मेरे साथी, प्रेमी और स्वतन्त्रता सेनानी हैं। मैंने लगभग एक माह हर्षुल जीवन सुधा रसायन, बिना पंचकर्म के साधारण विरेचन देकर कराया था। वे हृद-स्पदन वृद्धि, मूर्छा रोग, रक्तदाववृद्धि, मन्दाग्नि, आध्यमान आदि रोगो से पीडित थे। वे जरा सा चलने मे थक जाते थे। उनकी श्वास भर जाती थी—इस रसायन के प्रयोग से उनकी उपर्युक्त समस्त व्याधिया जाने कहा गयी। आज २० वर्ष होने हैं, पता नही चलता। अब तो वह तीर्थाटन करते हुए घूमते है। बद्रिकाश्रम और काश्मीर की पार्वतीय यात्रा मीलों दूर तक करते हैं और जरा सी थकावट अनु-भव नही करते है। रसायन सेवन के पूर्व ५५ वर्ष की आयु मे ६० वर्ष के वृद्ध और थके हुए व्यक्ति प्रतीत होते थे। नित्य हृद औषधिया सेवन किया करते थे, परन्तु अब वे कोई औषधि नही खाते परन्तु ५० वर्ष के तन्दुरुस्त व्यक्ति

नजर आते हैं उनके शरीर मे झुरिया नाम को नही है, यद्यपि वे इस समय ७५ वर्ष के हैं। उनके शरीर मे स्फूर्ति और हल्कापन कमाल का है। क्षुधा और पाचनक्रिया भी ठीक है। पहिले चश्मा लगता था अब चश्मा नही लगता। सदा प्रसन्नात्मेन्द्रियमना रहते हैं।

(२) दूसरे व्यक्ति श्री ठाकुर धर्नसिंह हैं, जो मेरे पडौस मे रहते हैं, जिनकी उम्र लगभग १०० वर्ष की हो रही है। इन्हे मैंने सन् १९६० मे इस जीवन सुधा रसायन को सेवन कराया था। उस समय इनके पेट मे भयकर पीडा होती थी। यकृत बढ चुका था। फुफ्फुस आक्रान्त रहते थे, रक्तहीनता, मन्दाग्नि, खासी, सर्दी बनी रहती थी। बडे परेशान थे बिचारे। उनकी उस समय उम्र लगभग ८० वर्ष की रही होगी। उनकी हालत को देखते हुए उनके जीवन की आशा नही के बराबर थी। उपर्युक्त जीवन सुधा रसायन उन्हें बिना कोष्ठ शुद्धि के सिर्फ १५ दिन खिलाई गई। वे १५ दिन मे सम्पूर्ण स्वस्थ हो चुके थे। इस रसायन को उन्हे सेवन कराये लगभग २० वर्ष हो चुके है। जरा व्याधि तो अच्छी हुई थी, परन्तु जरा नही गई थी परन्तु रुक अवश्य गई थी, जिसके कारण उनकी आयु २० वर्ष बढ गई। वे अभी जीवित हैं। कही बाहर आते जाते नही। घर मे ही चल फिर लेते है खाते पीते है सुख से सोते हैं। पेंशनर हैं कीमती रसायन सेवन करने मे असमर्थ हैं। मैं उनकी अधिक कमजोरी देखकर अभी भी महिने दो महिने मे दो चार मात्रा दे ही देता हू जिससे वे फिर चलने फिरने की शक्ति और स्फूर्ति कुछ दिनो के लिए प्राप्त कर लेते हैं।

(३) श्री आर एस मिश्र सेवानिवृत्त प्रिंसीपल साहब की माता की उम्र ६० वर्ष की थी सन् १९६० मे पक्षाघात से पीडित हो गयी। मुख, जिह्वा, मस्तिष्क, एक हाथ और एक पैर निष्क्रिय हो चुके थे। उन्हे भी मैंने हर्पुल जीवन सुधा रसायन को सेवन कराया था। उन्हें भी मैंने रसायन सेवन के पूर्व रेचन नही कराया था। परन्तु इस रसायन से बिना पथ्य के वे पक्षाघात से मुक्त हो गयीं। उनकी झुरिया नही मिटी, परन्तु बल बढा, उनकी आयु बढ़ी। १० वर्ष बीत रहे है। लकवा का दुबारा आक्रमण नही हुआ। इस बात को दश वर्ष हो गये। वो अभी भी ८२ वर्ष की आयु मे मील आधमील नित्य चलती हैं।

(४) जगन सेठ रायपुर वालो की मा सन् १९६० मे ७० वर्ष की वृद्धा थी। मन्दाग्नि, पाण्डु, रक्तहीनता, दुर्बलता से मरणासन्न थी। मैंने उनकी व्याधियो को जरा जन्य व्याधि समझकर उन्हे जीवन सुधा रसायन बिना पचकर्म के सेवन कराया। सिर्फ १५ दिन ही उसे सेवन किया होगा कि उनकी पाण्डुता दूर होने लगी उनकी क्षुधा बढने लगी, बल और उत्साह ऐसा बढ़ा कि वह वृद्धा घर का काम काज करने लगी, अपने लडके और नाती नतरो को बनाकर खिलाने लगी। रसायन का सेवन तो एक महीने बाद ही बन्द कर दिया गया, परन्तु उसके बाद भी उसका प्रभाव बना रहा। वृद्धा के मुख की झुरिया विलीन हो गयी। वृद्धा की चिकित्सा हुए २० वर्ष हो चुके है। वह अभी जिंदा है। दो वर्ष पहिले कभी-कभी दो चार महीने मे वह आठ दस मात्रा जीवनसुधा रसायन मगाकर सेवन कर लेती थी परन्तु अभी तीन चार साल से उसने उनका सेवन बिल्कुल बन्द कर दिया है। वह अभी जीवित है। जीवन सुधा रसायन के सेवन से उसकी व्याधिया दूर हुईं, जरा के लक्षण कम हुए। उसे २०-२५ वर्षों की दीर्घायु भी मिली। इस समय उनकी आयु ९० वर्ष या उससे अधिक है। जब मैं उनके यहा जाता हू तो मेरे पैर पडने चलकर आती है और कहती हैं "मेरे को मरने क्यो नही देते अब तो मेरे नाती पती सब हो गये हैं" वह पेट भर अन्न खाती हैं सुख से सोती हैं और प्रसन्न मुद्रा मे चलती फिरती घर का काम काज करती हैं।

(५) फूलमती नामक महिला मेरे मकान के सामने रहती थी। आज से १२ वर्ष पूर्व वह गले के कैंसर और मोतियाविन्दु से पीडित थी। शरीर मे झुरिया पडी हुई थी मरणासन्न थीं। जीवनसुधा रसायन बिना पचकर्म के उसे लगभग १ माह तक प्रतिदिन १ बार सेवन कराया गया। मुझे आश्चर्य सा लगा उसका गले का कैंसर मालूम नही कैसे और कहा विलीन हो गया। फिर उसे कैंसर का कष्ट कभी नही हुआ, परन्तु इस रसायन से उसका मोतिया बिन्दु नही मिटा। मोतिया बिन्दु यद्यपि १२ वर्ष तक रहा परन्तु वह पका जल्दी नही। वह जल्दी अन्धी नही हुई। अभी गत वर्ष उसके मोतियाबिन्दु का आपरेशन मैंने स्वय प्रयत्न करके नेत्र चिकित्सक द्वारा करवाया।

उपर्युक्त अनुभवो से यह सिद्ध होता है कि जीवनसुधा



रसायन यथा विधि पंचकर्म वा सम्यक् विरेचन के बाद सम्यक् रीति से सम्यक् पथ्य के साथ सेवन किया जाय तो उपर्युक्त रसायन सम्पूर्ण रूपेण जरा व्याधि नाशक आयुवर्धक अवश्य सिद्ध होगी। मैं भी इसको कभी आठ दिन, कभी पन्द्रह दिन जरा को रोकने के लिए, बल बनाये रखने के लिये, ले लिया करता हू। इससे शारीरिक झुरिया बहुत कम हो गई हैं। गले की झुर्रियो मे विशेष फर्क नही आया है, परन्तु चेहरे की झुर्रिया प्रायः विलीन हो गई हैं। क्षुधा और पाचन शक्ति इतनी बढ गई है कि मेरी लगभग ७५ वर्ष की उम्र को देखकर, मेरे घर के लोगो को आश्चर्य होने लगा है। मेरी उम्र ७५ वर्ष की होने पर भी मैं पचास वर्ष से अधिक नही जचता हू। मेरे दात ६० वर्ष की आयु तक टूटने लगे थे। मैं दन्त पीडा से परेशान रहता था, परन्तु इस रसायन को यदा कदा लेने से मेरी दन्त पीडा १२ वर्ष हो गये बन्द हो गई है। ६० वर्ष तक जो आठ नौ दात टूट चुके सो टूट चुके बारह वर्षों मे अब तक मेरे एक भी दात नही टूटे। मेरा विश्वास है कि आयुर्वेदिक औषधिया जरा व्याधि नाशक और आयुवर्धक हैं, परन्तु मेरा अनुमान है कि उनके योजक और उन्हे यथानियम पथ्यपूर्वक सेवन करने वाले ही दुर्लभ हैं। महाराष्ट्र के गोदिया शहर के जागोगा नामक सुनार ने इस रसायन को १ माह सेवन किया था तो उसके शिर के बाल चोटी के आस-पास बिल्कुल काले हो गये थे।

हर्षुल बल ऊर्जा रसायन

सहस्त्रपुटी अभ्रक १ तोला+सिद्ध मकरध्वज स्वर्ण सहित १ तोला+वगभस्म हरताल योगेन जारित १० पुटी जलतर १ तोला+कातलौह भस्म हिंगुल योगेन जारित ६० पुटी जलतर १ तो०+प्रवाल पचामृत २ तो०+स्वर्णमाक्षिक भस्म सिंदूर वर्ण २ तो०+नागभस्म कज्जली योगेन जारित १ तो०+अर्जुनत्वक घनसार ८ तो०+मधुयष्ठी घनसार ८ तो०+हरे आमलो के रस को सूर्य प्रकाश मे सुखाकर उसका चूर्ण ८ तो०+एरण्ड मूलत्वक चूर्ण ८ तो०+बहेडे की मींगी का चूर्ण ८ तो० +भिलावे की मींगी का चूर्ण ८ तो०+शुद्ध श्वेत गुजा ८ तो०+छीलकर सूर्य के प्रकाश मे सुखाये हुए एक पोती लशुन का महीन चूर्ण १६ तो०+शुठी चूर्ण ८ तो० समस्त द्रव्यों को खरल मे डालकर खूब मर्दन कर असली शहद में मिलाकर २ माने की गोलिया बनालें। मात्रा १ गो० से २ गो० प्रात साय धारोष्ण गोदुग्ध से सेवन करे तो वृद्धावस्था मे बल और ऊर्जा बढे। इसको १ वर्ष तक लगातार सेवन करने से जराव्याधी का नाश होकर आयु बढेगी। इसके सेवन करने से प्रथम वर्ष मे ही झुरिया मिट जाती है। नेत्र ज्योति अवश्य बढती है, पुंसत्व में वृद्धि प्रतीत होती है। यकृत, फुफ्फुस, हृदय मस्तिष्क के विकार दूर होकर, उनकी कार्यक्षमता बढती है। आमाशय और पक्वाशय पहिले से ठीक कार्य करने लगते हैं। आतें भी सुचारु रूप से दोषो का विसर्जन करने लगती हैं। शरीर के दोष अनुलोम हो जाते हैं। इससे टूटे हुए दात भले ही न जमे और सफेद बाल भले ही काले न हो परन्तु हम यह निश्चयपूर्वक कहते हैं, कि इस रसायन को लेते रहने से वृद्धावस्था मे बल ऊर्जा बनी रहती है। इसको सेवन करने वाले व्यक्ति की वृद्धावस्था सुखपूर्वक बीतने लगती है। कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियो की उत्तरोत्तर कमजोर होने की रफ्तार बहुत धीमी पड जाती है। श्वास, कास, पाडु, मन्दाग्नि, वात पीडा, अग शैथिल्य जैसे जराजन्य रोगो से शरीर मुक्त रहता है। वृद्धावस्था मे स्त्री पुरुष दोनो को कमजोर बनाने वाली बहुमूत्र और शर्करामेह जैसी बीमारी बल ऊर्जा रसायन के से शीघ्र दूर हो जाती है। पथ्य के साथ जीवन व्यतीत करने से फिर कभी नही होती। हमने इस रसायन का प्रयोग सिर्फ व्याधि मिटाने मे और जरा की रफ्तार धीमी करने मे सफलतापूर्वक किया है। इससे शरीर की बल उर्जा की कमी निःसन्देह दूर होती है। कमजोर वृद्धो को, ज्वरमुक्त रोगियो को, दुर्बल व्यक्तियो को इसके सेवन से तत्काल लाभ होता है।

हर्षुल अजरोजा रसायन-(स्वकृत, स्वानुभूत)

(१) सिद्ध चन्द्रोदय (१ तो० शुद्ध स्वर्ण चूर्ण, ४ तो० पारद, ८ तो० गधक के योग से बना) २ तो०।

(२) कातलौह हिंगुल योगेन जारित ६० पुटी, जामुनी रग की जलतर २ तो०।

(३) वग भस्म-तबकिया हरतालेन जारित १० पुटी खाकी रग की जलतर २ तो०।

(४) नाग (सीशा) भस्म, तिल पर्णी योगेन जारित

हरित वर्ण २ तो० ।

(५) वज्राभ्रक भस्म—सहस्र पुटी रक्तवर्ण संपूर्णत निश्चन्द्र २ तो० ।

(६) अनविंधे मोतियों की पिष्टी (स्पर्श मे मैदावत कण रहित) २ तो० ।

(७) भल्लातक शुद्ध (तत्काल चूने क घोल मे दोला-यंत्र द्वारा स्वेदित) ४ तो० ।

(८) कुचला शुद्ध (गोमूत्र से १० दिन तक भावित, जिह्वा निष्कावित घृत पक्व ४ तो० ।

(९) श्वेत गुंजा शुद्ध चूर्ण ४ तो० ।

(१०) हरे ब्राह्मी पत्र का स्वरस घन (सूर्य प्रकाश में छाया शुष्क किया हुआ) ४ तो० ।

(११) आमला स्वरस घन (सूर्य प्रकाश मे छायाशुष्क किया हुआ) ४ तो० ।

(१२) कृष्ण भागरे का स्वरस घन (सूर्य प्रकाश मे छाया शुष्क किया हुआ) ४ तो० ।

(१३) हरड के कच्चे फल का स्वरस घन (सूर्य प्रकाश में छाया शुष्क किया हुआ) ४ तो० ।

(१४) बहेडे के कोमल फलो का स्वरस घन (सूर्य प्रकाश में छाया शुष्क किया) ४ तो० ।

(१५) आमला के हरे फलो का स्वरस घन (सूर्य प्रकाश में छाया शुष्क किया हुआ) ४ तो० ।

(१६) पलाश बीज चूर्ण (सूर्य प्रकाश मे छाया शुष्क किया हुआ) ४ तो० ।

(१७) अर्जुनघनसार (अर्जुनत्वक के क्वाथ को घन रूप देकर बनाया हुआ) ४ तो० ।

(१८) पंचकोल घनसार (अर्जुनत्वक के क्वाथ को घन रूप देकर बनाया हुआ) ४ तो० ।

(१९) शतावरी चूर्ण ८ तो० ।

समस्त द्रव्यो को चीनी मिट्टी के चिकने बड़े पात्र मे अथवा बडी कठौती मे डालकर असली मधु से खूब सानकर एक-एक मासे के वटक बनाले । मात्रा १ से दो वटक धारोष्ण गोदूध से सेवन करें । धारोष्ण दूध न प्राप्त हो तो अग्नि ताप मे उबाला हुआ, सुखोष्ण दूध के साथ सेवन करें ।

गुण—इस औषधि को प्रतिवर्ष शीतकाल मे लगातार ४ माह तक सेवन करने से शरीर की सभी व्याधियां मिट जाती हैं । प्रतिवर्ष ४ माह तक सेवन करने वाले व्यक्ति को ८० वर्ष या ऊपर की उम्र मे झुर्रिया नही पडती, दांत नही टूटते, बाल नहीं पकते । नेत्र की ज्योति कम नही होती, पाचन शक्ति तीव्र रहती है, बधिरता नही आती । जवानो की तरह ओज, बल और मैथुन शक्ति बनी रहती है । मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि ४० वर्ष के बाद इस को प्रतिवर्ष ४ महिना सेवन करते रहे तो जरा को निःसंदेह जीता जा सकता है । स्वास्थ्य और दीर्घायु निश्चयपूर्वक प्राप्त होती है । जाडे में इस रसायन को महिना दो महिना सेवन करने वाले व्यक्ति अनेक रोगों से मुक्त होते हुए देखे गये । उनकी झुर्रियां मिटी बल और शक्ति बढी । जो रोग इस रसायन के सेवन से मिटे फिर नही हुए । मैंने मरणासन्न और जटिल रोगो से पीडित रोगियो पर इसका प्रयोग किया है । इससे वे निश्चयपूर्वक रोगमुक्त हुए जीवनशक्ति पाई । जो ४५ वर्ष की उम्र मे पांडु, श्वास, अम्लपित्त, शोथ क्षय मंदाग्नि के कारण ६० वर्ष के प्रतीत लगते थे, वे पुनः चालीस वर्ष के प्रतीत होने लगे । मैंने इसे सर्वाङ्ग शोथ और जलोदर से पीडित २० वर्षीया, रुग्ण को, जिस रोग की हालत मे, ४० वर्षीया प्रौढ़ा समजकर इस रसायन का सेवन कराना प्रारम्भ किया था । २ माह की चिकित्सा के बाद मेरे सामने जब वह लाई गई, तब मैं उसे पहिचाना नही । मेरे मित्र भुजबल जी ने मुझसे कहा, यह वही शोथ रोगिणी है जिसे अजरोजा रसायन सेवन कराया था । मैंने कहा "वह ४० वर्ष की प्रौढा थी । ये तो बिल्कुल लडकी है ।" मेरे मित्र खूब हसे और कहे ये आपकी रसायन से लडकी हो गई । ऐसे अनेक उदाहरण मेरे पास दर्ज है । जिससे इतना तो सिद्ध अवश्य हो जाता है, कि जो व्यक्ति व्याधियो के कारण बडी उम्र के और बूढे प्रतीत होने लगते हैं वे इस 'अजरोजा' के सेवन से फिर युवा वा युवावत दिखने लगते है । इसलिए मेरा कहना है कि प्रति वर्ष इस अजरोजा को कम से कम दो माह भी सेवन किया जा सके तो पूरे वर्ष भर शरीर को रोगमुक्त सुखी युवावत रखा जा सकता है । यह योग प्रौढ स्त्री पुरुषो के शरीर को जरा से बचाता है तथा जरा पीडितो को जराव्याधि के दुखो से बचाते हुए उन्हे दीर्घ जीवन प्रदान करता है । यह योग वृद्धो के लिए वरदान सिद्ध होगा, यदि इसे २४



घण्टे मे १ बार भी सेवन किया जा सके। यह रसायन स्त्री पुरुष दोनो के लिए उपयुक्त है।

अग्निपुराण मे धन्वन्तरि जी द्वारा बताये गये— मृत्युञ्जयी सरल सुलभ योग

१ त्रिफला चूर्ण १ तोला, असली मधु और असली गोघृत के साथ सानकर खावें और उस पर धारोष्ण गोदूध नित्य जीवन भर पीता रहे तो वह तीन सौ वर्ष तक युवा बने हुए जिन्दा रहेगा।

२. केवल एक मास तक बिल्व के बीजो का तैल नाक मे सुडकने (नस्य) लेने से ५०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है। उसी युवावस्था के साथ कवित्व शक्ति भी उपलब्ध होती हे।

३ काला तिल और भिलावा का समभाग चूर्ण बना कर नित्य प्रात १ तो० से २ तो० तक धारोष्ण गोदुध के साथ सेवन करने से रोग, अचानक मृत्यु और वृद्धावस्था निश्चयपूर्वक दूर होते है।

४ प्रतिदिन प्रात. काल १ तो० से ४ तो० तक शुंठी चूर्ण मधु और घृत मे सानकर सेवन करने से कोई भी स्त्री पुरुष मृत्यु विजयी हो जाता हे।

५. ब्राह्मी चर्ण १ तो० से २ तो० धारोष्ण दूध के साथ प्रात साय सेवन करने से शरीर मे झुरिया नही पडती, बाल सफेद नही होते, दीर्घ जीवन मिलता हे।

६ जो व्यक्ति उच्चटा (श्वेतगुजा अथवा भूमि आँवला) एक तोले की मात्रा मे खाकर ऊपर से धारोष्ण दुध पीता हे, वह जरा से मुक्त रहता है और मृत्यु विजयी हो जाता है।

७. पलाश बीज का तैल १ तो० और मधु १ तो० सेवन कर ऊपर से धारोष्ण दूध नित्य पीने से मनुष्य जरामुक्त होकर ५०० वर्ष तक जीता है।

८ मालकांगनी के पत्र के १ तो० रस मे १ तोला त्रिफला सानके नित्य गाय के धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से जरा दूर होती है और एक हजार वर्ष की आयु प्राप्त होती है।

९ ४ तो० शतावरी चूर्ण गोघृत और मधु के साथ नित्य सेवन करके ऊपर से धारोष्ण गोदूध पीने वाला व्यक्ति भी जरा मुक्त रहकर हजार वर्षों तक जीवित रहता है।

१० नीबू के पञ्चाग चूर्ण को खैर के क्वाथ की भावना देकर छाया मे सुखा कर रखलें। नित्य १ तो० भागरे स्वरस के साथ सेवन करे तो मनुष्य देह अमर हो।

११. शुंठी, लोहभस्म, शतावरी समभाग लेकर सब मिश्रण बना १ तो० की मात्रा मे नित्य भृगराज रस, घृत तिल तैल के संयोग से सेवन करने वाला मनुष्य ५०० वर्ष जीवित रहता हे।

१२. ताम्र भस्म, अमृता, शुद्ध गधक समभाग लेकर घीकुमारि के रस मे घोटकर उसकी दो-दो रत्ती की गोलिया बना लें। १ से २ गो० नित्य घृत के अनुपान से सेवन करे तो मनुष्य ५०० वर्षो तक जीवे।

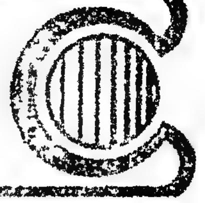
१३ मधुरादि गणकी औषधियो को और हरीतकी को समभाग ले और चूर्ण बनाकर रखले। नित्य १ तो० चूर्ण गुड़ और घी मे सानकर नित्य सेवन कर, ऊपर से धारोष्ण दूध पीवे और कुछ दिन केवल दूध और गेहू के जवकुट चूर्ण से बनी सेवन करें केवल दूध का ही आहार रखें तो बाल काले हो, जरा मिटे और ५०० वर्ष की आयु हो जाय।

१४. कडवी तुम्बी के बीजो का तैल १ तो० तक नासा द्वार से नित्य सुडकने से वा नस्य लेने से दो सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है।

१५ त्रिफला, पिप्पली, सोठ, शतावरी का समभाग चूर्ण १ तो० नित्य धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से एक हजार वर्ष की आयु प्राप्त होती है।

परन्तु उपर्युक्त योग वैद्यो द्वारा परीक्षणीय हैं। यद्यपि महर्षियो के शब्द मिथ्या नही हो सकते।





जरा रोग चिकित्सा

वैद्य श्री वेदप्रकाश तिवारी रायुक्त अनुसंधानीय संस्थान, ताड़ीखेत (रानीखेत)

श्री तिवारी जी आयुर्वेद अनुसन्धान में रत एक वरिष्ठ आयुर्वेदज्ञ हैं जिनका 'धन्वन्तरि' के प्रति अपार स्नेह है। आपके लेखों की भाषा सरल, व्यर्थ की विवेचना से रहित, चिकित्सकोपयोगी सामग्री से परिपूर्ण, छोटे छोटे तथा सहज ही निर्माण हो सकने वाले शास्त्रीय प्रयोगों से ओतप्रोत होते हैं। आपके जो भी लेख 'धन्वन्तरि' में प्रकाशित हुए हैं उनमें आयुर्वेद की पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई है। आशा है कि भविष्य में भी आपका 'धन्वन्तरि' के प्रति स्नेहभाव बना रहेगा। —दाऊदयाल गर्ग (सम्पादक 'धन्वन्तरि')

(१) दुग्ध व घृत के साथ भोजन करने के पश्चात् घृत, मधु, दुग्ध इनमें से किसी एक द्रव्य के साथ ज्योतिष्मती तैल १२-२४ ग्राम पीवें (टीका मे मालकांगनी तैल लिखा है किन्तु मूल मे केवल तैलम् है) तथा तैल, मधु, घृत बराबर मिलाकर नस्य लेना चाहिए। सन्ध्या को भी दुग्ध, घृत, शर्करा के साथ भोजन करना चाहिए। इस प्रकार ६ मास तक निरन्तर सेवन करने से एक सौ वर्ष तथा ३ वर्ष तक सेवन करने से एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है।[1]

(२) तुगाक्षीरी (वंशलोचन) चूर्ण १/२-१ ग्राम को मधु के साथ या पिप्पली चूर्ण १/२ १ ग्राम मधु-घृत के साथ या विडंग एवं पिप्पली चूर्ण १-२ ग्राम या त्रिफला चूर्ण ३-६ ग्राम को सैंधव लवण के साथ प्रात.सायं सेवन करना चाहिए। एक वर्ष तक सेवन से स्मृति, मेधा, बल, आयु की वृद्धि होकर जरा रोग नष्ट होता है।[2]

(३) खदिर, असन (पीतसाल या विजयसार), भृंग (भृंगराज), सातला (बिना कांटों वाली अंगुली के समान शाखाओं से युक्त थूहर भेद), कृमिघ्न (विडंग) के स्वरस या क्वाथ से पृथक-पृथक सात बार त्रिफला के चूर्ण को भावित कर मर्दन करके सुखा लेवे। इसे ३-६ ग्राम की मात्रा मे गुड़, मधु, घृत के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। एक वर्ष तक सेवन से जरा रोग नष्ट करता है।[3]

(४) त्रिफला के चूर्ण को लौह खरल मे बीजक (असन) त्वक् क्वाथ के साथ दिन भर मर्दन करे। दूसरे दिन मधु मिलाकर प्रातः सायं सेवन करें। यह स्थूलता एवं जरा को नष्ट करता है।[4]

(५) शुद्ध गन्धक, लौह भस्म समान भाग मिलाकर त्रिफला क्वाथ से ३ दिन तक भावित कर मर्दन करके शुष्क करें। ५००-८०० मि. ग्राम को प्रात सायं मधु, घृत के साथ सेवन करे। एक वर्ष तक सेवन से श्वेत केशों पर कालिमा (कृष्णता) आ जाती है। दीर्घ दृष्टि एवं वीर्य की वृद्धि होती है तथा दीर्घायु होता है।[5]

(६) अष्टमासिक रसायन—ज्योतिष्मती की पीली लता होती है। आषाढ मास में पीतवर्ण के फूलों से शोभित रहती है। उसी मास मे उसके फलों को संग्रह कर बीजों से तैल निकाले। तैल के बराबर दुग्ध तथा चतुर्थांश स्वर्णमाक्षिक भस्म एवं तैल से चतुर्गुण जल लेकर तैल सिद्ध करे। वस्त्र से तैल छान लेवें, फिर चव्य कर्पूर त्वक् (दालचीनी), जातिफल चूर्ण कर स्वर्णमाक्षिक की मात्रा के बराबर प्रत्येक का चूर्ण मिश्रित कर दे। तदनन्तर स्निग्ध पात्र मे भरकर धान्य राशि मे एक मास तक गाड़ देवें। २४-४८ ग्राम तैल मे इतना ही तिल तैल मिलाकर दुग्ध के साथ प्रात' सेवन करें। इसे पीने से कुछ समय तक संज्ञानाश हो जाता है तथा वह चिल्लाने एवं रोने लगता है। १-२ घण्टे के पश्चात् स्वाभाविक स्थिति मे आ जाता है। भूख लगने पर दुग्ध, घृत, शर्करा के साथ भात देवें।

---

[1] र० र० स० २६।२३ [2] र० र० स० १६/२४ [3] र० र० स० २६/२६
[4] र० र० स० २६/२७ [5] र०र०स० २६/२८



एक मास तक प्रयोग से श्रुतिधर अर्थात् एक बार सुनी हुई बात धारण करने में समर्थ होता है। दो मास तक सेवन से तेजस्वी होता है। तीन मास तक सेवन से देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। चार मास तक सेवन से सिद्धि प्राप्त होती है। पांच मास तक सेवन से आकाश मार्ग में विचरण करता है।[6] आठ मास तक सेवन से परम पद को प्राप्त होता है।

(७) पृथ्वी में एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें ताम्र का घड़ा रखकर ज्योतिष्मती या तिल तैल भरकर घड़े का मुख बन्द कर कपड़ मिट्टी कर देवे। गड्ढे को समानान्तर कर देवे। उस स्थान पर ६ मास तक तुष आदि से मन्द-मन्द अग्नि देवे। इस प्रकार ६ मास के बाद उस तैल को निकाल कर छानकर ६ ग्राम को दुग्ध एवं शर्करा मिलाकर पान करे। दूसरे दिन ८ ग्राम, तीसरे दिन १२ ग्राम तथा चौथे दिन १७ ग्राम तैल को दुग्ध से पीवें। इस प्रकार ३ वर्ष तक प्रतिदिन सेवन से सर्व रोग नाशक होता है और जरा का निवारण होता है।[7]

(८) तिल तैल (या मालकांगनी तैल) १ भाग, गोघृत १ भाग, दुग्ध ४ भाग पात्र में रखकर मन्दाग्नि देवे। जब स्नेहमात्र शेष रहे तब उतार कर छानकर शीशी में रखे। इसे २४-४८ ग्राम की मात्रा में लेकर प्रातः सायं दुग्ध से सेवन करे। एक माह तक सेवन से ३६० वर्ष तक जीवित रहता है।[8]

(९) आमलकी चूर्ण, स्वर्ण भस्म समान भाग लेकर खदिर (गायत्री) त्वक् के क्वाथ के साथ तीन दिन तक भावना देकर सुखाले। १२५ मी० ग्राम से २५० मी० ग्राम को मधु के साथ सेवन कर दुग्ध पीवे। अरिष्ट लक्षण वाला भी नीरोगी होता है।[9]

(१०) पिप्पली चूर्ण, विडंग, त्रिफला, स्वर्ण भस्म, मधु, घृत, शर्करा समान भाग लेकर मर्दन कर ५०० मी ग्राम की वटी बनावें अथवा स्वर्ण भस्म १२५ मी ग्राम, पिप्पली २५० मी ग्राम, विडङ्ग १ ग्राम, त्रिफला १ ग्राम को मधु घृत से सेवन कर दुग्ध पीवे। इसके सेवन से जरा नष्ट होता है।[10]

(११) शुद्ध शिलाजीतु, विडङ्ग चूर्ण, लौह भस्म, हरीतकी चूर्ण, रस सिंदूर, स्वर्ण माक्षिक भस्म समान भाग लेकर मर्दन कर १-२ ग्राम तक बलानुसार मधु-घृत के साथ १५ दिन तक सेवन करें। इसके सेवन से रस-रक्तादि धातु पुष्ट होते हैं।[11]

(१२) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर कज्जली करे। फिर विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), अतिविषा, अगस्त्यपुष्प, क्षीरीणी (क्षीर काकोली या दुग्धिका), तंडुलीयक के स्वरस से क्रमशः १-१ दिन मर्दन कर पिष्टि बना लेवें। इसे गाय या स्त्री दुग्ध में मर्दन करें। प्रतिदिन प्रातः सायं १२५ मी ग्राम से २५० मी ग्राम को मधु से सेवन करें। यव, घृत, तिल चूर्ण, मधु मिलाकर शरीर में उबटन करें। ६ मास तक प्रयोग से कृशता एवं जरा नष्ट होती है।[12]

(१३) शुद्ध गन्धक दो भाग लेकर अग्नि में तपावें। जब पिघल जाय तब एक भाग शुद्ध पारद डालकर कलछी से मर्दन कर अग्नि से उतार लेवें। फिर इसे मर्दन कर कज्जली बनावे। कज्जली को पुनः आर्द्रक स्वरस में मर्दन कर गोला बनाकर सुखा लें। गोले को ताम्र मूषा में रखकर बन्द करके कपड़मिट्टी कर देवें और गजपुट देवें। स्वांगशीत होने पर चूर्ण करें। प्रातः सायं १२५ मी ग्राम की मात्रा में घृत-शुण्ठी चूर्ण से सेवन कर १०० मी ली. जल पीवें। इसके सेवन से जरा नष्ट होता है। इसे 'उदयादित्य' रस कहते हैं।[13]

(१४) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर मर्दन करें। फिर नागली मूल स्वरस या क्वाथ से दिन भर मर्दन करें। पश्चात् हस्तकर्ण पलाश मूल, लज्जालु (हरफारेवडी) मूल एवं मत्स्याक्षी (मछेछी) को समभाग लेकर जल में पीसकर कल्क बना लेवे। इस कल्क से उक्त कज्जली के गोले को एक-एक अंगुल मोटा लेप कर अन्धमूषा में गोले को बन्द कर गजपुट या भूधर पुट देवें। इस प्रकार उक्त द्रव्यों की मात्रा एवं पुट तीन बार देवें। पश्चात् मर्दन कर १२५ मी ग्राम की मात्रा में प्रातः सायं त्रिकटु मधु के साथ सेवन करने से जरा रोग नष्ट होता है।[14]

(१५) कान्त लौह, अभ्रक भस्म, शिलाजतु, शुद्ध वत्सनाभ, रससिन्दूर, स्वर्ण माक्षिक भस्म समान भाग मर्दन करके सूक्ष्म चूर्ण करें। प्रातः सायं १२५-२५० मि. ग्राम को मधु-घृत के साथ सेवन करने से वार्धक्य नष्ट होता है।[15]



[6] र०र०स० २६/१६–२० [7] र०र०स २६/१२–२० [8] र०र०स० २६/२२ [9] र० र० स० २६/१३
[10] र० र० स० २६/१४ [11] र०र०स० २६/१२ [12] र०र०स० २६/११ [13] र० र० स० २६/४–५
[14] र० र० स० २६/३ [15] र० र० स० २६/२८

जरा व्याधियों में



कविराज श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य, पचार (सीकर)

श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' 'धन्वन्तरि' के जाने पहचाने लेखक हैं। आपने विशेषांक के लिए इस लेख मे जराव्याधि नाशक कुछ उपयोगी प्रयोगो का संकलन किया है जिनमें कुछ योग महत्व के हैं। आशा है पाठक लाभ उठायेंगे।
—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

जराव्याधियो मे धात्वग्नियो की सत्ता को नवजीवन देने हेतु हीरक, वैक्रान्त, मुक्ता स्वर्ण आदि का उपयोग करना चाहिए। भैषज्यसार सग्रह मे वर्णित अनङ्गविलास रस सर्वाधिक उपयोगी पाया गया है। योग है-ताम्र भस्म, हीरा भस्म, मोती भस्म, हरताल भस्म, वैक्रान्त भस्म, सूर्य कान्तमणि भस्म, माणिक्य भस्म, स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म, प्रत्येक समान भाग लें तथा इन सबके बराबर पारद तथा उतना ही गन्धक लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावें। तत्पश्चात् अन्य औषधियो को मिलाकर,भली प्रकार खरल करें और लाल कपास के फूलो के रस की भावना देकर सुखाकर इसे आतशी शीशी मे भरलें, आतशी शीशी पर ७ कपड़ मिट्टी करदें और वालुकायन्त्र मे उसे ३ दिन पकावें। जब यन्त्र स्वांग शीत हो जाय तो तलस्थ और कण्ठस्थ द्रव्य को लेकर एकत्र घोटें और उसमें कालीमिर्च कपूर, वशलोचन, जावित्री, लौंग और कस्तूरी (१-१ तो) सब समान भाग मिलाकर पांन के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की गोलिया बनावें। १-१ गोली पान मे रखकर खावें। इससे नपुंसकता, दौर्बल्य, अकाल जरा वलिपलित नष्ट होकर शरीर मे नवता आती है।

२ यदि शरीर किसी महाव्याधि अथवा असाध्य रोग से ग्रसित नही तथा काल स्वभाव से क्रमिक कायिक ह्रास उपस्थित हो तो वैक्रान्त भस्म ७-८ रत्ती, मरिच चूर्ण ४ रत्ती, शुद्ध गन्धक २ रत्ती, घृत से प्रतिदिन ३ मात्रा देने से लगभग ३ सप्ताह मे शरीर पर प्रभा वर्ण और भार-वृद्धि परिलक्षित होने लग जाती है।

—आचार्य श्री हरदयाल जी वैद्य वाचस्पति

३ शिलाजीत सूर्यतापी ५०० मिग्रा०, वृ० वातचिन्तामणि १२५ मिग्रा०, वसन्त कुसुमाकर रस १२५ मिग्रा०, च्यवनप्राशावलेह १० ग्राम। यह एक मात्रा है। ऐसी तीन मात्राये प्रतिदिन सेवन करके ऊपर से मिश्री मिला दूध पियें, तेल गुड, खटाई, तेज लाल मिर्च आदि का त्याग करें, सयम से रहे। ४१ दिन तक प्रयोग करने पर सन्तोषप्रद लाभ होगा। यदि मनुष्य इस योग को प्रति वष ४१ दिन सेवन कर लेता है तो सारा वर्ष शक्ति की दृष्टि से उत्तम निकलता है। वृद्धावस्था की स्नायु दौर्बल्यता, अशक्तता के लिए अवश्य ही लाभकारी सिद्ध प्रयोग है।

—वैद्य श्री भ्रमरदत्त जी मिश्र कालेडा

४. बाल हरड ४० सेर, काले भागरा का रस ४० सेर, गोखरू पचाग ४० सेर, पवाड के बीज १० सेर, जूनागुड १० सेर, उत्तम शहद १० सेर। सबको मिलाकर आवले बराबर वटक बनाले। एक वटक नित्य प्रात. १ वर्ष तक निरन्तर लेने से निश्चय ही बाल काले होकर नई जवानी प्राप्त होगी। अंग पुष्ट होगे। यह जराहरण कल्प है।

—स्व० मुन्नालाल जी गुप्त



५ त्रिवंग (नाग, यशद, वग) भस्म, मधुयष्टि महीन चूर्ण, निर्गुण्डी भृग चूर्ण, तालमखाना-बीज चूर्ण, शतावरी चूर्ण, अश्वगन्धा चूर्ण, मूसली चूर्ण, तुलसी बीज चूर्ण, स्वर्णमाक्षिक भस्म (गन्धकयोगेन जारित सिंदूर वर्ण), रस सिंदूर प्रत्येक ३-३ तोला, शिलाजतु शु० ६ तो० । समस्त द्रव्यो को खरल मे डालकर मधुपुष्प (महुआ)के रस मे खूब घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ वनाले और छाया मे सुखा कर सुरक्षित रखले । १-१ गोली प्रात साय । धारोष्ण गोदुग्ध, मधु, ईसवगोल का हिम, अमृता हिम तथा रोगानुसार अनुपान निर्धारित किया जा सकता है । धातुक्षीणता शुक्रमेह, प्रतिलोमक्षय, रोगोपरान्त दुर्बलता, वृद्धावस्था की दुर्बलता, वीर्यहीनता, शुक्र बीज की कमी आदि दूर होकर इस वटी से बल, पाचनशक्ति, दिमागी ताकत वढती हैं । यह वटी सौम्य प्रभाव वाली है ।

—प्राणाचार्य श्री प० हर्पुल जी मिश्रा

६. चोपचीनी ५०० ग्राम, दालचीनी, वशलोचन, अकलकरा, लवङ्ग, जावित्री, पीपर, सौंठ, श्वेतमूसली, सतावर, जायफल प्रत्येक ६-६ माशा । सबको कूट कपडछान करके उसमे बराबर मिश्री मिलाकर रखले । १-१ तोला प्रात साय गोदुग्ध के साथ सेवन करें । इससे हाथ पैरो की सधियो की वाई, पैरो मे शर चलना, सम्पूर्ण शरीर मे हाड-हाड दुखना आदि सब वात के रोग नष्ट हो जाते है ।

—लादूराम जी विरक्त

७. काले तिल ४० तो०, गोंद कीकर ४० तो०, हल्दी १० तो०, गुड ५० तो० । तिलो को कढाई मे डाल कर अगारो की आँच पर सेंक ले । घी मे हल्दी को भून ले तथा गोंद को भी घी मे सेक ले । फिर इनमे गुड मिलाकर १ छटाक के लड्डू बनाले । रात को सोते समय १ लड्डू खाकर कुल्ला करें । जो लोग खटियो मे रात-रात भर वैठे रहते हैं, बहुमूत्र से परेशान हैं, उनके लिए अक्सीर हैं ।

—प० श्री नाथूराम जी शर्मा खेतडी

८ लोह भस्म उत्तम वारितर १ तो०, शिलाजीत सूर्यतापी २ तो० मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनालें । सुजाक मे शर्वत बजूरी या दही की लस्सी से, प्रमेह, मधुमेह, मे गोदुग्ध और मिश्री से, मूत्राघात मे गोखरू कालीमिर्च के क्वाथ से जीर्ण रोगों मे दुग्ध मिश्री से सेवन करें । किसी कारण से आई हुई कमजोरी को दूर करना विष को बाहर निकालना और खून बढाना इस औषधि का मुख्य गुण है ।

—श्री पन्नालाल जी जैन 'सरस'

९. लोह भस्म (दरदयोगेन) ४ तो०, स्वर्ण वंग १ तो०, शुद्ध कुचला ६ माशा, शुद्ध मल्ल १॥ माशा सब दवाओ को सतावर, विदारीकन्द, आवला, देशी पान के स्वरसो की अलग-अलग भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनालें । १-१ गोली भोजन के बाद नवनीत से या घृत मिले दुग्ध से लेने पर अर्श, प्रमेह, नामर्दी, किसी भाग मे वायु का दर्द आदि नष्ट होते हैं ।

—वैद्य श्री शरद कुमार जी मिश्र

१० सर्पगन्धा का चूर्ण २ तो०, ब्राह्मी का सफूफ ३ माशा, वच का चूर्ण ३ तो०, इन सबको ८ औंस रैक्टीफाइड स्प्रिट मे डालकर तीन दिन शीशी मे रखे, बीच-बीच मे हिलाते रहे, लाल रग का मिक्चर बनेगा । अधिक से अधिक १० बूद तक रोगी को दें । यह टिन्चर निद्रानाश व उन्माद की एक ही दवाई हैं ।

—कविराज श्री हरिकृष्ण जी सहगल

११ शुद्ध धतूरा बीज ३। तो०, रेवन्द चीनी २॥ तो०, सोठ १। तो०, गोद किकर १ तो०, गोद को पानी मे हल करलें, शेष औषधियो का कपडछन द्वारा निहायत बारीक चूर्ण कर उसमे मिला दें । ४-४ चावल की गोली बनालें । १-४ गोली उष्ण जल या दुग्ध से लेने पर शिरःशूल, प्रतिश्याय, जीर्ण विषम ज्वर, वात ज्वर मे लाभ करती है । यह योग आयुर्वेद मे ऐस्प्रीन का काम करता है ।

—वैद्य श्री केशवदास जी सुड़ेले झाँसी

१२. शुद्ध भिलावा, तिल, शहद, मिश्री प्रत्येक १-१ पाव गौ का घी ३ छटाक, गौ का दूध ५ सेर । पहले दूध मे भिलावे को औटावे, जब औटाते-औटाते दूध १ सेर शेष रह जावे तब उतार कर भिलावे को निकाल तिल मे खूब कूटे, फिर सब को एक मे मिला दूध मे डाल औटावे और चलाते जावे, अवलेह की तरह होने लगे तो शहद, घी और मिश्री डालकर अवलेह बना उतार एक पात्र मे रख देवे । पहले दिन दो आने भर से शुरू करें फिर रोज थोडा थोडा बढाते हुए एक तोला तक ले जावें । खाने के

—शेषांश पृष्ठ २३२ पर देखें ।

जरा व्याधि-चिकित्सा

कविराज डा० हरिवल्लभ मन्नूलाल सिलाकारी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक-चक्रवर्ती, आयुर्वेद बृह०
स्वामी निरंजन-निवास, कोतवाली रोड, सागर (म०प्र०)

शिरःकम्प—

१—शिरोवस्ति देनी चाहिए।

२—बृहत्वात चिन्तामणि रस १ रत्ती मात्रा को-अश्वगन्धा, शतावर, सोंठ, गुग्गुल समान भाग के चतुर्थांश क्वाथ मे मधु मिलाकर दिन मे तीन वार-प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि समय प्रयोग करना चाहिए।

३—महानारायण तैल की मालिश करने से शिरःकम्प शान्त होता है।

केश श्वेत होने पर—

(१) महाभृङ्गराज तैल की शिर मे मालिश। (२) त्रिफलाघृत के साथ स्वर्णमाक्षिक भस्म का सेवन करें।

हस्त कम्प—

१—महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती, बृहत्वात चिन्तामणि १ रत्ती, एक मात्रा। घृत, मधु विषम भाग के साथ दिन मे दो वार ऊपर से एक पाव औटाया दूध पिलाये।

२—अश्वगन्धारिष्ट २ तो०, ताजा जल मिलाकर भोजनोत्तर दिन मे दो वार देना चाहिए।

३—महानारायण तैल की कम्प वाले हाथो पर अभ्यंग करना हितकर है।

दृष्टि दौर्बल्य—

१—सप्तामृत लौह ४ रत्ती, घृत-मधु विषम भाग मे मिलाकर दिन मे दो बार। प्रातः-साय सेवन करना चाहिये।

२—चन्द्रोदय वर्ति अथवा भीमसेनी सुर्मा का नेत्रो में अञ्जन करना।

३—त्रिफला के हिम से प्रातःकाल नेत्रो को प्रक्षालन करना चाहिए।

दन्तपात—

१—दातो की सुरक्षा और स्वच्छता के लिए सदा सावधान रहना चाहिए। नीम, बबूल की दातोन की कुची से दातो को दो बार साफ करना-चाहिए।

२—सरसो के तैल मे महीन पिसा हुआ सैंधा नमक मिलाकर दातो तथा मसूढो पर मलना चाहिए।

३—दशनसंस्कार चूर्ण का मंजन करना दातो के लिए उचित है।

३—दन्तवज्र मंजन—सोंठ, बड़ी हरड का छिलका, कत्था, कपूर देशी, सुपारी का कोयला, बादाम के छिलको का कोयला, मौलश्री की छाल, कालीमिर्च, दालचीनी, लौंग। सब समान भाग लेना। इन सबके बराबर भाग दूधिया चाक (खरिया) मिट्टी।

विधि—सबको कूटकर कपडे से छानकर शीशी मे रख लेना। नित्य नियमपूर्वक प्रातः तथा रात्रि मे सोने से पहले इस मंजन के करने से--दातो के कीडे, शोथ, मसूढो से रक्तस्राव होना, दुर्गन्धि, मैल जमना, दातो का हिलना, बे समय गिरना बन्द होता है और पायरिया रोग नष्ट होता है।

बधिरता—

१—कर्ण के मैल को निकाल कर सदैव स्वच्छ रखना चाहिए। स्वच्छ किये कान मे नित्य प्रति सरसो का तैल छानकर डालना।

२—बधिरता की दशा मे बिल्वादि तैल कान मे डालना अथवा महानारायण तैल का प्रयोग करने से बधिरता नष्ट होती है।

स्मृति न्यूनता—

१—स्मृति की सुरक्षा हेतु शिर मे ब्राह्मी आमला तैल का उपयोग करना उचित है।

२—स्मृति सागर रस २ रत्ती, ब्राह्मी वटी १, दोनो का मिश्रण कर ब्राह्मीघृत १ तोले के साथ, प्रातः साय

दिन मे दो बार सेवन कर ऊपर से औटाया हुआ दूध पीना चाहिए।

३—सारस्वतारिष्ट २ तोला, अश्वगन्धारिष्ट २ तो०, ताजा जल ४ तो० मिलाकर भोजनोपरान्त दिन मे दो बार लेने से स्मृति न्यूनता नष्ट होती है।

अनिद्रा—

१—शिर मे बादाम का तैल तथा खसखस का तैल दोनो को मिलाकर मर्दन करना, विशेषकर रात्रि के समय।

२—भाग की पत्ती का रस अथवा क्वाथ में तिल तैल पाचित कर छानकर इसको शिर मे तथा पैर के तलुओं मे लगाने से निद्रा आती है।

३—एरण्ड बीज को जलाकर काजल पाड़ना, इस काजल को आखों मे आजना।

४—अफीम अथवा जायफल को जल मे घोट या घिस कर आख के ऊपर टोपो पर प्रलेप करने से अनिद्रा नष्ट होती है।

५—इन्द्र जौ अथवा भाग के चूर्ण को बकरी के दूध में पीस पैर के तलुओं पर प्रलेप करने से निद्रा आती है।

६—काकमाची के मूल को तकिये के नीचे रख कर सोने से निद्रा आती है।

७—निद्रावर्धन रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, वत्सनाभ, सुहागा चौकिया, भुना सैंधा नमक, काला नमक, विड् नमक, कसिया नमक, जीरा, लौंग, दालचीनी, सर्पगन्धा, मीठी बच, ब्राह्मी। प्रत्येक औषधि समान भाग।

विधि—प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करना। इसी कज्जली मे तीनो भस्मे मिलाकर मर्दन करना। फिर समस्त औषधियो को एकत्र कूटकर कपडे से छान लेना। सबको मिलाकर इसमे निर्गुण्डी, भृंगराज, शंखपुष्पी, वासा, अपामार्ग की पत्तियो के रस तथा गूमा के फल और आर्द्रक रस की १-१ भावना देकर १ रत्ती वजन की वटिका बनाकर रख लेना। मात्रा—एक से चार वटिका तक अवस्थानुसार। अनुपान—दूध अथवा मधु। समय—रात्रि मे सोने से पूर्व अथवा आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। गुण—अनिद्रा होती। तन्द्रा, आलस्य, बेचैनी, दाह, ऊष्मा और आभ्यन्तरीय शीत की दशा मे उपयोगी है। मानसिक-शारीरिक निर्बलता निवारक है।

८—सायलजीन टिकिया (अलारमिन क० बम्बई) २-२ पानी के साथ दिन मे तीन बार देने से निद्रा आती है। उक्त अनिद्राहर योग हैं।

मन्दाग्नि—

जराव्याधि मे मन्दाग्नि होना एक विशेष लक्षण है। इसमे कब्ज रहता है, भूख कम लगती है, अम्ल-उद्गार आती है। गले मे जलन होती है, पेट मे कभी-कभी पीड़ा होती है, आमाशय प्रदेश पर भारीपन मालूम पड़ता है। इस अवस्था मे निम्न प्रयोग हितावह हैं—

१—सर्वप्रथम कब्ज को नष्ट करने के लिए-पचसकार-चूर्ण अथवा त्रिफला चूर्ण ३ माशे से ६ माशे तक गुलकन्द २ तोले मे मिलाकर रात्रि मे सोते समय देना, अथवा एक गिलास कवोष्ण जल के साथ देना चाहिए।

२—शिवाक्षार पाचन चूर्ण ३ माशे से ६ माशे तक दो घूंट जल से दिन मे ३ बार तक अवस्थानुसार लवण भास्कर चूर्ण, यवानीखाण्डव चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण इनमे से जो अनुकूल हो उसका उचित अनुपान द्वारा उपयोग करना हितकर है।

३—अग्निकुमार रस, अग्नितुण्डी वटी का भी प्रयोग रोग तथा रोगी की स्थिति के अनुसार उपयोग किया जा सकता है।

४—अग्न्यासव, कुमार्यासव, द्राक्षासव इनमे से कोई एक आसव प्रकृति के अनुकूल उपर्युक्त मात्रा मे भोजनोपरान्त सेवन करना मन्दाग्नि और उदर विकार विनाशक तथा पाचक और अग्निप्रदीपक है। जराव्याधि की चिकित्सा मे लिखित औषधिया सब शास्त्रोक्त है। अतएव स्वय निर्माण करना चाहिये अथवा विश्वसनीय आयुर्वेदिक फार्मेसियो द्वारा खरीद कर व्यवहार मे लेना चाहिये।

जराव्याधि चिकित्सा का इस अनुभव पूर्ण लेख मे विद्वान वैद्यो को केवल दिशा-निर्देश मात्र अति संक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत है। आशा है इसके द्वारा जनता जराव्याधि से मुक्ति प्राप्त कर दीर्घजीवन एवं आरोग्य लाभ प्राप्त करेगी।

×



वृद्धावस्था में आहार



डा० बी० पी० गुप्ता बी एम. एस., हाऊस सर्जन, तिब्बिया कालेज आतुरालय, करौल बाग, नई दिल्ली-७।

श्री गुप्ता जी दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातक तथा एक होनहार उत्साही नवयुवक आयुर्वेदज्ञ हैं। आपने जितनी भी परीक्षायें दी हैं सभी मे प्रत्येक वर्ष प्रथम स्थान प्राप्त किया है जो आपकी प्रतिभा का द्योतक है। सम्प्रति तिब्बिया कालेज के चिकित्सालय मे हाउस सर्जन हैं। प्रस्तुत लेख मे वृद्धावस्था मे भोजन की मात्रा कैसी रहनी चाहिए तथा क्या भोजन रहना चाहिये इसका युक्तियुक्त विवेचन किया है। आशा है कि पाठकों को यह लेख रुचिकर प्रतीत होगा। —दाऊदयाल गर्ग (सम्पादक–धन्वन्तरि)

मानव शरीर की आयु बढ़ने के साथ-साथ उसकी पाचन प्रक्रिया मन्द मन्दतर होती जाती है। पचनाग्नि मे निरन्तर क्षीणता बढ़ती जाती है। आमाशय में अम्लीयता कम हो जाती है। अग्न्याशय स्राव में भी कमी आ जाती है। आन्त्र में रक्त संग्रहन भी कम होने लगता है। कोष्ठ की मांसपेशी एवं आन्त्र गति में भी क्षीणता आ जाती है फलस्वरूप भोजन का विलयन भी भली प्रकार नहीं हो पाता जिससे अनेक प्रकार के पाचक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इस बात को देखते हुए वृद्ध व्यक्ति को भोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिये।

परीक्षण के आधार पर देखा गया है कि ७० से ८५ वर्ष के ऐसे व्यक्ति जो सक्रिय या सचेष्ट हैं वे २००० से २५०० कैलोरी दैनिक आहार लेते हैं। स्त्रियां जो घर में ही रहती हैं १००० से १५०० कैलोरी के लगभग आहार लेती हैं। वृद्ध व्यक्ति का आहार इतना होना चाहिए कि उसका भार न बढ़े। जितनी कैलोरीज रोज खर्च हो उतनी ही कैलोरीज का आहार लेना चाहिए। आराम से बैठने पर प्रतिकिलो प्रति घण्टा १ कैलोरी खर्च होती है हल्के श्रम करने पर २ कैलोरी प्रतिकिलो प्रतिघण्टा खर्च होती है।

आहार की दैनिक कैलोरीज में ५० प्रतिशत कार्बोज भोजन से २०-२५ प्रतिशत वसा से तथा शेष प्रोटीन्स से आनी चाहिए।

कार्बोज में उच्च कैलोरी वाले भोजन का सेवन कम करना चाहिए क्योंकि उनसे स्थूलता बढ़ती है। अल्प कैलोरी वाले कार्बोज भोजन जैसे सब्जी, फल मेवे का विशेष सेवन करें। शरीर के प्रतिकिलो भार के पीछे ३५ ग्राम कार्बोज भोजन लेना पर्याप्त है।

वसा में वनस्पति तैलो के प्रयोग से लिपिड्स एव कोलेस्ट्राल की मात्रा कम रहती है जबकि वनस्पति घी एव मक्खन सतृप्त वसाम्लीय पदार्थ होने के कारण कम प्रयोग करने चाहिये। वनस्पति घृत का प्रयोग तो वृद्धावस्था में बिलकुल ही न करें क्योंकि इसके सेवन से रक्त-सान्द्रता बढ़ती है तथा रक्त जमने की प्रवृत्ति भी बढ़ जाती है। प्रति किलो भार के पीछे ७५ ग्राम प्रति दिन वसा पर्याप्त है। वृद्ध व्यक्तियों के आहार में प्रोटीन कम होने पर शरीर के भार में कमी, थकावट, मानसिक विक्षोभ शीलता, व्रण का जल्दी रोहण न होना, संक्रमण के लिए प्रतिरोधक शक्ति की कमी के लक्षण होते हैं। वृद्धावस्था में बलगम निकलने पर प्रोटीन अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिए परन्तु यदि वृक्क निबल हो तो प्रोटीन की मात्रा कम लेनी चाहिए। सामान्यत प्रोटीन प्रतिकिलो भार के पीछे १ ग्राम दैनिक के हिसाब से काफी है परन्तु यदि उच्चकोटि की प्रोटीन जैसे मांस, अण्डा, पनीर है तो १/२ ग्राम प्रतिकिलो से भी काम चल सकता है।

वृद्धावस्था में विटामिन्स की दैनिक मात्रा निम्न प्रकार निर्धारित करें विटामिन ए ५००० U S P यूनिट विटामिन सी १०० Mg, B_1 ५ Mg, B_2 ५ Mg,



B_6 १ Mg, E ५ Mg, B_2 ५ Mg।

इससे अधिक मात्रा लेने से विशेष लाभ नहीं होता।

पार्थिव तत्वों के सम्बन्ध में कैलाशियम ८ ग्राम, फास्फोरस १ ४ ग्राम, सोडियम २ ६ ग्राम आयरन १२ Mg, कापर १ Mg प्रतिदिन की आवश्यकता वृद्धावस्था में पड़ती है। यह मात्रा अमेरिका की राष्ट्रीय अनुसधान परिषद् ने निर्धारित की है। यह आवश्यकता पत्र शाक, अण्डे, पनीर आदि से पूरी हो जाती है।

वृद्धावस्था मे उपयोगी आयुर्वेद योग—

चरक (सू० ४-१७) ने गिलोय, हरड, आवला, मोती श्वेता, जीवन्ती रास्ना, ब्राह्मी, पुनर्नवा, शालिपर्णि इन दस द्रव्यो को वय स्थापक बताया है। आवले का नाम तो वयस्या है ही अत इसका उपयोग अधिक होता है। आवले के प्रसिद्ध योग च्यवनप्राश के विषय में चरक ने लिखा है—

"मेधा स्मृति कान्तिमनामयत्वमायु प्रकर्ष बलमिन्द्रियाणाम्"

च्यवनप्राश की २ तोला मात्रा रोज ली जाती है।

२. आमलकी रसायन (ग. नि.)—आवले के चूर्ण को आवले के रस की २१ भावना देकर बराबर खांड़ मिला कर २-३ माशा रोजाना सेवन करें।

३. धात्र्यादि योग (वृ० मा०)—आवले के स्वरस मे शहद, घृत, मिश्री मिला कर दें।

४. धात्र्यादि चूर्ण—आंवला, तिल, भागरे का पचाङ्ग बराबर मिलाकर ४ माशा घृत या मधु से दें।

५ पथ्यादि चूर्ण (ग० नि०)—हरड, आवला, विडग समभाग तथा °/४ भाग लोह तथा खांड़ सब कुल भार के बराबर मिलाकर २ माशा घृत से लेने का विधान है।

६ भृङ्गराजादि चूर्ण—भागरा, त्रिफला १-१ भाग, मिश्री २ भाग लेकर ४ माशा दूध से लें।

७ अश्वगधा वृद्धदारु चूर्ण (शा० स०)—असगध, विधारा बराबर मिलाकर दोनो के बराबर खांड मिलाकर ४ माशा घृत या मधु से दें।

८ वृद्धदारु रसायन—(च० द०) विधारा चूर्ण को शतावरी स्वरस की ७ भावना दें। २-४ माशा शहद से।

९. मधु हरीतकी (ब० से०)—२ माशा मधु से दें।

१० वचा रसायन (घृ०मा०)–१/२ माशा वचा दूध या घृत से सेवन करायें।

११. त्रिफला रसायन(यो०र०)–त्रिफला, खाण्ड + अल्प नमक देने से आयुवर्धक है।

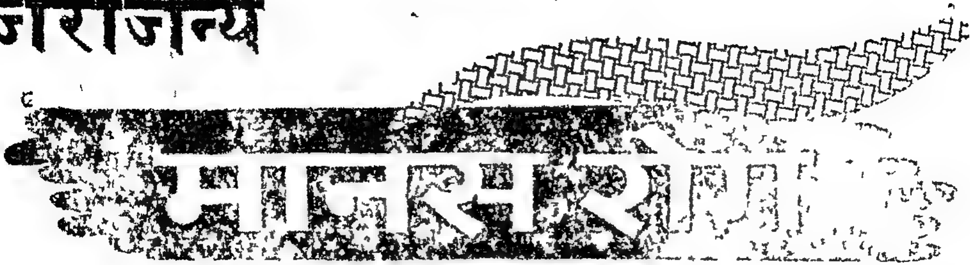
१२. वसन्तकुसमाकर–१रत्ती रोज सेवन करने से जरा-व्याधि का नाश होता है। शुक्र रक्षा करने वाले द्रव्यो का सेवन करना चाहिए।

जराव्याधि मे गुप्तसिद्ध प्रयोग — पृष्ठ २२८ का शेषांश

लिये इस दवा पर घी अधिक खावे और वातवर्धक चीजो से परहेज करे। इसके सेवन से गठियावात, कटिशूल, गृध्रसी इत्यादि ८० प्रकार की वात व्याधि, मन्दाग्नि, ज्वर आदि नष्ट होते हैं। —डा० हरीदास जी गुप्त वैद्य भूषण

१३ मैथी, दालचीनी, असगन्ध, अजवाइन, धत्तूर पत्र स्वरस पांचो १०-१० तो०, तम्बाकू की लकडी आधा सेर जल १४ सेर। सबको कूटकर क्वाथ करें। ३॥ सेर शेष रहने पर सवा सेर तिल तैल डालकर तैल पाक विधि से तैल सिद्ध करलें। तैल सिद्ध होने पर उसमे १ तो० मोमन डालकर कपडे मे छान ले अथवा छानकर मोमल मिलाकर रखलें। इस तैल की मालिश करने से समस्त वातरोग नष्ट होते हैं। तैल की शरीर पर मालिश कर धूप में बैठना चाहिए। सिर एव कोमल अ गो पर इसकी मालिश न करे। —कविराज श्री विश्वनाथ प्रसाद जी भिषगाचार्य, लखनऊ

१४. बडी पीपल १ तो०, पंवाड के बीज १ तो०, चीता की जड़ की छाल १ तो०, शतावरी की जड, बडी हरड, बहेड़ा, मुण्डीलोत, भृङ्गराज स्याह, मूसली स्याह प्रत्येक ३ तो०, गुड़ ४॥ सेर। सबको महीन पीसकर गुड़ मिलाकर तीन सौ लड्डू बाँधकर सायकाल भोजन के पश्चात् शयन समय १ लड्डू खाकर ऊपर से कुल्लाकर पान खाकर सो जाना चाहिये। गुण—१ मास में वात व्याधि, २ मास मे सुस्ती. ३ मास मे नासारोग, ४ मास मे शरीर का आलस्य, ५ मास मे बाल काले हो, ६ मास मे तेज हो, ७ मास में स्मरणशक्ति बढ जाय, ८ मास मे वीर्यवृद्धि हो। —श्री भागीरथ जी स्वामी



जराजन्य मानस रोग

डा० एन० सी० शाह, विभागाध्यक्ष— काय चिकित्सा, आ० एवं यू० तिब्बिया कालेज, नई दिल्ली।



डा० एन०सी० शाह विभागाध्यक्ष आयुर्वेदिक एव यूनानी तिब्बिया कालेज, दिल्ली। इसी सस्था के सुयोग्य स्नातक है और गत पन्द्रह-सोलह वर्ष से अपनी मातृ सस्था की सेवा मे रत है। आप गुजराती शाह हैं और वहुत ही सरल स्वभाव के चिन्तनशील एव कुशल चिकित्सक है।

विशेपाक हेतु जराजन्य मानस रोगो पर समन्वयात्मक पद्धति पर सुन्दर प्रकाश डाला है जो पाठको का ज्ञानवर्धन करने वाला है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

मानस रोग—वार्धक्य सुलभ मानस रोग मे Senile Psychosis, Senile Dementia तथा Presenile Dementia नामक रोगो का समावेश होता है। मस्तिष्क को किसी कारण से भी क्षति पहुच जाये तो वुद्धि की मन्दता का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। ७०-७५ वर्ष की आयु मे पहले से ही जो व्यक्ति Psychopathic treatment प्रकृति के होते हैं उसमे किसी मानसिक आपात जैसे स्त्री, पुत्र, धन आदि के वियोग से उत्पन्न होने वाले यह मानस रोग है। जिसमे वुद्धि तथा स्मृति की मन्दता हो जाती है। साथ ही शील और स्वभाव मे परिवर्तन आने के लक्षण मिलते है। यदि यह रोग ६० वर्ष की आयु से पहले ही हो तो इसे Presenile Dementia कहते है।

विकृति—इस रोग मे मस्तिष्क के फ्रंटल और पैराइटिल खण्डो मे क्षति की विकृति विशेप होती है। तन्त्रिका कोशायें (Nerve cells) तथा तन्त्रिका सुत्र (Nerve Fibers) की संख्या न्यून हो जाती है। तन्त्रिकाओ पर चढे आवरण की मात्रा बढ जाती है। मस्तिष्क धमनियो मे कुछ काठिन्य हो जाता है। इनके लक्षण धीरे-धीरे आरम्भ होते हैं।

लक्षण—

स्वार्थ, क्रोध, हठ आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। वालको के समान व्यवहार करना। वुद्धि के न्यून हो जाने से उसकी ग्रहण शक्ति, किसी वात का निर्णय करना, तर्क-वितर्क करना- एकाग्र रहने की शक्ति का ह्रास होने लगता है।

स्वभाव मे भी वह कुछ विषाद प्रधान हो जाता है। तथा अनेक परिवर्तन मिलते हैं। जो काम करने चलता है उसे भूल जाता है। वाद मे ठीक प्रतीति भी नही होती। काल तथा दिशा का ज्ञान भी उसे नही रहता। इस रोग से पीडित रोगी की निद्रा भी वहुत घट जाती है। इस प्रकार वृद्धावस्था मे पाया जाने वाला यह मानस रोग

विषाद प्रधान होता है (Melancholic type), [illegible] विषाद के साथ [illegible] भी मिलता है।

शारीरिक लक्षणों में चेष्टायें मन्द हो जाना, गात्र की मन्दता, चाल में अस्थिरता, हाथों में कम्पन, शरीर तथा मांसपेशियों में संकोच तथा काठिन्य का लक्षण भी मिलता है।

सामान्य सेरीब्रल एथेरोमा का रोग भी ६०-७० वर्ष के व्यक्तियों में विशेष होता है। बुद्धि की मन्दता, स्मृति-नाश, असहनशीलता, भाषण दोष (Disphasia) इसके अतिरिक्त मांसपेशियों में स्तब्धता का विशेष लक्षण मिलता है।

पृष्ठवंशास्थि रोग—इसको Spondylosis या Hypertrophic Spondylitis कहते हैं। वृद्ध व्यक्तियों में अधिकतर कटिप्रदेशीय और कभी-कभी ग्रीवा प्रदेशीय कशेरुकाओं के बीच की कशेरुका के बीच में डिस्क के चारों ओर तरफ बढ़ जाने से उनमें अस्थि निर्माण हो जाता है। कशेरुकाओं के बीच का स्थान तंग हो जाता है। फलतः सुषुम्ना या नाड़ी मूल दब जाते हैं। जिससे शूल, शून्यता, कटि शूल स्कन्ध तथा ऊर्ध्व शाखा में शूल या झिनझिनाहट हो जाता है। सुषुम्ना काण्ड के ऊपर निर्दिष्ट रोगों में ऊपर से उतरने वाले चेष्टा सूत्रों (Pyramid Tract) के ग्रस्त हो जाने से हाथ पाँव की मांसपेशियों पर मस्तिष्क का नियन्त्रण उठ जाता है।

वृद्ध रक्तचाप—

रक्तभार का बढ़ना वृद्धावस्था का स्वाभाविक लक्षण है। यदि यह भार १५०-१५५ भी हो जाये तो उसे बढ़ा हुआ नहीं समझा जाता। परन्तु यदि विस्फारिक रक्तभार बढ़ा हुआ और १०० से ऊपर हो और संकोचलिक रक्त-भार १६० से ऊपर चढ़ जावे तो उसे रक्तभार वृद्धि (Hypertension) कहते हैं।

आयु के अनुसार नार्मल रक्तचाप—

	पुरुष	स्त्री
६५–७० वर्ष की आयु में—	१४५/८०	१५५/८५
७०–७५ „ „	१६५/९०	१६५/९०
७५–८० „ „	१६०/९०	१६०/९०
८५–९० „ „	१६५/८५	१६५/८५

[illegible] कैरोटिड [illegible] —

यह [illegible] ६० [illegible] व्यक्तियों में [illegible] कैरोटिड [illegible] Carotid Middle Artery [illegible] में होता है। इसका [illegible] है।

२. मस्तिष्क में रक्तस्राव—

मस्तिष्क में रक्तस्राव (Cerebral Haemorrhage) ६०-७५ वर्ष की आयु में [illegible] होता है तथा [illegible] घातक होता है।

३. रक्तभार जनित मस्तिष्क रोग (Hypertensive Encephalopathy)—

रक्तभार जनित मस्तिष्क रोग [illegible] की आयु में [illegible] होता है। [illegible] रक्तभार २०० [illegible] भार १६० से ऊपर हो जाता है। रक्तभार वृद्धि की उपस्थिति [illegible] के कारण यह रोग होता है। [illegible] रोग है जिसमें [illegible] होता है। [illegible] विकृति उत्पन्न हो जाती है।

Parkinson's Disease Or Paralysis Agitans,

इसको सकम्पवात पक्षाघात अथवा [illegible] पक्षाघात कहते हैं। इस रोग में स्नायुतन्तु की निर्बलता का प्रधान लक्षण होता है और पक्षाघात कम्प का लक्षण भी होता है। इसमें पक्षाघात जैसे लक्षण नहीं मिलते लेकिन ऐच्छिक चेष्टाओं में कुछ असमर्थता का लक्षण मिलता है।

६०-७० वर्ष की आयु में विशेषतः पुरुषों में यह रोग शनैः शनैः प्रगति करते हुए अङ्गों में स्तब्धता (Muscular Rigidity) आने लगती है।

स्तब्धता तथा निर्बलता इन प्रधान लक्षणों के अतिरिक्त रोगी की मासपेशियों में कम्प या वेपथु (Tremor) का लक्षण भी होता है। यदि स्तब्धता का लक्षण स्पष्ट हो तो वेपथु का लक्षण कुछ अस्पष्ट सा रहता है। यदि वेपथु ('Paralysis Agitans) का लक्षण स्पष्ट हो तो स्तब्धता का लक्षण कुछ अस्पष्ट सा होता है। इसलिए इस रोग को कम्पयुक्त या स्तम्भयुक्त पक्षाघात कहा है।

हेतु—L Tyrosine से Hydroxylase के द्वारा L-Dops बनता है। उसमें Decarboxylase के द्वारा Dopamine बनता है। Dopamine से Monoamino-oxidage के द्वारा Homovanilbic acid बनता है।

Basal Ganglia तथा Substantia Nigra में Dopamine तथा Homonaillic acid विशेष रहते हैं। Extrapyramidol tract की चेष्टाशीलता इन्हीं पर निर्भर है। Striatum में इनका सर्वथा अभाव तथा Pallidum और Substantis Nigra में इनकी बहुत कमी होने से यह उपद्रव होता है।

चिकित्सा—

जरावस्था में रसायन सेवन का अधिक महत्व है।

लाभोपायो हि शस्ताना रसादिना रसायनम्।
यज्जराव्याधि विध्वंसि भेषज तद्रसायनम्'॥

' जिन औषधियों के सेवन से शरीर में रस रक्त आदि धातुओं की प्राप्ति के कारण मनुष्य को जरा (वृद्धावस्था) शीघ्र प्राप्त नहीं करती और वह शारीरिक व मानसिक व्याधियों से बचा रहता है, उसे रसायन (भेषज) कहते हैं।

रसायन के सेवन से मनुष्य दीर्घ आयु, स्मृति, मेधा, तरुणावस्था, आरोग्य, वर्ण और स्वर का उत्तम बना रहना। शरीर और इन्द्रियों में परम बल रहना। यह मुख्य गुण हैं।

च्यवनप्राश, ब्राह्मी रसायन, आमलकी रसायन वृद्धदारु रसायन आदि औषधियों का प्रयोग जरावस्था में स्वास्थ्यरक्षक मानी जाती है।

महर्षि चरक ने—गिलोय, हरड, आवला, मोती श्वेत, जीवन्ती, रास्ना, ब्राह्मी, शालिपर्णी, पुनर्नवा इन दस द्रव्यों को वय स्थापक कहा है। इनमें आवला का दूसरा नाम वयस्था है, और वय स्थापन के लिए सबसे अधिक उसी का उपयोग होता है। आवला का सबसे बड़ा योग च्यवनप्राश है जो मेधा, स्मृति, कान्ति, आयु, इन्द्रियों में बल आदि प्रदान करता है।

उपरोक्त रोगों से बचने के लिए रसायन विधि के अतिरिक्त निम्न नियमों का पालन करने से वृद्धावस्था के जरा रोगों से बचा जा सकता है—

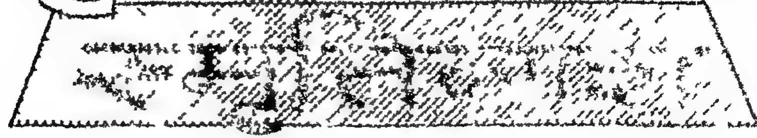
१ आचार रसायन का पालन—स्वाध्यायी, संयमी, सदाचारी व्यक्ति अशान्ति, वादविवाद, अतिभाषण से बचना यह आचार रसायन कहलाते हैं।

२. इसका व्यायाम, आसन, अभ्यंग, भ्रमण करना।

३. अधिक कैलोरीज वाले भोजनों जैसे घी, वनस्पति खाण्ड, मिठाई आदि की मात्रा बहुत कम लेनी चाहिए। सब्जी, फल, बिना चिकनाई के मट्ठे का सेवन निर्दोष करना चाहिए। २०-२२ सौ कैलोरीज से अधिक का आहार नहीं लेना चाहिए।

भोजन में आवले का अचार या चटनी, मुरब्बा, नीबू मेथ, चने की दाल या बेसन तथा मट्ठे के लेने से Atherosclerosis में रुकावट होकर लाभ करती है। ×

स्मृतिमांद्य या



श्रीमती रेशम देवी चौहान आयुर्वेद वारिधि, बी एस सी. ए,
उपसंचालिका—चौहान आयुर्वेद निकेतन-नवीगज, (मैनपुरी) उ प्र

कारण—मस्तिष्क की स्मृति शक्ति अनेक कारणों से घट जाती है। इसके कुछ कारण निम्न हैं—

(१) मस्तिष्क मे किसी विकृति के होने से।

(२) जरावस्था मे क्षीणता की प्रतिक्रिया प्रारम्भ होना।

(३) मस्तिष्क के अन्दर इन्ट्राक्रेनियल प्रेशर बढना।

(४) रक्तभार वृद्धि तथा धमनी स्रोतावरोध से।

(५) मस्तिष्क के पोषण मे कमी आने पर। विशेष रूप से एमीनो एसिड तथा विटामिन्स की न्यूनता से।

(६) दुर्घटना द्वारा मस्तिष्क के क्षतिग्रस्त होने से।

(७) सिर की चोट एव विषज कारणजन्य मस्तिष्कीय क्षति तथा जरावस्था के कारण उत्पन्न पतनोन्मुख मस्तिष्कीय परिवर्तन।

(८) किसी तीव्र सवेदात्मक अनुभव—जैसे किसी प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु, आर्थिक घाटा अथवा भयानक तथा लज्जाजनक घटना आदि के कारण।

इसके अतिरिक्त ब्रोमाइड तथा अन्य शामक औषधियो के प्रभाव से मद्य-पान, विष, अपस्मार के आक्रमण के पश्चात्, बिजली के करेन्ट लगने से, योषापस्मार तथा मानसिक विकास मे कमी आदि।

लक्षण—स्मृतिनाश के अन्तर्गत मनुष्य प्रत्येक घटना का मानसिक चित्र तो अंकित करता है पर समयानुसार वह चित्र पुन चेतना के ससार मे प्रवेश कर उसे स्मृति के रूप मे उपस्थित नही होता है। स्मृति पूर्ण या अपूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है।

चिकित्सा—स्मृति शक्ति की वृद्धि के लिये शरीर को मृदु व्यायाम, उचित भोजन आदि से स्वस्थ रखने का यत्न करना चाहिये। मस्तिष्क के पोषण के लिए ग्लूकोज आवश्यक है। साथ ही उत्तम प्रकार के एमीनो एसिड। इसके लिए रोगी को पर्याप्त मात्रा मे दूध, बादाम, विटामिन्स बी१ बी२ बी६ देने चाहिए। स्मृति वृद्धि के लिए बल्य तथा रसायन औषधियां देनी चाहिए।

स्मृति शक्ति की वृद्धि के लिए निम्न योगो का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है—

१—ब्राह्मी घृत (च० द०)—ब्राह्मी स्वरस या क्वाथ ३॥ लिटर व घी ६४० ग्राम और वच, कुठ, शखपुष्पी तीनो को मिलाकर ५० ग्राम कल्क बनाकर सबको एकत्र मिलाकर पकावें। जब घृत मात्र शेष रह जाय तो उसे छानकर रख ले। मात्रा एव अनुपान–६-१२ ग्राम, बराबर मिश्री के साथ। ऊपर से धारोष्ण दूध पिलावे। यह बुद्धि की निर्बलता, मनोदोष, याददास्त की कमी मे उपयोगी है।

(२) वचादिघृत (वाग्भट)—वचा, गिलोय, कचूर, हरीतकी, शखपुष्पी, विडग, सोठ, अपामार्ग १-१ किलो, जल १६ लिटर मे पकावें। उपर्युक्त द्रव्यो के १२-१२ ग्राम का कल्क डालकर घृत १ किलो का पाक करे। मात्रा—६-१२ ग्राम बराबर मिश्री के साथ।

(३) सप्ताग घृत (ग०नि०)—शखपुष्पी, ब्राह्मी, वचा,

गिलोय, शतावरी, कठूमर की छाल, हुलहुल समान मात्रा मे मिलाकर आधा सेर का कल्क। घृत २ सेर। घृत साधन करें। मात्रा ६-१२ ग्राम।

(४) वचा रसायन—वचाचूर्ण २५०-३६० मिलीग्राम प्रतिदिन दूध के साथ १ माह तक।

(५) ज्योतिष्मती रसायन—ज्योतिष्मती तैल, गंधक, गोघृत—सभी समान मात्रा मे लेकर मिला लें। मात्रा—१०० मिलीग्राम। क्रमश. मात्रा बढाते हुए १ ग्राम तक।

(६) वृद्धादारू रसायन (च० द०) १ ग्राम प्रतिदिन मधु से सेवन करावें।

(७) गुडूच्यादि रसायन (वं० से०)—गिलोय, अपामार्ग, शखपुष्पी, विडग, वचा, शतावरी, हरीतकी, सोंठ इन सबका समभाग चूर्ण बनाले। मात्रा—२-३ ग्राम गोघृत के साथ। ऊपर से दूध पिलावें।

(८) बादामपाक—बादाम की गिरी आधा किलो पीसकर घृत १०० ग्राम मे भून लें। तत्पश्चात खाड १ किलो की चाशनी तैयार करें। दोनों को मिलाले। तत्पश्चात् छोटी इलायची, लौंग, जायफल, दालचीनी, केशर १२-१२ ग्राम, पिस्ता, चिरौंजी ५०-५० ग्राम पीसकर मिला लें। मात्रा—२५ ग्राम प्रतिदिन।

(९) ब्राह्म रसायन—यह रस योग सागर का योग है। मात्रा १२-१५ ग्राम गोदुग्ध अथवा जल के साथ। इसके सेवन से कान्ति तथा स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है।

(१०) सारस्वतारिष्ट (भै० र०)—३-६ ड्राम प्रात साय भोजनोपरान्त समभाग जल से। शास्त्र मे लिखा है कि अधिक पढने अथवा अन्य किसी कारण से स्मृति का ह्रास हो गया हो तो इसके प्रयोग से लाभ होता है।

(११) अश्वगन्धारिष्ट—४-८ ड्राम समभाग जल से दिन मे दो बार। इसके सेवन से यादवाश्त की कमी दूर होकर स्मरण शक्ति बढती है।

(१२) अगूरासव (वृ आसवारिष्ट सग्रह)—४-८ ड्राम प्रात सायं भोजन के बाद समभाग जल से इसके सेवन से मस्तिष्क की निर्बलता दूर होकर स्मरण शक्ति बढती है।

सिद्ध आयुर्वेदिक पेटेन्ट औषधियां—

(१) फिजिगोटोन (श्री त्रिमूर्ति फार्मेसी)—यह सुन्दर सुमधुर टानिक है। याददास्त की कमी दूर होकर कान्ति एव बुद्धि की वृद्धिहोती है। २-२ चम्मच दिन मे २-३ बार।

(२) टी० पी० टोन (त्रिमूर्ति फार्मेसी) इसके सेवन से स्मरण शक्ति बढती है। २-३ चम्मच दिन मे २-३ बार।

(३) मोहता हीमोटोन (श्री मोहता रसायनशाला) इसके सेवन से स्मरण शक्ति की दुर्बलता नष्ट होती है। मानसिक अवसाद मे भी लाभकारी है।

मात्रा—२-४ चम्मच प्रतिदिन।

(४) मोहता शखपुष्पी पानक (मोहता रसायनशाला) इसके सेवन से स्मरण शक्ति बढती है तथा मस्तिष्क मे ताजगी आती है।

(५) **मेधा कैपसूल** (निर्मल आयु सस्थान)—इस पेटेन्ट औषधि मे ब्राह्मी शखपुष्पी मधुयष्ठी आदि औषधियां मिली रहती है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति बढती है। मस्तिष्क मे हर समय रहने वाली थकावट दूर होती है जो छात्र पर्याप्त परिश्रम करते हुए भी अपना पाठ भूल जाया करते हैं उनके लिए अत्युपयोगी है।

मात्रा—१-१ कैपसूल प्रात सायं जल से, ग्रीष्मकाल में प्रतिदिन ३ कैपसूल।

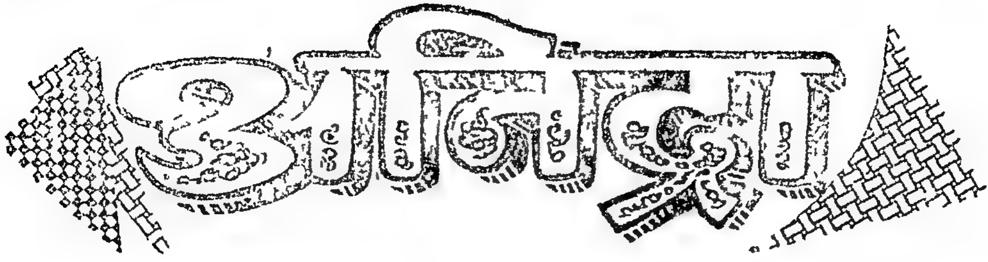
(६) सीरप शंखपुष्पी (झण्डू फार्मास्युटिकल)—४-८ मि० लि० जल या दूध के साथ दिन में दो बार। स्मृति की पर्याप्त वृद्धि होती है।

(७) लिक्विड एक्स्ट्रेक्ट आफ ब्राह्मी (झण्डू)—उत्तम स्मृतिवर्धक है।

(८) ब्राह्मीशखपुष्पी घन सत्व (गर्ग वनौषधि भडार)—इसके सेवन से स्मरण शक्ति बढती है और मस्तिष्क मे हर समय रहने वाली थकावट दूर होती है। परीक्षा के समय मे इसे सेवन करने से पर्याप्त लाभ रहता है।

(९) ब्राह्मी तैल—इसे कई आयुर्वेद संस्थान निर्मित करते हैं। मस्तिष्क पर नियमित रूप से लगाने से स्मृति मे पर्याप्त वृद्धि होती है। आमला हेयर आयल (झण्डू) के भी यही गुण है।

जरावस्था में—



आयुर्वेद वाचस्पति डा० जहान सिंह चौहान, नवीगज (मैनपुरी)

अनिद्रा—नीद न आना (Sleeplessness) इस अवस्था मे रोगी की निद्रा मे कमी हो जाती है।

कारण—नीद न आना–कितनी ही बार दूसरे रोग का लक्षण ही रहता है। इस विकार को उत्पन्न करने वाले अनेको कारण हैं। सुश्रुत सहिता मे लिखा है कि "निद्रानाशोऽनिलात पित्तात मनस्तापपात् क्षयादपि।" रजोगुण युक्त, वात के अथवा पित्तयुक्त वात के प्रकोप से अनिद्रा रोग उत्पन्न होना है। उच्चरक्तदाव (H Blood Pressure), धमनियो की दीवाल का कडा होना (Arteriosclerosis), दीर्घकालिक विषमता यथा यूरीमिया, मद्य का सेवन, उद्वेग एव चिन्ता के कारण, बुरे विचारो की आदत के कारण अथवा सोते समय भूत, भविष्य एव वर्तमान की उधेड-बुन मे उलझे रहने के कारण प्राय नीद नही आती है। किसी प्रकार की प्रबल चिन्ता या मानसिक विक्षोभ अनिद्रा का प्रधान कारण है। हृदय की निर्बलता, रात्रि के समय चाय, काफी का अत्यधिक सेवन, पीडा, कष्ट, ज्वर, मस्तिष्क के रचनात्मक रोग यथा—इनकेफेलाईटिस लेथार्जिका, मनोवैज्ञानिक कारण, मस्तिष्क मे रक्त की अधिकता और पैरो का ठण्डा होना, उपवास, मलावरोध, अपचन, आध्मान, श्वास, शोथ आदि कारणो से नीद नही आती है। कुछ ऐसे लोग मिलते हैं जिन्हे स्वभाव से ही अनिद्रा का रोग होता है। शिर शूल तथा व्रण शूल आदि मे अनिद्रा की उपस्थिति विशेष रूप से मिलती है।

कृमि रोग, क्षय, भय एव आन्त्रप्रदाह आदि रोगो के परिणामस्वरूप भी रोगी को नीद नही आती है। इनकें- फेलाईटिस लिथार्जिका (निद्रालशी) मे तो रोगी को कई-कई दिनो तक नीद नही आती। रोगी प्राय. सोते-सोते चौक पडता है। बुरे स्वप्न आने पर भी अनिद्रा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

रुग्णावस्था मे निद्रानाश करने मे महत्वहीन अत्यन्त छोटा कारण तथा गम्भीर कारण दोनो ही समानरूप से उत्तरदायी हो सकते है। कभी-कभी बेचैनी, दाह, अतिसार शुष्ककास, हिक्का, कण्डू आदि छोटे छोटे कारण भी उन्हे निद्रा मे बाधक होते हैं। कुछ व्यक्तियो को उनकी विचित्र आदत के कारण भी उन्हे अनिद्रा का शिकार होना पडता है यथा कुछ व्यक्ति विना प्रकाश के नही सो सकते हैं और कुछ इसके विपरीत अधेरे मे ही सो सकते है। इसी प्रकार से कुछ लोग एकान्त मे सोना पसन्द करते हैं और इसके विपरीत कुछ लोग समूह मे सोना पसन्द करते हैं।

लक्षण—अनिद्रा से पीडित रोगी के मन तथा शरीर दोनो ही थके प्रतीत होते हैं। रोगी के कार्य करने की शक्ति तथा क्षुधा दोनो ही कम हो जाते हैं। स्मृति, एकाग्रता, प्रसन्नता आदि सभी शक्तिया घट जाती हैं। रोगी प्राय शान्तिरहित क्रोधी बना हुआ सा प्रतीत होता है। मस्तिष्क के धमनीकाठिन्य मे जबकि रक्तभार बढ जाता है—पहले तो रोगी सो जाता है किन्तु वह लगभग २-३ बजे रात्रि के जाग जाता है और फिर उसे नीद नही आती है। मानसिक विषाद के कारण रोगी को नीद तो आ जाती है पर प्रात काल नीद टूट कर पुन. नही आती है। चिन्ताग्रस्त रोगी के पर्याप्त समय तक शैया

पर पड़े रहने पर भी नीद नही आती है। यदि आती भी है तो शीघ्र-शीघ्र बीच मे टूट जाती है।

कुछ रोगी स्वप्न मे ही उठकर चलने-फिरने लगते हैं अथवा असम्बद्ध कार्य में लग जाते हैं जिसका उन्हे बिलकुल ही ज्ञान नही रहता है। यह रोग बच्चो मे अधिक होता है, पर कभी-कभी युवको मे भी देखा जाता है।

चिकित्सा सिद्धान्त—

रोगी की चिकित्सा मे ऊपर निर्दिष्ट शारीरिक, मानसिक एव अभ्याससात्म्यता तथा शयनाशन एव निवास की सुव्यवस्था पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। घर के शोर-गुल से दूर, सुन्दर सुरुचिपूर्ण सजाये हुए कमरे मे, रोशनी आदि को बुझाकर पखे के नीचे रोगी को सुलाना चाहिए। विषमता, आध्मान, दाह, बेचैनी आदि विकारो की विशिष्ट चिकित्सा करने के उपरान्त आवश्यक होने पर निद्राकर औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। अभ्यग, उबटन, स्नान, आनूपमास रस, घी, दही, भैस का औटाया हुआ मिश्री मिला ठण्डा दूध, गेहू, उडद आदि से सस्कृत पदार्थ का सेवन, सिर पर सुगन्धित तैल की मालिश (जो शीतल हो), पैरो को दबाना आदि उपयोगी होते हैं। रोगी को विशेष रूप से रात्रि के समय मानसिक उद्वेग तथा उत्तेजना आदि से बचाना चाहिए। शरीर पर शतावरी तैल की मालिश, तत्पश्चात स्नान, सिर पर कद्दू, काहू तथा गुलरोगन के तैल की मालिश, पादतल पर घी की मालिश अथवा बकरी के दूध मे पीसकर भाग का प्रलेप आदि करने से नीद आ जाती है। कुछ रोगियो मे जलवायु परिवर्तन से लाभ मिलता देखा जाता है। ३ ग्राम विजया को पीसकर घी मे पकाकर देने से तथा पादतल पर मालिश करने से निद्राकर प्रभाव होता है।

चिकित्सा—

रस सिंदूर तथा शतावर्यादि क्षीरपाक के साथ कल्याणघृत के प्रयोग से रोग मे पर्याप्त लाभ होता है। साथ ही रोगी के भ्रम का भी निवारण हो जाता है। पोस्त एव धनिया का बराबर चूर्ण—३ ग्राम को जल के साथ अथवा शर्बत के साथ देने से अनिद्रा मे उत्तम लाभ होता है। अभ्यग, मर्दन तथा खान-पान का परिवर्तन इस रोग मे विशेष लाभकारी होता है और चिकित्सा मे इनका ही अवलम्बन करना चाहिए। निद्राकर औषधिया खाकर नीद लाना हानिकारक होता है। अनिद्रा मे निम्न चिकित्सा क्रम विशेष लाभकारी सिद्ध हुआ है—

(१) प्रात साय— चिन्तामणि चतुर्मुख ६० मि० ग्रा०
वाताकुलान्तक रस १२० ,,
माहेश्वर रसायन १ ग्राम
ऐसी १-१ मात्रा प्रात एव सायं दिन मे २ बार मधु से

(२) भोजनोपरान्त—अश्वगन्धारिष्ट २० मिलि०
ऐसी १-१ मात्रा दिन मे २ बार भोजनोपरान्त समान जल से।

(३) रात्रि सोते समय—पिप्पलीमूल चूर्ण १॥ ग्राम
चन्द्रावलेह ७॥ ग्राम
१ मात्रा सोते समय दूध के साथ।

(४) शतावरी तैल की शरीर पर मालिश।

अनिद्रानाशक विशिष्ट शास्त्रीय औषधियाँ—

चन्द्रहास अर्क—द्रव्य-अजमोद खुरासानी अजवायन, भाग, धतूरे के बीज, कर्पूर, पोस्त के डोडे एव जायफल—प्रत्येक औषधि ४०-४० ग्राम। सबको जौकुट चूर्ण कर ४ लिटर गोदुग्ध मे मिलाकर रात्रि को भिगो दें और प्रात-काल भबके से अर्क निकाल ले। मात्रा—६ से ८ ड्राम शाम को अथवा आवश्यकतानुसार दे। साथ ही जिन व्यक्तियो मे पित्त की अधिकता न हो उन्हे ऊपर से नागरवेल का पान, कस्तूरी ३० मि० ग्रा० मिला हुआ सेवन करावे। मस्तिष्क की निर्बलता मे इसे १५ बूद द्राक्षारिष्ट एव जल मे मिलाकर दिया जाता है।

विशेष—किसी भी रोग मे निद्रा लाने के लिए यह निर्भय एव उत्तम औषधि है। इसे बालक, प्रसूता एव सगर्भा मे बिना किसी भय के दे सकते हैं। यह अर्क घण्टो तक शान्त निद्रा ला देता है। जब किसी भी रोग मे वेदना के कारण नीद नही आती है वहा पर नीद लाने के लिए इसका प्रयोग उत्तम रहता है।

चन्द्रावलेह—शतावरी, विदारीकन्द, पेठा एव शंखाहुली—प्रत्येक का स्वरस २-२ लिटर तथा शक्कर ४ किलो सबको मिलाकर अग्नि पर पकावें। चासनी बनने पर उतार ले। शीतल होने पर छोटी इलायची के दाने ६४० ग्राम, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, मुनक्का, श्वेत चन्दन, कमल, काला अनन्तमूल, नागरमोथा, पद्माख, खस, आवला, जटामासी एव लौंग— प्रत्येक ४०-४० ग्राम, वशलोचन तथा सर्पगन्धा १६०-१६० ग्राम लेकर महीन चूर्ण बना ले। तत्पश्चात सबको चासनी मे मिला लें।



मात्रा—५-१० ग्राम तक, चन्दनादि अर्क, केवड़ा अर्क, गाजवा के फूलों का अर्क या गोदुग्ध के साथ।

नोट—यह योग स्वर्गीय यादव जी आचार्य का है।

सर्पगन्धा चूर्ण योग—सर्पगन्धा चूर्ण ५० ग्राम+रस-सिन्दूर ३ ग्राम मिलाकर रख ले।

मात्रा—२४०-४८० मि०ग्रा० प्रात साय गोदुग्ध के साथ। इसका एक द्वितीय योग भी दिया जा रहा है जो विशेष निद्राकारक है—

सर्पगन्धा चूर्ण ५० ग्राम, जहरमोहरा पिष्टी, प्रवाल-पिष्टी तथा अमृतासत्व-प्रत्येक ६-६ ग्राम। सबको मिला कर खरल करे। १/२—१ ग्राम प्रात साय गुलाब के अर्क या गुलकन्द के साथ।

नोट—ऐसे रोगी जिन्हे रक्तचाप वृद्धि के कारण नीद नही आती है यह योग विशेष लाभकर होता है।

विजया सत्वादि वटी—नागसत्व एव अभ्रक भस्म १०-१० ग्राम, सफेद मिर्च, छोटी इलायची एवं वशलोचन प्रत्येक २०-२० ग्राम। सबको मिलाकर थोडे जल मे १२० मि० ग्रा० परिमाण की गोलिया बना लें।

मात्रा—१-१ गोली दिन मे २ बार जल से।

ज्ञानोदय रस(रसतन्त्रसार व सिद्धयोग सग्रह)—२-२ गोली दिन मे २ बार मिश्री मिले दूध के साथ।

चन्द्रासव—१/२-१ औंस दिन मे २ बार समान जल से। यह योग भी रसतन्त्रसार का है। मदात्ययजन्य अनिद्रा मे विशेष उपयोगी है।

नागरादि गुटिका—सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, पिपरा-मूल-प्रत्येक सम भाग। सबका चूर्ण शहद मे मर्दन कर २४० मि ग्रा की गोलिया बनाले और सोंठ का चूर्ण डालते जायें।

मात्रा—२-४ गोली, दिन मे २-३ बार।

विशेष—यह योग वृद्धावस्था जनित अनिद्रा मे विशेष लाभकारी है।

मधुमेह दर्पहारी—१-१ गोली दिन मे २ बार जल के साथ। यह योग मधुमेहजन्य अनिद्रा मे लाभकारी है। यह योग औ० गु० ध० शास्त्र का है।

उदावर्तहर गुटिका—१-१ गोली दिन मे ३-६ बार जल से। यह उदरवातज अनिद्रा मे लाभकारी है।

अनिद्रानाशक सामान्य योग—

१. पिपरामूल चूर्ण ३ ग्राम दिन मे ३-४ बार गुड की चासनी में मिलाकर सेवन करावें।

२. ब्राह्मी के १०-१५ पत्र पानी मे धोकर गोदुग्ध ३०० मि० लि० (कच्चा) मे घोटकर और छानकर ८ दिन तक पिलाने मे जीर्ण अनिद्रा रोग भी नष्ट होता है।

३. गोदुग्ध की मलाई को दिन मे २ बार सिर पर मालिश करने से अनिद्रा रोग नष्ट होता है।

४. 'अथर्ववेद' मे 'वरणा' एव आञ्जनमणि को सेवन करना बताया गया है। इसके अतिरिक्त जल के पूर्ण स्नान, उपस्थ पर जल सिञ्चन और सोते समय मुख-प्रक्षालन आदि निद्रानाश को दूर कर सकते है।

निद्रानाशक आयुर्वेदिक पेटेण्ट औषधियां—

१. टेबलेट सर्पीना (हिमालया क०)—१-२ गोली दिन मे ३ बार।

२ सीरप शंखपुष्पी (झण्डू फार्मास्युटिकल)—१ औंस दिन मे २ बार।

३ अजवाइन इन्जेक्शन (बुन्देलखण्ड आ० फार्मा, जी० ए० मिश्रा फार्मेसी, सिद्धि एव आदर्श फार्मेसी) १-२ मि०लि० प्रतिदिन मासपेशी मे।

४ स्वर्ण इन्जेक्शन (मिश्रा, आदर्श, बुन्देलखण्ड एव ए० बी एम०) १-२ मि०लि० मासपेशी मे।

५ शूलान्तक सूचीवेध—मार्तण्ड तथा मिश्रा फार्मेसी मात्रा—१-२ मि०लि० मासपेशी मे।

इसके अतिरिक्त ए० बी० एम० रिसर्च इन्स्टीट्यूट का अहिफेन (अफीम) सूचीवेध भी आता है।

आधुनिक चिकित्सा—

रोग निवारण हेतु आवश्यकतानुसार शामक औषधियो का प्रयोग करना चाहिए—मिडोसिन (Medosin), सोनेरिल, डाइडायल, (Didial) या डायल, एथेव्राल, नेडोनल सोडियम, एमिटाल सोडियम, गार्डिनल सोडियम आदि पेटेण्ट औषधियो मे से किसी का भी व्यवहार किया जा सकता है। इन औषधियो को सोने से पूर्व दें।

मानसिक दुश्चिन्ताओ के कारण यदि रोगी को नीद न आ रहे हो तो इक्वेनिल, मिल्टॉन (Mildown) आदि मे से किसी एक प्रशान्तिदायक औषधि का प्रयोग करना चाहिए। इन्हे ४००-८०० मि०ग्रा० की मात्रा मे रात्रि सोते समय देते है।

यदि रोगी को पीडा के कारण विशेषकर भयकर उदरशूल मे नींद न आ रही हो तो पेथेडिन ५०-१०० मि०

ग्रा० या फाइसेप्टोन ५-१० मि०ग्रा० मुख द्वारा सूचीवेध द्वारा देनी चाहिए। बालकों के लिए क्लोरल हाइड्रेट उत्तम औषधि है। बालक मे मात्रा १ ग्रेन प्रति एक। वर्ष के हिसाब से होती है। वयस्को को १५ ग्रेन सोने से पूर्व।

हृल्लास, वमन या हिचकी के कारण रोगी को नींद न आ रही हो तो लार्गेक्टिल अथवा सीक्विल का प्रयोग मुख द्वारा या सूचीवेध द्वारा करना चाहिये।

यदि रोगी को शुष्क कास के कारण नीद न आ रही हो तो कफशामक औषधियां यथा—बेनाड्रिल एक्सपेक्टोरेन्ट, कोरेक्स, सेबेन्टोल, ग्लाइकोडिन टर्प वसाका, कास्काफिन, टेटिगन आदि मे से किसी एक का १—२ चम्मच की मात्रा में प्रति ४ घन्टे पर देना चाहिए।

शिरःशूल, सर्वांग वेदना, बेचैनी आदि के कारण नीद न आने पर नोवाल्जिन या एनाल्जिन का प्रयोग टिकिया या सूचीवेध के रूप से करना चाहिए। निम्न योग भी लाभकारी होता है—

एसिड एसिटिरा सैलिसिलास	५ ग्रेन	१ मात्रा
फिनासिटीन	२॥ ,,	
कोडीन-फास	१/३ ,,	

ऐसी १ मात्रा रात्रि को सोने से पूर्व देनी चाहिए। मानसिक रोगों के कारण बेचैनी वश रोगी को नीद न आने पर फेनोबार्बीटोन का प्रयोग लाभकारी होता है। सोनार्जिन (Sonergan) का प्रयोग विशेष महत्व का है। इससे लगभग १० घन्टे तक निद्राकारक प्रभाव रहता है। कोरिडान (सीबा) की १ गोली सेवन के उपरान्त मधुर तथा गहरी निद्रा आती है। कैल्सीब्रोनेट (सैन्डोज) एक उत्तम प्रभावक औषधि है।

अधिकांश रूप से अनिद्रा के रोगी उच्चरक्तचाप के कारण मिलते हैं। इन रोगियो मे सर्पगन्धा तथा ब्रोमाइड्स का प्रयोग अधिक लाभकर होता है। केवल सर्पगन्धा के साथ लार्गेक्टिल का प्रयोग उत्तम रहता है। क्लोमोरोला-फिन १-२ चम्मच की मात्रा में सोते समय दे सकते हैं।

पैराल्डिहाइड (Paraldehyde) का प्रयोग अनिद्रा मे निरापद माना जाता है। इसका प्रयोग विशेष रूप से विषमताजनित बेचैनी मे उत्पन्न अनिद्रा मे किया जाता है। इसे ५ मि०लि० की मात्रा मे मांसपेशी मार्ग से देते है। अथवा ४ ड्राम पैराल्डिहाइड+१ औंस आलिव आयल या ग्लिसरीन मे मिलाकर अनुवासन वस्ति देते हैं।

यदि रोगी को हृदय रोग के कारण नीद न आ रही हो तो 'कार्डियाजोल' नि० 'नोलर्क' ५-२० मि० लि० १ घण्टे पश्चात् मांस मे लगावें।

सोने के १-२ घन्टे पश्चात् अथवा २-३ बजे नीद खुल जाये तो निम्नलिखित योग दें—

स्प्रिट क्लोरोफार्म २० बूंद+सोडाबाईकार्ब १०ग्रेन-१ औंस जल मे मिला कर दें। अथवा पैरेल्डिहाइड १॥ ड्राम, टि० ऑरेन्शाई ३ ड्राम, एक्वा सिनेमम १ औंस मिला कर दे। वृद्धावस्थाजनित अनिद्रा में रोगी को 'ह्विस्की' २-४ चम्मच २ औंस जल मे मिलाकर दें।

जीर्ण स्वरूप के अनिद्रा रोग मे-स्पारीन टे (बाईब) १+सोनेरील (एम०बी०) १ टेबलेट मिलाकर पीस लें। ऐसी १ मात्रा रात्रि सोते समय दें।

अन्य औषधियां—

टेबलेट—

१ ओव्लीवोन (शेरिंग)—१-२ कैपसूल जल से।
२—प्लेसोनल (सैन्डोज)—१-२ गोली सोते समय।
३—रोसेडेटिन (Rausedatin) नि०बंगाल कैमीकल्स १-२ गोली सोते समय।
४—ल्युमिण्डोन (इन्डोफार्मा)—२-३ गोली रात्रि को
५—मरपिन्टिन सी टेबलेट (टी० सी० एफ०)—२-४ गोली भोजनोपरान्त।
६—डिवमीट्रीन (स्मिथ)—१ गोली सोते समय।
७—लिब्रियम(रोश)—१-२ गोली रात्रि सोते समय।
८—हिप्टोजीन (स्टेन्डर्ड)—१-२ गोली सोने से पूर्व।
९—निम्बूटाल (ऐब्बोट)-१ कै० सोने से १ घन्टे पूर्व
१०—स्टीनल(एम० बी०)-१-२ टेबलेट सोने से पूर्व।

पेय—

१—इलिक्सिर वेलेरियन ब्रोम (एलेम्बिक) १-२ चम्मच सोने से पूर्व।
२—एनाटेन्सोल (स्क्विब) १-२ चम्मच सोने से पूर्व
३—इक्वोमल (बंगाल कैमीकल) १-२ चम्मच।
४—रेसब्रोम (ईस्ट इण्डिया) १-१ चम्मच दिन मे ३-४ बार।
५—ट्रिब्रोमीन (रैनबैक्सी) १-२ चम्मच रोगानुसार।

वृद्धावस्था में विभिन्न प्रकार के शूल

डा० वेद प्रकाश शर्मा ए.,एम.बी.एस.

परिणाम शूल

कारण—

(१) शूल का मुख्योत्पादक कारण आमाशय में अम्ल रस की अधिकता है। (२) तथा दूसरा ग्रहणी व्रण (Duodenal ulcer) है। यह व्रण प्राय ग्रहणी के ऊर्ध्व भाग मे आमाशय से एक इन्च के अन्दर होता है, कभी-कभी अन्य स्थानो मे भी पाया जाता है। सर्व प्रथम अन्न दातो से चवाया जाने के वाद लाला रस से युक्त आमाशय मे आता है। पुनश्च पचने के वाद जव यह ग्रहणी मे आता है तो नाभि के दोनो पार्श्वों मे शूल होना प्रारम्भ हो जाता है। अत इसे बुभुक्षा शूल (Hunger pain) कहते हैं।

लक्षण—

यह रोग प्रायः २० वर्ष से ४० वर्ष तक के पुरुषो मे विशेतया मिथ्याहार विहार तथा अनियमित दिनचर्या उष्ण तीक्ष्ण रूक्ष भोज्य पदार्थो के विना चवाये ही निगलना चाय की अत्यधिक मात्रा के प्रयोगादि से होता है, पुनश्चय नदी के वेग की तरह धीरे-धीरे वढता जाता है, कभी-कभी रोगी को सुप्तावस्था मे शूल हो जाता है जिससे रोगी चिल्ला कर वैठ जाता है नाभि प्रदेश को पकडे कराहा करता है। किन्हीं कारणो से शान्त होने से रोगी स्वस्थता का अनुभव करता है। रोगी को अकारण वमन होती है। ग्रहणी मे यदि व्रण होता है तो मुख के व गुदा के द्वारा रक्त आने लगता है। यह रोग रसवाही स्रोतसो की विकृति से एव तीनो दोषो की विकृति से होता है।

परिणामशूल भेद—

परिणाम शूल वातादि भेद से पाच तरह का है।

(१) वातिक (२) पैत्तिक (३) कफज (४) द्विदोषज (५) त्रिदोषज।

(१) वातिक परिणाम शूल के लक्षण—

(अ) उदर का फूलना (Tympanitis) गुड-गुड करे।

(आ) मल मूत्रादि का अवरोध होना।

(इ) किसी कार्य मे दिल न लगना।

(ई) शरीर का कापना।

(२) पैत्तिक परिणामशूल के लक्षण—

(अ) अत्यधिक प्यास लगना, उदर मे तीव्र शूल होना, जिससे कभी कभी वेचैनी होना।

(व) अत्यधिक पसीना आना।

(स) कटु अम्ल तथा लवण युक्त पदार्थों के सेवन से शूल होना।

(द) स्वभाव का चिडचिडा होना।

(३) कफज परिणाम शूल के लक्षण—

(अ) विना किसी कारण के रोगी को वमन होना।

(आ) हृल्लास तथा मूर्च्छादि का होना।

(इ) चिरकाल तक अल्प अल्प पीडा होना।

(ई) शूल का कटु एव तिक्तादि पदार्थों के सेवन से शान्त होना।

(४) द्विदोषज व त्रिदोषज परिणाम शूल के लक्षण—

दो दोष के लक्षणो के मिलने पर द्विदोषज और तीन दोषो के लक्षणो के मिलने पर त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातिक परिणामशूल कहलाता है। इनके लक्षण मिले-जुले ही होते हैं।

परीक्षा—

लक्षणो के अतिरिक्त रोगी के आमाशयिक विकारो की आमाशयवीक्षण यन्त्र (Gastroscope) द्वारा करें तथा मल की परीक्षा करने पर यदि मल मे रक्त मिले तो व्रण होगा ऐसा निश्चित हो जाता है।

उपद्रव—(१) व्रण से रक्त स्राव होना। (२) आमाशय एव ग्रहणी का अन्य अवयवो से चिपकना। (३) अग्न्याशय (Pancreas) मे विकृति होना।

चिकित्सा—

परिणाम शूल चिरकालापेक्षित रोग है, अत रोगी को सहयोगी की परमावश्यकता होती है क्योकि चिकित्सा अधिक समय तक चलने मे वह घबरा जाता है और पथ्यापथ्यो से ऊब जाता है। इसके परिणामस्वरूप रोग असाध्य हो जाता है। चिकित्सा मे सर्वप्रथम निदान का परिवर्जन करना चाहिए। व्यायाम, मैथुन, दिवास्वप्न, क्रोध, चिन्ता, शोक, जाङ्गल मास, पुराने चावल, चाय, मल वेगावरोधादि रोगी को सेवन नही करना चाहिए। रोग मुक्ति तक रोगी को पूर्ण विश्राम दे।

उदराम्ल की वृद्धि होने पर, अम्लरस को कम करने के लिए 'पटोलपत्र' एव नीम की छाल के क्वाथ मे मैनफल का चूर्ण मिलाकर वमन कराना चाहिए। तिक्त मधुरादि द्रव्यो से विरेचन कराना चाहिए, स्नेहपान कराकर अनुवासन वस्ति देनी चाहिए।

उदराम्ल वृद्धि होने पर अम्लता कम करने वाले योग—

१. अविपत्तिकर चूर्ण, २ क्षुधावतीगुटिका, ३. महा शखवटी, ४ हिंग्वाष्टक आदि को अनुपान भेद से सेवन करने से उदराम्ल की कमी हो रोग नष्ट हो जाता है।

जिन कारणो से ग्रहणी मे व्रण हुआ हो उस पर ध्यान देना चाहिए तथा एलोपैथिक औषधि "प्रोटीन हाइड्रोलाईसेर" देवें। यह पदार्थ व्रण भरने मे सहायता करता है। अम्ल-रस की कमी भी करता है। रोगी को दूध पूर्ण मात्रा मे दे। धूम्रपान बिल्कुल मना है।

यदि भोजन पच जाने पर शूल हो तो स्नेह-विरेचन कराना चाहिए। यदि पचते समय अधिक शूल हो तो मुनक्का हरडादि द्रव्यो से विरेचन कराना चाहिए। यदि तीनो ही कालो मे तीव्र शूल हो तो 'निसोत परवल' आदि से मूल विरेचन दे, ऐसा चरक में भी लिखा है।

उपद्रवो की लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिए। रसादि औषधियो मे से—

सप्तामृत लौह, त्र्यूषणादि चूर्ण, खण्डामलकी, शूलगजकेशरी, शख वटी, मनमोहन चूर्ण आदि समयानुकूल रोगी के बलाबल के अनुसार उपयोग मे लेने चाहिए।

उपरोक्त चिकित्सा सूत्रो के आधार पर परिणामशूल की चिकित्सा करनी चाहिए। यदि इतना करने पर भी रोग शान्त न हो शल्य चिकित्सा करनी चाहिए।

अन्य शूल

१. शूल (Colic)—

शूल कई प्रकार की होती है। बडी आत की वेदना या ऐठन से हुई वेदना को अन्त्रशूल कहते है। दर्द के मारे बीमार छटपटाता रहता है, कपडे फेकता है, बदन स्वेद से तर हो जाता है और पेशाब कम या बन्द हो जाती है कै हो जाने से बेचैनी कम हो जाती है, डकार व वायु के निकल जाने से दर्द मे लाभ होता है, ज्वर नही होता, वेदना और कै होने से पैत्तिक शूल और पेट फूलने व तीव्र वेदना के लक्षण होने से वायुशूल, साधारण नाभि की ओर आस पास दर्द से छोटी आत्र का शूल, कुछ निम्न भाग मे होने से बडी आत्र का शूल कहा जाता है। पेट मे नाभि के चारो ओर ऐठन, काटने का सा दर्द, दबाने से दर्द मे लाभ, पेट का काठिन्य, बार बार दस्त की इच्छा, पेट भरा सा रहना, डकार निकलना आदि लक्षण होते है। भारी वस्तु, उत्तेजक, ओस या शीत लगना, बर्फ जैसी वस्तुओ का बाहरी प्रयोग, स्वेद न आना, क्रिमि और पेट के काठिन्य आदि कारणो से यह रोग होता है। आटोप विट मूत्र सङ्ग के साथ स्निग्ध और उष्ण पदार्थों से शान्त होने वाला परिणामशूल है। जो अपने अपने कुपित दोषो से पैत्तिक, कफज द्वन्द्वज होता है। भोजन के अजीर्ण होने पर शूल उत्पन्न होता है जो पथ्य, कुपथ्य से भोजन या अभोजन से किसी भी अवस्था मे शान्त नही होता, पक्वाशयस्थ वायु अन्त्रो में कूजन, शूल और आटोप करता है। पक्वाशयस्थ कुपित वायु मल मूत्र अपान वायु का अवरोध कर शूल, आध्मान, अश्मरी, शर्करा रोग उत्पन्न कर देता है एव जघा, उरु, त्रिक, पाद पृष्ठ मे पीडा, आमाशयस्थ वायु से पार्श्व, उदर, हृदय मे पीडा होती है। पक्वाशयस्थ वायु से आन्त्र कूजन, शूल, आटोप, मूत्र पुरीष कृच्छ्र, आनाह, त्रिकशूल करता है।

अन्त्रशूल Spasmocibalgin या spasmindon टेबलेट खिला कर कम होता है। आवश्यकता हो तो मार्फिन इन्जेक्शन दो। या Syntrophan के सेवन से लाभ होता है। पित्ताशयशूल Veramon या Syn Novalgin खाने से आराम Felaminc tablet सेवन से लाभ होता है। मूत्रशूल मे प्रारम्भ मे Spasmindon या Novalgin



टेवलेट से कष्ट व वेचैनी दूर की जा सकती है। शूल मे टरपेण्टाइन स्टुप वेदनाशामक है। पित्ताश्मरीजन्यशूल मे इसी का ऐनिमा दे।

वृक्कशूल मे टिचर वेलाडोना १० बूद जल एक औंस तीन-चार वार दो। इसी मे प्रोपिवान (Propivan) का इन्जेक्शन चर्म पर दे।

(१) पीपर, कुटकी, चिरायता, हरड, मुरब्बर १-१ तोला गरम पानी मे पीस कर पेट पर लेप करें। शूलघ्न है।

(२) हिंमरा काली व केशरिया दोनो की जड (काली हिंमोल और पीली हिंमोल), पाषाण भेद, कुटकी, चीता, मजीठ-जड, जीरा, भुनी हीग, काला नमक मिला पीसें। पेट मे कब्ज हो तो दूर्वा घास के दूध से वटी बना आवश्यकतानुसार दो-तीन गोली गरम पानी से दे।

(३) परिणाम शूल मे पथरच्टा (ओडिया) मूल एक दो अगुल गरम पानी से खिलाए। परिणामशूल का पूरा विवरण पहले ही दिया है।

(४) जवाखार, पाचनक्षार, कौडी भस्म, शख भस्म, शुद्ध वत्सनाभ, सैंधव, सोठ, मिर्च, पीपल, काला नमक २-२ तोला इन्हें कादम्ब व सिरस बीज के साथ या पान स्वरस से ६ घण्टे खरल कर १ मासे की गोली छाया मे सुखा गरम जल या अजवायन अर्क मे दो-तीन वार दें।

२ अश्मरी (पथरी)

मूत्रपिण्ड कोष मे पथरी वनी हो तो कभी-कभी कमर मे दर्द व मूत्र मे थोडा रक्त व पीप निकलता है। मूत्र पिण्ड से अश्मरी मूत्र नाली मे आ जाय तो कमर से अण्डकोष तक असहनीय दर्द होता है, वेचैनी वढती है कभी-कभी दर्द पूरी मे छाती तक फैलकर कपकपी, कै, पसीना, अण्डकोष चौडा हो जाना, पेशाव मे कष्ट, बूंद बूंद होना या बन्द हो जाता है। यह दर्द अकस्मात प्रारम्भ हो अकस्मात ही शान्त हो जाता है।

वाताश्मरी—यूरिक ऐसिड केलक्यूलस मे अत्यन्त दर्द, कम्पाहट होता हुआ शिश्न पकडता है। अधोवायु के साथ मल त्यागना और बूंद बूंद पेशाव करता है। अश्मरी का रग कटकाचित श्याव अरुण होता है।

पैत्तिक पथरी तथा कफज पथरी स्टोन ऑफ फौस्फेटस नाम से पुकारी जाती है।

शुक्राश्मरी—बडो को हुआ करती है। वायु अपने स्थान शुक्राशय मे च्युत एवं बाहर न आये हुए शुक्र को अण्डकोषों के बीच मे पड कर सुखा देता है। फलत मूत्राशय पीडा, मूत्रकृच्छ व अण्डशोथ कर देता है।

अश्मरी ही शर्करा है। यही अश्मरी वायु द्वारा भिन्न होकर मूत्र के साथ निकल आती है और वायु के प्रतिलोम होने से रुक जाती है। मूत्र स्रोत मे आकर अटकी हुई पथरी दुर्वलता, पीडा, कुक्षि शूल, अरुचि, पाण्डु, उष्णवात, तृष्णा, हृत्पीडन उत्पन्न कर देती है।

चिकित्सा—

वोतल का सेक, जोर के दर्द में स्पाज्मोलिवालजीन या ऐस्प्रो या नोवल्जीन या बुस्कोपान प्रयोग करें। दर्द कम न हो तो मौर्फीन ऐट्रोपीन इन्जेक्शन दे। आराम आने पर रोजाना डटकर पानी पियें और मूत्रल औषधि प्रयोग करें। यवक्षार, श्वेत पर्पटी, पाषाण वज्र रस, कदली रस या गोक्षुरादि क्वाथ के साथ ३—३ रत्ती प्रयोग करने से पथरी गल कर निकल जाती है।

पित्ताश्मरी—पित्तकोष या पित्तवाहिनी नली के अन्दर खाने-पीने की गडवडी के कारण वायु से सुखाया गया पित्त रस जमकर पत्थर के कणो का सा रूप लेकर अश्मरी वना देता है। छोटी-वडी गोल, काले सफेद, हरे आदि कई रगो की पथरी वनती है। यह रोग पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे अधिक होता है।

मुख्य लक्षण—पेट मे दर्द, जिन्दगी पर्यन्त पित्तकोष मे पथरी होने पर भी दर्द नही होता। परन्तु जब पथरी पित्तकोष से निकल कर पित्तवाहिनी मे आ जाती है, तब अचानक या धीरे-धीरे भयानक दर्द प्रारम्भ होकर एकदम वेचैनी हो जाती है। यह ही पित्त शूल है। यह पेट से प्रारम्भ होकर चारों ओर मुख्यत दाहिने कन्धे और पीठ तक फैल जाता है। साथ मे कै, ठण्डा पसीना, नाड़ी दौर्वल्य, शीताग, श्वासोच्छ्वास मे कष्ट, मूर्च्छा आदि हो जाते हैं। शूल बन्द होने का अभिप्राय यह है कि पथरी फिर से पित्त कोष मे चली गई है, या पित्तनली से बहते-

बहते छोटी आंत के प्रथम भाग मे चली गयी है। इस समय मल को साफ कर पथरी पाई जा सकती है।

पित्त पथरी शूल और मूत्र पथरी शूल मे भेद—

पित्त पथरी मे—कै नही होती, परन्तु नाभि स्थान पर शूल होता रहता है। मूत्र की पथरी मे—मूत्र प्रणाली से लेकर अण्डकोष तक दर्द फैल जाता है। साथ मे उबकाई, कै, बार-बार मूत्र की शका, मूत्र मे खून और कभी-कभी पथरी निकलती है।

चिकित्सा—

स्पाज्मोसिवल्जीन, ऐस्प्रो, सेरिडन, वेरालगन, सेन्टोबा टेवलेट दो। अधिक शूल मे मोर्फीन एट्रोपीन इन्जेक्शन या प्रीविवान इन्जेक्शन, फेलामिन टेबलेट दो। बाद मे Cyldropin इन्जेक्शन रोज एक दो। और टर्पेन्टाइन एनिमा दे। आन्त्रशूल मे नाभि के आसपास मरोड के साथ दर्द होता है जो घटता-बढता भी है। दबाने पर कुछ आराम। यह रोग किसी भी उम्र मे हो सकता है।

३. वृक्क शूल—

पथरी के अलावा गवीनी मे अवरोध आने से भी हो सकता है। गिल्टी व वस्ति के अन्दर गिल्टिया-स्त्रियो के ब्राड लिगामेन्ट मे प्रदाह, मूत्रनली मे सिकुडन और शुक्राशय के बढ जाने से वृक्क मे शूल होता है, वृक्क-यन्त्र हाथ से हिलाया डुलाया जा सकता है। यह रोग स्त्रियो मे अधिक किन्तु पुरुषो मे कम होता है। इस रोग के कारणो का ज्ञान अभी तक नही हुआ ? हाइड्रोनेफ्रेसिस यूरेटर की सिकुडन किसी किसी मे पाई जाती है तब हल्की वेदना होती है। मूत्र नली मे प्रचुर दर्द होता, और कप-कपी के साथ बुखार और अवसाद (Shock) हो जाता है, वृक्क बड़ी होकर हाथ से स्पर्श की जा सकती है। युरेटर लटक जाने से मूत्र कम और साथ मे खून भी आता है। साथ मे कै, विषाद के लक्षण हो तो वृक्क अश्मरी जाननी चाहिए। जहा कोई-चोट नही लगी हो, पथरी हो वहा दर्द नही होगा और अश्मरी बढ जाने पर भी ज्ञात नही होगा, स्त्रियो मे ऐसी अश्मरी हुआ करती है।

चिकित्सा—हल्के दर्द मे गरम पानी की थैलीव तौलिये से सेकें। सोडा लेमनेड के पानी (चूने का पानी) के साथ ४ ग्रेन क्लोपिठीन के साथ १/२ टेबलेट स्पाजमिण्डन दो और नारियल का पानी पिलाओ। यह मध्यम श्रेणी के रोगियो के लिए है। भयानक दर्द मे मोर्फीन ऐट्रोपीन चर्म का इन्जेक्शन या नस मे डिप्रपानेक्स (S D) का इन्जेक्शन दो। बुस्कोपान, पिपावेरीन, स्पाजमो सिवल्जीन दो। यवक्षार केले की जड़ के रस या जौ के पानी से दो, और शूल के स्थान पर निम्बू रस मधु मिला लेप करे, अनुभूत है। तीव्र शूल मे मोर्फीन ऐट्रोपीन १० मि. मि. बहुत ही उत्तम है, तब बुस्कोपान के सेवन करने से या १० मि मि. टि बेलोडोना से भी लाभ होता है।

वरुण छाल, सोठ, गोखरू, तालमूली कुलथी, कुस, काश शर, दर्भ, इक्षु १-१ तोला क्वाथ कर या वैसे ही यवक्षार ३ माशा डालकर पिलाना उचित है। शूलघ्न है।

४. कृमि शूल—

कृमिशूल मे बच्चे तो छटपटाने लगते हैं, कै होती तथा तीव्र स्वेद आता है। आयुर्वेद मे कृमि निदान—ज्वर, शरीर श्यामता व पीतता मे परिवर्तन, आमाशय और पक्वाशय मे शूल, हृल्लास आदि हृदयरोग, अङ्गसाद, भ्रम, अरुचि, अतिसार होता है। यह छोटे-बड़े आकार भेद से सात प्रकार से होते हैं। पुरीषज कृमि दीर्घ गोल एव ह्रस्व होते है। ह्रस्वभेद से उनका वर्ण भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। जब ये पुरीषज कृमि विमार्गगामी होते तो हैं विड भेद, शूल आदि उत्पन्न होते है। इनमे कृमि मुद्गर रस, विडङ्गादि चूर्ण या अजवायन सत्व, दक्षिणी सुपारी, कम्पिल्ल, कद्दूबीज एक-एक माशा, तारपीन के तेल मे मिलाकर चूर्ण या बटी बना खुरासानी अजवायन चूर्ण से खिला मैगसल्फ का तीव्र विरेचन दें।

५. बाहुशूल (न्यूराइटिस)—

ब्रेकियल प्लेक्सस के कुछ नर्व आक्रान्त होने पर यह रोग देखा जाता है। कन्धे से प्रारम्भ होकर हाथो तक दर्द कई कारणो से हुआ करता है। बगल मे क्राच लगाकर चलने फिरने के कारण या लगातार दबाव व सखिया, सीसा, शराब के जहर के फलस्वरूप हुआ करता है। कभी-कभी रीढ की हड्डी मे ट्यूमर, गरमी रोग (आतशक) के कारण, जलन व रीढ की हड्डी मे प्रदाह होने से बाहु शूल हुआ करता है, कन्धे के मास स्नायुओ मे प्रदाह होने के कारण ब्रेकियल नर्व शून होती है। चूने के जमा हो जाने से कारण प्रदाह हुआ करता है।



लक्षण—रोग अचानक और तेजी से आक्रमण करता है जरा भी हिलने-डुलने से तीव्र दर्द होता है।

चिकित्सा—दर्द बन्द करने के लिए सेक देना व हल्का स्नेहन करना चाहिए। ऐस्प्रीन टेबलेट, सिवाल्जीन, इमिडोपाइरीन, इर्गापाइरीन के साथ ब्रोमाइड देना चाहिए। जीर्ण रोग मे आधा % प्रोकेन हाइड्रोक्लोर नमकीन द्रव की ५-१० सी सी २-३ या १० दिनो तक इन्जेक्सन देना है। गाठो मे मालिश करना भी आवश्यक है।

६. वातज कटि पृष्ठशूल—

कारण—(१) एक ओर खिचाव पडने व दवाव पडने पर, गलत रूप से अङ्गो को सचालित करने पर कमर और पीठ मे स्थाई रूप से शूल हो जाता है।

(२) भारी वस्तु के उठाने से पेशी और सिरा मे दवाव पड़ने से शूल हो जाता है।

इसमे पूर्ण विश्राम करना चाहिए, गरम सेक तथा स्नेहन भी करें, पीठ मे ऐडेसिव वेलाडोना प्लास्टर करें, वातरोग मे वृहद् वातचिन्तामणि रस १/४ र, वचा चूर्ण २ र, पुष्कर मूल या कूठ १ माशा दें। साथ मे अश्वगधारिष्ट १ तो०, दशमूलारिष्ट १ तो० भोजनोत्तर दें और माष तेल का स्नेहन करें। पीठ पर चनसुर के बीजो को पीस कर गरम-गरम लेप करें।

ऐक्युट लाम्वेगो—कटि प्रदेश का मासपेशियो के अस्थि से मिल जाने पर वहाँ तन्तु प्रदाह हो जाता है। अत इसका बीमार सीधा होकर चल-फिर नही सकता। इसमे विरेचन, सेंक स्नेहन करना चाहिये।

चिकित्सा—

दर्द मे कैस्प्रो, इरगापाइरीन टेबलेट इजेक्सन दे। लिनिमेन्ट A.B C लगायें और ड्रेसिंग कर दें। ग्रोरिटगमिन, ऐट्रोपीन वेरीन इन्जेक्शन भी लाभकर है। रेडियन्ट हीट, डायाथर्मी या इन्फ्रारेड की किरणो से भी लाभ होता है।

७. गृध्रसी (सायेटिका) —

इस रोग मे चूतड से लेकर घुटने व पैरो की एड़ियो तक दर्द होता है।

लक्षण—प्रारम्भ मे दर्द कभी नही होता कभी-कभी निरन्तर बढ जाता है। हिलने-डुलने से, नाडी पर दवाव पडने से दर्द बढ जाता है। इस रोग मे मासपेशी न तो सूखती है और न स्पर्शहीन होती है। अधिक रोज की बीमारी होने पर पीठ की हड्डी टेढी हो जाती है।

चिकित्सा—

पैर को आराम दें। यदि गृध्रसी मधुमेह, गरमी (उपदश) रोग से हुआ हो तो उन रोगो की चिकित्सा करें। लिनिमेन्ट सेक करें। तीव्र दर्द मे मार्फिया ऐट्रोपीन इन्जे० १/०, क्विनीन यूरिया हाइड्रो० इन्जे० दें। नाडी मे १०० CC नमक द्रव प्रयोग मे आराम होता है, २ प्रतिशत नोवोकेन २ CC एड्रिनलीन इन्जे० देकर फिर ३० मे १०० CC तक नोर्मल सैलाइन नस मे देवें।

इन्जेक्शन की विधि—रोगी को औंधा लिटाकर पेट के नीचे तकिया रख दो। लम्बी मोटी सुई को ट्यूबर स्कियम व ग्रेटर टोकेन्टर के पोस्टिरियर बोर्डर इन दानो के अन्दर घुमाकर बाहर भीतर करना चाहिये। यदि बीमार के पैर मे एक तरह का दर्द हो तो यह क्रिया बन्द कर दें। यह दर्द न होने से समझें कि सुई ठीक नाड़ी मे नही गई। दवा देते अधिक जोर लगे तो जानो कि दवा ठीक स्थान पर जा रही है। इस समय रोगी पैरो की एडी तक दर्द होने से चिल्लाता है।

८ शिरःशूल—

कारण—(१) गर्मी रोग, मस्तिष्कावरण शोथ, फोड़ा (२) धमनी का कड़ापन, हृदयरोग, रक्त न्यूनता मे, (३) ग्लाकोमा, आइस्ट्रल आइराइटिस, (४) सक्रामक रोग व वायु रोग, (५) नाक के रोग—साइनस रोग, नाक मे पोलिपज, (६) शिर व पीछे की मांसपेशी प्रदाह मे (७) थाइराइड ग्रन्थि रस की कमी मे, (८) ऐलर्जी के कारण याने अण्डे, माम, टमाटर, मछली आदि खाने से।

चिकित्सा—

विरेचन, सात दिन तक मास मछली त्याग और सल्फाथियाजोल + विटामिन बी कम्प० + थाइराइड ग्लेण्ड १/२ ग्रेन की मात्रा उत्तम है। शरीर की गदगी निष्कासन हेतु त्रिफला चूर्ण का प्रयोग करें। यदि पेशाव मे अल्कलाइन आता हो तो १० ग्रेन एमोबेन्जयेट के साथ वाम लगाना भी उत्तम है। मलेरिया हेडिक मे १० ग्रेन ऐन्टिपाइरीन, २ ग्रेन कैफीन साइट्रेट व ४ ग्रेन क्विनीन हाइड्रोब्रोमाइड ३ वार दें। उपदन्शजशूल मे पैनिसिलीन ८०००००, ऐलार्जी मे नाक बन्द हो जाने पर थेफोरीन

खाओ। रज बन्द हो जाने के कारण सिर शूल मे प्रिस्कोफेन उत्तम है।

शिरः शूल पर आयुर्वेदिक औषधि—(१) सीप भस्म, नृसार शुद्ध एक-एक तोला जल से पीस नस्य देवे।

(२) षट् विन्दु नस्य, मुचुकन्दफूल १ तोला जल से पीस लेप करें या धनिया चन्दन कासनी इसवगोल, पोस्त, जल से पीस कर लेप करें। वातज शिर शूलघ्न है या अनन्तमूल, लाल कमल, मुलेठी, कूठ १ तोला कांजी से पीस लेप करें। सूर्यावर्त आधा सीसी व अनन्त वान नाशक है।

(३) यूकेलिप्टस १२ भाग, पोदीना सत्व १ भाग, अजवाइन सत्व १ भाग, कपूर २ भाग, एक बन्द शीशी मे रखकर लेप कर खाने के लिये रस सिन्दूर, अभ्रक, ताम्र, लौह भस्म, शुद्ध गन्धक ६-६ माशा थूहर-दुग्ध से खरल कर २ रत्ती की गोली मधु से दें या एर्गोमेट्रीन टार्ट. का शिरा मे इन्जेक्शन देवें।

(४) रस चन्द्रिका वटी १ गोली पथ्यादि क्वाथ से १ तोला उबाल ५ माशा बादामरोगन मिला ऊपर से गुड भी डालकर पिलावें।

(५) पीपलामूल चूर्ण मे गुड मिला झरबेरी बराबर गोली बना गर्म पानी से दे। शिर शूलघ्न है।

९. कर्णशूल (Otalgia)—

शीत या चोट लगने से, सीक डालने से, पानी जाने से, कान मे जमे मैल के इधर उधर घूमने से, कान मे फुन्सी फोडा होने से, बसन्त रोग होने से कर्णशूल हो जाता है। आयुर्वेद मे अपने-अपने निदानो से कुपित दोषो से आवृत, प्रतिलोमचारी वायु स्रोत मे जाकर कानो मे तीव्रशूल कर देता है। कीडे मकोडे कन्खजूर कान के छिद्र मे जाकर अत्यन्त पीडा कर देता है किन्तु जब वह कीडा ठहर जाता है, तब पीडा बन्द हो जाती है। वायु दोष के कारण होने वाले कर्ण रोग मे भी अत्यन्त पीडा होती है।

चिकित्सा—सोडाबायकार्व के साथ सल्फाथियाजोल खाने को दो। कारणो के अनुसार चिकित्सा कर कान को हाइड्रोजन से साफ कर पैक करे और औप्टिक ३० प्रतिशत का बाहरी प्रयोग करो। या मोर का तजा घिसकर गरम कर कान मे डाल दे या क्लोरोफौर्म १५ बूद औलिवऑयल मिला कपडा भिगो कान मे डाले।

१०. दन्तशूल—

कभी-कभी अन्तिम दात के मूल मे दारुण पीडा वाला महाशोथ हो जाता है। यह कफज अधिमासज, नामक व्याधि है। वायु प्रकोप के कारण तीव्र पीडा वाला एक दात अधिक हो जाता है। जब पूर्णत उत्पन्न हो जाता है तब पीड़ा शात हो जाती है। इस रोग को खलिवर्धन या एक्स्ट्राटुथ कहते है। जो दात काली छिद्र वाला, हिलता हुआ, स्रावान्वित, शोथ युक्त, और निमित्त के बिना ही महारुजा होने से पीडा करने वाला हो उसे कृमिदन्त, (केरीज़ आफ टीथ) कहते है। दात के मांस मे रक्तान्वित वात आदि दोषो से अन्दर और बाहर भारी शोथ हो जाता है जिससे दाह और पीडा होने लगती है। चीरा लगाकर पस निकालना ही उपयुक्त है। जो मासाकुर जिह्वा के चारो ओर होते हैं वे अत्यन्त पीडायुक्त कण्ठावरोधक और वातात्मक कम्पादि उपद्रवो की बलिष्ठता वाले होते है यह वातजनित रोहिणी है।

चिकित्सा—विद्रधि को चीरना और दन्त मूल मे कार्वोलिक ऐसिड १५ बूद, लौंग तेल ३० बूद दन्त कोटर मे रुई भिगोकर रखना चाहिए। शूल और कृमिघ्न है या लिनिमेन्ट एकोनाइट १ ड्राम, आयोडीनफार्ट १ ड्राम रुई से मसूडो पर लेप करें।

—श्री डा० वेदप्रकाश शर्मा ए, एम. बी एस.
चिकित्साधिकारी–राज. आयु चिकित्सालय
माट (मथुरा)





वृद्धावस्था में नेत्र विकार

कवि. रवीन्द्र चन्द्र चौधरी, भूत. रीडर-चि. वि. संस्थान,
का. हि. वि. वाराणसी

बगाली परम्परा के विद्वान आयुर्वेदज्ञ कविराज चौधरी जी जिनके श्रीमुख से आयु-
वेंदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज मे शालाक्यतन्त्र विषयक व्याख्यान सुनने का सुअवसर प्राप्त
हुआ, एक चिन्तनशील कर्म पुरुष हैं—जिनकी प्रात ब्रह्ममुहूर्त मे उठकर रात्रि मे सोने तक
अपनी एक आदर्श जीवन चर्या है। जो रसायनतन्त्र उनके स्वास्थ्य को स्थिर रख वार्धक्य के
किसी लक्षण से उन्हे ६५ वर्ष की वर्तमान आयु तक बचाये हुये है और भविष्य मे भी ऐसी
कम सम्भावना है। शास्त्र का गहन अध्ययन एवं क्रियात्मक पक्ष का अभ्यास आपके जीवन मे
गगा-जमुना की तरह प्रवाहित हैं। १९५५ से १९६५ तक आप तिब्बिया कालेज दिल्ली मे
वरिष्ठ व्याख्याता थे और १९६६ मे शालाक्य विभाग-चिकित्सा विज्ञान सस्थान, बनारस हिन्दू
विश्वविद्यालय वाराणसी मे रीडर पद पर कार्यरत रहे और रिटायर होकर यू० जी० सी०
अध्यापक रहे। सम्प्रति चिकित्सा व्यवसाय रत हैं और 'शालाक्य' विशेषज्ञ हैं।

मेरे आग्रह पर आपने वृद्धावस्था मे होने वाले नेत्र रोगो का समन्वयात्मक पद्धति से
सुन्दर एव उपयोगी लेख विशेषांक हेतु दिया है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)



उपनिषद मे लिखा है—'पश्येम शरद. शतम् शृणुयाम शरद शतम्, जीवेम् शरद शतम्। अर्थात् हम यह प्रार्थना करते हैं—हम सौ साल तक दृष्टि शक्ति सम्पन्न रहे, कान से सौ साल तक अच्छी तरह सुने, हमारी आयु सौ साल तक हो। इस प्रार्थना से यह इंगित मिलता है कि वार्धक्य आने के साथ हमारी दृष्टि शक्ति, श्रवण शक्ति घटती जायगी। इसलिये श्री श्री भगवान के चरणो मे हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि हमारी चक्षुरिन्द्रिय शक्ति, श्रवणेन्द्रिय शक्ति तथा परमायु एकशत सवत्सर तक बनी

वृद्धावस्था मे जो नेत्र विकार पाये जाते हैं, उनको दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

१. वे नेत्र रोग जो बाल्यावस्था मे अथवा युवावस्था मे उत्पन्न हुए थे और उसके परिणामस्वरूप नेत्र विकार वृद्धावस्था तक मौजूद हैं।

२. वे रोग जो केवल वृद्धावस्था मे ही उत्पन्न होते हैं, बाल्य अथवा युवावस्था मे साधारणतया ये होते नहीं हैं।

बहुत से नेत्ररोग ऐसे हैं जो बाल्यावस्था तथा युवावस्था मे उत्पन्न हुए हैं और वृद्धावस्था तक अपना प्रभाव

विस्तार करते रहते हैं। उनमे से जन्मगत लिङ्गनाश, जन्मगत दृष्टिपटल (Retina) का विकार अथवा नेत्रेन्द्रियाधिष्ठान का अंशो का अभाव, अव्रणशुक्र, युवावस्था का काच (Juvenile cataract), परावर्त्तन क्रिया-दोष (Errors of refraction), अधिमन्थ वा Glaucoma जनित दृष्टिहानि, अभिघातज नेत्र विकार जैसे Phthisis bulbi, अपोषणजनित नेत्र विकार–Keratomalacia अथवा जन्मगत नेत्र की विकृति है। परीक्षा के द्वारा कौन नेत्र विकार हैं—इसका पता लगाकर उसको सुधारने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इनके विषय मे यहां विचार करना अप्रासङ्गिक है। वृद्धावस्था में स्वाभाविक रूप मे नेत्र मे कुछ परिवर्तन आ जाता है जिनको शारीर क्रियाजन्य कहा जाता है। उसके लिए कोई चिकित्सा अवलम्बन करना निरर्थक है। चिकित्सा से इसमे लाभ भी नही होता है। चिकित्सा नही कराने से इससे कोई क्षति की सम्भावना भी नही है। अतः इसमे चिकित्सा की आवश्यकता नही है।

आर्कास सिनाईलिस (Arcus senilis)—कनीनिका (Cornea) के प्रान्तभाग मे एक वृत्ताकार श्वेत रेखा सी होती है। यह प्राय ४० वर्ष की आयु से अथवा कभी-कभी इससे भी पहिले शुरू होती है। इसके कारण दृष्टि व्याहत नही होती है। हरेक व्यक्ति मे यह होती भी नही। यह प्रायश १ मि मि से अधिक चौड़ी नही होती है। चिकित्सा निष्प्रयोजन है।

वार्धक्यज एक्कट्रोपियन (Senile actropion)-यह प्रायश अधोवर्त्म मे होता है। वृद्धावस्था मे मास तन्तु शिथिल हो जाने के कारण विशेषतया आर्बिक्युलरिस मसल (Orbicularis muscle) की शिथिलता से यह होता है। इसके कारण नेत्राभिष्यन्द वा नेत्र स्राव होता है जो इसको बढा देता है। इससे लैक्रीमल पाक्टाम (Lacrimial punctum) बाहर की ओर निकला हुआ होता है। फलत अश्रुस्राव Lacrmial canaliculi को होते हुए Lacrimal sac और duct मे जाने नही पाता है—होता रहता है। इसको सुधारने के लिए शस्त्र कर्म कर सकते हैं। परन्तु कोई खास आवश्यकता नही होती है।

बुढ़ापे मे नेत्र गोलक की या उसके पीछे स्थित वसा कुछ कम हो जाने से नेत्र गोलक कुछ-कुछ अन्दर घुस गया—ऐसा प्रतीत होता है। इसमे भी कोई खास क्षति नही होती है।

प्रेस्वायोपिया (Presbyopia)—

चालीस वर्ष वय के बाद परावर्तन क्रिया में स्वभावत कुछ परिवर्तन होता है। मनुष्य का सिलियरी मसल (Ciliary muscle) की स्थिति स्थापकता कम हो जाने से एकोमोडेशन (Accomodation) की शक्ति कम हो जाती है। लेन्स मे स्क्लेरोटिक परिवर्तन हेतु निकटस्थ वस्तु दर्शनार्थ एकोमोडेशन शक्ति की क्रमवर्धमान हानि होने से नेत्र हाईपरमेट्रोपिक (Hyper metrepic) हो जाता है। इस परावर्तन त्रुटि को प्रेसबायोपिया (Presbyopia) कहते हैं। इस अवस्था मे निकट विन्दु दूर मे हट जाता है। निकट विन्दु उसको कहते हैं जिस जगह पर दृष्टि मे सबसे निकटतम अक्षर अस्पष्ट हो जाता है।

इसमे सूक्ष्म तथा निकट सम्बन्धी कार्य करने मे अथवा पढ़ने मे कठिनाई होती है। रोगी किताबो को अधिकाधिक दूरी पर रखकर पढता है। कम प्रकाश मे कार्य करने मे रोगी को कष्ट होता है। निकट कार्य करने के उपरान्त रोगी को नेत्र श्रम के लक्षण–यथा शिरःशूल, अश्रुस्राव आदि हो सकते है।

इसके लिए ४० साल वय से आवश्यकता पर परावर्तन (refraction) वा चश्मा परीक्षा कराकर निकट कार्य के लिये चश्मा का उपयोग करना चाहिए। साधारणतया ४० से ५० वर्ष तक १ D से २ D तक शक्ति का चश्मा उपयोग करना पडता है। ५० से ऊपर प्रति दशक के लिए इसी हिसाब से शक्ति का चश्मा लेना आवश्यक होता है। वय अधिक होने के साथ साधारणतया दृष्टि शक्ति की हानि होती है। इसमे दृष्टिपटल Retina वा दृष्टिवितान की विकृति प्रधान है। स्वभावतः बुढापे मे यह एक सहज अवस्था हो जाती है। कोई गम्भीर विकृति इसके अन्तर्गत नही हैं।

लिङ्गनाश (मोतियाबिन्दु)

वृद्धावस्था का एक प्रधान नेत्र विकार है—लिंगनाश (Cataract) इसमे लैन्स की अपारदर्शकता होती है। इसको सिनाईल कैटरिक्ट।(senile Cataract) कहते है। आम भाषा में इसको मोतिया बिन्दु वा मोतिया कहते हैं।



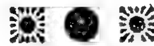
वृद्धावस्था में नेत्र विकार

कवि. रवीन्द्र चन्द्र चौधरी, भूत. रीडर-चि. वि. संस्थान,
का. हि. वि. वाराणसी

बगाली परम्परा के विद्वान आयुर्वेदज्ञ कविराज चौधरी जी जिनके श्रीमुख से आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज मे शालाक्यतन्त्र विषयक व्याख्यान सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ, एक चिन्तनशील कर्म पुरुष है—जिनकी प्रात ब्रह्ममुहूर्त मे उठकर रात्रि मे सोने तक अपनी एक आदर्श जीवन चर्या है। जो रसायनतन्त्र उनके स्वास्थ्य को स्थिर रख वार्धक्य के किसी लक्षण से उन्हे ६५ वर्ष की वर्तमान आयु तक बचाये हुये है और भविष्य में भी ऐसी कम सम्भावना है। शास्त्र का गहन अध्ययन एव क्रियात्मक पक्ष का अभ्यास आपके जीवन मे गगा-जमुना की तरह प्रवाहित है। १९५५ से १९६५ तक आप तिब्बिया कालेज दिल्ली मे वरिष्ठ व्याख्याता थे और १९६६ मे शालाक्य विभाग-चिकित्सा विज्ञान सस्थान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी मे रीडर पद पर कार्यरत रहे और रिटायर होकर यू० जी० सी० अध्यापक रहे। सम्प्रति चिकित्सा व्यवसाय रत हैं और 'शालाक्य' विशेषज्ञ हैं।

मेरे आग्रह पर आपने वृद्धावस्था मे होने वाले नेत्र रोगो का समन्वयात्मक पद्धति से सुन्दर एवं उपयोगी लेख विशेषांक हेतु दिया है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)



उपनिषद मे लिखा है—'पश्येम शरद. शतम् शृणुयाम शरद शतम्, जीवेम् शरद शतम्। अर्थात् हम यह प्रार्थना करते है—हम सौ साल तक दृष्टि शक्ति सम्पन्न रहे, कान से सौ साल तक अच्छी तरह सुने, हमारी आयु सौ साल तक हो। इस प्रार्थना से यह इगित मिलता है कि वार्धक्य आने के साथ हमारी दृष्टि शक्ति, श्रवण शक्ति घटती जायगी। इसलिये श्री श्री भगवान के चरणो मे हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि हमारी चक्षुरिन्द्रिय शक्ति, श्रवणेन्द्रिय शक्ति तथा परमायु एकशत सवत्सर तक बनी रहे।

वृद्धावस्था मे जो नेत्र विकार पाये जाते हैं, उनको दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

१ वे नेत्र रोग जो बाल्यावस्था मे अथवा युवावस्था मे उत्पन्न हुए थे और उसके परिणामस्वरूप नेत्र विकार वृद्धावस्था तक मौजूद हैं।

२ वे रोग जो केवल वृद्धावस्था मे ही उत्पन्न होते हैं, बाल्य अथवा युवावस्था मे साधारणतया ये होते नही है।

बहुत से नेत्ररोग ऐसे है जो बाल्यावस्था तथा युवावस्था मे उत्पन्न हुए हैं और वृद्धावस्था तक अपना प्रभाव

विस्तार करते रहते हैं। उनमे से जन्मगत लिङ्गनाश, जन्मगत दृष्टिपटल (Retina) का विकार अथवा नेत्रेन्द्रियाधिष्ठान का अशो का अभाव, अव्रणशुक्र, युवावस्था का कांच (Juvenile cataract), परावर्त्तन क्रिया-दोष (Errors of refraction), अधिमन्थ वा Glaucoma जनित दृष्टिहानि, अभिघातज नेत्र विकार जैसे Phthisis bulbi, अपोषणजनित नेत्र विकार–Keratomalacia अथवा जन्मगत नेत्र की विकृति हैं। परीक्षा के द्वारा कौन नेत्र विकार हैं—इसका पता लगाकर उसको सुधारने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इनके विषय मे यहा विचार करना अप्रासङ्गिक है। वृद्धावस्था में स्वाभाविक रूप मे नेत्र मे कुछ परिवर्तन आ जाता है जिनको शारीर क्रियाजन्य कहा जाता है। उसके लिए कोई चिकित्सा अवलम्बन करना निरर्थक है। चिकित्सा से इसमे लाभ भी नही होता है। चिकित्सा नही कराने से इससे कोई क्षति की सम्भावना भी नही है। अत इसमे चिकित्सा की आवश्यकता नही है।

आर्कास सिनाईलिस (Arcus senilis)—कनीनिका (Cornea) के प्रान्तभाग मे एक वृत्ताकार श्वेत रेखा सी होती है। यह प्राय ४० वर्ष की आयु से अथवा कभी-कभी इससे भी पहिले शुरू होती है। इसके कारण दृष्टि व्याहत नही होती है। हरेक व्यक्ति मे यह होती भी नही। यह प्रायश १ मि मि से अधिक चौडी नही होती है। चिकित्सा निष्प्रयोजन है।

वार्धक्यज एक्टोपियन (Senile actropion)–यह प्रायश अधोवर्त्म मे होता है। वृद्धावस्था मे मास तन्तु शिथिल हो जाने के कारण विशेषतया आर्बिक्युलरिस मसल (Orbicularis muscle) की शिथिलता से यह होता है। इसके कारण नेत्राभिष्यन्द वा नेत्र स्राव होता है जो इसको बढा देता है। इससे लैक्रीमल पाक्टाम (Lacrimal punctum) बाहर की ओर निकला हुआ होता है। फलत अश्रुस्राव Lacrmial canaliculi को होते हुए Lacrimal sac और duct मे जाने नही पाता है—होता रहता है। इसको सुधारने के लिए शस्त्रकर्म कर सकते हैं। परन्तु कोई खास आवश्यकता नही होती है।

बुढापे मे नेत्र गोलक की या उसके पीछे स्थित वसा कुछ कम हो जाने से नेत्र गोलक कुछ-कुछ अन्दर घुस गया—ऐसा प्रतीत होता है। इसमे भी कोई खास क्षति नही होती है।

प्रेस्वायोपिया (Presbyopia)—

चालीस वर्ष वय के बाद परावर्तन क्रिया मे स्वभावत कुछ परिवर्तन होता है। मनुष्य का सिलियरी मसल (Ciliary muscle) की स्थिति स्थापकता कम हो जाने से एकोमोडेशन (Accomodation) की शक्ति कम हो जाती है। लेन्स मे स्क्लेरोटिक परिवर्तन हेतु निकटस्थ वस्तु दर्शनार्थ एकोमोडेशन शक्ति की क्रमवर्धमान हानि होने से नेत्र हाईपरमेट्रोपिक (Hyper metrepic) हो जाता है। इस परावर्तन त्रुटि को प्रेसबायोपिया (Presbyopia) कहते हैं। इस अवस्था मे निकट बिन्दु दूर मे हट जाता है। निकट बिन्दु उसको कहते है जिस जगह पर दृष्टि मे सबसे निकटतम अक्षर अस्पष्ट हो जाता है।

इसमे सूक्ष्म तथा निकट सम्बन्धी कार्य करने मे अथवा पढ़ने मे कठिनाई होती है। रोगी किताबो को अधिकाधिक दूरी पर रखकर पढ़ता है। कम प्रकाश मे कार्य करने मे रोगी को कष्ट होता है। निकट कार्य करने के उपरान्त रोगी को नेत्र श्रम के लक्षण–यथा शिर शूल, अश्रुस्राव आदि हो सकते हैं।

इसके लिए ४० साल वय से आवश्यकता पर परावर्तन (refraction) वा चश्मा परीक्षा कराकर निकट कार्य के लिये चश्मा का उपयोग करना चाहिए। साधारणतया ४० से ५० वर्ष तक १ D से २ D तक शक्ति का चश्मा उपयोग करना पडता है। ५० से ऊपर प्रति दशक के लिए इसी हिसाब से शक्ति का चश्मा लेना आवश्यक होता है। वय अधिक होने के साथ साधारणतया दृष्टि शक्ति की हानि होती है। इसमे दृष्टिपटल Retina वा दृष्टिवितान की विकृति प्रधान है। स्वभावत. बुढापे मे यह एक सहज अवस्था हो जाती है। कोई गम्भीर विकृति इसके अन्तर्गत नही है।

लिङ्गनाश (मोतियाबिन्दु)

वृद्धावस्था का एक प्रधान नेत्र विकार है—लिंगनाश (Cataract) इसमे लैन्स की अपारदर्शकता होती है। इसको सिनाईल कैटरैक्ट (senile Cataract) कहते हैं। आम भाषा मे इसको मोतिया बिन्दु वा मोतिया कहते हैं।

साधारणतया ५० साल के बाद यह परिवर्तन शुरू होता है। इसको अर्जित केटरैक्ट (Acquired cataract) भी कहा जाता है। इसके दो भेद है–(१)कर्टिकेल(Cortical) केटरक्ट (२) न्यूक्लियर (nuclear) केटरैक्ट। इसके अतिरिक्त उपसर्गयुक्त केटरैक्ट भी होता है—जैसे मधुमेह के साथ अगर केटरैक्ट रहे।

कार्टिकल केटारेक्ट

इसमे वृद्धावस्था के पहिले से ही लैन्स मे परिवर्तन होना शुरू होता है। इसमे विशिष्ट लक्षण यह है कि कर्टिकल तन्तु मे द्रव से (hydration) पृथक् करण के कारण विशिष्ट होती है। वृद्ध व्यक्तियो का करटेक्स (Cortax) परावर्तन इन्डेक्स बढ जाने से दृष्टि मण्डल (pupil) देखने मे धूसर वर्ण प्रतीत होता है। यह धूसर वर्णता केटरैक्ट जनित नही है, परन्तु परावर्तन और किरणो की विक्षेपण वृद्धि से होता है।

इसकी परवर्ती अवस्था है—इन्सीपियेन्ट केटरैक्ट की अवस्था। इसमे परिसरीय भाग मे अपारदर्शकता की साइकिल की तान(Spokes) जैसी दिखाई देती हैं। उनके बीच स्वच्छ स्थान है। ये कुछ न्यूक्लियास के पीछे, कुछ सामने रहते हैं। साथ-साथ कुछ दृष्टि हानि होती है। कभी-कभी एकाधिक वस्तुयें दिखाई देती हैं। शुरू मे दृष्टि मण्डल को विस्फारित करने से ये प्रान्त भाग मे दिखाई देते है। जैसे-जैसे ये केन्द्र की ओर अग्रसर होते हैं, दृष्टि गम्भीर रूप से व्याहृत होती है। काल क्रम मे लैन्स सर्वतः श्वेत और अपारदर्शक होता है। लैन्स के कर्टेक्स मे द्रव प्रवेश होता है। इसको Intumexent cataract कहते हैं। आगे पूरा कटरैक्स अस्वच्छ हो जाता है। इस अवस्था को पक्व कहते हैं।

आईरिस का दृष्टिमण्डलीय प्रान्त (Pupilary margin) और लैन्स का अपारदर्शक स्थान का बीच लैंस का कुछ अश जब तक स्वच्छ रहता है तब तक एक पार्श्व से नेत्र के ऊपर आलोक निक्षेप करने से धूसर अपारदर्शक स्थान पर आइरिस की एक छाया पडती है। अगर केटरेक्ट पूर्णतया अस्वच्छ हो गया हो तो आइरिस का दृष्टि मण्डलीय प्रान्त अपारदर्शक स्थल का प्रायश सस्पर्श में रहता है। इस अवस्था मे आईरिस की कोई छाया लैन्स मे पड़ती नही है। इस अवस्था को पक्व केटारेक्ट कहते हैं। इस अवस्था मे रोगी को केवल आलोकज्ञान, अगुलि-गणन व हस्त सचालन का ज्ञान रहता है।

अगर लैंस की इस अवस्था को चलने दिया जाय तो अत्यधिक परिपक्वावस्था (Stage of hypermaturity) आ जाती है। इसमे कर्टेक्स विश्लिष्ट हो जाती है और मैदा का एक ढोका (pultaceous mass) की तरह बन जाता है। लैन्स धीरे-धीरे कुछ सकुचित हो जाता है तथा देखने मे पीताभ प्रतीत होता है। इसके कारण आईरिस कुछ कम्पमान होता है। कभी-कभी लैन्स की परिपक्व अवस्था मे इसका परिसरीय भाग द्रव हो जाता है। न्यूक्लियास नीचे लैन्स की पैंदी मे डूब जाता है। द्रवीभूत लैन्स दूध की तरह बन जाता है। न्यूक्लियास एक श्याम पदार्थ के समान दिखाई देता है। सिर के स्थान परिवर्तन से इसका भी स्थान बदल जाता है। इस केटारेक्ट को मरगेग्नियान केटारेक्ट कहते है।

वार्धक्य जनित केटारेक्ट का परिपक्व होने का समय पहिले से निश्चित रूप से निर्देश करना सम्भव नही है। कभी-कभी यह जल्दी पकता है। किसी-किसी रोगी मे यह अन्त तक पकता नही है। कुछ निर्दिष्ट समय के बाद हरेक रोगी की नेत्र परीक्षा करनी चाहिए जिससे रोगी की अग्रगति का अनुमान लगाया जा सके।

वार्धक्यजनित न्यूक्लियर केटरेक्ट—

इसमे केन्द्रीय न्यूक्लियर तन्तुओ (Central nuclear tissues) मे Sclerosis की प्रक्रिया सक्रिय हो जाती है। परिसरीय तन्तुओ मे स्वच्छता रहती है। यह केटरेक्ट शीघ्रतर समय मे अर्थात् ४० साल के बाद शुरु होता है। अस्वच्छता Nucleus से परिसरीय भाग मे धीरे-धीरे व्याप्त हो जाती है। लेंन्स कभी कभी देखने मे कृष्णाभ वा श्यामवर्ण होता है। इसको कृष्ण केटरेक्ट कहते हैं। न्यूक्लियस का Refractiv Index बढ जाने से निकट दृष्टि (Myopia) बढ़ जाती है और दृष्टिहानि होती है। इसके कारण रोगी को बाद मे Presbyopia कम हो जाती है तथा पढने मे कुछ सहूलियत होती है।

मधुमेहज केटरेक्ट (Diabetic cataract)—

यह अपेक्षाकृत कम वयोवस्था मे जैसे युवा वा प्रौढ़ अवस्था मे शुरु होता है। प्रकृत मधुमेहजन्य केटारेक्ट

युवाओ मे शरीर का जलसाम्य व्यवहृत करने वाला मधुमेह के कारण होता है। लेन्स का अग्रिम और पश्चिम केपसूल मे, पश्चात् पूरे केपसूल मे वरफ के टुकडे की तरह अस्वच्छता होती है। वाद मे लेन्स दुग्ध सदृश श्वेत हो जाता है।

अर्जित केटारेक्ट के लक्षण—

अर्जित केटारेक्ट के लक्षण सर्वतोरूप मे दृष्टिसक्रात है। प्रारम्भ मे रोगी आंख के सामने दाग देखता है। ये स्थितिशील होते हैं सचारण नही होता है। नेत्र के विभिन्न अवस्थान से देखने से दृष्टि क्षेत्र मे इनका स्थान प्रायशः स्थिर रहता है। एक ही नेत्र से (Uniocular) दो या तीन वस्तु देखना (diplopia or triplopia) एक प्राथमिक लक्षण है। लेन्स के कारण अनियमित परावर्तन से एक ही वस्तु के एकाधिक प्रतिविम्ब वनते है। विचित्र ज्योति मण्डल (Coloured halos) देखने मे आते हैं। वर्णज्ञान भी कभी-कभी विपर्यस्त होता है। लेन्स की अस्वच्छता वढने के साथ साथ केन्द्रीय दृष्टि की सूक्ष्मता (acuity of central visin) की कमी होती है। दृष्टिहानि की मात्रा लेन्स की अस्वच्छता की स्थूलता तथा अवस्थान पर निर्भर करती है। अपारदर्शकता अगर परिसरीय भाग मे हो तो गुरुतर दृष्टिहानि होने मे विलम्ब होता है। उज्ज्वल आलोक के सामने दृष्टिमण्डल सकुचित होने से दृष्टि मे कुछ सहूलियत होती है। अगर अपारदर्शकता केन्द्रीय हो तो दृष्टिमान्द्य शीघ्र हो जाता है। क्षीण रश्मि मे दृष्टिमण्डल प्रसारित होने से रोगी कुछ अच्छा देखता है। न्यूक्लियस की स्केरोसिस हो तो परावर्तन का इन्डेक्स वढ जाने से क्रम वर्धमान निकट दृष्टि उत्पन्न होती (myopia) है। जिस व्यक्ति को पहिले से presbyopia है, उसको यदि वार्धक्य जनित न्यूक्लियर स्क्लेरोसिस है तो उसकी दृष्टि सुधरती है और वह बिना चश्मा के देख सकता है।

अपारदर्शकता की वृद्धि के साथ दृष्टि क्षीण होती रहती है। आखिर मे केवल आलोक-ज्ञान रह जाता है। परिपक्व केटरेक्ट मे भी कुछ दूरी से अगुलि गणना की जा सकती है अथवा हस्त सञ्चालन देखा जा सकता है।

केटरेक्ट की प्राथमिक अवस्था—तिमिर वा काच परिपक्व होने से इसकी लिङ्गनाश के साथ तुलना की जाती है।

लिगनाश की चिकित्सा—

अद्यावधि केटरेक्ट के लिए कोई अव्यर्थ औषधि का आविष्कार नही हुआ है। परिपक्व केटारेक्ट मे तो औषधि चिकित्सा निष्फल है। तथापि अपरिपक्व केटारेक्ट मे कुछ आराम पाने के लिए कोई-कोई औषधि प्रयोग प्रचलित है।

जो नेत्र के लिए हितकर है, वही दृष्टिगत रोगो के लिए हितकारी है। चक्रपाणि का इस विषय मे प्रोक्त सूत्र वहुत ही उपयोगी है—

त्रिफला घृतं मधुयवा पादाभ्यङ्ग शतावरी मुद्गः।
चक्षुष्य सक्षेपाद् वर्गः कथितो भिषग्भिरयम् ॥१७१
—चक्र (नेत्र रो०)

त्रिफला, घी, मधु, जौ, पैर (तलुवे) मे तैल मालिश, शतावर, मूंग की दाल। सक्षेप मे ये नेत्र के लिये उपकारी है। अष्टाग हृदय मे निम्नोक्त द्रव्यो को नेत्र तथा तिमिर के लिए लाभकारी वतलाया है।

सर्वदा च निषेवेत स्वस्थोऽपि नयनप्रिय. ॥६१॥
पुराणयव गोधूम शालिषष्टिक कोद्रवान्।
मुद्गादीन् कफपित्तघ्ना भूरिसर्पि परिप्लुतान् ॥६२॥
शाक चैवविध मासं जाङ्गल दाडिम सिताम्।
सैन्धव त्रिफला द्राक्षा वारि पाने च नाभसम् ॥६३॥
आतपत्र पदत्राण विधिवद् दोषशोधनम्।
—अ० हृ० उ० १६ अ०

कोई भी मनुष्य, स्वास्थ्यवान् होते हुए नेत्र की भलाई के लिए निम्नोक्त द्रव्यो का सेवन करे—पुराने जौ, गेहू, शालिधान का चावल, साठीं चावल, कोदो, मूग आदि। कफपित्त नाशक भोज्य अधिक घी मिलाकर उपयोग करे। घृतयुक्त शाक, जागल मास, दाडिम फल, चीनी, सेंधव, त्रिफला, द्राक्षा, आकाशोदक, छाता, जूता उपयोग से दोषहरण करे। निम्नोक्त द्रव्यो को परिहार करे—

वर्जयेद् वेगसरोधमजीर्णाध्यशनानि च ॥६४॥
क्रोध शोक दिवास्वप्नरात्रि जागरणातपान् ॥

वेगरोध, अजीर्ण, अध्यशन, क्रोध, शोक, दिवास्वप्न, रात्रि मे जागना, विदाह और वायुकारक खाद्य, धप,



विदाह एव वायुकारक खाद्य औषध व कर्म त्याग करना चाहिए।

विदाहि विष्टम्भकर यच्चैवाहारभेषजम्।
द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे शिरे ते ते बहुधा च नेत्रे ॥
ता म्रक्षणोद्वर्त्तनलेपनादीन् पाद
प्रयुक्तान् नयने नयन्ति ॥६६॥
मलोष्णसङ् घट्टन पीडना-
श्चैस्ता दूषयन्ते नयनानिवुष्टान।
भजेत् सदा दृष्टिहितानि तस्माद्-
पानदभ्यञ्जन धावनानि ॥६७॥

पैरो के बीच मे मोटी दो शिरायें हैं। वे नाना रूप मे नेत्र मे पहुचते हुए अभ्यङ्ग, उबटन, आलेप आदि को जो-जो पैरो मे लगाये जावे—नेत्र मे पहुचा देती है। यही दुष्ट शिराये मैल, गरमी, घर्षण, दबाव आदि से नेत्र दूषित करती है। इसलिए दृष्टि के उपकारी जूता, अभ्यङ्ग और प्रक्षालन पैरो मे प्रयोग करे।

अष्टाङ्ग हृदयकार वाग्भट्टाचार्य कहते हैं कि तिमिर की उपेक्षा करने से काच होता है। काच की उपेक्षा करने से अन्धता मे परिणत होता है। अत. तिमिर की अवश्य अवश्य चिकित्सा करे।

तिमिर काचतां याति काचोऽप्यान्ध्यमुपेयया।
नेत्र रोगेष्वेतो घोर तिमिर साधयेद् ध्रुवम् ॥
—अ० हृ०

नानारूप से त्रिफला का प्रयोग—

लिह्यात् सदा वा त्रिफला सु चूर्णिता घृत प्रगाढा
तिमिरेऽथ पित्तजे।
समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां
विदधीत युक्तित ॥ (चक्र-नेत्र)

त्रिफला का बारीक चूर्ण करके अधिक घी मिलाकर पित्तज तिमिर मे नियमित सेवन करे। वातिक तिमिर मे त्रिफला चूर्ण, तिल तैल के साथ, कफज मे उसको शहद के साथ सेवन करें।

कल्क क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम्।
मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥ (चक्र०)

त्रिफला का क्वाथ या चूर्ण को शहद या घी मिलाकर सेवन करने से सब तिमिर ठीक होते हैं।

यस्त्रैफल चूर्णम पथ्यवर्जी साय समश्नाति हविर्मधुभ्याम्।
स मुच्यते नेत्रगतै विकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्य ॥
(चक्र)

जो मनुष्य सायकाल मे त्रिफला चूर्ण घी और शहद से सेवन करता है तथा अपथ्य सेवन नही करता है, उसको नेत्र रोग चला जाता है—जैसे अर्थविहीन मनुष्य को नौकर छोडकर चला जाता है।

सघृत वा वराक्वाथं शीलयेत् तिमिरामयी।
जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन।
त्रिफलाया कषायेण प्रातर्नयनधावनात् । (वही)

तिमिर रोगी प्रतिदिन घी के साथ त्रिफला का क्वाथ सेवन करे। प्रात काल मे त्रिफला क्वाथ से आख धोने से सब प्रकार के नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं और नेत्र रोग कभी नही होता है।

तिमिर के लिये कतिपय नियम—

जलगण्डूषैः प्रातर्बहुशोऽम्भोभि. प्रपूर्यमुखरन्ध्रम्।
निर्दयमुक्षन्नक्षि क्षपयति तिमिराणि न सद्य. ॥७२॥
भुक्त्वा पाणितल घृष्ट्वा चक्षुषोर्यत् प्रदीयते।
अचिरेणैव तद् वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥७३॥
(वही)

प्रतिदिन प्रात. काल मे मुखगह्वर को जल के अनेक गण्डूष से भरकर जोर से आख मे जलसिञ्चन करने से मनुष्य के सब प्रकार के नेत्र रोग विनष्ट हो जाते हैं। भोजन के उपरान्त गीले पाणितल से घर्षण करके अगर नेत्र मे उस पानी को छोडा जाय तो शीघ्रातिशीघ्र तिमिर रोग चला जाता है।

उपर्युक्त इन नियमो और औषधि के अतिरिक्त तिमिर केटारेक्ट के लिए महात्रिफलाद्य घृत, त्रिफला घृत, शतावरी घृत, सप्तामृत लौह सेवन, चन्द्रोदय वर्ति, चन्द्रप्रभावर्ति सुखावती वर्त्ति, हरीतक्यादि वर्त्ति नेत्र में शहद के साथ प्रयोग काफी लाभदायक है।

प्रारम्भिक अवस्था मे परावर्तन व चशमा परीक्षा कराकर प्रयोग करने से दृष्टि के लिए काम चल सकता है।

मधुमेहजन्य केटरेक्ट मे मधुमेह की चिकित्सा करना अत्यावश्यक है। आश्च्योतन के लिए पोटेसियाम आयोडाइड, कैल्शियम आइडाइड, डायोनिन २ प्रतिशत का आश्च्योतन व्यवहार किया जाता है। उपकार के विषय में

निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। केन्द्रीय अपारदर्शकता मे आलोक सिर के ऊपर वा पीछे रखने से दृष्टि का सामयिक लाभ हो सकता है।

Juvenile cataract व बच्चो के केटरेक्ट मे १/२० प्रतिशत atropine drops दिन मे २/३ बार डालने से कुछ आराम और सुविधा होती है।

केटारेक्ट परिपक्व होने पर शस्त्रोपचार करना आवश्यक होता है। इसका विवरण यहा देना अनावश्यक है।

अधिमन्थ (Glaucoma)

वृद्धावस्था मे अधिमन्थ नामक एक दारुण व्याधि दृष्टि को दूषित करती है। यह केटारेक्ट के साथ रहकर अथवा एकक रूप मे नेत्र को दूषित कर सकता है। इसके दो भेद हैं—

(1) Closed angle glaucoma (2) Simple Chronic glaucoma इन दोनो का विस्तृत विवरण यहां अपेक्षित नही है और इससे प्रबन्ध के कलेवर की अत्यधिक वृद्धि होने की सम्भावना है।

अधिमन्थ का प्रधान लक्षण—नेत्र का tension व तनाव की वृद्धि closed-angle glaucoma मे अग्रिम जलधानी (anterior chamber) का कोण सकुचित वा किंचित् अवरुद्ध रहता हैं। परन्तु simple chronic glaucoma मे अग्रिम जलधानी का कोण (angle) खुला व चौडा रहता है। पहिला वाला किंचित कम वयोऽवस्था मे, परवर्ती किंचित् अधिक उम्र मे होता है। प्रथमोक्त अधिमन्थ अधिकतया स्त्रियो मे जो किंचित् उत्तेजना प्रवण है—उनमे होता है। द्वितीय भेद स्त्री पुरुष दोनो मे समान रूप से होता है, साधारण व्यक्तियो मे भी होता है। पहले मे एक तीव्र वेदनायुक्त अवस्था होती है परन्तु द्वितीय मे कोई तीव्र वेदनायुक्त अवस्था नही होती है। परिणति—दोनो में दृष्टिशक्तिनाश वा अशतः हानि होती है। तनाव (tension) जो स्वामाविकतया १५ मिमी० (Hg) से २३ मिमी० है उसकी अपेक्षा कही अधिक होता है।

Simple chronic glaucoma मे कोई विशिष्ट लक्षण नही होता है। किंचित् शिर शूल, नेत्रशूल होता है। दृष्टि क्षेत्र मे दोष आ जाता है। इससे दृष्टि क्षेत्र सकुचित हो जाता है। निकट कार्य जैसे पठन आदि करने मे कठिनाई होती है। लक्षण इतना अस्पष्ट रहता है कि धीरे-धीरे एक आख की दृष्टि प्रायश गायब हो जाती है। वर्धित तनाव, जिसका कटोरी का आकार होना (Cupping of the optic disc) क्षेत्र दोष (field-defects)—रोग निर्णयिक हैं। तनाव स्वाभाविक तनाव की अपेक्षा ५ मि. मि (Hg) से अधिक होना निर्णय मे शकाजनक है।

चिकित्सा—

नेत्र मे पिलोकार्पीन ० ५% से २% इसेरिन ० २५% से १% दिन मे चार बार या अधिक दिया जाता है। डाइमोक्स—१ टेबलेट दिन मे दो या एक बार अवस्थानुसार खाने के लिए देना चाहिए। Acute congestive glaucoma की आत्ययिक अवस्था हो तो शस्त्रोपचार करना आवश्यक होता है। Trephining, Widencleisis वा Cyclo-dialyses तथा Iridectomy किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषधि अनात्ययिक अवस्था मे प्रयोग कर सकते हैं। सुबह शाम चन्द्रप्रभा वटी ४ रत्ती पानी के साथ देवे। पीने के लिए फलत्रिकादि क्वाथ एक बार शहद के साथ देवें। आप्टिक डिस्क के कपिंग की सम्भावना हो तो वृहत वातचिन्तामणि व रसराज रस-२ रत्ती दूध से देवें।

वृद्धावस्था जनित अन्य दृष्टि हानि—

साधारण अवक्षय (degeneration) के कारण दृष्टि वितान तथा सिलियरी बाडी की क्षति हो सकती है। इसके लिए अगर पहिले रसायन चिकित्सा की जाय तो लाभ हो सकता है। कायाकल्प विधि से रसायन प्रयोग से समस्त इन्द्रियो की शक्ति बढ जाने से दर्शनशक्ति भी बढ जाती है। इसके अतिरिक्त च्यवनप्राश, वसन्तकुसुमाकर रस, त्रिफला, शतावरी प्रभृति हितकारी है। स्थानिक प्रयोग के लिए पुनर्नवा रस, कमल मधु, चन्द्रोदय वर्ति, त्रिफला प्रभृति का प्रयोग लाभकारी है।

— ● —

बधिरता एवं कर्णस्राव की अनुभूत चिकित्सा

डा० राजेन्द्र प्रसाद साहू बी० एस० सी०, बी० ए० एम० एस०, मु० गेगांव, पो० गरौंठा (उन्नाव) उ० प्र०

बधिरान्तक बिन्दु—

सौंफ, कूठ, वच, रसौत, पीपलामूल, नागरमोथा प्रत्येक दो-दो तोला, शहद १६ तोला, नींबू का रस, केले का रस, तिल का तेल प्रत्येक ८-८ छटाक की मात्रा लें। फिर अग्नि पर कड़ाही मे डालकर पका लें। तेल मात्र शेष रहने पर उतार लें। इसे कान मे डालने से पुराने से पुराना बहरापन, कर्णस्राव, कर्णनाद, कर्णशूल नष्ट हो जाते हैं।

कर्ण रोगान्तक तेल—

लहसुन (रसोन) छिलका निकालकर एक छटाक, बनगोभी एक छटांक का काढ़ा करें। ततपश्चात कड़वे बादामो का तेल ३ छटाक मिलाकर मन्द-मन्द पकालें। तेल शेष रहने पर शीशी मे निकालकर रखलें। दो तीन बूंद प्रात सांय डालने से बधिरता, कर्णशूल अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

बधिरातक तेल—

अपामार्ग पचांग, बेलगिरी का गूदा, निर्गुण्डी के पत्तो का रस, बकरी का मूत्र प्रत्येक आधी छटाक, सरसो तेल एक छटाक मे डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। फिर तेल शेष रहने पर निकाल शीशी मे रखलें। इस तेल को दो तीन बूंद दो महीने तक प्रातः सायं डालने से बधिरता, कर्णशूल नष्ट हो जाते हैं।

कर्णरोगारि तेल—

अदरख का रस ४ तोला, सेंधा नमक ४ माशा, तिल के फूल २ तोला, आक के पीले पत्ते ४ तोला, नीम का तेल एक छटाक मिलाकर अग्नि मे पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर निकाल लें। दो तीन बूंद प्रात सायं कान मे डालने से बधिरता अवश्य नष्ट हो जाती है।

कर्ण बिन्दु—

दारुहल्दी, बादाम रोगन एक-एक तोला, अजवायन, सोठ मुलेठी प्रत्येक ३ माशा हींग, इन्द्रायन का गुदा, सौंफ, कपूर प्रत्येक १ माशा, मूली का रस, करेले के पत्तों का रस, मूली रस, सुदर्शन के पत्ते का रस प्रत्येक एक तोला। सभी को इतना पकावें कि पानी जल जावे। फिर उतार कर तारपीन का तेल एक छटाक मिलाकर रखलें। सोते समय रोज दो बूंद डालने मे बधिरता, कर्णशूल, कर्णस्राव नष्ट हो जाते है।

कर्णस्राव हर रस—

अजवायन, छोटी हरड, मेथी बीज, सोफ प्रत्येक एक तोले महीन पीसकर रखलें। ४ माशे गाय के घी के साथ कुछ दिनो तक सेवन करने मे कर्णस्राव बन्द हो जाता है।

कर्णस्राव सुधा—

समुद्रफेन, रस कपूर, वर्की हरताल, सुहागा, सिंगरफ प्रत्येक एक तोला अफीम २ माशा कार्बोलिक एसिड ३० बूंद रेक्टीफाइड स्प्रिट ४० बूंद मिलाकर रखलें। इसे प्रात. साय कान मे डालने से कर्णस्राव, कर्णशूल आदि विकार नष्ट हो जाते है।

कर्णस्राव पर रस—

प्याज का रस एक छटाक, तुलसी का रस दो तोला, लौंग ३ माशा, सिरका ३ तोला मिलाकर रखलें। गर्मकर गुनगुना कान मे डालने से कर्णस्राव, कर्णशूल ठीक होता है।

नेत्रविकार (मोतियाबिन्दु)

कविराज पं० शंकरलाल गौड़ शम्भु कवि, दूरा (आगरा)

जस्ता बढ़िया ६ माशे, पारा १ तोला लेकर जस्ते को पहले लोहे की कढाई मे मन्द अग्नि द्वारा पिघलावे जब पिघल जावे पारे को छोड दें। पारा जस्ता मे मिल जावेगा। तीन दिन तक खरल कर कज्जली तैयार कर लेवें। शुद्ध किया हुआ नौसादर १ माशा चमेली की कली ६ माशा सिरस के बीज ३ माशा, भीमसैनी कपूर १ माशा

—शेषांश पृष्ठ २६१ पर देखे।



वृद्धावस्था जन्य महिला रोग एवं चिकित्सा

वैद्य छगन लाल समदर्शी, सैंलारपुर (चित्तौड़गढ़)



श्री समदर्शी जी से 'धन्वन्तरि' के सभी पाठक भली-भांति परिचित हैं। आप धन्वन्तरि के दो विशाल विशेषांकों-प्राणिज खनिज द्रव्यांक तथा स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक का तथा कई लघु विशेषांकों का सफल सम्पादन कर चुके हैं। आप जिस विषय पर भी लिखते हैं उस पर बारीकी से मनन करते हैं तथा आपकी पैनी दृष्टि से कोई तत्सम्बन्धित विषय अछूता नहीं रहता। आप एक विद्वान योग्य लेखक, उत्साही नवयुवक तथा कुशल चिकित्सक हैं। 'धन्वन्तरि' पर आपकी कृपादृष्टि है तथा यह कृपादृष्टि सदैव बनी रहे यही भगवान से प्रार्थना है।

—दाऊदयाल गर्ग (प्रधान सम्पादक-धन्वन्तरि)

समय चुपचाप लगातार बीतता रहता है, यह कठोर सत्य है। कोई चाहे या न चाहे, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति दिन पर दिन बुढापे की ओर अग्रसर है। इसी क्रम मे बालायें १२—१३ वर्ष की अवस्था मे रजोधर्म को प्राप्त होकर कालक्रम से ४५-५० वर्ष की अवस्था मे जब पदार्पण करती हैं तब, उनका यह रजोधर्म-रजोनिवृत्ति की अवस्था मे आ जाता है। यह रजोनिवृत्ति की अवस्था ही वृद्धावस्था आने का संकेत है। रजोनिवृत्ति (Menopause) के बाद महिलाओ के शरीर मे विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते है। इन शारीरिक परिवर्तनो मे कुछ स्वाभाविक रूप से दुखदायी नही होते परन्तु कुछ परिवर्तन महिलाओ के मन मे झंझावात की तरह उथल-पुथल मचा देते हैं। जिससे महिलाओ की सुख शान्ति तो नष्ट होती ही है, साथ ही परिवार की सुख शान्ति भी भग हो सकती है। प्रस्तुत लेख मे हम वृद्धाओं की प्रमुख समस्याओ पर विचार कर उनका निराकरण करेंगे ताकि उनका शेष जीवन अच्छी तरह से व्यतीत हो सके।

१. रजोनिवृत्ति (Menopause)

महिलाओ के जीवन मे प्रजनन का समय उनकी कौमार्य अवस्था अर्थात् १७-१८ वर्ष की आयु मे आरम्भ हो जाता है। यह ४५-४६ वर्ष की अवस्था अथवा उसके कुछ काल बाद रजोनिवृत्ति तक बना रहता है। रजोनिवृत्ति का मतलब मासिक धर्म की समाप्ति से है। यद्यपि यह तो स्पष्ट नही है कि रजोनिवृत्ति क्यो होती है। किन्तु ऐसा लगता है कि डिम्बाणयो मे एस्ट्रोजन अथवा नारी-हार्मोन सामान्य मात्रा मे उत्पन्न नही होते। इनके परिणामस्वरूप प्रजनन चक्र रुक जाता है। रजोनिवृत्ति के आगमन पर ये लक्षण मिलते हैं—

१. कुछ महिलाओ का मासिक स्राव अचानक बन्द हो जाता है।

२ कुछ का मासिक स्राव धीरे धीरे कम होता जाता है।

३ कुछ का मासिक स्राव का समय धीरे धीरे बढ़ता जाता है।

४. कुछ के मासिक स्राव की मात्रा घटती जाती है।

५. कुछ का मासिक स्राव जल्दी जल्दी होने लगता है और स्राव का परिमाण भी अधिक होता है।

६ कभी कभी मासिक स्राव और उसका परिमाण बहुत अनियमित हो जाता है।

७ कभी कभी मासिक स्राव अधिक परिमाण मे अधिक दिनो तक चलता है और फिर रुक कर पुन १-२ दिन बाद स्राव होकर रजोनिवृत्ति हो जाती है।

इसी प्रकार भिन्न भिन्न महिलाओ मे उक्त क्रम मे रजोनिवृत्ति का आगमन होता है और रजोनिवृत्ति होने मे कारणानुसार २-३ वर्ष भी लग सकते हैं। महिलाओ में रजोनिवृत्ति के लक्षणो के समय और उनकी गम्भीरता के विषय में बहुत कम जानकारी होती है। रजोनिवृत्ति होने पर निम्न सामान्य लक्षण मिलते हैं—

१ शरीर में गिरावट तथा भावनात्मक अस्थिरता,

२ पर्याप्त नीद न आना,

३ चिडचिडापन,

४ योनि से गर्म स्राव आना,

५ उपत्वचीय मासपेशिय ऊतको और उनकी तालवादता में कमी आ जाना। इससे भगोष्ठ और भग दुर्बल हो जाते है।

६ सम्भोग के प्रति उदासीनता तथा सम्भोग के समान बेचैनी होना,

७ अतिरिक्त चर्बी बढना,

८ चेहरे पर बाल उगना,

९. छातियों में दर्द रहना,

१०. दिल के दौरे की सम्भावना से हृदय की धड़कन का तेज होना,

११. हड्डियो मे विकार होना,

१२. मल ग्रन्थि, अवटुका ग्रन्थि तथा पीयूष ग्रन्थियो की सक्रियता में कमी होना।

उपरोक्त लक्षणो के अलावा आर्तव क्षय के परिणाम स्वरूप स्त्री के जननागो का शोष (Atrophy) हो जाता है। बीजकोष सिकुड जाते हैं, उनके पृष्ठ पर झुरिया पड जाती है। गर्भाशय परिमाण में छोटा हो जाता है। उसमें पेशियो की मात्रा कम हो जाती है। उसकी अन्तकला या अन्तरावृत्ति (Endometrium) सूख जाती है। योनि की दीवाल मृदु पतली एव शिथिल हो जाती है। योनि-कोण उथले (Shallow) हो जाते हैं। ग्रीवा सिकुड जाती हैं। भग चपटी हो जाती है। भग संधानिका पर केशो की वृद्धि रुक जाती है। श्रोणि के बन्ध शिथिल पड जाते हैं। मूल हेतु इस शोष सम्बन्धी परिवर्तन की रतिजनन स्राव (Oestrogen) की कमी है। परन्तु पोषणिका (Pituitary gland) के पूर्व खण्ड (Ant lobe) का क्रियाधिक्य भी आर्तव क्षय की अवस्था में पाया जाता है। अत अन्त स्रावी ग्रन्थियो की क्रिया मे बाधा उत्पन्न होने से ये विविध लक्षण पैदा होते हैं। इनके अतिरिक्त निम्न लक्षण भी ध्यान देने योग्य हैं—

वातिक लक्षण (Vasomotor)सम्पूर्ण शरीर में विशेषत मुख पर जलन (Hot flushes) या दाह-तरगो का अनुभव, दौरे के रूप दिन मे कई बार दस से पन्द्रह मिनट तक बने रहते हैं। क्वचित रक्तनिपीड (B P.) बढा मिलता है।

समवर्त सम्बन्धी लक्षण (Metabolic)—उदर की दीवालो मे मेद का सचय, शरीर के भार का बढना, पेशी शैथिल्य, सन्धि पीडा या शोथ, स्थूलता का बढना, ओष्ठ और दाढी पर केशों का निकलना आदि।

मानसिक लक्षण (Psychologicdl)—भ्रम, शिरशूल,

घुंधला दिखाई देना, मुर्च्छा और अनिद्रा, औदासीन्य (Melancholia) आदि। बरचित मिथ्यागर्भ (Pseudocyesis) की स्थिति भी पाई जाती है।

चिकित्सा निर्देश—

यद्यपि चिकित्सा करना आवश्यक नहीं है तथापि आर्तवक्षय की चिकित्सा मे सामान्यतया शामक औषधियो का ही प्रयोग करना चाहिये। रोगी का हर्षण, सान्त्वना देना अन्य मानसिक उपचारो का करना लाभप्रद होता है। वृद्धायें भजन, कीर्तन, रामायण पाठ आदि में अपने को लगाये रहे तो उन्हे आर्तवक्षयजनित व्यथा दुखद नही लगेगी। यो चिकित्सा मे निम्न योग दे सकते हैं—

१. अशोकारिष्ट २५ मिलि लि की मात्रा मे समान जल मिला कर प्रातः साय भोजन करने के बाद दे। यह वृद्धाओ को तरुणी जैसा बनाये रखती है।

२ आप चाहे तो अशोकारिष्ट+कुमार्यासव+लोहासव सभी १५-१५ मिलि० की मात्रा मे समान जल से भोजन के बाद प्रात साय दे सकते हैं। यह भी उत्तम गुणकारी है।

३ हेमपुष्पा (राजवैद्य शीतल प्रसाद एव सस) ७ मिलि० की मात्रा मे समान जल से प्रात. साय भोजन के बाद 'हिमटेब' की एक टिकिया (टिकिया शीशी के साथ आती है) के साथ दें। इससे महिलाओ को वृद्धावस्थाजन्य दुर्बलता महसूस नहीं होती और वे प्रसन्न रहती हैं।

३ आधुनिक चिकित्सक 'ल्युमिनाल' या 'ब्रोमाइड्स' जैसी शामक औषधियो का प्रयोग करते हैं। जहा तक हो सके अन्तःस्रावी स्यन्दो की चिकित्सा का परिहार करना ही अच्छा है। नितान्त आवश्यकता हो तो अन्तःस्रावी स्यन्दो में रतिजनन स्यन्द (Oestrogenic thrapy) का प्रयोग सद्य लाभप्रद पाया गया है। परन्तु इससे होने वाली भावी हानियो पर भी ध्यान रखना चाहिए। अल्प मात्रा मे १ मिग्रा० स्टिलबेस्ट्राल प्रतिदिन देना शुरू करें। क्रमश. बढाते हुए यदि आवश्यक हो तो दिनमे दो या तीन बार इसी मात्रा मे दे। दो सप्ताह तक चलाकर पुन दो सप्ताह का अन्तर देकर चालू करें। कुल प्रयोग दो या तीन मास से अधिक न करें।

२. कटिशूल (Backache)

कटिशूल को पृष्ठशूल, त्रिकशूल, कटिपृष्ठशूल या कमर का दर्द कहते है। वृद्धावस्था मे स्त्रियो मे कटिशूल होने की तकलीफ प्राय मिलती है। सामान्यतया श्रोणिगत अगो के विकारो की सम्भावना से यह दर्द होता है परन्तु यह व्यथा विभिन्न अन्य कारणो से भी हो सकती है। वृद्धाओं मे दिनभर काम करने के बाद थकावट (Fatigue) के कारण साय काल मे कमर मे दर्द होता है जो विश्राम करने, बैठने या लेटने से शान्त हो जाता है। गर्भाधान, व्यवसाय, मानसिक एव शारीरिक ढीलापन अथवा अधिक ऊचे जूते पहनने के परिणामस्वरूप स्त्री के शरीर का ढांचा दोषपूर्ण हो जाता है, जिससे वृद्धावस्थामे कूबड (Lardosis) आगे पीछे की ओर निकल आती है। यह कारण भी वृद्धावस्था मे कमर दर्द मे सहायक होता है। इसी प्रकार शरीर का अति स्थूल होना जिससे पृष्ठ वश पर भार पडता है, कटिशूल मे परम सहायक कारण हो सकता है।

चिकित्सा निर्देश—इस अवस्था की चिकित्सा मे कारण को दूर करना आवश्यक है। साथ ही पृष्ठवश की पेशियो को व्यायाम के द्वारा बलवान करना आवश्यक है। विश्राम करना और पेटी (Webbing belt) के द्वारा बन्धन करना भी लाभदायक है। चिकित्सा मे निम्न योग दिये जा सकते हैं—

१. महानारायण तैल की प्रतिदिन दिन मे २ बार मालिश करें।

२. महारास्नादि क्वाथ २५ मिलि० मे एक चम्मच एरण्ड स्नेह मिलाकर प्रात सायं भोजन के बाद सेवन करावें। एरण्ड स्नेह का प्रयोग दो दिन छोड़कर या जब भी कब्जी की शिकायत हो किया जाये तो और भी उत्तम है।

३ मायोस्टाल कैपसूल (धूतपापेश्वर क०) प्रात साय १-१ तथा मायोस्टाल सीरप दो-दो चम्मच समान जल के साथ दिन मे २ बार भोजन के बाद सेवन करावें। स्थानिक मालिश हेतु इसी कम्पनी का 'मायोस्टाल आयल' काम मे लें।



४ वातरोगारि कैपसूल [निर्मल आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ] प्रातः सायं भोजन करने के बाद सेवन करावें।

३ भगकण्डू (Pruritis vulvae)

भगकण्डू को योनिकण्डू या 'अचरणा' भी कह सकते हैं। कण्डू का अर्थ है खुजली, इस प्रकार की वेदना भग-प्रदेश मे होना जिसमें रगडने या खरोचने से शान्ति का अनुभव हो, भग कण्डू कहलाता है। वृद्धावस्था मे आर्तव-क्षय के अनन्तर होने वाली इस कण्डू मे पाचन रसो में लवणाम्ल [Hcl] की कमी या जीवतिक्ति 'ए' की कमी हेतु है। स्थूल स्त्रियो मे भग समीपवर्ती क्षेत्र मे क्लिन्नता [Interitrigo] पाई जाती है जिसके परिणामस्वरूप भी योनि मे खुजली हो जाती है। भैषज्य रत्नावली चिकित्सा प्रकरण मे लिखा है कि कफ के विकार से, अर्श के प्रकोप से, बस्तिगत अर्बुद होने पर योनि स्थित शिराओ का प्रसार होने से, जरायु मे विकृति होने से, पुरुषो के साथ सर्वदा अत्यन्त प्रसग करने से, प्राय ऋतु धर्म होने के समय, गर्भ के उत्पन्न होने के पूर्व, वातला योनि होने से योनि के मध्य मे कण्डू रोग हो जाता है। यह रोग वृद्धावस्था मे विशेष रूप से होता है।[1]

आगे लक्षणों मे कहा गया है कि योनि-कण्डू रोग मे योनि मे खुजली होती है और सुई चुभाने की सी पीडा होती है। योनि मे रूक्षता एव शुष्कता पाई जाती है। यह रोग उष्णता पाकर बढता है परन्तु शीत से शान्त होता है।[2] यदि योनि की सफाई न रखी जाये तो वहा जन्तु पैदा होकर वे भग मे कण्डू पैदा कर देते हैं। ऐसी स्त्रियो जिनको कण्डू रोग हो जाये वे उसकी शान्ति के लिए स्वय काम की इच्छा न होते हुए भी सम्भोग करवाना ज्यादा पसन्द करती हैं।[3]

चिकित्सा व्यवस्था—

(१) अनतमूल, कृष्ण सारिवा, निशोथ, पठानी लोध्र और गजपीपल का यथाविधि क्वाथ बनाकर पिलाने से योनि कण्डू रोग शान्त होता है।

(२) शुद्ध अफीम, अमृतसार लौह, विडलवण, मोथा ये सब समभाग लेकर चित्रक क्वाथ मे यथाविधि मर्दन कर एक-एक माशे की गोलिया बनालें। प्रात साय और मध्याह्न जल से एक-एक गोली का सेवन करावें। यह योनि कण्डू रोग को दूर करने वाली अन्वर्थ नाम वाली 'शुभकरी वटी' भैषज्य रत्नावलीकार ने कही है।

(३) सीक्स-सी (Six-c Skin Oint) मरहम (भारतीय औषधि निर्माणशाला, राजकोट) तथा डरमाफेरस आइल (उपरोक्त क०) दोनो का मिश्रण बनाकर कण्डू पर लगाने से तुरन्त लाभ होता है।

(४) सत पिपरमेन्ट २ माशा, ढेला कपूर ४ माशा, टंकण भस्म २ माशा को नारियल के तेल मे मिला मलहम बनालें। उसको योनि कण्डू पर प्रातः साय लगायें कण्डू शान्त होगी।

(५) एनीथेन मरहम (ग्लैक्सो), एन्थीसान क्रीम (एम० बी०) इत्यादि को कण्डू स्थान पर लगाने एव क्लिनेस्ट्राल (ग्लैक्सो) की टिकिया तथा इन्जेक्शन का प्रयोग करने, माइकोस्टेटिन वेजाइनल टेबलेट और मरहम (साराभाई) का प्रयोग करने से भी योनि कण्डू नष्ट हो जाती है।

(६) सल्फा एव एन्टीबायोटिक औषधियां यथा टेरामाइसीन, बेनिड्यूर इत्यादि इन्जेक्शनो का उपयोग करने से भी योनि कण्डू तुरन्त नष्ट होती है।

---

1 योनौ प्रायः श्लेष्मवैगुण्य हेतोरर्शः कोपाद्बस्ति जातेऽर्बुदेऽपि।
योनिस्थानां सम्प्रसारासरार्तणा किवा नारीणां विकाराज्जरायो ॥
पुंसा सार्द्धं सर्वदाऽति प्रसङ्गात्प्राय कालेचार्त्तवस्य प्रवृत्तेः।
गर्भस्य प्रागुद्भवे वातलत्वाद्योने कण्डूर्जायते योनिमध्ये ॥
एव नारी वृद्धतातो विशेषात् प्रोक्त वैद्यैर्योनिकण्डूनिदानम्। —भै० र० चि० प्र०

2 योनौ कण्डूर्योनिकण्डू गदे स्यात्, तोदो रौक्ष्ये शुष्कता चापिनूनम्।
वृद्धिर्याधि रुष्णतातोऽपि शैत्या, च्छवन्तिर्लोके वैद्यवर्यै प्रदिष्टा ॥ —भै० र० चि० प्र०

3 योन्यामधावनात् कण्डूजात कुर्वन्ति जन्तवः। सा स्यादचरणा कण्ड्वा तयाऽतिनर कौक्षिणी।—च० चि० अ० ३०

गर्भाशय गात्र का कैन्सर
(Carcinoma of the Corpus)

आर्तव क्षय के बाद प्रायः ५०—६५ वर्ष की आयु मे स्त्रियो मे गर्भाशय का कैन्सर पाया जाता है। आमतौर पर जिन स्त्रियो मे प्रसव या गर्भाधान नही हुआ रहता उन्ही मे यह होता है। यह ग्रन्थिक कैन्सर (Adeno carcinoma) के रूप मे पैदा होता है। अन्त कला की नलिकाकार ग्रन्थियो के साथ इसका सादृश्य पाया जाता है। कई बार अन्त कला की फैली हुई मोटाई के रूप मे (Flathened thickening) रोग का प्रारम्भ होता है। पुन उनके टूटने से विस्तृत व्रण का रूप धारण कर लेता है। अर्बुद के कारण गर्भाशय का आकार बढ जाता है। अर्बुद का प्रसार गर्भाशय की पेशीमय दीवाल मे से होता हुआ उदरावृति तक पहुच जाता है। बीजकोष वपा (Omentum), अन्य अंगो मे उपद्रवस्वरूप इसी अर्बुद की उत्पत्ति हो जाती है। इसी प्रकार ग्रीवा और योनि तथा यकृत फुफ्फुस तथा फुफ्फुसावृत्ति मे भी द्विरर्बुदो की उत्पत्ति होती है।

लक्षण—आर्तवक्षय के कुछ वर्षो बाद गर्भाशय से रक्तस्राव का होना गर्भाशय के कैन्सर का सूचक है।[1] रोग के प्रारम्भ मे रक्तस्राव अल्प होता है और साथ ही जलीय आस्राव पाया जाता है। परन्तु बाद में चलकर रक्तस्राव तीव्र स्वरूप का होता है जिससे अत्यधिक रक्ताल्पता पैदा हो जाती है। आस्राव भी अधिक मात्रा मे और बदबूदार होता है। पीडा पाई जाती है और रोग की प्रगति से यह अधिकाधिक बढती जाती है। उपद्रव स्वरूप नये-नये अर्बुदो के उदरावृत्ति मे उत्पन्न होने से उदर मे आध्मान पाया जाता है और जलोदर होने की सम्भावना रहती है। सावधानीपूर्वक लेखन द्वारा अर्बुद स्थान से धातु की अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा कर रोग का स्थिर निदान करना चाहिए।

चिकित्सा व्यवस्था—

१. काञ्चनार गुग्गुल ८ रत्ती, रसमाणिक्य २ रत्ती, पुनर्नवा मण्डूर ४ रत्ती मिलाकर एक मात्रा बनाले। ऐसी एक-एक मात्रा प्रात साय मधु के साथ लेकर ऊपर से महामञ्जिष्ठादि क्वाथ २५ मिली० की मात्रा मे समान जल से सेवन करें।

२ भोजन के बाद खदिरारिष्ट २ तोला, पुनर्नवारिष्ट २ तोला, जल ४ तोला मिलाकर दिन मे २ बार पिलावें।

३ चन्द्रप्रभावटी ८ रत्ती, ताम्रभस्म १ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती, तीनो को मिलाकर एक मात्रा बनाकर विषम-भाग घृत मधु के साथ लें और ऊपर से गोदुग्ध गुन-गुना पिलावें। यह प्रयोग रात्रि मे सोते समय केवल एक बार करे।

४. आधुनिक चिकित्सा मे शस्त्र कर्म, गम्भीर 'क्ष' किरण (Deep 'x' ray) एवं रेडियम चिकित्सा तथा दोनो साधनो की संयुक्त व्यवस्था है। शस्त्रकर्म मे नि शेष गर्भाशय छेदन[1] (Total hysterectomy) किया जाता है। साथ ही दोनो पार्श्व की बीजवाहिनी और बीजकोषो को भी काटकर निकाल देने का विधान है। इस प्रकार की चिकित्सा सुयोग्य स्त्री रोग विशेषज्ञो द्वारा ही सम्भव होती है।

५ गर्भाशय का मांसार्बुद
(Sarcoma of the uterus)

यह एक विरलता से पाया जाने वाला रोग है जो अधिकतर ४५ से ५५ वर्ष की आयु की स्त्रियो मे मिलता

---

[1] प्राचीन आयुर्वेदाचार्यो ने हजारो वर्ष पूर्व सहिता ग्रन्थो में कैंसर जैसी व्याधि को उत्पन्न करने वाले अर्बुद को नि शेष निकालने का स्पष्ट मत व्यक्त किया है—

सशेषदोषाणिहि योऽर्बुदानि, करोतितान्याशु पुनर्भवन्ति।
तस्मादशेषाणिहि समुद्धरेत्तु, हन्यु स शेषाणि यथाहिवह्नि। —सु० म चि० अ०

यह अर्बुद शेष रहने पर पुन पैदा हो सकता है और मृत्यु का ग्रास बना देता है। अतएव नि.शेष करना ही आवश्यक है। अन्यथा यह पुन चिन्गारी के समान बढ सकता है। आयुर्वेद में इसके लिए क्षार कर्म एवं अग्नि कर्म का विशेष विधान है। 'अग्निनादहेत्' इस वाक्य से रेडियम ट्रीटमेन्ट का स्पष्टीकरण सहज ही हो जाता है।



है। इसका उदय इन स्थानो मे हो सकता है, जैसे—गर्भाशय या ग्रीवा की अन्त कला से, गर्भाशय या ग्रीवा की सयोजक धातु या पेशियो से अथवा गर्भाशय के किसी सौत्रार्बुद से। यह अर्बुद कई प्रकार की कोषाओ के पिण्ड का बना रहता है। जैसे गोल, गुल्ली के आकार का अथवा मिश्रित कोषाओ का होता है। सबसे अधिक गुल्ली के आकार के कोषाओ से निर्मित (Spindle cell) मासार्बुद मिलते है। इनमे द्विरर्बुदन (Metastasis) प्रारम्भ से ही शुरू हो जाता है, इनका प्रसार रक्तस्रोत से होता है। अत ये फुफ्फुस आदि अङ्गो मे फैल जाते हैं।

लक्षण—रक्तस्राव, योनि का आस्राव तथा पीडा का होना मुख्य लक्षरण है। उपद्रव रूप मे दु स्वास्थ्य, जलोदर आदि लक्षरण मिलते है। परीक्षा करने पर अर्बुद कठिन या मृदु, चिकना या गाठदार हो सकता है। अन्त काल का मासार्बुद मृदु, भगुर (Friable) और अर्श जैसे (Polypoid) पिण्ड का होता है।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा भी गर्भाशय गात्र के कैंसर के समान ही है। अत वहा लिखी चिकित्सा का उपयोग करना चाहिये। निम्न योग भी गुणकारी है—

१ काचनार गुग्गुल १॥ तो, कैशोर गुग्गुल १॥ तोला, सप्तविंशति गुग्गुल १॥ तोला, गन्धक रसायन १ तोला, रसमाणिक्य १ तोला, हल्दी चूर्ण १॥ तोला, मंजीठ चूर्ण १॥ तोला, अनन्तमूल चूर्ण १॥ तोला, त्रिफला चूर्ण २॥ तोला, स्वर्णक्षीरीमूल चूर्ण १॥ तोला, चोबचीनी चूर्ण ५ तोला इन सबको मिलाकर खरल मे खूब घोटकर २ से ४ रत्ती तथा १ से ६ माशा तक अवस्थानुसार १ तोला मधु के साथ चाटकर महामजिष्ठादि क्वाथ २॥ तोला दिन मे तीन बार पिलावें। इसमे नवीन व्याधि दो सप्ताह से २ माह तक सेवन करने से अच्छी हो जाती है। —(धन्वन्तरि नारी रोगाक पृष्ठ २५५ से साभार)

६. भग शोष

कृत्रिम या स्वाभाविक आर्तवक्षय की अवस्था मे या आर्तवक्षय के अनन्तर यह व्याधि होती है। इसमे भग का का शोष (सूखना या सिकुडना) प्रारम्भ हो जाता है। लघु भगोष्ठ चपटा पड जाता है एव योनि का द्वार संकुचित हो जाता है। भग की त्वचा पतली, सूखी और चमकीली हो जाती है। उसका वर्ण मोम जैसा पीला पड़ जाता है। प्रारम्भिक अवस्था मे कण्डू, मूत्रसाद (Dysurea) मैथुनासह्यता रोगी मे पाई जाती है। परन्तु कुछ वर्षों के बाद ये लक्षरण स्वयमेव शान्त हो जाते हैं। यदि लक्षरण न हो तो उपद्रव रूप मे वार्द्धक्य जन्य योनिशोथ या प्रसेकार्श (Carbuncle) उत्पन्न हो सकते हैं।

चिकित्सा निर्देश—इसमे योनिकण्डू मे कहे योगो का स्थानिक प्रयोग करना चाहिये। कुछ विशेषज्ञो के विचार से रतिजननस्यन्द (Oestrogen) के सेवन या स्थानिक प्रयोग से लाभ होता है। अस्तु स्टिल्वेस्ट्राल २ मि ग्रा. की मात्रा मे मुख द्वारा प्रतिदिन देना चाहिए। योनि की पुष्टि के लिए शतावरी घृत या अशोक घृत १-१ तोला प्रतिदिन लेना चाहिए। स्थानिक प्रयोग मे चन्दनबला लाक्षादि तैल का प्रयोग अति उत्तम है।

७ योनि शोथ (Senile vaginitis)

जरावस्था मे योनि शोथ स्थानिक रोग निवारण शक्ति की कमी, स्वाभाविक शोष, रक्तप्रवाह (Blood Supply) की कमी, योनि के अविस्तार का पतलापन (Epithelium thinning), उसमे रहने वाले शर्करेय (Glycogen) की कमी तथा रतिजननस्यन्दन की कमी के कारण होता है।

लक्षण—योनिशोथ मे प्रभूत पूयाभ, पूयमिश्रित (Purulent) या रक्तमिश्रित आस्राव का योनि मार्ग से निकलना, भग मे वेदना का अनुभव होना, योनि की दीवाल रक्तवर्ण और शोथयुक्त होना आदि लक्षण मिलते हैं। रोग की जीर्णावस्था मे स्राव कम हो जाता है। योनि की दीवाल लालिमायुक्त एवं कणदार हो जाती है। रोग अधिक समय चलता रहा तो व्रण वस्तु [Scars] की उत्पत्ति हो योनि स्रोत का सवृत [Narrow] होना भी पाया जाता है। वृद्धावस्था मे घातक अर्बुदो की सम्भावना अधिक पडती है। इसलिए योनि के आस्राव एवं तत्स्थानगत धातु की परीक्षा करके रोग का विनिश्चय कर लेना चाहिए।

चिकित्सा—संशामक एव क्षोभ न पैदा करने वाली उत्तरबस्ति का प्रयोग, रति स्यन्द वा 'स्टिल्वेस्ट्राल' ५ मि ग्रा अथवा एथिनिल इस्ट्रादियो ·०४ मि.ग्रा. की मात्रा

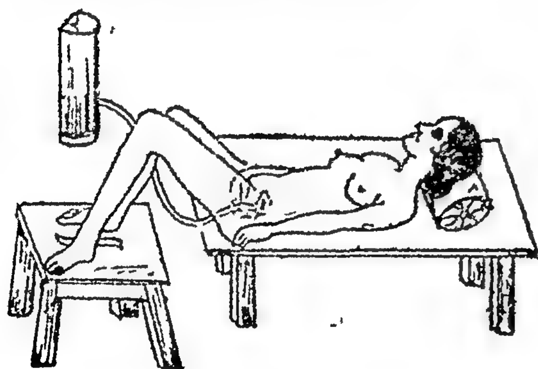
से दिन मे २ बार, दो या तीन सप्ताह तक सेवन कराना चाहिए।

८. गर्भाशय शोथ [Senile Endometritis]

वृद्धावस्था मे जननांगो के शोथ और स्थानिक उपसर्ग निरोध की शक्ति कमजोर हो जाने के साथ ही शरीर के स्वाभाविक परिवर्तनो के कारण स्थानीय रक्त संचार भी नही रहता है अत. वृद्धाओ में उपसर्गजन्य व्याधियो की अधिक सम्भावना रहती है। गर्भाशय शोथ मे योनि से अत्यधिक मात्रा मे रक्तरंजित आस्राव होता है। पूय गुल्म [Pyometra] का निर्माण हो सकता है। उदर के अधोभाग में वेदना और असुख का अनुभव होता है। बहिर्मुख [Ext. os] से पूयाभ आस्राव होता रहता है। तीव्र योनि शोथ पाया जाता है। गर्भाशय का आकार बढा हुआ, पूय से भरा हुआ, मृदु और पीडनाक्षम रहता है।

चिकित्सा व्यवस्था—

१. तुवरक क्वाथ से प्रक्षालन करना।



गर्भाशय प्रक्षालन

२. महातिक्तघृत का पान।

३. उदुम्बर तैल से योनिपूरण।

४. शतावरी व जीवनीय घृत का सेवन।

५. क्षय की अवस्था मे स्वर्ण वसन्त मालती १२५ मि.ग्रा., प्रवाल पञ्चामृत २५० मि ग्रा, वंग भस्म २५० मि ग्रा शृंग भस्म २५० मि ग्रा × १ १ मात्रा च्यवनप्राश के साथ दिन मे तीन बार देनी चाहिये।

६. पैनिसिलीन एवं अन्य प्रतिजीवी औषधियो का प्रयोग।

७. इस्ट्रोजन का प्रयोग।

८. क्षय के उपसर्ग मे स्ट्रेप्टोमाइसिन आइसोनेक्स आदि का सेवन कराना चाहिए।

—+—

पृष्ठ २५४ का शेषांश

कई रोज खरल कर अन्जन तैयार कर सलाई से शाम को लगाने से इस भीषण रोग से छुटकारा मिल जावेगा। एक परीक्षित प्रयोग है।

आखों से पानी आना—

वृद्धावस्था मे आँखो मे अधिकांश पानी आता रहता है अत यह भी एक जराव्याधि ही है। इसके लिये सरल सफल चिकित्सा काबुली पीले रंग की हरड़, माजूफल की छाल पानी में घिस कर लगाने से यह रोग मिट जाता है।

दृष्टि मंदता के अनुभूत योग—

पुराने अरहर की जड को पानी व गुलाब जल में घिसकर लगाने से तथा नेत्रो में आंजने से दृष्टिमंदता रोग नष्ट होता है।

पूज्यपाद गुरुवर्य स्वामी सच्चिदानन्द जी (वैसायन प्रसाद वैद्य) का नेत्रविकार के लिए रामबाण योग—

सुपाडी काठा, लालचन्दन, छोटी हरड, गुलाब जल में घिस शहद मिलाकर आंखो में लगाने से जाला, धुंध, काला पानी, मोतिया बिन्दु आदि रोग नष्ट होते है।



योनि कण्डू

डा० प्रभा शर्मा बी०ए०एम०एस० डी० ए०वाई०एम० पीएच०डी०



डा० (मिस) प्रभा शर्मा आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, दिल्ली में वरिष्ठ अध्यापिका हैं—आपने बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय से डी० ए० वाई० एम० एवं पीएच० डी० की उपाधियां प्राप्त कीं। नारी रोगों पर आप की विशेषज्ञता है।

प्रस्तुत लेख योनि कण्डू उनके अनुभव पूर्ण चिकित्सा ज्ञान का द्योतक है। कितनी ही वृद्धायें इस रोग से पीड़ित मिलती हैं इसलिए विशेषांक में इस लेख को दिया है। लेख पठनीय एवं उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास विशेष सम्पादक

योनिमार्ग में होने वाली कई व्याधियों में योनिकण्डू एक अत्यन्त सामान्य एवं बहुतायत से पाई जाने वाली व्याधि है। यह योनि के एक ही भाग मे या दोनो ओर होने वाली व्याधि है। इस व्याधि से ग्रस्त स्त्री अत्यधिक परेशान रहती है क्योंकि कण्डू इतनी तीव्र एवं निरन्तर होती है कि रुग्णा एक पल के लिए भी अपना हाथ वहां से हटा नही पाती। इस स्थिति को वह बहुत ही लज्जाजनक और निकृष्ट मानती है और शीघ्रातिशीघ्र इससे छुटकारा भी पा लेना चाहती है। किन्तु इस व्याधि की भी अपनी यह विशिष्टता है कि यह शीघ्र समाप्त नही होती और इसीलिए इसे एक जीर्ण व्याधि माना गया है।

यह व्याधि दो प्रकार की मानी जाती है—

१. निज २. आगतुज

(१) निज—कफ एव पित्त वर्द्धक आहार विहार का अतिमात्रा मे सेवन करना अस्वच्छता रखना इससे कफ एव पित्त दुष्ट होकर योनिमार्ग मे स्थित हो उस स्थान विशेष पर ही दाह, शोथ, लालिमा एव कण्डू उत्पन्न करते हैं।

(२) आगंतुज—किन्ही अम्ल या क्षारयुक्त पदार्थों के बाह्य या अधिक मात्रा मे अन्त प्रयोग से यह व्याधि होती है या किसी प्रकार के संक्रमण से भी इस रोग का प्रारम्भ हो सकता है।

व्याधि के कारणों को हम विस्तृत रूप से इस प्रकार भी लिख सकते हैं—

सामान्य कारण—इसमे हम प्रमुखत व्याधियो का उल्लेख कर सकते हैं।

व्याधियो मे प्रमुख है प्रमेह—प्रमेह के कारण कण्डू होना एक सामान्य बात है। यह संक्रमण जन्य भी माना जा सकता है। और यह जीर्ण कंडू का प्रमुख उदाहरण है। इस कडु मे रुग्णा को शीघ्र लाभ नही होता। और विशेषत. प्रमेह के निवारण से ही इसका उपचार उचित तौर से किया जा सकता है।

पाडुरोग में भी कभी-कभी यह व्याधि उपद्रवस्वरूप पैदा हो जाती है चूँकि रुग्णा क्षीण होती है अत व्याधि क्षमत्व भी कम रहता है इसलिए रोगो का आक्रमण तुरन्त हो जाता है। इसकी चिकित्सा भी पाडु के साथ ही करते रहना चाहिए। रुग्णा को बहुत कष्ट रहता है क्योकि उसे कडू करना भी भारी लगता है।

पोषक तत्वों की शारीरिक कमी से भी यह व्याधि हो सकती है। किन्तु उस स्थिति मे रुग्णा सिर्फ योनि मे ही कडू महसूस न करके सम्पूर्ण शरीर मे भी महसूस कर सकती है।

शरीर मे यदि रस धातु का संरचण ग्रन्थियो द्वारा उचित रूप से न हो सके तो भी यह रोग हो सकता है या ये ग्रन्थिया निष्क्रिय हो तो भी व्याधि का कारण बन सकती हैं।

यह भी देखा गया है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे प्रयोग की जाने वाली औषधियाँ भी इस रोग की वृद्धि मे प्रमुख कारण रही हैं। किसी प्रकार के मानसिक तनाव एव चिन्ता से भी यह व्याधि होने की समावना रहती है।

स्थानीय कारणो मे हम निम्नलिखित वस्तुओ को अधिक दोष दे सकते हैं—वर्तिकाओ का प्रयोग, नाइलोन वस्त्रो का प्रयोग, डेटाल, सेवलान, फोम टेबलेट्स, परिवार नियोजन के लिए प्रयोग मे आने वाली जेली या क्रीम, कडोम [स्त्री व पुरुष], योनिमार्ग एवं गुदा की अस्वच्छता ये सभी योनिकडू मे प्रमुख कारण हैं।

कुछेक रुग्णाए ऐसी भी होती हैं जिनमे कडू का कारण ही ज्ञात नही होता जैसा कि आचार्य सुश्रुत ने अत्यानन्दा योनिरोग नाम की व्याधि मे भी लिखा है कि इसमे रुग्णा को मैथुन से तृप्ति नही होती जिससे यही स्पष्ट होता है कि योनिकडू बना रहता है—

चिकित्सा करने से पूर्व निम्न बातो का विमर्श कर लेना अति आवश्यक हो जाता है।

रोगी का इतिवृत्त भली प्रकार जान लें।

योनि मार्ग का परीक्षण करलें।

रक्त परीक्षा भी करवा लें।

चिकित्सा सूत्र—चिकित्सा सशमन एव सशोधन दोनो विधियो से करें।

सर्वप्रथम योनिमार्ग एव योनि के आस पास की स्वच्छता पर ध्यान दे। बिना सोचे किसी तेल या साबुन के प्रयोग का निर्देश न करें।

औषधियो के अत. मार्ग द्वारा प्रयोग करवाने के पूर्व रुग्णा को मृदुविरेचन अवश्य ही दे। मृदु विरेचन के लिए यष्टी मधु का चूर्ण या त्रिफला गरम दूध के साथ २ ग्राम रात को सोते समय दे दें। बाद मे स्थानीय एव सार्वदैहिक चिकित्सा प्रारम्भ करें।

रुग्णा के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है इसलिए उसे पौष्टिक आहार दे। शारीरिक क्रियाये सामान्य रहें ऐसी व्यवस्था करें।

स्थानीय प्रयोग के लिए—करजघृत, जाम्बवाद्य तैल, गोजी तैल, कोपान्तकी तैल।

अत प्रयोग के लिए—गधक रसायन, रसमाणिक्य, शुद्ध गैरिक, आरोग्यवर्द्धनी, हरिद्रा खड इन द्रव्यो के प्रयोग से बहुत लाभ होते देखा गया है।

अपने कुछ अनुभूत द्रव्यो का वर्णन भी अति आवश्यक है—

१. ताजा मक्खन लेकर उसे करीब ५० बार शीतल जल से धोकर उसमे थोडा जाति पत्र स्वरस मिलाकर उसका लेप दिन मे २–३ बार करवायें।

साथ ही—रस माणिक्य+शुद्ध गधक+प्रवालपिष्टी का सेवन दिन मे दो बार घृत, मिश्री एवं काली मिर्च के साथ करावें। तीन दिन के प्रयोग से ही अत्यधिक लाभ हो जाता है।

२ नारियल के तेल मे भीमसेनी कपूर मिलाकर दिन मे दो बार लगावें एव आरोग्यवर्द्धिनी २ रत्ती रात को दूध से दें और सुबह हरिद्रा खड दे।

वृद्धावस्था के वात विकार

डा. मुकुट निहारी बी. आई. एम. एम, एम. डी.

× × ×

वृद्धावस्था और सम्बन्धित रोग

यह शरीर व्याधियो का आश्रय है यह उक्ति वृद्धों मे सबसे अधिक चरितार्थ होती है। बाल्यावस्था के पश्चात् क्रमश: वृद्धावस्था की प्राप्ति होती है। मनुष्य जीवन की आदतें एकदम से दूर नही होती। अत. वृद्धो मे बाल्यावस्था की चपलता, चंचलताजनित स्वभाव और युवावस्था के साहसपूर्ण कार्य करने का उत्साह बना रहता है और उसका फल शरीर को भोगना पडता है। वृद्ध पुरुष वह सब कार्य करना चाहता है जो वह पहले से करता आया है और वह सब खान-पीना चाहता है जो युवावस्था मे उसको प्रिय रहे। वृद्ध शरीर का कुछ थका हुआ और कार्य करने मे असमर्थ रहता है अतएव भारी कार्य नही कर पाता। पोषण की कमी एव शरीरस्थ धातुओ की क्षीणता के कारण अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। और वृद्ध शरीर जर्जर होकर मृत्यु के निकटतर और निकटम होता चला जाता है। वृद्ध पुरुषो मे वात दोष द्वारा उत्पन्न विकारो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है।

१. सामान्यजन्य विकार [त्रिदोष विकार]

२. नानात्मज विकार [वात विकार]

३. आवृत विकार [आवृत वात विकार]

वे विकार जो वात पित्त कफ से, द्वन्द से तथा सन्निपात से होते हैं सामान्य विकार कहलाते हैं। वृद्धावस्था से सम्बन्धित कुछ सामान्य विकार सक्षेप मे इस प्रकार हैं— अजीर्ण और मन्दाग्नि वृद्धावस्था के मुख्य रोग हैं जिनके परिणामस्वरूप अम्लपित्त, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। वृद्धो मे अधिकता से मिलने वाली व्याधि विबन्ध एव मलावरोध की होती है जिसके कारण अर्श रोग भी उत्पन्न होता है। कास और श्वास प्राय: वृद्धों मे मिलने वाली महान व्याधि है। निद्रानाश वृद्धों के लिए अभिशाप है। हृदय विकार से मृत्यु के समाचार प्रतिदिन ही रेडियो तथा समाचार पत्रों द्वारा प्राप्त होते रहते है। वृद्धो में पौरुष ग्रन्थि के अधिक बढ़ जाने या अश्मरी के उत्पन्न हो जाने के कारण विभिन्न मूत्र विकार देखने मे आते हैं। मधुमेह वृद्धों मे पाया जाने वाला एक कष्टप्रद रोग है। बालों का गिरना और श्वेत होना वृद्धावस्था का लक्षण है। स्मरण शक्ति की न्यूनता और बधिरता प्राय. इस अवस्था मे मिलती है। नेत्रों मे मोतियाबिन्दु आ जाना वृद्धावस्था का एक लक्षण है। दन्त रोग भी बुढापे का एक अभिशाप है। नाड़ी दौर्बल्य, वलम, रक्तचाप मे वृद्धि या न्यूनता, त्वचा सम्बन्धी रोग, वीर्य दोष, स्त्रियो की जरायु मे अर्बुद या रजोनिवृति होने पर विकृति आ जाना आदि रोग वृद्धावस्था मे अधिकता से पाये जाने वाले सामान्यज विकार हैं।

वायु का प्रकोप संक्षेप मे दो कारणों से होता है। प्रथम कारण दोषों-धातुओ और मलों मे किसी एक या अनेक का क्षय होना है। तथा दूसरा कारण सर्वांगीण वायु का किवा स्थानीय वायु का उक्त दोषादि मे से किसी अथवा किसी स्थानीय वायु का अन्य वायु से आवृत हो जाना है। आवरण से वायु के प्रकोप का अर्थ यह है कि कोई भी दोष, धातु, मल आदि वृद्धि को प्राप्त होकर वायु की स्वाभाविक क्रिया मे बाधा पहुचाता है। वायु की शक्ति को मन्द कर देता है तो इसे उस दोष आदि के द्वारा वायु का आवरण कहा जाता है। च० चि० २८ मे दोष धातु मलो से आवृत वात विकारो का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है।

विविध वात विकार—

वात दोष से स्वतन्त्र रूप मे उत्पन्न होने वाले विकार नानात्मज वात व्याधि के अन्तर्गत आते हैं। आयुर्वेदिक शास्त्रो मे इनकी सख्या अपरिसख्येय मानी गयी है। (च० सू० २०/१०) लेकिन चिकित्सा सौकर्य की दृष्टि से इनकी सख्या को सीमित (अस्सी प्रकार) माना गया है। (च० सू० २०/१०) शारङ्गधर ने भी वात नानात्मज विकार अस्सी ही गिनाये हैं परन्तु वे अधिक स्पष्ट और प्रसिद्ध हैं। (शा० पू० ७/१०५–११५)

इन सब वात विकारो मे वात के स्वाभाविक स्वरूप तथा कर्म के परिचायक निश्चित लक्षण होते है यथा—रूक्षता, शीलता, लघुता, विशदता, अदृश्यता, गति और अस्थिरता। ये लक्षण न्यून या अधिक सम्पूर्ण सर्वांग अथवा एकाग में उपस्थित हो तो नि सशय वातिक विकार का निर्णय करना चाहिए।

वृद्धावस्था मे वात की अधिकता से शरीर के अन्दर एव बाहर रूक्षता आ जाती है। इस रूक्षता के कारण शरीर की कोमलता मे न्यूनता आ जाती है। स्निग्धाश रूक्षता के कारण सुखने लगते है। सन्धि बन्धन ढीले और विकृत हो जाते हैं। सन्धि स्थानो मे पीड़ा होती है जिससे गमनात्मक कार्यों में कष्ट होता है। शरीर मे तेज, काति, सौन्दर्य का ह्रास होने लगता है। वायु के लघु गुण के कारण शरीर की दृढता' पुष्टि और भारीपन मे अल्पता आने लगती है। रक्त की सवहनशीलता क्षीण पडने लगती है जिससे रक्तचाप के लक्षण दिखाई देने लगते है। अच्छी निद्रा के लिये तृप्ति और शान्ति की अति आवश्यकता होती है। किन्तु इनकी कमी से निद्रानाश के लक्षण पैदा होने लगते हैं। मासपेशी, शरीर के आशय, अवयव, नाडिया, शिरा, धमनी सब मे रूक्षता और सकोच की प्रवृत्ति बढने लगती है जिससे शरीर मे थकान, गात्र पीडा, शिथिलता, श्रोणिभेद, श्रम, विषाद, शङ्ख भेद, ललाट भेद, सिरो वेदना आदि विकार पैदा होने लगते हैं। सन्धियो मे रूक्षता के कारण उनकी शक्ति मे क्षीणता आने लगती है और घ्राणनाश, अरसज्ञता, बधिरता, कर्णनाद, कर्णशूल, तिमिर आदि लक्षणो की उत्पत्ति होती है। शीत की वृद्धि के कारण और पित्त दोष की अल्पता से जठराग्नि अपना कार्य सुचारु रूप से नही कर पाती, जिसके कारण विड्भेद, उदावर्त, विबन्ध, बद्धकोष्ठ और कालान्तर मे अर्शरोग से वृद्ध पुरुष आक्रान्त हो जाते है। वायु के चल गुण के कारण गमनात्मक कार्यो की प्रवृत्ति होती है लेकिन तदनुरूप क्रिया नही होती और आक्षेपक, कम्प, दण्डक, पक्षाघात, अर्दित आदि रोग उत्पन्न होने लगते है। अन्य भी—

[१] स्रंस भ्रंश व्याससगभेद, · · · वायो कर्माणि।
तैरन्वितं वातविकारमेवाध्यवस्येत् ॥
—[च० सू० २०/१२]

[२] स्रंसव्यासव्यधस्वापसाद ।
··· कर्माणि वायोः॥
—[अ० हृ०सू० १२/४९–५१]

स्रंस (सन्धि शैथिल्य), भ्रंश (सन्धिच्युति), व्यास (हाथ पैर आदि फटना), सग (मूत्र-पुरीषादि मलो का रुद्ध होना व वाणी आदि का बन्द होना), भेद (अङ्ग मे फाड़े जाने की सी वेदना), साद (अङ्गो का अपने-अपने कर्म मे अशक्त होना), हर्ष (रोमाच,) प्यास, कम्पन, वर्त [मल आदि का शुष्क हो गुलिका रूप हो जाना], स्पन्दन [फड़कन], तोद [चुभने की सी वेदना], वेष्टन [अङ्गो के मरोडे जाने का सा अनुभव], अङ्गो मे खरता, परुषता, विषदता, सच्छिद्रता, त्वचा-नख आदि का वर्ण श्याव व अरुण होना। मुख का रस कषाय व फीका होना। शोष, शूल, सुप्ति [सुन्न होना], सकोच स्तम्भ [सन्धियो का जकडना], पगुता—लगडाना इत्यादि इन लक्षणो को देख शास्त्र मे अनुक्त विकारो को वातिक निश्चित कर तदनुरूप चिकित्सा करनी चाहिए।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार वातिक रोगो का कारण नाडियो के विकार है। यह विकार कई प्रकार के है यथा—नाडी दौर्बल्य, नाडीपाक, सुषुम्नापाक, नाडी शोथ आदि। वृद्धो मे सुधा [Calcium] के सचय के कारण शुद्ध रक्त केशिकायें खर हो जाती है जिससे उनका मार्दव [स्थिति स्थापकता] न्यून हो जाता है। ऐसी दशा मे उन पर रक्तचाप, मानसिक या शारीरिक श्रम आदि के कारण रक्त का अतिभार आ पड़े तो मस्तिष्क की सूक्ष्म केशिकायें विदीर्ण हो जाती है। इनसे क्षरित रक्त का जिन अवयवो के केन्द्र पर दबाव पडता है उनमे सज्ञा तथा



चेष्टा सम्बन्धी पक्षाघात आदि विकार पाये जाते है। शीत लगने के कारण कोशिकाओं के सकुचन से नाडी सूत्रो मे रक्त वहन अल्प हो जाता है तथा शीत के नाड़ी सूत्रो पर साक्षात प्रभाव से नाडियो मे पाक, सकोच होकर शूल आदि होते है। उदर शूल, आध्मान, श्वास, हृद्द्रव' आदि कई विकार स्पष्ट हो अन्त्रगत दूपित वायु के अन्त्र, फुफ्फुस आदि अवयवो पर साक्षात दवाव के कारण अथवा प्रति सक्रमण के कारण होते हैं। वहुधा इस सचित वायु का उदर गुहा मे या उसके वाहर होकर निकलने वाले नाडी सूत्रो पर दवाव पडता है। इस कारण उन सूत्रो से अधिष्ठित उरु आदि अवयवो मे पीडा होती है। कई वार पृष्टवश की कोई कशेरुका स्थान भ्रष्ट या पाक युक्त हो तो समीप से निकलने वाली नाडियो पर दवाव पडने से उस अवयव या अङ्ग मे शूल, सकोच और झनझनाहट होती है। उदर कृमियो के कारण आक्षेप आदि अनेक वात रोग होते हैं।

उपसहार—

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि वृद्धावस्था एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसके कारण प्रत्येक जीव काल क्रमानुसार प्रभावित होता ही है। आधुनिक विद्वानो एव चिकित्सको के लिए यह एक चेतावनी का विषय हो गया है कि वे इस प्रक्रिया की गति पर किस प्रकार ठोस नियन्त्रण रख सकें। प्राचीन आयुर्वेदिक शास्त्रकारो एव दार्शनिको ने इस विषय को लेकर महत्वपूर्ण अध्ययन किया था कि किस प्रकार जरा, व्याधि, असमर्थता, मन शक्ति का ह्रास और मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सके। इन्ही प्रश्नो को ध्यान मे रखकर उन्होने रसायन शास्त्र, योग दर्शन के अतिरिक्त मूल रूप मे दोष और धातुओ की प्रकृतिस्थ स्थिति पर जीवन की स्वस्थता, सम्पूर्णता का वर्णन कर जीवन की कटुता को मधुरता मे लाने का अधिक प्रयास किया है।

सदर्भ ग्रन्थ—

१—चरक सहिता
२—सुश्रुत सहिता
३—अष्टाग हृदय
४—शारगधर सहिता
५—आयुर्वेदीय क्रियाशारीर-वैद्य रणजीतराय देसाई
6—Text Book of Medicinc, Edited by Rustam Lal Vakıl, 1973
7—Human physiology II Part, by C C. Chatterjee 1972
8—Science Reporter—May 75
9—The New England Journal of Medicine, Vol. 285, 1972



वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र बी एस ए एम, डी एस्-सी ए.
विवेचक–श्री वाला हनुमान आयु, महाविद्यालय,
लोदरा [मेहसाना] उ० गुजरात

आदरणीय वैद्य जी का 'धन्वन्तरि' के प्रति असीम स्नेहभाव है। निकटकाल मे आपके अनेक लेख 'धन्वन्तरि' में प्रकाशित हुए है। आपके लेख व्यर्थ की ऊहापोह से रहित तथा रोजाना काम आने वाले चिकित्सानुभवो से परिपूर्ण होते है। सन् ७७ में 'धन्वन्तरि' में प्रकाशित लेखो के आधार पर आप 'आयुर्वेद वारिधि' की सम्मानित उपाधि, तथा मई १९८० में 'धन्वन्तरि' में प्रकाशित लेख के उपलक्ष्य में बोर्ड आफ इण्डियन मैडीसन उदयपुर (राज०) से 'आयुर्वेद वाचस्पति' उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। एतदर्थ कविराज जी को हार्दिक बधाई प्रदान करते है। 'धन्वन्तरि' में प्रकाशित लेखो के आधार पर आयुर्वेद जगत की विभिन्न संस्थायें विद्वानों को सम्मानित उपाधिया प्रदान करती हैं इससे 'धन्वन्तरि' स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है। आप विषय की पूर्ण विवेचना करने वाले योग्य लेखक हैं। 'धन्वन्तरि' अभी आपसे अनेको अपेक्षायें रखता है।'

—दाऊदयाल गर्ग (सम्पादक–धन्वन्तरि)

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे गृध्रसी को सायेटिका (Sciatica) कहते हैं। सायेटिका ज्ञानतन्तु (Sciatica Nerve) के प्रसारण मे शूल होता हैं। इसलिए यह वात व्याधि है। क्योंकि शूल उसका मुख्य लक्षण है। आयुर्वेद मे कहा गया है कि "वातादृते नास्ति रुजा" अर्थात् वायु के विना शूल नही उत्पन्न होता। इसलिए सायेटिक नर्व के कोर्स मे शूल होने के कारण इसका नाम सायेटिका पडा। सायेटिका नर्व को आयुर्वेद मे गृध्रसी नाडी कहते हैं। इस रोग मे रोगी गिद्ध की भाति चलता है। उपरोक्त दोनो तथ्यो को ध्यान मे रखकर गृध्रसी नाम इस रोग का रखा गया हो यह अधिक संभव है।

गृध्रसी के कारण—आयुर्वेद के ग्रन्थो मे गृध्रसी रोग के कारणो का स्वतत्र वर्णन नही मिलता। परन्तु वात व्याधि के सामान्य कारणो से गृध्रसी की उत्पत्ति हो सकती है। इसलिए यहाँ वात व्याधि के आधार पर गृध्रसी के कारणो का विवरण किया जायेगा।

१. लघनप्लवन अर्थात् कूदना अथवा अन्य किसी प्रकार से शरीर मे झटका लगे इस प्रकार का हलन चलन।

२. अति अध्वगमन अर्थात् अधिक चलना।

३. अति व्यायाम अर्थात् अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम अथवा कसरत करना।

४. अति विश्चेष्टन अर्थात् किसी भी प्रकार से शारीरिक हलचल अधिक प्रमाण मे करना।

५ दुःख शय्या और आसन अर्थात् दुःख कारक हो एसे विस्तर अथवा आसन का उपयोग करना।

६. मर्माघात अर्थात् शरीर के विभिन्न मर्मों पर आघात अर्थात् चोट लगना।

७ पृष्ठयान पर अधिक बैठना अर्थात् ऊँट, घोडा, साइकिल स्कूटर आदि पर अधिक बैठना।

८ प्रपतन अर्थात् गिर जाना कि जिससे कटि, स्फिक् पृष्ठ जैसे भाग पर चोट लगे।

९ वेग संधारण अर्थात् मलमूत्र जैसे आवेगो को रोकना जिससे अपान वायु के क्षेत्र मे अवरोध और प्रपीडन की स्थिति उत्पन्न हो।

१० अन्य हेतुओ अर्थात् अधिक प्रमाण मे जागना, वमन, विरेचन जैसे शोधन उपचारो का अधिक उपयोग करना। दस्त, उल्टी, योनिगत रक्तस्राव, गुदा द्वारा रक्तस्राव अथवा अन्य कारणो से शरीर के धातुओ का



क्षय होना। चिन्ता, शोक, क्रोध जैसे मानसिक कारण भी गृध्रसी उत्पन्न करने मे कारणभूत है।

गृध्रसी की सम्प्राप्ति—उपरोक्त कारणो से प्रकुपित वात अथवा वातकफ स्फिक्, कटि, पृष्ठ, उरु, जानु, जघा तथा पाद मे स्थान सश्रय करके वहा वेदना उत्पन्न करते है। उसे गृध्रसी कहा जाता है। गृध्रसी को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे सायेटिका (Sciatica) कहते हैं।

दोष—वातकफ दूष्य—रस
स्रोतस्—रसवह अधिष्ठान—पाद
स्रोतोदुष्टि लक्षण—सग

सामान्य लक्षण

वेदना स्फिक् से प्रारम्भ होती है पश्चात् यह वेदना क्रमश. कटि पृष्ठ, उरु, जानु, जघा तथा पाद की तरफ जाती है। रोगी पैर सीधा करते समय वेदना का अनुभव करता है। कटि, पृष्ठ, उरु, जानु, जघा तथा पाद मे वेदना, स्तम्भ, तोद, तथा स्पदन होता है। गृध्रसी प्राय रोगियो के एक ही पैर मे होती है। परन्तु कभी-कभी रोगियो के दोनो परो मे भी गृध्रसी देखने को मिलता है।

गृध्रसी के विशेष लक्षण—आयुर्वेद ग्रन्थो मे गृध्रसी के दो प्रकार बताये गये है। एक वातज गृध्रसी तथा दूसरा वातकफज गृध्रसी। वातज गृध्रसी मे सुई के चुभाने के समान वेदना होती है तथा शरीर टेढा हो जाता है। घुटने कटि तथा उरु की सधियो मे फडकन अथवा जकड़ाहट रहती हैं तथा गृध्रसी के सामान्य लक्षण जो आगे बताये गये हैं सभी विद्यमान होते हैं।

वातकफज गृध्रसी मे अग्निमाद्य, गौरव, तन्द्रा, मुख से लालास्राव एव भक्तद्वेष हो जाता है। इसके अतिरिक्त गृध्रसी के सभी सामान्य लक्षण विद्यमान होते है।

गृध्रसी की शारीरिक परीक्षा—

गृध्रसी का रोगी गिद्ध के समान चलता है। रोगी को सीधा लिटाकर पैर ऊचा करने के लिए कहा जाय तो रोगी पैर ऊचा नही उठा सकता। यदि चिकित्सक स्वय अपने हाथ से रोगी का पैर उठाता है तो रोगी के पैर मे काफी वेदना होती है। इसका कारण गृध्रसी नाड़ी का शोथ है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से रोगी को स्क्रीनिंग, क्ष. किरण फोटो तथा मूत्र परीक्षा कराना अत्यन्त आवश्यक है। स्क्रीनिंग मे कटि कशेरुका मे कौन सी विकृति है जिसके कारण सायेटिक नर्व के उद्भव स्थान मे विकृति या दबाव हो तो उसे देखना अत्यन्त आवश्यक है। स्क्रीनिंग के साथ ही क्ष. किरण फोटो लिया जाय तो अति उत्तम होगा। क्योकि बहुत सी चीजें स्क्रीनिंग मे हम अच्छी तरह नही देख सकते जो क्ष किरण फोटो मे स्पष्ट दिखाई देता है। विशेषत पाचवी कटि कसेरुका अथवा उसकी गद्दी (Fifth Lumber Vertebra or its disc) आगे चली आई हो तो उसका दबाव गृध्रसी नाडी पर पडेगा। इसके परिणामस्वरूप गृध्रसी नाडी में वेदना होगी। इसके अतिरिक्त मधुमेह के लिए मूत्र परीक्षा करनी चाहिए। क्योकि गृध्रसी को उत्पन्न करने में मधुमेह सहयोगी हो तो गृध्रसी के साथ ही मधुमेह की भी चिकित्सा करनी चाहिए। इसलिए आधुनिक विज्ञान के चिकित्सक गृध्रसी के रोगी की उपरोक्त तीन परीक्षाये कराकर ही चिकित्सा प्रारम्भ करते हैं।

चिकित्सा

गृध्रसी की चिकित्सा बताते हुए आचार्य भावप्रकाश मिश्र ने लिखा है कि—

गृध्रस्याऽऽर्तम् नर सम्यग् रेकेण वमनेन वा।
ज्ञात्वा निरामं दीप्ताग्नि वस्तिभि समुपाचरेत्॥
नादौ वस्तिविधि कुर्याद्यावदूर्ध्वं न शुध्यति।
स्नेहोनिरर्थक. स स्याद्भस्मन्येव हुत यथा॥
तैलमेरण्डज प्रात गोमूत्रेण पिबेन्नर।
मासमेक प्रयोगोऽय गृध्रस्यूरुग्रहापह॥

—भावप्रकाश

गृध्रसी वात से पीडित मनुष्य को अच्छी तरह से विरेचन और वमन कराना चाहिए। आमरहित और अग्निप्रदीप्त होने पर वस्ति देनी चाहिए। जहां वमन रूपी उर्ध्व शोधन न हो वहा राखी मे हवन के समान स्नेह वस्ति बेकार हो जाती हैं। प्रातः काल मूत्र के साथ एरण्ड तैल एक महिना तक पीने से गृध्रसी तथा उरुग्रह दूर हो जाता है।

आचार्य चक्रदत्त ने गृध्रसी मे शस्त्रकर्म, अग्निकर्म

तथा शिरावेध करने का उपदेश दिया है।

स्नेहन हेतु अश्वगंधाघृत १० से २० ग्राम यथा आवश्यक गरम दूध के साथ दिया जाय तो अति उत्तम है। स्वेदन हेतु निर्गुण्डी वाष्प स्वेद सर्वांग दिया जाय तो अच्छा होगा। वमन कराने के लिए सर्वप्रथम रोगी को ५ लीटर दूध पिलाना चाहिए। उसके बाद वमन औषध मे मदनफल, छोटी पीपर, वचा, सैंधव के चूर्ण का योग ६ से १२ ग्राम तक देना चाहिए। तत्पश्चात् यष्टिमधु फाट और सैंधव साधित उष्ण जल दो-दो लीटर पिलाकर वमनकार्य पूरा करना चाहिए। विरेचनार्थ एरण्ड तैल २० से ४० ग्राम शुंठी क्वाथ के साथ देना चाहिए। दशमूल तैल की आठ अनुवासन वस्ति देनी चाहिए। सहचर क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ की पन्द्रह निरूह वस्ति देनी चाहिए। एक अनुवासन वस्ति देने के बाद निरूह वस्ति दिया जाय तो अति उत्तम होगा। अभ्यंग हेतु नारायण तैल का उपयोग करना हितावह है। संशमन चिकित्सा हेतु भल्लातक अवलेह, महारास्नादि क्वाथ, योगराज गुग्गुलु, सिंहनाद गुग्गुलु, समीरपन्नग रस, वातविध्वंस रस, एकांगवीर रस, वृहद्वातचिन्तामणि रस, वातारि रस आदि योगो का युक्तिपूर्वक उपयोग किया जाय तो गृध्रसी से पीडित रोगी अच्छा हो जाता है।

गृध्रसी की अनुभूत चिकित्सा—

यह केस जनवरी १९७७ का है। उस समय मैं अहमदाबाद मे चिकित्सा व्यवसाय करता था। राधेश्याम गुप्ता ने गिद्ध की तरह चलते हुए हमारे चिकित्सालय में प्रवेश किया। उनके चाल पर से ही मैंने गृध्रसी का निदान कर लिया था। मैंने राधेश्याम गुप्ता जी को बगल की कुर्सी पर बैठने को कहा और मैंने पूछा कि राधेश्याम गुप्ता जी आपकी कमर से दर्द प्रारम्भ होता है और वह उरु जाघ, घुटना मे होते हुए पैर की अगुलियो की तरफ जाता है। राधेश्याम गुप्ता जी ने कहा आप सही कह रहे हैं। इसी प्रकार दर्द होता है। परन्तु आपको कैसे मालूम हुआ। मैंने मुस्कराते हुए राधेश्याम गुप्ता जी को कहा आपकी चाल से ही मैंने आपके रोग का निदान गृध्रसी कर दिया था। राधेश्याम गुप्ता जी को रोगी परीक्षा मेज पर बिटाकर परीक्षा की। उसके बाद मैंने अपना निदान गृध्रसी किया। औषधि उपचार निम्नलिखित दिया गया—

१, आमपाचक वटी २-२ गोली प्रात शाम भोजनोत्तर पानी के साथ देना चाहिए।

२ महायोगराज गुग्गुलु २-२ गोली प्रात शाम पीस कर महारास्नादि क्वाथ के साथ देना चाहिए।

३ महारास्नादि क्वाथ १० ग्राम क्वाथ विधि अनुसार क्वाथ बनाकर प्रातः शाम महायोगराज गुग्गुलु के साथ देना चाहिये।

४. वृहद वातचिन्तामणि रस १/४ ग्राम प्रात शाम दोपहर शहद के साथ देना चाहिए।

५ नारायण तैल का अभ्यंग प्रात शाम करायें।

६ निर्गुण्डी वाष्प स्वेद देना चाहिए।

पथ्यापथ्य का पालन कराते हुए उपरोक्त चिकित्सा राधेश्याम गुप्ता जी को एक महीना तक दिया गया। एक महीना के चिकित्सा मे ही तीन महीना पुराने गृध्रसी से राधेश्याम गुप्ता जी को छुटकारा मिल गया। राधेश्याम गुप्ता जी के बाद उपरोक्त चिकित्सा से मैंने सैकड़ो रोगियो को अच्छा किया है। सभी रोगियो ने हमारी चिकित्सा से सन्तोष व्यक्त किया है।

गृध्रसी मे पथ्य—मधुर, अम्ल, लवण रस वाले आहार का सेवन करना चाहिए। स्थिर, उष्ण, स्निग्ध, वृष्य, बल्य, बृंहण, तथा गुरु गुण वाले पदार्थों का सेवन हितावह है। गेहू, चावल, दूध, घी, तिल तैल, सर्षप का तैल, वसा, मज्जा, परवल, तादलियां, काद, आनूप तथा जलचर प्राणियो का मास, अण्डा, शराब, धनिया, जीरा, मेथी, लहसुन, सहिजन, अनार, आम, बेर, काली द्राक्ष नारंगी आदि गृध्रसी मे पथ्य हैं। सुखकारक निद्रा, तैलादि की मालिश, दूध, तैल, घी आदि का परिषेक, गरम पानी से स्नान, गरम कपडा धारण करना।

गृध्रसी मे अपथ्य—भुना हुआ चना, चावल जैसे रूक्ष आहार, आइस्क्रीम जैसे शीत आहार, शुष्क शाक, शुष्क मास, सावा, कोदव, मूग, मसूर, मटर, आलू आदि अपथ्य आहार हैं। अल्प मात्रा मे भोजन करना, लघु अन्न का सेवन करना, विरुद्ध एव असात्म्य आहार का सेवन गृध्रसी मे हानिकारक हैं। अधिक मैथुन, रात्रि जागरण, उपवास, तैरना, अधिक चलना, अधिक व्यायाम, चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, दिवास्वप्न, मलमूत्रादि वेगो को रोकना, चोट लगना, अति अध्ययन, दौडना, कूदना, भार उठाना आदि गृध्रसी मे अपथ्य विहार हैं।

गृध्रसी

श्री आर. वी. त्रिवेदी वैद्य



साधारण उपचार—

१. कारण व लक्षणो को ध्यान मे रखते हुए गृध्रसी रोग का निदान करलें।

२ गृध्रसी रोग का निश्चय होने पर रोगी को पूर्ण विश्राम लेने की सलाह दें।

३ पूर्ण विश्राम हेतु कडा पलग या तख्त शैया रूप मे दें, सिर के नीचे एक साधारण तकिया ही होना चाहिए।

४ रोग के कारण को ध्यान मे रखते हुए उसे दूर करने का प्रयत्न करें।

५ रोगी के कब्ज या विबन्ध को यथासभव शीघ्र दूर करें।

६. सुपाच्य विटामिनयुक्त स्वास्थ्यवर्द्धक तथा वात-हर भोजन ही देना श्रेयकर है।

७ रोगी का कक्ष अधिक ठण्डा न हो यह ध्यान रखें, क्योकि यह वात या कफ से मिश्रित वात नाड़ी रोग है जो ठण्ड पाने पर प्रकुपित हो सकता है।

८. रोगाक्रान्त भाग (गृध्रसी नाडी को) से कसे या ढक कर गर्म कपडे से उष्ण रखें नही तो स्तब्धता आने का भय है।

९ दोनो समय दस्त खुल कर आना चाहिए यह ध्यान रखे। आवश्यकता होने पर एरण्ड तेल मिश्रित उष्ण जल की वस्ति (एनीमा) लगाकर उदर साफ रखना चाहिए।

१०. वृद्ध पुरुषो मे तीव्र विरेचन या तीव्र वस्ति न दें।

११ चिकित्सा व्यवस्था करते समय वय, काल तथा बलाबल का ध्यान रखने पर सफलता शीघ्र मिलेगी।

प्राकृतिक उपचार—

१ रोगी को लघु आहार या फलाहार पर रखना चाहिए।

२ पूर्ण विश्राम देते हुए उदर शुद्धि का ध्यान रखें।

३ निम्न कसरत इस रोग को दूर करने मे सहायक है

(अ) दाहिने करवट अपनी कडी शैया पर हल्का तकिया लगाये लेटकर सिर, कन्धा और टागें उठाना यानी दाहिने कूल्हे पर १ मिनट से तीन मिनट तक ३ से ७ बार, दिन मे २ वार।

(ब) बायें करवट लेटकर उसी तरह दायें कूल्हे पर रुकना।

४ सूर्य रश्मि चिकित्सा—

(अ) जल प्रयोग—नारङ्गी रङ्ग की बोतल मे ४ अगुल खाली छोड़कर पानी भर कार्क लगा काठ के तख्ते पर रखकर खुले सूर्य प्रकाश मे जहा कोई अन्य छाया या प्रकाश न पडे रख देवें। जल गर्म होने पर उसके रिक्त-स्थान मे जल वाष्प -कण लगें तो समझे कि जल प्रयोग

करने योग्य है। इसी तैयार जल को आक्रान्त स्थान पर गर्म-गर्म मालिश करे दिन मे २-३ वार तथा २-२ तोला ४ बार जल दिन मे पीने को दें, अवश्य लाभकारी है।

(ब) तैल प्रयोग—सुर्ख लाल रंग की बोतल मे आयुर्वेदीय महानारायण तैल, एरण्ड तैल, अलसी तैल, जैतून तैल मे से कोई सा लेकर भरलें तथा उक्त ढङ्ग से अन्य प्रकाशो से बचाते हुए सूर्य प्रकाश मे नित्य रखें। रात को अंधेरे स्थान मे जहां अन्य कोई प्रकाश न जाय रखें तो ३ माह मे यह तैल तैयार होगा जो जादू या विजली करण्ट का कार्य करेगा। किसी वात शूल पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है। यह केवल बाह्य प्रयोग हेतु है।

(स) रश्मि प्रयोग—लाल कांच अथवा (बाजार मे मिलने वाला पारदर्शी लाल कागज जिसे कम्पनिया सिगरेट की पैकिटो अथवा अन्य पैकिगो पर चढाती हैं) कांच की प्लेट पर चढाकर आक्रान्त स्थान पर सूर्य प्रकाश डालें। सभी वातशूलो को वहुत शीघ्र दूर करता है।

(द) गुणकारी सूर्य प्रयोग—उपरोक्त प्रकार से तैयार की गई—

(१) पीली बोतल का पानी २ भाग, लाल बोतल का पानी १ भाग, गहरी नीली बोतल का पानी १ भाग मिलाकर २-२ तोला दो घण्टे पर ८ खुराक दिन मे पीने को दें।

(२) लाल बोतल का पानी गर्म करके सफेद कपडा का फाया भिगोकर दर्द वाले स्थान को सेकना चाहिये। इसी पानी की मालिस भी करें।

(३) रोगी को ठण्डी हवा से बचाते हुए क्रमश. लाल व हरा प्रकाश १-१ घण्टा डाले तथा बाद मे गर्म कपडे से ढके रहे।

५ आक्रान्त स्थान पर वाष्प स्नान करायें।

६. आक्रान्त नाडी को दाऊ मैडीकल स्टोर्स, अलीगढ से बिजली का सिकाई वाला हीटर मगाकर सिकाई करें। इससे पूर्व कोई तैल मालिस करलें तो अति श्रेष्ठ है।

७ (१)सिकाई हेतु बिजली की मशीन भी उक्त स्थान से प्राप्त होती है जो सैल तथा/या बिजली आदि से चालू होती है। आक्रात नाडी के ऊपर तैल मालिश करके इस मशीन से बिधि अनुसार सिकाई करे।

(२) इस मशीन से तैल भी तैयार होता है। जिसकी निर्माण विधि निम्न प्रकार है—

उक्त सूर्य पुटी अथवा सादा उक्त कोई तैल लेकर कांच पात्र मे डाल मशीन के + तथा — (धन, ऋण) पोल तैल मे रख करके मशीन चालू करदें। १५ से ३० मिनट तो यह तेल बिजली साधित शीघ्र प्रभावशाली तैयार हो जायेगा, इसे मालिश में प्रयोग करें।

८ पट्टी प्रयोग—शुद्ध स्थान की शुद्ध स्वच्छ एक हाथ गहरे गड्ढे से लाई ३-४ सेर मिट्टी लाकर रख लें। उसे भली प्रकार आवश्यकतानुसार लेकर पानी डाल आटे की तरह गुंथाई करके पुल्टिश जैसी तैयार करें तथा आक्रान्त स्थान पर गर्म-गर्म सेक १०-१५ मिनट दें तथा गर्म कपडे से ढक दें।

इसी प्रकार वालू का स्वेद दे सकते हैं जो इस प्रकार है—लगभग आधे सेर वालू लेकर कुछ बूंद पानी डाल तवे पर गर्म करे। सुखोष्ण होने पर कपडे मे पोटली बना आक्रान्त नाडी स्थान का स्वेदन (सिकाई) करे।

कभी-कभी गर्म ठण्डी पट्टी भी प्राकृतिक चिकित्सा में १ से १५ मिनट बदल-बदल कर बाधने से उपयोगी बताई गई है। इसे प्रयोगकर्ता जानें हमारा स्वयं का अनुभव नहीं है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—

यह वातजनित नाडी शूल है जिसका चिकित्सा क्रम निम्न प्रकार होगा—

रोगी की वमन विरेचन से सम्यक् शुद्धि कराने हेतु सर्व प्रथम ६ से ९ माशे तक मैनफल चूर्ण गर्म जल मे मिला कर पिलावें तो वमन होते ही ऊर्ध्व अंग-प्रत्यंग के वात-विकार की किंचित शान्ति होगी। तत्पश्चात् देखें कि रोगी कफ प्रकृति का हो या रोग कफ विशिष्टता से युक्त हो तो निशोथ चूर्ण ६ से ९ मा० तथा शुण्ठी चूर्ण ३ मा० को एक साथ मिलाकर १ तोला शुद्ध मधु के साथ गर्म जल से दें तो अच्छी तरह दस्त साफ होगा और कोष्ठशुद्धि हो जायगी।

यदि रोगी वात प्रकृति का है अथवा रोग वातज है तो २॥ तोला से ५ तोला विशुद्ध एरण्ड तैल मीठा डाले गर्म दूध से देने-पर कोष्ठ की शुद्धि भली प्रकार हो जायेगी। विरेचन हेतु एरण्ड तैल प्रशस्त है क्योंकि आचार्यों ने वात को नष्ट करने के लिये तैल का प्रयोग स्पष्ट लिखा है—

देहे निरूहेण विशुद्ध मार्गे, संस्नेहनं वर्ण बलप्रद च।
न तैल दानात् परमस्ति किञ्चिद् द्रव्य विशेष समीरणार्ते।



स्नेहे न रौक्ष्यंलघुतांगुरुत्वात् औष्ण्याच्च शैत्यपवनस्यहत्वा।
तैल वदत्याशु मन प्रसाद वीर्यं वलं वर्णमथाग्नि तुष्टिम्॥
—च सि १-२३/२०

तैल से बढकर वात को नष्ट करने वाली अन्य औषधि नही जो स्नेह गुण से वात की रूक्षता को, गुरुता से लघुता को, उष्णता से शैत्य को नष्ट कर देता है।

इस रोग मे एरण्ड तैल ही क्यो—
तैलमेरण्डज प्रातर्गोमूत्रेण पिवेन्नर।
मासमेक प्रयोगोऽय गृध्रस्यातु ग्रहापहः॥

अर्थात् एरण्ड तैल एक तोला प्रात काल गोमूत्र के साथ पीने से एक माह मे गृध्रसी नष्ट हो जाती है। और भी—

तैलं घृतं साद्रिक मातुलुंगं रस सचुक्र सगुड पिवेद्वा।
कट्यूरू पृष्ठ त्रिक शूल गुल्म गृध्रस्युदावर्तहर प्रयोग॥

अर्थात्—तैल, घृत, आदी स्वरस, बिजौरा नीबू का रस, सिरका और गुड के पीने से कटि, उरु, पृठ, त्रिक का शूल, गुल्म, उदावर्त तथा गृध्रसी रोग नष्ट हो जाता है।

कही-कही पर गृध्रसी रोग निवारण हेतु वस्ति प्रयोग भी है जिसे अति आवश्यकता होने पर वातहर स्नेह वस्ति देना ही प्रशस्त है।

औषधि व्यवस्था—

दोपहर और साय भोजनोपरान्त दशमूल क्वाथ (शा स) का प्रयोग २ से ४ तोला का बनाकर दो भाग करके दोनो समय पीपल चूर्ण ३ मा, भुनी हीग १ रत्ती पुष्करमूल चूर्ण २ मा मिलाकर दें।

दशमूल क्वाथ—वेल छाल, गम्भारी, पाढल, अरलू, अरणी सबकी छाल, गोखरू पचाग, छोटी कटेरी पचाग, बडी कटेरी पचाग पृष्णपर्णी का पचाग, तथा शालपर्णी पंचाग सबको समभाग ले यवकुट कर रखें। साय और रात्रि को समीर पन्नग रस (र० च०) आधा रत्ती से २ रत्ती तक मधु से चटावें।

समीर पन्नग रस—

निर्माण विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सोमल, शुद्ध हरताल सब समभाग लेकर काली तुलसी के पत्तो के स्वरस की भावना तीन दें और घुटाई करें। तत्पश्चात् बालुकायन्त्र मे रखकर २४ घण्टा मन्दाग्नि देकर तल मे स्थित रसायन निर्माण कर लें।

चेतावनी—इस औषधि के सेवन काल में रोगी को पर्याप्त घृत सेवन कराना चाहिए।

उपरोक्त औषधियो को पाच दिन तक सेवन करने के पश्चात् निम्न औषधियों को भी उनके साथ सेवन कराना चाहिए तथा प्रथम औषधि की मात्रा आधी कर देनी चाहिए।

गृध्रसीहर गुटिका (र० त०)—वय और शक्ति के अनुसार प्रात १ से ४ गोली तक ताजा जल से दें। भोजन मे पर्याप्त घृत सेवन करायें।

निर्माण विधि—महायोगराज गुग्गुल ८ तोला, भुनी हीग २ तोला और जिह्वा निकली हुई एरण्ड के बीज की गिरी २ तोला इन सबको रास्नादि क्वाथ (रास्ना, वला-मूल, गोखरू, शालपर्णी, पुनर्नवा के सम योग से बना) के साथ ५ घंटा दृढ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

प्रात साय निम्न वातनाशी तैल की मालिश करें—

वातनाशी तैल—निर्माण विधि—लाल मिर्च बीजरहित १ तोला, कुचला साबित १ तोला, तम्बाकू के पत्ते १ तो० एरण्डमूलत्वक २ तोला, लहसुन ४ तोला, रतनजोत १ तोला इन सबको १ सेर तेल सरसो या तिल का (मीठा तेल) मे तैल विधि से तैयार करे। तैल सिद्ध होने पर ३ माशा कपूर, सत्व अजवायन ६ माशा को गर्म तैल मे डाल भली प्रकार मिला छानकर रख लें। तैल मालिस के बाद स्वेदन हो जाय तो अति सुन्दर है तथा विरेचक स्नेह के बाद भी स्वेदन करना लाभप्रद है।

इस रोग मे स्वेदन जिस किसी विधि से किया जाय वही ठीक तथा लाभकारी रहेगा। नीचे लिखे मे से कोई सा भी चुन लें। इसमे स्निग्ध स्वेद हो तो और अच्छा वैसे—

रोगी को निर्वात स्थान मे रखकर वाष्प स्वेद आक्रात स्थान का नाडी स्वेद दें। इस स्वेद क्रिया मे वातहर द्रव्य डालकर के स्वेद क्रिया करें।

वालुका स्वेद या प्रस्तर स्वेद—आग मे गर्म करके कपड़े मे लपेटकर आक्रान्त स्थान की सिकाई करते हैं।

यह विधिया वातशूल नाशक प्रभावशाली हैं (यह विधि चिकित्सा शास्त्र मे पचकर्म विधि के अन्दर वर्णित हैं वहा देखें)।

अनुभूत प्रयोग—

वातरुकंतक वटी—अभ्रक भस्म (निश्चन्द्र शतपुटी),

प्रवाल पंचामृत, चौकिया सुहागा भस्म, निर्गुण्डीमूल घनसार, एरण्डमूल घनसार, सर्पगन्धा घनसार, रास्नासप्तक घनसार, एकपुतिया लहसुन चूर्ण शुष्क, हरड फल घनसार, मेथी बीज चूर्ण सब ४-४ तोला, कान्त लोह भस्म, अश्वगन्धा पचांग घनसार, विडग बीज घनसार, सनबीज घनसार, पचकोल घनसार, कायफल घनसार, दशमूल घनसार, पलाशक्षार, कौडिया लोवान सत्व, पठानी घनसार, प्रसारणी घनसार, नागरा घनसार प्रत्येक २ २ तोला। गोमूत्र तथा गोघृत द्वारा सिद्ध कुचला महीन चूर्ण १६ तोला।

सम्पूर्ण द्रव्यो को पत्थर के वडे खरल मे डालकर पहले खूब मर्दन करें। फिर अदरख के रस मे भावना देकर घुटाई करके २-२ रत्ती की गोलिया बना छायाशुष्क करलें।

उक्त सभी घनसार औपधि द्रव्य का अष्टमाश क्वाथ बनाकर क्वाथ को गाढा करके तैयार होता है।

गुण—यह वटी साइटिका (गृध्रसी) की अमोघ औषधि है। साथ ही लकवा, गठिया, सधिवात पर भी कभी फेल नही होती। यह रोग को वहुत शीघ्र नियन्त्रित करती है।

गृध्रसीहर कैप्सूल—गोमूत्र से त्रिफला क्वाथ मे शुद्ध गूगुल, शुद्ध मीठा तेलिया १०-१० ग्राम लेकर अलग अलग महीन करे। फिर घी तथा मधु मे अलग-अलग कूटें फिर १२५ मि० ग्राम के कैपसूल मे भर लें। १ से २ कैपसूल गर्म जल से दे। गृध्रसी पर लाभप्रद है।

वातनाशी कैपसूल—गाय के दही मे शुद्ध किया इकपुतिया लहसुन ७॥ तोला, एरण्ड मूलत्वक, शुद्ध कुचला ५ तोला, असगन्ध ५ तोला, गिलोयसत्व ४ तोला, सौंठ ६ तोला को घोट पीसकर छानलें। फिर शुद्ध पीला सखिया १ माशा मिलाकर १०-१२ घण्टे खरल कर २५० मि० ग्राम के कैपसूल मे भरलें। एक कैपसूल प्रात साय हल्के नास्ते के वाद महारास्नादि क्वाथ के साथ निगलवा दें। घृत युक्त भोजन यथेष्ट दे।

समीर सुधा रस—एरण्ड तैल मे शोधित सूक्ष्म कुचला चूर्ण ३ तोला, शुण्ठी, मिर्च, पीपलामूल, दालचीनी, टकण प्रत्येक २-२ तोला, उत्तम कस्तूरी ७ माशा, अम्बर ४ माशा, स्वर्ण भस्म ३ माशा।

निर्माण विधि—कुचला, शुण्ठी, कालीमिर्च, दालचीनी, टकण को २-२ तोला लेकर खरल मे डाल खूब घुटाई करें। तत्पश्चात कस्तूरी ६ माशा, अम्बर ४ माशा, स्वर्ण भस्म को अलग खरलकर मिला पुन. खरल करे और शीशी मे भर रखें। ४-४ रत्ती कैपसुल (२५० मि ग्रा.) मे भरकर रखें। सुखोष्ण दुग्ध से प्रात सायं दे। ७ दिन मे रोगी ठीक हो जायगा।

योगेन्द्र रस—रससिन्दूर २ भाग, स्वर्णभस्म, कान्तलोह भस्म, अभ्रक भस्म, मौक्तिक भस्म, वंग भस्म प्रत्येक १-१ भाग लेकर ग्वारपाठा के गूदे मे खूब खरल करें। गोली एरण्ड पत्र मे लपेट धागे से बांधकर धान्य राशि मे ३-४ दिन दवाकर रखे। तत्पश्चात गोलिया आधा रत्ती बना छायाशुष्क करलें आवश्यकतानुसार ४ गोली तक खरेंटी त्वक चूर्ण ६ माशा तथा मधु ४ माशे के साथ सुखोष्ण जल से प्रातः साय दे। यह रस कोमल प्रकृति तथा सगर्भा को भी दिया जाता है।

महायोगराज गुग्गुल—चव्य, चित्रक, शुण्ठी, घृतभृष्ट हीग, पीपलामूल, अजमोद, पीली सरसो, छोटी पीपल, गज पीपल, जीरा, कलौंजी, रास्नामूल, इन्द्रजौ, पाठा, वायविडग, कुटकी, अतीस, भारगी, असगन्ध, वच प्रत्येक १-१ तोला का चूर्ण त्रिफला कल्क ४० तो०, गिलोय और दशमूल क्वाथ मे शोधित गुग्गुल ६० तो० ८ गुने जल मे क्वाथ करके रखे। अष्टमाश रहने पर उतार लें तब गुग्गुल मिलावें। फिर रससिंदूर, बग भस्म, रजत भस्म, नाग भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म ४-४ तो० मिलाकर सभी द्रव्यो की खूब कुटाई करें, ३-३ रत्ती की गोली वनावे। १ से ३ गोली प्रात साय उष्ण दूध से दे। यह सभी वात शूलो को शमन करने मे समर्थ है।

वातनाशी पेय—लहसुन शुद्ध २० तो,, चन्द्रसूरबीज ५ तो, एरण्डमूल त्वक ५ तो, शुद्ध कुचला २॥ तो., बछिया का मूत्र ताजा ५ तो, वर्षा जल ३ सेर सब काष्ठौषधियो को चूर्ण कर एकत्र करके एक जगह पात्र मे फूलने दें। दूसरे दिन सब द्रव्यो के वजन का आधा गुड मिला आसव क्रिया करें। पश्चात् एक माह के सधान पूर्ण होने पर भली प्रकार छान लें तथा डाट लगी शीशिया भर लें। अब इसमे २-४ रत्ती कस्तूरी तथा मृतसजीवनी सुरा २५० मि लि मिला दें। १ से २ तो० समभाग जल से भोजनोपरात प्रात. साय दें तो वात रोग नष्ट हो।

गृध्रसीहर चूर्ण—सुरजान शीरी ३ तो०, असगन्ध



नागौरी, सौंफ ३-३ तो०, काला जीरा १ तो०, सोंठ, सनाय पत्ती, पोदीना शुष्क १-१ तो०, ६ माशा काली मिर्च, रूमी मस्तगी १ तो० सभी वस्तुओं को अलग-अलग कूटकर कपड़छन करे तथा मिलाकर रखें। ६-६ मा० चूर्ण प्रात साय तथा मध्याह्न उष्ण दुग्ध से ले।

गृध्रसी को दूर करने का अद्वितीय चूर्ण है। इसके अतिरिक्त अन्य वात रोगो मे भी लाभप्रद है।

यह चूर्ण आठ दिन से ४० दिन चलानी चाहिए।

उक्त सभी योग चिकित्सकों के अनुभव सिद्ध प्रयोग है। अब हम एक यूनानी प्रयोग भी देते हैं—

गृध्रसीहर कुर्स—मुसब्बर, पीली जर्द, हरड का वक्करा, सुरंजानशीरी बराबर लेकर कूट छानकर अर्क सौंफ के साथ चने के बराबर गोली बनावे।

२ से ४ गोली प्रात सायं ताजे जल से सेवन करावें। गृध्रसी पर लाभप्रद है।

२. मीठा सुरन्जान, अकरकरा १-१ माशा का महीन चूर्ण ७ माशा जवारिश जरऊनी मे मिलाकर खिलावें। ऊपर से गोखरू, खरबूजा तुख्म (मीग), खीरा या ककड़ी बीज ३-३ माशा सबको पानी मे पीस अर्क निकाल शर्बत बजूरी ४ तो० के साथ पिलावें तथा रोगन सुरजान की मालिश दर्द स्थान पर करें।

गृध्रसीहर क्वाथ—

महानीम (बकायन) की अन्तर्छाल ६ माशा, म्योंडी की पत्ती १ तो०, महानीम का गोंद १ माशा, पुष्करमूल १॥ मा० को २० तो० जल मे उबालकर ५ तो० शेष रहने पर १ तो० गोमूत्र डाल पिलायें। शाम को इसका छूछा क्वाथ करके पिलावे।

गृध्रसी में पथ्यापथ्य—

शीतल एव कफ वातवर्द्धक पदार्थ जैसे—चावल, दही, भिंडी, मूली, तरबूज, आड़ू, कमरख, नारगी, बर्फ आदि अपथ्य हैं। बकरे का शोरबा, तीतर व मुर्ग का भुना मास, दाल अरहर, मसुर, आलू, अण्डा जर्दी आदि पथ्य हैं।

कुछ गुणकारी आयुर्वेदिक सूचीवेध—

अदसोन (प्रताप फार्मा देहरादून)—१ मि० लिटर प्रतिदिन मासान्तर्गत दे।

कुचला (बुन्देलखण्ड कम्पनी, झासी)—१ सी. सी. से २ सी. सी. १ दिन छोड़कर मास मे लगावें।

वातोन (सिद्धि फा० ललितपुर)—१ से २ सी. सी. मासान्तर्गत १ दिन छोड़कर।

मारुतारी (मार्तण्ड, बड़ौत)—प्रतिदिन एकएक लगावें।

महावात विध्वंसन—(जी ए मिश्रा, झासी) १ से २ सी सी मांस मे नित्य दें।

शूलान्तक (मार्तण्ड बड़ौत)—यह शूल को रोकता है।

उपरोक्त सभी सूचीवेध गुणकारी हैं जो आसानी से मिल जाय उसे लेकर सविधि उपयोग में लाकर रोगी को आराम पहुचावें।

गृध्रसी रोग में शल्य क्रिया—

यह सद्यः फलवती है जो—

जानु सन्धेरुपर्यधो वा चतुरगुले गृध्रस्याम्।

—सु० शा० ८/२१

के अनुसार जानु संधि के ४ अंगुल ऊपर या चार अंगुल नीचे शिराव्यध करना कष्ठ निवारक क्रिया है।

काय चिकित्सा मे वस्ति विधि सम्पूर्ण रोग की अर्द्ध-चिकित्सा कही गई है। ठीक इसी प्रकार शल्य चिकित्सा मे शिराव्यध भी अर्द्धचिकित्सा है जिसका प्रतिपादन सुश्रुत मे इस प्रकार है—

शिराव्यधश्चिकित्सार्द्धं शल्य तन्त्रे प्रकीर्तितः।
यथा प्राणहित सम्यग्वस्ति काय चिकित्सिते॥

—सु० शा० २८

शल्य क्रिया मे रोगी का बल एवं काल ज्ञान करने पर शिरा व्यध करना चाहिए लेकिन रोगी को यह विदित न हो कि उसका रक्त निकाला जायगा नहीं तो वह घबरा जायगा। अथवा रोगी को चेतनाशून्य अथवा स्थान को सुन्न (चेतना शून्य) करना चाहिए तब उरु के मध्य मे यन्त्रण करे। फिर ताडनादि क्रिया से शिरा को उत्थित करके मर्म स्थान को ध्यान मे रखते हुए बचावे तथा जानु के ४ अगुल ऊपर या चार अगुल नीचे पुरोजंघिका शिरा का वेधन करें। कुछ दोषावशेष ही रहे तभी यन्त्रण को हटा के पश्चात् योगराज गुग्गुल ३ गोली, शुद्ध कुपील ६ रत्ती प्रात दोपहर शाम मधु से दें।

ध्यान रहे—बल और काल के बिना विचारे या उपर्युक्त शिरा के इधर उधर का वेध या मर्म को बिना विचारे यदि चिकित्सा हुई तो लाभ के स्थान पर तुरन्त हानि होगी। तदर्थ आचार्य सुश्रुत का विचार—

गृध्रसी विश्वाची क्रोष्टुकशिर खञ्जपङ्गुल वात कण्टक पाद दाह पाद हर्षाववाहुक वाधिर्य धमनीगत रोगेषु यथोक्तं यथोद्देशञ्च शिरा व्यध कुर्यात् ।

—सु० चि० अध्याय ५

अर्थात्—गृध्रसी, विश्वाची, क्रोष्टुशीर्ष, पाद खजता, वातकण्टक, पाद दाह, पाद हर्ष, अववाहुक, वाधिर्य, धमनीगत रोगो मे कहे गये उसी उद्देश्य मे शिराव्यध करे।

गृध्रसी रोग में अग्नि कर्म—

यह कर्म भी सद्य फलदायक है।

दग्धानां रोगाणाम पुनर्भावाद् भैषज शास्त्र क्षाररसा ध्यानां तत्साध्यत्वाच्च। —सु० सू० १२/१

अर्थात्—दग्ध किए हुए रोगो का पुन प्रादुर्भाव नही होता। भेषज शास्त्र के क्षार से जो रोग सिद्ध नही वे अग्नि कर्म से सिद्ध होते हैं। अग्नि कर्म दो प्रकार का है—

त्वग्दग्धं एव मास दग्धं द्विविधिमग्नि कर्माहुरेके।
इह तु-शिरा स्नायु सन्ध्यस्थिस्वपि न प्रतितिषोऽग्नि ॥

अर्थात्—त्वक् दग्ध, मांस दग्ध के अतिरिक्त शिरा स्नायु सन्धि और अस्थि मे भी अग्निकर्म का प्रतिषेध नही है। यह हम पहले कह आये हैं कि—

स्नाय्वस्थितः कुर्यात् गृध्रस्यस कुब्जता।

जब वायु स्नायु स्थित होता है तब गृध्रसी रोग होता है। आचार्य सुश्रुत का मत है—

त्वङ् मास शिरा स्नायु सन्ध्यस्थि स्थितेऽत्युग्ररुचे अग्निकर्म कुर्यात्। —सु० सू० १२/१३

स्नायु दग्ध करने से गृध्रसी रोग नष्ट हो जाता है क्योंकि त्वचा, मास, शिरा, स्नायु, सन्ध्यस्थि स्थित वायु अति उग्र रूप धारण करने पर अग्निकर्म करें।

गृध्रसी दग्ध विधि—जघन कपाल के ऊर्ध्व कूट से चार अगुल नीचे अग्नि से तप्त शर की तीन अगुल भीतर ले जाय। वहा पर गृध्रसी द्वार से निकली हुई गृध्रसी नाडी है। जब शर वहाँ पहुचता है तो गृध्रसी नामक नाडी जलने पर गृध्रसी रोग नष्ट हो जाता है।

दग्धकर्म के पश्चात्—दाह होना सम्भव है उसे शमन करने के लिए कच्छप के मज्जा का तैल बनाना चाहिए जो अति उपयोगी है।

एलोपैथिक चिकित्सा क्रम

मुख द्वारा देय औषधि—

यदि चोट लगने से यह रोग हुआ हो तो बैलारगन गोली प्रात दोपहर साय गर्म जल या चाय से दें। नही तो इरगापाइरन, नोवलजीन आदि टेवलेट उक्त प्रकार दें। अथवा ब्यूटाकोर्टिण्डन गोली १-१ प्रात सायं दें।

मिक्श्चर—सोडा सैलिसिलास १ ग्रेन, पोटास ब्रोमाइड १० ग्रेन, फेनाजोन ३ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब ५ ग्रेन, टिन्चर बैलाडोना ५ बूद, एक्वा १ औंस-यह १ मात्रा है ऐसी ४ मात्रा दिन मे दें।

खाने के लिए पुडिया—ओटोफेन टेवलेट १ टिकिया, सोडाबाई कार्ब १० ग्रेन पीस लें। ऐसी ३ मात्रा दिन मे गर्म जल से दें अथवा सिवाल्जीन या नोवल्जीन १ टिकिया, ए. पी सी (बूट्स) १ टिकिया दोनो पीसकर दिन मे ३ बार दें तथा कभी-कभी कोडीन कम्पाउण्ड टेबलेट दें और रात को आवश्यकता पडने पर मार्फिया दें किन्तु जहा तक सम्भव हो बार्बिट्यूरिट देकर मोर्फीन शीघ्र बन्द कर दें।

सूचीवेध—

तीव्र दर्द की हालत मे मार्फीन का इन्जेक्शन दें अथवा एट्रोपिन इन्जेक्शन दें। वैसे नितम्ब प्रदेश मे नोवल्जीन २ से ५ सी सी नित्य सूचीवेध करें।

स्वय या किसी विशेषज्ञ द्वारा नाडी मूल मे शुद्ध एल्कोहल का इन्जेक्शन दें।

इसके अतिरिक्त—१०० मि० ग्राम विटामिन बी६, ५०० मि० ग्राम विटामिन बी१२ का अन्त पेशी सूचीवेध १० दिन तक दें। तथा न्यूरोबियोन का इन्जेक्शन हर तीसरे दिन लगावें। अथवा ट्राई रेडीसील १०० मि० ग्राम लगावें। इससे रक्ताल्पता दूर होकर शूल भी कम होता है।

कोष्ठबद्धता हो तो—हर्बोलैक्स, ग्लैक्सेना गोली दें।

स्थानिक प्रयोग हेतु—लिनिटेम्ट ए० बी० सी० (एकोनाइट, कैम्फर, बैलाडोना) अथवा स्लोन्स लिनिमेट मे से कोई एक मालिश हेतु प्रयोग करें। उस स्थान की सिकाई भी करा सकते हैं।

—विद्या वाचस्पति श्री प० आर० बी० त्रिवेदी वैद्य
साहित्यायुर्वेदोत्तमा, वैद्याचार्य, आयु०शास्त्री
श्री ऋषि आरोग्य सेवाश्रम, जसराना,
पो० साबनी (अलीगढ) उ०प्र०

आमवात

श्री कुलकर्णी प्रसाद वासुदेव, १३०३/२, सदाशिव पेठ, पुणे—३०

जिस व्याधि ने वातदोष, प्राय सधियो मे विकृति उत्पन्न करता हे, उसे 'आमवात' कहते हैं। 'आमवात' की जानकारी लेने से पहले 'आम' का अर्थ देखे—

मन्दाग्नि मे शरीर का पहला धातु 'रस' आमाशय मे परिपक्व न होकर वातादि दोषो से कुपित होता है और उसे 'आम' कहते हैं। जिस प्रकार कोदरू (एक प्रकार का अनाज) मे विष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार दूषित दोषो के परस्पर समीपन मे ही आम की उत्पत्ति होती है। —अष्टाग हृदय सूत्र अ० १३

आधुनिक दृष्टिकोण से जब प्यूरिन नामक प्रोटीन का पाचन भलीभाति नही हो पाता, उस स्निग्ध प्रोटीन से मूत्राम्ल (Uric acid) नाम का विशेष द्रव्य निर्माण होता है। इसी तरह शरीर के पेशियो की केंद्रको की (Nuclei of the cells) टूट फूट से मूत्राम्ल अधिक बनता है। यह मूत्राम्ल वृक्को की किसी कमजोरी से मूत्र मे मिलकर शरीर के बाहर नहीं जा पाता और रक्त मे वापिस प्रविष्ट होने लगता है। इसी के कारण रक्तस्थ मूत्राम्ल की स्वाभाविक मात्रा बढती है—रक्तस्थ मूत्राम्ल की स्वाभाविक मात्रा १०० मि० लिटर रक्त मे १ से ३ मि ग्राम होती है। इस मूत्राम्ल की स्वाभाविक मात्रा का बढना ही आमवात का कारण है। यही मूत्राम्ल सन्धियो के स्नायु एव मृद्वस्थियो (Cartiladge) मे इकट्ठा हो जाता है। इसकी अम्लता से उन सन्धियो के श्लैष्मिक आवरण मे दाह होता है और पीडा होने लगती है। इसी प्रकार कार्बोहाइड्रेट तथा स्नेहो के अपूर्ण पाक से तक्राम्ल (Lactic acid) बनता है, जिसका स्थान सश्रय पेशियो मे होकर उस पेशी मे शोथ एव शूल उत्पन्न कर देता है। व्याधि विज्ञान मे रुक्षादि गुण युक्त शूलकर आम द्रव्य को ही वात कहते हैं। जो जो विकारोत्पादक द्रव्य हैं उनकी सामान्य रीति से आम सज्ञा उचित है।

जठराग्नि एव धात्वग्नि के अल्पबलत्व के कारण अपाचित व दुष्ट आमाशय मे गया हुआ जो आद्य धातु रस है उसको आम कहते हैं। —वाग्भट

निदान

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च।
स्निग्धो भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायाम कुर्वतस्तथा ॥ १ ॥
वायुना प्रेरितो ह्याम श्लेष्मस्थान प्रधावति।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनी प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषित सोऽन्नजो रस।
स्रोतांस्यभिष्यंदयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥
युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धि प्रवेशकौ।
स्तब्ध च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ४ ॥

—माधव निदान

विरुद्ध आहार और विरुद्ध विहार करना, व्यायाम न करना अथवा स्निग्ध पदार्थ सेवन करने के बाद व्यायाम न करना और जठराग्नि मन्द होना, इन कारणो से दूषित वायु से प्रेरित होने वाला आम कफ स्थान मे जाता हैं और वहां कफ के कारण अत्यन्त दूषित होकर सिराओ मे घुस जाता है। इतना ही नही वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषो के साथ आम मिश्रित होकर सब नाड़िया भर देता है और पिच्छिल व अनेक रङ्ग का बन जाता है। रोगी के शरीर मे ऐसा प्रकार हो तो वात और कफ ये एक ही वक्त प्रकोप करते है। और कमर में घुस जाते है। बाद मे ये शरीर को पीड़ित करते हैं। इस रोग को आमवात कहते हैं।

आम का सचय और वात की वृद्धि इन दोनो कारणो से मुख्यत आमवात व्याधि होता है। सचित आम जब वायु से प्रेरिति होकर श्लेष्म स्थानो मे मुख्यत हाथ, पाद, शिर, गुल्म जानु और उरु की सन्धियो मे तथा हृदय मे जाकर तत्रस्थ स्रोतसो को अवरुद्ध करता है तब प्रकुपित वायु सरुज शोथ उत्पन्न करता है। आमवात का उद्भव आमाशय मे, अधिष्ठान सन्धियो और संचार सब कफ स्थानों मे होता है। उसका पूर्वरूप ये है कि ज्वर, अग गौरव और सन्धि जकड़े हुए हैं, ऐसा लगता है। ये ही आमवात का लक्षण है।

लक्षण

अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्य गौरव ज्वर ।
अपाकः शूनताङ्गानांमामवातः स उच्यते ॥
—माधव निदान

अङ्गमर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, गौरव, ज्वर, अन्न का पचन न होना, ये लक्षण आम के सर्व देह मे घूमने के कारण हो जाते हैं। परन्तु इसमे सबसे महत्त्व का व्याधि-प्रत्यनीक लक्षण यानी सचारी सन्धिवेदना और सचारी स्वरूप की सन्धिविकृति इस लक्षण का आमवात व्याधि के सन्दर्भ मे माधव निदान अग्निमाद्य प्रकरण मे उल्लेख मिलता है।

यत्रस्यमामं विरुमेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातं ।
दोपेण येनावतत शरीर तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥
—माधव निदान–अग्निमांद्य ।

सचारी सन्धिवेदना के स्वरूप आम और वायु जिस सन्धि का आश्रय लेता है, उस सन्धि मे विकृति होकर दिखाई देता है। हस्त, पाद, शिर, गुल्फ, जानु, उरु, त्रिक् इन स्थानो की सन्धि विकृत हो जाती है; शोथयुक्त, उष्ण-स्पर्श और वेदनायुक्त होती है। एक–दो दिन के बाद आम उधर से अन्यत्र गया तो पुन. प्राकृत होती है। इस प्रकार के लक्षण व्याधि की आशुकारी अवस्था मे नजर आते है। व्याधि बहुत देर तक रहने के बाद इसका सचारीस्व-रूप नष्ट होकर विकृत होकर वसे ही विकृतावस्था मे रहते है।

प्रकार—

पित्तात्सदाहरागं च सरुठ पवनानुगम् ।
स्तिमितं गुरुकण्डू च कफदुष्टं तमादिशेत् ॥
—माधव निदान ।

आमवात के तीन प्रकार होते है। पहले पित्त के प्रकोप के कारण होता है, उसमे शरीर का वर्ण लाल और दाह ये लक्षण दिखाई देने मे आते है। दूसरे प्रकार मे वायु का शूल होता है। और तीसरा कफ प्रयोग के कारण होता है। उसमे गीलेपन, जडत्व और कडू लक्षण नजर आते है। शारगधर सहिता मे आमवात के चार प्रकार बताये है—

चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।
चतुर्थः सन्निपाताश्च…

आमवात चार प्रकार के होते है—

(१) वातामवात—इसमे शूल नाचते है, इस तरह की वेदना होती है।

(२) पित्तामवात—इसमे दाह, लाली होती है।

(३) कफामवात—इसमे जडत्व, कडू ज्यादा होते हैं।

(४) सन्निपातामवात—वातादि तीनो दोषो के पुर्वोक्त लक्षण होते है और सब शरीर को शोथ होता है। ये सन्निपातिक आमवात कष्टसाध्य है।

जिसमे एक दोष का सम्बन्ध रहना है तो आमवात साध्य होता है। दो दोष का होता है तो व्यापक होकर रहता है और त्रिदोषजन्य अथवा सान्निपातिक और जो सर्व शरीर मे फैलता है और शोथ होने वाला आमवात बहुत कष्टसाध्य होता है।

आमवात बढ गया तो होने वाले विकार—

स. कष्ट सर्वरोगाणा यदा प्रकुपितो भवेत् ।
हस्तपादो शिरो गुल्फ त्रिकजानूरुसन्धिषु ॥१॥
करोति सरुज शोथ यत्र दोषः प्रपद्यते ।
सदेशो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥२॥
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्य प्रसेकारुचिगौरवम् ।
उत्साहहानिर्वैरस्य दाह च बहुमूत्रताम् ॥३॥
कुक्षौ कठिणता शूल तथा निद्राविपर्ययम् ।
तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रह विड्विबन्धताम् ॥४॥
जाड्यान्त्रकूजमानाह कष्टाश्चान्यानपद्रवान्न् ।
—माधव निदान

आमवात बढ गया हो तो बहुत दुःखदायक होता है। वह जिस स्थान मे जाता है उधर सब दुषित कर देता है। हस्त, पाद, शिर, गुल्फ, जानु, उरु आदि के सन्धि शोथ



उत्पन्न होकर शूल उत्पान करता है। और ऐसा है कि इससे अग्निमाद्य, अम्लद्वेप, निरुत्साह, जडत्व, दाह, शूल, प्यास, चक्कर, मूर्च्छा, मलावरोध, बहुमूत्रत्व, कुक्षि मे कठिनता, मुंह फीका पडना, बहुत पानी छुटना, रात को नीद न आना और दिन को आना, वृहदान्त्र मे आवाज आना, पेट फूलना, उरु मे दर्द होना ये और दूसरे ही भयकर उपद्रव उत्पन्न होते है।

इस व्याधि की गम्भीरावस्था मे सतत तीव्र ज्वर और हृद्विकृति ज्यादा से ज्यादा उत्पन्न होने में व्याधि की प्रवृत्ति रहती है। हृद्ध्वनि की विकृति, हृदय का आकार वढना और श्वास उत्पन्न होता ऐसे ही लक्षण नजर आते हैं। मुख्यत हृदय के मास धातु में और उधर के अगो में शोथ, ग्रह ऐसी विकृतिया उत्पन्न होती हैं।

आमवात की सामान्य चिकित्सा—

लघन स्वेदन तिक्तदीपनानि कटूनि च।
विरेचन स्नेहपान, वस्तयश्चाममारुते॥
रुक्ष स्वेदो विधातव्यो वालुकापोटलैस्तथा।
उपानाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिता॥

—योग रत्नाकर

आमवात मे आम का सचय मुख्यत अग्नि के मन्द होने के कारण होता है। इसलिए रोगी का आम पाचन होने तक लघन करना चाहिए। लघन से आम का पचन होकर स्रोतो का अवरोध कम हो जाता है। इस रोग मे स्वेदन से रुक्ष स्वेद इष्ट है। उसके लिये उष्ण द्रव्यो से निर्मित स्नेहविरहित उपनाह प्रयुक्त होते हैं।

आमवात स्निग्ध होने के कारण आमवात मे स्वेदन का प्रयोग निषिद्ध माना गया है। उपनाह निमित्त शत—पुष्पादि उपनाह को शुक्त अथवा काजी में पीसकर सुखोष्ण उपयोग करना चाहिए अथवा अहिंस्रादि उपनाह को गोमूत्र मे पीस कर सुखोष्ण उपयोग करना चाहिए।

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिण।
एक एवाग्रहणीर्हन्ता एरण्डस्नेहकेसरी॥

—भाव प्रकाश उ० अ० २६

एरण्ड स्नेह के एक उत्तम आमपाचक होने से आमवात मे आम का पाचन और विरेचन दोनो के लिए एरण्ड स्नेह का उपयोग होता है। एरण्डस्नेह का उपयोग शुण्ठी के फाण्ट के अनुपान से कम होता है।

सामान्यत. शास्त्रकारों ने आम दोषो के शोधन का निषेध किया है। आम दोषो में शोधन देने से दोषों का शोधन तो नहीं होता बल्कि प्रत्युत शोधन द्रव्यों के उपयोग से अन्य नवीन उत्पन्न हो जाते हैं। साथ में इतर वर्तमान लक्षणों की वृद्धि भी हो जाती है। अत आमवात में रोगी को लघन, स्वेदन और दीपन पाचन आदि द्वारा आम का पाचन होने के अनन्तर विरेचन देना उचित होता है और उसके लिए एरण्डस्नेह का महत्व आता है।

आमवात में आम का पाचन होने के बाद वायु का शमन करना आवश्यक है। इसलिए आम का पचन होने के वाद वायु का शमन होने के लिए अमृतप्राशघृत, चित्रकादिघृत, नारायण तैल, वृहत्सैन्धवादि तैल आदि में से आवश्यकतानुसार किसी एक का शुण्ठी-फाण्ट किंवा दूध के साथ पीने से उपयोग होता है। आम वात में वायु के शोधन के लिए तीन निरूहबस्ति देने को शास्त्र में कहा गया है। बस्ति के लिए वचा, मदनफल, बलामूल, कुष्ठ, सैन्धव, पिप्पली, अतिविषा, मुस्ता, रास्ना, कायफल और पुष्करमूल प्रत्येक १-१ माशे. लेकर चूर्ण करें। वह चूर्ण वृहत्सैन्धवादितैल ८ तो० मे मिला दे, बाद मे सबको मथनी से मन्थन करें। इस द्रव्य मे से ३२ तो० द्रव्य लेकर प्रथम वार वस्ति देवें। इसी प्रमाण मे द्रव्यो को एकत्र करके द्वितीय और तृतीय वार २४-२४ तो० की वस्ति देवें। इस वस्ति से वायु का शोधन होने के कारण विबन्ध आनाह, हृदय ग्रह, सन्धिग्रह आदि शान्त होते हैं।

आमवात की विशेष चिकित्सा—आमावस्था—

(1) आमवात विध्वसन रस—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १/४ इसकी कज्जली बनाकर उसमे कज्जली के १/१६ भाग वछनाग मिला देने पर इस मिश्रण को चित्रकमूल स्वरस की भावना मात्रा—१ से २ गुंजा। अनुपान—दशमूलादि क्वाथ।

(11) वातविध्वंस—पारा १, गन्धक १, नाग १, बग १, ताम्र १, अभ्रक १, लोह १ इनकी भस्मे लेकर उसमें पिप्पली २, शुठी १, मरिच १, वछनाग ४।।, टकण १ भाग इनके चूर्ण लेकर मिश्रण करने का। वाद मे इस मिश्रण को त्रिफला ३, चित्रक ३, माका ३, कुष्ठ ३, निर्गुण्डी ३ इनका क्वाथ बनाकर उसको अर्कक्षीर ३, भूम्यामकी स्वरस ३, आर्द्रक रस ३, निंबु का रस ३ इनकी

भावना दें। बाद मे रोगी का बलाबल देखकर उसको मात्रा २-४ गुंजा तक दे सकते हैं। अनुपान—रास्नादि क्वाथ।

(iii) आमअवस्था मे वातविध्वस और सिंहनाद गुग्गुल इनके मिश्रण का अच्छी तरह से उपयोग होता है।

बाह्यत. विषगर्भ तैल से स्नेहन करने का और वालुका स्वेद की तरह रुक्ष स्वेद देना चाहिए। पश्चात् संधि के ठिकाने पर आमावस्था मे तीव्र वेदना का लक्षण उत्पन्न हुवा तो भल्लातक तैल से प्रतिसारण किया तो शूल प्रशम त्वरित होता है। 'वेदनाहर तैल' का भी सवाहनार्थ उपयोग किया तो शूल प्रशम त्वरित होता है।

निरामावस्था—निरामावस्था मे नीचे दिये हुए क्वाथ का उपयोग होता है।

(I) शुण्ठ्यादि क्वाथ—शुंठि+गोक्षुर

(II) शुंठ्यादि सप्तक—कचोर+शुंठी+हरीतकी+वचा+देवदार+अतिविष+गुडुची

(III) पिप्पल्यादि पचक—पिप्पली+पिप्पलीमूल+चव्य+चित्रक+नागर

(IV) रास्नापचक—रास्ना+गुडुचि+शुंठी+एरड मूल+दारुहरिद्रा

(V) रास्नादि सप्तक—रास्ना+आरग्वध(मगज)+देवदार+पुनर्नवा+गुडुचि+एरड मूल

(VI) रास्नाद्वादशक—रास्ना+शतावरी+वासा+गुडुचि+अतिविष+हरीतकी+शुंठी+धन्वयास+एरण्डमूल+देवदार+वचा+मुस्ता।

इन सबकी मात्रा १-२ तो० देनी चाहिये। इसके अलावा महारास्नादि क्वाथ, रास्नापचदशक का भी इस्तेमाल करते हैं।

महारसोनपिंड—लशुन १००+तिल ५० इसका उत्तम मर्दन करके उसमे तक्र ४ प्रस्थ मिलाकर निम्न प्रक्षेप द्रव्य मिला ले—त्रिकटु, जीरक, चातुर्जात, अजवायन, पचलवण, शर्करा, घृत, तिल तैल, यष्टिमधु। बाद मे ये मिश्रण वन्द करके धान्यराशि मे १२ दिन तक रखने के बाद उसको छानकर १-२ कर्ष मात्रा मे रोगी को दे सकते हैं। —योग रत्नाकर

तैल—बृहत्सैंधवादि तैल का उपयोग आभ्यतर, बाह्यत. और वस्ति के लिए करते हैं।

अवलेह—खण्डशुण्ठ्यावलेह, भल्लातकावलेह, मेथिका पाक लशुनपाक, सौभाग्यशुंठिपाक, एरण्डपाक, शुंठिपाक आदि का योग्य मात्रा मे उपयोग होता है।

कल्प—सिंहनाद गुग्गुल, हरीतकी गुग्गुल का ४ से ७ माशा तक उपयोग अच्छी तरह से होता है।

पाचकेंद्र रस—रससिंदूर १, शुद्ध हरताल १, शुद्ध मनःसिल १, कस्तूरी १, सुवर्णभस्म १/२, धत्तूर वीज २, वछनाग २, कुचला २ इस मिश्रण को कुमारी और तुलसी स्वरस की भावना दे। मात्रा १/२—१ गुंज।

आमवात मे हृदयस्थान का रक्षण करने के लिए इस कल्प का प्रथमावस्था मे १/४—१/२ गुंजा तक उपयोग होता है। सुवर्णभस्म से हृदय को बल मिलता है और वछनाग, कस्तूरी इस उष्ण, व्यवायी, विकासी द्रव्यो से आमपाचन अच्छा होता है।

समीर योगराज मिश्रण—समीरपन्नग १, योगराज गुग्गुल ८, वातविध्वंस ४ इसका मिश्रण करके निरामावस्था मे दें। मात्रा—६-१२, दशमूलारिष्ट के साथ।

जीर्णावस्था—जीर्णावस्था मे स्वर्ण वसत मिश्रण, स्वर्णयोगराज तथा गुभल्लातक हरीतकी वटी ४ से १२ गुंजा तक मात्रा देकर क्रम से लशुनपाक या दुध के साथ उपयोग होता है।

प्रकार	कल्प	मात्रा	काल	अनुपान
(१) आभ्यन्तरशमनौषधम्—				
आमावस्था	(१) सिंहनाद+वात विध्वस मिश्रण	४–७ गुन्जा	अन्तराभक्तम् ३ वारम्	उष्णोदक वा रास्नादिसप्तक क्वाथ
पक्वावस्था	(१) समीरयोगराज.	४–७ गुन्जा	अन्तराभक्तम्	उष्णोदकम् वा क्षीर
	(२) सिंहनाद गुग्गुल	४–७ गुन्जा	३ वारम्	महारास्नादि क्वाथ
	(३) भल्लातकावलेह	१/२–१ कर्षः	अपानकालम् २ वारम्	क्षीरम्



प्रकार	कल्प	मात्रा	काल	अनुपानम्
जीर्णावस्था	(१) स्वर्ण वसत मिश्रण	१–२ माष	अन्तराभक्तम् ३ वारम्	क्षीरम्
	(१) स्वर्णयोगराज.	२–४ गुन्जा	"	महारास्नादि क्वाथ
	(३) एरण्ड पाक	१–२ कर्ष	स्वप्नकालम् १ वार	क्षीरम्
	(४) लशुनपाक	१/२–१ कर्ष	प्रात १ वारम्	क्षीरम्
(२) पंचकर्मोपचार—				
विरेचनम्	एरण्ड स्नेह	१–५ कर्ष.	प्रातः १ वारम्	गुडूचिशुण्ठीक्वाथ
निरूह	दाशमूलिक	१॥ प्रस्थः	" "	—

३—बाह्यशमनोपचार—

प्रकार कल्प

स्वेदनम्— (१) वालुका स्वेद (२) अवगाह स्वेद. (३) निर्गुण्डी-वाष्प स्वेद ।

लेप — (१) लेपगुटिका लेप (२) भल्लातक तैल प्रतिसारणम् (३) लताकरंजलेप. ।

स्नेहनम्—(१) विष गर्भ तैलम् (२) वेदनाहर तैलम् (३) सुकर व्याघ्री वसा

४—पथ्यापथ्य—

(अ) पथ्यम् आहार—अन्नवर्ग. (१) यव, कुलत्थ, श्यामाक, कोद्रव, रक्तशालि। शाकवर्ग (१) वास्तुक—शिग्रु, पुनर्नवा, कारवेल्ल, पटोलशाक, दुग्धवर्ग—(१) लशुन सस्कृत, तक्र आर्द्रक सस्कृतम् वा, मासवर्ग.—(१) जागलमासम्, पानीयवर्ग—(३) उष्णोदकम् ।

(आ) अपथ्यम्—आहार-१ दधि, २. मत्स्या, ३ गुड, ४ क्षीरम्, ५ माषान्नम्, ६ दुष्ट नीरम्, ७. विरुद्धान्नम्, ८ असात्म्यान्नम, ९ विषमान्नम्, १०. गुरु—अभिष्यन्दि अन्नम् ।

विहार—१, वेगरोध, २. जागरणम्, ३ पूर्व-वात. ।

पथ्यापथ्यविचार—पथ्य

रूक्ष स्वेदोलंघन स्नेहपान
बस्तिर्लेपो रेचनं पायुवर्ति. ।
अब्दोत्पन्ना शालयो ये कुलित्था
जीर्णं मद्यं जांगलनां रसाश्च ॥
वातश्लेष्मघ्नानि सर्वाणि तक्र
वर्षाभूश्चैरण्डतैल रसोन ।
पटोलपत्रुरककारवेल्ल वार्ताकशिग्रूरपि तप्तनीरम् ॥
मन्दारगोकण्टकवृद्धदारु
भल्लातक गोजलमार्द्रक च ।
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि
स्युश्चामावाते सुतरा हितानि ॥

रूक्ष स्वेद, लघन, स्नेहपान, वस्ति, लेप, रेचन, गुदवर्ति प्रयोग, जून चावल, जून कुलिथ मद्य, जगल के हरिणादि प्राणियो के मास क रस, वात और कफनाशक सब पदार्थ, पुननवा, एरण्ड का तैल, लसुन, जलपिप्पलि, करेले, वार्ताक, गरम पानी, मंदार, गोखरू, वृद्धदारु, भल्लातक, गोजल, आर्द्रक, कटु और तिक्त रस और सब दीपन करने वाले पदार्थ—ये सब आमवात वाले रोगी के लिए पथ्य है ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरोपोदिका माषपिष्टकम् ।
दुष्टनीर पूर्ववात विरुद्धान्यशनानि च ॥
असात्म्य वेगरोध च जागर विषमाशनम् ।
वर्जयेदामवातार्तो गुर्वभिष्यन्दिकानि च ।।

दधि, मत्स्य, गुड, क्षीर, उपोदिका, माषके पदार्थ, खराब पानी, पूर्वदिशा को बहने वाला वारा, जडान्न, मलमूत्रादि वेगो का अवरोध, रातको जागरण करना, विषम पदार्थों का भक्षण और जड़ व अभिष्यन्दी पदार्थ (अर्थात् स्रोतसो को अवरोध करने वाले) पदार्थ, ये सब आमवात रोगी को अपथ्यकर है ।

आमवात चिकित्सोपाय:

श्री ज० द० वैद्य, निवाली रोड, मोती बाग, सेंधवा [म०प्र०]



१. बृहत् सिंहनाद गुग्गुल—त्रिफला के क्वाथ से शुद्ध किया हुआ गूगल ६४ तोले को सरसो का तेल मिलाकर कूटे और कूटकर तेल ६४ तोले मिला देवें। फिर सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आवला, नागरमोथा, वायविडग, देवदारू, गिलोय, चित्रकमूल, निसोथ, दन्तीमूल, चव्य, जिमीकन्द, मानकन्द, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक इन १८ औषधियो का कपडछन चूर्ण ४-४ तोले तथा १० तोले जमालगोटे के बीजो की शुद्ध मीगी का चूर्ण मिलाकर कूट, त्रिफला क्वाथ मे १२ घण्टे खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवें। मात्रा—१ से ४ गोला प्रात काल जल के साथ देवे।

उपयोग—यह गुग्गुल आमवात, सन्धिवात, कम्पवात घुटनो मे दर्द आदि रोगो में लाभदायक हैं। आमवात के लिए यह औषधि आशीर्वाद के समान हैं। इसके सेवन से आमविष जल जाता है। आतो मे मल का सग्रह नही होता है और रोग के आक्रमण का दमन हो जाता है। आमवात के तीव्र विकार एव जीर्ण विकार मे भी यह औषधि हितकारक है।

२ अश्वगन्धादि गुग्गुल—विधि—असगन्ध और शुद्ध गूगल ३०-३० तोले, एरण्डबीज (छिल्के अन्तर्जिह्वारहित) १५ तोले, सज्जीखार [सोडावाई कार्ब] और उसारेरेवन्द १०-१० तोले लेवे और सोंठ ५ तोले लेवे। गूगल को एरण्ड तेल मे मिलाकर कूटे। पश्चात् एरण्ड गिरी का कल्क मिलावे। पश्चात् शेष औषधियो का कपड़छन चूर्ण थोडा-थोड़ा डालकर कूटे और सबको एकजीव करके २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवें।

मात्रायें—१ से ३ गोली दिन मे दो बार महारास्नादि क्वाथ या निवाये जल से देवें।

सूचना—जिनको पहले पेचिश हो गई हो, उनको मात्रा पहले बहुत कम देवें या न देवें। एव सगर्भा को भी यह औषधि नही देनी चाहिए।

यह अश्वगन्धादि गुग्गुल आमवात को दूर करने के लिए विशेष हितकर है। आमवात रोग का विष धातुओं मे लीन हो जाने पर बार-बार आजीवन दुःख पहुचाता है। वर्षाऋतु मे या अपचन होने पर एव मधुर या तीक्ष्ण पदार्थों के सेवन करने से आक्रमण करता है। मन्द ज्वर, मलावरोध, रात्रि मे स्वेद आना पीडा स्थान बदलते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसे रोगियो को पूर्व ही इस का भास होने पर यदि इस गूगल का सेवन कराया जाय, तो रोगाक्रमण का दमन हो जाता है। अश्वगन्धादि गुग्गुलु मे उसारेरेवन [Cambogia] मिलाया है, वह गर्सिनिया हैनबुरई [Garcinia Hanbaryi] का गोद है। चीन से यहा आता है। यह तीव्र विरेचक है। मात्रा १ से २॥ रत्ती की है। यह तत्काल आमवात वेदना का दमन करता है।

३. आम वातेश्वर रस—विधि—शुद्ध गन्धक और ताम्र भस्म २-२ तो०, शुद्ध पारद और लोह भस्म १-१ तो० लेवे। पहले कज्जली बनाकर, पश्चात् क्रमश एरण्ड पत्रों के रस की ७ भावना दे। पश्चात् पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोठ) के क्वाथ की २० भावना देकर सूर्य के ताप मे बार-बार सुखावें। इसी तरह गिलोय स्वरस की १० भावना दे। तत्पश्चात् सब चूर्ण के समान सोहागे का फूला, इससे आधा विडलवण, कालीमिर्च और इमली का क्षार, दन्तीमूल १ तोला. सोठ, कालीमिर्च पीपल, हरड़ बहेड़ा, आवला और लोग, ये ७ औषधियां ६-६ माशे मिलाकर मर्दन कर लेवें।



मात्रा—२ से ४ रत्ती दिन में दो बार २-३ माशे मक्खन या घी में मिलाकर फिर ऊपर से निर्गुण्डी का रस या एरण्ड मूल का क्वाथ पिलावें। आमवात रोग में महारास्नादि क्वाथ से आश्चर्यप्रद प्रभाव देखा गया है। आर्द्रक स्वरस में आम वातेश्वर की १-२ रत्ती की मात्रा लेकर ऊपर से क्वाथ पिलावें। मूत्र की कमी होने पर महारास्नादि क्वाथ में २ से ६ रत्ती तक यवक्षार मिलाकर पिलाने से ३-४ मात्रा में ही लाभ होता है। इस आमवातेश्वर रस का विष्णु भगवान ने निर्माण किया है। यह रस अत्यन्त अग्निप्रदीपक और आमवात को सम्पूर्ण उपद्रव सहित नष्ट करने वाला है। यह रस आमवात को शीघ्र ही नष्ट करता है। आमवात के रोगी को विशेषतः मधुर पदार्थ का त्याग करना चाहिए।

४. वातगजेन्द्रसिंह रस-विधि—अभ्रक भस्म, लोह भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, शतपुटी नागभस्म, सोहागे का फूला, दूध में भलीभांति शुद्ध किया हुआ वच्छनाग, सैंधा नमक, लौंग, भुनी हींग और जायफल ये १२ औषधियां १-१ तोला तथा त्रिसुगन्धी (दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आवला) और जीरा, ये ७ औषधियां ६-६ माशे लें। पहले पारद, गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् भस्म, वच्छनाग, सोहागे का फूला और शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण क्रमशः मिलाकर घी गुवार के रस में ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली दिन में २ बार दूध या रोगानुसार अनुपान के साथ।

यह वात गजेन्द्र सिंह रस समस्त प्रकार के वात रोग को नाश करती है। आमवात में प्रायः हृदय पर आघात पहुंचता है और वच्छनाग भी हृदय को शिथिलता लाता है। यह दोष इस रस में नहीं है। इस रस में वच्छनाग महावात विध्वसन की अपेक्षा अति न्यून मात्रा में है तथा लोह भस्म अभ्रक भस्म आदि हृदय-पौष्टिक औषधियों का मिश्रण होने से यह आमवात पर निर्भयतापूर्वक व्यवहृत होता है। इस रसायन को आमवाताधिकार में ही लिखा है। आमवात की तीव्रावस्था में ज्वर रहता है। कभी कभी ज्वर १०२ अंश से १०६ अंश डिग्री तक बढ़ जाता है। ऐसे समय पर हृदय को बाधा न पहुंचाते हुए रस रक्तादि धातुओं में लीन आम विष को जलाकर ज्वर को उतारना चाहिए और औषधि विरेचन के साथ देनी चाहिए, तीव्र प्रकोप में दोष उत्थान रहने से उसे विरेचन द्वारा बाहर निकालना पड़ता है। अतः ऐसी अवस्था में इस रस के साथ सोंठ के क्वाथ सह एरण्ड तेल या निसोत का क्वाथ देना चाहिए। एवं रोगी को केवल दूध पर या इनके पेय पर रखना चाहिए।

जीर्ण विकार में रस रक्तादि धातुओं के भीतर लीन हुए आमविष को जलाकर रक्त प्रसादन करना और पचन क्रिया को बढाना, ये दो मुख्य कार्य रहते हैं। आमवात के आमवृद्धि सह उत्पन्न वातरोग की नूतनावस्था में महावात विध्वसन रस जिनको न दे सकें, उन रोगियों को वात गजेन्द्रसिंह रास्ना अर्क या अन्य वातशामक अनुपान के साथ दिया जाता है। जीर्ण आमवात में आमवातेश्वर उपयोगी है परन्तु उसमें क्षार अधिक है। तीव्र आमवात में आमवात प्रमथिनी वटी भी हितकारक है, उसमें सोरा और अर्क मूलत्वक् आने से रक्तस्थ विष को बाहर निकालने में विशेष हितकारक है, तथापि ज्वर की प्रधानता होने पर इस रस में ज्वरघ्न औषध (वच्छनाग) की योग्य मात्रा और योग्य मिश्रण सह योजना की है। अतः ज्वर को दूर करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

(५) विन्टर ग्रीन मर्दन (Liniment Methylis, Salicylatis)

विधि—पिपरमेंट का तेल ५ भाग, नीलगिरी तेल १० भाग, कर्पूर तेल २५ भाग और विण्टर ग्रीन तेल ६० भाग मिलाकर १०० भाग पूरा करे।

उपयोग—इस औषधि की मालिश करने पर आमवातिक शूल का तुरन्त शमन होता है जिन जिन संधि स्थानों पर या अन्यत्र वातनाडी में वेदना हो, वहां पर भी मालिश करके गरम कपड़ा बांध देने से वेदना का निवारण होता है।

६. वातशूलान्तक मलहम (Ung methylis salicylatis) विधि—विण्टरग्रीन तैल ५० भाग, पिपरमेंट के फूल १० भाग, नीलगिरी तेल २॥ भाग, काजुपुटी तेल



२॥ भाग, सफेद मोम (White bees'wax) २० भाग और ऊनकी चर्बी (Lanoline) १५ भाग लें। पिपरमेंट के फूल को विण्टरग्रीन मे मिलावें, मोम को गरम करके चर्बी मिला लेवे। उष्णता कम होने पर और औषधियाँ मिलाकर बोतलो मे भर लें। यह बाम आमवातिक शूल, गृध्रसीशूल, कटिशूल, पार्श्वशूल आदि विकारो पर तत्काल लाभ पहुचाता है।

यह बाम अधिक तेज है। इस बाम वाला हाथ आंख को लग जाने पर जलन होती है अत सावधानी से प्रयोग करें।

७. वातान्तक बाम—द्रव्य—पिपरमेंट के फूल ३॥ तो०, विण्टरग्रीन तेल २॥ तो०, वेसलीन सफेद ७५ तो०; मोम ८॥। तो० ले।

विधि—पिपरमेंट को तेल मे मिला के रख लें। वेसलीन और मोम को मिला के कडाही मे पिघलाकर नीचे उतार लेवें। उष्णता कम होने पर इसमे उक्त पिपरमेंट मिश्रण मिला के अच्छी तरह चला लेवें। फिर निवाये को ही शीशियो मे भर लेवे।

यह बाम—आमवातज वेदना, तीक्ष्ण शूल, वातशूल, तीव्र सिर दर्द, मधुमक्षिका, ततैया आदि के दश से उत्पन्न शोथ, सधिशोथ आदि को दूर करता है। आमवात और अन्य पीडित स्थान पर मालिश करने से त्वचा पर चुनचुनाहट होती है। फिर स्वेद आकर दर्द दूर हो जाता है। इस बाम का भी सावधानी से प्रयोग करें।

८. लोह गुग्गुल—विधि—हरड़, बहेडा, आवला, नागरमोथा, सौठ कालीमिर्च, पीपल, वायविडङ्ग पुष्कर मूल, बच, चित्रक मूल और मुलहठी ये १२ औषधियाँ ४-४ तोले, लोह भस्म और शुद्ध गूगल ३२-३२ तोले लेवे। सबको यथाविधि मिला के घृत डालकर अच्छी रीति से कूट के ४८ तोले शहद मिलाकर रख लें।

मात्रा—१-१ माशा गुनगुने जल के साथ सेवन करे। इस औषधि के सेवन से आमवात शीघ्र ही नष्ट होता है। यह आमवात के लिये हितकर है।

७ सिंहास्यादि क्वाथ—विधि—अडूसे की जड, लघु पञ्चमूल की पाचो औषधियाँ, गिलोय, एरण्ड मूल और गोखरू इन ६ औषधियो को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—२-२ तोले का क्वाथ कर उसमे एरण्ड तेल २-२ तोले, भुनी हींग १ रत्ती और ४ रत्ती सेंधानमक मिलाकर प्रात काल पिलाते रहे।

यह एक गुणकारी औषधि है। इस क्वाथ के सेवन से आमवात दूर हो जाता है।।

८. अमृतादि घृत—द्रव्य—गिलोय, मुलहठी, मुनक्का, हरड, आवला, सोठ, खरेंटी, वासापत्र, अमलतास का गूदा, पुनर्नवा, देवदारू, गोखरू, कुटकी, शतावर, पीपल, गम्भारी फल, रास्ना, तालमखाना, एरण्डमूल, विधारे की जड, मोथा, नीलोफर।

विधि—उक्त २३ औषधियों को समान प्रमाण मे मिलाके १६ तोले भर लेकर कूटके पत्थर पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लेवे। फिर इस कल्क को १ प्रस्थ (६४ तोले) गोघृत, १ प्रस्थ आवलो के स्वरस तथा त्रिगुण (३ प्रस्थ) जल मे मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करले। फिर कल्क से चतुर्गुण (१८४ तो०) गोघृत तथा १८४ आवलो का रस, ३८४ तोले दूध मिलाकर सिद्ध करें।

मात्रा—१-१ तोला भोजन के साथ दिन मे दो बार देवे। इस घृत के सेवन से आमवात शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

६. ग्रहणी वज्र कपाट—विधि—पारद भस्म (रस सिंदूर), अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, जवाखार, सोहागे का फूला, वच और काली अरणी का मूल, इन ७ औषधियो को समभाग ले पहले पारद भस्म, अभ्रक भस्म और गन्धक को मिलावे। फिर सोहागे का फूला, जवाखार तथा अन्त मे वच और अरणी का चूर्ण मिलावे। पश्चात् काली अरणी के क्वाथ, भागरे का रस, नीबू का रस तीनो के साथ ३-३ दिन मर्दनकर गोली बनाकर सुखा लेवे। इसे कढाही मे रख उस पर शराब ढक, गुड चूने से दृढ सधि लेप कर, मंदाग्नि पर १॥ घन्टे तक स्वेदन करे। स्वाङ्गशीतल होने पर समान वजन मे अतीस और उतना ही मोचरस का चूर्ण मिलावे। फिर भाग के क्वाथ की ७ भावनायें दे।

प्रत्येक भावना देने पर अच्छी तरह सुखा के फिर दूसरी भावना देवे। अन्त मे २-२ रत्ती की गोलिया बनावे।



वक्तव्य—रस योग सागर मे भाग की भावना के स्थान पर कैथ और भांग की ७ भावनायें देने का एव भावना देने के पश्चात् धाय के फूल, इन्द्र जौ, नागरमोथा, लोध्र, वेलगिरी, गिलोय इन ६ औषधियो के रस या क्वाथ की भावना देने को लिखा है परन्तु हमे भाग की भावना के पश्चात् इन सव भावनाओं की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। १ से २ गोली तक दिन मे २ बार शहद के साथ या मट्ठे के साथ देवें। रस योग सागर में चित्रकमूल, सोठ, वायविडङ्ग, वेलगिरी, सैंधानमक इन सबके कपडछन चूर्ण को गुनगुने जल के साथ देने का विधान किया है। यह रस ग्रहणी मे उत्पन्न आमवात को नष्ट करता है।

१० भीम वटी—विधि—रससिन्दूर या भिलावे से पकाया हुआ हिंगुल रसायन और शुद्ध कुचला २-२ तोले ले। लोहभस्म ३ तोले, भुनी हीग ४ तोले, कालीमिर्च ५ तोले, एलुवा ६ तो० और शुद्ध गूगल ७ तो० ले। गूगल को छोड़ शेष सव औषधियो का वारीक चूर्ण करे। गूगल को एरण्ड स्नेह मिलाकर अच्छी तरह कूटे। फिर चूर्ण मिलाकर चित्रक मूल के क्वाथ मे ३ दिन मर्दन करवाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१-१ गोली, सुबह शाम जल, अदरक का रस या त्रिकुटा और अजवायन के चूर्ण अथवा दूध से दें।

उपयोग—यह भीम वटी आमवात को नष्ट करती है। आमवात रोगो मे अग्नि प्रदीप्त करने और आम को जलाने के लिये यह वटी अति हितावह है।

११ ऐरण्ड का तेल २ या २॥ तोले देवें।

१२ सोनामाखी २॥ तोले, सोठ १ मासा, लवग (लौंग) १ मासा लेकर ३० भार पानी (जल) मे डालकर चतुर्थांश क्वाथ करके ३ से ५ तोले तक देवें या त्रिफला का क्वाथ १ तोला एरण्डी के तेल मे देवे।

१३ अजमोद, वायबिडङ्ग, सैंधव, देवदार, चित्रक, पीपलामूल, सौंफ, पीपल, कालीमिर्च ये १-१ भाग, हरीतकी ५ भाग, विधारा १० भाग, सोठ १० भाग सभी के चूर्ण करके दोनो समय आधा-आधा तोला लेकर गुनगुने पानी मे या गुड मे देवे। २१ दिन तक। इससे आमवातसम्बन्धी सभी प्रकार की पीड़ा शीघ्र ही नष्ट होती है।

१४. शुद्ध गन्धक ८ तो०, शुद्ध गुग्गुल (गुग्गुल) ८ तो० त्रिफला का क्वाथ ७२ तोले, एरण्डी का तैल ७२ तोले सभी को मिलाकर लोहे की कड़ाही मे गाढा होने तक रखें पश्चात् १॥ माशे वजन तक की गोलियाँ बना लेवें। यह गोलियाँ दोनो समय १-१ गोली घी, शक्कर या शहद के साथ देवें।

१५. असगंध, सोंठ बारीक कूटकर उसका चूर्ण बनाकर दिन मे ३ बार देवें। २१ दिन तक।

इस चूर्ण से आमवात शीघ्र नष्ट होता है।

१६ दशमूल, सोंठ, गुडबेल इनका क्वाथ करके इसमें एरंडी का तेल मिलाकर देवें। ७ या १४ दिन तक।

१७. सैंधव, जवाखार, अजवायन ये २-२ भाग सोंठ ५ भाग, हरड १० भाग इनका महीन चूर्ण करके दही या गोमूत्र या शहद इनमे से किसी एक मे देवें। यह आमवात के लिए विशेष गुणकारी है।

१८ ऐरण्डी के तेल मे हरड का चूर्ण मिलाकर दिन मे २ बार देवें। आमवात विकार शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

१९ एरण्डी का तेल, गूगल समभाग लेकर इन दोनों को मिलाकर इसमें शुद्ध गन्धक, हरड़ा, बहेड़ा, आवले इन सभी का चूर्ण मिला १-१ तोले की गोली बनाकर यह गोली दोनो समय जल के साथ देवे। इससे आमवात का नाश होता है। यह सैकड़ों वार की अनुभूत-औषधि है।

२० महुवे के सूखे फूल १०२४ तोले, वायविडंग ५१२ तोले, चित्रकमूल २५६ तोले, भिलावा १२८ तोले और मजीठ १२ तोले लें। भिलावे के ४-४ टुकड़े करके मिलावे। शेष सभी का जौकुट चूर्ण करे। सबको २०७२ तोले जल मे मिलाकर क्वाथ करे। तीसरा हिस्सा (१०२४ तो०) जल शेष रहने पर उतारकर छान लो। क्वाथ करने के समय शरीर को वाष्प न लगे। यह सावधानी रखें। क्वाथ शीतल होने पर शहद १२८ तोले मिलावे। फिर उसे छोटी इलायची, नेत्रवाला, अगर और चन्दन के कल्क से अन्दर लिपे हुए घड़े मे डाल देवें और मुख मुद्राकर १ मास तक रहने दे। आसव तैयार होने पर छानकर बोतलो मे भर लेवे। यदि १५ दिन के पश्चात् १२८ तोले शहद और मिला दिया जाय तो आसव विशेष गुणकारी बनता। मात्रा—१।-१। तोला, दिन मे दो बार, समान जल मिला-

कर भोजन करने के बाद देवें। इस आसव जीर्ण आम-मे लीन दोषो को जला कर देह को नीरोग बना देता है।

२१. रसोन पिण्ड—विधि—एक पका पेठा ५ सेर वजन का लेकर उसके डण्ठल की जगह चाकू से काट छेद कर भीतर से बीज आदि हो सके उतने निकाल देवे। फिर एक पोथी लहसुन छिलका और बीच का अंकुर दूर किया हुआ ४० तोले लेकर उस पेठे के भीतर भर देवे। पश्चात काटा हुआ डण्ठल ऊपर लगा कपड़मिट्टी करें। डण्ठल वाला भाग ऊपर ही रहना चाहिए। फिर गोबर की अग्नि मे पुटपाक रीति से पका लेवें। जब कपडमिट्टी ऊपर से लाल प्रतीत होने लगे, तब पेठे को बाहर निकाल लेवे। शीतल होने पर कपडमिट्टी दूर कर लहसुन सह पेठे को कूट (बीज निकाल) कर कल्क बनाले। पश्चात् कलाई की हुई पीतल की कड़ाही मे २० तोले तिल तैल डालकर गरम करे। उसमे छौंक रूप से हीग १ तोला तथा दाल-चीनी के छोटे-छोटे टुकड़े, जीरा, राई और लौंग २॥-२॥ तोले डाले। फिर पेठे का कल्क डाल अच्छी तरह चलाकर पकावे। शीतल होने पर सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, अकर-करा, दालचीनी, तेजपात, काला जीरा, अजवायन, पीपला-मूल, धनियाँ और जीरा इन ११ औषधियो का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला तथा सैंधा नमक ५ तोले (या कम ज्यादा) डालकर अमृतबान मे भरलें।

मात्रा—६ माशे से २ तोले तक खिलाकर ऊपर से वाय विडङ्ग और एरण्ड मूल का क्वाथ पिलावे। यह औषधि जीर्ण आमवात विकारों पर लाभ पहुचाती है।

२२. संजीवनी अर्क—अफीम ४ ड्राम, छोटी इलायची के दाने १ औंस, जायफल २ औंस, कपूर ४ औंस और रेक्टिफाइड स्प्रिट २० औंस लेवें। इन सबको बोतल मे बन्दकर १ सप्ताह के पश्चात् फिल्टर पेपर से छान ले और जितना स्प्रिट कम हुआ हो उतना और मिला लेवें।

मात्रा—५ से १५ बूंद, दिन में तीन बार १-१ औंस जल या शक्कर के साथ देवें। जीर्ण आमवात मे यह गुण-कारी है।

आमवात (Rheumatism) हो जाने के पश्चात् थोडा शीत लग जाने या शक्कर खाने पर कितने ही रोगियो को बार-बार कष्ट पहुचता है। हृदय मे विकृति, ज्वरोत्पत्ति देह, मे दर्द होता है। इस पर सौंठ के फाण्ट के साथ १५-१५ बूदें दिन मे ३ बार देने से जल्दी गुण प्रतीत होता है।

२३. आमवात प्रमथिनी वटी—विधि—कलमीशोरा, आक की जड़ की छाल, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक-भस्म इन ५ औषधियो को समभाग मिलाकर ३ दिन अमलतास क्वाथ मे खरलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावे।

मात्रा—१ से २ गोली, सुबह ६ मासे से १ तोले तक निसोत के क्वाथ के साथ तथा शाम को अदरक के रस और शहद के साथ देवें। यह औषधि आमवात, आमवातज रोग एव तीव्र आमवात मे जब विच्छू काटने के समान तीव्र दर्द होता हो तब, जीर्ण अवस्था मे व्यथा उत्पन्न होने पर यह व्यवहृत होती है।

सूचना—रोगी को गुड शक्कर के पदार्थ कम से कम खाना चाहिये। ठण्डी न लग जाय एव कब्ज न हो, यह सावधानी रखनी चाहिये।

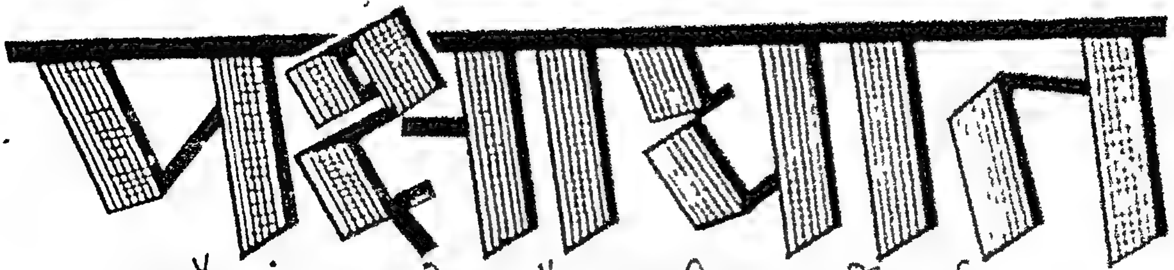
२४. लक्ष्मी विलास रस—विधि—अभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, कपुर, जायफल, जवित्री, विधारा के बीज, धतूरे के शुद्ध बीज, गाजे के बीज, विदारीकद, शतावरी, नागबला (गुल-शकरी), अतिबला (कघी), गोखरू, जल वेत के बीज, इन १२ औषधियो को १-१ तोला लें। पहिले पारद गन्धक की कज्जली करके अभ्रक मिलावे। पश्चात शेष काष्ठादि औषधियो के कपडछन चूर्ण को मिलाकर, नागर वेल के पान के रस मे ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलिया बनावें। १ से २ गोली दिन मे ३ समय, दूध, दही, शराब, शहद या अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

यह रसायन सभी प्रकार के आमवातो को नष्ट करता है। यह लक्ष्मी विलास रस आयुर्वेदीय औषधियो मे एक उत्कृष्ट और वीर्यवान औषधि है।

२५ समीरगज केशरी—विधि—शुद्ध हिंगुल, काली मिर्च, शुद्ध अफीम और शुद्ध कुचिला इन सबको समभाग मिलाकर अदरक के रस मे ६ घन्टे खरल करके १/४-१/४ रत्ती की गोलिया बना लेवे। इसमे हमने हिंगुल गुणवृद्धि के कारण लिखा है। १ से ४ गोली, नागरवेल के पान या जल के साथ। यदि कोष्ठ मे दूषित मल शेष हो तो उदर शुद्धि करने के पश्चात इस औषधि का उपयोग करें।

यह शीघ्र ही आमवात को नष्ट करता है। यह आम-वात के लिए विशेष गुणकारी औषधि है।





स्व. वैद्य पं. चन्द्र शेखर जैन शास्त्री न्यायायुर्वेदाचार्य

शरीर के वातवह तन्तुओ की संचालन शक्ति के नष्ट हो जाने से 'पक्षाघात' होता है। इस रोग को अंग्रेजी मे 'पैरालिसिस' Paralysis कहते हैं।

पक्षाघात दो प्रकार का होता है—

१ जनरल (General) अर्थात् सर्वाङ्गिक।

२. लोकल (Local) अर्थात् स्थानिक।

(१) सर्वाङ्गीण-पक्षाघात के भेद—

सर्वाङ्गीण पक्षाघात के चार भेद हैं—

१ पैराप्लीजिया (Paraplegia)

माइलाइटिस (Mylitis)

३ हेमीप्लीजिया (Hemiplegia)

४. इन्फेण्टाइल पैरालिसिस (Infantile paralysis)

(२) स्थानिक पक्षाघात के भेद—

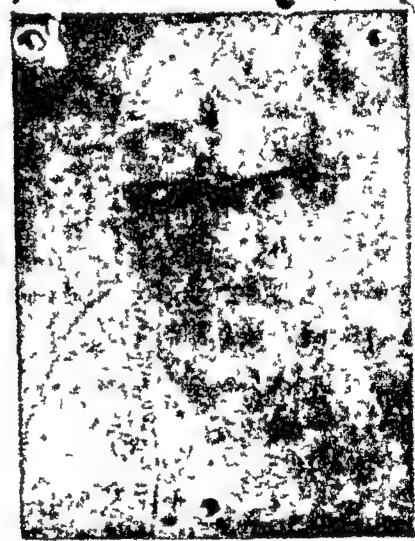
स्थानिक-पक्षाघात के भी ३ भेद हैं—

१ मुख-पक्षाघात (Facial-paralysis)

२. अगुलियो का पक्षाघात (Writers-paralysis)

३ पेशीक्षयजन्य पक्षाघात (Wastery-paralysis)

स्थानिक पक्षाघात मे अन्य और भी कई भेद हैं। जैसे डिफ्थेरिक-पैरालिसिस (Deptheric Paralysis) का आक्रमण गल नली पर होता है, जिससे खाद्य को आमाशय मे पहुचाने मे कष्ट होता है। इसी प्रकार हिस्टीरीकल-पैरालिसिस (Hysterical Paralysis) का आक्रमण स्त्रियो पर होता है, जिन्हें जरायु या डिम्ब-कोष की कोई न कोई बीमारी अवश्य रहती होगी। मरक्यूरियस-पैरालिसिस (Mercurious paralysis) पारा सेवन करने से, जब यह पारा फूट जाता है तब यह उपदंश रोगी को होता है। लैड पाल्सी (Lead-Palsy) यह पक्षाघात शीशा उठाने का काम करने वाले कम्पोजिटरो या शीशे की खान मे काम करने वाले मजदूरो को होता है। उनकी कलाई एवं अगुलियो पर ही पक्षाघात के लक्षण उत्पन्न होते हैं। रियुमैटिक पैरालिसिस (Rheumatic parlysis) मे वातरोग-गठिया के कारण हाथ-पैरों मे पक्षाघात होता है। पैरालिसिस एजिटैन्स का प्रभाव हाथ, पैर और माथे पर ही होता है, जिसके कारण हाथ, पैर, माथा थर-थर कापते र   है



सर्वाङ्गीण-पक्षाघात के लक्षण—

१. पैराप्लीजिया (Paraplegia)— यह शरीर के अधोभाग का लकवा है। इसमे कटि-प्रदेश से पैरो तक नीचे के अङ्ग-प्रत्यगो की असम्पूर्ण या सम्पूर्ण शक्ति नष्ट हो जाती है। यह शनैः शनै अज्ञानावस्था मे हमला करता है।

मूत्राशय, मलाशय एवं मलद्वार मे इस रोग के आक्रमण होने पर, रोगी को मल-मूत्र की निवृत्ति मे बडी कठिनाई होती है। यदि इस रोग का सामान्य असर हुआ हो तो पैरो का शक्ति सहसा नष्ट नही होती। इसमे सदा

कब्ज रहता है। वह वेग को अपनी इच्छानुसार संचालित नहीं कर सकता। रुग्णावस्था मे वेग स्वच्छन्दतया सचालित रहता है। कभी-कभी तापमान १०६ अंश या १०७ तक होकर पुन और अधिक उग्र होकर रोगी को मार डालता है।

मेरु-मज्जा पर वाह्याघात या दबाव पड़ने से भी सर्वांगिक पक्षाघात हो जाता है किन्तु उसमे रोग का आक्रमण पृष्ठ भाग में होता है। इसके बाद पुन' हाथ-पैर मे, मूत्राशय, मलाशय आदि पर निम्नाग लक्षण रूप होता है।

कभी-कभी मस्तिष्क मे रक्त के जमाव (Congestion of blood) से भी यह रोग हो जाता है।

२ माइलाइटिस (Mylities)–सर्वांगिक–पक्षाघात का दूसरा भेद है। इसे संस्कृत मे मेरुमज्जा प्रदाह) (Inflamation of the spinal marrow)कहते है। इस तरह की व्याधि उपदंश-ग्रस्त रोगियों को या अधिक भोग-विलासियों को या अधिक वीर्य -क्षय हो जाने से होती है।

अधिक शीत सेवन से, अधिक समय तक जल मे रहने वालों को या गीली मिट्टी मे सोने वालों को शनै शनै यह बीमारी असर करके पहिले क्रापिग-पाल्सी का रूप धारण करके पुन. मेरु-मज्जा प्रदाह के रूप मे परिवर्तित या परिवर्तित हो जाती है। इसके साथ-साथ कइयो मे मस्तिष्क झिल्ली-प्रदाह (Meningites) भी रहा करता है।

३ हेमीप्लीजिया (Hemiplegia)—सर्वाङ्गिक पक्षाघात का तीसरा भेद है। इसे सस्कृत मे (ऊर्ध्वांग-पक्षाघात) कहते हैं। इसका प्रभाव एक पक्ष के हाथ, पैर, मुख जिह्वा आदि पर होता है। कइयो की राय मे इसका आक्रमण दायें अ ग पर अधिक होता है तो कइयो की राय मे इसका आक्रमण बायें अङ्ग पर अधिकतर होता है। इसमे चेतनाशक्ति एकदम लुप्त हो जाती है। सुई चुभाने या चीटी काटने आदि का ज्ञान भी बिल्कुल नही रहता। जिस ओर के अङ्ग मे रोग का आक्रमण होता है, उस ओर का मुखमडल टेढा हो जाता है। स्मरणशक्ति का पूर्ण रूप से ह्रास हो जाता है। मन स्थिति भी खराब ही रहती है। आखो से आसू बहते रहते है। आघातित अङ्ग शनै शनैः सूखने लगता है।

इस रोग का प्रधान कारण मस्तिष्क के अन्दर रक्त-स्राव (Apoplexy) और मस्तिष्क धमनी के अन्दर रक्त-संचालन का बन्द होना है। अन्यान्य और भी कारण संभव हैं, जो मेरु-मज्जा प्रदाह से संबन्ध रखने वाले हैं।

४. इन्फेन्टाइल पैरालिसिस (Infantile Paralysis)—सर्वाङ्गिक पक्षाघात का चौथा भेद है। इसे संस्कृत मे 'बाल-पक्षाघात' कहते हैं। यह भी मेरु-मज्जा प्रदाहजन्य रोग है। यह प्राय ६-७ माह की आयु से लेकर ३-४ वर्ष तक के बच्चों मे हो जाता है। इसमें पहिले 'आक्षेप' होते हैं, जो २४ घण्टो मे पूर्णरूप से परिणत हो जाते हैं। रोगाक्रमण के समय तापमान १०० से १०३ डिग्री तक बढ़ता है। रोग का आक्रमण यदि बामांग मे होता है तो रोगी शीघ्र ही यमसदन का मेहमान बन जाता है।

कभी-कभी देखा जाता है कि आक्षेप उग्ररूप धारण करके शीघ्र ही पक्षाघात बन जाता है। तब मुख द्वारा रक्तस्राव होकर रोगी आक्षेपक स्थिति में ही पक्षाघात-ग्रस्त होकर स्वर्गीय हो जाता है। ऐसी स्थिति मे प्रायः विरले ही जीवित रह पाते हैं।

स्थानिक पक्षाघात के लक्षण

१ फेसियल-पैरालिसिस (Facial Paralysis)—इसे सस्कृत में 'मुख-पक्षाघात' कहते है। अर्दित भी इसी का नामान्तर है। यह आघात या मस्तिष्क की खराबी से बिगड़कर किंवा शीत-प्रकोप से होता है।

इसमे चेहरे की एक ओर की पेशियों पर ही हमला होता है, अत. चेहरे में ही रोग चिह्न पाये जाते हैं। आक्रान्त चेहरा बक्र या टेढ़ा हो जाता है। बोलना, हसना, खाना पीना, मुख का सचालन आदि सब बन्द हो जाता है। जिस ओर रोगाक्रमण होता है यदि उस ओर के नेत्र पक्ष्मो पर भी आक्रमण हुआ हो तो आख मिच-सी जाती है। रोगी के मुख से सदा लार बहा करती है। यह रोग प्राय दुश्चिकित्स्य या कष्टसाध्य होता है। यदि सद् वैद्य एव योग्य परिचारक मिल जाय तो सौभाग्य से ठीक भी हो जाता है।

२. राइटर्स-पैरालिसिस (writer's paralysis)—यह स्थानिक- पक्षाघात का दूसरा-भेद है। इसे संस्कृत मे 'लेखक—पक्षाघात' कहते हैं। इस पक्षाघात का आक्रमण उन पर होता है, जो निरन्तर लेखनकार्य किया करते



हैं। या सुई का काम करने वालो, कुरेसिये का काम करने वालो, तूलिया बनाने वालो, हृप-जुलाहो, चित्र बनाने वालो या कम्पोजीटरो को भी यह रोग होता है।

रोगाक्रमण सर्व प्रथम दाहिने हाथ के अगूठे पर होता है। फिर तर्जनी अगुली पर और समूचे हाथ की अंगुलियों एव हाथ मे ही हो जाता है। फिर लिखते समय, सोते समय, चित्र बनाते समय या कपोज करते समय हाथ की अगुलिया कांपने लगती है और काम नही हो पाता। ऐसी स्थिति मे विश्राम करने से आराम भी मिलता है।

३ वेस्टेरी-पैरालिसिस (Wastery Paralysis)- यह स्थानिक-पक्षाघात का तीसरा-भेद है। इसे सस्कृत मे 'पेशीक्षय-जन्य पक्षाघात' कहते हैं। यह पेशीक्षय-कारण पक्षाघात मेरुमज्जा-प्रदाह के कारण आक्रांत-भाग की पेशियों को क्रमशः कृश एवं दुर्बल करता जाता है। यह इसका प्रधान लक्षण है।

रोगाक्रमण वडा धीरे-धीरे-धीरे होता है। सर्वप्रथम हाथ के ऊपरी-भाग या अगूठे पर रोगाक्रमण होता है। आक्रांत स्थल पर पहले-थोडी देर तक दर्द रहना चालू होता है और दर्द थोड़ी थोडी देर तक होता रहता है। इसमे उपसर्ग-उपद्रव शवै. शनै वढते हैं। पेशियो की अनुभव शक्ति (Sensation power) कम हो जाती है और रोग शरीर मे फैलने लगता है। जव तक यह रोग हाथो तक रहता है, तव तक तो चिकित्सा से साध्य है अन्यथा रोग-मुक्ति की सभावना नही होती।

हिन्दी मे इस रोग को 'लकवा' भी कह देते हैं।

पक्षाघात के विविध नाम—

१. पक्षाघात। २. पक्षवध। ३ एकागवात। ४. एकपक्ष-वध। ५ अर्धनारीश्वर-पक्षाघात। ६ अर्धांङ्ग पक्षाघात। ७ अर्धांग-वध। ८ एकाग रोग। ९. चेष्टावहनाड्याणुओ का विकार। १० अर्धांग वात।

पक्षाघात के भेद कारणजन्य विभिन्न नाम—

१. निम्नाग-वध। २ निम्नाग-पक्षाघात। ३. ऊर्ध्वांग-पक्षाघात। ४ मेरुमज्जा-प्रदाहजन्य। ५ वाल-पक्षाघात। ६. सौपुम्निक-पक्षाघात। ७ मुख-पक्षाघात (अर्दित)। ८ लेखकादि-पक्षाघात-स्त्र. पेशीक्षय-जन्यपक्षाघात। १० गलनली का पक्षाघात। ११ योषापस्मारज-पक्षाघात। १२. पारदविकार जन्य पक्षाघात। १३ नागधातुज-पक्षाघात। १४ गठियाजन्य पक्षाघात। १५ आशिक शून्यता। १६ कम्पमय पक्षाघात। १७ रक्तचापाधिक्यजन्य पक्षाघात। आदि-आदि।

अग्रेजी मे भेदानुसार पक्षाघात के विभिन्न-नाम—

१. Paraplegia पैराप्लीजिआ (शरीर के अधोभाग का पक्षाघात)
२ Mylitics माइलाइटिस (मेरु-मज्जा-प्रदाहजन्य)
३. Hemplegia हेमीप्लीजिमा (ऊर्ध्वांग-पक्षाघात)
४ Infantile-paralysis इन्फेन्टाइल (बाल-पक्षाघात)
५. Facial-paralysis फेसियल (मुख-पक्षाघात या अर्दित)
६ Writers-paralysis राइटर्स (लेखक-पक्षाघात)
७. Wastery-paralysis वेस्टेरी (पेशीक्षयजन्य पक्षाघात)
८. Diptheric-paralysis डिफ्थेरिक (गलनली-पक्षाघात)
९. Hysterical-paralysis हिस्टेरिकल (योषापस्मारज-पक्षाघात)
१० Mercurious-paralysis मर्क्यूरियस (पारद-जन्य-पक्षाघात)
११. Lead-palsy लीड-पाल्सी (शीशाजन्य-पक्षाघात)
१२ Rheumatic paralysis रयूमेटिक (गठिया-जन्य-पक्षाघात)
१३. Paralysis पैरालिसिस (पक्षाघात)
१४. Partial-paralysis पार्शियल (आशिक-त्वक्शून्यता)
१५ Erbs-paralysis एर्ब्स (हाथ के ऊपर वाजू का पक्षाघात)

इनके अतिरिक्त

१. शेकिंग-पाल्सी (कपनमय)
२. पार्किंसन्स-डिसीज
३. Paralysis Agitans (पैरालिसिस एजीटेन्स)
४ Haemoralgia हीमोरेल्जिआ
५ Hypertention Haemoralgia (रक्तचापाधिक्यजन्य-पक्षाघात)

आदि नाम भी पाये जाते हैं।

यूनानी-चिकित्सक इसे—

१ फालिज। २ तमुन्नुजी-फालिज। ३ इस्तरखाई फालिज। आदि कहते हैं।

पक्षाघात हो जाने के विभिन्न कारण

१ अत्यधिक मानसिक परिश्रम, चिन्तादि।
२ ग्राम्यकर्म का अत्यधिक उपयोग।
३, धातुक्षीणता एव रक्ताल्पता।
४ जोर से भाषण-प्रवचन (दैनिक)।
५ मस्तिष्क मे घातक प्रहार-चोट लगना या मस्तिष्क का अर्बुद।
६ सिर मे वेहद जोर का दर्द बना रहना।
७ मस्तिष्कावरण-प्रदाह या मेरु-मज्जाप्रदाह।
८ उपदंश के कारण रक्तवाहिनियो एव वातवाहिनियो का दूषित हो जाना।
९ मानसिक-आघात।
१०. विष-प्रकोप या विषैले तत्वो का प्रवेश।
११ वायुभूयिष्ठ शीतल-पदार्थो का सेवन।
१२ विषमाहार-विहार एव अत्यधिक व्यायाम।
१३ वेगावरोध १४ रक्तचाप या रक्तभाराधिक्य।
१५ सामर्थ्य से अधिक श्रम। या तेज सवारियो मे अधिक दौड।
१६. नाडी-पेशी-दौर्बल्य। अथवा पेशी क्षय।
१७ मर्म-प्रदेशो पर साघातिक चोट लगना।
१८ मस्तिष्क या रीढ की विविध बीमारिया।
१९ स्नायु के वातिक रोग एव धमनी-काठिन्य।
२० डिफ्थेरिया (कठ-कूपप्रदाह ज्वर) होना।
२१ गठिया (रुमेटिज्म) हो जाना।
२२. योषापस्मार-(हिस्टेरिया हो जाना।
२३ स्नायु या मासपेशियो मे शीशे व पारे का असर।
२४ मस्तिष्क के ज्ञान-कर्मचेतना तन्तुओ का अवरोध।
२५ मेरुदण्ड पर व्रण या फोडे का दवाव पडना।
२६. अस्थि-भग या अस्थि का सधिस्थान से हट जाना।
२७ स्नायुओ मे जख्म या रोक का होना।
२८ मस्तिष्क द्वारा सचालित शक्ति का अवरुद्ध होना।
२९ श्वेत शीशा (lead) के कार्य सम्पर्क मे विशेष रहना
३० कठरोग, कठमाला, सकता, मृगी आदि रोगो मे से किसी रोग से अधिक ग्रस्त हो जाने के कारण।
३१ मस्तिष्क को रक्त पहुचाने वाली नली का फटना।
३२. सुषुम्ना एव मस्तिष्क के विभिन्न रोग होना।
३३. वायु का कुपित होकर आधे भाग का आश्रय लेना एव उस भाग की शिरा एव स्नायुओ का सकोच।
३४. वात-प्रकोप सन्धि-वन्धनो का शिथिल पडना।
३५. वातसस्थान एव स्नायुमण्डल की विकृति होना।
३६ शिर पर घातक चोट लगना, घोडे आदि से गिरना।
३७. रक्तचाप की अति वृद्धि से मस्तिष्क धमनी फटना।
३८ एस्प्रीन, सेरीडोन,मार्फिया, ब्रोमाइड, एण्टी-वायोटिक्स चिकित्सा आदि स्नायुमण्डल को शून्य एव सज्ञाहीन करने वाली औषधियो का अधिक प्रयोग।
३९ विभिन्न रोगो के उपद्रवो एवं दुर्व्यसनो के कारण।
४०. अवयव मे रूह की हलचल न होना या उस भाग के पट्ठों मे रसदार तरवूत का भर जाना।
४१ रूह का जारी न होना या चौडाई मे पट्ठे का कट जाना।
४२ रीढ के मास मे गर्म या ठडी सूजन का होना।
४३ अवयव मे रग की शक्ति का मार्ग उसके भिचने के कारण रुक गया हो तो।
४४ गर्दन के दाईं-वाईं ओर से किसी फिकरे का हटना।
४५. अधिक सर्दी के कारण पट्ठे का गाढा हो जाना। या अन्य किसी दोष के कारण ऐसा हो जाना।
४६ अत्यन्त लेखन, कपोजिंग, बुनाई, कताई के कारण।
४७ पारद के विकार के कारण।
४८ पोषक आहार का न मिलना या रूक्ष-अन्न का सेवन।
४९ शरीराग के वायु के एकदम क्षुभित हो जाने से।
५० रात मे अत्यन्त जगने से।
५१ सीधी तेज ठड सहने या अधिक वर्षा मे रहने से।
५२. शिरा, नस, स्नायुओ मे वायु की गति हो जाने से।
५३. अजीर्ण, अपचन के कारण वायु उठना। जैसे—दस्त रोकने से पेट का फल जाना, वायु का गोला उठना।
५४ हाथ-पैर या कमर-सन्धि (Joints) का पकडा जाना। किन्तु इनका मात्र वायु के साथ ही सम्वन्ध न होकर स्नायुओ, सन्धि, ज्ञानतन्तुओ, माशपेशियो, मज्जा-तन्तुओ के साथ भी सम्वद्ध होना।
५५. विरुद्ध औषधियो का अनर्गल प्रयोग करना।

५६ विना आराम लम्बा पथ जल्दी-जल्दी तय करना।
५७. रस रक्तादि सात धातुओ का अधिक क्षय हो जाना।
५८, खून पर अधिक दवाव (Pressure) रहना।
५६ मस्तक पर खून चढ जाना।
६० मस्तक एव रीढ पर तीव्र आघात होना।
६१ सुषुम्ना पर कारवंकल। ६२. अधिक मदिरापान।
६३. वृद्धावस्था में मस्तिष्क को पूर्ण पोषण न मिलना।
६४ साधारण खुराक-स्थिति मे भी अत्यधिक पठन, लेखन, चिन्तन किंवा मानसिक-व्यायाम करना।
६५. मस्तक की रक्तवाहिनी (धमनी) मे रक्त कण या जमा हुआ कण अटक जाना।
६६ तनाव, आन्त्र के तीव्र रोग, मूत्रपिण्ड की व्याधिया।
६७. कृमिरोग (Worms) कठमाला (Scrofula,) आतशक (Syphilis) और सकल (Apoplexy) का होना। या मृगी हो जाना।
६८ सोना-चादी आदि के धुयें के सन्मुख अधिक रहना।
६६ हृदय रोग, वृक्क रोग या वात रक्त का होना।
७०. आराम, स्नान, भोजन एवं दैनिक चर्या का अस्त-व्यस्त होना।

मुख पक्षाघात हो जाने के विभिन्न कारण—

१. ऊँची आवाज से चिल्लाना, पुकारना या भाषण देना।
२ सख्त चीजें (सुपारी आदि को) दातो से तोडना।
३. अत्यन्त हँसना, अत्यन्त मुह फाडकर जँभाई लेना।
४ अधिक भार उठाना (शक्ति से अधिक)।
५. गर्दन टेढी-वाकी कर विषम गीति से सोना वैठना।
६ रक्त की कमी हो जाना।
७ गर्भिणी, प्रसूता, वालत्व एव वृद्धता की क्षीणता।
८. नाक, ओठ, ललाट, चक्षु प्रभृति स्थानो मे वायु का कुपित हो जाना।
६ चेहरे के स्नायु मे किसी प्रकार का वैधानिक विकार।
१० कर्णमूल प्रदाह, गडमाला प्रभृति से स्नायु मे प्रदाह।
११. ट्रेन चलने मे मुंह को वाहर रखना व गालो पर तीव्र ठड लगने देना।
१२. पक्षाघातोक्त कारण भी इसके कारण हैं।
१३. स्नायुयिक दुर्वलता वालो के मुख पर ठडी हवा के अधिक झोके लगना।
१४. रात में चादनी मे सोना एवं ठडी हवा लग जाना।
१५ कान का जख्म हो जाना व एक तरह की हवा लगना।
२६. मुख पर अभिघात, चोट आदि लग जाना।

पक्षाघात होने के सामान्य पूर्वरूप—

१ वामाग या दक्षिणाग के स्नायुओं का शिथिल होजाना।
२ मन मे उत्साह न होना, काम करने की रुचि न होना।
३. ऊँचा झीना (सीढी) चढ़ने मे परेशानी और कष्ट।
४ रक्तचाप-वृद्धि एव दिमागी-गर्मी से परेशानी।
५ जिद्दी-झक्की स्वभाव एव उदासी।
६. भूख, नीद, कामशक्ति, उत्साह आदि का घट जाना।
७ शरीर के किसी भाग का झनझनाना, फड़कना, अधिक खुजाना।
८ जिस ओर पक्षाघात होने वाला हो उस ओर की नाक का विशेष खुजाना।
६ जिस ओर पक्षाघात होने वाला हो उस भाग की स्पर्शशक्ति कम पड जाना या एकदम बढ जाना, जैसाकि दीपक के बुझने से पूर्व होता है।
१०. कब्ज, दर्द का वढ जाना या सदा बने रहना।
११ गठिया, वातशूल प्रभृति वातविकारों का अड्डा जमा लना।
१२ शून्यता, सर्दी, स्पर्शज्ञान-हीनता, अचलता, हिला देने वाले झटके तथा सकला (Apoplexy)
१३ स्नायुवात एवं सुषुम्ना विकार।

मुख-पक्षाघात के पूर्वरूप—

१. पहिले मुख की हड्डियों मे दर्द प्रतीत होता है
२ मुख-त्वचा की स्पर्श-शक्ति कम हो जाती है।
२ मुख का आधा भाग वहुत फड़कने लगता है।
४. कभी मल गाढ़ा, कभी पतला उतरता है।
५ गाढा मल उतरना ऐंठने-खिचने वाले पक्षाघात होने का सूचक है।
६ पतलामल उतरना ढीला सुस्त कर देने वाला पक्षाघात होने का सूचक है।
७ रोगाक्रात मुखभाग भारी एव स्फीतियुक्त होता है।
८ चेहरे का रंग वदलना शुरू हो जाता है।

पक्षाघात के विभिन्न लक्षण

१. रोगाक्रांत भाग के स्नत, भुजा, पैर, स्नायु-नसें सूख कर सिकुड़ जाती हैं, टेढी व कमजोर पड जाती हैं।
२. हाथ, पैर, आखें, जाघ, उरु, मायल, कनपटी एवं गुह्यस्थान मे वेदना होती है।
३. स्मरणशक्ति ठीक नहीं रहती, सोते समय करवट नही बदल सकता, तकलीफ रहती है, नीद टूट-टूट जाती है।
४. शरीर का आधा भाग अत्यन्त शीतल होकर स्पर्शज्ञान एव हलन-चलनादि क्रिया रहित हो जाता है।
५. सन्धि बन्धन ढीले पड जाते है, अत वह भाग बेकार।
६ रोगाक्रात भाग से मनुष्य कुछ काम नहीं कर सकता।
७ आधा शरीर बेकाम-सा हो जाता है।
८ कभी-कभी आधे शरीर मे स्पर्शज्ञान भी नहीं रहता।
९. आधे अगो का हिलना-चलना भी बन्द हो जाता है।
१० लम्बाई मे आधा शरीर ढीला एव ज्ञान-क्रिया शून्य हो जाता है। किन्तु कभी-कभी मुह के अवयव ठीक रहते हैं।
११. कभी-कभी आधा नीरोग भाग एसा गर्म हो जाता है मानो उसमे आग लग गई हो और रोगाक्रात भाग वर्फ की तरह ठंडा रहता है।
१२. शरीर के एक भाग की चलने-फिरने एवं स्पर्शज्ञान शक्ति नष्ट हो जाती है। वह भाग सुन्न हो जाता है।
१३ इसमे एकाएक उक्त लक्षण प्रकट होते हैं।
१४. आखो की पुतलिया फिरने लगती हैं।
१५- कभी-कभी जीभ दातो के नीचे आकर कट जाती है।
१६ केन्द्रीय पक्षाघात मे शिर पीडा, शिरोघूर्णन, मानसिक विश्रृंखलता एव स्मरणशक्ति का लोप प्रभृति।
१७. कभी यह कमर के ऊपर और कभी कमर के नीचे ही होता है।
१८. मात्र शरीर-बन्धन ढीले हो तो आधा शरीर ढीला पड जाता है।
१९ धीरे-धीरे बढने वाला स्नायुवीय-रोग है, जिसमे कपन कमजोरी एव माँसपेशियो की अकडाहट होती है।
२० स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो को अधिक होता है। प्राय. ५० वर्ष की ऊपर आयु वालो को वातवृद्धि या कमजोरी से होता है।
२१. बांह नीचे की ओर लटक जाती है, रोगी कुहनी नहीं मोड सकता। आक्रात पैर की उंगलिया नही मुडती। घुटना एव जांघ मोडने मे भी कष्ट होता है। आक्रात भाग भारी बोझिल एव कष्टमय हो जाता है।
२२ तीव्राक्रमण मे साथ मे तेज ज्वर भी रहता है।
२३. किसी रोगी के यह पाव-पैरो की अगुलियां या कूल्हे के नीचे के सम्पूर्ण अगो को पकड़ता है।
२४ कभी-कभी इसमे आशिक त्वक्शून्यता होती है। कभी कभी सिर्फ अंगुलियां ही काम नही करती।
२५. किसी पक्षाघात मे मात्र ज्ञानशक्ति ही जाती है। किसी पक्षाघात मे मात्र क्रियाशक्ति ही तिरोहित होती है। किसी पक्षाघात में ज्ञान एवं क्रिया दोनों शक्तियां नष्ट हो जाती हैं। किसी पक्षाघात मे दोनो शक्तियां नष्ट नही होती, कम हो जाती हैं।
२६. रोगाक्रमण के प्रारम्भ मे गतिशक्ति पर पहिले प्रभाव पडता है। रोगी इच्छानुसार आघातित-अगो को हिला डुला, चला, फिरा नही सकता। दूसरे जैसे इन्हें रखदें, वैसे ही रहे आते हैं।
२७ ज्ञानशक्ति के लोप हो जाने पर उस स्थान पर चाहे गर्म चीज रखो या वर्फ रोगी को कुछ नहीं महसूस होता। किसी का स्पर्शज्ञान बहुत साधारण रहता है।
२८. आक्रमण होते ही बैठा हो तो गिर पडता है, शून्य हृदय सा हो जाता है।
२९. लघु शंकादि निवारणार्थ उठना चाहे तो उठ नही सकता। सज्ञावहा एव चेष्टावहा नाडिया अपने कार्य मे अक्षम हो जाती हैं।
३० वाग्वाहिनी नाडियो की शक्ति क्षीण हो जाने पर जिह्वा पेशी भी अपना काम नही करती।
३१ आक्रान्त भाग मे रक्त परिभ्रमण रुकने से आक्रान्त-भाग संकुचित होते जाते एव सूखते जाते हैं।
३१. किसी रोगी की सिर्फ एक टाग ही रोगाक्रात होती है। किसी की एक टाग और एक हाथ रोगाक्रात होते हैं। किसी का आधा शरीर लबाई मे रोगाक्रात होता है। किसी का आधा शरीर मात्र ही (नीचे का भाग) रोगाक्रांत होता है।
३३ वात प्रधान रोग मे रोगी को सुई चुभा देने पर बोध नही होता। यह मौत की निशानी है।



३४, आक्रान्त भाग के रक्तवह-स्रोत अवरुद्ध हो जाते हैं।

३५ वात-पित्तज पक्षाघात मे शरीर के भीतर जलन एव बाहर सताप तथा मूर्च्छा होगे।

३६ वात कफज पक्षाघात मे—शरीर मे शोफ (सूजन) होगी जो छूने मे शीतल लगेगी। इसमे भारीपन भी होता है।

असाध्य पक्षाघात के लक्षण—

१ गर्भिणी, प्रसूता, बालक, बूढे यदि अत्यन्त क्षीण हो।

२. जिनका रुधिर या वीर्य एकदम नष्ट हो गया हो।

३ अगो का रग बिलकुल बदल जाय या आघातित अग मूल से बहुत दुबले एव छोटे हो जायें।

४ पट्ठो के बिलकुल टूट जाने से रोग हुआ हो।

५ यदि चुभाने-नोचने आदि पर भी रोगी को कुछ ज्ञान न हो।

मुख-पक्षाघात के लक्षण—

१ आधा मुह, गर्दन, चेहरा टेढे पड जाते हैं।

२ सिर कापने लगता है।

३ रोगी बोल नही सकता या अस्पष्ट बोलता है।

४ नाक, आख, भौंह, गाल मे वेदना होती है वे टेढे हो जाते हैं।

५ नीचे के ओठ मे अधिक वेदना होती है।

६ रोग की ओर की गर्दन, ठोढी व दात दर्द करते हैं।

७ रोगाक्रान्त भाग का खून, स्नायु, नसें सूखकर सिकुड जाती हैं।

८ रोगी टेढ़ा होकर मुह मे कौर देता है।

९ बोलते समय रोगी के नेत्र स्तब्ध हो जाते हैं।

१० छीक आने को होती है, पर बाहर नही आती।

११ जीभ दुर्बल एव बाहर निकली हुई होती है।

१२ कान बन्द हो जाते हैं। कम सुनाई देता है या बिल्कुल नही सुनता।

१३. सारे के सारे दात चलायमान हो जाते हैं।

१४ आधे मुह का हसना, देखना एव बोलना टेढे हो जाते हैं।

१५ याद मे भ्रम होता है और सोते समय तकलीफ।

१६ किसी का बाया तो किसी का दाया मुखभाग रोगयुक्त

१७ वातकोप मे—रोगी के मुह से लार गिरती है। उसकी शिरायें फडकती हैं, कपकपी आती है, ठोढ़ी जकड जाती है, कम बोला जाता है तथा ओठ सुज जाते एव शूल चलते हैं।

१८ वातपित्तज मे—रोगी का मुह पीला पड जाता है ज्वर चढ आता है, प्यास बहुत लगती है, मोह, बेहोशी तथा गरमी होती है।

१९ वातकफज मे—रोगी के गले, माथे, मन्यानाडी (गर्दन के पीछे की नस) मे सूजन एव स्तभ मिले हुए रोग मे उन-उन दोषो के लक्षण होते है।

२० सूजन एव नेत्रो मे गदलापन भी होता है।

२१ चेहरे की असली सूरत बदल जाती है।

२२ ओठ आपस मे नही मिल सकते।

२३ रोगी किसी चीज को चूस नही सकता और न किसी चीज को मुह दबाकर खीच ही सकता है।

२४. उसके मुह की फूक सीधी नही निकलती। चिराग नही बुझा सकता।

२५ कभी-कभी यह चेहरे के दोनो ओर भी होता है।

२६ कभी-कभी एक आख बन्द ही नही होती। सोते मे भी खुली रहती है।

२७. सीटी नहीं बजा सकता। गाल नही फुला सकता।

२८. किया हुआ भोजन कठ व दातो मे जम जाता है, उसे अंगुली से निकालना पड़ता है।

२९ स्वादेन्द्रिय व गधेन्द्रिय में विकार हो जाता है।

३० गले मे विकार के कारण आहार निगलते समय कष्ट।

३१. कभी-कभी कान मे भन्-भन, साय-सांय होती या तीव्र असह्य कष्ट होने लगता है।

३२ ललाट मे सलवटें पड़ जाती हैं। चेहरे की खूबसूरती मारी जाती है।

३३. भौंहे, दाढी आदि टेढे हो जाते हैं।

३४. खाने, पीने, बोलने को भी रोगी तरसता रहता है।

३५ आंख का नीचे वाला पलक गिर पडता है।

३६ एक ओर का नकुआ सूखा रहता है। रोगी उसे फुला नही सकता।

३७ गाल लटकने लगता है सास लेने मे शब्द होता है।

असाध्य मुख पक्षाघात के लक्षण—

जो रोगी अत्यन्त क्षीण हो गया हो। अत्यन्त वृद्ध

हो। मास-बल क्षीण हो। जो पलक न मार सकता हो। जिसे रोग हुए ३ साल हो गये हो। जिसके आख, नाक, मुह से निरन्तर पानी-सा बहता रहता हो और साथ ही जिसका शरीर कापता रहता हो। यदि लकवे वाला ४ दिन तक सकते से न बचे तो। जिस पर तीन बार रोग का आक्रमण हो चुका हो।

नोट—ज्यो-ज्यो यह रोग पुराना पड़ता जाता है, त्यो-त्यो कष्टसाध्य बनता जाता है।

पक्षाघात की साध्यासाध्यता

साध्य (पक्षाघात या लकवे) के लक्षण—

१. रोग नया हो और उसका हमला साधारण हो।
२. शरीर मे शक्ति हो एव उसकी आयु भी छोटी हो।
३. रोग के साथ अन्य कोई उपद्रव या बीमारी न हो।
४. बलवान उपद्रव रहित रोगी का पक्षाघात साध्य है।
५. जिसकी पाचनशक्ति एव आत्मशक्ति अच्छी हो।
६. प्रथम आक्रमण होते ही तत्काल उपाय किया जाय।
७. नीद ठीक आती हो, आकृति ठीक हो, कब्ज न हो।
८. साध्यमत्येन सयुक्त—अर्थात् जो पक्षाघात वात-पित्तज या वात-कफज हो, कम वेगवाला हो, वह साध्य है।
९ मात्र अगुलियो या पैर या मात्र हाथ मे हुआ हो।
१० शरीर का वर्ण व मुटाई आदि सब ठीक हो तो। अर्थात् रोग होने पर भी आक्रान्त भाग का रग ठीक हो, वह पहले की अपेक्षा दुबला या छोटा न जान पड़े तो।

प्राय सभी पक्षाघात कष्टसाध्य होते हैं, किन्तु यदि रोगी की बताई गई ऊपरी-स्थिति हो तो पक्षाघात का चिकित्सा से ठीक होना साध्य है। नं० १ की स्थिति हो तो यह जटिल रोग भी (सुख-साध्य) रहता है।

कष्ट-साध्य पक्षाघात के लक्षण—

१. रोगी की आयु ६० वर्ष से अधिक हो।
२ शरीर के बाहरी अवयवो के अलावा भीतरी अवयवो मे भी रोगाक्रमण हो गया हो।
३. मल एव मूत्र बड़ी कठिनाई से आते हो।
४. वस्ति (एनिमा) देने पर भी मल न निकलता हो।
५ पित्तकफाश्लिष्ट वायुजनित पक्षाघात।
६. ब्लडप्रेसर १९० से कम न होता हो।
७ मधुमेह या रक्तचापाधिक्य वाला या दोनो हो।
८. रोगी की नीद गायब हो गई हो।
९ हाथ-पैर की अगुलियां चटकाने से न चटकती हो।
१०. जिसकी आकृति बिगड गई हो।
११. रोगग्रस्त शरीर-भाग का रग बिगड गया हो।
१२ रोगग्रस्त-भाग पतला एवं दुर्बल हो गया हो।
१३. रोग को अधिक दिन हो गये हो।
१४ रोग का हमला तेज हो।
१५ शरीर मे एकदम अशक्ति हो।
१६ रोग के साथ बहुत से अन्य उपद्रव भी हो।
१७ रोगी का हृदय, पाचन एव आत्मशक्ति क्षीण हो।
१८ रोगाक्रमण के बहुत देर बाद उपचार किया गया हो।
१९ रोग सोते मे हुआ हो।
२० तीव्र ज्वरग्रस्त रहने के साथ पक्षाघात हुआ हो।

असाध्य पक्षाघात के लक्षण—

१. ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति दोनो का ही अभाव हो।
२. उपचार करने पर भी बेहोशी दूर न होती हो।
३. अपानवायु बन्द हो और मुह, नाक, नेत्र से निरन्तर स्राव हो रहा हो।
४. गले मे दूध-पानी तक न जाता हो, आखे स्थिर-जड हो गई हो।
५ देखने, सुनने, स्पर्श जानने की शक्ति नष्ट हो गई हो।
६ तीन दिन से तीव्र ज्वर बराबर बना रहा हो, अतिशय दर्द हो।
७ मात्र वायुजनित पक्षाघात असाध्य है।
८ अशक्त, गर्भिणी, दुर्बल बालक, अतिशय वृद्ध, धातुक्षयी का पक्षाघात असाध्य है।
९ रोगाक्रात भाग मे नोचने पर भी स्पर्शज्ञान न हो।
१० अर्दित यदि ३ वर्ष का हो जाय।
११. निमेषशून्य, कष्ट से अव्यक्तभाषी, निरन्तर कापने वाला।
१२ धातु क्षय जन्य वातज-पक्षाघात असाध्य है।
१३. पट्ठो के टूट जाने से रोग हुआ हो तो।
१४ सुई चुभाने एव ततैये के काटने पर भी भान न हो।
१५ यदि बिच्छू के काटने पर भी दर्द नही होता तो वह पक्षाघात असाध्य ही है।



१६ जिसका ब्लडप्रैसर २०० से ऊपर रहता हो, कम न होता हो। १७ मधुमेह ४ या ५% तक हो।
१८ नीद कई दिनो से गायव हो, मुंह न चलता हो, नेत्र स्थिर हों।
१९ शरीर का कोई भी भाग न मुड़ता हो और न मोड़ने पर चटकता ही हो।

पक्षाघात की चिकित्सा में ध्यान देने योग्य बातें

(१) रोगी को 'सकता या एपोप्लेक्सी' तो नही है। पक्षाघात होने की सम्भावना पर यह निर्णय करना आवश्यक है। 'सकते' मे रोगी यकायक गिर पड़ता है। तव उसमे देखने, सुनने, वोलने, सुख-दुखादि के अनुभव करने की शक्ति नही रहती। उसके दिल और फेफड़े ठीक तरह से काम करते रहते हैं। चेहरे और गर्दन की शिरायें खून से फूल उठती हैं। नाड़ी भरी हुई, मजवूत और मन्द होती है। सास का काम भी धीमा होता है। रोगी कोई चीज निगल नही सकता।

यह हालत चन्द मिनटो तक ही रहती है। कभी-कभी कई घण्टे भी लग सकते हैं। रोग घातक नही होता तो दवाओ से या प्रकृति से अपने आप ही ठीक हो जाता है। घातक होने पर कभी-कभी पक्षाघात मे परिवर्तित हो जाता है। 'सकता' हो जाने पर जल्दी जोर-जोर से काम करो। खून की चाल समान करो, मस्तिष्क पर से खून का दवाव कम करो।

रोगी को आराम से लिटा दो। उसे सुखी करो। उसकी गर्दन पर से हर चीजे दूर करदो, ताकि रक्तगति मे रोक टोक हो सके। सिर, चेहरा, गर्दन पर ठडा पानी छिड़को। शीघ्र ही पैरो व टागो को गरम जल मे डुवो दो। रोगी के कपड़े उतार डालो। गरम जल मे थोड़ा सा नमक मिलाकर रोगी की टागो या पैरो पर मलो और मलते मलते वाहो तक पहुच जाओ। सिर को सदा शीतल रखो। कब्ज हो तो अच्छा कारगर जुलाव दो। एक घण्टे मे दस्त न हो तो एनिमा दे दो। पेट पर बड़ा सा राई का प्लास्टर रख दो। अफीम भूल कर भी मत दो। ठीक हो जाने पर रगड-रगड कर स्नान कराते रहो। ३-४ दिन मे जुलाव देते रहो। शराव, मास, अपथ्य वस्तुयें न दो। शरीर और मन को थकान से वचाओ।

(२) सावधानी से रोग-स्थिति की जाच पड़ताल करो। देखो कि—

अ रोग में वात साम है या निराम ?
व. रोग का आक्रमण सिर्फ ऊपरी है या भीतरी भी ?
स भीतरी आक्रमण में हृदय, आते, लीवर, मूत्राशय या मलाशय पर कितना, कैसा प्रभाव है ?
द किस ढग का पक्षाघात है ? इसमे मूल कारण क्या है ? वहुमैथुन, वीर्यनाश, रक्ताल्पता, गठिया, हिस्टेरिया, मानसिक श्रम, निकृष्ट-व्यवसाय या अन्य क्या ?

(३) पक्षाघात कष्टसाध्य है और शीघ्र ही असाध्य भी हो जाता है अतः उसकी चिकित्सा मे आरम्भ से ही पूर्ण सावधान रहो।

(४) रोग स्नायुमूलीय है या नही ? इसका निर्णय मुख-पक्षाघात में अवश्य करलें। स्नायुमूल मे विकार होने पर कपाल एव अक्षिपल्लवो की पेशिया पक्षाघात-ग्रस्त नही होते, साधारण अवसन्न होते हैं। रोगी आंख वन्द कर लेता है—खोल लेता है।

(५) अत्यन्त दिमागी परिश्रम करने वालो, किन्तु उस अनुपात से शारीरिक श्रम न करने वालो में यह रोग हो जाय तो 'शिरोरोग-चिकित्सा' की विधि से शिरस्तैलाभ्यग आदि द्वारा चिकित्सा करे। ठीक हो जाने पर प्रात घूमने एव भोजन के वाद आराम करने की सलाह दो। रात्रि का जागरण भी छुड़वा दो। मानसिक तनाव, दुश्चिन्ता, मानसिक उत्तेजना, दूसरो को गिराने मे सारी शक्ति खर्च कर देने का विचार क्रम आदि दूर कर दो। अन्यथा पुन इस विपत्ति की सम्भावना वढ़ जायगी। दिमागी विश्राम दो।

(६) रक्तचाप एव मधुमेह की स्थिति की पूरी जाच करो। इनको रोग के साथ ठीक करो अन्यथा या तो रोग ठीक ही नही होगा या पुन आक्रमण होगा।

(७) रोगी को प्रात. निराहार मुह १॥ तोला सेंधा नमक १॥ पाव पानी मे घोलकर २१ दिन तक रोज पिलावे। ब्लडप्रैसर भी हो तो ऐसा मत करो।

(८) मिट्टी के तेल की मालिश कराओ। पाव बोतल मिट्टी का तेल मालिश में प्रतिदिन खपा दो। निर्वात स्थान मे मालिश कराओ। एक सप्ताह मे पक्षाघात का बाहरी आक्रमण समाप्त हो जायगा।

(९) हीरा हीग २ रत्ती को लेकर रुई के भीतर रखकर आग लगा दो। फिर निकाल कर रोगी को खिला दो। इस प्रकार से भुनी हुई हीग रोगी को दिन मे २-३ बार तक दो। पक्षाघात का साधारण आक्रमण तो ५-७ दिन मे ही मिट जायेगा।

(१०) मालिश धीरे-धीरे कराओ-जोर से नही। जोर से मालिश कराना बड़ा हानिप्रद है। हड्डियो पर मालिश नही करानी है। स्नायुओ पर हल्के हाथ से पर्याप्त समय तक मालिश कराइये। दोष चमडे मे होगा तो चर्म मे सूनापन होगा। यदि मात्र सधियो व जोडो मे ही रोग प्रभाव होगा तो शरीर मे सूनापन नही होगा।

(११) पक्षाघात की चिकित्सा मे सेहुड का दूध, आक का दूध, आक के पत्ते, वड़ के पत्ते, एरण्ड पत्र आदि प्रलेप मे वहुत काम आते हैं। इनका भी यथा-सम्भव पूर्ण ध्यान रखे। हीग का लेप करावे, अर्क दुग्ध का लेप करावे। ऊपर से एरण्डपत्र या आक का पत्र बाध कर ऊपर से कपड़ बंधन कर दे।

(१२) मधुमेही के पक्षाघात पर विशेष सावधान रहो।

(१३) पक्षाघात की चिकित्सा मे रोगी के अर्श (बवासीर), आध्मान (पेट फूलना), तीव्र मस्तिष्क शूल (तेज सिर दर्द), बेरीबेरी तथा शुक्रक्षय का भी ध्यान रखना पडता है। मूलरोग के साथ इनकी चिकित्सा करना मत भूलो। इन उपद्रवो को बढ़ने तो हरगिज मत दो।

(१४) इस रोग की चिकित्सा मे विटामिन बी का प्रयोग खूब करो। उसकी गोलिया एव इन्जेक्शन सभी आते हैं। इस विषयक आहार का भी ध्यान रखो। इसके लिए चोकरदार आटे की रोटी, दलिया, विना कूटे छिलके-दार चावल, आलू-गाजर, सूखे मेवे, ताजे मौसमी छिलके-दार फल, सेब, अगूर, दूध-दही मक्खन पथ्य हैं।

(१५) एक हाथ या एक अगुली या शरीर के थोड़े हिस्से मे पक्षाघात हो जाय तो वह सरलता से ठीक हो जाता है। तव हलके प्रयोगो से काम लें।

(१६) पक्षाघात का सबध 'उपदंश' से हो तो हरताल भस्म एव पारदीय योगो को काम लें।

(१७) मात्र हाथ की अंगुलियो मे यह रोग या पीड़ा कष्ट हो तो गूगल के योगों के साथ रोगी को गुडूचीकल्प भी दो।

(१८) पक्षाघात मे ज्ञानततुओ के विशेषरूप से आक्रात होने पर ब्राह्मी के साथ मल्लचन्द्रोदय का उपयोग करो। ये ज्ञान तन्तुओ पर सीधा प्रभाव डालते हैं।

(१९) वस्ति पक्षाघात की उत्तम चिकित्सा है। किसी भी स्थिति मे इसका ध्यान अवश्य रखो।

(२०) अगर पक्षाघात के रोगी को नीद न आवे तो ठड के दिनो मे पैर के तलवे पर तैल मलवाओ। गरमियों मे ब्राह्मी तैल या हिमसागर तैल सिर पर लगाकर ऊपर से थोडा गुलाव जल छिड़क दो।

(२१) वायु के कारण आतो मे मल खुश्क हो गया हो या सूख गया हो तो एरण्ड स्नेह युक्त एनीमा दे दो।

(२२) बच्चो के पक्षाघात मे तीव्र-रसादि योगो का प्रयोग अत्यन्त आवश्यकता होने पर ही करिए, अन्यथा हानि हो सकती है।

(२३) रोगी बेहोश हो तो उसे होश मे लाओ। इसके लिए गरम गरम माषादि क्वाथ उसकी नाक मे ८-८ बूंद करके २-२ घण्टो मे डालते रहो। इसी क्वाथ के साथ पक्षाघात विन,शी रस को मकरध्वज या रस-सिंदूर मे घोटकर देते रहो। मालिश करवाओ। बिजली के धक्के लगवाओ या गिलास लगवाओ। मालिस कराने के बाद भफारा दिलवाओ।

(२४) विवेकशील वैद्य १. बेहोश रोगी को अंजन, नस्य आदि द्वारा पहले होश मे लाते है। २. फिर जीभ पर योग्यौषध को मलवाकर उसका वाक् भग दूर करते हैं। ३ उसका योग्यौषधो से पेट साफ कराते हैं। ४ पथ्य मे प्रारम्भ मे दूध देकर पुन इसे बढ़ाते जाते हैं। ५- तैलो की मालिस कराते हैं। ६ निर्वात-स्थान मे शान्त रखते है। ७ योग्य औषधो से चिकित्सा करते है।

(२५) कतिपय वैद्य पक्षाघात के होते ही पहिले स्वेदन कराते हैं। फिर मालिस कराते हैं। हृदय को सशक्त रखने का ध्यान रखते है। कई पहले स्नेह-विरेचन

या स्निग्धवस्ति देते है। फिर अभ्यग, स्वेदन, मर्दनादि कराते है।

(२६) एक चिकित्सक प्रात योगेन्द्ररस मधु से, रसराज रस को दूध से, सायकाल मे वृ० वात चिन्तामणि रस को दूध से और सोते समय मकरध्वज को लवगजल से देकर रोगी को रोगमुक्त कर देते हैं। रोग होते ही रोगी को ठडी हवा पानी से बचाओ। ऊनी गरम कपड़े पहनाओ। उष्ण स्थान पर रखकर, कमरे मे लोवान और गूगल हल्का-हल्का हर समय जलाये रखो। हृदय शक्ति बनाये रखो, किन्तु इसके लिये वेहद गर्म दवाये न दो, क्योकि गरम दवाओ से हार्ट कमजोर होता है। अजीर्ण हो तो एरण्ड तैल से दस्त कराओ। मस्तिष्क मे भलीभाँति रक्त सचार करने के लिये 'मापादिक्वाथ' का नस्य दो। स्मरण रखो कि वस्तिकर्म, अभ्यग, नस्यकर्म तथा स्वेदन करने एव घृतप्लुत भोजन करने से पक्षाघात लकवा नष्ट हो जाते हैं।

(२७) वातज पक्षाघात मे दशमूल क्वाथ या पचमूल क्याथ से साधित गोदुग्ध रोगी को १०-१२ दिन पिलाइये। पित्तमय पक्षाघात मे घी और दूध का प्रयोग वस्तिकर्म, सिंचन एव सेवन मे अवश्य ही कराइये। रोगी का कफ क्षीण हो, किन्तु पाचन शक्ति ठीक हो तो कोई भी पौष्टिक उपचार एक सप्ताह वाद से शुरु करिए। पित्तप्रकृति के व्यक्ति को पक्षाघात हो जाय ता वहुत सावधान रहो। उसे गरम दवाइयो की अपेक्षा मातदिल दवाइया दो। प्राय ऐसे लोग मानसिक या दिमागी परिश्रम करने वाले ही अधिक होते हैं। गरम दवाइया देने से उन्हे चक्कर, शिर का भारीपन आदि कष्ट वहुत वढ जाते हैं।

एक विद्वान की औषधि छुडवाकर उन्हे मात्र इस उपाय पर रखा कि कपडछन नागौरी असगध को घी मे मगद की तरह सिकवाया, फिर उसमें चौगुना वेसन डालकर और फिर घी डालकर मगद की तरह तैयार कराया। बाद मे सोलह गुनी शक्कर का वूरा डलवाकर घुटवाया और २॥-२॥ तोले के मोदक बनवा दिये। उन्हे ये १-१ करके प्रात साय दुध के साथ नियमित ले रहे हैं और कोई शिकायत भी नहीं करते। अपने को नियमित एव स्वस्थ अनुभव करते जा रहे हैं।

पक्षाघात की रस चिकित्सा

पक्षाघात पर उत्तमोत्तम रस-योग—

१ मल्ल चन्द्रोदय वटी—केशर अकरकरा, पीपलामूल, सौठ, जायफल, लौंग, छोटी इलायची के बीज, कालीमिर्च, छोटी पीपल—३-३ माशा लेकर सबको अलग अलग यथायोग्य वारीक कूट-पीस घोट ले। फिर सबका वारीक कपडछन चूर्ण कर फिर सवा २ तोले उत्तम मल्लचन्द्रोदय खरल मे डालें और खूब घोटें। बाद मे उक्त कपडछन चूर्ण धीरे-धीरे मिलाते जायें और घोटते जायें। अन्त मे पाच तोले पान का रस डालकर १-२ घटे तक घुटाई करें, फिर चने के बरावर गोलियाँ बनायें। उन्हें छाया मे सुखाना चाहिए। मात्रा—१ से २ गोली प्रात. साय औषधि को मधु मे चटाकर ऊपर से गाय का मिश्री मिला हुआ गरम दूध दें।

२ महावातेश्वर रस—शुद्ध तुत्थभस्म, गोदन्ती हरताल भस्म, शुद्ध पीला संखिया, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध आमलासार गंधक, हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध खर्पर रसायन—प्रत्येक २-२ तोला।

पारे गधक की कज्जली बनाकर उसमे १-१ करके सारी चीजें डालते जाओ और खूब घोटते जाओ। बाद मे धतूरे के रस की भावना दो। अन्त मे अकौए के पत्तो के रस की भावना देकर आतशी-शीशी मे भरकर वालुकायन्त्र से कूपीपक्व रस की भाति तैयार करलें। फिर निकाल कर इसे ८ घण्टे तक घोटें। इसकी मात्रा १ से २ रत्ती तक प्रात सायं दवा अदरख के रस मे चटावे।

३ योगेन्द्र-रस—रससिंदूर न० १ ६ मासे, स्वर्ण भस्म, लोह भस्म, वगभस्म, अभ्रक भस्म, अनविधे मोती ३-३ माशे। सवको मिलाकर आध घण्टे तक घोटो। फिर दो-तोले घीग्वार के रस मे खूब (३ घण्टे तक) घोटकर, अडी के वडे वडे पत्तो मे लपेट दो और ऊपर से डोरा लपेट कर इसे धान के ढेर मे ३ दिनो तक दवाये रखो। फिर निकालकर खूब घोटलो और सुखालो। वस, दवा तैयार है।

इसकी मात्रा २ रत्ती की हे। प्रात साय मधु मे औषधि को चटाकर ऊपर से ठड के दिनो मे त्रिफला का काढा और गरमी के दिनो मे त्रिफले का हिम पिला दो या त्रिफला पानी मिश्री मिलाकर पिला दो।

पक्षाघात मे चिकित्सक समुदाय इसका खूब प्रयोग करता है। हृदयदौर्बल्य, शारीरिक अशक्ति, रक्ताल्पता, स्नायुदौर्बल्य एव शुक्रक्षीणता को मिटाकर शरीर की रोगक्षमता-शक्ति को शीघ्र जाग्रत करता है। इसीलिए इसका नाम 'योगो का इन्द्र' रखा गया है। रक्तवाहिनियो एव वातवाहिनियो की विकृति दूर करने मे प्रभावक रस है। कमजोरो के लिए मात्रा कम रखें।

[४] विषमुष्टि-गुटिका—शुद्ध आमलासार गधक, हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध वत्सनाभ विष, अजवायन, सज्जीखार, हरड, बहेडा, आवला, जवाखार, सैंधानमक, चीते की छाल सफेद-जीरा, कालानमक, वायविडंग, छोटी पीपल, सोंठ, कालीमिर्च १-१ तोला। शुद्ध कुचले का वारीक चूर्ण १४ तोला। पारा-गधक की कज्जली वनाकर इसमे विष मिलाकर घोटे। फिर कुचला का वारीक चूर्ण डालकर घोटे। अन्त मे शेष समस्त चीजो का वारीक कपडछन चूर्ण करके मिलादो और नीवू का रस दे-देकर दो दिन तक ८-८ घन्टे घुटाई कराओ। फिर २-१ रत्ती की गोलिया वनालो। पुराने पड गये पक्षाघात को मिटाने एव वातवाहिनियो को दुरुस्त करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। प्रात-सायं १-१ गोली महारास्नादि क्वाथ से दो। कब्ज, वातविकार, शून्यता, ज्वर, पाचन विकार के साथ रहने वाले पक्षाघात मे अद्वितीय प्रयोग है।

[५] रसराज रस—रससिंदूर ४ तोला, अभ्रक भस्म एक तोला, स्वर्ण भस्म ६ माशा। इन तीनो चीजो को को लेकर खरल मे डालो और घोट लो। फिर पाच तोला ग्वारपाठा का रस डालकर उसमे खूब घोटो। फिर इसमे लोहभस्म, वगभस्म और चादी की भस्म ३-३ माशा मिलाकर १ घण्टे तक घुटाई करो। वाद मे क्षीर काकोली, असगन्ध, लौंग और जावित्री इन चारो का अलग अलग वारीक कपडछन चूर्ण ३-३ माशा लेकर मिलाते जाओ और घोटते जाओ। अन्त मे इसमे काकमाची का रस दे-देकर ६ घण्टे तक घोटो और २-२ रत्ती की गोलिया वनालो। इन्हे १-१ गोली की मात्रा मे प्रात. साय मिश्री मिले हुए गोदुग्ध से देना चाहिए। पक्षाघातादि वात विकारो को मिटाने मे परमोत्तम है। शक्ति जाकर शुक्र विकार मिटाता एव पक्षाघात को ठीक कर देता है।

[६] नारदीय वृ० लक्ष्मीविलास रस—शोधित, गधक, हिंगुलोत्थ पारद, स्वर्णवर्क, रौप्य भस्म, शुद्ध हरताल, यशदभस्म, ताम्रभस्म, कस्तूरी, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म (सूर्यपुटी), जावित्री, जायफल, कपूर, भूमिकूष्माड, शुद्ध धतूर बीज, विधारा बीज १-० तोला, अभ्रक भस्म २ तोला। इन सबको यथायोग्य वारीक घोटकर फिर सबको मिलाकर घोटें। फिर एक हजार पान के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले। मात्रा २ रत्ती। १-१ वटी प्रात साय महारास्नादि क्वाथ से दे।

[७] स्वच्छन्द भैरव रस—शुद्ध हिंगुलोत्थ पारद, लोहभस्म, शुद्ध आमलासार गन्धक, शुद्ध हरताल, भुना हुआ चौकिया सुहागा, शुद्ध वत्सनाभ, स्वर्णमाक्षिक भस्म, बड़ी हरड, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल) अरनी, गोरखमुण्डी प्रत्येक १-१ तो०। पहले पारा और गन्धक को घोटकर कज्जली बनाओ उसमे १-१ करके सारी चीजें डालते जाओ और घोटते जाओ। कूटने पीसने योग्य चीजो को कूट पीसकर कपडछन करलो और इनको सब के अन्त मे मिलाओ। फिर १-१ दिन क्रमशः निर्गुण्डी के रस और गोरखमुण्डी के रस मे घोटो और घोट-घोटकर सुखा लो। इसकी मात्रा एक रत्ती की है। इसे प्रातः दोपहर एवं साय मधु मे चटाकर ऊपर से महारास्नादि क्वाथ पिला दो। रात को सोते समय भी दो तो अच्छा है। पक्षाघात के मध्यम कोप मे प्रभावक है।

[८] मल्ल प्रयोग—एक तो० सफेद संखिया लेकर करेले की वेल के १० तो० रस मे, दोलायन्त्र द्वारा धीमी आग से ४ प्रहर तक पकालो। दूसरे दिन शुद्ध जल से सखिया को खूब अच्छी तरह धोकर रख लो। वाद मे भेड के चार तो० दूध मे मिलाकर, खरल मे डालकर ३ दिन तक ८-८ घण्टे तक खूब घुटवाये। वाद मे शीशी मे भरकर रखले। इसकी मात्रा एक चावल भर है। इसे मक्खन मिले गोदुग्ध के साथ ४१ दिन तक बराबर रात के समय दे। मात्रा अधिक न करे। रोगी पक्षाघात के प्रकोप से मुक्त हो जायगा।

[९] वृ वातचिन्तामणि रस—स्वर्णभस्म, प्रवाल भस्म ३-३ तो०, चादी भस्म, अभ्रक भस्म २-२ तो०। रससिंदूर ७ तो०। सबको खरल मे डालकर खूब घोटो और फिर २-२ तो० घीग्वार के रस मे डालकर खूब



घुटाई कराओ। गोली बनने योग्य हो जाने पर २ २ रत्ती की गोलिया बना छाया मे सुखा लो।

पक्षाघात या तीव्र वात विकारो की स्थिति मे रोगी को २-२ गोलिया प्रात सायं रास्नादि क्वाथ से दो। गोलियों को पीसकर मधु मे चटाओ और ऊपर से रास्नादि क्वाथ पिला दो। २२ दिन तक प्रयोग करने से रोग शान्त होगा। रोगी मे रक्त, शक्ति व स्फूर्ति बढ़ेगी।

[१०] मल्ल-रसायन—शुद्ध मल्ल एक रत्ती, कस्तूरी २ रत्ती, स्वर्णघटित मकरध्वज दस रत्ती। सबको खरल मे डालकर २ घण्टे तक खूब घोटो और फिर ७ पुडियाँ बना लो। रोगी को रात्रि के समय एक पुडिया, मधु मे चटाओ और ऊपर से मिश्री मिला गरम कोष्ण गोदुग्ध पिला दो। यदि रोगी बलवान हो तो प्रात साय दो पुडिया भी दे सकते है। इस प्रयोग को अन्य औषधियो के साथ भी नियमित रोज प्रयुक्त कर सकते है। अधिक दिनो तक प्रयुक्त करना चाहिए। जब तक रोग नाश एव अशक्ति दूर न हो जाय तब तक प्रयुक्त करते रहिये। रोग निवारण एव शक्ति वर्धन मे उत्तम है।

[११] समीर-पन्नग रस—शुद्ध हिंगुलोत्थ पारद, शोधित आमलासार गन्धक शोधित तबकिया हरताल, शुद्ध सोमल (श्वेत सखिया) प्रत्येक १-१ तो०। पारद एव गन्धक की कज्जली करके शेष चीजो को एक-एक करके मिलाते जाये और घोटते जाये। फिर बालुकायन्त्र मे भरकर, प्रहर भर आग देकर कूपीपक्व इस औषधि को निकाल ले और घोटकर शीशी मे भर लें। इसकी मात्रा आधा रत्ती है। प्रात साय या ६-६ घण्टे मे मधु या पान के रस मे, या दोनो मे ही मिलाकर रोगी को चटायें। इसके उपयोग से पक्षाघात, लकवा, कम्पवात, गृध्रसी, अपतन्त्रक प्रभृति बातरोग भी ठीक हो जाते हैं।

[१२] पक्षाघातान्तक रस—शोधित हरताल एक तो० लेकर खरल मे डाले। इसमे १-१ कालीमिर्च डाल-डाल कर घोटते जाये। ऐसे घोट घोटकर चार तोले कालीमिर्चें समाप्त कर दें। फिर इसमे षड्गुणबलिजारित रससिंदुर १ तो०, मल्ल-चन्द्रोदय तीन माशा डालकर तीन दिन तक खूब घोटें। फिर पान के रस मे २१ दिन तक घोटकर एक से दो रत्ती तक की गोलिया बना लें।

मात्रा—एक से दो गोली तक, मुनक्का के बीच मे रखकर (मुनक्का मे लपेटकर) दिन में २-२ बार दें। यह प्रयोग कष्टसाध्य किंवा असाध्य पक्षाघातों पर भी प्रभावक रीति से बहुत अच्छा काम करता है।

[१३] वातकुलान्तक रस—कस्तूरी, असली नागकेशर, हिंगुलोत्थ पारद, बड़ी हरड, शोधित आमलासार गन्धक, बहेड़ा, जायफल, छोटी इलायची के बीज, लौंग प्रत्येक समभाग। पहिले पारद गन्धक की कज्जली बनावें। बाद मे शेष सारी चीजो का बारीक कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर खूब घोटें। एक घटे बाद पानी मिलाकर घोटें। फिर २-२ रत्ती की गोलिया बनालें। मात्रा एक से दो रत्ती तक है। रोगी को मधु मे दवा चटा दें और ऊपर से गोदुग्ध या दशमूल क्वाथ पिला दें। दिन मे दो बार औषधि दें। इससे पक्षाघात प्रभृति वातविकार शीघ्र ही साध्य कोटि मे आ जाते है। २ माह के प्रयोग से रोग समूल नष्ट हो जाता है।

[१४] चतुर्भुज रस—स्वर्णसिन्दूर २ तोला, स्वर्णभस्म, मनशिल, कस्तूरी, हरताल (शुद्ध) १-१ तोला। सबको घीग्वार के रस मे दो घटे तक घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनालो। फिर एरंण्ड के पत्तो मे लपेट कर धान के ढेर मे ३ दिन तक गाडकर रखो फिर निकाल कर काम मे लो। इसकी मात्रा एक से दो रत्ती है। प्रातःसाय मधु मे चटाओ। ऊपर से दशमूल क्वाथ या महारास्नादि क्वाथ या दशमूल अर्क या रास्नादि अर्क पिलाकर, रोगी को लिटा दो। रात को सोते समय एक मात्रा मिश्री मिले हुए गो दुग्ध मे दो। मक्खन मे दवा चटाकर ऊपर से यह दूध पिलाओ। अशक्ति, वातविकार, नाडी दौर्बल्य, पक्षाघात, लकवा आदि पचासो वातविकारो को नष्ट करके रोगी को हृष्ट पुष्ट एवं सबल बनाता है। पहले कब्ज दूर करे। प्रारम्भ मे सिर्फ दो बार दें।

[१५] वृ० वगेश्वर रस—हरताल के योग से बनी वगभस्म, हिंगुलोत्थ पारद, रौप्य भस्म, शोधित आमलासार गधक, अभ्रक भस्म, देशीकपूर प्रत्येक २-२ तोला। स्वर्ण भस्म, मुक्ता भस्म ६-६ माशे। सबको खरल मे डालकर खूब घोट लो और फिर कसेरू के रस की सात भावनाये दो। बाद मे १-१ रत्ती की गोलिया बना लो।

मात्रा—१ से २ गोली पीसकर मधु मे चटावें। प्रात सायं दे। इससे वीर्य या धातुक्षय-जन्य, पक्षाघात मे लाभ होता है। अन्य रसो के साथ इसका प्रयोग नियमित करें। प्राय. रात्रि को सोते समय इसे अवश्य देते हैं।

५०% रोगी वीर्याल्पता या शुक्र क्षय, जन्य ही रोग-युक्त होते हैं। अत इस रस का प्रयोग अत्यावश्यक रहता है। मधु मे चटा ऊपर से गोदुग्ध मिश्री पिलाओ।

(१६) चतुर्मुख रस—शुद्ध हिंगुलोत्थ पारद एवं शोधित आमलासार गधक ६-६ माशे लेकर खरल मे ३ घंटे तक घोटो। फिर इसमे अभ्रक भस्म, स्वणभस्म, लोह भस्म ६-६ माशे मिलाकर, घीग्वार के रस मे खूब घोटो। फिर गोला सा बनाकर, अण्डी के पत्तो मे लपेट कर डोरे से लपेट दो और धान के ढेर मे ३ दिन तक दबाये रखो। फिर निकालकर खूब घोट कर सुखालो और शीशी में भर कर रख लो। मात्रा १ से २ रत्ती तक है। मधु मे मिला कर प्रात साय दोनो समय चटाओ। ऊपर से ठड के दिनो मे त्रिफले का काढ़ा एव तेज गरमी के दिनो मे त्रिफले का हिम पिलाओ।

(१७) बृ० वातगजांकुश रस—हिंगुलोत्थ पारद, शोधित आमलासार गधक, कातलोह भस्म, हरताल भस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध बत्सनाभ, सौंठ, बला, धनिया, कायफल, काकडासिंगी, छोटी पीपल, कालीमिर्च, भुना-सुहागा १-१ तोला। बडी हरड का चूर्ण २ तोला।

पारद गधक की कज्जली बनाकर उसमे क्रमश अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, चादी भस्म, कातलोह भस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध बत्सनाभ को मिला-मिलाकर १५-१५ मिनट घोटो। बाद में शेष चीजो का बारीक कपडछन चूर्ण एवं भुना-सुहागा मिलाकर खूब घोटो। फिर सबको गोरखमुण्डी एव निर्गुण्डी के स्वरस मे १-१ दिन घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनालो। मात्रा—१ से २ गोली दिन मे ३ बार। एरण्ड पत्र रस मे सेधानमक मिलाकर दो, दवा मधु मे चटा कर ऊपर से यह रस पिला दो। इसके ३१ दिन के प्रयोग से वात रोग पक्षाघातादि गायब हो जाते हैं।

(१८) वातगजांकुश रस—रससिंदूर, लोहभस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शोधित ग. क, शुद्ध हरताल, हरड, काकडा-सिंगी, बच, छोटी पीपल, सौंठ, कालीमिर्च, अग्निमथ की छाल, भुना चौकिया सुहागा—सब समानभाग। रससिंदूर गधक, भस्मो एव शेष चीजो के बारीक चूर्णो को मिला कर निर्गुण्डी स्वरस तथा गोरखमुण्डी के स्वरस मे १-१ दिन घोट कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लो। बृ० वातगजांकुश की तरह ही प्रयोग मे लो।

यदि रोगाक्रमण तीव्र हो तो बृ० वातगजांकुश ही काम मे लो। मध्यम आक्रमण मे वातगजांकुश ठीक है। शास्त्रो मे दोनो की बडी तारीफ लिखी है। कब्ज दूर करके, मालिस तैलादि के साथ इनसे सफलता प्राप्त करें।

(१९) मल्ल चन्द्रोदय वटी—स्वर्ण घटित मल्ल चन्द्रोदय, सौंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, पीपलामूल, जायफल, जावित्री, अकरकरा (असली), लौंग, केशर, छोटी इलायची सब १-१ तोला। मल्ल चन्द्रोदय को खरल मे डालकर दो घटे तक खूब घोटें। केशर को खरल मे खूब बारीक घोट कर अलग रख लें। फिर सबको मिला कर खूब घोट लें। बाद मे—आधा सेर ताजे शतावर स्वरस से १०-१२ घटे तक खूब घुटाई करें। बगला पान १५० से २०० तक लेकर, उसका रस निकाल लें और खरल मे डालकर उसकी भावना दें। जब गोली बनने योग्य हो जाय तो २-२ रत्ती की गोलिया बनाकर, उन्हें छाया मे सुखा लें। फिर डाटदार शीशी मे भरकर रखलें। मात्रा—२ गोली। प्रात साय मधु चटा कर ऊपर से दूध पिलादें। दूध के स्थान पर यदि २॥ तोला शतावर का ताजा स्वरस पिला दिया जाय तो और भी अच्छा है।

गुण—इसके प्रयोग से जीर्ण वातरोग, पक्षाघात, लकवा, अशक्ति, जीर्ण प्रतिश्याय, गठिया उरुस्तम प्रभृति रोग मिटते है। पथ्य का पूरी तरह ध्यान रखें। असगन्ध, शतावर प्रभृति वातनाशक द्रव्य भी देते हैं। रोगी को रोटी दाल मैंथी खिलावे।

(२०) वात-निसूदन रस—स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म, लोह भस्म, रस सिंदूर, कस्तूरी, स्वर्णमाक्षिक भस्म, कास्य भस्म, नाग भस्म, हरताल भस्म, बग भस्म, बडी हरड, काकडासिंगी, बच, धनिया, शुद्ध बत्सनाभ, कायफल, सौठ, देशी कपुर, काली मिर्च, छोटी पीपल, जायफल, जावित्री, लौग, प्रवाल भस्म, मुक्ता भस्म, सेंधा-नमक प्रत्येक १-१ तोला। स्वर्ण सिंदुर ४ तोला। पहिले कूटने पीसने योग्य चीजो को कूट पीस कर बारीक कर लो। कस्तूरी, कपूर को मत कूटो। फिर स्वर्ण सिन्दूर को



खरल मे डालकर २ घंटे तक खूब घोटो। अब इसमे क्रमश स्वर्ण भस्म, रस सिन्दूर, कस्तूरी, मुक्ता भस्म, देशी कपूर डाल-डालकर १५-१५ मिनट तक घुटाई करो। फिर क्रमश रौप्य भस्म, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, कास्य भस्म, नाग भस्म, हरताल भस्म, वग भस्म और प्रवाल भस्म डालते जाओ १०-१० मिनट तक घुटाई कराते जाओ। अन्त मे शेष समस्त चीजो का बारीक कपड़छन चूर्ण डालो और आधा सेर भारगी के रस मे मिलाकर डटकर घुटाई कराओ। यदि भारगी का ताजा रस न मिल तो फिर काढा बनाकर काम मे लो और फिर ४-४ रत्ती की गोलिया बनालो।

मात्रा—१ गोली। प्रात, दोपहर एव रात्रि को १-१ गोली दो। प्रात शतावरी के स्वरस या क्वाथ मे, दोपहर को महारास्नादि क्वाथ या अर्क मे, रात्रि को मधु मे चटा ऊपर से मलाई मिश्री युक्त गोदुग्ध पिलाओ।

(२१) स्मृतिसागर रस—शुद्ध हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध आवलासार गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, ताम्र-भस्म। ये पाचो औषधे समभाग मे मिलाकर घोट लें और इनमे वच एव ब्राह्मी के रस या काढो की २१-२१ भावनाये दे। फिर बाद मे मालकागनी के तैल की एक भावना दे, बस दवा तैयार है।

नोट—मालकागनी की भावना देने से पूर्व यह समझले कि यदि सबसे पहले मालकागनी की भावना दी जाय बाद मे फिर वच-ब्राह्मी की भावना दी जाय तो गोलिया बनाने मे सुविधा रहेगी। स्वर्णमाक्षिक भस्म मिलाने से *यह और अधिक प्रभावशील हो जायगा।*

इसकी मात्रा आधी से एक रत्ती है। मक्खन या घी के साथ दिन मे दो बार या ३ बार तक दे। शीतजन्य नये पक्षाघात मे, वैसे सभी प्रकार के जीर्ण पक्षाघातो मे प्रभावक है। महावात विध्वसन एव एकागवीर रस इसके मित्र है। तीनो को मिलाकर प्रयोग करने से वातरोग शीघ्र ही ठीक हो जाता है। स्निग्ध गुण भूयिष्ठ रसायन है।

(२२) एकागवीर रस—रस सिन्दूर, शुद्ध गन्धक, कान्तलोहभस्म, वग भस्म, नागभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल चूर्ण इन ११ औषधो को समभाग मिलाकर क्रमश. धीरे-धीरे १. त्रिफला, २ त्रिकुटा, ३ निर्गुण्डी ४ अदरख, ५ चित्रक-मूल, ६ सहजने की छाल, ७ कूठ, ८. आवला, ९. कुचला १० आक के फूल, ११ हारसिंगार—इन ११ चीजो के रस या काढो की ३-३ भावनायें दो और १-१ रत्ती की गोलियां बनालो। मात्रा—१ से २ गोली दिन मे ३ बार, रास्नादि अर्क या रास्नादि क्वाथ के साथ दें।

यह रसायन पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात, अर्धांगवात आदि सब प्रकार के वात रोगो को नि.सन्देह ठीक करता है। सर्वांगिक या स्थानीय चेतना के लुप्त हो जाने पर, उनकी सचालन-क्रिया मे व्यवधान पडने पर इस रस का उपयोग करिये। इससे मस्तिष्क शक्ति भी जाग्रत होगी।

(२३) पक्षाघात पर एक अमीरी प्रयोग—रस घृत-सफेद सखिया, पीला सखिया, दालचिकना, रसकपूर, शिगरफ, हिंगुलोत्थ पारद, रससिन्दूर और हरताल वर्की। ये आठो शोधित उत्तम चीजे १-१ तोला ले। खरल मे रससिन्दूर, पारा, शिगरफ को डालकर घोटलें। फिर शेष सारी चीजे डालकर घोटले। अन्त मे तीन तोला भुना हुआ सुहागा पीसकर मिलादें। फिर इसमें—कान्त लोह भस्म, चादी भस्म, लोह भस्म १-२ तोला। पिस्ता की गिरी, बादाम की गिरी, चिरौंजी, अखरोट की गिरी एक-एक सेर। जायफल, जावित्री, पाव-पाव भर। लौंग आधा पाव। ककड़ी की मिंगी, तरबूज की मिंगी, गुलाब के फूल आधा-आधा सेर। छोटी इलायची आधा पाव। इन सबको कूट पीसकर और ऊपर की दवा मे मिलाकर, उसमे ३ सेर उत्तम, ताजा, बढिया घी मिला दे।

एक चौड़े मुह के बडे बरतन को लेकर (पीतल की नाद हो) उसमे आधा पानी भरदे। ऊपर से एक मोटा कपड़ा बाध दें। इस कपड़े पर उक्त सम्पूर्ण औषध द्रव्य रखकर, ऊपर के किनारे पर गीली मिट्टी या गूथे हुए आटे की दीवार जैसी बनाकर, उस पर लोहे का बडा तवा या कढाई रख दे। तवे या कढ़ाई पर उत्तम कोयला की अग्नि रखें, जिससे कि घी तथा औषधो का तेल पिघल-पिघल कर नीचे के पानी मे टपकता चला जाय। बाद मे सारा चिकना भाग निकाल कर उसमे केशर और गोरो-चन १-१ तोला, कस्तूरी ६ माशा को अच्छी तरह से पीसकर मिला दें और चौड़े मुह के मर्तबान मे भरकर

रख ले। बस रस-घृत तैयार हो गया। इसकी मात्रा ५ से १० बूंद तक है। इसे मलाई के बीच मे रखकर निगल जाय और ऊपर से दूध मिश्री पिये। घी-मिश्री या दूध-घी-मिश्री या असमान,मधु घृत मे भी चाट सकते है। यह अमीरी योग पक्षाघात, अर्दित, मधुमेह, नपुसकता, वीर्य विकार, वात रोग प्रभृति रोगो को नष्ट करने के लिए रामबाण है। ध्वजभंग में इसे तिला की तरह मालिश के प्रयोग मे वेधड़क लीजिए।

पक्षाघात पर उत्तमोत्तम तैल

पूरा विवरण 'धन्वन्तरि' के पक्षाघात अंक—प्रथम भाग मे देखे। यहा नाम मात्र दिये हैं—

१. ग्रन्थिकादि तैल
२. माषादि तैल
३ गंगा मरिच तैल
४ श्वेत करवीराद्य तैल
५ तुम्बी निम्ब तैल
६ पाताल तैल
७. महाविषगर्भ तैल
८. कृष्ण मरिच तैल
९ एरण्ड पत्रादि तैल
१०. तितली तैल
११. बाबूने का तैल
१२. धत्तूर स्वरसादि तैल
१३ महानारायण तैल
१४. सिक्थादि तैल
१५. महाविष्णु तैल
१६. प्रसारिणी तैल
१७. कट्फल तैल
१८. वातारि तैल
१९. कुब्जा तैल
२० सैन्धवादि तैल
२१: कनकादि तैल

अर्दित रोग मे—आक्रांत मुख भाग पर अच्छी तरह तेल लगा दो, फिर ऊपर से उड़द की रोटी बनाकर बाध दो।

उडद की रोटी बनाने की विधि—एक माशे अफीम को लेकर पीस डालो और उसे ५ तोला पानी मे घोल लो अच्छी तरह घुल-मिल जाने पर उसमे पाव भर उडद के आटे को डालकर अच्छी तरह गूध लो। इसकी रोगाक्रात मुख भाग (कपोल) के बराबर रोटी बनालो। इसे एक ओर सेक लो और कच्ची ओर के भाग पर अष्ट-रग-तैल चुपड़कर रोगी के मुह पर बाध दो। ऊपर से रूमाल बाध दो।

अन्यान्य सभी वात-व्याधियो पर इसी ही प्रकार, उन-उन स्थानो पर रोटी बाधकर इसे काम मे लो। उत्तम-तेल उपाय है। गठिया, मन्यास्तम्भ भी मिटते हैं।

पक्षाघात में काम आने वाले क्वाथ

०. महारास्नादि क्वाथ—(२६ चीजे) रास्ना (बायमुरई) २ तोला। धमासा, खिरैटी का जड, एरण्ड की जड, अडूसे का पचाग, देवदारु, कचूर, सोठ, हरड की छाल, नागरमोथा, वच, चव्य, गिलोय, विधारा, सोठ की जड, सौंफ, गोखरू, असगंध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावर, छोटी पीपल, पियाबासा, पुराना धनिया, छोटी कटेली, बड़ी कटेरी १-१ तोला। सबको इमानदस्ते मे डालकर जौकुट करलो। फिर १२ पुडिया बना लो। आवश्यकता के समय एक पुड़िया को ३२ तोले पानी में धीमी आग पर पकाओ। ८ तोले जल शेष रहने पर उतारकर छान लो। योग्य औषधि के साथ दो।

२. महा पिप्पल्यादि क्वाथ (२७ चीजे)—छोटी पीपल, पीपलामूल, चव्य लालचित्रक की जड की छाल, सोठ, वच, काला जीरा, पाठा, इन्द्र जौ, एरण्ड के बीज, चिरायता, मूर्वा, सफेद सरसो, काली मिर्च, कायफल, कूट, भारङ्गी, वायविडग, पित्तपापडा, शुष्क मूली, कटकारी; गज पीपल, दुरालभा, अजवायन, अजमोद, काकनासा, हीग समभाग। हीग को छोड़कर शेष चीजो को बराबर-बराबर लेकर जौकुट करलो। और २-२ तो० की पुड़िया बनालो।

आवश्यकता पर उक्त रीति से क्वाथ करके बाद मे उसमे २-३ रत्ती भुनी हुई हीग मिलाकर योग्य औषधि के साथ रोगी को इसे अनुपान रूप मे पिलावे।

३. माष-बलादि क्वाथ—उडद की दाल, बला की जड, कौंच बीज, गन्धतृण, रास्ना, एरण्ड मूल छाल। सबको मिलाकर २ तो० लें तथा उक्त विधि से क्वाथ बना लें। इसमे भुनी हीग २ रत्ती और सैंधा नमक १॥



माशा मिलाकर रोगी को योग्यौषध के साथ अनुपानरूप मे दें।

४. रास्नादि क्वाथ—रास्ना, पुनर्नवा, सौठ, गिलोय, एरण्ड की जड़ ६-६ माशे लेकर उक्त विधि से क्वाथ बनाले। फिर इसमे छोटी पीपल का बारीक चूर्ण २ रत्ती और मिलालें। योग्यौषधि से दे। यह सप्तधातुगत-वात, आमवात एवं पूर्ण शरीर का वात मिटाता है।

५ माषादि क्वाथ—उड़द, कौच की जड, खरैटी की जड ६-६ माशे लेकर क्वाथ विधि से काढा बनालें। इसमे पाच रत्ती भुनी हुई उत्तम हीग और ५ रत्ती सेंधा-नमक मिलाकर योग्यौषधि से या यो ही दें।

६ माषादि क्वाथ न० १—उड़द, खरेटी की जड, पिठवन, रास्ना, असगन्ध, एरण्ड की जड, इनको ४–४ माशा लेकर काढा की विधि से काढा बना लो। इसे भी मासादि क्वाथ की भाति रोगी को पिलाओ। इससे मन्या-स्तम्भ, अर्दित, कर्णनाद आदि विकार मिटेगे। रोगी वेहोश हो तो इसकी ८-८ बूद की नस्य, दोनो नथुनो से रोगी को आध-आध घटे मे ३–४ वार तक दो।

७ दशमूल क्वाथ—वेल छाल, गभारी छाल, पाढल छाल, अरलू की छाल, गोखरू पचांग, छोटी कटेरी पचाग बड़ी कटेरी पचाग, पृष्ठपर्णी पचाग, शालपर्णी का पचाग। सबको बराबर लेकर जौकुट करलो। आवश्यकतानुसार २-२, ३-३ या ४–४ तो० की पुड़िया बनालो। इन्हे भी उक्त क्वाथ की विधि से तैयार करें। बाद मे इसमे भुनी हीग और सेंधा नमक मिलाकर रोगी को योग्य औषध के साथ देना चहिए।

८. एरण्डादि क्वाथ—एरण्ड की जड, गन्धतृण, कौच की जड, उडद, वरियारा ६-६ माशा लेकर काढे की विधि से काढा बनाओ। योग्योषध से दो। नस्य मे भी उपयोगी है।

९ कपिकछ्वादि वटी—कौच के बीज, खरैटी, एरण्ड की जड, सोठ, उड़द ६-६ माशा। इसका क्वाथ की विधि से काढा बनालो। इसमे २ माशा सेंधा नमक मिलाकर रोगी को नाक से पिलाओ। इससे वेहोशी, पक्षाघात, सिर के रोग, लकवा एव अन्यान्य वात विकार भी मिट जाते हैं।

१०. रास्ना-सप्तक क्वाथ—रास्ना, गिलोय, देवदार, अमलतास का गूदा, गोखरू, एरण्ड की जड, पुनर्नवा। इसको २२ तो० लेकर आधा सेर पानी मे पकाओ आधा पाव पानी शेष रहने पर उतार कर मल छानलो। इस काढे मे सोठ का चूर्ण डालकर पीने से वातविकार-जन्य दर्द ठीक हो जाते है, पक्षाघात लकवे मे सोठ मिलाना आवश्यक नही। योग्योषध के साथ काम में लो। अनेको वैद्य इसका खूब प्रयोग करते है।

११ महामञ्जिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, नागरमोथा कुडा की छाल, गिलोय, कूठ, सोठ, भारङ्गी, कटेरी, पंचाङ्ग, वच, नीम की छाल, दोनो हल्दी, त्रिफला, पटोल, कुटकी, दूर्वा, वायविडंग, विजयसार, चित्रक, शतावर त्रायमाण, छोटीपीपल, इन्द्र जौ, अडूसे के पत्ते, भांगरा, देवदारु, पाठा, खैरसार, लाल चन्दन, गिलोय, वरना छाल, चिरायता, बावची, अमलतास का गूदा, वकायन। करंज, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायण की जड, घमासा, सारिवा, पित्तपापडा। इन सबको बराबर-बराबर लेकर जौकुट कर लो और २॥–२॥ तो० की पुड़िया बनालो। इनकी क्वाथ विधि से तैयार करके काम में लो। क्वाथ मे २ माशे शुद्ध गूगल और थोड़ी छोटी पीपल का चूर्ण मिला दो।पक्षाघात मे पक्षाघात नाशक औषध के साथ दो उपदश जन्य पक्षाघात पर अत्यन्त प्रभावक है। कोढ, वातरक्त, उपदंश, वात रोगो पर भी उत्तम है। इस क्वाथ को और अधिक उत्तम बनाने के लिए इसमे—कचनार छाल, बबूल छाल, सालसा लकडी, सरसो का तेल भी मिलालो। बाद मे शहद तथा शर्वत उन्नाव मे दे।

पक्षाघात में विविध नस्य

१. पक्षाघात हर नस्य—चुकन्दर की जड, इन्द्रायण की जड १-१ तो०। कलौजी इस्पन्द (हरमल) ३-३ माशे। सबको पानी से सिल पर पीसकर कपडे मे छानकर निचोड लो। फिर ३-३ बूंद नाक के दोनो नथुनो मे डालो। इससे वेहोश रोगी होश मे आ जायगा और उसका रोग भी मिटने लगेगा। वेहोशी दूर न हो तो आध-आध घटे मे ३ वार तक इसी प्रयोग को फिर से करें।

२. अश्वगन्धादि नस्य—असगध, सैंधानमक, वच, मधुकसार, कालीमिर्च, छोटी पीपल, सोठ और लहसुन। सबको बराबर-बराबर लेकर कूट पीसकर कपडछन बारीक चूर्ण कर ले। आवश्यकता पर (पक्षाघात या लकवा में वेहोशी दूर करने के लिए) बकरी के दूध मे मिलाकर नस्य दें। नस्य मे चूर्ण की मात्रा २ रत्ती रखे। बकरी के दूध मे पतला करले। फायदा न०१ की तरह है।

३. मरिचादि नस्य—स्याहमिर्च, सहजने के बीज, वायबिडग और क्षुद्र तुलसी के पत्ते-सबको बराबर लेकर बारीक चूर्ण करले। इसकी मात्रा डेढ़ माशे की है। दोनों नथुनो में डालकर नस्य दें। कागज की नली बनाकर उसके द्वारा इस चूर्ण को नथुनो मे फूंक दे। इसके फायदा भी उपर्युक्त हैं।

४. महेन्द्र सूर्यरस (ज्ञानोदय के लिए श्रेष्ठ नस्य)—पारे और गधक की कज्जली करके (समभाग पारा और गधक लेकर खूब घोट डाले), फिर इसे लहसुन के रस मे अच्छी तरह पीसकर, बाद मे औषध से दूना कालीमिर्च का कपडछन चूर्ण मिलाकर और फिर से थोडा सा लहसुन का रस मिश्रण कर पीसकर रखले।

आवश्यकता पर इसे २ रत्ती की मात्रा मे लेकर और फिर अदरख के रस मे मिलाकर वेहोश रोगी को नस्य दो, नाक मे डाल दो। रोगी होश मे आजायगा। यह योग अन्य सभी प्रयोगो से तेज और शीघ्र प्रभावक है। कई वैद्य तो इसे आखो मे भी अजवा देते हैं। किन्तु सिर्फ नस्य से ही काम हो जाता है। इसके गुण भी अन्य नस्यो की भाति एवं उससे भी अच्छे हैं।

५. क्वाथ प्रकरण मे लिखे नस्य—(अ) एरण्डादि क्वाथ (क्वाथ न० ८) का नस्य सबसे हलका है। (ब) माषादि क्वाथ नं० १ (क्वाथ न० ६) का नस्य दे। अनुभूत, शास्त्रोक्त एव प्रभावक नस्य है। (स) कपिकच्छ्वादि क्वाथ (क्वाथ न० ९) का नस्य देना भी बडा अच्छा एव शीघ्र प्रभावक है।

६ चेतक नस्य—सौंठ एव लाहोरी नमक (सैंधा नमक) बराबर बराबर लेकर बारीक कपड़छन चूर्ण कर लो। इसकी नस्य देने से पक्षाघात एव लकवे के वेहोश रोगी होश मे आ जाते है। सरल एव निरापद नस्य है।

७. शुण्ठी मरिच नस्य—सौंठ एवं कालीमिर्च बराबर बराबर लेकर कूटकर कपडछन करलो। इसको सुघाने से पक्षाघात अर्दित वेहोशी मिटती है।

पक्षाघातहर प्रलेप

१ प्रलेप नं० १—कुचले के पत्ते, सौंठ और साभर का सीग। तीनों को बराबर लो। कुचले के पत्ते और सौंठ को पानी मे पीसो। शृङ्ग को पानी डाल-डालकर पत्थर पर घिसो। फिर इसका रोगी के शरीर पर लेप करो। इससे पक्षाघात, लकवा, गठिया एवं चूहे के काटे का जहर आदि अनेक रोग मिटते है।

२ प्रलेप न० २—कालीमिर्च ५० ग्राम लेकर उनका बारीक कपडछन चूर्ण करो। इसे २०० ग्राम सरसो के तेल मे मिलाकर कुछ देर तक आग पर पकाओ। इसका ताजा बना पतला-पतला एव सुहाता सुहाता गरम गरम लेप करने से कुछ दिन मे पक्षाघात ठीक होकर हाथ पैर चलने लगते हैं और काम करने लगते हैं। कारगर है।

३ गाजा भस्म लेप—जैसे ही कोई पक्षाघात से पीडित हो, फौरन ही १ तो० गाजा लाकर जला डालो और भस्म कर लो। इस भस्म को जहा जहाँ रोग का प्रभाव पडा हो वहा-वहा लगादो। फौरन ही आराम होता है। उत्तम योग है।

पक्षाघात नाशक स्वेदन प्रयोग

१. स्वेदन प्रयोग न० १—सम्भालू के पत्ते, अरनी के पत्ते, एरण्ड के पत्ते, सहजने की छाल, आक (अकौआ) के पत्ते ४०-४० तोला लेकर सबको कूट लें। फिर २० सेर पानी भरे हुए मिट्टी के चौडे मुह वाले एक बडे घड में उक्त सारी चीजे डालकर तेज आग पर पकावे। जब आधा जल शेष रह जाय तब आग बन्द कर दें।

उधर रोगी को एक बिना बिछौने की चारपाई पर लिटाकर ऊपर से कम्बल ओढा दे। कम्बल ऐसा हो जो चारपाई के नीचे जमीन से छूता हुआ लटकता रहे।

अब खाट के नीचे उक्त दवा का पका पानी किसी चौडे बरतन मे डालकर रखदें। दवा के इस गरमागरम पानी से भाप उठेगी। उसका रोगी के पीडित भाग मे लगना अत्यावश्यक है। भाप के लगने से रोगी को खूब पसीना आयगा।

स्वेदन के विषय मे ध्यान रखें कि—

१. सिर, कम्बल से बाहर खुला हुआ रखे।



२. भाप देने की क्रिया बन्द कमरे या कोठरी मे करें।

३. प्रथम दिन स्वेदन-कर्म १५-२० मिनट ही करे। बाद मे समय की अवधि धीरे-धीरे बढाई जा सकती है।

४ भाप देने के बाद, रोगी को लेटा रहने दें। पसीना भीतर ही भीतर किसी कपडे से पोंछते जायें। जब तक पसीना निकले तब तक शरीर ढका ही रहने दें।

५ जब पसीना आना बन्द हो जाय तो रोगी के शरीर पर बारीक पिसी हुई सोठ का चूर्ण मल दें, जिससे रोम छिद्र बन्द हो जायें।

६ इस रोगी को पथ्य मे मात्र दलिया दूध ही दें।

७ दूसरे दिन से प्रतिदिन रोगी के शरीर पर विष-गर्भ या नारायण तेल की नियमित मालिश करायें।

८ २-२ या ३-३ दिन बाद यह स्वेदन-क्रिया करें।

इस विधि के व्यवस्थित-प्रयोग से प्राय निश्चित रूप से लकवा, पक्षाघात, गठिया प्रभृति भीषण वातरोग सुविधा मे मिट जाते हैं। बढिया प्रभावक उपाय है।

२. स्वेदन प्रयोग न० २—जौकूट सोंठ, लहसुन ६-६ माशे। बकायन के पत्ते, सम्हालू के पत्ते पाव-पाव भर। सबको दो सेर पानी मे औटाओ। खूब अच्छी तरह से भाप निकलने पर रोगी को चारपाई पर लिटाकर ऊपर लिखी गई विधि से भाप दो। पूर्वलिखित पूरे नियमो का ध्यान रखो। लाभ भी पहिले प्रयोग की भांति हैं।

३. स्वेदन प्रयोग न० ३—सम्हालू के पत्ते, एरण्ड के पत्ते, आक के पत्ते, सहजने के पत्ते २०-२० तो० लेकर ३ सेर पानी मे पकाओ। तेज भाप निकलने पर न० १ की विधि से प्रयोग मे लें। इसका प्रयोग दस दिन तक लगातार करें। पसीना सूख जाने पर शतावरी तैल या नारायण तैल की मालिश करें।

नोट—भाप देते समय यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि भाफ दूर से लगे ताकि रोगी जल न जाय, उसके शरीर पर फफोले आदि न पडे। ऐसा हो जाने पर घी की मालिश कराये। अथवा (चिकित्सानुभव प्रकरण) मे लिखे गये, ऐसे ही प्रकरण के उपाय को काम मे लें।

४ उत्तम स्वेदन-योग—सम्हालू की पत्ती, थूहर की पत्ती, धतूरे की पत्ती, बकायन की पत्ती, सहजने की पत्ती, बेल की पत्ती प्रत्येक २०-२० तो० लेकर ४ सेर पानी मे पकाओ और स्वेदन विधि मे स्वेदन दो। पक्षाघातादि ठीक हो जायेंगे। इसे कम से कम ३-४ दिन काम में लेना चाहिए। आवश्यकता पर अधिक दिनो तक भी (२५ दिन तक भी) काम में लें।

स्वेदन-विधि इसी प्रकरण मे अन्यत्र देखें।

पक्षाघात पर १२ पाक अवलेहादि

१. भल्लातक-पाक—सिरा कटा हुआ भिलावा, बादाम की मिंगी, नारियल का गूदा ५-५ तो० लेकर कूट-कूटकर खूब बारीक कर लें। फिर १५० ग्राम मिश्री या शक्कर लेकर उसकी चाशनी बनाले। इस चाशनी मे उक्त औषध मिलाकर जमा ले। इसकी मात्रा आधा तो० की है। प्रति दिन गोदुग्ध से दे। यदि इसके प्रयोग के बाद शरीर मे खुजली मालूम होने लगे तो इसे एक दिन के लिए बन्द करदें। फिर १-१ दिन का अन्तर देकर प्रयोग करते रहे। पक्षाघात पर उत्तम है। इसे रोग होने के २० दिन बाद ही काम मे ले।

२. भल्लातक गुड मोदक—सिरा कटा हुआ भिलावा २॥ तो०। काले तिल ५० ग्राम। गुड १० तो०। सबको खूब कूट-कूटकर एक दिल करके १-१ तो० के मोदक (वटक) या लड्डू बना लो। प्रात, दुपहर, साय १-१ मोदक गोदुग्ध से दो। निरापद है। इसका प्रयोग २१ दिन तक करना चाहिए।

इन दोनो योगो के उपयोग से पक्षाघात, वातरोग, गठिया, अर्दित प्रभृति विकट-रोग सुविधा से मिट जाते हैं।

३. रसोन-पिण्ड—'पक्षाघात की लशुन चिकित्सा' प्रकरण मे देखें।

४. रसोनावलेह—'पक्षाघात की लशुन चिकित्सा' प्रकरण मे देखें।

५. रसोन-पाक—इससे भी 'पक्षाघात की लशुन-चिकित्सा' प्रकरण मे देखे।

६ अश्वगन्धा पाक—दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर १-१ तो०। जायफल, केशर, वंश-लोचन, मोचरस, जटामासी, लाल चन्दन, सफेद चन्दन,

जावित्री, पीपल, पीपलामूल, लौंग, कफोल मेढासिंगी, अखरोट, सिंघाड़ा, भिलावे के बीज, बड़ा गोखरू ३-३ माशे। नागौरी असगन्ध ३२ तोले। गाय का दूध ६ सेर। घी एक सेर। बत्तीस तो० असगन्ध का चूर्ण करके उसे गाय के ६ सेर दूध से पकाओ। पकते पकते जब गाढ़ा हो जाय तो उसे १ सेर घी मे भून डालो। फिर कपड़छन की हुई ऊपर लिखी २१ औषधें मिला दो और साथ ही रससिंदूर न० १, अभ्रक भस्म, नागभस्म और वगभस्म ३-३ माशे लेकर मिलालो और खरल मे डालकर खूब घोटो। अब ये एव ऊपरी की सारी औषधें मिलाकर रख लो तथा कलछे से खूब चलाकर एकदिल कर लो।

अब पाच सेर मिश्री की चाशनी बनाओ। इसमे ऊपर का सामान अच्छी तरह मिलाकर २-२ तो० के मोदक बनालो। एक एक करके रोज प्रात साय मोदक खिलाकर ऊपर से मिश्री मिला गोदुग्ध पिलाओ। इसके नियमित प्रयोग से पक्षाघात, गठिया, गाठ दर्द, जोड दर्द, अनेको वात विकार, प्रमेह, पित्तरोग, जीर्ण ज्वर, शोथ, गुल्म आदि विकट विकार नष्ट हो जायेंगे। साथ ही रोगी की अशक्ति भी मिटेगी। उसका बल-वीर्य बढेगा। नियमित लम्बे समय तक प्रयोग करते रहिये। निरापद, उत्तम वातनाशक प्रयोग है।

७. माजून कुचला—शुद्ध कुचला २॥ तो०, गुलगाजवा १॥ तो०, बडी इलायची, छोटी इलायची, कचूर, शकाकुल, सफेद चन्दन, आवला, बडी हरड प्रत्येक ४-४ माशे, ऊद, लौंग ४॥-४॥ माशे, उस्तखुद्दूस, गोदकतीरा, नारियल की गिरी, गाजागिरी प्रत्येक १३॥-१३॥ माशे। सबको कूट पीसकर कपड़छन करलो और सबके बराबर उत्तम मधु लेकर खूब अच्छी तरह करछुल-चम्मच से मिलालो (माजून की तरह बनालो) इसकी मात्रा ४ से ६ माशे है। प्रात खिलाकर ऊपर से १० तोला अर्क गाजवा पिलाओ। दोपहर एवं रात्रि को महायोगराज गूगल की २-२ गोलिया महारास्नादि क्वाथ से दें। रोगी के शरीर पर महानारायण तैल की मालिश करायें।

इसके प्रयोग से हठीले वातरोग, पक्षाघात, अर्दित, आदि विकार सरलता से हट जाते हैं। यह एक चिकित्सक महोदय का पूर्ण चिकित्सानुभव है।

८. पक्षाघातहर इन्द्रवज्र मोदक—पक्षाघात रूपी पर्वत को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए हमारे ये सुपरीक्षित मोदक इन्द्र के वज्र ही है। प्रयोग इस प्रकार है—

भिलावो को लेकर उनकी टोपी सरौते से काट लें। हाथो मे नारियल का तेल या घी खूब अच्छी तरह लगा कर यह काम करना चाहिए। उसको तोलकर आधा पाव लीजिए और शाम समय इन्हे एक सेर कच्चे गोदुग्ध मे भिगो दीजिए। प्रात इन्हे निकालकर अलग रख लीजिए। उधर कढाई मे आधा सेर घी डालकर उसे चूल्हे पर चढा दीजिए। धीमी आग द्वारा भिलावों को (जो अलग रखे हुए हैं) भून लीजिए। जब भिलावे फूलकर लम्बे-लम्बे हो जायें तो कढाई को नीचे उतार कर अच्छी तरह ठण्डी कर दीजिए और भिलावो को करछुल से निकालकर अलग रख दीजिए। अब गेहू की ताजी मैदा तीन पाव लेकर इन भिलावो के तले हुए घृत मे धीमी आग से खूब अच्छी तरह भूनिये। मैदा मे से जब सोंधी गन्ध आने लगे और वह सुर्ख रग की हो जाय तब नीचे उतार कर रख लें।

अखरोट की मिंगी (मगज अखरोट) मगज चिरौंजी (साफ छिली हुई चिरौंजी), सफेद तिल (धुली हुई), कागजी बादामो की गिरी, कसा हुआ खोपरा (नारियल) १०-१०तो० लेकर जौकुट करके शाम को तीन पाव गरमागरम गाय के दूध मे भिगा दें। प्रात सिल पर खूब महीन पीसकर, कढाई मे पाव भर घी डालकर धीमी आग से खूब अच्छी तरह से भूने। अब भुनी हुई मैदा और भुनी हुई मेवा को दोनो हाथों से मसद की तरह खूब रगड़-रगड कर मिला ले। फिर सवा सेर शक्कर की चाशनी बनाकर उसमे इसे मिलालें और ३-३ तो० के मोदक बनाकर रख लें। बडी बरनी मे रख लेना चाहिये। इन्हे ३ सप्ताह रख लेने के बाद फिर काम मे ले।

प्रात रोगी को एक मोदक खिलावें और ऊपर से मिश्री मिला हुआ गाय का दूध पिला दें। मोदक खिलाने के पहिले रोगी को थोडा (करीब आधा तो०) खोपडा नारियल खिला देना चाहिए। बाद मे मोदक खिलावें।

यह शक्तिवर्द्धक तथा पक्षाघात एव लकवा ठीक कर देने वाला उत्तम प्रयोग है। इसके प्रयोग से रोगी मे रोग प्रतिरोधक शक्ति आ जाती है, फलत रोग बढने तो हरगिज नही पाता। हा नियमित रूप से कम अवश्य होता जाता है।



रोगी को पथ्य मे—हलवा, पूड़ी, दूध, मलाई, घी, मक्खन आदि दे। मूंग की दाल, गेहू की रोटी, परवल का साग या लौकी का साग, पालक का साग आदि भी दे सकते हैं। किन्तु सुपाच्य पौष्टिक भोजन भी अवश्य देते रहना चाहिए।

(९) एरण्ड वटी एव पाक—एरण्ड के बीजो की मिंगी पाव भर लेकर उन्हे मट्ठी (छाछ) मे भिगो दो। तीन दिन तक उन्हे छाछ मे भिगोना चाहिए और प्रतिदिन पुरानी छाछ अलग करके नई छाछ भर देनी चाहिए। फिर चौथे दिन उसको पानी मे अच्छी तरह धोकर पाव भर घी मे तल लें। बिलकुल धीमी आग से तलें। पूरी तरह से सावधानी रहे कि एक भी बीज जलने न पाये और सारे के सारे बीज अच्छी तरह से तल जायें। फिर इसमे काली मिर्च, छोटी पीपल कुलिञ्जन १॥-१॥ तोला, सोंठ २॥ तो०, असली अकरकरा ६ माशा। जवाखार, नोनियाखार, सेंधा नमक, सौंचर नमक, लौंग, कलमीशोरा, नागकेशर, पीपरामूल, और रेणुका ७॥-७॥ माशा। इन सबका बारीक चूर्ण करके मैदा की चलनी में छानकर मिला लो और खरल में डालकर खूब घुटाई करो और फिर छोटे आवले के बराबर गोलिया बनालो।

प्रात साय दोनो समय १-१ वटक दूध से दो। २७ दिन मे पक्षाघात का वाह्याक्रमण समाप्त हो जायेगा।

पथ्य मे गेहू की रोटी, दाल, दूध, चावल, परवल का साग एव मेथी का साग दो।

यदि एरण्ड-पाक बनाना हो तो—पावभर एरण्ड के बीजो को १२ घटे दूध मे भिगोकर, फिर नये दूध मे पीसकर पिट्ठी बना लो। इसे आधापाव घी मे भून लो खूब अच्छी तरह सेक लो। घी निकलने लगेगा। अब इसमे जवाखार, नोनियाखार, सेंधा नमक, सौंचर नमक और कलमीशोरा को छोड़कर शेष चीजो का कपड़छन चूर्ण करके मिलालो और फिर से कढाई मे सेको। फिर दो सेर मिश्री की चाशनी बनाकर और उसमे ३ माशा घुटी केशर डालकर, पाक-विधि से पाक बनाकर एक थाली मे घी चुपड़कर इन्हे जमा दो और २-२ तोले की बरफिया काट लो। १-१ बरफी सुबह शाम दो और ऊपर से दूध पिलाओ। पक्षाघात, लकवा एव अन्यान्य वात-विकारो में ४१ दिन तक इनका प्रयोग कराओ।

(१०) मेंथी के मोदक—पक्षाघात जैसे भयानक रोग से युद्ध में विजय पाने के लिए 'दाना-मेथी' एक बड़ा सरल तथा प्रभावक शस्त्र है। इसके सामने वातरोगों का समूह टिक नहीं पाता। यहा पर मेथी-मोदक का प्रयोग दे रहे है—

आधा सेर दाना-मेंथी को लेकर कूटकर कपड़छन कर डालो। अब इसे तराजू मे लेकर तोल लो। जितनी मात्रा में इसका कपड़छन चूर्ण हो, उतनी मात्रा मे ही—

बढ़िया रवादार गुड, उत्तम गाय का घी बराबर-बराबर ले कर रख लें। इमामदस्ते मे अथवा मूसल पर अच्छी तरह से घी को चुपड कर उसमे मेंथी तथा गुड को डाल दें और कूटना शुरू करदो। फिर धीरे-धीरे घी डालते जाओ और खूब कूटते जाओ। जब दस हजार चोटें लग जायें तो हाथ से बत्ती (बत्ता) जैसा बनाकर १-१ तो० के टुकड़े काटलो और हाथ मे घी लगाकर मोदक बना डालो।

रोगी को १-१ मोदक दिन मे तीन बार दूध से देते रहो। १५ दिन मे ही पक्षाघात, लकवा भागने का नाम लेना शुरू कर देगा। नीरोग अवस्था मे भी जाड़ों के दिनो मे आधा आधा मोदक दूध के साथ चारों महीने लेते रहो। वात रोगो से बचे रहोगे।

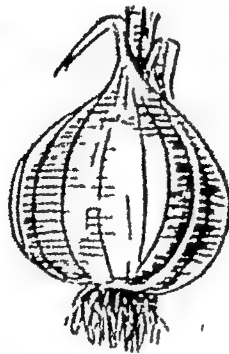
(११) शास्त्रीय एरण्ड-पाक या एरण्ड मोदक—एरण्ड के बीजो के छिलके दूर करके उन्हे ६४ तो० तौल लें। फिर अठगुने दूध में पकाकर उनका मावा करें। बाद मे सिलपर पीस डालें और ६॥ छटाक घी मे अच्छी तरह भून लें और उतार कर रखलें। फिर उसमे त्रिकुटा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पीपलामूल, चीता, चव्य, सौंफ, कचूर, बेलगिरी, अजमोद, दोनो जीरे, दोनो हल्दी, असगन्ध, खिरेंटी, पाढ, अरनी, वायविडंग, पोहकरमूल, बडा गोखरू, कूठ, त्रिफला, देवदारु, विधारा, काकरोली बीज, अरलू, शतावर १-१ तो० लेकर उनका चूर्ण बनाले और उसे घी मे अच्छी तरह भूनकर उक्त पिसे एरण्ड मे मिलादे। फिर पौने दो सेर चीनी की चासनी बनाकर और मिलाकर २-२ तो० के मोदक बनालें। यही एरण्ड पाक किंवा एरण्डमोदक है।

१-१ मोदक प्रात सायं दूध से दें। इनके प्रयोग से पक्षाघातादि मे तो लाभ होता ही है। साथ ही साथ वात रोग, उदर रोग और आफमान भी मिट जाते है। बड़े ही मार्के का प्रयोग है।

(१२) पक्षाघात विनाशक पाक—सन के बीज, पिस्ता और बादाम की गिरी तीनो को पाव-पाव भर लेकर रखो। फिर डेढ पाव पानी में भिगोकर रख दो। ३ घण्टे बाद बादाम की गिरी के छिलके अलग करके सबको मिलकर डालो और घोट पीसकर बारीक करलो।

अब इस पिट्ठी को कढाई मे रखकर आग पर रखदो और थोडा घी डाल डालकर खूब भूनो। धीरे धीरे डालते हुए पाव भर उत्तम घृत समाप्त कर देना चाहिए। अन्त मे तीन पाव शक्कर मिलाकर पाक विधि से (पाक के योग्य) तैयार कर लें और एक थाली मे घी चुपड कर जमा दे। बाद में १-१ तोले की बरफी काटले। इसकी मात्रा १ तो० की है। प्रात. साय २ बार मिश्री या शक्कर मिले दूध के साथ देते रहें। पक्षाघात दूर करने के लिए काम का पाक है।

पक्षाघात की लशुन चिकित्सा



'लशुन' या 'लहसुन' के द्वारा पक्षाघात की चिकित्सा बहुत अच्छे रूप में की जाती है। कई बन्धु उग्र गंध के कारण इसके प्रयोग में हिचकिचाते हैं। अत. उग्रगंध के शामक उपायो की भी चर्चा किये देते हैं—

१. लहसुनों की कलिया छीलकर अच्छी तरह धो डालो और दही में डालकर खाओ। गंध नही आयेगी। औषध प्रयोग मे यह काम न करें।

२. लहसुन खाने के बाद यदि मुंह से गंध आती हो तो-जरा-सा गुड और धनिया मिलाकर मुंह मे डाललें और चूसते रहे। गंध बिलकुल मालूम नही होगी।

पक्षाघात की लशुन चिकित्सा—

औषध के लिए 'लहसुन' ताजा बड़ी कन्द (गांठों) वाला तथा जिसकी गाठे मोटी और रस मे भरपूर हो, ऐसा लेना चाहिए। यदि एक पोथ वाला महाराष्ट्रियन लशुन मिल जाय तो परमोत्तम है।

१. लशुन दुग्ध योग नं० १—लहसुन की ७-८ कलिया जिनका वजन ३ से ४ माशा तक हो लेकर रखें। उनके ऊपर का छिलका निकाल कर खरल मे चटनी सी बारीक पीस ले। फिर गाय का दूध लेकर गरम करके उबाल लें। दो तोला दूध अलग निकाल कर इसमे शक्कर मिला दे। जब दूध सुहाता-सुहाता गरम रह जाय तो इसमे पिसा हुआ लहसुन मिला दे और चम्मच से हिलाकर पी जाय और ऊपर से इच्छानुसार दूध पीवें।

ध्यान रहे कि खौलते दुग्ध में कभी लहसुन न मिलावें अन्यथा उसके गुण नष्ट हो जायेंगे।

इस प्रकार दिन मे दो बार इसका सेवन करें। तीन दिन बाद मात्रा आधा तोला तक कर दें। एक सप्ताह बाद पौन तोले से १ तोले तक कर दे। आगे ऐसे ही बढ़ा-बढ़ाकर २॥ तोले तक कर सकते हैं। फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे घटाते जाये।

इससे पेशाब खुलकर आयेगा। दस्त भी साफ आने लगेगा। शरीर मे चेतना शक्ति प्रतिदिन बढने लगेगी। पक्षाघात का प्रभाव धीरे-धीरे समाप्त होता जायगा। बढा हुआ रक्त का दबाव भी कम होकर ठीक हो जायगा। अधिक रक्तचाप होने पर उत्तम कारगर है।

इसका प्रयोग एक माह से छह माह तक कर सकते हैं। हा पित्त प्रकृति वाले इसकी मात्रा कम रखते हुए युक्तिपूर्वक उपयोग मे लें। इसके प्रयोग से लाभ ही लाभ दिखाई दिया है।

२ लसुन दुग्ध योग नं० २—एक पोथीवाला लहसुन लेकर उसे साफ करके (छिलके उतार कर) सिल पर बारीक पीस लो। फिर इसे चाट जाओ और ऊपर से गुनगुना गोदुग्ध शक्कर मिलाकर पियो। अब दूसरे दिन दो लशुनो की चटनी बनाकर चाटो और ऊपर से धारोष्ण गोदुग्ध पियो। फिर तीसरे दिन, चौथे दिन ४, इस तरह ग्यारह लशुन तक बढाओ और दूध बढा-बढ़ाकर पीते जाओ। फिर बारहवे दिन से १-१ क्रम से लशुन घटाते जाओ और अन्त मे बन्द कर दो। एक सप्ताह बाद फिर ऐसा ही प्रयोग करो। इससे पक्षाघात का प्रभाव



समाप्त होकर शक्ति आ जायगी। ब्लडप्रेसर भी ठीक हो जायगा। सिर का भारीपन एव अनिद्रा भी मिट जायगी। भूख अच्छी तरह लगेगी और दस्त भी साफ होता रहेगा।

३ लशुन दुग्ध योग न० ३—प्रथम दिन १॥ माशे लशुन की चटनी चाटकर आधापाव दूध पियो। दूसरे दिन ३ माशे लहशुन को चाटकर पावभर दूध पियो। तीसरे दिन पहिले ३ माशे और चटनी चाटकर ऊपर से आधापाव दूध पियो और फिर ३ माशे और चटनी चाट कर पावभर दूध पीजाओ। चौथे दिन एक तोला चटनी बनाकर रखो। पहिले ३ माशे चाटो ऊपर से १ छटाक दूध पियो फिर ३ माशे और चाटो और ऊपर से आधापाव दूध पियो। अन्त मे ६ माशे चटनी चाटकर पावभर दूध पी जाओ। इस तरह ६-६ माशा रोज बढाते-बढाते तीन तोले तक ले जाओ और दूध की मात्रा भी बढा-बढाकर पीते जाओ। फिर इसी प्रकार धीरे धीरे घटाना शुरु कर दो। बडा ही सरल, निरापद एवं लाभप्रद उपाय है।

इससे वृद्धावस्था मे भी होने वाला पक्षाघात, लकवा, अर्दित, अर्धांगवात, गठिया ठीक हो जाता है। रक्तवाहनियो का काठिन्य मिट जाता है और रक्तचाप भी ठीक हो जाता है।

४. लशुन दुग्ध योग न० ४—बिलकुल कच्चे लहशुन को लेकर इसकी २ कलियो के छिलके निकालकर चबा जाओ और ऊपर से गुनगुना दूध पियो। दूसरे दिन ३ कलिया लो और १-१ कली चबाचबाकर दूध पीते जाओ। तीसरे दिन चार कलिया लो और साफ करके १-१ कली चबाते जाओ और ऊपर से दूध पीते जाओ। इस तरह २१ कलियो तक बढाओ और दूध की मात्रा बढाते जाओ। फिर इनको इसी तरह घटाओ और अन्त मे २ कली तक आ जाओ। सरल साध्य पक्षाघात का नाम निशा भी मिट जायगा। कष्ट साध्य एव रक्तचापाधिक्य वाले पक्षाघात मे भी लाभ होगा, किन्तु कसर रह जाय तो एक बार फिर ऐसे ही कर डालिये। याद रहे कि कच्चा लशुन ही विशेष लाभप्रद होता है। ऐसे लशुन के प्रयोग काल मे लालमिर्च, कालीमिर्च, छौंकी या तली हुई कोई भी चीज नहीं खानी चाहिए। रोटी के साथ मक्खन या शुद्ध गोघृत अवश्य लीजिये।

५ लशुन छिला एव पिसा हुआ १॥ माशे, मक्खन ३ माशे, दूध आधा पाव। तीनों को मिलाकर पिओ। या लशुन की चटनी में मक्खन मिलाकर चाटो और ऊपर से गोदुग्ध पियो। धीरे-धीरे लशुन, चटनी, मक्खन और दूध की मात्रा इसी विधि से बढाते जाओ और लशुन चटनी २ तोले, मक्खन ४ तोले और दूध डेढ सेर तक ले जाओ। बाद मे इसी अनुपात से घटाते जाओ और फिर बन्द कर दो।

पक्षाघात, धमनीकाठिन्य, वातरूक्षता, गैस का बनना, शरीर का भारीपन, गठिया, उरुस्तम्भ, और वातरोग, ज्वर प्रभृति को अवश्य दूर करता है।

६ लशुन तिलतैल योग—लहशुन को साफ करके उसकी चटनी बनालो। एक तोले चटनी हो तो ६ माशे शुद्ध तिल तैल मे मिलाकर प्रात चाट जाओ। २१ दिन चाटने से पक्षाघातादि विकार एवं विषमज्वर दूर होंगे। उत्तम शास्त्रीय प्रयोग है।

नोट— लहसुन की चटनी चाटने मे या कच्चा लहसुन चबाने मे यदि गन्ध प्रतीत होने से हिचकिचाहट हो तो नाक को अगूठे और अगुलियो से बन्द करके फिर चाटो या चबाओ। गन्ध मालूम नही होगी। स्वाद भी बुरा न लगेगा।

७ लशुन सिता नवनीत योग—आधा तोला साफ किया हुआ लहसुन, एक तोला मक्खन, दो तोला मिश्री। तीनो को मिलाकर खरल मे घोट डालो और चटनीवत् बनाकर तैयार कर लो। दूसरी ओर मिश्री एवं ३ माशे असगन्ध चूर्ण मिला हुआ आधा सेर दुग्ध रखो। चटनी चाटते जाओ। २१ दिन के प्रयोग से साधारण पक्षाघात ठीक हो जायगा। साथ ही पक्षाघात के उपद्रव भी समाप्त हो जायेंगे।

८ लशुन शतावर योग—लहसुन ३ माशा, शतावर का चूर्ण १ तोला। दोनो को खरल मे डालकर घोटलो। आधा सेर शक्कर मिले दुग्ध मे प्रात साय पियो। पथ्य मे हलका सुपाच्य अन्न लो। पक्षाघात, कान से कम सुनना, शरीर का भारापन, सिर पर वजन सा रखा हुआ प्रतीत होना प्रभृति विकार २१ दिन सेवन करने से दूर हो जायेंगे।

९. लशुन केशर योग—६ माशा उत्तम लशुन को लेकर साफ करके खरल में पीसकर चटनी बनावें। इसे एक कपड़े में रखकर रस निचोड़ ले। इस रस मे उत्तम काश्मीरी केशर ४ रत्ती भिगोदे। आधा घंटे बाद केशर को सिल पर चन्दन की तरह घिस डालें। इसमे मक्खन मिलाकर चाटें और ऊपर से दूध पियें।

इससे अशक्ति के साथ पक्षाघात, अर्धांगवात, नीद न आना, वात विकार के कारण शरीर कष्ट प्रभृति दूर होगे। यदि इसे मकरध्वज के साथ दिया जाय तो भयानक एव कष्टसाध्य प्रतीत होने वाला पक्षाघात भी ठीक हो जायगा। सब ऋतुओ मे उत्तम रहता है। इसे शरीर पर मलवाना भी चाहिये।

१० लशुन औषध योग—प्रातः साय शतावर चूर्ण ३ माशे, असगध चूर्ण ३ माशे–दोनो को मिलाकर दूध से ले। दोपहर को भोजन के साथ लहसुन ले। ऐसे ही शाम को भोजन के साथ लहसुन लें। लशुन की मात्रा बढाते जायें। रोटी, आवला एव लहसुन का प्रयोग भोजन में करें। सैंधानमक एव मक्खन का भी उपयोग कर सकते हैं। इससे पक्षाघात बड़ी सरलता से ठीक हो जाता है। मालिश भी करामें पूर्ण आराम करने दें।

११ लशुन मधु योग (पक्षाघात पर)—लहसुन को छीलकर अच्छी तरह कूट पीसलो और फिर इसमे शहद की मात्रा बराबर रखो। प्रारम्भ मे १॥ माशे लशुन की चटनी रखकर फिर धीरे-धीरे आधा-आधा माशा करके एक तोल तक बढ़ालो। साथ ही लशुन के रस का शरीर पर लेप भी करदो। धीरे-धीरे रोग आराम होता जायगा। रस को गरम करके लगाना चाहिये।

१२ लशुन स्वरस मधु योग–लहसुन को साफ करके कूटकर, कपड़े मे दबाकर निचोड लो। इस स्वरस मे मधु मिलाकर प्रात. साय चटाओ। लहसुन का स्वरस ३ माशे और मधु ६ माशे लेना चाहिए।

२१ दिन के प्रयोग से ब्लडप्रेशर कम हो जायगा और पक्षाघात घटता जायगा। नीद आने लगेगी और भूख भी बढ़ने लगेगी। बहुत सरल योग है। रोगी के हाथ पैरो पर ताजा लशुन रस भी चुपड दो। रस को निकाल कर कटोरी मे गुनगुना करके फिर चुपडना चाहिए।

१३. लशुन स्वरस तिल तैल योग (लशुन तैल)—लहसुन के ? तोले स्वरस मे, चार तोला तिल तैल मिलाकर पकाओ। तैल मात्र रह जाने पर उतार कर छानलो। इस तैल की प्रात साय मालिश करने से पक्षाघात, लकवा वातरोग प्रभृति दूर हो जाते है।

नोट—चाहे तो आप तिल तेल के स्थान पर सरसो के तेल का भी प्रयोग कर सकते है। नारियल के तेल का प्रयोग करना भी अच्छा है। प्राय चिकित्सा-शास्त्र मे तिल तेल का ही विशेषतया उल्लेख है।

१४ दर्द नाशक लशुनादि तेल—लहसुन ६ माशा। अजवायन ४ माशा दोनो को सिल पर खूब बारीक पीसो। फिर एक बड़ी कटोरी मे ४ तोला सरसो का तेल डालकर उसमे इसको मिला दो और आग पर पकाओ। जब सब सूख जाय और तैल मात्र शेष रह जाय तो कटोरी को आग पर से उतार लो और ठण्डा होने पर छान लो। शीशी मे भरलो।

इस तेल की मालिश करने से पक्षाघातजन्य शरीर दर्द मिट जाता है। प्रात सायं धीरे-धीरे मालिश करनी चाहिए। साथ ही साथ अन्य वात दर्दो पर भी प्रभावदर्शक है।

१५. रसोन कल्क तिल तैल प्रयोग—एक तोले लहसुन को लेकर साफ करलो और उसकी बारीक चटनी बना डालो। फिर उसे समभाग तिल तैल मे मिलाकर रोगी को चटा दो। इससे भयकर वातरोग, विषम ज्वर (इठी भी) पक्षाघात प्रभृति मिटेंगे।

पक्षाघात का रोगी इस लशुन की चटनी को नवनीत (मक्खन) या समभाग घी के साथ भी ले सकते है।

शास्त्रीय सुपरीक्षित योग है। इसका प्रात साय दोनो समय भी प्रयोग कर सकते है। एक पोथी वाला लहसुन और भी उत्तम रहता है।

१६ लशुन-दुग्ध योग न० ५—एक पोथी का लहसुन लेकर उसे गाय के दूध के साथ पीसो और फिर पकाकर खाओ। ऐसे धीरे-धीरे मात्रा बढाते जाओ और २ तो० तक लसुन और आधा सेर तक दुग्ध (गोदुग्ध) ले जाकर पकालो और खाते-पीते रहो। पक्षाघात का प्रकोप बराबर घटता जायगा।

१७. लशुन चूर्ण—सूखा लहसुन २ छटांक, सैंधा-



नमक, कालानमक सोंठ, काला मिर्च, छोटी पीपल और हीरा हींग प्रत्येक ६-६ माशा।

हीरा हींग को भून लो शेष चीजो का वारीक चूर्ण करके अन्त मे हीग को भी मिलाकर खूब घोट डालो।

हीरा हीग को भून लो। शेष चीजो को वारीक चूर्ण करके अन्त मे हीग को भी मिलाकर खूब घोट डालो।

इसकी मात्रा एक माशे की है। एक महीने तक रोगी को रोज प्रात. साय खिलाओ। ऊपर से रास्नादि क्वाथ या दशमूल क्वाथ पिलादो। नवीन एव वाह्य पक्षाघात मे उत्तम योग है।

१८. रसोन-पिण्ड—एक वडे सफेद कुम्हडे (पेठे) को लेकर उसके डठल को काटकर उसमे छेद करलें। उसके अन्दर से वीजादि निकाल कर, उसमे एक पोत वाला लहसुन जितना भी भर सकें, भर दे। फिर काटे हुए खूँट को पुन डाट की भांति लगाकर ऊपर से कपरौटी करदें या गेहू का गूँथा हुआ आटा १-१ अ गुल चढावें।

इसे पुटपाक की भाति कण्डो मे रखकर पका लें। जब आटा जल जाय या कपरौटी लाल हो जाय तो पेठा वाहर निकाल कर ठण्डा होने दें। फिर साफ करके भीतर से लहसुन व पेठा निकालकर एक वडे खरल मे डालकर खूब घोट लें।

फिर एक वडी कढ़ाई लें। इसमे पहले आधा सेर उत्तम तिल-तैल डालें और आग पर खूब गरम करें। फिर उसमे हीग, स्याह जीरा, राई, लौंग, और दालचीनी ३-३ माशे लेकर इनका चूर्ण करके कढाई मे डाल दें। १५ सैकेण्ड वाद ही पूर्वोक्त पिसे लहसुन व पेठे को डालकर इस कढाई मे खूब पकावें पक जाने पर नीचे उतार लें और इसमे सौंफ, काली मिर्च, पीपल, अकरकरा, तज, तेजपात, स्याहजीरा, अजवायन, पीपलामूल धनिया और जीरा १-१ तोला, घी मे भुनी हुई हीरा हीग ६ मासे, सेंधानमक ३ तोला—इन सवका चूर्ण करके डाल दें और खूब मिलालें। वाद मे अच्छी तरह से ठडा हो जाने पर किसी मर्तवान या काच की वरनी मे भरकर सुरक्षित स्थान पर रखलें।

इसे प्रात साय २-२ तोले की मात्रा मे पक्षाघात या अर्दित के रोगी को खिलावें। दो माह तक प्रयोग करते ही रहे चाहे रोग विल्कुल ही ठीक क्यो न हो गया हो।

इससे गठिया, लकवा, सूजन आदि विकार भी मिटते है।

१६ रसोनावलेह—एकपुतिया लहसुन को एक सेर लें। उसके छिलके उतार ले और फिर उसे सिल पर खूब वारीक पीस लें।

एक कढाई मे पावभर उत्तम गोघृत डालकर उसमें उक्त पिट्ठी को डालकर धीमी आग मे करछुल से चला-चलाकर अच्छी तरह भून डालो। वादामी-रंग का हो जाने पर इसे चूल्हे से नीचे उतार लो।

उधर एक कढाई मे वढिया पुराना गुड़ २॥ सेर लेकर पानी डालकर, चाशनी वनाओ। इसमे पंसारी हरड, वडी हरड, आवला, लौंग, जावित्री २-२ तोला। जायफल, रतनजोत, अकरकरा, वडी इलायची, छोटी इलायची, पत्रज, नागकेशर, छोटी पीपल और तज १॥-१॥ तोला। केशर एक तोला। सवको अलग-अलग खूब वारीक करके मिला लो और पाक वना लो और एक अच्छे अमृतवान (मर्तवान) में भरकर ढक्कन लगादो, ऊपर से कपडे का मौंडा वाधकर डोरी से कस दो। इसे किसी धान के या अन्न के ढेर मे गाडकर तीन दिन तक रखा रहने दो। वाद मे निकालकर काम मे लो।

इसकी मात्रा एक तोले की है। प्रात सायं दोनो ही समय दो। ऊपर से गोदुग्घ पिला दो।

पक्षाघात रोगी के लिये अमृत है। अन्य वातरोगो मे भी मुफीद है। काफी दिन तक वेधड़क व्यवहार करते रहो।

२० रसोन-पाक—शतावर, रास्ना, अडूसा, गिलोय, कचूर, सौंठ, देवदारु, अजमोद, चित्रक, सौफ, साठी, हरड, वहेडा, आवला, पीपल, वायविडग—प्रत्येक १-१ तोला लेकर सवका अच्छा वारीक कपडछन चूर्ण कर डालो।

लहसुन की साफ की हुई कलिया ६४ तोले, गाय का ताजा दूध ५ सेर, लहसुन की साफ की हुई कलियों को रात मे छाछ या मठे मे भिगो दो। छाछ इतनी होनी चाहिए कि कलिया अच्छी तरह से खूब डूब जायें। प्रात कलियो को छाछ मे से निकालकर सिल पर खूब वारीक पीस डालो और ५ सेर गाय के दूध मे पकाओ। पकते-पकते

जब वह गाढा होने को आ जाय तो उसमे १ तोला गाय का घी मिलादो और खूब भूनकर नीचे उतार लो। फिर उसमे उक्त १६ औषधियो का वारीक चूर्ण करके मिला लो और घी मे खूब भून डालो।

अब इसे आग से नीचे उतारकर, उसमे मधु या पुराने गुड की चाशनी मिलाकर कलछे से खूब चला-चलाकर एकदिल करलो। बस, पाक तैयार है। इसे मर्तवान या वरनी मे भर लो। अच्छी तरह ठडा हो जाने के वाद ही भरना चाहिए।

इसको वलानुसार एक से ढाई तोला तक प्रतिदिन खाने से अर्धांग, पक्षाघात, लकवा, आक्षेपक वात, हृद्रोग, सर्वांगवात, सधिवात, गठिया, कमरदर्द प्रभृति विकार शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं। इन व्याधियो को मिटाने के साथ-साथ यह प्रयोग शरीर को पुष्ट एव वलिष्ठ भी बनाता है। शास्त्रीय सुपरीक्षित योग है।

पक्षाघात पर गूगल चिकित्सा
(गूगल के २१ योगो सहित)

गूगल-युक्त औषधि बनाने के लिए—

शोधित-गूगल के निथरे हुए द्रव भाग मे डालने योग्य औषधो को कूटकर और कपडछन करके डाल दो। फिर इमाम दस्ते मे घी या अण्डी का तेल चुपडकर उसमे डाल दो और लोहे के कूटने पर तेल या घी चुपडकर खूब चोटें दिलवाओ। वीच-वीच मे घी या एरण्ड तैल (जैसा आवश्यक हो) थोड़ा-थोडा करके डलवाते जाओ और कुटवाते जाओ। जितनी अधिक चोटें लगेगी, औषध उतनी ही उत्तम तथा प्रभावपूर्ण वनेगी। यहा एक बार गूगल वाली औषध तैयार करने की तरकीव लिख दी है। वार-वार नही लिखा है इस पद्धति से गूगल वाली औषधें तैयार करलें। सुपरीक्षित अनुभूत उपाय है। साफ किये हुए अण्डी के तेल का प्रयोग औषधि वनाते ममय करना, घी के प्रयोग से अच्छा प्रमाणित हुआ है।

आवश्यक सूचनायें—

१ जिस कढाई मे गूगल को शुद्ध किया हो, काम हो जाने के वाद उसे गोवर से माजकर साफ कर ले शीघ्र साफ हो जायेगी।

२. गूगल को गोली बनाने के पहले हाथो-अगुलियो मे घी लगा लेना चाहिए।

विशेष सूचना—

गूगल के हजारो प्रकार के योग है। किन्तु यहा पर पक्षाघात रोग मे प्रयुक्त होने वाले प्रयोगो को ही दिया जा रहा है।

गूगल परिचय—

१ असली गूगल का रग नवीन हालत मे पीला और पुराना होने पर काला हो जाता है।

२. असली गूगल अग्नि पर रखने से एकदम नही जलने लगता। पहिले वह फूलता है फिर उसमे से वारीक वारीक टुकडे फूलते है।

३ असली गूगल की डली को तोडने मे वह टूट जाती है।

४ असली गूगल को पानी मे डालने से हरी झाई लिए हुए सफेद रग का द्रव वन जाता है।

गूगल शोधन—

गूगल (महिषाक्ष-गूगल) को लेकर साफ करलो, तिनके वगैरह निकालकर फेंक दो। फिर

१ गिलोय का स्वरस, या—
२. गिलोय का काढा या—
३, त्रिफला का काढा, या—
४ उत्तम गोदुग्ध (गाय का दूध)

लेकर उसमे डाल दो। इसकी मात्रा गूगल मे अठगुनी होनी चाहिए। फिर इसे धीमी आग पर पकाओ। जव गूगल गल जाय तब धीरे-धीरे ऊपर का द्रव भाग निथार लो या छान लो और नीचे का वचा हुआ कूडा करकट छोड दो। वाद मे इस निथारे हुए गूगल-द्रव को, एक कढाई मे घी चुपड़कर डाल दो और आग पर चढा दो और कलछी से चला-चलाकर गाढा करलो। कलछी से चलाते नही जाओगे तो गूगल जल जायगा।

वस शुद्ध गूगल हो गया। इसे रेण्डी (अण्डी) का तेल दे-देकर (इमामदस्ते मे रण्डी का तेल चुपडकर) खूब चोटे दिलवाओ।

नोट—दूध मे शुद्ध कर लेना सवसे सरल एव अच्छा उपाय है।

(१) द्वयविंशतिक गूगल—पीपल, पीपलामूल, सोंठ,



चव्य चित्रक, पाठा, वायविडंग, इन्द्रजो, हींग, वच, भांग, मुलहठी, रेणुका के बीज, गजपीपल, अतीस, राई, सफेद जीरा, अजमोद प्रत्येक द्रव्य एक तोला। हरड, वहेडा, आवला १३-१३ तोला। सबको बारीक कूट पीसकर बारीक छानलो। बाद में भैंसा गूगल शुद्ध करके ५७ तोला मिलालो। फिर घी या एरण्ड तैल डालकर ८ घंटे लगातार मूसल से खूब कुटवाओ और बाद मे मटर के बराबर गोलिया बनालो। १ से २ गोली प्रात, दुपहर, साय रोगी को रास्नादि या दशमूल क्वाथ से दो। अर्दित, पक्षाघात दोनो ही मिटेंगे। रोग ठीक हो जाने पर भी एक डेढ माह तक और भी देते रहो।

(२) जयपालादि गूगल—शोधित एवं जीभ निकाला हुआ जयपाल (जमालगोटा) एक तोला, राई १॥ तोला, शुद्ध गूगल तीन तोला। सबको अगूरी सिरके में घोटकर चने के बराबर की गोलिया बनालो। १-१ गोली प्रात सायं रास्नादि क्वाथ से दो। साथ ही वातनाशक तैलो की मालिश भी कराते रहो।

इससे पक्षाघात, पक्षाघात के साथ की कब्ज एवं अन्यान्य विकार भी धीरे-धीरे मिटते जाते हैं। एक अनुभवी चिकित्सक ने इसका नाम 'पक्षाघात नाशक वटी' रखा हुआ है।

(३) योगराज गूगल—सोंठ, पीपलामूल, चव्य, कालीमिर्च, चित्रक, भुनीहींग, सरसो, अजमोद, वच, सफेद जीरा, पाढ, स्याह जीरा, समालू के बीज, इन्द्रजो, वायविडङ्ग, गजपीपर, कुटकी, अतीस, भारङ्गी की जड़, मरोड फली १-१ तोले। त्रिफला २० तोले, गूगल ६० तोले। गूगल को शुद्ध करके उसमें शेष चीजो का बारीक कपडछन चूर्ण मिलादो। फिर लोहे की कढ़ाई मे, लोहे के डण्डे (कुटने) से खूब कूटो। बीच मे थोड़ा थोडा एरण्ड तैल या घी भी डालते जाओ। काजल जैसा काला मसाला होते ही १-१ माशे की गोलिया बनाकर बरनी मे भरलो। योग्यानुपात से योग्य मात्रा मे ३ से ६ माशे तक पक्षाघात आदि वात विकारो मे काम मे लो।

(४) गुग्गुलु प्रयोग (पक्षाघातहर)—त्रिफला (हरड, वहेडा, आवला), नीम की छाल, अडूसा, परवल। सबको ६-६ माशे लेकर ३२ तोले पानी मे पकाकर काढ़ा बनालो इस काढे मे शोधित गूगल १ माशा डालकर घोल लो। ऐसे ही प्रात. सायं रोज २१ दिन तक पियो। पक्षाघात, अशक्ति, वातरोगादि मिटेंगे।

(५) योगराज गूगल (द्वितीय प्रकार)—सोंठ, काली मिर्च, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रक, भुनी हींग, अजमोद, पीली सरसो, जीरा, स्याह जीरा, संभालू के बीज, इन्द्रजो, पाठा, वायविडंग, गज पीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच, मूर्वा, देवदारु, कूठ, रास्ना, नागरमोथा, सैंधा नमक, छोटी इलायची, गोखरू, धनिया, हरड, बहेडा, आवला, दालचीनी, खस, जवाखार सबको समभाग लें। फिर कूट पीस कर इन सबका बारीक चूर्ण करले। फिर चूर्ण के बराबर शोधित गूगल लेकर मिलाले और घी दे-देकर ३ दिन तक अच्छी कुटाई करावे। और मटर जैसी गोलिया बनाले।

मात्रा—२ से ४ गोली तक, दिन मे दो बार योग्य क्वाथ से दे। रास्नादि या महारास्नादि क्वाथ उत्तम रहते हैं।

(६) लघु योगराज गूगल—सोंठ, काली मिर्च, पीपर, पीपलामूल, भुनी हींग, अजमोद, कुटकी, वायविडंग, गजपीपल, देवदारु, रास्ना, गोखरू, हरड, वहेडा और आवला—सबको समानभाग लेकर, खूब कूट-पीस लो और बारीक चूर्ण कर लो, कपडछन कर लेना ही ठीक रहता है। फिर इसमे समभाग शुद्ध गूगल मिलाकर ३ दिन तक साफ रेंडी का तेल दे देकर (खूब चोट दे-देकर) डट के कुटाई कराओ और मटर के बराबर गोलियां बना लो।

मात्रा—२ से ३ गोली तक। रास्नादि क्वाथ से प्रात साय देते रहो। पक्षाघात के ठीक हो जाने पर भी इसे देते रहो। दुबारा उस रोग का हमला होने का खतरा नही होगा।

(७) महायोगराज गूगल—सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूल, भुनी हींग, अजमोद, सरसो, जीरा, कलौंजी, सम्हालू के बीज, इन्द्रजो, पाठा, वायविडग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारङ्गी, वच, मूर्वा सब १-१ तोला, कुल २० तोला।

हरड, वहेडा, आमला प्रत्येक १३-१३ तोला और ४-४ माशे।

शोधित गूगल ६० तोला। बंगभस्म, चांदी भस्म, नागभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, मल्लभस्म और रससिन्दूर प्रत्येक ४-४ तोला। सबको अच्छी तरह देख-शोध-परख कर लेकर रख ले। पहिले गूगल का शोधन करले। फिर काष्ठादि औषधियो का कपड़छन चूर्ण कर डाले।

बाद मे उनमे भस्मो को मिलाकर थोडी देर तक घोट ले फिर एक बड़े पत्थर के मजबूत खरल मे घी चुपड़कर गूगल मिले समस्त मसाले को डाल दे और थोड़ा-थोडा घी डाल-डाल कर कूटे। एक लाख तक चोटे लगावे तो परमोत्तम है।

फिर मटर के बराबर गोलियाँ बनालें। मात्रा १ से दो गोली तक है। दिन मे २ बार दें।

वातव्याधि मे महारास्नादि क्वाथ के साथ दें। तीव्र वातव्याधि मे महायोगराज गूगल १ से २ माशे तक लेकर छटाकभर एरण्ड के साफ तेल मे मिलाकर गरम करके आधा सेर गरम दूध मे मिश्री मिलाकर रोगी को पिलादें। भयंकर वातव्याधि भी एक सप्ताह मे अवश्य मिट जायेगी।

एक प्राचीन अनुभवी चिकित्सक का तो यह मत है कि ऐसा पक्षाघात का कोई भी रोगी नही होता, जो महायोगराज गूगल, एरण्ड तेल एव महारास्नादि क्वाथ के प्रयोग से ठीक न किया जा सके।

(८) सिंहनाद गूगल—हरड, बहेडा, आवला, वायविडग, शुद्ध शिलाजीत, रास्ना, चित्रक, सोठ, शतावर, दन्ती, पीपरामूल, देवदारू, गिलोय, दारूहल्दी, पुनर्नवा की जड, छोटी इलायची, गजपीपल प्रत्येक १-१ तोला। शोधित गूगल १७ तोला।

चूर्ण करने योग्य १६ चीजो का बारीक चूर्ण करके कपड़छन करलो। फिर शुद्ध गूगल एव शुद्ध शिलाजीत को मिला घोलकर शेष चीजो का चूर्ण भी मिलालो। फिर खरल मे घी चुपडकर इमामदस्ते मे खूब चोटे लगवाकर मटर के बराबर गोलियां बनाले।

मात्रा—१ से ३ गोली। रास्ना-सप्तक क्वाथ से दो। पक्षाघातादि मे प्रभावपूर्ण ढग से काम करता है। दिन मे दो या तीन बार तक इसका उपयोग कराना चाहिए।

(९) रास्ना गूगल—रास्ना का बारीक चूर्ण ४ तोला, शोधित गूगल ५ तोला, दोनो को मिलाकर घी दे-देकर कूटो और मटर से कुछ बडी गोलिया बनालो। इसे रास्ना सप्तक क्वाथ से दो। पक्षाघात मे ठीक है। दिन मे ३ बार देना चाहिए। वातरोगो पर खूब चलता है।

(१०) हिंगु-गुग्गुल वटी—शोधित गूगल और हीरा हीग दोनो को समभाग लेकर मिलालो और खूब घुटाई करो। फिर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनालो। १-१ गोली सुबह तथा रात को सोते समय गरम पानी से दो।

देहाती वैद्यो का यह कारगर प्रयोग है। पक्षाघात के शुरू होते ही वे इसका प्रयोग प्रारम्भ कर देते है और सफल होते है।

(११) लशुनादि गूगल—लहसुन का बारीक चूर्ण १ तोला, त्रिफला काचूर्ण ३ तोला, शोधित गूगल ४ तोला। सबको मिलाकर एरण्ड तेल के साथ कुटाई कराओ और १-१ माशे की गोलिया बनाकर प्रात. साय १-१ गोली योग्य क्वाथ से दो।

पक्षाघात पर सरल प्रयोग है।

(१२) घनसत्व गूगल—रास्ना, गिलोय, देवदारु, एरण्ड एव सोठ के काढ का घनसत्व बनाकर समभाग शोधित गूगल मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलि बनालो और दशमूल क्वाथ से १ से २ गोली तक प्रात दोपहर एव सायकाल मे देते रहो। बाह्य पक्षाघात पर उत्तम है।

(१३) शतावर्यादि गूगल—ताजी शतावर का स्वरस पकाकर गाढा किया हुआ, पावभर। शोधित शिलाजीत १० तोला। शोधित गूगल ३० तोला। तीनो को मिलाकर और उत्तम गोघृत दे-देकर खूब जोर के हाथो से २५ हजार की कुटाइ कराओ और ४-४ रत्ती की गोलिया बनवालो। प्रात दोपहर एव रात्रि को १-१ गोली मिश्री मिले हुए गरम दूध के साथ दो।

इससे वीर्यक्षयजन्य पक्षाघात सुविधा से ठीक होने लगता है। सरल प्रयोग होने पर भी अच्छे-अच्छे रसो की टक्कर का है। पथ्य मे उत्तम पोषक आहार दो। अनेको चिकित्सको का अनुभूत है।



(१४) किशोर गूगल—शोधित महिषाक्ष गूगल २० तोला, त्रिफला, त्रिकुटा, ६-६तोले, वायविडंग २ तोले, निशोथ, दन्ती १-१ तोला, गिलोय ४ तोला लेकर सबको कूटकर वारीक कपडछन चूर्ण करो और फिर गूगल मे मिलाओ। इसमे कूटते-कूटते आधा सेर उत्तम गोघृत खपादो और १-१ माशे की गोलिया वनालो।

मात्रा ३ से ४ रत्ती तक दिन में १ वार योग्यानुपान से दो। इसे उपदशजन्य पक्षाघात पर प्रयुक्त किया जाता है। औषध देकर ऊपर से त्रिफला एव गिलोय का स्वरस भी पिला सकते हैं।

१५) विषतिन्दुक गूगल—शुद्ध कुचला का वारीक चूर्ण ४ तोला, शुद्ध अफीम १ तोला, कालीमिर्च का कपड़छन चूर्ण १० तोला, शोधित गूगल २० तोला।

सबको मिलाकर खूब कुटाई कराओ। घी से कुटवाना ठीक रहेगा। फिर ४-४ रत्ती की गोलियां वनालो। इसे प्रात साय महारास्नादि क्वाथ से दो। कब्ज हो तो अफीम की जगह शोधित जयपाल (जमालगोटा) मिलादो। पक्षाघात पर विशेषकर जीर्ण पक्षाघात पर कारगर हैं। पथ्य मालिश प्रभृति की ठीक व्यवस्था रखे।

(१६) ब्राह्मी गूगल—ब्राह्मी, असगन्ध दोनो का चूर्ण १०-१० तोले, शुद्ध शिलाजीत ५ तोल, शोधित गूगल २५ तोले। तीनो को मिलाकर खूब कुटाई करो और १-१ माशे की गोलिया वनालो। प्रात साय १-१ वटी मिश्री मिले गौदुग्ध से दो। दिमाग एव वीर्य की अशक्ति से होने वाले पक्षाघात पर उत्तम है। पाचनशक्ति के अनुसार तर माल दो। पूर्ण विश्राम दो। वर्तमान मे होने वाले पक्षाघातो पर प्रयोक्तव्य है।

(१७) लौहमेथी गूगल—लौह भस्म २॥ तोले, दाना मेथी का कुटा हुआ वारीक चूर्ण २० तोले, शोधित शिलाजीत ३२॥ तोले। तीनो को मिलाकर खूब कूटो और १-१ मासे की गोलिया वनालो। तीनो समय १-१ गोली देकर ऊपर से घी मिश्री मिला उत्तम दूध पिलाओ।

रक्ताल्पताजन्य पक्षाघात पर अवश्य प्रयोग करिये। इसे और भी उत्तम वनाना चाहें तो लौह भस्म की जगह इसमें स्वर्ण माक्षिक भस्म डाल लें। उत्तम प्रयोग रहेगा।

(१८) गुग्गुल मरिच लेप—गूगल को अठगुने गरम पानी मे घोल कर उसमे पानी व गूगल के वरावर काली मिर्च का वारीक चूर्ण भी मिलालो। इसका रोगी के शरीर पर लेप करदो। पक्षाघात के दूर करने के लिए उत्तम प्रयोग है।

(१९) एरण्ड तेल गूगल लेप—पतले हुए गूगल मे एरण्ड तेल मिलाकर रोगी के शरीर पर लगादो। काम करने वाला योग है।

(२०) गुग्गुल पाक—त्रिफला आधा सेर का घनसत्व त्रिकुटा का चूर्ण आधापाव, वायविडंग, नागरमोथा १-१ छटाक, आलू बुखारा १ सेर, शोधित आमलासार-गंधक २॥ तोला, घी आधासेर, शुद्ध गूगल पावभर। मिश्री ढाई सेर का पाक विधि से पाक वनालो। मात्रा २-२ तोला। ऊपर से मिश्री मिला हुआ दूध पियो। पक्षाघात मे उत्तम है। हलवे की भांति भी इसका उपयोग कर सकते हैं।

(२१) त्रयोदशांग-गूगल—ववूल की छाल, रास्ना, असगंध, हाऊवेर, शतावर, गिलोय, गोखरू, सौंफ, विधारा, कचूर, अजवायन, सौठ १-१ तोला, शुद्ध गूगल १२ तोला, घी ६ तोला, कूटने पीसने योग्य चीजो का वारीक कपड़छन चूर्ण करके,शुद्ध गूगल मे मिलाकर इमामदस्ते व खरल मे घी लगाकर खूब कूटो। फिर १-१ माशे की गोलिया वनालो। इन्हें घी के चिकने वरतन मे भरकर रखदें। इनके लगातार खाने से टूटी हड्डी तक जुड जाती है। मात्रा १ से ६ माशे तक है। ऊपर से गरम दूध या गरम जल दें। पक्षाघात मे इस गूगल को महारास्नादि क्वाथ मे उत्तम गोघृत मिलाकर उसके साथ दें। वडा ही लाभप्रद योग है। अनेको वैद्यो को इस प्रयोग पर गर्व है।

पक्षाघात पर २० सरल प्रयोग

(१) कपोत वीट प्रयोग—जङ्गली कवूतर की वीट लेकर उसे समभाग अकौए के दूध मे खूब अच्छी तरह से घोटे। वाद मे छोटे झरवेरी के वेर के वरावर गोलिया वनाले। मात्रा—एक गोली। १-१ गोली जल के साथ प्रात. साय सेवन करे। दस दिन मे २० गोलिया खायें। पक्षाघात व लकवे को मिटायगा।

(२) इन्द्रायण गुग्घन योग—थरथुम्वा इन्द्रायण का फल या फरफेंदुआ) दस सेर लो। इसे सुखाकर वारीक

चूर्ण कर डालो। अब एक लौह की बड़ी कड़ाई मे या एक बड़ी मोटी परात मे दो सेर यह चूर्ण डाल दो। रोगी को इसमें खड़ा करदो फिर थोड़ा-थोड़ा पानी डालते जाओ और रोगी से कहो कि वह इसे पैरो से आटे की तरह गूंथे।

इसे गूंथते-गूंथते जब रोगी के मुंह पर या जीभ पर कड़वाहट प्रतीत होने लगे तब ५ मिनट और उसी तरह रहकर बाहर आ जाय। यह उपाय लगातार ५ दिन तक करना चाहिए। इससे रहा सहा पक्षाघात या लकवे का विकार मिट जायगा।

(३) कुचला मरिच योग—शोधित कुचला और काली मिर्च दोनों का बारीक चूर्ण बराबर-बराबर लेकर घोट ले। फिर खरल मे पानी के साथ खूब घोटें। गोली बनाने योग्य हो जाने पर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनालें। इन्हें छाया मे सुखाकर रखले।

इनकी मात्रा १-१ गोली है। बगला पान मे रखकर रोज प्रात तथा शाम को दो। पुराने पक्षाघात मे काम का प्रयोग है। इसके सेवन काल मे ताजा जल पियें। ठण्डा या गरम जल न पियें।

(४) कुचला भस्म कृष्णमरिच योग—२ तोले शोधित कुचले को लेकर दहकते हुए कोयलो पर रखो जब उनसे धुआ निकलना बन्द हो जाय तो उन जले हुए कुचले को घोटकर तौल लो। जितना वह चूर्ण हो उतना ही काली-मिर्च का बारीक चूर्ण मिलाकर खूब घोटे। फिर पानी डालकर अच्छी तरह घुटाई करो और गोलिया बनाने योग्य होने पर उड़द जैसी गोलियाँ बनाकर छाया में सुखालो। यह योग भी ऊपर के योग की भांति काम ले अर्थात् १-१ गोली बगला पान मे रख कर रोगी को प्रात साय खिलाओ। यह जीर्ण पक्षाघात, कमर दर्द तथा दिमाग की कमजोरी मिटाता है। इसके सेवनकाल मे भी ताजा ही पानी पियें।

(५) भगा कृष्णमरिच योग—भाग एव कालीमिर्च के तौल मे बराबर लेकर बारीक चूर्ण बनाओ। इसकी मात्रा १ से २ माशे तक है। १२-१२ घण्टे मे रोगी को प्रात साय गौदुग्ध से दो। इसे कम से कम इक्कीस और वैसे ४१ दिन तक प्रयोग मे लें। जो कभी भाग का सेवन नहीं करते उन पर शीघ्र काम करता है।

(६) सन के बीजों का चूर्ण—सन (जिसकी रस्सी बनती हैं उसके) बीजो को लेकर उनका बारीक चूर्ण बनाओ। इसकी मात्रा १॥ तोले की है।

इसको १ तोले शहद मे मिलाकर प्रात साय दोनों समय चाटनी चाहिए। २१ दिन तक इस प्रयोग को काम मे लें। उत्तम यूनानी (हकीमी) प्रयोग है।

(७) मायउल असल (यूनानी योग)—रोग के प्रारम्भ मे जब रोगी को लघन कराये जा रहे हो, उस समय पानी की जगह इसका प्रयोग करना चाहिए।

मधु एक भाग, पानी २ भाग लेकर मिलाओ और आग पर औटाओ। जब आधा पानी रह जाय तो इसे ही ठण्डा करके रोगी को पिलाओ। एक बार यदि समाप्त हो जाये तो दुबारा तैयार करो।

नोट १—शहद की जगह पुराना गुड भी लिया जा सकता है।

२—ऐसे समय अन्न देना ही हो तो भुने हुए फूले-फूले चने १-१ करके रोगी को खिलाओ।

(८) अकरकरभादि वटी—अकरकरा, कालीमिर्च, छोटी पीपल ३-३ माशा, सोठ एव शुद्ध मीठा तेलिया विष १-१ तोले, पीपरामूल ६ माशा। सबको खूब कूट छान कर बारीक करो। फिर एक तोले गुड और एक तोले घी मिलाकर कूटो और मूग जैसी गोलिया बनाओ।

मात्रा—एक से दो गोली तक प्रतिबार। दिन मे प्रात साय दो बार।

पहिले रोगी की कब्ज दूर करके या जुलाब देकर, बाद मे इन गोलियो का प्रयोग करना चाहिए।

(९) मालकागनी वटी—मालकागनी, रतनजोत, छोटी पीपर एक-एक तोले, स्याह मूसली और सोठ ५-५ तोले, शोधित जमालगोटा एक तोला चार माशा।

सबको यथा योग्य बारीक कूट पीस करके बारीक करलो। फिर सबको खरल मे डालकर पानी के साथ खूब घोटें। गोली बनने योग्य हो जाने पर कालीमिर्च जैसी गोलिया बना लें।

मात्रा—२ गोली तक ताजे पानी से या तो प्रात. निराहार मुंह या रात को सोते समय दें।

कब्ज वाले पक्षाघातियो के लिए परमोत्तम है।

(१०) शुण्ठी-वचा योग—बेतवा सोंठ और बच दोनो



को बराबर-बराबर लेकर बारीक कपड़छन चूर्ण करडालो। इसे प्रात सायं १-१ तोले की मात्रा मे मधु मे रोगी को चटायें। पानी की जगह मायउल-असल पिलायें। सरल पर काम का प्रयोग है।

(११) बचादि प्रयोग—वच ७ तो०, सोठ २॥ तो० कालानमक २॥ तो० सबको बारीक चूर्ण करके ३५ तोले शहद मे मिलालो। इसकी मात्रा ४ माशे की है। रोज प्रात. साय दो बार दे।

इसके सेवन काल मे भी पानी की जगह मायउल असल ही पिलाना चाहिए।

(१२) बचादि प्रयोग न० २—कालीमिर्च, पोदीना, स्याहजीरा, कलौंजी १-१ तो०, वच ४ तो० सबको बारीक चूर्ण करके पावभर मधु मे मिलायें। प्रतिदिन प्रात ८-८ माशा मायउल असल मे दें।

(१३) भल्लातक योग—जुलाब से पेट साफ करने के बाद शुद्ध भिलावे की एक मिगी २ तोले गुड मे लपेट कर रोज दें।

(१४) चोपचीनी का हलवा आदि—असली गुलाबी चोपचीनी लेकर उसे बारीक कूट पीस लें और एक तोले की मात्रा मे लेकर उसका हलवा बनाओ। यह हलवा रोगी को रोज देना चाहिए। इससे शक्ति भी आजाएगी और रोग विकार भी मिटता जायगा। साथ ही—

असली गुलाबी चोपचीनी ३ माशे की मात्रा लेकर रात को उसे जौकुट करके पावभर पानी मे भिगो दे। प्रात आग पर गरम करके आधा करले। फिर उतार छानकर मिश्री मिलाकर रोगी को पिला दें।

इस प्रयोग को ४१ दिन तक अगर काम मे लिया जाय तो फिर दुबारा इस रोग के आक्रमण का कोई भय नही रहेगा।

(१५) माष-पिष्टी नवनीत योग—रात को तीन तोले छिलका लगी उर्द की दाल पानी मे भिगो दो। प्रात उसे धो डालो और छिलके दूर कर लो। फिर दाल को सिल पर पीसकर बारीक पिट्ठी बनालो। इसमे इससे आधी मात्रा मे एक या सवा तो० नवनीत [लौनी-घी] के साथ प्रात. साय दे।

इससे वात पित्तज पक्षाघात एव लकवा मिटेगा। पुष्ट तथा ठीक पाचन शक्ति वाले रोगी के लिए बढ़िया योग है।

(१६) कुचनाहिफेनादि योग—शोधित कुचले का बारीक चूर्ण एक तो०, अफीम आधा तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल २-२ तो०। इन सबके बारीक चूर्ण को लेकर मिलालो और खूब घोटलो। बाद मे इसमें कान्तिसार भस्म ३ माशे मिलाकर पान के रस में २-३ घण्टे घोटकर, मटर के बराबर गोलिया बनालो।

मात्रा—एक-एक गोली दिन मे ३ बार, दशमूल के काढे मे दें। यह प्रयोग जीर्ण पक्षाघात एवं नवीन अर्दित मे बढिया कारगर है।

(१७) धत्तूर पत्रादि प्रयोग—काले धतूरे के पत्ते १० तोले, अजवायन २॥ तोले, लौंग, जावित्री ३-३ माशे, जायफल १॥ माशे इन सबको लेकर सिल पर डालो और अदरख के रस या पान के रस मे मिलाकर खूब बारीक पीस लो। गोली बनाने योग्य होने पर मटर जैसी गोलिया बनालो। २-२ गोली प्रात सायं अदरख के रस तथा पान के रस मे मिलाकर दो। यदि रोग बढा हुआ हो तो साथ में 'मल्लसिंदूर' भी अवश्य ही मिला लेना चाहिए।

(१८) मधुयष्ट्यादि प्रयोग—मुलहठी, सफेद जीरा, हल्दी, सफेद वच, रास्ना, सोठ, पीपल, अजमोद और सैंधानमक २-२ तोले लें। इन सबका बारीक कपडछन चूर्ण करके २१ पुड़िया बनालें। प्रात साय १-१ पुड़िया घी मे चटाकर ऊपर से खिले हुए भुने चने रोगी चबावें। पक्षाघात नाशक सरल योग है।

(१९) स्वर्जिका क्षार योग—२ से ६ माशे तक असली स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार) लेकर अठगुने तेज गरम पानी मे अच्छी तरह घोलकर कई दिनो तक रोगी को पिलाते रहो। रोज प्रात काल निराहार मुह पिलाना चाहिए।

(२०) लवण जल प्रयोग—सैंधानमक ६ माशे से १ तोला लेकर आधापाव गरम पानी में घोलकर रोगी को रोग होते ही झट से पिलादो। इसी प्रकार प्रतिदिन प्रात नियमिय पिलाते रहो। राग जोर न पकडने पायेगा। धीरे-धीरे स्वय शान्त होता जायगा।

पक्षाघात की यूनानी चिकित्सा

प्रथम सात दिन तक १ तो० मधु मे १२ तोला अर्क–गावजवा डाल–पकाकर थोडा–थोडा पिलाते रहे। या शहद एक भाग एव पानी दो भाग मिलाकर और खूब पकाकर रख लें। इसे ही थोडा–थोडा पिलावें। कफ के पक्षाघात मे ही इस वात का ध्यान रखा जाता है। कभी–कभी १४ दिन तक भी विना कुछ इलाज किये उक्त पानी पर ही दिन विताने पडते हैं। इस तरह के जल को 'मायउल असल' कहते हैं।

आठवें दिन दोष-पाचनार्थ—सौंफ ७ माशा, सौंफ की जड़ ७ माशा, करफ्स की जड़ ७ माशा, हसराज ७ माशा, खतमी के वीज ७ माशा, खुब्बाजी के बीज ७ माशा, मुलहठी ५ माशा, उस्तखुद्दूस ५ माशा, पीले अजीर ५ दाने, गावजवां ५ माशा सबको रात मे गरम पानी मे भिगोकर, प्रात मल-छानकर चार तो० खमीर वनपशा मिला पिलावें। आठ दिन तक इस औषध को पिलावें।

दसवें दिन — मकोसनाय ७ माशा, सफेद निशोथ ७ माशा, इनको नं० १ के योग मे मिला भिगोवें। प्रात —अमलतास का गूदा ५ तो०। शीर ए खिस्त ४ तो०,तुरजवीन ४ तो०' शकर सुर्ख ४ तो०, गुलकन्द ४ तो० मिलाकर ५ दाने मीठे बादाम की मिंगी को भी इसी में मिलाकर चाशनी के साथ पिलावें। दूसरे दिन इसी में ठडाई की औषध भी और मिलावें।

इसके बाद मुजिज (दोष पाचनार्थ औषध) पाँच दिन तक पिलावे। इसके बाद दो विरेचन हब्बअयारिज ६ माशे के उक्त न० ५ के योग से दें। पर अमलतास एव वादाम की मिंगी न खिलावे।

विरेचनोपरान्त पेट साफ हो जाने पर १. रोगनसुर्ख या २. रोगन कला या रोगन सीर की सुहाती-सुहाती गरम मालिश करें। पक्षवध के लिए रोगन (तैल) खफाश की सुहाती गरम मालिश भी लाभप्रद है।

बल–बर्द्धन के लिए—नर्जा जवाहरवाला १ टिकिया को ५ माशे खमीरा गावजवां जवाहरवाला मे मिलाकर प्रात चटावें। शाम को मंडूर भस्म वटी (कुर्स खब्युत-हदीद) १ टिकिया को ५ माशे अतरीफल उस्तखद्दूस मे मिलाकर दें। अथवा प्रात साय वही योग दें। भोजनोपरान्त हर्र ७ माशा दे।

लवङ्ग–तैल, जायफल–तैल वरावर–वरावर मिलाकर ५–५ बूंद नाक मे टपकावें। या—

पीला एलुआ बुरए अरमनी, कलौंजी। सवको १–१ माशे ले चुकन्दर के रस में घोल नाक मे टपकावे।

एक माशा भाग को ५ तोल मधु–जल (मायउल-असल) के साथ पिलावे।

योगराज गूगल २ माशे मे १ माशे गोदन्ती भस्म मिलाकर प्रात साय दो।

अकरकरा, गोलमिर्च, छोटी पीपल ३–३ माशा। पीपलामूल ६ माशा। सोठ और शुद्ध वच्छनाग १–१ तो०। इन सवको कूट छानकर गुड एवं गोघृत मे मिश्रण कर घोट ले और मटर के वरावर गोलिया वना लें। दो गोली प्रतिदिन रात्रि को सोते समय ताजे पानी से दें। संशोधनोपरान्त इसका प्रयोग करने से कफज पक्षवध अर्दित आदि मिट जाते हैं।

पक्षाघात नाशक यूनानी सिद्ध प्रयोग—

१. रोगन सुर्ख, २ रोगन कुस्त, ३. हुब्ब-कुचला (पुराने पक्षाघातादि मे), ४ माजून–सीर (लशुन पाक)।

पक्षाघात पर चुनिन्दा यूनानी योग

(१) हुब्ब सुर्ख (समस्त शीतल, मस्तिष्क रोगों में)—अकरकरा, सोठ १–१ तो०, कालीमिर्च, पीपल, बैरोजा, टोपीरहित लौग, शुद्ध वत्सनाग, शुद्ध सिंगरफ २–२ तो०। सवको अलग–अलग कूट छानकर फिर तोलकर लें। फिर २५० पान मे इतनी देर तक घोटे कि आराम से गोलियां वन सकें। वाद मे मटर के बराबर गोलिया वना लें। अर्दित (लकवा) एवं पक्षाघात (फालिज) मे ३ से ६ गोलिया तक शहद एव अदरख के रस मे घोटकर प्रात साय चटावें। ऊपर से दशमूल का काढ़ा पिलावें। कफज रोगो मे दवा चटाकर ऊपर से पान खिलावे या पीपल मिश्रण कर दशमूल का काढ़ा पिलावें।

(२) रोगन फालिज—कालीमिर्च, अकरकरा, इन्द्रायन का गूदा, बैरोजा ७–७ माशा। सवको कूटकर आधा



सेर रोगन गुद्दाव में मिलावें और शीशी मे भर कर १० दिन धूप में रखा रहने दें। शीशी को रोज अच्छी तरह हिला देता चाहिये। इसे छानकर पुन उक्त द्रव्यो को कूटकर डालें और दस दिन धूप मे रखें। एक बार पुन ऐसा ही करें। इसकी मालिश से पक्षवध, अर्धांग वात, लकवा, प्रभृति शीघ्र दूर हो जाते है।

(३) हुब्बे वीरा—जायफल] अकरकरा, सोठ, शुद्ध कुचला, पीपल, लौंग, मीठा तेलिया, शुद्ध सिगरफ २-२ तो०। सबको अलग-२ कूट छान कर चूर्ण बनालें और फिर अदरख के स्वरस मे २ दिन तक खरल करके मटर के समान गोलिया तैयार कर लें। मात्रा—एक से दो गोली अदरख के स्वरस या गाय के घी या शहद से सुबह शाम दे। आवले के अलावा खट्टी चीजें एव वादी तथा ठण्डी चीजों से परहेज करायें।

(४) हिंगुलादि वटी (हुब्बे सिंगरफ)—गोघृत रूमी शिरफ, शुद्ध हरताल, शुद्ध वत्सनाभ विष, शुद्ध कुचला, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, जावित्री, कूट, जायफल, नन्मूनियाँ, फरफ्युन, मुसब्बर, केसर, शुद्ध भंगिया, गारीफून, शुद्ध महिपाद गुगल, सफेद निशोथ, गुरजानमीठा, जरावन्द, लौंग, इन्द्रायन प्रत्येक ३-३ माशा। सबको कूट पीसकर कपडछन कर लो। फिर लगातार सात दिन तक घीग्वार (ग्वारपाठे) के रस में प्रतिदिन ८-८ घण्टे तक घुटाई करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लो। १ से २ गोली तक प्रात सायं १—१ गोली खिलाकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गाय का दूध पिलावें। इसमें पक्षाघात, लकवा के साथ-साथ गठिया, जोड दर्द एव अन्यान्य वातविकार भी मिट जावेंगे।

नोट—यदि रोग छह माह से अधिक का पुराना हो गया हो तो इसी प्रयोग मे तीन माशे शुद्ध अफीम को भी मिलाकर औषध तैयार कर लेनी चाहिए। ध्यान रहे कि रोग की नई अवस्था मे अफीम नहीं मिलानी चाहिए।

पक्षाघात की ऐलोपैथिक चिकित्सा (वर्तमान-क्रम मे प्रचलित)

इसमे रोग के आक्रमण होते ही रोगी को आराम से लिटा दिया जाता है और फिर 'स्फिग मिनोमीटर' द्वारा इसके रक्तचाप की जांच की जाती है। अधिकतर पक्षाघात के रोगी अधिक रक्तचाप (हाई ब्लडप्रेसर) के ही मिलते हैं। जिनका रक्तचाप बहुत अधिक होता है (२०० या उससे भी ऊपर) तो उसे कम रहने का प्रयत्न ही सबसे पहले किया जाता है। इसकें लिये—

१. थियोगार्डीनाल (Theo-gardinal)—१-१ टिकिया ३-३ घण्टे में ३ बार दें। या—

२. सरपासिल (Sarpasil ciba) दिन मे १-१ गोली ३ बार और रात को सोते समय २ गोलिया दें।

३. एडेलफेन एडीड्क्स (Adelphane Esidrex ciba) की गोलिया भी १-१ करके दिन में ३ बार दे।

इन उपायों से ब्लडप्रेसर को घटाने का शीघ्र प्रयत्न करते हैं। एमाइल नाइट्रेट के एम्पुल को तोड़कर, रूमाल में छिड़क कर तुरन्त सुंघाते हैं। योग्य इन्जेक्शन भी फौरन लगा देते हैं। ब्लडप्रेसर को बढ़ने नहीं देते। बाद में अन्य योग्य चिकित्सा प्रारम्भ कर देते हैं।

कब्ज होने पर—मैग सल्फ कब्ज के अनुसार लेकर गरम पानी मे पिलाते हैं। या फिर आवश्यक होने पर डूश देकर पेट साफ करा देते हैं। पेट का साफ कराना बहुत ही जरूरी है। कभी-कभी सोडा आयोडाइड ५ ग्रेन, लाइकर ट्रिनीट्रिनी १ बूंद। एक्वा मेथा पिप. सबको मिलाकर १ औंस की मात्रा बनालें। ऐसी मात्रायें दिन मे २-३ बार तक दें। ब्लडप्रेसर ढीला हो जायगा।

बाद मे रोगी को इन्जेक्शन लगाया जाता है। वह क्रिस्टिलिन पेन्सलीन ५ लाख का होता है। इसे प्रतिदिन ४-५ दिन तक या इससे भी अधिक समय तक देते रहते हैं। किन्तु हा, जब इन्जेक्शन देने के बाद उस स्थान पर या उसके आसपास खुजली आना प्रारम्भ हो जाय तो फिर इसे बन्द करवा देते हैं।

बाद मे बी१२ के इन्जेक्शन दिये जाते हैं। इसमे विटामिन १ और विटामिन १२ मिले हुए होते हैं। इन्हें १-१ दिन के अन्तर से ५ तक देते हैं। इसके साथ ही साथ रोगी को निकोटिनिक एसिड, विटामिन बी की गोलिया और टेबलेट Duvadilen भी मिलाकर देते हैं।

इनके देने के बाद रोगी सुरसुराहट, कुछ चलने का अनुभव अपने अन्दर करता है। इसके बाद इन्जेक्शन बराबर चालू रखे जाते हैं। अब न्यूरोबिओन (Neurobion 3 ml) का इन्जेक्शन चालू रहना है। उसके एक शीशी मे ५ इन्जेक्शन इकट्ठे भी आते हैं।

रोगी की सम्हलती हुई स्थिति को देखकर अनुभवी डाक्टर आइडोपेनबीटाइन (Iodopanbetine) आयोडीन और बी कम्पलैक्स (Iodine+B Complex) का मिश्रण, दस इन्जेक्शन जिनमे प्रत्येक २ मिलिग्राम वाला होता है (10 Ampoules 2ml each), देते हैं। १-१, २-२, ३-३, ४-४, ५-५ के नम्बर का होता है। प्रथम दिन १ नम्बर, दूसरे दिन २ नम्बर, तीसरे दिन ३ नम्बर, चौथे दिन ४ नम्बर, पांचवे दिन ५ नम्बर, छठे दिन ५ नम्बर, सातवे दिन ४ नम्बर, आठवें दिन ३ नम्बर, नौवे दिन २ नम्बर और दसवे दिन १ नम्बर का एम्पुल इण्ट्रामस्क्यूलर (मासान्तर्गत) दिया जाता है।

कतिपय एलोपैथिक-डाक्टर्स —पक्षाघात के प्रभाव को रोकने के लिए रेडिसोल एच देते हैं। Redisol-H 500 mcg per ml होता है यह Merck कम्पनी का प्रयोग है। रोगी की स्थिति या रोग की स्थिति के अनुसार मात्रा निर्धारित करली जाती है।

ग्यारोबिसम बी ^{12} या न्यूरोबिओन बी ^{12} का प्रयोग किया जाता है। 'बेरिन'की गोलिया या विभिन्न-इन्जैक्शनो का बेरिन के साथ मिश्रण प्रयोग करते हैं।

पक्षाघात की होमियोपैथिक चिकित्सा

१ टेरेण्टिउला ६, ३०—यह कपकपी लिये हुये पक्षाघात की या लकवा की प्रधान औषध है।

२ स्ट्रिकिया फास्फोरिकम २X,३X से नसों मे उत्तेजना पैदा की जाती है।

३ एकोनाइट ३X—मेरुदण्ड मे रक्ताधिक्य, आक्रांत स्थान मे झुनझुनी होने पर प्रयोग किया जाता है।

४ बेलाडोना ३०X—सिर मे खून की अधिकता होने पर चेहरे का लकवा होने पर, एक तरफ का पक्षाघात होने पर, दूसरी ओर का आक्षेप होने पर, मुह टेढा हो जाने पर इसका प्रयोग होता है।

५ डलकामारा ३०—ठण्ड के अधिक लगने या पानी मे भीगने के कारण लकवा हो जाने या हाथ पैर का पक्षाघात होने या जीभ के लकवे पर इसका उपयोग किया जाता है।

६ कास्यूलस ६ – जीभ, चेहरा और पैर के लकवे पर, पैर के पंजे की सूजन पर, कमजोरी, हृदय की धड़कन वाले पक्षाघात रोगियो पर इसका प्रयोग लाभकर है।

७ फास्फोरस ३०—अधिक ग्राम्यकर्म (मैथुन) या प्रसव के बाद इस रोग के हो जाने पर इसे दें। यदि पीठ से दर्द प्रारम्भ होकर नीचे की ओर जाये तो प्रयोग करें।

८ जिकम ३०—लिखते समय यदि हाथ कापता हो तो इस औषध का शीघ्र प्रयोग प्रारम्भ कर दें।

एक अन्य चिकित्सक इन औषधो की राय देते हैं—

(१) एपोसाइनम् एण्ड्रोसिमिफोलियम् २००,
(२) एमोन बेन्जोइम् ३०
(३) एसिड ओक्जैलिक ३०, (४) रैडोडेंड्रन ३०,
(५) लिडम् ३०, (६) एसिड बैंजोइक् ३०,
(७) एकोनाइट ३० (८) शीमी शीफ्यूजा ३०,
(९) स्नायविक वेदना मे मेगनेशियाफास ३०।

एक अन्य चिकित्सक की राय है कि—

१ केलीफास १०००

प्रति शुक्रवार और मंगलवार को रात को सोते समय ३-३ गोलिया दो। नीबू से जीभ साफ करके ३ गोलियो को कागज मे लेकर रोगी की जबान पर रख दो। वह इन्हे धीरे-धीरे चूसे। बाद २-३ घूंट गरम पानी पिलादो।

२ मैगनेशिया फोस ६

दिन मे २ बार ३ ३ गोलिया रोगी धीरे-धीरे चूसे।

३ कलकेरिया फोस X ६

दिन में २ बार ३-३ गोलिया दो।

४. लैकेसिस ३०—हर सातवे दिन एक खुराक दो।

बायोकैमिक औषधिया—

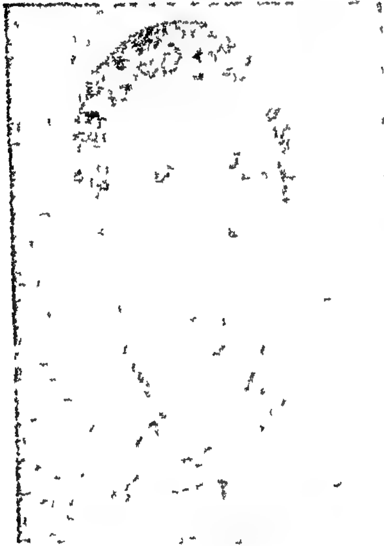
१. कैल्कफास, २ केलिफास, ३. मैग् फास, ४ नेट्रम्यूर, ५ साइलेशिया। इन सबका X ६ नम्बर होता है।

वृद्धावस्था में असाध्य संग्रहणी

पर

आधुनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन

—डा० नन्दकुमार चतुर्वेदी पण्डा (B. Sc., B A M S), श्री लक्ष्मीनारायण [illegible], अमृतसर (पंजाब)



श्री लक्ष्मीनारायण आयुर्वेद [illegible], अमृतसर [illegible] डा० नन्द कुमार चतुर्वेदी एक [illegible] हैं। [illegible] व्यक्ति हैं। मेरे सुझाव पर आपने 'ग्रहणी रोग वृद्धों को क्यों असाध्य होता है''—का वैज्ञानिक विवेचन लिखा है। [illegible] सुन्दर एवं उपयोगी है। आयुर्वेद को ऐसे नवयुवकों से बहुत आशायें हैं।

—[illegible] (विशेष सम्पादक)

प्राणी मात्र को जीवन यापन के लिए ग्रहणी मुख्य अंग है। इसी अंग के द्वारा भोज्य पदार्थों के पाचन, शोषण द्वारा शरीर के सभी रसरक्तादि धातुओं का पोषण होता है जिससे शरीर स्वस्थ एवं निरोग रहता है। ग्रहणी के दूषित या विकृत होने पर शरीर में नानाप्रकार के रोग जैसे संग्रहणी आदि का प्रादुर्भाव होता है। आयुर्वेद में इसी ग्रहणी को पित्तधरा नाम भी दिया गया है। क्योंकि यही स्थान मुख्य रूप से जठराग्नि का स्थान है। इससे विदित होता है कि यह ग्रहणी पाचन संस्थान का एक अंग है जो पाचन संस्थान से सम्बन्धित है। अब यह निर्धारण करना है कि मुख से लेकर गुदापर्यन्त पाचन संस्थान में कौन से भाग को ग्रहणी कहना चाहिए। इसके लिए आयुर्वेद में निम्न वर्णन मिलता है।

> षष्ठीपित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता।
> पक्वामाशय मध्यस्था ग्रहणीसा प्रकीर्तिता॥

इस आयुर्वेद श्लोक से यह ज्ञात होता है कि षष्ठी पित्तधरा कला का स्थान, पाचन संस्थान के जिस भाग में हो यह अंग (भाग) आमाशय तथा पक्वाशय के मध्य में हो उस भाग को ग्रहणी कहना चाहिए। आधुनिक प्रत्यक्ष शरीर के आधार पर यह भाग आमाशय से आगे से शुरू होकर लघ्वांत्र के अंतिम भाग तक है अतः सम्पूर्ण लघु अंत्र को ग्रहणी कहना चाहिए। इसी में ड्यूडिनम, जेजूनम इलियम का समावेश होता है और पूर्णतया आयुर्वेद मत से सम्मत है। षष्ठी पित्तधरा कला इन्हीं स्थानों में होती है आधुनिक प्रत्यक्ष शारीर के अनुसार इसको (Muscularis Mucosa) ही कहना चाहिए। क्योंकि यही कला पाचक पित्त (जठराग्नि) को धारण करती है। जिसका कार्य भोज्य पदार्थों का पाचन करना है। यहां पर जठराग्नि से पित्ताशयिक रस, क्लोम ग्रन्थि का रस एवं आन्त्रिक रस का सम्मिलित रूप समझना चाहिए।

वृद्धावस्था में असाध्य संग्रहणी—

> बालके ग्रहणी साध्या यूनि कृच्छ्रा समीरिता।
> वृद्धेत्वसाध्या विज्ञेयामते धन्वन्तरेरिदम्॥

आयुर्वेद में वर्णित इस श्लोक का तात्पर्य है कि बालकों में ग्रहणी रोग साध्य (सहज चिकित्सा से रोग मुक्ति) युवा में कृच्छ्र साध्य (चिकित्सा करने पर कठिनता से रोग

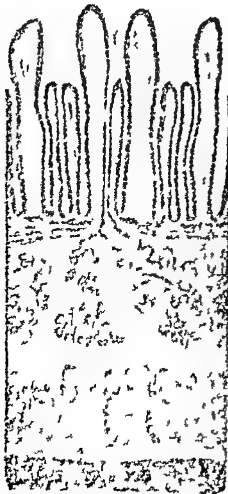
से मुक्ति), वृद्धो में असाध्य (यत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर भी रोगमुक्ति नहीं होती है)। इसके लिए प्रत्यक्ष शारीर से विचार करना आवश्यक हो गया है कि ग्रहणी में किन-किन रचनाओ में विकृति होने पर वृद्धो में संग्रहणी असाध्य हो जाती है।

ग्रहणी संरचना

प्रत्यक्ष शारीर के अनुसार यह चार स्तर की बनी होती है, जो निम्न प्रकार से हैं—



ऊपर
आमाशय का चित्र जिसमे लम्बे एवं गोल पेशीसूत्र दिखाये गये है।
नीचे
आन्त्र के शोषण करने वाले अंकुर (Villus) का चित्र



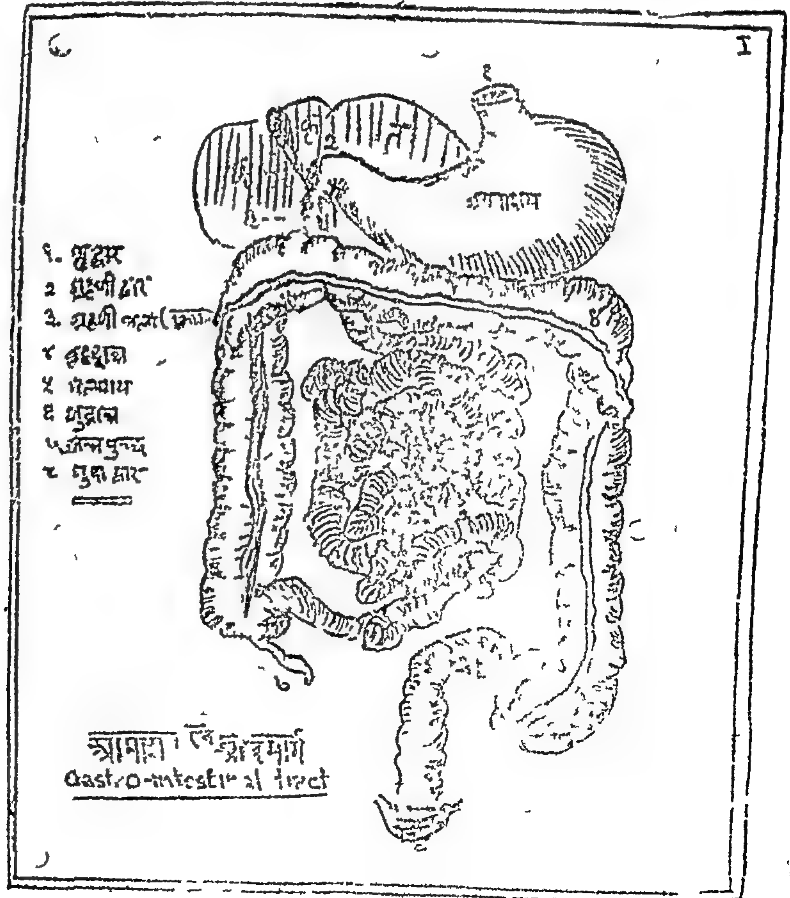
१ बाह्यस्तर (Serous coat)—यह स्तर Areolar tissues का बना होता है जो peritoneum से बनता है।

२ मांसीय स्तर—अन्दर ग्रहणी का दूसरा स्तर है जो मांसतन्तुओ का बना होता है। यह स्तर भी दो तरह का होता है—

अ. बाह्य—Longitudinal muscular tissues का बना होता है।

ब. अन्त—Circular muscular fibres का बना होता है। दोनो स्तर रचना में एक दूसरे के विपरीत दिशा में होता है। इन्हीं दोनो स्तरो से आंत्र की paristalsis होती है। (देखें चित्र)

३ अधः मांसीय स्तर—यह भी वायवीय तन्तुओं का बना होता है। यह स्तर मांसीय स्तर से नीचे होता है। इसी स्तर में रक्तवाहनियां, वातनाडी तथा रस वाहिनियां होती हैं।



आमाशय एवं आन्त्रमार्ग
Gastro-intestinal tract



४ श्लैष्मिक कालीय स्तर—यह ग्रहणी की सबसे अन्दर रहने वाली रचना है। यह ग्रहणी के प्रथम भाग में ज्यादा रक्त परिभ्रमण तथा अन्तिम भाग में कम रक्त-परिभ्रमण होती है। इसी का दूसरा नाम Mascularis Mucosa है जिसको पित्तधराकला नाम से जानना चाहिए इसमें निम्न रचनाए होती हैं—

१ Circular folds

२ Villus—अकुर जिनका आधार mucus membrain में होता है तथा apex, lumen of intestine में होता है इसमें रक्तवाहिनियो का जाल बिछा होता है। जिनसे रस का शोषण होता है। (देखें चित्रपृष्ठ ३२ पर)

३ Duodonal and Intestinal glands—जिनके द्वारा पित्त का स्राव होता है। उसके बारे में ऊपर बताया गया है।

४ Lymphatic Vassels and follicles—इनके द्वारा आहार रस का शोषण होकर अन्य स्थान तक भेजना होता है। ये सभी रचनायें चित्र में दिखाई गई हैं। साथ ही इन रचनाओ का पक्वाशय(Large Intestine) मे अभाव होता है। इन्हीं रचनाओ में, विकार उत्पन्न होने पर या विकृति होने पर पाचन एवं शोषण का कार्य विकृत रूप से होने लगता है।

वृद्धावस्था मे विकृति कहाँ और कैसे ?

जैसाकि ऊपर बताया गया है इन रचनाओ में विकार होने पर ही इनके मार्गो में बाधा होने लगती है। वृद्धावस्था में प्राकृतिक रूप से उन रचनाओ में (Mucos membrene Structure)में धीरे-धीरे ह्रास या शिथिलता आने लगती है तथा ग्रन्थियो का स्राव भी कम होने लगता है क्योकि इन स्थानो की रचनाओ में रक्त परिभ्रमण की कमी होने लगती है जो पोषणाभाव बनाती है। साथ ही आंत्र की पैरिस्टालिसिस गति भी कम होने लगती है जिसे कोष्ठबद्धता और स्राव की कमी से अग्नि मन्दता होने लगती है। इस अवस्था में यो मनुष्य मिथ्या आहार-विहार करता है तो आन्त्रिक स्राव उन भोज्य पदार्थों को पचाने में असमर्थ ही जाता है और आम की उत्पत्ति होती है। धीरे धीरे पोषण के अभाव में Villus द्वारा आहार रस का शोषण भी कम होता है। इन कारणो की उत्तरोत्तर की वृद्धि होती है। वात नाडियो में उत्तेजना कम होने से आत्र गति (पेरिस्टालिसिस) भी कम हो जाती है जिससे रुके हुए भोज्य पदार्थों में बहुत से कीटाणुओं (Bacteria) का जन्म हो जाता है जिससे ग्रहणी में शोथ उत्पन्न हो जाता है फलत: Villie आदि के शोषण का कार्य बन्द हो जाता है।

दूसरा कारण यह भी है कि ग्रन्थियों के स्राव में Intrensic fector की कमी हो जाती है और जीवनीय बी१२ का शोषण पूर्णतया बन्द हो जाता है जिसका मुख्य कार्य रक्त बनाना एव पाचन करना है इससे श्लैष्मिक कला के सारे शरीर क्रिया विज्ञानीय कार्य कम या नहीं के बराबर होते हैं। इसी दशा की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। इस विकृति में और वृद्धि होकर आत्मकूजन, दुर्बलता (Loss of weight), शोथ (oedema), अतिसार आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसीलिए ये वृद्धावस्था में असाध्य समझे जाते हैं।

वृद्धावस्था में निदान

		Old age50–70 yers	Young age 35–50 yers.
1	Xylose test	Abnormal 100%	Normal 50%
2	Duodem Biopsy	Abnormal	Mild abnormal
3	Ileunu Biopsy	Abnormal	Mild abnormal
4	X Ray (क्ष किरण)	Abnormal	Mild abnormal
5	Vitamin B12 absorption (हरी सब्जी आदि से)	Abnormal 50% 100% Abnormal (at last)	Normal
6	Follic Acid Therapy	No change	Inprovement

—+—

अर्श रोग विवेचन

वैद्य मोहरसिंह आर्य
स्थान मिसरी
पो० चरखी दादरी
जि० भिवानी

वैद्य श्री मोहर सिंह आर्य मिश्री (भिवानी) धन्वन्तरि के जाने पहचाने लेखक है। आपने विशेषांक हेतु 'वृद्धावस्था का सहचर-अर्शो रोग' शीर्षक लेख प्रेषित किया है जो पाठकों के लिए उपयोगी है

—शिव कुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

× ⊛ ×

अर्श के भेद -

१ उत्पत्ति भेद से—'सहजन्मोत्थानभेदात् द्वेधा समासत' (वा० नि० ७)

(१) सहज (जन्म से ही शरीर के साथ उत्पन्न होने वाले)

(२) जातोत्तर कालज—(जन्म के अनन्तर उत्तर काल मे उत्पन्न होने वाले)

२. स्थान सश्रय की दृष्टि से—(१) वाह्यार्श, (२) आभ्यन्तर अर्श।

३ दोष भेद से—'पोडोऽन्यानि पृथग्दोषससर्गनिचयानि च' (वा० नि० ७)

(१) वातिक (२) पैत्तिक (३) श्लेष्मिक (४) सान्निपातिक (५) शोणितज (६) सहज।

४. चिकित्सा सुविधा के हेतु से—(१) शुष्क (२) स्रावि।

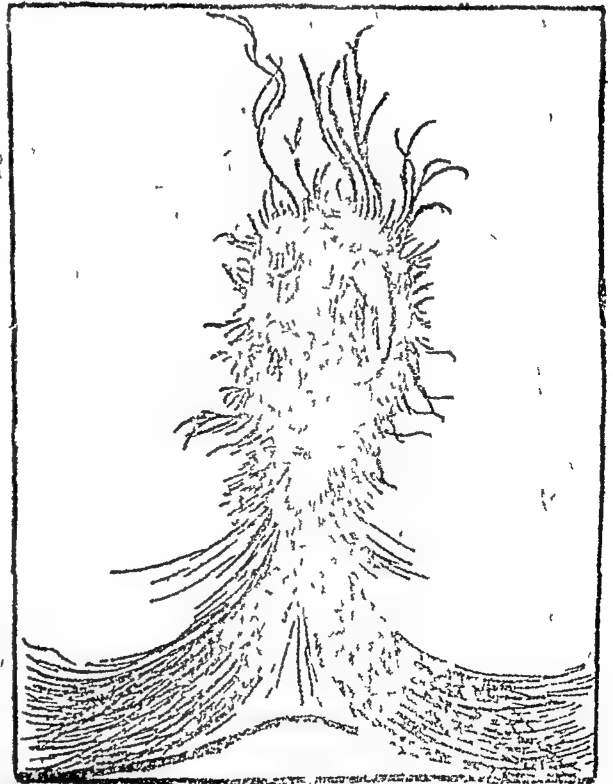
अर्शसां क्षेत्रम्

गुदस्यार्ध पञ्चांगुलावकाशे त्रिभागान्तरिणस्तिस्रोगुदवल क्षेत्रमिति। (चरक चि० १४)

अर्थात् आधा अगुल न्यून पांच अ गुल अवकाश मे अथवा गुदा के साढे चार अ गुल भाग मे त्रिभागान्तर (तीन वलियो के अन्तर से १॥-१॥ अ गुल की दूरी पर) तीन गुद वलिया होती है।

शखावर्तनिभाश्चापि उपर्युपरिसस्थिता.।
गजतालुनिभाश्चापि वर्णत सम्प्रकीर्तिता॥
रोमान्तेभ्या यवाध्यर्धो गुदौष्ठ परिकीर्तित।
प्रथमा तु गुदौष्ठादगुल मात्रे॥ (सु० नि० २/६, ७)

अर्थात् ये वलिया शख के ऊपर ऊपर पडे आवर्त (भँवरो) के समान एक दूसरे के ऊपर स्थित है। इन का वर्ण हाथी के तालु के समान कुछ कृष्णाभ रक्त है। रोम प्रान्तो मे डेढ यव ऊपर गुदौष्ठ है। प्रथमवलि गुदौष्ठ के एक अ गुल दूर है। आचार्य सुश्रुत ने मासाकुर तथा इनके शस्त्र क्षाराग्नि साध्य होने के हेतु अन्यत्र उत्पन्न नासा—



अर्शांकुर

लिंग प्रभृति मास अंकुरो को भी अर्श मे ही मान लिया है।

अर्श अधिष्ठान—

'सर्वेषां चार्शसामधिष्ठानं मेदो, मासं, त्वक् च।
(च० चि० १४)

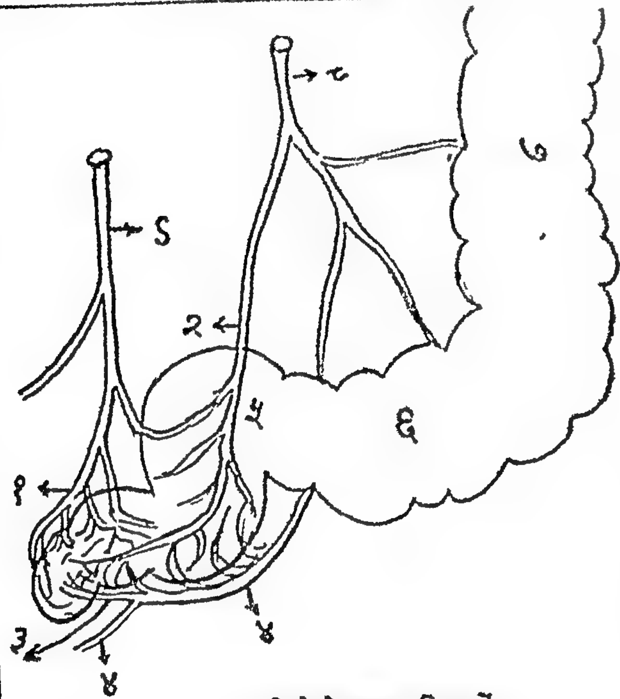


सब प्रकार के अर्शो का अधिष्ठान मेदो धातु, मांस तथा त्वचा होते है।

अर्शो की सामान्य सम्प्राप्ति

वातादि दोष त्वचा, मांस एव मेद को दूषित करके गुदा-नासिका आदि मे अनेक आकृति वाले मांसांकुरो को उत्पन्न कर देते हैं, इन्हे अर्श कहते है।

आचार्य सुश्रुत ने कहा है—असयमी लोग जब वातादि दोषो के प्रकोपक निदानो का सेवन करते है तब तीनो अलग अलग, दो मिल कर या सभी मिल कर, कुपित होकर तथा रक्त प्रधान धमनी मार्गों से नीचे पहुँच के कारण गुद वलियों मे मांसांकुर या प्ररोह उत्पन्न करते हैं, जो अर्श रोग उत्पन्न होता है। इन रोगों को मन्दाग्नि रहती है तथा जो काष्ठ तृण तथा ढेले आदि से गुद का घर्षण करते है, उनमे ये विशेषतया होते है। विरुद्ध भोजन तथा अत्यशन से अब्रह्मचारी, स्त्री प्रसग अधिक करने वाले, उत्कट आसन या पृष्ठ जैसी सवारी पर बैठने वाले पुरुषों या स्त्रियों मे भी यह रोग अधिक दृष्टिगोचर होता है।



अर्श रोगोत्पादक सिरायें

१ उत्तरा गुदान्तिका सिरा (Superior Haemorrhoidal Vein)
२ मध्यमा गुदान्तिका सिरा (Middle Haemorrhoidal Vein)
३. अधरा गुदान्तिका सिरा (Inferior Haemorrhoidal Vein)
४ गुदोपस्थिका सिरा (Internal Pudendal Vein)
५ मलाशय (Pelvic Colon)
६ वृहदान्त्र कुण्डलिका (Singmoid Colon)
७ आरोही वृहदान्त्र (Discending Colon)
८. अधिश्रोणिका सिरा (Hypogastric Vein)
९ अधसान्त्रिक सिरा (Inferor Aesentric Vein)

> तत्रानात्मवतां यथोक्तैः प्रकोपणैर्विरुद्धा-
> ध्यशन स्त्री प्रसङ्गोत्कटासन।
> वेगविधारणादिभि विशेषै प्रकुपिता
> दोषा एकशो द्विश समस्ता ॥
> शोणितसहिता वा यथोक्तं प्रसृताः प्रधान
> धमनीरनुप्रपद्याधोगत्वा ।
> गुदमागम्य प्रदूष्य वलीर्मांसप्ररोहान्
> जनयन्ति विशेषतो मन्दाग्ने ॥
> तथा तृणकाष्ठोपललोष्ठवस्त्रादिभि
> शीतोदकसंस्पर्शनाद्वा कन्दा ।
> परिवृद्धिमासादयन्ति तान्यर्शांसीत्याचक्षते ॥
> (सु० सू० नि० २)

विशेष वचन—यह धमनी शब्द वाहिनी के अर्थ मे आया हुआ है। मांस प्ररोह शब्द मांस के समान उभार- 'मांसस्येव प्ररोहः' अथवा मांस मे उभार 'मांसे प्ररोह.' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

सिराओ के प्ररोह भी मांसवत् कठिन या गुदपेशी के अन्तर्गत ही होते हैं। यही कारण है कि इसे मांस प्ररोह या मांसांकुर कहा गया है।

आधुनिक वैद्यक के आधार पर अर्श के हीमोराइड (Haemorroids, piles) गुदगत सिराओ (Veins) के उभार (Varicosity) ही हैं।

गुदा की सिराओ के उभार को अर्श कहते हैं। इन उभारों के कारण विविध आकृतियो की सूजन हो जाती है, जो कि कभी पूर्णतया गुदा के आभ्यन्तरिक भाग मे एव कदाचित वाह्याभ्यन्तर भाग मे भी होती है। अर्श की

उत्पत्ति मे रक्तवाहिनी को ही कारण बताया गया है ।

—(सैविल)

सुश्रुत ने भी दोषाश्रित रक्तवाहिनी सिरा को अर्श का कारण कहा है ।

कारण

गुरु, मधुर, शीत, अभिष्यन्दि-क्षोभकारक, विरुद्ध भोजन, अजीर्ण (अधकच्चा पका अन्न) प्रमिताशन (बहुत थोड़ी मात्रा मे), असात्म्य भोजन, गाय मत्स्य, सुअर, भैसा बकरी और भेड, इनका मास भक्षण, कृश प्राणियो का तथा सूखा हुआ मास भक्षण, सड़ा हुआ मास भक्षण, मैदे से बने हुए पक्वान्न का भक्षण, खीर, दुग्ध, दही, भोजनोपरान्त गुड़ से बने हुए भक्ष्य का सेवन, उड़द, इक्षु-रस, खली पिण्डासु, सूखा हुआ शाक, सिरका, लहशुन, किलाट (छैना) तक्र पिण्ड (पनीर) कमल के नाल, शालुक (कन्द क्रोस्चादन) कसेरु, सिघाडा, तरुड़ (कुमुदकन्द) अकुरित धान्य, नया शूक (नये गेहू आदि अन्न) तथा शमी धान्य (उडद-मूग, चना आदि) कच्ची मूली, इनका अधिक उपयोग गुरुगुण फल (पचने मे भारी फल) तथा शाक का सेवन, राग (अचार) एव हरीतकी वर्ग के शाक का अधिक सवन, करौधा का अति सेवन, चर्बीदार प्राणियो के मास का भक्षण, बासी अन्न, सड़ा हुआ अन्न, ठण्डा तथा सकीर्ण भोजन (परस्पर विरुद्ध प्रकृति के कई अन्न एक साथ खाने, (कच्चा या विगड़ा हुआ) मद्यपान, गुरुगुण युक्त जलपान, अतिस्नेहपान, शरीर का शोधन न करना, वस्ति-कर्म उचित रूप से न होना, अनुचित व्यायाम तथा व्यवाय, दिवास्वप्न, सदासुखकारक शयन-आसन आदि कारणो से जठराग्नि मन्द हो जाने के कारण पट मे मल का अति-मात्र सचय होता है ।

उत्कट-विषय तथा कठिन आसन पर अधिक काल तक बैठते से, अति वेग से चलने वाली गाडी और ऊट पर सवारी करने से, वस्ति यन्त्र की नली गुदा प्रदेश मे उचित रूप मे प्रवेश न करने से, गुदा पर आघात होन से, बार-बार गुदा प्रदेश को शीतल जल का स्पर्श कराने से, कपड़ा, मिट्टी ढेला, घास प्रभृति द्वारा गुद प्रदेश पर घर्षण होन से, मल प्रवृत्ति के लिए अधिक काल तक तथा बार-बार प्रवाहण करने से, अधोवात, मल तथा मूत्र के वेग प्रवर्तनार्थ चेष्टा करने से, इन वेगो के उत्पन्न होने पर इन्हे रोकने से, आमगर्भ प्रपतन से, गर्भ की वृद्धावस्था मे गुद प्रदेश पर दबाव पडते रहने से तथा विषम प्रसूति से—इन कारणो से अपान वायु बढे हुए मल को-सचित मल को नीचे लाकर गुदवलियो मे जब रोक कर रखता है अर्थात् सचित करता है तब उन वलियो मे रक्तवाहि-नियो पर अधिक दबाव पडने से सिराकौटिल्य उत्पन्न होकर अर्श रोग उत्पन्न होता है । अजितेन्द्रिय तथा विशे-पत. मन्दाग्नि वाला पुरुप जब वलवद्विग्रहादि वात प्रकोपक क्रोधादि पित्त प्रकोपक तथा दिवास्वप्नादि कफ प्रकोपक हेतुओ का अधिक सेवन करता है परस्पर विरुद्ध पदार्थों का भोजन करता है, अध्यशन करता है, उत्कट आसन पर अधिक काल तक बैठता है तो इन कारणो से वातादि दोष प्रकुपित होकर रक्त के साथ मिलकर रक्तवाहिनियो द्वारा महास्रोत के अन्तिम भाग गुद प्रदेश मे आकर मास के सदृश अकुरो या मस्सो को गुदवलियो मे उत्पन्न करते हैं ।

विशेष द्रष्टव्य—चरक तथा सुश्रुत काल मे सम्भवतः द्विचक्रवाहन–साइकिल आदि नही थे, इसीलिए ऊँट आदि सवारी का ही वर्णन किया गया है । स्मरण रहे–साइकिल रिक्शा आदि तथा पैरो से मशीन चलाना भी अर्श के मुख्य हेतु है ।

अर्शो के स्वरूप—

ये अकुर—मस्से आकृति मे सरसो, मसूर, उडद, मोठ, जौ, मटर, पिण्ड (मैनफल) टेंटी (टींट-कैर) केबुक, तिन्दुक, छोटी वेर, घुघची वेर, वास के अकुर, गूलर, खजूर, जामुन, गोस्तन, अगूठा, कसेरु, सिघाढ़ा, मुग, मोर या तोते की चोच या जीभ तथा कमल की कली या कणिका प्रभृति के समान होते हैं ।

अर्श के पूर्वरूप

१. विष्टम्भोऽन्नस्य—भुक्तान्न का विष्टम्भ अर्थात् उसके पाक क्रिया मे थोडी रुकावट ।

२. दौर्बल्य—आन्त्र प्राचीर की दुर्बलता ।

३ कुक्षेराटोप—उदर मे आटोप अर्थात् पेट मे गुड़-गुडाहट ।

४. कार्श्य—शरीर का दुवला-पतला या कृश होना ।



५ हद्गार बाहुल्य -- डकारों का अधिक आना।

६. सक्थिसादो—सक्थि का शिथिल होना-टागो की शिथिलता।

७ अल्पविट्कता—मल प्रवृत्ति का न्यून हो जाना।

८ ग्रहणी दोष—ग्रहणी-उदर रोग हो जाना।

९ पाण्डु—पाण्डु रोग होने की शका उत्पन्न होना।

आचार्य सुश्रुत कहते है—

१. अन्नेऽश्रद्धा—अन्न पर अरुचि।

२. भुक्त अन्न का कष्टपूर्वक पचना।

३ खट्टी डकारो का आना।

४. उदर प्रदेश मे जलन का अनुभव होना।

५ पिपासा अधिक लगना।

६ नेत्रो पर शोथ होना।

७ आन्तो मे गुडगुडाहट।

८. गुद प्रदेश मे परिकर्त्तनवत् (काटने जैसी) पीडा का अनुभव होना।

९. राजयक्ष्मा की आशका।

१०. कास, श्वास, भ्रम, तन्द्रा निद्राधिक्य(सु नि २)

११ नाभि प्रदेश मे पत्थर के समान अनुभव होना।

१२ अधोवात का कष्ट और शब्द के साथ निकलना।

१३. मूत्र अधिक निकलना।

१४. इन्द्रियो की शुद्धि का अनुभव न होना।

१५. आलस्य बना रहना।

१६ शोथ एव गुल्म की आशका (अ. स नि. ७)

ये सब लक्षण अर्श रोग के पूर्वरूप मे दृष्टिगोचर होते हैं।

वातज अर्श हेतु एव लक्षण—

कषाय, कटु, तिक्त, रूक्ष शीत तथा लघुगुण विशिष्ट आहार के समय सेवन से, अल्प मात्रा मे सदा भोजन करने से, तीक्ष्ण मद्य सेवन से, अधिक मैथुन करने से, उपवास करने से, शीत देश तथा काल मे निवास करने से, अति व्यायाम तथा शोक से, और वायु तथा धूप के अधिक सेवन से, वातज अर्श उत्पन्न होते है।

वातज अर्श के मस्से अनेक, शुष्क, म्लान, कठिन, रूक्ष, स्तब्ध, विशद, खर, श्यामवर्ण, तीक्ष्णाग्र, नस्य फटे हुए मुख वाले, विषम रूप से फैले हुए होते हैं। इसमे शूल आक्षेप, तोद, स्फुरण, चिमचिमापन, सहर्ष आदि वातज लक्षण होते है। स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थों के सेवन से इसमे शक्ति मिलती है। प्रवाहिका, आध्मान, लिंग, मूत्राशय, वृषण और उपसन्धि मे जकडने की सी पीड़ा होती है। अगमर्द और हाथ मे धडकन होने लगती है। अधोवक्ष, मूत्र तथा मल की प्रवृत्ति वारवार अवरोध के साथ साथ होने लगती है। जाघ, कमर, पीठ, गर्दन, उदर, शिर, कन्धो, ऊर, वक्षण. और मूत्राशय मे शूल होता है। वातार्श के रोगी का शिर गरम रहता है। छीको का आना, डकार वाहुल्य, प्रतिश्याय कास, श्वास, उदावर्त, शीघ्र शरीर मे शोथ, मूर्च्छा, अरुचि, मुंह का स्वाद विगड जाना, आखो के सामने अन्धेरा दीखना, कण्डू, नासिका, कान और कनपटी मे सशब्द शूल, स्वर का बैठ जाना इत्यादि लक्षण होते है। वातार्श से पीड़ित रोगी के नख, चेहरा, त्वचा, मूत्र और मल श्याम एव अरुण वर्ण के एव परुश तथा रूक्ष हो जाते हैं। (चरक)

वातार्श अकुर विवर्ण मध्य भाग मे आधे नीचे, विम्वी, खजूर, वेर, कपास के फल, कदम्ब के पुष्प, वाकौ शाक पुष्प नलिका, सरसो तथा रुई सदृश मुख वाले हैं। शुष्क, गाढ, सफेन, सपिच्छ तथा सशूल मल प्रवृत्ति होती है। इसमे गुल्म,अष्ठिला और प्लीहोदर यह उपद्रव होते हैं। (वा० नि० ७)

वातार्श मे रक्त नही निकलता, भयकर जलन होती है। (सु० नि० ५)

पैत्तिक अर्श के हेतु तथा लक्षण—

कटु, उष्ण, लवण तथा क्षार गुण वाले पदार्थो का का सेवन, व्यायाम, अग्नि के पास बैठना, धूप मे घूमना या बैठना, उष्ण देश तथा काल, क्रोध, मद्यपान, असूया, विदाही, तीक्ष्ण, उष्ण, अन्नपान तथा औषधि का सेवन, इत्यादि कारणो से पित्तज अर्श की उत्पत्ति होती हैं।

पित्तज अर्श के मस्से मृदु, कोमल, शिथिल, ढीले, सुकुमार, स्पर्शासह, लाल' पीले, काले तथा नीले वर्ण के अधिक स्वेद तथा क्लेद वाले, कच्चे मास के समान रग तथा गध वाले, पतले स्रावयुक्त, दाह तथा कण्डू युक्त सूई भाले के चुभने की सी पीडा युक्त और पकने वाले होते

है। पित्तज अर्श से पीड़ित पुरुष या स्त्री का शीत आहार-विहार तथा औषध सेवन से स्राव तनुमय होता है। इससे आक्रान्त रोगी को पतले तथा हरे और पीले रंग के दस्त आते हैं। पेशाब भी पीला होता है। मल मूत्र का प्रमाण अधिक तथा उसमे कच्चे मास के समान गन्ध आती है। उसको पिपासा अधिक लगती है। ज्वर श्वास, कष्ट मूर्च्छा, अन्नद्वेष आदि पैत्तिक लक्षण होते हैं। उसके नेत्र, नख, त्वचा, वदन तथा दात के वर्ण पीले रंग के हो जाते हैं। (चरक चि० ४) पैत्तिक अर्श छोटे फैलने वाले, हल्दी के वर्ण के तथा यकृत खण्ड के समान वर्ण वाले, अग्र भाग नीले वर्ण के तोते की जीभ या चोंच के समान, मध्य मे उभरे हुए जो तथा जलौका के समान दोनों छोरो पर पतले और गीले होते हैं। पित्तार्श से पीड़ित रोगी को सदाह तथा सरक्त मल प्रवृत्ति होती है।

कफज अर्श के हेतु तथा लक्षण—

मधुर, स्निग्ध, शीत, लवण, अम्ल तथा गुरु पदार्थों का सेवन, व्यायाम का न करना, दिवास्वप्न, सुखासन तथा सुखशय्या, प्राग्वात, शीतदेश तथा शीतकाल, किसी प्रकार की चिन्ता न करना इत्यादि कफज अर्श के कारण होते हैं।

कफज अर्श के मस्से प्रमाण मे बड़े, उभरे हुए, चिकने स्पर्श को सहन करने वाले, स्निग्ध, पिच्छिल, श्वेत या पाण्डुवर्ण के, स्तब्ध, गुरु तथा आर्द्र कपड़े से लिपटे के समान अनुभव होने वाले, सुन्न-स्थिर तथा शोथ युक्त एव अधिक कण्डू वाले होते हैं। इसके मस्से से पिञ्जर, श्वेत तथा रक्तवर्ण का पिच्छिल स्राव होता है। इससे आक्रान्त रोगी को गुरु-पिच्छिल तथा सफेद वर्ण का मूत्र और मल प्रवृत्त होता है। इन्हे रूक्ष तथा उष्ण पदार्थों के सेवन से सुख अनुभव होता है। प्रवाहिका, बार-बार मलप्रवृत्ति, वक्षणानाह, बन्धन के समान पीड़ा, गुदपरिकर्त्तन, जी मिचलाना, बार-बार थूकना, कास, अरुचि, प्रतिश्याय, गौरव, छर्दि, शीत ज्वर, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, शोष, शोथ, पाण्डु रोग, हृदय तथा इन्द्रियो मे उपलेप, मुंह का स्वाद मीठा रहना, प्रमेह, अग्निमांद्य, नपुंसकता तथा आमविकार के लक्षण लक्षित होते हैं। यह चिरकाल तक रहता है। इसमे रोगी के नख, नेत्र, वदन, त्वचा, मूत्र तथा पुरीष श्वेतवर्ण के हो जाते हैं। (च० चि० १४)

इसके मस्से गहरे मूल वाले गोल बेर या कटहल की गुठली के आकार के होते हैं। ये फटते नही और इनसे स्राव भी नही होता। इसमे आक्रान्त रोगी को कफ मिश्रित अधिक प्रमाण मे मासधोवन के समान मल प्रवृत्ति होती है तथा शरीर पर शोथ उत्पन्न हो जाता है। अजीर्ण तथा शिरोगौरव आदि लक्षण होते है। (सु० नि० २)

अष्टांग हृदय मे भी चरक तथा सुश्रुत मतानुसार ही वर्णन किया है। इस अर्श के मुख्य लक्षणो मे—मस्से चिरकाल तक रहते हैं। अर्शों मे स्राव नही होता। मुख का स्वाद मीठा होता है। मलत्याग के समय भी स्राव नही होता। मांस के धोवन सदृश दस्त आते हैं।

द्वन्द्वज अर्श के लक्षण एवं भेद

जब अर्श से पीडित रोगी मे दो दोषो के लक्षण मिले हुए दिखाई दें तब उसको द्वन्दज अर्श से पीडित समझे। जब तीनो दोषो के लक्षण दृष्टिगोचर हो तो, उसे सन्निपातिक अर्श समझना चाहिए।

१. वातपित्तज २. वातकफज ३ पित्तकफज ४ वात शोणितज ५ पित्तशोणितज ६ कफशोणितज भेद से द्वन्दज अर्श छ प्रकार के होते हैं।

विशेष वचन—त्रिदोषज अर्श के लक्षण सहज अर्श के समान ही होते हैं।

अर्श रोग अति दु खद है। क्यो ? इसलिए कि इस रोग मे पांचों प्रकार के वात-पित्त तथा कफ एव गुदा की तीनो वलिया प्रकुपित तथा आक्रान्त होती है।

सहज अर्श के लक्षण

सहज अर्श के मस्से कोई छोटे, कोई बड़े, कोई लम्बे, कोई ह्रस्व, कोई गोल, कोई टेढे मुंह वाले, कोई भीतर टेढे, कोई जालीदार और कोई भीतर की ओर मुख वाले होते हैं। इनका रंग आरम्भक दोष के अनुरूप होता है। सहज अर्श से पीडित रोगी जन्म से ही अधिक कृश, विवर्ण क्षीण, दीन स्वभाव का, अधिक विबद्ध, अधोवात, मूत्र, पुरीष वाला होता है। इससे आक्रान्त रोगी को अश्मरी तथा शर्करा का कष्ट बहुधा होता है। सहज अर्श वाले को कभी मलावरोध रहता है, तो कभी पतला, कभी पका

हुआ, कभी कच्चा, कभी शुष्क मल प्रवृत्ति अनियमित रूप से होती रहती है। उसे कभी-कभी श्वेताभ पीत तथा कभी श्वेत, हरा, पीला, लाल, सफेदी लिए हुए, कभी पतला तो कभी गाढा दस्त आता है। मल पिच्छिल तथा शव गन्ध भी कभी-कभी प्रवृत्त होता है। इसके नाभि मूत्राशय, वक्षण प्रदेश मे कर्तनवत् पीडा होती है। गुद प्रदेश मे शूल के समान पीडा मल त्यागने के साथ होती है। मल के त्याग के समय लोम हर्ष तथा उदर मे गुड-गुडाहट की आवाज होती है। मलावरोध होने पर वायु की ऊर्ध्वगति होने से उदावर्त के भी कष्ट उसे होते हैं। मूत्रविकार प्रमेह के भी लक्षण लक्षित होते हैं। छाती तथा इन्द्रिया कफ से लिप्त सी अनुभव होती हैं। उसे रुक-रुककर प्रचुर प्रमाण मे खट्टी डकारे आती रहती हैं। वह दुर्बल, मन्दाग्नि से पीडित, क्रोधी स्वभाव का अल्प वीर्य वाला, सदा दुःखी जैसे उपचार प्रवृत्ति एव स्वभाव वाला हो जाता है। उसको कास, श्वास, नेत्रो के सामने अन्धेरा होना, तृषा, जीमिचलाना, वमन, अरुचि, अपचन, प्रतिश्याय, छीको का आना, तिमिर, शिर.शूल, कर्णशूल आदि लक्षण होते है।

उस का स्वर क्षीण, फटा हुआ, रुका हुआ और जर्जर हो जाता है। उसके हाथ पैर, चेहरे और- अक्षिकूट पर सूजन आ जाती है। उसको ज्वर, अङ्गमर्द, सभी सन्धियो तथा अस्थि-सन्धियो मे पीडा होती है। बीच-बीच मे उसके पार्श्व कुक्षि-मूत्राशय, हृदय प्रदेश, पीठ और कमर मे जकडन सी पीडा होती है। वह व्यर्थ की चिन्ता मे सदा मग्न रहता है। परम आलसी हो जाता है। जन्म जात गुदमार्ग मे मस्सो के कारण अवरोध होने से अपान वायु प्रतिलोम होकर अन्य समान उदान-प्राण तथा व्यान वायु और पित्त तथा कफ को प्रकुपित करता रहता है। इस प्रकार प्रकुपित हुए पाचो वायु पित्त तथा कफ सहज अर्श से आक्रान्त रोगी को उपर्युक्त विकारो से कष्ट पहुचाते रहते है।

सहज अर्श माता पिता के दुष्ट आर्तव और शुक्र के कारण उत्पन्न होता है। दोषो के लक्षण के अनुसार वैद्य को वातज-पित्तज तथा कफज सहजार्श की कल्पना करनी चाहिए। सहज अर्श आभ्यन्तर वलियो मे उत्पन्न होने से कठिनता से दिखाई देने वाले पर स्पर्श, पाण्डुवर्ण, दारुण पीडा देने वाले तथा अन्तर्मुख होते हैं। सहज अर्श से पीडित रोगी कृश-अल्पभोजी अल्पवीर्य तथा सन्तान वाला, क्षीण स्वर वाला, क्रोधी, अल्प बल तथा मन्दाग्नि वाला होता है। वह सदा शिर आख-नाक और कास रोगों से पीडित होता रहता है। उसकी आतो में गुडगुडाहट छाती मे उपलेप, अरुचि प्रभृति कष्ट होते रहते है।

रक्तार्श के लक्षण

रक्तज अर्श के मस्से वट अकुर, प्रवाल मूगा, या गून्जा के फल-घुघची के समान वर्ण और आकृति वाले तथा पित्तज अर्श के लक्षणो से युक्त होते है। इससे आक्रान्त रोगी को जब कठिन या गाढा मल प्रवृत्ति होती है तो मस्से कठिन मल से दबकर फूट जाते है और अत्यधिक प्रमाण मे उनसे रक्तस्राव होने लगता है। रक्त के अधिक स्राव होने से रक्तातिप्रवृत्ति जन्य आक्षेप, शिर शूल आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यद्यपि पित्ताधिक्य से रक्तस्राव होता है तथापि वात और कफ का भी उसमे अनुबन्ध रहता है। रक्तार्श मे जब वायु का अनुबन्ध होता है तो मल श्याव वर्ण, कठिन तथा रूक्ष हो जाता है। अधोवात की प्रवृत्ति रुक जाती है। अर्श से जो रक्त का स्राव होता है, वह पतला अरुण वर्ण और फेन युक्त होता है। इससे आक्रान्त रोगी के कमर, गुदा और जघाओ मे शूल तथा दौर्बल्य होता है। रूक्ष पदार्थो के सेवन से रक्तार्श मे वात का अनुबन्ध होता है। इसी प्रकार रक्तार्श मे जब कफ का अनुबन्ध होता है तब मल सफेदी लिये हुए पीतवर्ण का ढीला स्निग्ध भारी और स्पर्श मे शीतल होता है। अर्शांकुर से जो रक्तस्राव होता है, उसका वर्ण पाडु होता है। और गाढा-पिच्छिल होता है। गुद प्रदेश मे पिच्छा और जकड़न सा अनुभव होता है। गुद तथा पदार्थो के सेवन से कफ का अनुबन्ध रक्तार्श मे होता है। रक्त की अति प्रवृत्ति होने से रोगी का वर्ण वर्षाकालीन मेढक के समान हो जाता है और वह वर्णहीन, बलहीन, ओजोहीन हो जाता है। उसकी इन्द्रिया व्याकुल हो जाती हैं।

विशेष वचन—चरक ने रक्तार्श को पित्तार्श मे दर्शाया है। सुश्रुत का वर्णन ऊपर मे है। रक्तार्श के वही निदान है जो पित्तार्श के लिखे जा चुके हैं।

सापेक्ष निदानम्

रक्तार्श	रक्तातिसार
१ रक्तार्श तथा रक्तातिसार की सापेक्ष निश्चिति	
१—अर्श का इतिहास मिलेगा।	१—अर्श का इतिहास न मिलेगा।
२—अंगुली गुद परीक्षा से मस्सा की उपस्थिति मिलेगी।	२—मस्सा की उपस्थिति न मिलेगी।
३—रक्त प्रवृत्ति मल त्याग के पूर्व या पश्चात् होती है।	३—रक्त मल मे मिला रहता है।
४—मलत्याग के साथ पीडा होती है।	४—मलत्याग मे पीडा नही होती।
५—मलबन्धा हुआ एव कठिन होता है।	५—मल पतला होता है।

२—रक्तार्श तथा रक्तपित्त की सापेक्ष निश्चिति

रक्तार्श	रक्तपित्त
१—रोग का पुराना इतिहास मिलेगा	१—पुराना इतिहास न होगा
२—रक्त प्रवृत्ति गुद मार्ग से होती है	२—रक्त प्रवृत्ति गुद मुख नासिका से होती है
३—अंगुली गुद परीक्षा से मस्से मिलेंगे	३ यह परीक्षा नकारात्मक रहेगी।
४—रक्त प्रवृत्ति मलत्याग के पूर्व या पश्चात होगी	४—मलत्याग के बिना भी रक्तप्रवृत्ति हो सकती है
५—मलत्याग मे अत्यधिक पीडा होती है।	५—इसमे पीडा नही होती
६—रोगी को प्राय अजीर्ण रहता है।	६—अजीर्ण का विशेष सम्बन्ध नही
७—रक्त मिश्रित अन्न को कुत्ता या कौवा खा सकता है	७—कुत्ता या कौवा इसको नही खाता
८—इसके रग मे रङ्गा हुआ वस्त्र धोने पर स्वच्छ हो जाता है।	८—वस्त्र स्वच्छ नही होगा
९—रक्त की मात्रा कम होती है	९—रक्त की मात्रा अधिक होगी

साध्यासाध्यता

१. सुखसाध्य के लक्षण—जो सवरणी नामक वाह्य वलि मे एक दोष के कुपित होने से उत्पन्न हुए है, नवोत्पन्न एक वर्ष से अधिक वर्ष के नही हो। वे सुखसाध्य होते हैं।

२ कष्टसाध्य अर्श के लक्षण—जो अर्श दो दोषो के प्रकोप से विसर्जनी नामक द्वितीय वलि मे उत्पन्न होने वाला, एक वर्ष से अधिक पुराना अर्श कृच्छ्रसाध्य (कष्टसाध्य) होता है।

३ असाध्य अर्श के लक्षण—सहज-तीनो दोषो के प्रकोप से उत्पन्न हुए तथा प्रवाहिणी नामक आभ्यन्तर तृतीय वलि मे होने वाला अर्श असाध्य होता है।

नाम वलि	दोषोत्वणता	साध्यासाध्यता
प्रथम वलि सवरणी	एक दोषोल्वण	साध्य
प्रथम वलि संवरणी	द्विदोषोल्वण	कृच्छ्रसाध्य
प्रथम वलि सवरणी	त्रिदोषोल्वण	याप्य
द्वि०वलि विसर्जनी	एक दोषोल्वण	कृच्छ्रसाध्य
द्वि०वलि विसर्जनी	द्विदोषोल्वण	याप्य
द्वि०वलि विसर्जनी	त्रिदोषोल्वण	असाध्य
तृ०वलि प्रवाहिणी	एक दोषोल्वण	याप्य
तृ०वलि प्रवाहिणी	द्विदोषोल्वण	असाध्य

यवन मतेन अर्शोरोग वर्णन

सामान्यतो ववसीरो रीही खूनी द्विधाभवेत्।
खूनी ह्यपि च वातस्य विना कोप न सम्भवेत्॥
साधारणत अर्श दो प्रकार के १ खूनी तथा २. वादी



कहे हैं। प्रचलित भाषा मे इसे बवासीर कहते है। बवासीर अरबी भाषा के 'नासूर' शब्द का बहुवचन है। नासूर का अर्थ मासाकुर (Polypus) या शिराकौटिल्य (Varicosity) होता है।

१. बवासीर रीही—इसको अरबी मे रीहुल बवासीर बवासीर रीह-बवासीर रीही कहते हैं। यह आयुर्वेद मतानुसार वातार्श है। तथा—चरक तथा वाग्भट ने शुष्क तथा आर्द्र दो प्रकार के अर्श बतलाये हैं। वात तथा कफ से उत्पन्न अर्श 'शुष्कार्श' होते हैं। रक्त तथा पित्त प्रधान प्रस्रावी अर्शो को आर्द्र अथवा खूनी बवासीर कहा है। बवासीर रीही (वातार्श) मे रक्त नही निकलता, गुद प्रदेश पर कण्डू होती है

२ बवासीर खूनी—इसमे रक्त तथा पीले रग का पानी अर्शो से निकलता है। इसको रक्तार्श या हीमोराइड्स (Hoemoarhoids) कहते हैं। कारण तथा लक्षण आयुर्वेद मतानुसार समझे।

पाश्चात्य मतानुसार अर्शोरोग वर्णन

पाश्चात्य विद्वान अर्श के दो भेद मानते हैं १. वाह्यार्श २ आभ्यन्तर :

गुदा की सिराओं के उभार को अर्श कहते है। इन उभारो के कारण विविध आकृतियो की शोथ होती है। जो कभी पूर्णतया गुदा के भीतरी भाग मे एव कभी बाहरी भाग मे भी होती है। इसकी उत्पत्ति मे रक्तवाहिनी कारण है।

कारण—१ आन्त्र का अधिकतर रक्त प्रतिहारिणी महाशिरा द्वारा यकृत मे पहुचता है। उदरगत अर्बुद आदि के दवाव से इसमे रुकावट होने से अर्श उत्पन्न होते हैं। २ विबन्ध का अधिक रहना, ३ अत्यधिक मद्यपान, ४ एक स्थान पर अधिक देर बैठकर काम करने से, ५. विलासितामय जीवन व्यतीत करने से, व्यायाम न करने से ६ शीतल स्थान पर अधिक देर तक बैठने से। ७ गुद के निम्न भाग की शिरायें सकुचित होने से, ८ मलमूत्रावरोध होने से विशेषत गर्भावस्था मे।

विशेष वचन—उपरोक्त सभी कारण आयुर्वेद मे कहे गये है। सुश्रुत निदान स्थान अध्याय २ और चरक चिकित्सा स्थान अध्याय १४ देखें।

सामान्य लक्षण

१. मल के भीतर रक्त की उपस्थिति।

२. मलत्याग के समय पीडा जो कि मल त्याग के पश्चात् भी कुछ काल तक बनी रहती है।

३ कोष्ठबद्धता—यह अर्श का स्वाभाविक तथा सदातन गुण है।

४ गुद प्रदेश के चारों ओर लालिमा हो जाना।

५. अन्य सार्वदैहिक लक्षण—शिरोवेदना, मूर्च्छा, शरीर का गिरा रहना, एवं मल द्वारा रक्त अधिक निकल जाने के कारण रक्ताल्पता भी पर्याप्त मात्रा मे हो जाती है।

वाह्यार्श (External Piles)

वाह्यार्श मे गुदाकुर (मस्से) गुदा के चारो ओर बाहर दीखते रहते हैं। साधारणावस्था मे जब इन पर शोथ-व्रण दाह न हो, खाली हो, रक्त से भरकर फूले न हो तब तक दुःख नही देते। मलावरोध होने पर मल का दबाव पडने से फूल जाते है। प्रत्येक शिरा का अन्तिम भाग एक छोटा सा अकुर मस्सा गाँठ सा बन जाता है। इन शिराओ मे रक्त जमकर शोथ हो जाता है जिससे असह्य वेदना होती है।

ये शिरायें फूलने से पूर्व केवल गुदा मे खुजली सी चलती है। शिराओ मे कुपित रक्त भर जाने से नीले रग की गाँठें छोटे-छोटे अर्बुद हो जाते है। रोगी सुगमता से चल नहीं सकता। उपचार से वेदना तो शमन अवश्य होती है किन्तु मस्से अधिक कठिन हो जाते हैं। रक्त कम निकलता है। कभी गुद सकोच होकर विद्रधि बन जाती हैं। ये वाह्यवलि-सवरणी मे उत्पन्न होती है।

आभ्यन्तरार्श (Internal Piles)

ये अर्श प्रारम्भ मे मृदु फिर शनै शनै कठोर होते जाते है। पर गुदा के भीतर होते हैं। मलत्याग के समय बाहर आ जाते हैं फिर भीतर चले जाते हैं। यह श्लैष्मिक कला से ढके रहते हैं। इनका वर्ण नीला या कुछ काला होता है। मलत्याग के समय श्लेष्मा पर रगड़ पडने से कठिन पड जाती है। मल कठिन हो तो रक्त भी आ जाता है। पहले केवल मलत्याग के समय मल के पूर्व

कुछ रक्त आता है किन्तु कुछ समय के बाद रक्त अधिक आने लगता है। रोगी दुर्वल होने लगता है। रक्तक्षय से पाण्डुरोग भी हो जाता है। जब तक यह मस्से नही फटते हैं तब तक कमर मे जडता और मलत्याग मे बोझा प्रतीत होता है। क्वचित मस्से बाहर निकलने पर भीतर नही जाते, गुदा के सकुचित होने के हेतु एकत्र हो जाते हैं।

यह आन्तरिक अर्श मध्य तथा तृतीय बलि वाले अर्शों के अन्तर्गत आ जाते है। यह स्राव युक्त होता है।

अर्श	रक्तामाशय
१. रक्तस्राव, मलत्याग के पहले या बाद मे होता है।	१. ऐसा नियम नही है।
२ मल के साथ रक्त नही आता।	२ आ सकता है।
३. रक्त मल मे मिला हुआ नही होता।	३ हो सकता है।
४. अर्श का रक्त बूंद-बूंद गिरता है।	४ यह बूंद-बूंद नही गिरता।
५ कभी कठोर मल पर रेखा सी बन जाती है।	५ ऐसा नहीं होता।
६. पेट मे मरोड कुंथन नही होता।	६ मरोड़ कुंथन होता है।

अर्श तथा विविध रोगो की सापेक्ष निश्चिति

१. अर्श	गुदभेद
१. रक्तार्श मे शिरा फूलती है।	१. गुदा की त्वचा फटती है। शिरा नही फूलती।
२. मल त्यागने पर सामान्य पीडा होती है।	२ मल त्यागने पर अति पीडा होती है।
३. मल त्याग के पश्चात् पीडा नही रहती।	३. मल त्यागने के पश्चात् भी पीडा रहती है।
४. मस्से फटने पर अधिक रक्त गिरता है।	४. कुछ रक्त मल से लगा हुआ रहता है तथा पश्चात् भी रक्त की २-४ बूंदे टपकती है।

२ अर्श	गुदभ्रंश
१. अर्श के मस्से ऊंचे नीचे क्वचित् सब गुदा पर फैले रहते हैं।	१. गुदभ्रंश का मास मृदु और वर्त्तुलाकृति का होता है।

३—अर्श	मासार्श
१. रक्तार्श के मस्से अनेक होते हैं।	१ मासार्श (Polypus) एकाकी होता है।
२ रक्तार्श मृदु होते हैं।	२ मासार्श कठोर होते है।
३ रक्तार्श नाल रहित होते हैं।	३ मासार्श नाल सहित होते हैं।

४—अर्श	फिरगज गुदशूल
१. अर्श गुद प्रदेश मे एक ओर रहता है।	१ उभय ओर गुद से कुछ दूर रहता है।
२. उदर विकार का इतिहास मिलता है।	२. गुद मैथुन करने का वृतान्त मिल सकता है।
३. अर्श गोलाकृति के होते है।	३. नुकीली तथा उभरी हुई आकृति होती है।
४. इनकी स्थिति असमान होती है।	४. इनकी स्थिति समान होती है।
५. यह गुदा के भीतर बाहर पाये जाते हैं।	५ प्रायः गुद द्वार के समीप पाये जाते हैं।
६. शरीरगत विशेष लक्षण नही पाये जाते।	६. फिरग की द्वितीयावस्था के लक्षण पाये जाते हैं।

५—अर्श	गुदभ्रंश
१ अर्श का इतिहास मिलता है।	१. प्रवाहण काल मे गुदभ्रंश का इतिहास मिलता है।
२. आक्रमण काल मे बाहर आ जाते हैं।	२ आक्रमण काल मे सम्पूर्ण गुदा बाहर निकल आती।



३—अगुली की परीक्षा से खुरदरापन अनुभव होता है।	३—मृदु अनुभव होता है।
४—अर्श बाहर आने पर रक्तस्राव होकर पिचक जाता है।	४—गुदा बाहर आने पर रक्तस्राव होकर शोप का भय होता है।
६—अर्श	श्लेष्मज ग्रन्थि
१—उदर विकार या उक्त निदानो का इतिहास।	१—क्षय का इतिहास मिलता है।
२—गोल उभरी हुई आकृति।	२—ग्रन्थियो की विशेष उभरी आकृति।
३—गुद प्रदेश के भीतर बाहर।	३—गुद द्वार के समीप स्थिति होती है।
७—अर्श	गुदाकुर
१—गुद प्रदेश मे अकुर पाये जाते हैं।	१—शैशवीयावस्था मे पाये जाते हैं।
२—अकुर कठिन होते हैं।	२—कोमल होते है।
३—गुदा के बाहर भीतर होते हैं।	३—गुदा के समीप स्थित होते है।
४—रक्तस्राव अर्शाक्रमण पर निर्भर।	४—रक्तस्राव प्रायः अधिक होता है।

पुरीष परीक्षा—

१ अर्शो-मस्सो से रक्तस्राव हो तो मल के ऊपर रक्त की रेखा खिच जाती है।

२ गुदभ्र श मे प्राय त्याग के बाद रक्तस्राव गुदा की श्लेष्मकला से होता है।

३. गुदविदार (Fissure) मे भी रक्त की रेखा सी खिचती है। देखने से निदान हो सकता है। इसमे पीडा बहुत होती है।

४ अन्त्रान्त्र प्रवेश—शिशुओ मे सहसा रक्त मिश्रित श्लेष्मा का त्याग होता है।

५ गुदाकुर—सहजार्श का भ्रम हो सकता है।

६ गुदशोथ क्वचित मल के साथ श्लेष्मायुक्त रक्त आता है। मल त्याग के पूर्व तथा पश्चात् तीव्र पीडा होती है।

७ जीर्ण प्रवाहिका मे भी रक्तस्राव आ सकता है।

८. गुदा के अर्बुद—प्राय रक्तस्राव हो सकता है।

रक्तस्राव—

१ अधोगत रक्तपित्त, यकृत्क्षय, श्वेताणुओ की अल्पता शीतादि आदि रोगो मे भी रक्तस्राव होता है।

२. आन्त्रिक ज्वर, क्षयजन्य व्रणो मे से भी रक्तस्राव होता है।

३. ध्यान रहे अर्श का रक्तस्राव साधारणतः मल त्याग पूर्व या पश्चात् होता है।

नाडी परीक्षा—नाडी घूमकर चक्राकार चलती है। जिस ओर की नाडी मे यह विशेषता होगी अर्श भी गुदा मे उसी ओर होगे।

दोषोल्वणता मे लक्षण—१. वातोल्वण अर्श—इसमे गुद प्रदेश मे शूल होता है।

२ पित्तोल्वण अर्श—इस अर्श मे दाह होती है।

३ कफोल्वण अर्श—इसमे मल खुलकर नही आता।

४ सर्व प्रकार के अर्श—इसमे रक्तस्राव मल के साथ होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

अर्श के निवारण के चार उपाय कहे हैं, यथा—

१ भेषज प्रयोग, २ क्षार कर्म, ३ शस्त्र कर्म, ४ अग्नि कर्म।

इनमे भेषज प्रयोग सर्वोत्तम उपाय है। क्योकि उससे कोई बाधा की सम्भावना नही रहती है और सुगम भी है। शेष तीन उपाय अति विचारपूर्वक करने चाहिए।

औषध साध्यार्श—जो अर्श थोडे समय का हो, अल्प दोष, अल्प चिन्ह, अल्प लक्षण युक्त हो, वह औषध से साध्य होता है। जो मस्से कोमल, फैले हुए, गाढ-गम्भीर और ऊपर को उभरे हुए हो, वे क्षार साध्य है। जो मस्से कर्कश-खुरदरे, स्थिर, मोटे-चपटे, कठिन हो, उनको अग्नि से दाग देना चाहिए। पतली मूल, लम्बे और क्लेद युक्त हो उनको शस्त्र से काट देना चाहिए।

चिकित्सा की दृष्टि से अर्श दो प्रकार की होती है। १. शुष्क तथा २ आर्द्र-स्रावी। इनमें शुष्क वातश्लेष्मोल्वण होती है। प्रस्रावी रक्तपित्तोल्वण होती है। शुष्कार्श मे तीक्ष्ण द्रव्यो से निर्मित प्रलेप आदि चिकित्सा करनी चाहिए। प्रस्रावी में निकलने वाले रक्त का परीक्षण करके अर्थात् दूषित रक्त है तो पहले उसको निकाले, निकल जाने के पश्चात् शुद्ध रक्त गिरने पर रक्तपित्त शामक चिकित्सा करनी चाहिए। दूषित रक्त का स्तम्भन कदापि न करना चाहिए, अन्यथा अनेक उपद्रव पैदा हो जाते है। किन्तु रोगी अत्यन्त निस्तेज हो गया हो तो दूषित रक्त को भी बद कर देना चाहिए। रक्तार्श मे केवल पित्तानुबन्ध हो, वातकफानुबन्ध न हो, तो ग्रीष्म ऋतु मे प्रवृत्त होने वाले रक्त को सर्वथा रोक देना चाहिए।

गुदांकुर कठिन-शोथ युक्त तथा रक्त सचय युक्त हो और सामान्य उपचार से ठीक न हुए हो, तो सूची से, शस्त्र से, जौंक लगवा कर रक्त को निकलवा दे।

दोषानुसार उपचार सिद्धान्त—

१. वातज अर्श मे स्नेहन, स्वेदन, उपनाह आदि करें।
२ पित्तज अर्श मे रेचन आदि।
३ कफज अर्श मे वमन, दीपन, पाचन आदि।
४ त्रिदोषज एव सहजार्श मे मिश्र चिकित्सा करे।
५ रक्तज अर्श की चिकित्सा पित्तवत् करनी चाहिए।

अर्श, अतिसार, ग्रहणी ये तीनो रोग प्राय परस्परोत्पादक होते हैं। इन तीनो रोगो का कारण अग्निमान्द्य ही है। यदि जठराग्नि मन्द न हो, तो ये रोग नही होते। अत इनमे अग्निमन्द न हो अपितु तीक्ष्ण हो, इसका सर्वदा ध्यान रखना चाहिए।

प्रतिषेधात्मक उपचार— स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए, जिससे व्याधि का प्रादुर्भाव ही न हो और यदि व्याधि हो गई हो तो उसकी चिकित्सा करना।

सामान्यत जिससे वायु का अनुलोमन हो और अग्निबल बढे वही अन्नपान और औषध अर्श के रोगियो को सेवन करना चाहिए। विबन्ध न रहे, इसका ध्यान रखें तथा उपाय करें। जिस अर्श मे पतला पुरीष निकलता है, उसकी चिकित्सा वातविकार के समान और जिसमे कठिन या गाठदार पुरीष निकलता है उसकी चिकित्सा उदावर्त रोग के समान करनी चाहिए।

शुष्कार्श चिकित्सा सिद्धान्त—

१ सर्व प्रथम निदान परिवर्जन करें।
२ अर्शोत्पादक आहार-विहार का परित्याग करायें।
३. विबन्ध न रहने पावे। अग्नि का विशेष ध्यान रखे।
४ शोथ शूल से युक्त स्राव्यार्शांकुरो को स्वेदन करना चाहिए।
५ स्वेदन से पूर्व मस्सो को तैलाभ्यक्त करे।
६ लेप, सेंक तथा धूपन मे वेदना एव अंकुर पातन करे।
७ आभ्यन्तर भेषज मे चूर्ण, वटी, क्वाथ, आसव, रस भस्म दें।

प्रस्रावी अर्श चिकित्सा क्रम—

१ पित्तप्रकोपक आहार विहार का परित्याग करें।
२ अशुद्ध रक्त हो, तो उसे निकलने दे।
३ रक्तपित्तशामक उपचार करे।

सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त—

१ अर्श रोग मे वायु का प्रकोप सर्वात्मना होता है, अत वातानुलोमन की व्यवस्था करें।
२ अग्निमान्द्य तथा बल ह्रास न होने पावे; इसका ध्यान रखें।
३, कोष्ठबद्धता न होने पावे।
४ जब तक मस्सो से दूषित रक्त निकलता रहे, तब तक बन्द न करें।
५ मस्से सशोथ हो, इन से रक्त न निकलता हो, तो मस्सों पर जौंक लगवाएँ, सूचिका से निकालें।
६ पाचन सस्थान का ध्यान रखना चाहिए।

प्रमुख चिकित्सा सिद्धान्त—

१ वातानुलोमन करने का उपाय करे।
२ अग्निवर्धक उपाय करे।
३ विबन्धहर उपाय करें।

सामान्य चिकित्सा

१ सुख विरेचन चूर्ण—मुलेहठी ३ भाग, सनाय पत्र २ भाग, सौंफ ४ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, दारुहल्दी ६ भाग, मिश्री ७ भाग ले, सबको एकत्र चूर्णित कर रखना। मात्रा—६ ग्राम। अनुपान—गरम दूध। समय—रात्रि को सोते समय। गुण—कब्ज नाशक है।



२. अर्श कुठार गुटिका—शुद्ध गन्धक, दन्ती चूर्ण, भल्लातक भस्म, त्रिकटु मृतत्वक चूर्ण, सूरण कन्द, सब समान भाग लेकर एकत्र चूर्णित कर रखना।

मात्रा—१२५ मि० ग्राम से २५० मि० ग्राम तक।

अनुपान—गरम जल।

गुण—शुष्कार्श तथा रक्तार्श नाशक है।

३. अर्शोलीन गुटिका—हरड, बहेडा, आवला तीनो गुठली रहित ५-५ भाग लें। सबका सूक्ष्म चूर्ण कर निम्नांकित वनस्पतियो का रस निकाल कर इस प्रमाण मे डालें कि सब चूर्ण डूब जाए, फिर खरल मे डाल घुटाई करते हुए शुष्क करें। जब सूखने पर आये तो और रस डालकर घोटें। एक-एक द्रव्य की ७-७ भावनाएँ दें।

भावना द्रव्य—कुकरौधा का स्वरस, पित्तपापडा का स्वरस या एक भाग मे क्वाथ, सत्यानाशी का स्वरस, अतिबला स्वरस।

इस प्रकार जब भावना दे चुकें, तत्पश्चात् वायविडङ्ग ५ भाग, निम्बफल मज्जा १० भाग, शुद्ध चाकसू ५ भाग, सफेद जीरा ५ भाग, सनाय पत्र ५ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, महानिम्ब फल मज्जा ५ भाग, खून खराबा ५ भाग, तृणकान्त पिष्टी ५ भाग लें। सबका वस्त्रपूत चूर्ण कर उक्त भावित चूर्ण मे मिला ६० भाग गोघृत या बादाम स्नेह मे स्नेहाक्त करें। फिर समस्त चूर्ण के समान भाग शुद्ध रसौत मिलावें। तत्पश्चात् मूली स्वरस के साथ २१ दिन खरल करें। एक बार मे मूली स्वरस इतना डालें कि सब चूर्ण उसमे डूब जाए। प्रतिदिन ६ घण्टे निरन्तर घुटाई करें।

मात्रा—१ ग्राम। अनुपान—गोदुग्ध। प्रात सायकाल

गुण—चालीस दिन तक पथ्यपूर्वक सेवन करने से सब प्रकार के अर्श समूल नष्ट हो जाते हैं।

४ अर्शोघ्नी वटी (सि० यो० सग्रह)

५ कोष्ठशुद्धि के लिए गुड हरीतकी अथवा शुष्कार्श चिकित्सा मे लिखा योग सख्या २ का प्रयोग प्रशस्त है।

शुष्कार्श चिकित्सा—

१. आभ्यन्तर भेषज प्रयोग।

१. तिल भल्लातक पथ्या गुड चेति समांशकम्।

तिल, पथ्या, शुद्ध भल्लातक १-१ भाग, गुड ३ भाग, तीनों द्रव्यो को साथ कूट पीस घुटाई कर ४-४ ग्राम की गोलियां बना लें।

मात्रा—१ गोली। अनुपान—जल। समय—अहोरात्र मे चार बार दें। गुण—अर्शोनाशक है।

२. गुड १२ ग्राम, त्रिवृत् ५०० मिलिग्राम, हरीतकी ६ ग्राम लें। सबका सूक्ष्म मिला लें। मात्रा—१ ग्राम। अनुपान-जल।

३ तिल का चूर्ण ६ ग्राम, शुद्ध भल्लातक १ ग्राम मिलाकर गोदुग्ध से दें।

४. चित्रक मूल से सिद्ध तक्र का सेवन करें।

शास्त्रीय योग—

१. कांकायन वटी (अर्श), अर्शोघ्न वटी (सि. यो. स.)

२. नित्योदित रस अथवा अर्श कुठार रस दें।

३ सूरण वटक अथवा बाहुशाल गुड़।

४ भोजनोपरान्त अभयारिष्ट समभाग जल मिलाकर देते रहें।

५ मल शोधनार्थ–त्रिवृत्त चूर्ण १ से ३ ग्राम तक, त्रिफला क्वाथ के साथ प्रातःकाल सेवन करें। अथवा हरीतकी ६ ग्राम, गुड १२ ग्राम मिलाकर प्रातःकाल सेवन करायें।

६ मलकाठिन्यता पर रात्रि में सोते समय सुखविरेचन चूर्ण दें।

शुष्कार्श में तक्र का महत्व एव उपयोग—

चित्रक मूल के कल्क को मिट्टी की हाडी के भीतर लेप करके सुखा लेवे, फिर उसमे यथाविधि गोदुग्ध डालकर जमावें, उस दही को अथवा उससे बनाये तक्र को पीने से अर्श रोग नष्ट हो जाता है।

शुष्कार्श के लिए मट्ठा से बढकर कोई औषध नहीं, उसे दोषानुसार सस्नेह अथवा स्नेह रहित (रूक्ष) बनाकर सेवन करना चाहिये।

तक्र का निरन्तर सेवन करने से अर्श नष्ट होकर पुनः उत्पन्न नही होता है। चरक ने लिखा है —जब पृथ्वी मे एकबार घास को निकाल कर उसकी जड़ में तक्र डालने से वह पुन नही उगता फिर उद्दीप्त जठराग्नि वाले

पुरुष का अर्श तक्र के प्रयोग से कैसे रह सकता है। तक्र के निरन्तर प्रयोग से सब स्रोत शुद्ध हो जाते हैं। अत पाचनशक्ति तीव्र हो जाने से अन्न का जो रस उत्पन्न होता है, उससे रसादि धातुओ की यथाक्रम वृद्धि होती है। जिससे पुष्टि, वल वृद्धि, कान्ति और प्रसन्नता उत्पन्न होती है। वस्तुत शुष्क अर्श के लिए तक्र से वढकर कोई औषधि नही। जिसकी अग्नि अत्यन्त मन्द है, उस अर्श वाले रोगी को अन्न न देकर कुछ दिनो तक केवल तक्र ही पिलावें। जव अग्नि उद्दीप्त हो जाये तव तक्र के साथ लघु भोजन देना चाहिए।

जो मनुष्य यथाविधि छाछ का सेवन करते है, वे कभी रोगी नही होते। इसके सेवन से जिन रोगो को नष्ट किया जाता है, वे फिर आयु पर्यन्त नही होते। जिस भाति देवताओं को स्वर्ग मे अमृत सुख देता है उसी प्रकार पृथ्वी पर मनुष्यो का कल्याण तक्र करता है।

दोषानुसार तक्र का प्रयोग— १. अनुद घृत घृत तक्र-वातोल्वण अर्श मे, २ अर्धोद्घृत घृत तक्र—पित्तोल्वण अर्श मे, ३ सम्पूर्णउद्घृत घृत तक्र— कफोल्वण अर्श मे प्रयुक्त करें।

अग्नि वलानुसार तक्र प्रयोग—१. अनुद्धृत स्नेह तक्र सन्तोषजनक पाचनशक्ति होने पर, २ अर्धोद्धृत स्नेह तक्र—मध्य श्रेणी की पाचनशक्ति मे, १ रूक्ष तक्र—मन्दाग्नि मे प्रयुक्त करें।

तक्र वनाने की विधि—गोदुग्ध लेकर उसको खूव उवालें। जव ३-४ उवाल आजाए तो उसको शीतल कर एक साथ मिट्टी के पात्र मे डाल दें। अव इस दूध मे एक ६० ग्राम चादी का टुकडा डाल दें और दस ग्राम खट्टे अनार के स्वरस का जामन लगाकर जमा दे। प्रात काल उस दही को विलो लें। इसमे चतुर्थ भाग जल मिलाकर मक्खन निकाल ले अथवा न निकाले। फिर चादी के पात्र मे डालकर पीवें इसमे यथा रुचि हीग का तडका दे लेवे। इस प्रकार छाछ वना रोगी को देते रहे। इस प्रकार वनाए छाछ से असाध्य कह कर छोड़ हुए सग्रहणी के रोगी भी ठीक किये हैं। साथ मे स्वर्ण पर्पटी दी जाती है।

शुष्कार्श की वाह्य चिकित्सा

१ साभ्यङ्ग स्वेदन क्रिया—कठोर, शोथयुक्त, सशूल शुष्कार्श मे स्वेदन क्रिया कर मृदु करें।

१ चित्रक, यवक्षार, विल्वमूलत्वक से यथाविधि सिद्ध तैल से अर्शों पर अभ्यग करके अथवा पिपल्यादि तैल से अभ्यग कर घोड वच तथा सोया की पोटली या सहिजन की छाल के कल्क की पोटली से सेक करे।

२ कोदो आदि तुल्य धान्य (आ) गदहा-घोडा तथा गोवर रस (इ) वचा तथा सोया (ई) झाऊवेर (उ) वासा, मदार, एरण्ड तथा वेल की पत्ती के कोष्ण क्वाथ से अर्श को सिचित करें अर्थात् धारा छोडे या शौच कर्म करें। इसी प्रकार अर्श नाशक द्रव्यो के पत्तो से सिद्ध जल का उपयोग करे।

३ रास्ना, मुलेहठी, देवदारू तथा एरण्डमूल समभाग ले चूर्णित कर एक भाग मक्खन तथा सवका चौगुना जौ का आटा मिला दूध मे गूधकर गुदा प्रमाण की रोटी वना सुखोष्ण गुदा पर वाध दे। इससे शूल तुरन्त नष्ट हो जाता है।

४ चित्रक क्षार तथा विल्वफल से सिद्ध तैल से अर्शों को मृदु कर, कुलत्थ तथा चावल के आटे से पिण्ड स्वेद दें।

५ कुष्ठ तैल का व्यवहार भी प्रशस्त है।

२—अवगाहन—

१ झरवेरी अथवा वेल की छाल के क्वाथ को टव मे भरकर रुग्ण को उसमे कुछ समय तक वैठावें।

(अ) मूली हरड, वहेडा, मदार, वास, वरुण, अरणी, सहिजन, (आ) वेरपत्र, (इ) सतुष अपक्व यव से सावित काजी (ई) खट्टी काजी (उ) गोमूत्र (ऊ) वेलपत्र (ए) तक्र के मिश्रित अथवा पृथक-पृथक क्वाथ को टव मे भरकर अर्शो पर अभ्यग करके सुखोष्ण क्वाथ मे वैठावे। इससे शोथ-शूल एव वेदना नष्ट होते है। (ऐ) जवासा के क्वाथ मे वैठावें तथा जवासा को सूक्ष्म पीस गोमूत्र ने राध-पकाकर गुदा पर वाध दें। अर्श मुरझाकर नष्ट हो जाते हैं।

३—धूपन—

(अ) पुरुष के वाल, कृष्ण सर्प की कैचुली, विल्ली का चर्म, अर्कमूल, शमीपत्र। इन सवका चूर्ण समभाग लेकर आग मे छोड-अर्शो पर धुआ लगाये।

(आ) गूगल, भोजपत्र, वग्गल, घी, शक्कर समभाग



लेकर आग मे छोडकर अर्श पर धुआ दें। दोनो योग विशेष अनुभूत हैं।

(इ) धनिया, वायविडग, देवदारू, जौ तथा घृत।

(ई) हाथी की लीद, राल, गूगल, इन्द्रयव तथा घृत।

(उ) चूहे के वाल, वृहतीफल, असगन्ध, पीपल, तुलसी तथा घृत।

(ऊ) कर्पूर विशेषत रक्तार्श मे—इससे रक्त वन्द हो जाता है।

(ए) राल चूर्ण तथा सरसो का धूपन विशेषत रक्तार्श मे।

(ऐ) कचूर १० भाग, विडग १० भाग तथा भाग ५ भाग लेकर चूर्णित करें। फिर १०-२० ग्राम औषध का धुआ दें।

धूपन विधि—एक पात्र मे निर्धूम कोयला रख ऊपर से चूर्ण डाल तुरन्त हुक्का की चिलम से ढक दे। चिलम के छिद्र से धुआ निकलता रहेगा, उसे मस्से पर लगाते रहे। कमर तक वस्त्र ओढ लेना चाहिए। इन प्रयोगो से फूले हुए मस्से मुरझा जाते है। वेदना शमन हो जाती है।

(ओ) कुचला, कर्पूर, शमीपत्र, हल्दी, छोटी कटेली फल समान भाग लेकर उक्त विधि से धुआ दे।

४ प्रलेप—

अर्शोलीन लेप—१ सोमल २० ग्राम, हल्दी १० ग्रा० चन्दनचूर्ण १० ग्राम, निर्मली १० ग्राम, इन सवको सूक्ष्म पीस कर जल के सयोग से लम्वगोल गुटिका वना ले।

प्रयोग विधि—यह गुटिका जल मे घिस कर अर्श पर लेप करें।

विशेष वचन—दवा वडी सावधानी से लगावें। पहले दिन जिस अर्श पर दाग पड़ गया हो दूसरे दिन उसी स्थान पर दाग न लगने पावे अन्यथा व्रण हो जायेगा। ४-५ दिन दवा लगाने से अर्श काले पड जायेंगे।

२. श्वेत मल्ल, मयूर तुल्य, शोरक, यवक्षार, हरताल, सुहागा, श्वेत फिटकरी, नवसादर, सज्जीखार समभाग ले। सवका सूक्ष्म चूर्ण कर निम्बूस्वरस की भावना दें। फिर कुकरौंधा पत्रस्वरस की भावना देकर लम्वगोल वतिकाए वना लें। पानी मे घिस कर वडी सावधानी से मस्से पर लेप करें। जब लेप सुख जाए तो ऊपर ठण्डा हलुवा बाध दे। दिन मे दो वार लेप लगाएं। यदि मस्सो मे दर्द हो तो घी या मक्खन अथवा दही या पनीर वान्ध दो। इस प्रकार १२ दिन के प्रयोग से मस्से काले रग के हो जायेंगे। इसके वाद मस्सो पर खाण्ड डालकर ऊपर दही या पनीर वान्ध दो। २-३ दिन के वाद मस्से निकल जायेगे। दाह होने पर कर्पूर-कत्था, सोना गेरु समभाग ले, सूक्ष्म पीस शतधौत घृत मे मिला मस्सो पर लगावे। दो तीन दिन में दाह ठीक हो जायेगी।

३ अर्कक्षीर, स्नुहीक्षीर, कडुतोंकी पत्र, करज फल समभाग लेकर वकरी के मूत्र मे पीस अकुरो पर लेप करें।

४ हरिद्रा का चूर्ण, कडवी तोरई की पत्ती सम्भाग ले। सरसो के तैल मे घोट लेप करें।

५ स्नुहीक्षीर तथा हरिद्रा का चूर्ण एकत्र घोट कर लेप करें।

६ कटु तुम्बी बीज १० ग्राम, माजूफल, अरणीमूल, कर्पूर १-१ भाग ले सूक्ष्म चूर्ण कर गोघृत मे घोट कर अर्शों पर लेप करने से अर्श सुख जाते है।

७. पिप्पली, हरिद्रा चूर्ण गोपित्त के लेप से अर्श सूख जाते हैं।

८ सिरस बीज, कूठ, पिप्पली, सैंधव लवण, गुड़, अर्कक्षीर, सेहुड दुग्ध, त्रिफला इनके मिश्रित योग के लेप से अर्श सूख जाते हैं।

९. पिप्पली, चित्रक, काली निशोथ, सुराबीज, मदन फल, मुर्गे की बीट, हल्दी, गुड का लेप वना उपयोग करें।

१० हाथी की अस्थि, निम्ब फल, भल्लातक इनके लेप से अर्श नष्ट होते हैं।

११. हरताल तथा ऊट की वसा से युक्त लेप।

१२ काकडासिंगी, विजया, कूठ तथा-तुल्य का लेप

१३ सहिजन के बीज, मूली के बीज, कनेर मूलत्वक निम्वफल युक्त लेप।

१४. पीलु मूलत्वक, विल्व मूलत्वक हीग से युक्त लेप करें।

१५ निम्व तथा अश्वत्थ पत्र समभाग ले जल या कटु तैल मे घोट प्रलेप करते रहने से अर्श नष्ट होते हैं।

१६ सूरण कन्द, हरिद्रा, चित्रक मूल, टकण, गुड पुराना समभाग लेकर काजी मे घोट कर मस्सों पर प्रति-



दिन लगावे। बड़े बड़े अर्श भी कट कर गिर जाते हैं।

१७ हरिद्रा कटुतुम्बी चूर्ण सरसो के तैल मे मिला कर लेप करें। अर्शनाशक है।

१८ मन शिला, अरिष्टकफल, हरिद्रा, हीराकसीस २-२ भाग, तुत्थ १/४ भाग ले। कुकरौधा के रस मे तीन दिन घोट रखें। कुकरौधा स्वरस या बासी पानी मे घोट कर लेप करें।

१६ ताजी मेंहदी पीस कर भांग के स्वरस मे घोट कर लेप करे।

२० दशांग लेप (सि० यो० स०) १ भाग, गेहू का आटा ४ भाग, घी १ भाग, मधु १ भाग लेकर एकत्र घोट जल मे पका कर बाधने से शोथ एव पीडा शमन होती है।

५ घर्षण

कड़वी तोरई के चूर्ण को शनै शनै. रगडने से मस्से नष्ट हो जाते हैं।

६ उपनाह

१. भाग, कुकरौधा की पत्ती, महुवे का फूल समभाग ले, एकत्र पानी से पीस, टिकिया बना, गरम कर, मस्सो पर बाधे।

२. पवाड के बीज पानी से पीस कर उक्त विधि से बान्धे।

७ गुदवर्ति धारण

१ कटु तुम्बी के बीज, शिरीष के बीज, लवण, कटु तोरई के बीज की मज्जा और गुड़ मिलाकर घोट कर एकजीव कर अंगुली प्रमाण मोटी लम्बी वर्तिका बनाकर गुदा मे धारण करना।

२ गुड तथा तिक्त घोषा की गुद्दी समभाग लेकर पीस उक्त विधि से वर्तिका बना गुदा मे धारण करना।

३ कटु तोरई के फूल को गुड मे पीस वर्ति बना गुदा मे धारण करना।

४ वाबली बूटी पचाग को पीस वर्ति बना गुदा मे धारण करना।

८ स्नेहन

कासीसाद्य तैल (शा० स०) वा पिप्पल्यादि तैल के प्लोत को गुदा मे रखे अथवा शौच उपरान्त मस्सो पर अभ्यग करे।

९ रक्तमोक्षण

जलौका, शस्त्रकर्म अथवा सूचि द्वारा रक्त निकाले।

१० शौच जल

१ एक पात्र मे २० लिटर जल डाल उसमे ४० ग्राम फिटकरी घोल दे। शौच क्रिया के लिए इस जल का उपयोग करे।

२ वावली घास का क्वाथ शीतल कर काम मे ले।

३ रीठा का क्वाथ काम मे ले।

अर्शान्तिक सैट

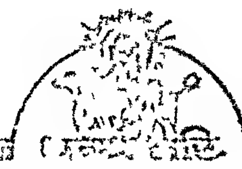
१ आभ्यन्तर भेषज—अर्शोलीन वटी (देखो सामान्य चिकित्सा योग सख्या ३) ५-६ गोलिया दिन मे २ बार गोदुग्ध से दी जाती हैं।

२. अर्शोलीन चूर्ण—निबौली, रसवत, खूनखराबा, शुद्ध गूगल, त्रिफला, मुनक्का, इन्द्रायण मूलत्वक्, सीप भस्म, शख भस्म प्रत्येक २० ग्राम। गुलाब के फूल, सनाय पत्र १०-१० ग्राम। पीपल १५ ग्राम ले नवक्षा चूर्ण करे फिर मूली स्वरस की २१ भावना देकर रख लें। मात्रा—१ ग्राम। अनुपान-उष्णोदक। समय—सोते समय या प्रात काल।

३ अर्सोलीन वर्ति—गोरीपाषाण ४० ग्राम, कत्था २० ग्राम, रेवन्दचीनी, लोटासज्जी, सोथा, पारद, वला पुष्प प्रत्येक २० ग्राम। सबका सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण का सेहुडक्षीर, अर्कक्षीर, भाग स्वरस की भावना दें। फिर मयूर तुत्थ सत्व १० ग्राम मिलाकर निर्मली के पानी से शश्लिगाकार वर्ति बना ले। जल मे घिसकर अर्श पर लगावे।

४. अर्शोलीन धूनी—विडग, कपूर १०-१० ग्राम, भाग ५ ग्राम, लेकर चूर्ण बना रखना यथाविधि धूनी दे।

५ अर्शोलीन तैल—टोपी रहित पुष्ट भल्लातक १० नग, मन शिला ६ ग्राम, गन्धक आमलासार ६ ग्राम, तिल तैल ३० ग्राम ले। तिल तैल को पीतल के पात्र मे डाल आग पर रखे। जब उबाल आ जाय, तब भल्लातक यव-कुट कर डाल दें। जब भल्लातक जल जाय तो तैल को को छान ले। इस तैल मे मन शिला तथा गन्धक पीसकर डाल दें और लोह के डण्डे से रगड़े, फिर २ लिटर जल



उसमे डाल दें। जो तैल ऊपर आ जाए उसे प्राप्त कर लें। यह तैल दिन मे दो बार मस्सो पर लगायें। अर्शांकुरो को सुखाता है।

६. अर्शोलीन उपनाह—हरिद्रा, चावल का आटा १०-१० ग्राम, घृत ६ ग्राम, भाग ४ ग्राम। प्रथम आटे को घी मे भून ले। फिर, थोडा जल डाले और फिर हल्दी चूर्ण वस्त्रपूत, भाग चूर्ण वस्त्रपूत डालकर मिलावें।

७ अर्शोलीन मलहर—समभाग पारद गन्धक कज्जली २० ग्राम, मुर्दासङ्ग १० ग्राम, कत्था, १० ग्राम, राल १० ग्राम, कवीला १० ग्राम, मोम २० ग्राम, घी शतधौत १०० ग्राम ले। कज्जली के अतिरिक्त शेष चूर्ण द्रव्यो को चूर्णित कर लें। फिर घी और मोम को गरम करें। जब दोनो मिल जायें तो कज्जली सहित शेष द्रव्यो के कपडछन चूर्ण को मिलाकर घोट लें।

स्रावी अर्श चिकित्सा

यदि अर्शांकुर शोथयुक्त हो, अशुद्ध रक्तस्राव होता हो, तो थोडी उपेक्षा (रक्तस्राव होने दें) करें। जब रक्तस्राव अधिक हो तो उसे रोकने का प्रयास करें। स्थानीय शोथ दाह को शमन करने के लिए अर्शोघ्न शोथहर लेप तथा प्रदेह जो पित्तप्रशामक भी हो, करें। रक्तार्श मे पित्त का प्रावल्य रहता है, उसकी चिकित्सा रक्तपित्त नाशक करनी चाहिए। एसे पित्तोल्वण रक्तार्श मे अनुबन्ध दो प्रकार का होता है या तो कफ का अथवा वात का। वातानुवन्धी रक्तार्श मे स्निग्ध शीत और कफानुबन्धी रक्तार्श मे रूक्ष शीत उपचार करना चाहिए। यदि पित्त कफ का प्रावल्य हो तो शोधन (वमन विरेचन कार्य) करना चाहिए। रक्तस्राव के प्रारम्भकाल मे कुछ दिन उपेक्षा कर देनी चाहिए, रोकना न चाहिए। उस दूषित रक्त का निकल जाना ही अच्छा है। उस दोषयुक्त मलिन रक्त को बिना समझे प्रारम्भ मे रोक देने मे कामला आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते है। यदि रोगी निर्बल होने से शोधन के योग्य न हो अथवा कफानुबन्ध हो,तो लघन कराना चाहिये। दूषित रक्त के निकल जाने पर उसका स्तम्भन करना चाहिए। उपेक्षा भी तब तक ही करनी चाहिए जब तक ह्रास न हो। जठराग्नि उद्दीप्त करने के लिए, रक्त स्तम्भन के लिए तथा दोषपाचनार्थ विशेषत तिक्त रसात्मक द्रव्यो का उपयोग करें। रक्त के अधिक स्रुत हो जाने से वायु की वृद्धि हो जाती है ऐसी स्थिति मे स्नेहसाध्य होने से स्निग्ध मर्दन करने तथा अनुवासन वस्ति के लिए स्नेह का प्रयोग करना चाहिए। जो पित्तोल्बण रक्त, जिसमे वात कफ का अनुबन्ध नही रहता जो कि ग्रीष्म काल मे निकल रहा हो, उसका स्तम्भन कर ही देना चाहिए।

औषध क्रिया—

बाह्योपचार—

(१) अन्तर्धारण-१ वर्फ के टुकडे को दो वर्फ मे तर करके कपडे की वर्ति गुदा के भीतर रखने से या उदुम्बरसार मे तर प्लोत को धारण करने से रक्त बन्द हो जाता है। मस्से मुरझा जाते हैं। दिन मे कई बार करें।

२ गोघृत १ ग्राम लेकर उसमे एक भिलावा भीतर की मींगी दृष्टिगोचर होने तक घिसकर रात्रि के समय गुदा के भीतर और बाहर अर्शो पर लेप करें। फिर कण्डो की आँच से सेक करें।

(२) लेप—१ माजूफल चूर्ण १२ ग्राम, कर्पूर १२ ग्राम, अहिफेन १ ग्राम लेकर एकत्र घोटकर वस्त्रपूत करलें। शतधौत घृत मे घोटकर शौचादि क्रिया के पश्चात् लगावें। इससे रक्तस्राव बन्द होकर वेदना शमन होती है।

२. माजूफल, भाग, तूतिया, बन्दाल, निर्मली समभाग लेकर चूर्ण करे। फिर शतधौत घृत मे मिलाकर अर्शो पर लगावें। इससे रक्त बन्द हो जाता है।

३. रसवत् गाघृत या राल गोघृत, कर्पूर गोघृत मिला घोट अर्शो पर लेप करें।

(३) धूपन—१ राल के चूर्ण को सरसो के तैल के साथ आग पर छोडकर धुआँ दें। २. यदि मस्सो से अत्यन्त रक्त बहता हो तो गुदा मे कर्पूर की धूनी दें।

(४) दाह निवारण—१. शतधौत घृत का लेप गुदा के भीतर तथा मस्सो पर करे।

२ कत्था १ भाग, कर्पूर १ भाग, सोना गेरू २ भाग घी ४ भाग में मिलाकर मस्सो पर लेप करे तो दाह शमन होता है।

(५) परिषेचन—१ वट, पीपल, गूलर, पिलखन, महुआ की छाल, मुलहठी, वेरी की छाल, परवल की पत्ती,जवासा, अर्जुन की छाल एव नीम की छाल समभाग लेवें। इनके

उबाले पानी से आवदस्त लेवे अथवा मस्सों पर धारा छोड़े ।

२. केवल जवासा के पचाग को पानी मे उबाल कर आवदस्त ले ।

३ वावली घास के क्वाथ मे रोगी को बैठावें ।

(६) अवगाहन—१ रक्त अधिक स्रवित हो रहा हो, मुलहठी, खस, पद्मकाष्ठ, लालचन्दन, कुशमूल के उबाले हुये पानी को टब मे भर देवे, शीतल होने पर उसमे रोगी को कुछदेर बैठावें । बैठने मे पहले गुदा मे कोई शीतवीर्य वाले तैल जैसे चन्दनादि तैल या चमेली का मर्दन कर लेवें ।

२ शीत तैल से अभ्यग किये रोगी को शीतल जल, ईख के रस मे मुलहठी और वेतस के शीतल हुए क्वाथ मे अवगाहन करें ।

३. मुलहठी, कमलनाल, पद्माख, चन्दन, कुश, कास के शीतल कषाय मे अवगाहन करें ।

(७) पिच्छा वस्ति—१ जवासा, कुश, कास की जड़, सेमल का फूल, वट, गूलर तथा पीपल शुङ्ग २-२ भाग, जल १९२ भाग, गोदुग्ध ६४ भागले । सब एकत्र उबालें । जब एकत्र दुग्ध मात्र अवशेष रहे तब छान ले । फिर उसमे सेमल की गोद, लाजवन्ती, चन्दन, नीलोफर, इन्द्रयव, फूलप्रियगु तथा कमलकेशर का कल्क छोडकर मथकर वस्तियन्त्र मे भरकर गुदा में प्रविष्ट करे । यह वस्ति रक्तार्श के अतिरिक्त प्रवाहिका तथा गुदभ्रंश मे भी उपयोगी है ।

८. शिशिर धारा—यदि रक्तस्राव वन्द न हो रहा हो तो गुदा मे शतधौत घृत एव शक्कर मिलाकर लेप कर रोगी को पेट के बल मुँह नीचा कर लिटा गुदा पर अत्यन्त शीतल जल अथवा वर्फयुक्त जल की धारा छोडे । इसके बाद केला की पत्ती अथवा नई कमल की पखुडी को पानी से तरकर गुदा आच्छादित करे और पखे से ठण्डी हवा दें ।

९. घर्षण—रसवत् एव गोघृत अथवा राल एव गोघृत अथवा श्वेत चन्दन का घृष्ट गोघृत, नीलोफर चूर्ण गोघृत मस्सो पर धीरे-धीरे मलें ।

विशेष क्रिया

यदि शीतक्रिया के प्रयोग से रक्त का स्तम्भन न हो, तो स्निग्धोष्ण मास रस सेवन कराना चाहिए । रक्त स्तम्भक औषधों से यथाविधि श्रृत गोघृत को भोजन के बाद यथारुचि पिलाना चाहिए और उसे गर्म कर गुदा पर लगाना चाहिए । अथवा गोघृत और तिल तैल दोनो सममाग लेकर गरम कर गुदा पर सिंचन करना चाहिए । वात के प्रावल्य में कोष्ण घृत से अनुवासन वस्ति लगानी चाहिए । या पिच्छावस्ति का प्रयोग करें ।

सिद्ध योग

१. नागकेशर योग—असली नागकेशर तथा खून खरावा (दमुल अखवन) समान भाग ले कपडछन चूर्ण कर २ ग्राम की मात्रा मे दिन मे ३-४ बार यथावश्यक मौसम्मी, मीठा अनार, दूवघास अथवा हरी धनिया पत्र रस अथवा उदुम्बर सार के साथ दे । इससे रक्तस्राव शीघ्र बन्द होता है ।

२. अर्शोहर मलहर—अहिफेन ७५० मिलि ग्राम, माजूफल २ नग, छागवसा ६० ग्राम सरसो का तैल ६० मि ग्राम, शुद्ध मोम देशी १२ ग्राम लेकर यथाविधि मलहर बनाले । इस का अर्शांकुरो पर लेप करने से वेदना की शान्ति, दाह शमन और अर्शांकुर शुष्क होते हैं ।

३ शास्त्रीय योगो मे—अर्शोघ्नी वटी, सूरण वटक, विजय चूर्ण, समशर्कर चूर्ण बृहत् सूरण मोदक, भल्लातकादि मोदक, चन्द्रप्रभा वटी, काकायन वटी (अर्श), प्राणदा गुटिका, द्राक्षासव, दन्त्यरिष्ट, सुनिषण्ण चागेरी घृत, कासीसाद्य तैल (सहस्रो बार का अनुभूत), मुक्तापिष्टी, तृणकान्तमणि पिष्टी, बोलपर्पटी, बोलबद्ध रस, शखोदर रस, कामदुधा रस ।

१ विशिष्ट योग—१ अग्नितुण्डी वटी को गोमूत्र मे घिस कर लेप करने से मस्से नष्ट होते हैं । २ कुचला तथा तूतिया गोमूत्र मे घिस कर लेप करे । ३ कासीसाद्य तैल मे कुचला घिसकर लगाए ।

वातादि भेदेन चिकित्सा

(१) वातार्श नाशक योग—

१. अभयारिष्ट, दन्त्यरिष्ट, फलारिष्ट, तक्रारिष्ट, शर्करासव, कनकारिष्ट (सभी चरक मे देखो) ।

२ समशर्कर चूर्ण (भा० प्र०) विजय चूर्ण (भा० प्र०) हिंग्वादि चूर्ण (सु० स०) ।

३ लघु सूरणमोदक (भा० प्र०) श्रीवाहुशाल गुड



(भा० प्र०) तिलादि मोदक (भा० प्र०) सगुडाभया (भा० प्र०) शकरलोह (भा० प्र०) कांकायन मोदक (दै० र०) वृहत् सूरण मोदक (भा० म०)।

४. तिल पिप्पली योग (अ० हृ०)।

(२) रक्तार्श (पित्त प्रधान) पर शास्त्रोक्त योग कुटजावलेह (वाग्भट) चन्द्रप्रभावटी, अग्निमुख लोह, लोहादि मोदक, भल्लातक मोदक, भल्लातकामृत (व० रा०) मण्डूरयोग ६।

३ कफ प्रधान अर्श मे प्रयुक्त शास्त्रीय योग—लवण भास्कर चूर्ण, प्राणदा गुटिका, पञ्चकोल चूर्ण, नागार्जुनवटी (शेष वातार्श मे लिखे योग देखो)।

क्षार कर्म

१ क्षार का अर्श पर लेप करना।

२. क्षार का सूत्र बन्धन।

वातज तथा कफज अर्शों की ही चिकित्सा क्षारपातन तथा अग्निकर्म द्वारा की जाती है। पित्तज तथा रक्तज अर्शों की प्रतिक्रिया केवल यथावश्यक क्षार (मृदु क्षार) द्वारा ही करें।

सूत्र बन्धन से पूर्व मलाशय शुद्ध कर लें।

क्षारपातन विधान

क्षार साध्य अर्श – जिस अर्श के अकुर कोमल, फैले हुए, गाठ मूल उठे हुए हो एव गहरा श्लेष्मजनित तथा विसर्जनी वलि में हों, उन्हे क्षार क्रिया से नष्ट करें।

विधि—अर्श रोग से पीडित बलवान रोगी को स्नेहन और स्वेदन देकर बढी हुई वायु की वेदना को शमन करने के लिए स्निग्ध उष्ण द्रव बहुल अन्न को थोडी सी मात्रा में देकर, एकान्त तथा पवित्र स्थान मे, जब आकाश निर्मल हो, तथा अधिक शीत एव उष्ण समय न हो, तब एक समतल शय्या (लकडी के पट्ट या चौकी) पर सूर्याभिमुख गुदा करके, अन्य व्यक्ति की गोद मे रोगी के शरीर का ऊपर का भाग रख कर उत्तान (चित्त) लिटावें। वस्त्र या रवर वेल्ट का सहारा देकर रोगी की कमर कुछ ऊँची रखे। बाधने की पट्टी से ग्रीवा और जाघ को बाधें। परिचारक सम्भाल कर रोगी को पकडे जिससे वह हिल न सके। अर्शोयन्त्र को घी या वेसलीन लगाकर गुदा मे धीरे धीरे प्रवाहण कराते हुए प्रवेश करें। यन्त्र के गुदा मे पहुच जाने पर अर्श को देख कर शलाका से दबाकर, रुई के फोहे या वस्त्र से साफ करके क्षार लगावें। क्षार लगा कर यन्त्र का द्वार हाथ से बन्द करके एक सौ गिनने के काल तक अर्थात् १ २ मिनट तक प्रतीक्षा करें, फिर क्षार को साफ करके रोग के बल का विचार कर पुन क्षार लगावे। यदि अर्श पके हुए जामुन के फल के समान वर्ण वाले, सिकुडे हुए तथा कुछ दबे हुए दीख पडें तो क्षार को पोंछ दें। क्षार को काजी, दही, मस्तु, शुक्त या बिजौरे आदि खट्टे फलो के रस से धोवें। फिर मधुयष्टि के सूक्ष्म चूर्ण को घृत मे मिलाकर क्षार जन्य दाह-जलन की शान्ति के लिए लगावे और यन्त्र को निकाल लें। पश्चात् रोगी को उठाकर उष्ण जल कोष्ठ (टब) मे बिठावें और ऊपर से शीतल जल को छिडकें, कई आचार्य गर्म पानी से ही स्नान कराते हैं। तदनन्तर रोगी को वायुरहित गृह मे शयन करा कर आहार विहार की व्यवस्था करें। इस प्रकार सात सात दिन के अन्तर से एक एक अर्श की चिकित्सा करें। बहुत अर्श होने पर प्रथम दक्षिण भाग के, पश्चात् वाम भाग के, तत्पश्चात् पृष्ठ भाग तथा तदनन्तर अग्रभाग के अर्शांकुरो पर क्षार पातन यथाविधि करें।

दोषानुसार—१. शुष्कार्श (वात कफ प्रधान) मे तीक्ष्ण क्षार का प्रयोग करे। २. स्रावी अर्श मे मृदु क्षार का प्रयोग करें।

क्षारदग्ध लक्षण—सम्यग्दग्ध—वात का अनुलोमता, अन्न मे रुचि, अग्नि की प्रदीप्ति, लघुता, बल-वर्ण का बढना तथा मन प्रसन्नता ये सम्यग्दग्ध के लक्षण हैं। सम्यग्दग्ध मे मस्से पके जामुन के फल के समान, झुके हुए एव दबे हुए होते।

दोषानुसार वर्ण—वातार्श मे—पक्वजामुनवत्। पित्तार्श मे—शुग तथा मयूर कण्ठवत्। कफार्श मे—वृहती पुष्प वर्णवत्।

हीनदग्ध लक्षण—इस अवस्था मे अर्श का वर्ण कृष्ण श्याव, थोडा सा चिह्न मात्र होना, कण्डू, वात की विपरीतता, इन्द्रियो की अशुद्धि और रोग का शान्त न होना ये हीन दग्ध के लक्षण हैं।

अतिदग्ध के लक्षण—गुदा का फटना, दाह, मूर्च्छा,

ज्वर, प्यास, स्वेद की अति प्रवृत्ति तथा रक्तजन्य उपद्रव होते हैं।

क्षारपातन योग—चूना अनबुझा, सज्जीखार १-१ किलोग्राम लेकर एक मिट्टी के पात्र जिसमें २० लिटर जल आ सके, मे डाल रख दें। इस पात्र को खुले मैदान में रख दे ताकि दिन मे सूर्य रश्मियाँ लगें और रात्रि मे चन्द्रमा की शीतल किरणें लगती रहें। नित्य प्रतिदिन एक लकड़ी के डंडे से एक बार हिला देना चाहिए। इस प्रकार १० दिन करें, फिर सुस्थिर होने दें। ऊपर के निथारे हुए जल को एक कड़ाही मे लेकर धीरे धीरे पकावें। जब कुछ गाढा होना आरम्भ हो जाए, तब रसोन (लशुन) का रस २५० मिलिलिटर डाल कर ऐसा पकावे कि न तो पतला रहे और न ही अति कठोर हो जाए। इस को शीशी मे सुरक्षित रखें।

यह क्षार—पक्व फोड़े को फोड़ देता है। सड़े हुए व्रण को शुद्ध कर देता है। अर्शांकुर को नष्ट कर देता है। दद्रु नाशक है।

२ चूना अनबुझा, सज्जीखार तथा पाण्डुक्षार सम-भाग ले, घोट कर अर्श पर लगावे। इससे अर्श जल जायेंगे।

विशिष्ट वचन—इन दोनो योगो से अर्श जल जाते हैं, फूल कट गिर जाते हैं, वहां व्रण बन जाते हैं। व्रणो पर हितैषी मलहर लगावे।

हितैषी मलहर—श्वेत पपड़िया कत्था ४ भाग, कर्पूर २ भाग, सिन्दूर १ भाग, पीपरमेंट १ भाग, अजवायन सत्व १ भाग, शतधौत घृत १० भाग। सबको यथाविधि चूर्ण कर घृत मे मिला घोट ले।

क्षार सूत्र बन्धन

पूर्व कर्म—रोगी को पूर्व रात्रि मे मृदु विरेचन दे और प्रधान कर्म से चार घण्टे पहले तथा दोबारा दो घंटे पूर्व उत्तर वस्ति देकर कोष्ठ की पूर्ण शुद्धि करा ले।

सूत्र बन्धन—थूहर के दूध मे हरिद्रा चूर्ण समभाग मिला कर घोट कपास के दृढ सूत्र को २१ बार भावना देकर सुखा कर रख ले। इस सूत्र को अर्श पर यथाविधि बांधने से अर्श नष्ट हो जाते हैं।

विधि—एक चिमटी से १-१ अर्श को पकड़ कर उसके मूल पर की कला को कैंची द्वारा भिन्न करके अर्श मूल को सूत्र द्वारा बांध दें। इसके पश्चात् शेष भाग को काट कर निकाल दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् सूत्र बन्धन स्वयं पृथक हो जाते हैं।

ऐसे भी बांध सकते हैं—अर्श के मूल मे उक्त प्रकार से निर्मित क्षार सूत्र का एक लपेट देकर ऊपर गांठ लगा दें। इससे अर्श फूल जाता है। वेदना भी होती है। पीड़ा शमनार्थ शतधौत घृत मे लाल एवं मेहंदी स्वरस मिला कर लगा दें। अर्श गिर जायेंगे। फिर व्रण रोपण उपचार करें।

स्मरण रहे—अर्श मर्म स्थान का रोग है। यहां जो शिरायें हैं, उनके सूत्र, मूत्र मस्तिष्क तक पहुंचते हैं। अधिक रक्तस्राव से प्राण हानि भी हो सकती है। अतः विचार कर ही क्षार कर्म करें। मलावरोध भी न रहने पाये। इसके लिए मृदु विरेचन देते रहें।

अग्नि कर्म

श्लैष्मिक कला को क्लैम्प (Clamp) से बाहर की ओर खींचकर प्रत्येक अर्श को पकड़कर, क्लैम्प के पेच को घुमाकर अर्श को दबा दिया जाता है। तत्पश्चात् ब्लेड या चाकू से अर्श को काटकर कटे हुए स्थान पर दाहक यन्त्र (Cautery) द्वारा दाह कर्म कर देते हैं। पेच को घुमाकर ढीला करके यह देख लेते हैं कि कटी हुई नलिकाओं से रक्त तो नहीं निकलता है। पश्चात् उस सम्पूर्ण स्थान पर आयडोफार्म (Iodofoim) छिड़ककर रुई को रखकर T आकार की पट्टी बांध देते हैं। चौथे या पांचवें दिन तक रोगी को मल त्याग को रोक दिया जाता है। तत्पश्चात् एरण्ड स्नेह द्वारा उसके कोष्ठ को शुद्ध किया जाता है। यदि अर्श बाहर निकले हो और बहुत दोष पूर्ण हो, तो बिना किसी यन्त्र को माध्यम बनाये भी दाह क्रिया की जा सकती है।

पाश्चात्य मतानुसार

स्वानुभूत सूचीवेध चिकित्सा—

पूर्व कर्म—सर्व प्रथम विरेचन या वस्ति कर्म द्वारा रोगी के आन्त्र एवं मलाशय को स्वच्छ करे। फिर गुद को विसंक्रमित करे और टिंक्चर आयोडीन लगावे। गुद को धोने के लिए—मर्करी परक्लोराइड के १००० मे की प्रबलता का घोल बनाकर गुद प्रक्षालन करे।



तत्पश्चात् प्रत्येक अंग के मूल मे- कार्वोलिक एसिड १० प्रतिशत, ग्लिसरीन १ औंस, परिश्रुत जल १ ड्राम, मिलाकर ५ बूद को सूचिवेध से दे । श्लेष्मल कला पर वेसलीन लगावे। रोगी को पूर्ण विश्राम दे ।

२ क्वीनीन यूरिया (Urea quinine) का ५ प्रतिशत डिस्टिल्ड वाटर मे मिलाकर अर्शो मे दें। इसकी मात्रा ०५ से २ मि लि है।

३ सोडियम साल्ट (Sodium Salt) का विभिन्न तैलों मे घोल वनाकर दे ।

४ इन्जेक्शन-(१) क्वीनीन यूरिया हाइड्रोक्लोराइड (२) कार्वोलिक ग्लिसरीन, (३) सोडा सैलिसिलास २० से ४०% घोल, (४) कैल्शियम क्लोराइड—मस्सो मे दें।

सूचिवेध विधि-रात्रि को मृदु विरेचन दे । एक करवट लिटाकर सूचिवेध करे । अर्श के मध्य दवा छोडें। वेधित स्थान से किञ्चित रक्तस्राव होता है। अतः कुछ देर वा १ मिनट के लिए सूचि अर्श मे छोड़े।

सूचिवेध के पश्चात्—मस्से शोथयुक्त श्वेत हो जाते हैं। इन्जेक्शन से पीडा नही होती।

स्मरण रहे

रोगी को गुदविदर, भगन्दर घातक अर्बुद न हो।
शोथावस्था मे,बाह्यार्शो मे इन्जेक्शन न करे ।

सावधान

१. पीडा--यह अल्पकालिक होती है ।
२. कोथ--यह अर्श के चारों ओर हो जाता है।
३ विद्रधि-भगन्दर—गहरा इन्जेक्शन लगने से।
४ रक्तस्राव—यह प्राय मामूली होता है।
५. पुनरावृत्ति—ठीक सूचिवेध न होने पर होती है।

विशेष ज्ञातव्य—गुददर्शक यन्त्र गुदा मे डालने से पूर्व नोवोकेन (Novocain) या इथेन (Acthain) २ प्रतिशत का स्थानिक सूचिवेध करे । इससे कष्ट नही होगा।

शस्त्र कर्म

रोगी को मेज पर लिटाकर चिमटी से प्रत्येक अर्श को पकडकर उसके मूल पर की कला को एक कैंची के द्वारा भिन्न करके अर्शमूल को कैटगट (सूत्र) के द्वारा बाध दिया जाता है। तत्पश्चात् शेष भाग कैंची से काटकर निकाल दिया जाता है। कुछ समय के वाद ये कैटगट (Catgut) के वन्धन आप से आप गल जाते हैं। यदि सम्भव हो तो शस्त्र कर्म के समय कटी हुई श्लेष्मल कला को सी दिया जाता है जिससे व्रण शीघ्र भर जाता है। जो अर्श पतली मूल वाले, उठे हुए तथा क्लेद युक्त हो, उनका ही शस्त्र द्वारा उपचार करें।

विशेष ज्ञातव्य—औषध क्रिया आदि चारो प्रकार के उपचार आयुर्वेदानुसार ही पाश्चात्य शास्त्र मे वर्णित हैं। पाश्चात्य शास्त्र तथा आयुर्वेद शास्त्र की औषध चिकित्सोपान के सिद्धान्त एक ही हैं। क्षारकर्म मे केवल इतना ही अन्तर है कि आयुर्वेद मनीषी प्रलेपो द्वारा अर्श को नष्ट करते हैं तथा पाश्चात्य सूचिका द्वारा। अग्निकर्म का विधान दोनो चिकित्सा पद्धतियो मे समान है।

अनुभूत शस्त्र कर्म—

१ पूर्व कर्म—गुद क्षेत्र का क्षौर कर्म कर निर्दुष्टि कर्म करे, साबुन से साफ कर डिटोल लगावें। शस्त्र कर्म से पूर्व भोजन न दें। रात्रि को एरण्ड स्नेह दें। शस्त्र कर्म से ४ घण्टे पूर्व वस्ति दे।

२. प्रधान कर्म—रुग्ण को सज्ञाहीन करने के लिए सोडियम पेंटोथोल (Sodium Pentothol) एक ग्राम का एम्पुल, परिश्रुत जल २०मि लि , दोनो को मिलाकर विलयन वना रोगी के भार एव शक्ति के अनुसार शिरान्तर्गत धीरे-धीरे सूचीवेध करें। रोगी एक दो तीन वारम्वार कहे। जव रुग्ण एक दो तीन कहना बन्द कर दे तो समझ लो सज्ञाहीन हो गया। रोगी को पीठ के बल लिटाकर जानु को उदर पर मोड दें। गुददर्शनी से गुद विस्फारित कर अर्श वाहर निकालें। फिर क्रोमिक केटगट से अर्श मूल की ओर वन्धन करे। वन्धन के वाह्य भाग के पास से अर्श को काट दें। इस प्रकार सभी अर्शो पर शस्त्र कर्म करे। अर्श काटने के पश्चात् व्रण की भांति उपचार करें। जात्यादि तैल विकेशिका का प्रयोग करें।

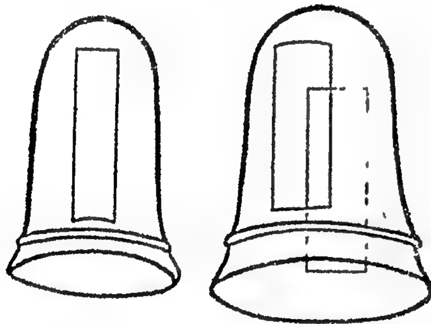
३ पश्चात् कर्म—तीव्र वेदना की शान्ति के लिए अहिफेनासव दे। आरोग्यवर्द्धिनी वटी+दशमूलारिष्ट दोनो खाली पेट दें। रक्त पोषक औषध देते रहे। नित्य प्रति पट्टी वदलते रहे। दूसरे दिन एरण्ड स्नेह देते रहे। भोजन एक सप्ताह तक न दें। फलो का रस दें।



गुद परीक्षण एवं अर्शोङ्कुर सूचीवेधन

डा दाऊदयाल गर्ग-ए.एम.बी.एस., आयु वृह
सम्पादक धन्वन्तरि

सुश्रुत चिकित्सा स्थान षष्ठम अध्यायानुसार अर्शो यंत्र लोहे का, दात का, सीग का या वृक्ष का बनाना चाहिए। इसका आकार गोस्तन सदृश, पुरुषो के लिए चार अगुल लम्बा और पाच अगुल घेरे का तथा स्त्रियो के लिए छ अगुल चौड़ाई का तले पर चपटा., दर्शन के लिए दो छेद वाला तथा शस्त्रकर्म के लिए एक छेद वाला होना चाहिए। शस्त्रकर्म मे एक छेद वाला इस हेतु से—कि शस्त्र. क्षार, अग्नि कर्म का अतिक्रम नही हो। छिद्र तीन अगुल लम्बा, अगुल की मोटाई के बराबर गोलाई लिए होना चाहिए। इसके बाद जो एक अगुल बचता है उसमे आधा अंगुल नीचे, आधा अगुल ऊपर ऊँची उठी ऊपर मे गोल कर्णिका होनी चाहिए। यन्त्र का आकार सक्षेप मे ऐसा है--

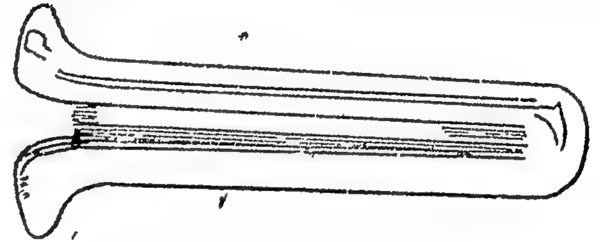


एक छिद्र वाला द्विछिद्र वाला

आजकल प्रचलित फारगूसन का गुदप्रेक्षण यन्त्र प्राचीन एक छिद्रीय अर्शो यन्त्र के सदृश ही है।

आजकल गुदा परीक्षण यन्त्र (Proctoscope) द्वारा गुदा का परीक्षण किया जाता है जिसके निम्न प्रकार हैं—

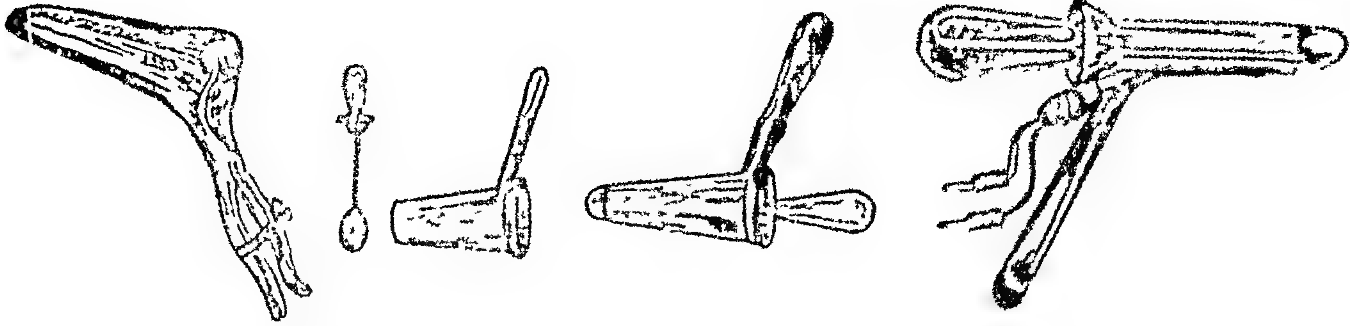
१ गुद द्वार परीक्षण यन्त्र (Bivalve Anal Speculum)—यह नलिका प्रेक्षण यन्त्र के समान होता है। इसमे दो नतोदर फलक होते हैं जो दो हैंडिलो से जुड़े होते हैं। जब दोनो हैंडिल एक दूसरे से प्रथक होते हैं तो दोनो फलक आपस मे मिलकर एक नलिका सी बना देते हैं। दोनों हैंडिलो के बीच एक धातु की पट्टी होती है जिस पर कि दाते बने होते है। जब दोनो हैंडिलो को पास लाने पर इस दातेदार धातु की पट्टी को एक पेच द्वारा जोकि किसी एक हैंडिल पर लगा होता है, कस देते हैं तब दोनो फलको के आपस मे प्रथक होने तथा उन पर गुदद्वार के दबाव



आधुनिक अर्शो यन्त्र एक छिद्र युक्त

पड़ने पर भी यह धातु की पट्टी हैंडिलो को प्रथक नही होने देती। यह यन्त्र गुदद्वार मे हैंडिलो को प्रथक रखते हुए (अर्थात् जब दोनो फलक चिपटे हुए हो) इतना प्रविष्ट किया जाता है जहा तक कि आसानी से प्रविष्ट हो सके। उसके पश्चात् दोनो हैंडिलो को दबाकर स्क्रू कस देते है जिससे गुदा का प्रसारण हो जाता है और उसकी श्लैष्मिक कला का स्पष्ट निरीक्षण किया जा सकता है।

२ गुदनलिका परीक्षण यन्त्र (Proctoscope)—यह चार इन्च लम्बी नलिका होती है जिसका आगे को व्यास कम तथा पीछे की ओर क्रमश अधिक होता है। आगे का व्यास लगभग १ इन्च तथा पीछे के सिरे पर लगभग २॥ इन्च होता है। पीछे के सिरे से एक हैंडिल अधिकोण (Obtuse angle) पर लगा होता है जो कि इतना बड़ा एव मोटा होता है कि मुट्ठी मे कस कर आसानी से पकड़ा जा सके। इस उपरोक्त नलिका मे एक आब्टूरेटर (Obturator) फँसाया जाता है। यह आगे से गोल होता है तथा जब नलिका मे फँस जाता है तो यह आगे का गोल सिरा नलिका के आगे के सिरे से बाहर निकल जाता है और नलिका आगे से बन्द हो जाती है। इस आब्टूरेटर का पिछला सिरा गोल करके इस प्रकार का बना होता है कि उसे आसानी से पकड़ा जा सके तथा हथेली से उस पर पर्याप्त दबाव डाला जा सके।



गुदद्वार परीक्षण यन्त्र

सुश्रुतोक्त अर्शो यन्त्र से इसका पर्याप्त साम्य है। अन्तर इतना है कि इसमे नलिका मे कोई छेद नहीं किया जाता तथा नलिका आगे से खुली होती है। प्रवेश करते समय नलिका का मुख आब्दूरेटर से बन्द हो जाता है। सश्रुतोक्त मे आब्दूरेटर की व्यवस्था प्रचार मे न कर आगे से नलिका बन्द कर दी गई है। यदि आजकल प्रयुक्त प्रोक्टोस्कोप को विचारपूर्वक देखा जाय तो यह सुश्रुतोक्त अर्शो यन्त्र का ही परिष्कृत रूप है। आजकल प्रकाश की व्यवस्था से युक्त गुदा परीक्षण यन्त्र भी उपलब्ध है जो कि और अधिक परिष्कृत स्वरूप है। लेकिन इसका आधार प्राचीन अर्शो नाड़ी यन्त्र ही है, जिससे कि इन्कार नहीं किया जा सकता।

व्यवहार विधि--सर्वप्रथम साबुन के पानी का एनीमा देकर मल निष्कासन कर दें। इसके बाद रोगी को लीथोटोमी की स्थिति मे या जानुकूर्पर स्थिति (Knee-elbow position) मे या रोगी को बायी करवट लिटाकर गुदा की परीक्षा करें। रोगी के नितम्ब प्रदेश को उस ओर रखे जिधर से प्रकाश आ रहा हो। यन्त्र को गुदा मे प्रविष्ट करने से पूर्व चिकित्सक अपनी अंगुली गुदा मे प्रविष्ट करके यह अनुमान लगा ले कि जिस यन्त्र से रोगी का गुदपरीक्षण किया जाना है उसके गुदा मे प्रवेश को वह सहन कर सकेगा या नही। यदि ऐसा प्रतीत हो कि सहन नहीं कर सकेगा तो कम व्यास वाले यन्त्र की व्यवस्था कर उनसे परीक्षा करें। परीक्षण से पूर्व यन्त्र को ५–१० मिनट उबलते पानी मे पड़ा रहने दे।

यन्त्र पर बाहर अच्छी प्रकार से घृत या वैसलीन लगा कर चिकना कर दें। अब एक सहायक से कहे कि वह

गुद नलिका परीक्षण यन्त्र (Proctoscope)

रोगी के दोनो नितम्बों को एक दूसरे से पृथक करें। बाये हाथ की मुट्ठी मे यन्त्र के हैंडिल को पकड़े तथा आब्दूरेटर के हैंडिल पर दाये हाथ की हथेली से दबाव डालते हुए यन्त्र को गुदा मे प्रविष्ट करें। यन्त्र को बहुत सावधानी से तथा धीरे-धीरे प्रविष्ट करें। पहले तो यन्त्र को गुदा में सीधे ही प्रविष्ट करें। मलाशय को पार कर जब यन्त्र

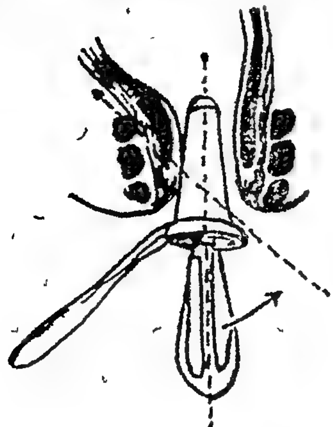


जानुकूर्पर स्थिति

गुद नलिका मे पहुचेगा तो वहा पर नलिका अधिक चौडी होने के कारण एकदम हल्कापन प्रतीत हो जायेगा। अब इस यन्त्र के प्रविष्ट करने की दिशा कुछ पीछे की ओर कर दे (जैसा कि चित्र मे दिखाया है) क्योकि त्रिकास्थि इस स्थान पर पीछे की ओर मुड जाती है। जब यन्त्र पूर्णत प्रविष्ट हो जाये तो आब्दूरेटर को बाहर खीच ले।

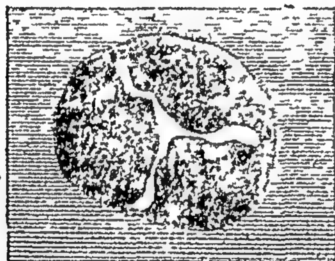
अब हमे यन्त्र की नलिका मे से गुद नलिका स्पष्ट दिखाई देगी। गुदा की श्लैष्मिक कला प्राकृतिक अवस्था मे कुछ फीके पीले (Pale) रग की होती है। केशिकाये तथा सिराये भी दिखाई देती हैं। अर्श के अतिरिक्त शोथ, व्रण, भगन्दर, छिद्र एवं अर्बुद के लिए भी गुदा का परीक्षण किया जाता है। अब इस यन्त्र को धीरे-धीरे बाहर की

ओर खींचते जाते हैं तथा देखते जाते है। और इस प्रकार पूरी गुद नलिका की परीक्षा करली जाती है। अर्शांकुर



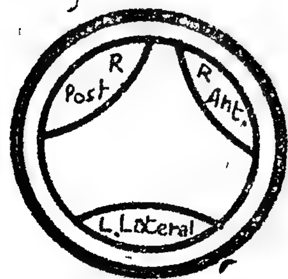
गुदद्वार को पार करने पर यन्त्र को प्रवेश करने की दिशा मे थोड़ा परिवर्तन इस प्रकार से करें

यन्त्र की नलिका मे लटकते हुए दिखाई देते हैं जैसाकि इस नीचे के चित्र मे दिखाया है—



यदि रोगी को मल त्याग के समय गुदा से रक्त आता है तथा इसी कारण से रोगी की गुदा का परीक्षण किया जा रहा है तो यन्त्र को पुन प्रविष्ट करे तथा जब यन्त्र को पीछे खींचने लगे तो रोगी से कहे कि वह साथ-साथ मल त्याग के लिए जोर लगाए। ऐसा करने से आन्तरिक अर्श की सुर्खी बढ जायेगी तथा वह स्थल जहा से कि रक्तस्राव हो रहा है आसानी से ज्ञात किया जा सकेगा।

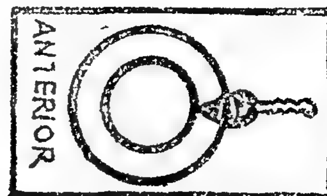
अर्श के मस्से तीन होते हैं, दो दाहिनी ओर तथा एक वायी ओर। दाये एक मस्सा सामने तथा एक मस्सा पीछे होता है, वायी ओर का मस्सा वीच मे होता है। साथ ही चित्र मे अर्शांकुरो की वह स्थिति दिखाई है जैसे कि गुद नलिका परीक्षण यन्त्र मे से वह दिखाई देंगे।



गुदा में अर्शांकुरो की स्थिति

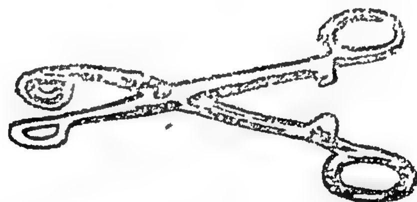
गुद परीक्षण का परिणाम लिखना—

यह दो गोला खीचकर लिखा जाता है, जिसमे एक गोला वाहर तथा दुसरा छोटा गोल उसके अन्दर है। वाहर का गोला मलाशय के वाह्य द्वार को प्रदर्शित करता है तथा अन्दर का गोला मलाशय के ऊपरी सिरे को प्रदर्शित करता है। अर्श, भगन्दर, गुद विदर आदि का विवरण इसी प्रकार से लिखा जाता है। यही विधि गुदा के शल्य कर्म मे उसका स्थल प्रदर्शित करने हेतु काम मे लाई जाती है। साथ के चित्र मे गुदा के पृष्ठीय भगन्दर को गुद विदर से सम्बन्धित दिखाया गया है।



अर्श संदंश—

यह एक धमनी सदश के समान होती है जिसका कि आगे का प्रत्येक सिरा, जो कि अर्शांकुरो को पकडता है, फैलकर एक अगूठी की तरह हो जाता है जिसके यह अन्तस्तल पर रेखायें होती हैं। इसका मुख्य उद्देश्य कि रहता है कि जव अर्शांकुर को पकडा जाये तो उस पर



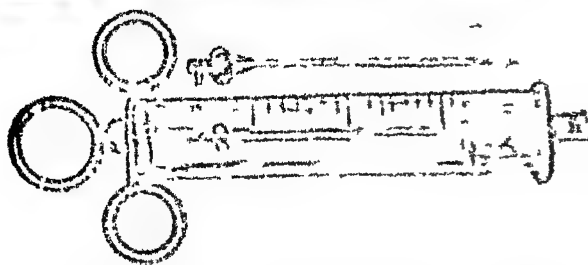
दवाव न पडे। अर्शांकुर को सुगमता से पकडने के लिए इसका फलक (मुद्रिकावत्) न्यूनकोण पर झुका हुआ रहता है। अर्शांकुर को वाधना हो या उसे काटकर निकालना होतो इसीसे उसे पकडा जाता है।

अर्शांकुर सूचीवेधन

अर्श के मस्से मे सूचीवेधन गैब्रिल की सिरिंज से किया जाता है। यह सूचीवेधन अर्श की प्रारम्भिक अवस्था मे किया जाता है।

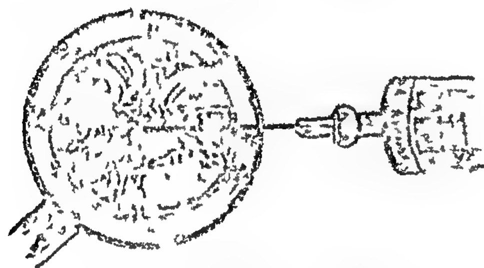
सूचीवेधन की विधि—रोगी को एनीमा देकर उसका मलाशय एव गुद नलिका स्वच्छ करले। गुदनलिका परीक्षण यन्त्र द्वारा जव अर्शांकुर दिखाई देने लगें तो उसके





मूल मे सूचीवेधन करें। सूचीवेधन करते समय सूचिका का छिद्र गुद भित्ति की ओर रखें। सूचीवेधनार्थ प्रायः निम्न द्रव कार्य मे लेते है—

बादाम के तैल मे ५ प्रतिशत मैन्थल २ ग्रेन, फिनोल १० औंस। इस द्रव को ५ मि लि की मात्रा मे सूचीवेधन करे। इस सूचीवेधन से अन्तरत्वकीय सूचीवेधन के समान



अर्शांकुरो मे सूचीवेधन की विधि

एक छाला सा उठ जायेगा। यह छाला फीके रग का होगा। यह उपरोक्त घोल सूचीवेधन के पश्चात् शोषित होकर अर्शांकुर मूल से ऊपर श्लैष्मिक कला मे तथा नीचे की ओर अर्शांकुर मे फैल जाता है लेकिन यह अर्श के बाह्य मस्सो तक नही फैलता। इस कारण यदि बाह्य मस्से भी हो तो सूचीवेधन नही करे। सूचीवेधन मे बहुत थोडा रक्तस्राव होता है। सूचीवेधन मे न तो विशेष दर्द ही होता है तथा न उसके पश्चात् विशेष चिकित्सा की आवश्यकता पडती है। यदि रोगी के तीनो मस्से हो तो एक बार मे ही तीनो मस्सो मे सूचीवेधन न करे। प्रत्येक मस्से मे लगभग १५ दिन के अन्तर से तीन बार सूचीवेधन की आवश्यकता पडती है लेकिन यदि पहले दूसरे सूचीवेधन से ही अर्शांकुर सूख जाये तो उनमे पुन. सूचीवेधन न करें अन्यथा उसमे कोथ (सडान) उत्पन्न हो सकती है।

सावधानियां—

(१) सूचीवेधन ऊपर की ओर करे। यदि मलाशय के अधस्त्वकीय स्तर (epithelium of the anal canal) से [illegible] भाग की [illegible] से गुद [illegible] जाता है।

(२) सूचिका का अग्र [illegible] (superficial) [illegible] स्थान पर [illegible] होगा। ऐसी स्थिति मे सूचिका को उसी स्थान पर और गहरी प्रविष्ट कर [illegible] करें। इसके विपरीत यदि सूचिका अधिक गहराई मे प्रविष्ट होकर गुद नलिका की मांसपेशियों मे पहुंच जाय तो भारी दर्द होगा।

(३) सूचीवेधन मे अधिक द्रव की मात्रा न दें अन्यथा कोथ (सडान) उत्पन्न हो सकता है। इसके विपरीत यदि आवश्यकता से कम द्रव दिया जाय तो लाभ कम होगा या नहीं होगा।

(४) जब एक ही अर्शांकुर मे दूसरी बार सूचीवेधन किया जा रहा हो तो ध्यान रहे कि औषधि द्रव की अधिक मात्रा प्रविष्ट न हो। यदि अर्शांकुर मे सौत्रिक तन्तु की उत्पत्ति हो चुकी हो तो उसकी [illegible] बढ जाती है तथा उसमे कोथ भी उत्पन्न हो सकता है।

उपद्रव एवं उनकी चिकित्सा—

(१) कभी-कभी औषधि द्रव की अधिक मात्रा प्रयुक्त होने पर घनास्रता (thrombosis) उपस्थित होता है। ऐसी स्थिति मे रोगी को पूर्ण विश्राम का आदेश दें तथा गुदा पर गर्म जल से सेक करायें।

(२) कभी-कभी अवगाढ़ कोथ उत्पन्न हो जाता है। इसका कोई प्रमुख चिह्न नही मिलता तथा प्राय. शीघ्र ही स्वयं ठीक हो जाता है। यदि कोई कष्ट प्रतीत हो तो गुदनलिका परीक्षण यन्त्र की सहायता से मर्क्यूरोक्रोम (२ प्रतिशत जलीय विलयन) लगायें तथा रात्रि को शयन करते समय मर्क्यूरोक्रोम की गुदवर्ति लगाये। ऐसा ७ से १० दिन तक नियमित करें।

(३) सूचिवेधन विधि मे गलती होने से गुद विद्रधि या गुद विदर बन सकता है। इसके लिये उचित चिकित्सा करें। यहा विस्तारभय के कारण उनकी चिकित्सा नही लिख रहे।

—श्री डा० दाऊदयाल गर्ग आयु० बृह०, ए, एम बी एस.
सम्पादक 'धन्वन्तरि' मामू भाजा रोड, अलीगढ़।

मलावरोध और उसकी सफल —चिकित्सा—

आयुर्वेद वारिधि श्री डा० चांद प्रकाश मेहरा बी०एस-सी०, ५५७, मन्टोला स्ट्रीट, पहाड़गंज, दिल्ली-५५



आदरणीय श्री मेहरा जी एक जिम्मेदार पद पर होते हुए भी हिन्दू सस्कृति तथा आयुर्वेद सेवा के लिए तत्पर रहते है। हमने जिस भी अंक का उपक्रम बनाया तो आपने उत्तम लेख भेजा। 'धन्वन्तरि' के काम विज्ञानांक तीन भागोंका आप सफल सम्पादन कर चुके हैं। आप अखिल भारतीय योग सस्थान के प्रधान सचिव हैं। इसी संस्थान का फरवरी माह मे एक विशाल अधिवेशन हुआ जिसमें विदेशों से अनेकों योग विशेषज्ञों ने भाग लिआ और आपने उसका सफलता पूर्वक संचालनकिया।

—दाऊदयाल गर्ग (सम्पादक)

नियमित रूप से निश्चित समय पर पाखाना न होना या कम मात्रा में होना या बिल्कुल न होना कोष्ठबद्धता अथवा मलावरोध कहलाता है। कब्जियत से मानसिक ग्लानि, आलस्य, मुह मे छाले पड जाना, मुँह आ जाना, मुँह से दुर्गन्ध आना, अरुचि, जीभ पर मैल का जम जाना और सिर दर्द हो जाता है।

साधारणतया जैसे ही मल बड़ी आत से होकर मलाशय मे पहुचता है तो उसी समय मलोत्सर्ग की इच्छा होती है। कब्ज होने पर मल बडी आत मे जमा होता रहता है जिससे आत फूल जाती है और मल सूखकर सुद्दो का रूप धारण कर लेता है जिनके कारण पेट मे दर्द भी रहने लगता है और आतो मे घाव व शोथ भी हो जाता है। जब बडी आतो मे मल जमा होता है तो मनुष्य को झुकने मे भी दर्द होता है। कमर मुड़ते ही व्यक्ति के मुंह से आह निकल जाती है।

मलावरोध का मुख्य कारण निष्क्रियता अथवा आलस्य के कारण भोजन का पाक न होना (न पचना) ही है। पाखाने की इच्छा होने पर भी मलोत्सर्ग न करना या वारम्बार जुलाब लेना भी कब्ज का कारण बन जाते है। कब्ज के निवारणार्थ विरेचन औषधियो की अपेक्षा उसके मूल कारण को दूर करना अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। बदहज्मी के कारण कब्ज हो तो पाचनशक्ति-वर्द्धक चिकित्सा करे। जिगर व तिल्ली के बढ़ जाने से हो तो प्रथम उनकी चिकित्सा करे।

विरेचक औषधियां

(१) पचसकार चूर्ण—सनाय ४ ग्राम, सौंठ २० ग्राम, सैंधानमक १० ग्राम, छोटी हरड़ ४० ग्राम, सौंफ २० ग्राम, एरण्ड तेल १० ग्राम, छोटी हरड़ और सौठ के छोटे

छोटे टुकड़े कर लो वा दरदरा कूट लो। फिर उसमे सौंफ मिलाकर १० ग्राम एरण्ड तेल मे मदाग्नि पर सेक दो। हरड फूल जाने पर उतार कर ठन्डा करके उसमे सनाय मिलाकर कूट लेवे। फिर सैंधा नमक मिलाकर खरल करलें या बारीक पीस कर कपडछन कर रख लो।

मात्रा—६ ग्राम सोते समय गुनगुने गर्म जल से।

यह भूख लगाता है। वायु निकालता है और सुबह एक दो बधी टट्टी लाता है। पेट मे मरोड़ वगैरा कुछ भी उपद्रव नही करता। एक निरापद विरेचन है।

(२) सनायादि चूर्ण—शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, सनाय १५० ग्राम, मुलहठी ५० ग्राम, सौंफ ५० ग्राम और मिश्री या चीनी २०० ग्राम। गन्धक, सनाय, मुलहठी और सौंफ को पीसकर कपडछन कर रख लो। फिर उसमे अलग से पिसी हुई चीनी या मिश्री या बूरा मिलाकर रख ले। ७ ग्राम सोते समय गुनगुने जल से।

यह निरापद विरेचन है। बालक, सगर्भा, प्रसूता, निर्बल, वयोवद्ध सभी इसका सेवन कर सकते हैं।

(३) ईसबगोल की भूसी १०० ग्राम, सोठ चूर्ण २५ ग्राम, भुनी सौफ चूर्ण ७५ ग्राम, तीनो को मिलाकर रख लो। ७ ग्राम से १२ ग्राम रात को सोते समय गर्म दूध के साथ सेवन करने से प्रात साफ बधी टट्टी आती है। आव, मरोड और वायु नाशक है।

(४) वस्तावर काढा—दो छोटी हरड, ५ दाने मुनक्का (बीज निकली), सनाय ७ ग्राम, गुलाव के फूल ७ माशे, रात को २०० ग्राम गुलाब जल मे सबको भिगो दो सवेरे आग पर काढा बनाओ। आधा रह जाने पर ठडा कर, छान उसमे २० ग्राम गुलकन्द मिलाकर पीलो।

इससे दो तीन दस्त होगे। चित्त प्रसन्न होगा, पेट के सुद्दे निकल जायेगे, भूख बढेगी, बुखार होगा तो वह भी उतर जायेगा। इसे सगर्भा भी सेवन कर सकती है।

(५) कुमार्यासव—१० ग्राम मे जरा सा नौसादर मिलाकर १० ग्राम के साथ भोजन के बाद सेवन से भोजन पचता है, अफरा दूर करता है, कब्ज नही होने देता।

(६) दस्तावर गोली—छोटी हरड़ ६ ग्राम, बडी हरड़ का वक्कल ५ ग्राम, सौंठ १० ग्राम, बालछड १० ग्राम, मस्तगी १ ग्राम, साभर नमक १० ग्राम, एलुआ २५ ग्राम इन सब को पीस छानकर पानी के साथ जगली वेर के बराबर गोलिया बनालो। १-२ गोली जल मे सेवन करने से दस्त साफ आता है। भूख खुलकर लगती है, उदर का कफ दूर होकर मेदा साफ रहता है।

(७) मलावरोध जनित गुल्म रोग पर—रोगी को चौलाई के साग का केवल पानी सुबह शाम भरपेट सेवन करने को २-३ दिन तक दें और सुबह शाम आरोग्यवर्धनी वटी की दो गोलिया चौलाई के साग के पानी से दें

(८) अचूक मल प्रवर्तक व मूत्रल योग—रेवन्दचीनी ५ ग्राम, सनाय के पत्ते १० ग्राम, कलमी शोरा ३ ग्राम, विडङ्ग ३ ग्राम, छोटी इलायची के दाने ३ ग्राम सबको जोकुट करके १६ गुने पानी मे काढा करके जब चौथाई रह जाये तब कपडे से छानकर यवक्षार ३ ग्राम, मिश्री १॥ ग्राम मिलाकर रोगी को प्रात काल पिलाये। इससे मल मूत्र दोनो का विसर्जन होता है। यह अष्ठीला (प्रोस्टेट) ग्रन्थि वृद्धि मे मल मूत्र दोनो के प्रवर्तन के लिए रामबाण है। रोगी की अवस्थानुसार मात्रा कम कर सकते हैं।

(९) अश्वकचुकी रस—की एक गोली शर्बत के साथ ले। यह त्रिदोष नाशक है। पेट मे मरोड भी कर सकता है। अत निरन्तर लम्बे समय तक प्रयोग मे न लाये। इसमे जयपाल होता है।

(१०) तीव्र विरेचन—कच्चे अथवा भुने चने को सेहुड के दूध मे भिगोकर एक या दो चने निगलकर पानी पीलो। इससे चार-पाच वमन और १५-२० दस्त होगे।

जब दस्त बन्द करना चाहो तो दही भात खाओ।

यह जब तक पेट मे रहेगा वमन और दस्त अवश्य होते रहेगे, चाहे कितना ही सख्त कोठे वाला व्यक्ति क्यो न हो। यह फिरङ्ग, गर्मी और गठिया मे केवल २-३ दिन मे ही फायदा दिखाता है। यह गर्भवती व निर्बल या बालक को सेवन न करायें।

(११) इच्छाभेदी रस—इसका सेवन भी पानी जैसे पतले १५-२० दस्त लाता है। इसमे जमालगोटा होता है। निर्बल बालक, गर्भवती को सेवन न करायें।

(१२) रूकमीश रस—हरड का चूर्ण एक किलोग्राम और नीबू के रस से शोधित जमालगोटा १६० ग्राम मिला

कर २०० ग्राम थूहर के दूध मे बारह घण्टे घोटकर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। यह रस उच्चकोटि का विरेचन है। इसके सेवन से दाह, मूर्च्छा, चक्कर आना, थकावट आदि कोई भी उपद्रव नही होता। वेग सहित दस्त आते हैं। आम को दूर करने मे यह श्रेष्ठ औषधि है। इसके सेवन से जैसा रेचन होता है वैसा सारक औषधियो के क्वाथ की वस्ति (निरुह वस्ति) देने पर, बिन्दु घृत अथवा निशोथ के सेवन से शरीर का शोधन हो जाता है और बल का भी विशेष ह्रास नही होता। यह सगर्भा, निर्बल, बाल, या वृद्ध अथवा क्षत और क्षयी को सेवन नही करना चाहिए।

(१३) **त्रिफला चूर्ण**—हरड़, बहेड़ा और आँवला का कपडछन बारीक चूर्ण समभाग लेकर मिला कर रखलो ६ ग्राम रात को सोते समय पानी से अथवा रात को १०० ग्राम पानी मे भिगो लो, सुबह निथार कर पीलो। दस्त साफ लाता है। रसायन कार्य करता है।

(१४) **अभयादि वटी**—हरड, कालीमिर्च, पीपल, सुहागे का फूला प्रत्येक २०-२० ग्राम धतूरे के शुद्ध बीज ८० ग्राम लें। सबको कूट पीसकर कपड़े से छान लें, फिर छने चूर्ण को थूहर के दूध मे मिलाकर अवलेह जैसा या लेही जैसा बना लें और गर्म करके गाढापन १८५ मिग्रा. (१॥ रत्ती) की गोलिया बनाले। एक गोली ४ ग्राम हरड चूर्ण के साथ प्रात गुनगुने गर्म जल से सेवन करें। विरेचन हो जाने पर शीतल किया हुआ उष्णोदक पीवें। यह प्लीहा, पाण्डु, अष्ठीला, उदररोग, अम्लपित्त और अन्नगत आमविष तथा कृमि और गुल्म नाशक है। सगर्भा को यह बूटी न दे।

(१५) दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल सब १०-१० ग्राम और निशोथ ६० ग्राम लेकर सबको बारीक पीसकर इनको ६० ग्राम चीनी की चाशनी मे मिलाकर ३-३ ग्राम की गोलियाँ बनाकर रख ले। २ से ४ गोली प्रात काल जल के साथ सेवन करे। यह उत्तम सात्विक दस्तावर दवा है। इससे खुजली भी दूर होती है।

(१६) **त्रिवृतादि गुटिका**—निशोथ २० ग्राम छोटी पीपल २० ग्राम, बडी हरड का छिलका २५ ग्राम। इन सबको कूटकर कपडछन चूर्ण तैयार कर उसमे गुड मिला कर ५०० मिलीग्राम की गोलिया बनालो। १-१ गोली जल के साथ दिन मे १ या २ बार। यह पुराने कब्ज को दूर करती है। कुछ दिनो तक सेवन करते रहने से आंतो मे चिपके हुए आम और मल सब निकल कर उदर बन जाता है और पाचनक्रिया सशक्त हो जाती है।

(१७) **विरेचक वटी** (स्वामी जगदानन्द जी का योग) अशुद्ध झिल्ली और छिलका निकाला हुआ जमालगोटा १० ग्राम, कलमी शोरा २० ग्राम। दोनो का बारीक चूर्ण कर नीबू के रस मे १२ घण्टे खरल कर चने के बराबर गोलिया बनालें। आवश्यकता होने पर १ गोली सुबह गुलाब जल से सेवन कराये। २ घण्टे बाद ५० ग्राम सौंफ का अर्क पिलादे। यह मलावरोध, उदर रोग, रक्तविकार आदि मे पेट साफ करने के लिए उत्तम है। मासाहारियो के लिये लाभदायक है। बालक, सगर्भा व कोमल प्रकृति वालो को यह दवा न दें। कभी-कभी पित्त के बढ़ जाने से उल्टी भी आती है लेकिन उससे डरने की कोई बात नही है।

एलोपैथी वाले सोडियम बाई कारबोनेट, साइट्रिक एसिड और टारट्रिक एसिड के मिश्रण को फ्रूट साल्ट के नाम से पेट साफ करने को देते हैं यथा Eno's Fruit Salt, Andrew's Liver Salt आदि। मैगनीसियम सल्फेट की गोलिया या पाउडर भी विरेचन के लिये प्रयोग मे लाया जाता है। पैराफीन तरल (Liquid Paraffin) अथवा ग्लैक्सो कम्पनी की Glaxenna की गोलियाँ सगर्भा को कब्ज निवारणार्थ देते हैं।

प्राय कब्ज निवारणार्थ एलोपैथी मे फिनोलफथैलीन से बनी गोलियाँ प्रयोग मे लाई जाती हैं। यथा Sterus, Bicolates, Castophene (Nymph Laboratoris, Bombay), Trulux (Imperial pharmaceutical Products Bomay)। कैस्टोफीन की प्रत्येक गोली मे १६० मिलीग्राम फिनोलफिथैलीन होता है। ट्रुलक्स (Trulx] की प्रत्येक गोली मे २५६ मिलीग्राम फिनोल-फिथैलीन होता है। पुराने कब्ज मे मृदु विरेचन के तौर पर एक्स्ट्रैक्ट कैस्करा (liquid extract of cascara Sagrada) ३०-६० बूद की मात्रा मे सेवन कराते हैं। लेकिन यह मरोड़ करता है। प्राय कब्ज दूर करने के



लिए ब्रिउवर ईस्ट [Brewer's yeast] की गोलियाँ या अवलेह या पाउडर का सेवन भी कराया जाता है। इसमे वी कम्पलैक्स और अमीनो एसिड पाये जाते हैं। वी कम्पलैक्स फोर्ट के कैपसुल भी कब्ज दूर करते हैं और भूख बढाते हैं।

जिगर, हाजमा की खराबी आदि में लिवरजन (Livergen) तरल या गोलियो के रूप मे सेवनार्थ देते हैं। बहुत ही रुचिकारक औषधि है। नाम अग्रेजी है लेकिन मिश्रण आयुर्वेदिक ही है। यह स्टैंडर्ड फार्मास्यूटिकल वर्क्स कलकत्ता द्वारा निर्मित है।

कुछ लोग कब्ज निवारणार्थ सप्ताह मे एक बार गुनगुने साबुन के पानी का एनीमा (वस्ति) लेते हैं। बहुत पुराने कब्ज मे जिसमे सुद्दे अडे हो दर्द करते हों और वाहर आने का नाम न लेते हो तो गुदा मे ग्लिसरीन की पिचकारी लगाते हैं। इससे मल नर्म होकर आसानी से बाहर निकल आता है और रोगी को राहत मिल जाती है। जे जे डीशेन, हैदराबाद द्वारा निर्मित टैक्सीन स्ट्रोग (Taxine Strong) की गोलिया भी एक अच्छी विरेचक औषधि है। इसके मुख्य घटक कैस्कैरा सैगरेडा, सनाय, फ्निोलफिथैलीन, कालादाना, चिरायता हैं।

प्राकृतिक उपचार

शौच के दर्द (जोर) को कभी न रोका, फौरन निवटने जाओ, उसको रोकने से दर्द रुक जाता है, धीरे धीरे यह आदत बन जाती है और कालान्तर मे कब्ज रहने लगता है। टट्टी आये न आये नित्य नियमित समय पर शौच के लिये अवश्य जायें, प्रात नीद खुलते ही ५॥—६॥ बजे के बीच सौच जाने की आदत डालो। प्रात काल ४ बजे अपान वायु नीचे की ओर गति करने लगती है और सूर्योदय के समय से वह ऊपर को जाने लगती है। अतएव सूर्योदय के पूर्व शौच से निवृत न होने पर मल के परमाणु ऊपर की ओर उठकर कब्ज और उदर विकार करते हैं, उप.पान से यह विकार नही होता।

रात को सोते समय एक गिलास उष्ण जल पीने (चाहो तो इसमे १ चम्मच शहद भी मिला लो), प्रात ३ बजे एक गिलास रात का रखा वासा पानी पीने, सुवह सुनकर शौच आवेगा।

पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, धनुरासन, भुजंगासन का नियमित रूप से नित्य प्रति अभ्यास करते रहे।

(अ) पेट पर गीली पट्टी (मोटा तौलिया पानी में भिगोकर) या कोई दुहरी कपडे की पट्टी पानी मे भिगोकर निचोडकर पेडू पर रख कर ऊपर मे कपडा लपेट कर आधा से एक घण्टे तक बाधे रखना चाहिए।

(ब) या गीली मिट्टी की पट्टी रखो।

(स) यदि इससे लाभ न हो तो आधा से डेढ किलो जल मे एक से तीन नीबू का रस मिलाकर एनीमा दें।

(द) साबुन के पानी (गुनगुना गर्म) की वस्ति या ग्लीसरीन की पिचकारी आतो मे फसे सूखे मल सुद्दो को तुरन्त निकाल देती है।

(इ) कब्ज के रोगी को चाहिए कि वह पाव की एडियाँ ऊपर उठाकर केवल पाव की उङ्गलियो के बल बैठकर मलोत्सर्ग करे।

(फ) हाथ पैर को बारी बारी से बाई व दाई ओर दबाने से भी मलोत्सर्ग हो जाता है।

(ग) गणेश क्रिया भी करते रहना चाहिए। नित्यप्रति शौच से निवट कर गुदा धोने के बाद साफ तर्जनी उङ्गली को गुदा मे ऊपर तक प्रविष्ट कर चारो ओर घुमाकर वहा लगे हुए मलाश को पोछ कर बाहर निकाल दिया करें ताकि गुदा साफ रहे।

(ह) प्रतिदिन खाना खाने के बाद सुवह शाम वज्रासन मे पाच मिनट तक बैठा रहा करे, बाये पैर का अगूठा दाये पैर के अगूठे पर रहना चाहिए। इससे वायु रोग नही होता। यह वातनाशक है। नियमित रूप से वात का निवारण होने से और पेट साफ रहने से अर्श रोग के होने की आशंका जाती रहती है।

(ई) विना कष्ट के सरलता से मल विसर्जन करने के लिये हमेशा जव आपका दाया स्वर चलता हो तभी शौच के लिये जाये। वाया स्वर चलता हो तव पेशाब करें।

(ज) प्रात. काल सुवह सुवह २-२ किलोमीटर टहलना भी मलावरोध नष्ट करने मे सहायक होता है।

—आयु वारिधि श्री डा. चाँद प्रकाश मेहरा वी एस-सी.
५५७, मन्टोला स्ट्रीट, पहाडगज, दिल्ली—५५।

मलावरोध नाशक सरल चुटकले

श्री डा० बालकृष्णदयाल शर्मा ए०, एम०बी०एम०, आयु० वृ०, सम्पादक "धन्वन्तरि"

— — —

(१) कृष्णद्राक्षा (काली दाख) जिनमे से कि बीज निकाल दिये गये हो १०-१५ नग खूब चबा कर खा लीजिये, दस्त हो जायेगा।

(२) १०-१५ काली मुनक्का बीज निकाल कर एक साफ नारियल की सीक मे लगा दे। अब उस पर काला नमक, हींग, काली मिर्च लगाकर आग पर दूर से सेक लें तथा गरम-गरम खाये। अत्यन्त स्वादिष्ट लगेंगे तथा शौच साफ लायेंगे। आन्त्रिक ज्वर आदि मे जब विबन्धता हो तो यह उपयोगी है।

(३) छोटी हर्र, काली मुनक्का, बादाम की मींग, गुलाब के फूल और सौंफ—सब समान भाग ले कूट पीस ले। ५-६ ग्राम की गोली बनाले। रात्रि को सोते समय एक या दो गोली खाने से प्रात. खुल कर दस्त होगा। मृदु विरेचक है।

४. उत्तम गुलकन्द २५ ग्राम आधे लिटर गरम दूध के साथ ले। प्रात दस्त साफ हो जायेगा।

५. सुबह या रात्रि को सोते समय २ चम्मच बादाम की मींगी का तैल [बादाम रोगन], या जैतून का तैल, या एरण्ड स्नेह [कास्टर आइल] दूध मे मिलाकर पीवे।

६ सुहाता गरम दूध यथेष्ट मात्रा मे रात्रि को पीने से प्रात. सुखपूर्वक विरेचन होगा।

७. हर्र बड़ी, रेवन्दचीनी और सनाय की पत्ती समान भाग लेकर बारीक पीस बेर के बराबर गोली बना ले। रात्रि को सोते समय गरम दूध या शीतोष्ण जल के साथ एक या दो गोली लेने से प्रात दस्त साफ होगा।

८. सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हर्र, आवला, वायविडंग, तज, पत्रज, पीपलामूल, नागर मोथा यह दस चीजे ६-६ ग्राम, दन्ती मूल १२ ग्राम, निशोथ ५० ग्राम, मिश्री ३५ ग्राम सबका चूर्ण कर मधु मे मिला २-२ ग्राम की बटिकायें बनाले। इन्हे अभयादि वटी कहते हैं। तीव्ररेचन लेना हो तो ६-७ वटी खाकर शीतोष्ण जल पीवें।

यह गोलिया पाचन के लिये भी उत्तम है। रात्रि को सोते समय १-२ गोली सेवन कर लेने से प्रात. काल खुलकर दस्त हो जाता है।

९. लघु नारायण चूर्ण—पीपल १० ग्राम, काली निशोथ ४० ग्राम, मिश्री ४० ग्राम मिला कर कूट पीस ले। ५ ग्राम चूर्ण १० ग्राम मधु के साथ मिलाकर चाटने से उदर-पीड़ा एव मलावरोध दूर होते है। चाहे तो इसके ऊपर थोड़ा गरम पानी पी ले। विरेचन भी है।

१० एक ग्राम सनाय की पत्तिया पोटली बाध कर आधा लिटर दूध मे डालकर औटावें। दूध मे थोड़ा बादाम रोगन एवं शर्करा मिलाकर पीये। सुबह शाम दस्त हो जायेगा। बादाम रोगन के अभाव मे घृत ले।

११. गन्धक वटी—शुद्ध आमलासार गन्धक २० ग्राम, काली मिर्च ५ ग्राम, काला नमक ५ ग्राम, पिप्पलामूल १० ग्राम, पीपल १० ग्राम, तुलसी पत्र १० ग्राम तथा सोंठ १० ग्राम—इन सबको पीस कर नीबू के रस मे खरल करे तथा १–१ ग्राम की वटी बनालें। भोजनोत्तर १ वटी किंचिदुष्ण जल से ले।

१२. पाचक वटी—त्रिफला ३० ग्राम, त्रिकुटा १५ ग्राम, हिंगु (भृष्ट) १० ग्राम, देसी अजवायन २० ग्राम, काला नमक ८० ग्राम तथा दालचीनी असली १० ग्राम सबको कूट पीस कर आधा किलो नीबू के रस मे खूब घोट कर १–१ ग्राम की गोली बना लें। भोजनोत्तर किंचिदुष्ण जल से एक गोली लें। अपच, अजीर्ण, आध्मान, उदरशूल आदि उदर विकार दूर होगे।

१३ पाचक सारक प्रयोग—सोठ, सौंफ, सनाय, सैन्धानमक, सौचर नमक तथा शिवा (बड़ी हर्र)—सभी समान भाग ले पीसकर सोते समय ३ ग्राम की फंकी लगावे। प्रात दस्त साफ हो जायेगा।

१४ इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण) की जड़ का चूर्ण कर १-१॥ ग्राम की मात्रा मे जल के साथ फक्की लेने से विरेचन हो जाता तथा यकृत को लाभ पहुचता है।



१५ यदि साम ज्वर हो, पेट मे शूल हो और कफ तथा वायु का आधक्य हो तो अमलतास, पीपलामूल, मोथा, कुटकी और पीली हरड ६–६ ग्राम लेकर आधा लिटर पानी मे किसी मृत पात्र मे पकावे। चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर छान कर पिला दें। इससे मलावरोध दूर हो ज्वर दूर हो जाता है।

१६ उसारे रेवन्द, मुरमक्की और एलुआ समान भाग लें। घृतकुमारी के गूदे के रस में घोट तीन-तीन ग्राम की वटी बना लें। एक वटी रात्रि को सोते समय गरम जल या दुग्ध के साथ लें।

१७ पचामृत चटनी—काली मुनक्का बीज निकले हुए ४०० ग्राम लें। उनको खरल मे पीसकर अमलतास का साफ गूदा २५ ग्राम और सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक का चूर्ण १०-१० ग्राम, सैन्धव लवण २५ ग्राम मिलाकर खरल मे पीसकर किसी स्वच्छ कांच के पात्र या चीनी के पात्र मे रख दें। यही पचामृत चटनी है। इसे १० से २०–२५ ग्राम तक खाने से सुखपूर्वक विरेचन होता है। और वायु, मन्दाग्नि, अरुचि, रक्तदोष दूर होकर भूख लगती है।

१८. सनाय (स्वर्णपत्री) ४०० ग्राम, मुलेठी २०० ग्रा, सौंफ २०० ग्रा, शु० आमलासार गन्धक १०० ग्राम तथा मिश्री ९०० ग्रा—कूट पीस छानकर बच्चो को १-२ ग्रा. तथा बडो को ३ ग्रा की मात्रा मे गरम दूध के साथ दें। ७–८ घण्टा पीछे शौच होता है किन्तु कोष्ठ साफ कर देता है। यदि २–३ विरेचन देने हो तो ३–३ घन्टा के अन्तर से गर्म दूध से दें। दूध मे मलाई न हो। जिनको मल का अवरोध अधिक हो वे दूध मे ३ ग्रा बादाम रोगन मिलालें। मलावरोध के अतिरिक्त इससे निद्रानाश, शिर शूल, प्रतिश्याय, उदरपीडा दूर होते हैं।

१९ पुरानी इमली का गूदा २० ग्रा किसमिस १० ग्रा, गुलाब के फूलो की पखुडी ३ ग्रा., सौंफ ३ ग्रा, पके बेल का गूदा ५० ग्रा, मिश्री २० ग्रा इन सबको एक साथ बारीक पीस पानी मे घोलकर पीवें।

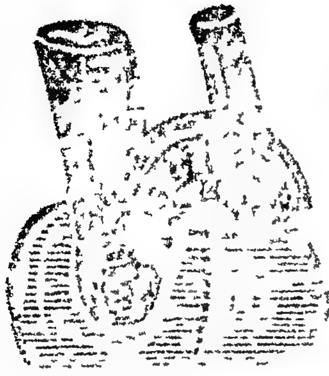
२० गुलाब के फूल ५०–६० ग्रा को १ किलो पानी मे अच्छी तरह उबाल छान कर उस पानी मे २५० ग्रा बढिया चावल ११५ ग्रा मिश्री तथा २० ग्रा घृत डालकर वर्तन का मुख आटे से बन्दकर पकावें। जब चावल पक जायें तब उतारकर ठण्डे होने पर मुख खोलकर देखें। बढिया सुगन्धित मनमोहक मधुर चावल तैयार हैं। इन चावलो को सेवन करने से विना किसी तकलीफ के दस्त साफ हो जाता है। सुकुमार प्रकृति के अमीर उमरावो के लिये विशेष लाभप्रद हैं।

२१ नौसादर ५० ग्रा, खारी नमक ५० ग्राम लेकर इन्द्रायण के गूदे के रस की सात भावना देकर तथा सुखा कर बारीक चूर्णकर सकोरे को औंधा रख सम्पुट बन्दकर डमरू यन्त्र की भाति बनाकर आच पर रखें। ऊपर के सकोरे पर भीगे कपडे की तह लगाकर रखें। जब गर्म हो जाय तब पुन ठन्डे पानी मे रखें। इस प्रकार ४ घन्टे अग्नि देकर स्वाशीत होने दें। तब खोलकर ऊपर के सकोरे मे लगे हुए सत्व को निकाले। इसको १ रत्ती से ३ रत्ती तक गुलकन्द मे रखकर या त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करने से दस्त साफ हो जाता है। उपदंश सुजाक के मलावरोध मे विशेष लाभप्रद है।

२२ दाडिमादि चूर्ण—अनारदाना, सफेद जीरा भुना, सूखा पोदीना, त्रिफला, सोंठ, काला नमक, सैंधा नमक, साभर नमक प्रत्येक १०-१० ग्राम तथा सनाय की पत्ती १७५ ग्रा सबको चूर्ण कर कपडछन कर रखे। रात्रि को सोते समय ३ ग्रा चूर्ण गुनगुने जल के साथ फाकें।

२३ मलावरोध नाशक क्वाथ—उन्नाव, लिसोढे, खस, गुलाब के फूल दाख, अन्जीर, खीरा के बीज, ककडी के बीज, सौंफ, कासनी, मुलहठी, बडी हरं, अमलतास का गूदा, सनाय, खतमी, खुब्बाजी, नीलोफर, हंसपदी सब ३–३ ग्राम लेकर कुचलकर १ लिटर जल मे रात्रि को भिगो दे। प्रातकाल औटावें। जब १२५ ग्राम जल शेष रहे तब छानकर कदुष्ण पीवें। इस तरह सात दिन सेवन करें तथा खिचडी (घृतयुक्त) का भोजन करे। एक सप्ताह पश्चात् इच्छाभेदी रस की १ मात्रा दें। इस क्रिया से पुराना मल फूलकर निकल जाता है और मलावरोध सर्वदा के लिये दूर हो जाता है। पित्त प्रकृति वालो को विशेष उपयोगी है।





हृद् विकार एवं प्रतिकार

आचार्य श्री बहोरी लाल शुक्ल 'भास्कर' आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद रत्न

× × ×

यद्यपि हृदय के विकार बहुत है परन्तु आयुर्वेद के मतानुसार संक्षेप मे १–वातिक २–पैत्तिक ३–श्लैष्मिक ४–सान्निपातिक (त्रिदोषजन्य) तथा ५–क्रिमिजन्य भेद से पाच प्रकार माना जाते हैं। हृदय रोगो की सम्प्राप्ति तथा सामान्य लक्षण निम्न प्रकार कहे गये हैं—

दूषयित्वारस दोषा विगुणा हृदय गता।
हृदि बाधा प्रकुर्वन्ति हृद्रोग त प्रचक्षते॥

वर्तमानकाल मे हृदय रोगो की उत्पत्ति के मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं—

अत्यन्त उष्ण प्रकृति तथा गुरु, कषाय और तिक्त रस वाले भोज्य पदार्थों जैसे मिर्च मसाले, अम्लधर्मी, गरिष्ठ पदार्थो का अधिक सेवन, चाय, काफी, बीड़ी-सिगरेट तथा शराब जैसे मादक पदार्थों का अधिक सेवन, अधिक परिश्रम, अध्यशन, अधिक स्त्री सम्भोग चिन्ता ग्रस्त रहना, अधारणीय वेगो जैसे मल-मूत्र छींक उद्गार (डकार) जम्हाई आदि को धारण करना (रोकना), सदैव विबन्ध (कब्ज) रहना तथा अधिक उष्ण भोजन करना हृदय रोगो की उत्पत्ति के कारण हैं।

वातज हृद्रोग—शोक, उपवास, व्यायाम, रूक्ष तथा शुष्क भोजन करने के कारण वात प्रकुपित होकर हृदय मे वातिक हृद्रोग उत्पन्न करता है।

वातिक हृद्रोग मे कम्प हृदयावेष्ठन (लपेटने या ऐंठने जैसी पीडा) स्तब्धता, मूर्च्छा, हृदयशून्यता, भेदने, चुभने, फोड़ने, काटने जैसी पीड़ा, अकस्मात् दीनता, ग्लानि शोक, भय, शब्दासहिष्णुता (न सहन होना) श्वास कष्ट एवं निद्रा की कमी आदि लक्षण न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं।

पित्तज हृद्रोग—उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, अधपके पदार्थों का भोजन, मद्य क्रोध एवं धूप का अधिक सेवन करने से पैत्तिक हृद्रोगो की उत्पत्ति होती है।

पैत्तिक हृद्रोगो मे हृदय मे जलन, मुख वैरस्य स्वाद कटुता, थोड़े परिश्रम से थकावट, आखो के सामने से अंधेरा दीखना, मूर्च्छा, प्यास, उष्णता, ज्वर, मल-मूत्र चेहरा तथा त्वचा मे पीताभास, मुख सूखना, चक्कर आना, अम्ल उद्गार तथा अम्लीय वमन आदि लक्षणो का प्रादुर्भाव होना।

श्लैष्मिक हृद्रोग—अधिक मात्रा मे गुरु, स्निग्ध और द्रव भोजन करना, चिन्ता एवं चेष्टा (परिश्रम) न करना, दिवा-निद्रा तथा आलस्य से श्लेष्मा प्रकुपित होकर श्लेष्मिक हृद्रोग की उत्पत्ति करता है।

कफज हृद्रोग मे हृदय सुप्त-सुन्न-जकडा सा, भारी तथा वक्षस्थल पर दबाव सा प्रतीत होता है। रोगी को तन्द्रा, अरुचि, मुँह से लालास्राव, ज्वर, कास, आध्मान, अग्निमाद्य, मुख का कफ से लिप्त रहना, निद्रा की अधिक उत्पत्ति और आलस्य आदि लक्षणो का न्यूनाधिक प्राकट्य होता है।

त्रिदोषज (सन्निपातिक) हृद्रोग—ऊपरलिखित तीनो दोषों के हेतुओ का सेवन और तीनो दोषो के लक्षणो का प्राकट्य त्रिदोषज हृद्रोग का द्योतक है।

कृमिज हृद्रोग—त्रिदोषज हृद्रोग में रस लालुप,

अजितेन्द्रिय मनुष्य तिल, दूध, गुड़ आदि कृमिकारक आहारों का सेवन करता है। उसके हृदय के किसी भाग मे कृमि उत्पन्न होकर शनै शनै सम्पूर्ण हृदय मे व्याप्त होकर हृदय का भक्षण करते हैं।

कृमिज हृद्रोग मे सूचिका-भेदनवत् या कर्त्तनवत् पीडा कण्डु (खुजली) की उत्पत्ति, नेत्र श्यावता, कास, अरुचि, अग्निमांद्य, निद्राविक्षय, आलस्य, ज्वर, जी मिचलाना (वमनेच्छा), लालास्राव, हृद्-मुख-शुष्कता, और हृदय को तेजधार के शस्त्र से काटने जैसी पीड़ा का अनुभव कृमिज हृद्रोग के लक्षण पाये जाते हैं।

विकार प्रतिकार

वातज हृद्रोग में रुग्ण को स्नेहन देकर दशमूल-क्वाथ में स्नेह और लवण मिश्रित कर पिलाकर वमन कराना चाहिये। शोधनोपरान्त पिप्पली, इलायची, वच, हिंगु, यवक्षार, सैन्धव, सौवर्चल, सोंठ, अजवायन के चूर्ण को, कांजी, फुलत्थ, यूष दही, मद्य, आसव या किसी स्नेह के साथ पिलाना चाहिए।

भोजन में पुराने साठी चावल, जांगल मांस रस, आदि को स्नेह मिश्रित देना चाहिए। वातघ्न द्रव्यों से सिद्ध तैल आदि की बस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

पित्तज हृद्रोग में गम्भारी, मधुयष्टि, मधु, सिता, शर्करा, पुण्डरीक आदि के जल या कषाय तरल से वमन कराना चाहिये। शोधनोपरान्त काकोल्यादि मधुर द्रव्यो से सन्कारित घृत पिलाना चाहिये। पित्त ज्वरनाशक कषायों एव हरिण आदि पशुओं के मांस रस को मधुर द्रव्यो तथा घृत से संस्कृत करके तृप्ति पर्यन्त पिलाना चाहिए। मधुयष्टि क्वाथ से सिद्ध तैल और मधु मिलाकर वस्ति प्रयोग करना चाहिए।

कफज हृद्रोग में वच एवं निम्ब कषाय से वमन कराना चाहिए। वातज हृद्रोग में उक्त चूर्ण भोजन के साथ प्रशस्त है। सशोधन में मदनफलादि, मुस्तादि या त्रिफला यथायोग्य उपयोगी है। त्रिवृत्त मिश्रित घृत विरेचन हेतु उपयुक्त है।

त्रिदोषज हृद्रोग में सम्मिलित उपचार करना चाहिए। जिस दोष की प्रबलता हो उसके अनुसार उपचार प्रशस्त है।

कृमिजन्य हृद्रोग में घृत से स्निग्ध मांसरस भोजन में देना चाहिये। यदि इसके साथ तक्र एव तिलकल्क दिया जावे तो विशेष उपयोगी है। इसके बाद सुगन्धित लवण युक्त जीरा एव शर्करा युक्त विरेचन देना चाहिए। इसके बाद कांजी म उचित मात्रा में प्रचुर विडंग चूर्ण मिलाकर पिलावें। इस प्रकार हृदयस्थ कृमि नीचे गिर जाते हैं या मृत हो जाते हैं। इसके बाद विडंग मिश्रित यव (जौ) का आहार रुग्ण के लिए प्रशस्त है।

हृदय रोगों में उपयोगी शास्त्रीय योग

चूर्ण—अर्जुनत्वक चूर्ण, कुकुमादि चूर्ण, शुण्ठ्यादि चूर्ण।

वटी—अजमोदादि वटक, आरोग्यवर्धिनी वटी, प्रभाकर वटी।

घृत—अर्जुन घृत, वल्लभक घृत, श्वदंष्ट्रा घृत, बलाद्य घृत, आदि।

आसवारिष्ट—अर्जुनारिष्ट, विडंगारिष्ट, सारस्वतारिष्ट।

रस-रसायन—कल्याण सुन्दर रस, चिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस, विश्वेश्वर रस, त्रिनेत्रोरस, पञ्चानन रस, नागार्जुनाभ्र रस, आदि।

लौह—अमृतांकुर लौह, नवायस लौह आदि।

गुग्गुल—त्रयोदशाग गुग्गुल, पञ्चतिक्त घृत गुग्गुल।

अवलेह—अगस्त्य हरीतकी, च्यवनप्राश, वासावलेह।

शर्बत—शर्बत चन्दन, शर्बत नीलोफर, शर्बत गावजुवां, शर्बत फालसा, शर्बत केवड़ा आदि।

अर्क—अर्क बेदमुश्क, अर्क फरनफस (लवंगादि अर्क)

यूनानी सिद्धयोग—जवाहर मोहरा, याकूती, माजून, आवरेशम, खमीरा गावजवा सादा व अम्बरी।

कुश्ता भस्म—अकीक भस्म, शृंग भस्म, रजत भस्म, जहरमोहरा खताई भस्म व पिष्टि, मुक्ता पिष्टि।

हृदय रोगो मे पथ्यापथ्य निरूपण—

शालिमुद्गा यवा मास जागलम् मरिचान्वितम्।
पटोलं कारवेल्लञ्च पथ्य प्रोक्तं हृदामये ॥
तैलाम्लतक्रगुर्वन्नकषायश्रममातपम् ।
रोषं स्त्रीजन चिन्ता वा माष्यं हृद्रोगास्त्यजेत् ॥

—आचार्य बहोरीलाल शुक्ल 'भास्कर'
इन्चार्ज-राज० आयु० चिकित्सालय, चौगाता (पियौरागढ़)

हृदय रोग और चिकित्सा

वैद्य ओमप्रकाश गोस्वामी, भिषगाचार्य, आयुर्वेदाचार्य प्रथम श्रेणी चिकित्सक, राज० आयु० चिकि०, रतनगढ़।

कारण

१. प्रौढावस्था मे ४५ से ७५ वर्ष तक प्राय. यह रोग होता है। इस अवस्था मे जीर्णता के कारण पौष्टिक तन्तुओं के निर्माण से स्थिति स्थापकता, गुण की न्यूनता के कारण धमनी काठिन्य हो जाता है।

२. व्यावसायिक कारण—सुख-सुविधा सम्पन्न धनाढ्य रोगो मे वसा का सचय व व्यय असन्तुलित रहता है।

३. वशज—बहुत से परिवारो मे यह रोग उत्तरोत्तर सन्तानों मे पाया जाता है।

४. कारण भूतरोग—चुल्लिका स्राव की न्यूनता, चिन्ता, शोक, परिश्रम, जीर्ण रोग, तीव्र रक्तस्राव, मण्कार अतिसार, अति व न्यून रक्तचाप, धमनी अन्तःस्तर के रोग, हृदय अवपीडन वृक्क अपवृद्धि, फिरङ्ग, मधुमेह आदि कारणों से हृदय पटल पर आघात होकर हृदय की स्थूल एव सूक्ष्म धमनियो पर दुष्प्रभाव पडता है। विशेषत मधुमेही की धमनियो मे अपर ओज का क्षरण होता रहता है व सौत्रिक तन्तु बनते रहते हैं। इससे धमनी काठिन्य होकर रोगोत्पत्ति होती है, हृदय अवपीडन का अन्तिम परिणाम धमनियो मे रक्त का अभाव होकर हृत्कार्यावरोध होता है।

दौरे का समय—रात्रि १० बजे से प्रात ३ बजे के लगभग अचानक वक्षशूल एव श्वास कृच्छ्रता (दमघुटना)से रोगी जाग उठता है। कुछ रुग्ण प्रातः सदा के लिये सोये हुए मिलते हैं। इस रोग का दौरा प्राय रात्रि मे पडता है क्योंकि जागते या कार्य करते समय की अपेक्षा रात्रि मे रक्तभ्रमण की गति मन्द रहने से तथा निद्राकाल मे तमोगुण व श्लेष्माधिक्य जन्य स्रोतोरोध दौरे को उत्पन्न करता है। प्रारम्भ मे दौरा ३–४ वर्ष के अन्तर से आता है। शनै शनै यह अवधि कम होती जाती है तथा दौरा प्रतिदिन आने लगता है। कभी-कभी प्रथम दौरे मे ही शरीर शान्त हो जाता है। दौरा आने पर जो पीड़ा पैदा होती है वह पीडा कुछ क्षण से लेकर ५–७ दिन पर्यन्त बनी रहती है। पीडा प्रतीति हृद्मास पेशीक्षत पर निर्भर करती है।

लक्षण

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयंगता।
हृदि पीड़ा प्रकुर्वन्ति हृद्रोग त प्रचक्षते॥

विभिन्न कारणो से प्रकुपित वातादि दोष जब हृदय मे जाकर रस को दूषित कर उसमे विविध प्रकार की पीडाओ को उत्पन्न कर देते हैं तब उसे हृद्रोग कहते हैं।

१ पीडा का स्थान—इसमे वेदना दोनो अशफलको के बीच उरःफलक के नीचे तथा पीठ मे ज्ञात होती हैं। वक्ष मे जकडाहट से लेकर तीव्र पीडा तक अनुभव होती है। विभिन्न रोगियो मे पीड़ा की अनुभूति कन्धो, भुजाओ, नीचे के दातो तथा मन्या तक होती है।

२ श्वास—रोगी को हल्के से लेकर तीव्र श्वास का दौरा पड सकता हे, साथ मे घुटन, स्वेदाधिक्य, बार-बार मथित श्वेत किंचित् रक्ताभ थूक आता है।

३ छर्दि आदि—दौरे के समय घबराहट व स्वेदाधिक्य के साथ-साथ वमन होता है। कभी कभी रोगी छर्दि के बाद मल त्याग की इच्छा व्यक्त करता है।

शीताङ्गता—हाथ पैर ठडे सम्पूर्ण शरीर से स्वेद विशेषत ललाट पर दिखाई देता है।

ज्वर—दौरे के प्रथम दिन से ४५ दिन तक हलका ज्वर आता है। ज्वर रहने से इस रोग का सापेक्षनिदान



श्वसनक ज्वर से करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि ज्वर, थूक मे लालिमा, वक्षशूल श्वास वेग चारो लक्षण ही श्वसनक ज्वर का भ्रम पैदा करते है परन्तु हृद्मासक्षत, न्यून रक्तचाप, आदि से पृथकता प्रकट हो जाती है,।

रक्तचाप—सकोच कालिक रक्तचाप न्यून हो जाता है ज्यो त्यों रोग की वृद्धि होती रहती हे।

सापेक्ष निदान—

श्वसनक ज्वर, आध्मान, पित्तनलिकाशोथ, श्वास, आमशायिक व्रण, वक्षशूल, हृदय अवपीड़न से सापेक्ष-निदान करना चहिए। प्रधान रूप से हृदय अवपीड़न व इस रोग मे भ्रम पैदा हो जाता है।

हृदय अवपीडन—(१) वेदना काल कुछ क्षणो का होता है (२) मेहनत किसी भी समय करने से वक्षशूल पैदा हो जाता है (३) रक्तचाप वृद्धि या सामान्य (४) स्तब्धता (Shock) का अभाव (५) नाइट्राइट नामक औषधि सेवन से रोग शान्ति तुरन्त हो जाती है (६) रोगी के आराम करने पर वेदना शान्त हो जाती है।

हृदय रक्त स्कन्दन (Coronary Thrombosis)—(१) वेदना काल कुछ घण्टो का होता है (२) पूर्ण आराम से दौरा आ जाता है (३) रक्तचाप न्यून होता जाता है (४) नाइट्राइट के सेवन से रोग वृद्धि हो जाती है (५) स्तब्धता रहती है (६) रोगी पूर्ण बेचैन रहता है।

निदान—वात पित्त कफ त्रिदोष का दर्शन स्पर्शन तथा प्रश्न से परीक्षा करें। हृदय मासपेशीक्षत की गम्भीरता का पता ई.सी.जी. 'एक्स-रे' रक्तचाप मापक यन्त्रादि से तथा हृद्गति, स्तब्धता, शूल आदि से अनुमान लगावें।

चिकित्सा क्रम

वातादि दोषो के हीनमध्यादि योग को जानकर तदनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

१ पूर्ण विश्राम—दौरा आने पर पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

२. वेदनाहर—तीव्र शूल से व्याकुल रोगी की प्रथम वेदनाहर चिकित्सा करनी चाहिए। प्रभाकर वटी १ रत्ती, पोकरमूल चूर्ण १/२ माशा, शृङ्ग भस्म २ रत्ती, इन सबको मिलाकर खमीरेगाजुवा १ चम्मच से चटाकर अर्जुन साधित गोदुग्ध पिलावें।

३. हृद्धमनी विस्फारक—हृदय चिन्तामणि १ रत्ती, हृत्पत्री चूर्ण (डिजिटेलिस) २ रत्ती, प्रभाकर वटी १ रत्ती, यह १ मात्रा पलाण्डु स्वरस १० मि लि पुराना गुड़ १० ग्राम सह अनुपान के रूप मे देवें।

४ दीपन-पाचन—कुंकुमादि चूर्ण २ माशा, द्राक्षादि चूर्ण २ माशा मिलाकर भोजन करने के बाद अर्जुनारिष्ट १५ मि लि. के साथ देवें।

लाक्षणिक चिकित्सा—

श्वास वेग मे—शृङ्ग भस्म, तालीससोमादि योग, नागार्जुनाभ्रक, श्वासकास चिन्तामणि, वासा, कर्कटशृङ्गी, मधुयस्टी आदि का प्रयोग करना चाहिए।

छर्दि (Vomiting)—वमन कुठार, एलादि चूर्ण, यवानीखाण्डव, चन्द्रकला रस, लवगादि चूर्ण आदि का प्रयोग करना चाहिए।

शीताङ्गता—कस्तूरी भूषण रस, हेमगर्भपोटली रस, याकूती, वृ० कस्तूरी भैरव रस, सिद्ध मकरध्वज, पंचकोल चूर्ण आदि का प्रयोग करें।

विशेष औषधिया—हृदयचिन्तामणि, शकर वटी, प्रभाकर वटी, त्रैलोक्य चिन्तामणि, मुक्तापिष्टि, जवाहरमोहरा याकूती, हृदयार्णव रस, त्रिनेत्ररस, विश्वेश्वर रस, यावनरत्नेश्वर रस, अर्जुनाभ्रक, अम्बर, रसराजरस, अकीक पिष्टि, शृङ्गभस्म, हृद्य चूर्ण (हृत्पत्री=डिजिटेलिस), पोकर मूल चूर्ण, चन्दनावलेह, दिवाल मुश्क, खमीरेगाजुवा, द्राक्षादि चूर्ण, शिलाजतु, आरोग्य वर्धनी, मकरध्वज, योगराज गुग्गुलु, यवानी खाण्डव चूर्ण, अर्जुनारिष्ट, अर्जुनघृत, कल्याण सुन्दर रस आदि।

पथ्य—पुराने चावल, जौ, परवल, अनार सेव, मुनक्का, अजीर, किसमिश, पपीता, पुराना गुड़, पेठा, मुरब्बा, आमला मुरब्बा, लहसुन, प्याज, लौकी, कुलथी, गोदुग्ध, दसहरी आम, अगूर, मुसम्मी, छैना इत्यादि।

विशेष—हृदय की धमनियो मे रक्त की रुकावट से होने वाले रोगों मे सुधा (Calcium) प्रधान औषधियो का निषेध जैसे—

मुक्ता, प्रवाल, मुक्ताशुक्ति की पिष्टिया सुधा व शीत प्रधान होने से कैलसियम की कमी मे, अस्थिमार्दवता, अस्थिक्षय, रक्तस्राव, उष्मा, तृषा, दाह, आदि रोगो मे पूर्ण लाभ करती हैं अत. रक्त स्कन्दनजन्य हृद्रोगो मे विपरीत प्रभाव के कारण इनका प्रयोग नहीं करें।

हृदयावसाद

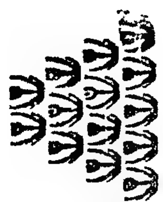
सोके संबंध

कवि. आशुतोष शुक्ल, जलकल रोड,
देवरिया

एका-एक जब चलते-चलते या काम करते-करते छाती मे दर्द की टीस उठे और छाती के बाई ओर स्तन के आस-पास विद्युत करेन्ट वत् दर्द का प्रभाव हो और एका-एक तबियत बेचैन हो उठे, श्वास फूलने लग जाय अर्थात् श्वास कठिनता से आने लगे, दर्द का फैलाव बाई ओर की भुजा मे फैले, वह भी लहरदार दर्द हो, क्षणो मे बन्द हो जाय और फिर उठे तो हृदय के विकार बढने के कारण यह कष्ट हुआ समझना चाहिए। बहुधा हृदय का दर्द इस तरह से उठकर शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है और जब कोई तकलीफ नही रहती, तो हम उस दर्द के कारण को समझने का प्रयत्न न कर उसे भूल जाते है और रोग को बढने का अवसर देते हैं।

मानसिक चिन्तायें जब बढती हैं तब उसका सबसे पूर्व पाचन शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। पाचन व्यवस्था के बिगडने से शरीर मे आहार प्राप्ति मे बाधा आती है। और आहार भाव का प्रभाव हृदय पर शीघ्र होता है। इस चिन्ता के कारण हृदय की पोषक वाहिनियो मे अव-रोध होता है जिसे आजकल 'कोरोनरी थ्रोम्बासिस' कहते है। इन वाहिनियो के मार्ग से रक्त हृदय मे पहुचा करता है। ये वाहिनिया सिकुड़ जाती हैं और इनके मार्ग तग हो जाते हैं। जब रक्त की मात्रा हृदय तक कम पहुचती है तभी पोषणाभाव होता है। कई बार चिन्ता, शोक का यहा तक प्रभाव देखा जाता है कि रक्त का कोई छोटा सा थक्का इनमे रुककर उन्हे पूर्ण अथवा आशिक रुप से अवरुद्ध कर देता है। इस तरह उन वाहिनियो मे रक्त का सचार ही रुक जाता है। इस दशा का पता लगाना बहुत ही कठिन होता है। किन्तु जब ऐसी दशा उत्पन्न होती है तब हृदय मे ठहर-ठहरकर, तीव्र वेदना उठा करती है। यही इस रोगको बताने वाला एक प्रधान चिह्न होता है। यह पीडा प्राय बाई बाजू की ओर फैला करती है। यह हृदय रोग के होने का मुख्य लक्षण है। ऐसे व्यक्ति को प्राय उष्मजन अधिक सुघाते हैं। क्योकि उष्मजन से उसकी किया वृद्धि मे सहायता मिलती है। जब रोग का एक आधा बार आक्रमण हो जाता है और फिर दूसरी बार जब आक्रमण होता है उस समय वेदना तीव्र होती है और वेदना के मारे रोगी के मुख से शब्द तक नही निकलता। उस समय उसे ऐसी व्यथा होती है मानो किसी ने हृदय को कुचल दिया हो। उस समय ठडे पसीने आने लगते हैं सारा शरीर ठण्डा पड जाता है और सिर को पकडकर चुप बैठ जाता है। और कई बार तो ऐसी अवस्था आने पर हृदय सदा के लिए अपना व्यापार बन्द करके सदा के लिए विश्राम ले लेता है। कभी पुनः सभल जाता है। विश्राम लेने पर कुछ व्यक्तियो की अवस्था मे सुधार हो जाता है। किन्तु व्यक्ति के चिन्तातुर बने रहने पर इसके आक्रमण का भागी भय पुन बना रहता है। और ऐसी दशा मे मृत्यु का आना अवश्यम्भावी है। इस रोग की अब तक कोई भी अचूक औषधि नही ज्ञात हो सकी है। विश्राम और चिन्तारहित रहना इसकी मुख्य औषधियो मे से है। फिर भी कुछ उपचार का आश्रय लेना ही पडता है।

यदि रक्त के थक्के से हृदय वाहिनी अवरुद्ध हुई प्रतीत हो तो ऐसी प्रतिस्कन्दी औषधियो का प्रयोग किया जाता है, जो रक्त की स्कन्दन प्रवृत्ति को रोकती है और रुके हुए थक्के को विलीन करके अवरोध को दूर कर देती हैं। यदि वास्तव मे "हृदयावसाद" से बचना है तो भोजन मे पोषक तत्वो पर ध्यान देते हुए अपने मस्तिष्क को स्व-च्छन्द रखकर चलना होगा, तभी "हृदयावसाद" जैसे भयकर रोग से बच सकते है।



धमनी दार्ढ्य एवं उच्च रक्तभार



डा० चन्द्रमोहन कसल, एम०डी० (काय चिकि०), डा० चन्द्रबली दुबे डी०ए०बी०एम०, पी-एच०डी० (काय-चिकि)
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, लखनऊ।

डा० चन्द्र मोहन कसल आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली के सुयोग्य स्नातक हैं और कायचिकित्सा में लखनऊ विश्वविद्यालय से एम०डी० किया है। डा० दुबे, लखनऊ आयुर्वेदिक कालेज में कायचिकित्सा के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हैं और भारत के वरिष्ठ आयुर्वेदज्ञों में से एक हैं।

लेखकद्वय ने धमनी दार्ढ्य एवं उच्च रक्तभार विषय पर सारगर्भित एवं उपयोगी विवेचन इस लेख में दिया है जो पाठकों का ज्ञानवर्धन करेगा। —शिव कुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

धमनी दार्ढ्य एवं उच्च रक्तभार दोनों ही मुख्यतः आधुनिक सभ्यता की देन है। इनका वर्णन मुख्य रूप से आधुनिक चिकित्साशास्त्र में ही मिलता है। आयुर्वेदीय मूल भूत संहिताओं में इनके विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। धमनी दार्ढ्य (जठरता) का तात्पर्य धमनी की मध्यम एवं आभ्यन्तर स्तर (अन्तः कला) के दृढ होने से है।

रक्तभार (रक्तनिपीड)—रक्त वाहिनियों के परिणाहीय अवरोध (Peripheral resistance) के विरुद्ध हृदय जिस दबाव से रक्त संवाहन सम्पादित करता है, रक्तभार कहलाता है। जब किन्हीं कारणवश सामान्य से अधिक हो जाता है उच्च रक्त निपीड कहलाता है। प्रस्तुत पत्र मे दोनों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

धमनी दार्ढ्य (Arteriosclerosis)

पर्याय—धमनी काठिन्य, धमनी जठरता, रोहिणी जारठ्य।

धमनी जठरता, (रोहिणी जारठ्य) मानव की आयु के बढ़ने के साथ-साथ प्रारम्भ होती है। इसमे विकृति प्रारम्भ मे मध्य स्तर मे होती है तदनन्तर आभ्यन्तर स्तर (अन्त काल) भी कडी हो जाती है। विकृति का कारण पित्त सान्द्रव [Cholesterol] वृद्ध रक्तगत स्नेह [Hyperlipidemia] चूर्णातु [Calcium] का धमनी की अन्त. कला में जमा होता है जिससे धमनी की प्रत्यास्थता [Elasticity] कम हो जाती है तथा इसके फलस्वरूप धमनी मे काठिन्य उत्पन्न हो जाता है।

प्रकार—धमनी जठरता दो प्रकार की होती है—

[अ] करम्भ जारठ्य (Atherosclerosis)

(ब) परिणाहीय रोहिणी जारठ्य (Peripheral Arteriosclerosis)

(अ) करम्भ जारठ्य के निम्न कारण बतलाये गये हैं

१–वृद्धावस्था

२–पुरुषों मे स्त्रियों की अपेक्षा अनुपातत अधिक होना

३–उच्च रक्तभार ४–वंशज

५–मेदो रोग ६–अधिक खाने वाले

इसमे रक्त परीक्षा करने पर रक्तगत स्नेह (Blood Lipids) की मात्रा सामान्य से अधिक पाई जाती है। सामान्य रक्त स्नेह मात्रा १५०-२५० मि ग्रा. प्रतिशत।

(ब) परिणाहीय रोहिणी जारठ्य—कारण मुख्यतः निम्न हैं—

१–मधुमेह (Diabetes Mellitus)

२–स्नेहीय विह्रास (Fatty Degeneration)

इसमे धमनी के अन्दर चूर्णातु (Calcium) जमा होने लगता है। प्रथम अर्थात् करम्भ जारठ्य में शरीर की बडी बड़ी धमनियां प्रभावित होती हैं जबकि दूसरी अर्थात् परिणाहीय रोहिणी जारठ्य मे छोटी-छोटी धमनियां यथा प्लीहा, वृक्क, अग्न्याशय आदि की धमनियां भी प्रभावित होने लगती हैं। जिससे रक्त द्वारा पोषण अल्प होने से वहा की मांसपेशियां निर्जीव होने लगती हैं। कभी-२ आभ्यन्तर स्तर (अन्तः कला) (Intima) में

शोथ होने से र्म. धमनी का अन्तः श्लेष्मफल कम होने लगता है यथा-सारभूत उच्च रक्तचाप (Essential Hypertension)।

लक्षण—

१—लक्षण अचानक शुरु हो जाते हैं।

२—स्वल्प रक्ताल्पता।

३—समय से पूर्व वृद्धावस्था का अनुभव होना।

४—रक्तचाप बढा होना।

५—हृदय का बढा होना।

एव स्थानिक लक्षण यथा मस्तिष्क जन्य, नाडी जन्य, हृदय सस्थान, पाचन सस्थान सम्बन्धित पाये जाते हैं।

परीक्षा—नाडी परीक्षा—स्पर्श करने पर कोई रज्जु सदृश प्रतीत होती है।

२ इसका निदान—क्ष-रश्मि (स्क्रीनिंग) द्वारा किया जाता है।

उच्च रक्त निपीड

पर्याय—उच्च रक्तचाप, उच्च रक्तभार।

परिभाषा पहले ही वर्णित की जा चुकी है। रक्तभार दो प्रकार का होता है—

१. हृत्कुञ्चन(Systolic)-सामान्यत ११० से १४० मि०लि० पारद ऊँचाई।

२ हृत्स्फारी (Diastolic) ७० से ९० मि०लि० पारद ऊँचाई।

रक्तचाप के बढने का, आयुर्वेद की दृष्टि से कारण वायु दोष, (प्राण, उदान की वृद्धि)होना है तथा दूष्य रक्त धातु एव रक्तवाही स्रोत है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में कारण की दृष्टि से निम्न प्रकार बतलाये हैं—

१. सारभूत उच्च रक्तचाप [Essential H T] कारण अनिश्चित।

२. वृक्कीय [Renal] तीव्र एव जीर्ण वृक्क शोथ, अश्मरी आदि।

३ अन्त. स्रावीय [Endocrinal] पीयूष ग्रन्थि अर्बुद, श्लेष्मस्फाय [Myxoedema] आदि।

४ विषज [Toxic] गर्भिणी जन्यविष, सीसा आदि। प्रथम दो प्रकार सामान्यत पाये जाते हैं।

धमनी दार्ढ्य एव उच्च रक्तचाप मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह देखा गया है कि प्राय धमनी दार्ढ्य प्रारम्भ होने पर उच्च रक्तचाप होने पर धमनी दार्ढ्य की प्रवृत्ति पाई जाती है।

लक्षण—

१ केवल रक्तभार का बढा होना और सभी लक्षण अनुपस्थित। २ शिर.शूल ३ श्वास कृच्छ्र ४ हृदयशूल, उरःशूल ५. धडकन ६. चक्कर आना ७ अनानिद्रा ८. स्मृति भ्रश ९ मूत्र का बार-बार या शोभूजिन[Protein] युक्त आना।

परीक्षा—रक्तभारमापक यन्त्र द्वारा की जाती है।

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे धमनी दार्ढ्य के लिए एवं उसके कारण वृद्धावस्था हेतु कोई विशेष चिकित्सा वर्णित नही है। केवल उच्च रक्त निपीड की अस्थाई चिकित्सा हेतु—विश्राम, निद्रालु एव मन्द विरेचनीय औषधिया या सर्पगन्धा एव उसके क्षारीय तत्व स निर्मित अन्य औषधिया, प्रगण्ड समावरोधी [Ganglion Blocking drugs]। यथा—गुनेथीडीन, मिथाइल डोपा आदि का वर्णन किया गया हे।

सुश्रुत सहिता मे चिकित्सा सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है—'सक्षेपत क्रियायोगो निदान परिवर्जनम्' (सु) अर्थात् निदान परिवर्जन ही चिकित्सा है। आचार्य चरक ने 'प्रकृतिर्धातुसाम्यार्था' तथा साम्य प्रकृतिरुच्यते' अर्थात् धातुओ की समावस्था लाने की प्रक्रिया अथवा धातुओ (दोषो) को समावस्था मे लाना चिकित्सा कहा जाता है। इसमे सुश्रुतोक्त चिकित्सा सिद्धान्त अधिक युक्तियुक्त है। सुश्रुतोक्त सिद्धान्तानुसार ऐसी विधि जो धमनी जठरता का कारण विशेषत. जरावस्था अथवा वृद्ध रक्तगत स्नेह आदि को कम करे उपयुक्त चिकित्सा क्रम है।

रसायन—रसायन की परिभाषा मे शार्ङ्गधर मे कहा गया है—

रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् [शार्ङ्गधर]

अर्थात् जरा एव व्याधि को दूर करने वाली विधि रसायन है। रसायन के उचित प्रभाव हेतु स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति आदि पचकर्म करना हितकर होता है।



तदोपरान्त रसायन औषधियो का प्रयोग करें। स्वेदन, वमन-विरेचन आदि से शरीर का शोधन होता है जिसके फलस्वरूप वृद्ध दोषो (रक्तवात स्नेह आदि) का शमन होता है, शरीर मे मृदुता आती है तदोपरान्त रसायन से आयु एव बल बढता है।

रसायनौषधिया—च्यवनप्राश अवलेह, आमलकी रसायन, हरीतकी रसायन, ब्राह्मी रसायन आदि। शरीर के वृद्ध रक्तगत स्नेह (Hyperlipidemia) हेतु आरोग्यवर्धनी वटी ४ रत्ती, सह मजिष्ठादि क्वाथ के साथ दिन मे दो या तीन बार देने से शीघ्र लाभ होता है। इस औषधि पर शोध कार्य राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, लखनऊ मे किया गया।

उच्च रक्तचाप हेतु निम्न औषधियो को प्रभावकारी बतलाया है—

१ सर्पगन्धा २ शखपुष्पी ३ वामा ४ जटामासी ५ भृंगराज ६ छागली बूटी।

सर्पगन्धा का प्रभाव तो सन्देह रहित है

छागली बूटी जो नेपाली द्रव्य है, आयुर्वेद निघण्टु में वर्णित नही है। प्रयोगात्मक शोध कार्य के केन्द्रीय औषध शोध संस्थान, लखनऊ मे किया गया तथा अत्यन्त प्रभावकारी पाया गया। इसका प्रारम्भिक अध्ययन राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय एव अस्पताल, लखनऊ मे दोनों लेखको द्वारा किया गया तथा चिकित्सकीय अध्ययन मे भी सन्तोषजनक परिणाम मिले। मात्रा—१-२ रत्ती दिन मे ३ बार पानी से। विस्तारपूर्वक अध्ययन चल रहा है, परिणाम प्राप्त होने पर ही इस विषय में कुछ कहा जा सकता है।

साराश—धमनी काठिन्य एव उच्च रक्तचाप का वर्णन प्रस्तुत पत्र मे किया गया है जिसमे उनके कारण, लक्षण एव चिकित्सा का वर्णन किया गया है। धमनी दाढ्य एव उच्च रक्तचाप मे विशेष सम्बन्ध पाया गया है अर्थात् एक के बढ़ने पर दूसरा स्वत ही बढ जाता है। दोनो की चिकित्सा हेतु आयुर्वेद चिकित्सा सिद्धान्त पर आधारित चिकित्सा का वर्णन भी किया है।

उच्च रक्तचाप कारण एवं निवारण

श्री पुण्य नाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य.

अति रक्तचाप की उग्रता के प्रभावानुसार दो संज्ञा दी गयी हैं—१. सुदम अतिरक्तचाप (Benign hypertension) २ दुर्दम अतिरक्तचाप (Malignant hypertension).

सुदम अतिरक्तचाप—धीरे-धीरे वृद्धि होती और अधिक नहीं बढती। सम्भवत एक ऊचाई पर जाकर रुक जाता है। जैसे प्रकुञ्चन दाब (Systolic Pressure) १८० तक ही बढा और ११० तक अनुशिथिलन दाव (Diastolic Pressure) तक स्थिर रहता और उसी के बीच रत करता है।

दुर्दम अतिरक्तचाप—तेजी से बढने वाले अतिरक्तचाप को कहते हैं। यह प्रगट होने से कुछ ही समय पश्चात् २५० प्रकुञ्चन दाव (Systolic Pressure) और १६० अनुशिथिलन दाव (Diastolic Pressure) तक उतर जाय तो कभी भी हृदय धमनी, वृक्क (गुर्दा) तथा मस्तिष्क की धमनियो को अपनी दुर्घटनाओं का लक्ष्य बनाता है।

धमनियो का सकीर्णन क्रिया के द्वारा परिसरीय अवरोध होकर अतिरक्तदाव का दौरा आरम्भ हो जाता है। इसी सकीर्णतावस नसे तन जाती और रक्त के धक्के तेज होकर दिल और दिमाग को उत्तेजित कर देता ऐसा जान पडता है।

मनोवैज्ञानिको का कहना है कि मानसिक आवेग की अस्वाभाविकता बराबर बने रहने से रक्तचाप की मात्रा बढना आरम्भ हो जाती है। विशेष रूप से शहरी इलाके मे निवास करने वालो मे से कितने ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको मानसिक तनाव बने रहते हैं, किन्तु देहातो की अपेक्षा बड़े शहरो मे अतिरक्तचाप की शिकायत अधिक लोगो मे देखी जाती है। क्योकि बाहरी और आन्तरिक बैचेनी से सुषुम्ना गुहा की अनुशयी तन्त्रिकाओ की सवेदना मस्तिष्क की धमनियो को आक्रान्त कर उसके सक्रमणो से रक्तचाप की वृद्धि स्वाभाविक हो जाती है।

वृद्धावस्था के मस्तिष्क मे बहुतसी ऐसी शाखा धमनिकाये (शिरायें) बन्द हो जाती है, अतएव स्थानिक अरक्तता उत्पन्न होने के कारण वृद्धावस्था प्रयुक्त रक्त चाप बढ जाता है।

हार्मोनो की अस्वाभाविकता—हार्मोनो के अधिकाश विक्षोभो से रक्त एव कोशिका वाह्य द्रव की मात्रा बढ जाने के साथ ही हृदय का निर्गम भी बढ जाता है। इस आधार पर हार्मोनो का प्रच्छन्न असन्तुलन अतिरक्त दाव का कारण बनता है।

अतिरक्तचाप चाहे तन्त्रिकाजन्य हो, वृक्क विकार जन्य हो या हार्मोनो के असन्तुलनजन्य हो उससे पीडित सभी पीडितो मे लक्षण एक समान होते हैं। यह रोग शारीरिक तन्तुओ के चयापचय के अप्रत्यक्ष विकार से प्रगट होकर रक्तवाहिकाओ की प्रतिक्रिया मे वृद्धि से होता है ऐसा जान पडता है।

रक्त परिवहन का स्वाभाविक परिणाम की चार्ट—इस प्रकार दी जाती है। इससे बढते हुए को वृद्धि कहेगे और घटते हुए परिणाम को न्यून रक्तचाप—

आयु	प्रकुञ्चन दाव	अनुशिथिलन दाव	नाडी की गति
२०	११८	७८	४०
२५	१२०	८०	४०
३०	१२२	८२	४०
३५	१२५	८४	४१
४०	१२७	८६	४१
४५	१३०	८८	४२
५०	१३३	९०	४३
५५	१३८	९२	४६
६०	१४३	९४	४९
६५	१४८	९६	५२



स्वाभाविक तौर पर भी वृद्धावस्था मे रक्तप्रवाह का दौड दोनो (प्रकुञ्चन और अनुशिथिलन) दाब क्रमिक बढती ही जाता है । किन्तु अधिकतर ४० वर्ष की आयु से ही रक्तचाप की अधिकता का उद्भव होता देखा जाता है ।

लक्षण

१. इस रोग मे सिर दर्द होता है, प्रात काल उठने के पश्चात् सिर के पिछले हिस्से मे पीडा होती है । और गरदन मे अकडन होती है । कभी ऐसा होता है कि सोते हुए रोगी को जगाने पर वमन कर देता और वमन करने के बाद रोगी का शिर दर्द समाप्त हो जाता है ।

२. सिर चकराना (Giddiness)—बार-बार शिर मे चक्कर आना, खडे रहने मे इधर-उधर धक्के लगने जैसा बोध होना, शारीरिक सन्तुलन मे कमी बोध होना यद्यपि शिर के चक्कर से भी मानसिक असन्तुलन हो सकता है ।

३. व्यक्तित्व मे परिवर्तन—उग्र रक्तचाप सम्भवत. रक्तवाहिनियो मे परिवर्तन होने से होता है, जैसे क्रोध होना, होठ सूखना, घबडाकर बोलना, छोटी सी समस्या को बहुत बड़ी समझना, विभ्रान्त रहना, तथा शिर मे चक्कर खाकर लेट जाना । ऐसे रोगी मे अस्पष्ट प्रकार की चिन्ता और भय का बोध होता देखा जाता है ।

४. आक्षेप (एक प्रकार के वात जनित दौडा)—रक्त वाहिकाओ मे अत्यधिक परिवर्तन होने से आक्षेपो के दौड़े आना आरम्भ हो जाता है, जैसे अपस्मार [मृगी] के दौड़े या मस्तिष्क आघातजन्य विभ्रान्ति अथवा अचेतन की अवस्था के समान लक्षण प्रगट होता है ।

इस प्रकार के अतिरक्तचाप से मस्तिष्क की धमनिया बहुत जोर से संकुचित हो जाती हैं, और ऐसे लक्षण वाल रोगी को मस्तिष्क विकृति से उत्पन्न अति रक्तचाप कहते ह ।

५ धमनियो मे रक्त प्रवाह अधिक बढ जाने से शरीर के किसी भी अवयव की धमनियाँ फट सकती हैं और रक्तस्राव हो सकता है ।

६. रक्तचाप की उग्र अवस्था मे हृदय मे शूल होने लगता है । यह हृदयशूल आरम्भिक हृदय धमनी (Coronary artery) के सकीर्ण होने से शूल का दौरा पडने लगता है । तब ज्यो-ज्यो प्रेशर कम होता जाता है शूल भी कम हो जाता है ।

७. अतिरक्तचाप की बीमारी मे अनेक लक्षण भिन्नता दिखाई देती है, जैसे हृदय का भार रक्तचाप की अधिकता से स्वत. बढ जाता है । हृदय का सामान्य भार २५० ग्राम से ३०० ग्राम होता है, किन्तु जब रक्तचाप बढ़कर २०० पर पहुच जाता है तो सामान्य हृदय का भार बढ़कर ५०० से ६०० हो जाता है ।

इस अवस्था प्रयुक्त रोगी को दम घुटने लगता है, तथा फुफ्फुसीय शोथजन्य श्वास लेने मे कठिनता बोध होता है । इस रोग मे यकृत्शोथ भी होते देखा गया है । यह रोग हृदगति को कभी किसी समय रोक कर प्राणाघात कर सकता है ।

चिकित्सा

रोगी यदि सबल और स्वस्थ है तो इस अवस्था मे अति रक्तदाबी मनुष्य को सुबह-सूर्योदय के पहले दो मील हल्के पाव चलना, त्रिफला के पानी से सिर धोना और पीना या त्रिफला १/२ तोला ठण्डा पानी से नित्य सुबह खाना, ठण्डे जल से स्नान या बहते नदियो मे उसके वेग से टकराना । प्राणायाम करना, स्वच्छ विचार तथा साप्ताहिक उपवास, सूर्य नमस्कार करना श्रेयस्कर होगा । पीली सरसो का शुद्ध तेल या वृ० विष्णु तेल, महाचन्दनादि तेल, जात्यादि तेल से शारीरिक नसो को दुहने वाली मालिस करवाना, रात्रि मे पूर्ण विश्राम दिन मे क्रोधरहित काम करना चाहिये । कच्चे फल सेब, अनन्नास, नासपाती बेदाना तथा छुहारे और खजूर का सेवन ठीक रहता है । किन्तु जिसे मधुमेह की शिकायत है उसे शर्करायुक्त मीठे फल मना है । कागजी नीबू का निचोड़ा जल पानी मे व्यवहार करना तथा उससे बने नीबू का अचार भी खाया जा सकता है बशर्ते उसमे नमक न होना ठीक रहेगा ।

हरी सब्जिया बिना गरम मसाला (केवल जीरा धनिया हल्दी को छोड) की खानी चाहिये, लशुन-अदरक एव नीबू के मिश्रण से बनी चटनी खाने से पाचनक्रिया और मूत्र प्रणाली की विकृति कभी नही होगी । ब्लडप्रेशर

कम रहेगा। हो सके तो एक जावे का लशुन दूध के साथ रोज निगलना चाहिये।

मूग की खिचड़ी, पुराने चावल का भात और गेहु की रोटी सादा भोजन के रूप में बिना घी और डालडे का भोजन हितकर होगा।

आधे पेट एक दफे मे खाना ठीक रहेगा, भले ही चार बार खाइये लेकिन इतना मत खाइये कि आत विशेष तन जाय और गैस्टिक बढकर प्रेशर को बढादे और बदहजमी पैदा करे। भोजन मे हल्के हीग, कच्चा प्याज, कच्ची गाजर और खीरे तथा टमाटर का सलाद बिना नमक का अच्छा रहेगा। नमक कम या न खाना ठीक रहेगा।

रोज रोगी हर्रे जो गोमूत्र मे भिगोये गये हो, गाय के घी मे भंजित कर रख लीजिए और दो-दो सुबह शाम लेते रहिये, दस्त साफ होगा, यकृत ठीक रहेगा।

रक्तदाब को कम करना है तो शरीरगत सोडियम की मात्रा कम करने के लिए नमक तो पूर्णतया छोड़ देना चाहिये और दूध, फल, शाक, मास और अडा मे भी सोडियम की मात्रा पायी जाती है। इसलिये इसे भी व्यवहार न किया जाय।

१. गार्डेनल—तीन से साठ मिग्रा० रोज दो से ३ बार दें। २ मीप्रोबामेट, २०० से ४०० मिलीग्राम की टिकिया रोज २ से ३ बार। ३ मिल्काउन ४ ईक्वैनिल, ५. मिप्रिण्डान, ६ पेनिडियील ये सभी मीप्रोवामेट से ही बना है।

दूसरे हैं—क्लोरडियाजी प्राक्साइड, इसकी १० मिग्रा. की गोली, यही आजकल लिब्रियम या ईक्वीब्रोम के नाम से मिलती हैं। १ टिकिया रोज के तीन भागो मे दे।

अतिरक्त चाप वाले को जिनकी शरीर मासल है—उपवास एव अल्पाहार करना चाहिए, भोजन पर नियन्त्रण रखते हुए ध्यान रखना चाहिये, कि अल्प भोजन होते हुए भी वह पदार्थ गरिष्ठाहार न हो।

वृक्कजनित विकार के कारण होने वाले वृक्कपातजन्य बहुमूत्र का इलाज क्लोरथैलिडोन, फ्रूसी माइड, ट्रायामिटरीन, इथाक्रीनिक एसिड की उचित अनुपात मे प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त औषधिया इस प्रकार है—

क. क्लोरोथियाजाइड (पेटेण्ट)

ख. हाइड्रोक्लोरोथियाजाइड (एसिड्रेक्स)

ग. पालोथियाजाइड—(पेटेण्ट नाम नेफ्रिन)

घ. वेण्ड्रोफ्लुआजाइड—(पेटेण्ट नाम नियोमेक्लोक्स)

ङ. हाइड्रोफ्लुमीथियाजाइड (पेटेण्ट नाम नेफ्लेक्स)

च. साइक्लोपेनथियाजाइड (पेटेण्टनाम नेविड्रेक्स)

अतिरिक्त चाप का कोई भी रोगी हो किन्तु जिनमे वृक्कपात की शिकायत है—आयुर्वेदिक इलाज मेरे अनुभव के साथ इस प्रकार हैं—

१. नागभस्म १ रत्ती, जामुन की गुठली चूर्ण ४ मासा सुबह-शाम गिलोय सत्व १ मासा १ मात्रा सुबह-शाम दो बार।

२ सर्पगन्धा मूलत्वक कल्क २ मासा, गोदुग्ध के साथ ४ औंस प्रात साय पीने से सत्वर लाभ।

३ अनन्तमूलत्वक कल्क २ मासा, सर्पगन्धा मूलत्वक कल्क २ मासा दूध के साथ ४ औंस प्रात साय पीने से सत्वर लाभ होता है।

४ लौहभस्म १ रत्ती, नागभस्म १ रत्ती, गिलोयसत्व १ माशा। १ मात्रा सुबह शाम गोदुग्ध से ले।

५. कदली पुष्प १/२ रत्ती, गिलोयसत्व १ माशा १ मात्रा—४ औंस दूध से देना चाहिये।

६. पाषाणभेद के २ पत्ते, सर्पगन्धा के मूलत्वक २ माशे १ मात्रा सुबह शाम ताजा जल के साथ सिल पर पीसकर ४ औंस मे मिलाकर पीना हितकर होगा।

अब लीजिए अतिरक्तदाव से सिर भारी, गर्दन मे दर्द और अनिद्रा की बीमारी—

क शिर शूलादि वज्ररस, स्वर्णमाक्षिक भस्म दो गोली २ रत्ती १ मात्रा मिलाकर सुबह शाम मधु से चाटकर ऊपर से ४ औंस धारोष्ण दूध लेना चाहिए।

ख. रसराज रस (सि यो स), लक्ष्मीविलास रस नारदीय १-१ गोली मधु के साथ दो बार दे।

ग. वेदनान्तक रस—र.वि १ गोली, गिलोयसत्व २ माशा, ब्राह्मीपत्र चूर्ण ४ मा०। प्रात. साय २ वार दूध से।

यदि अतिरक्तचाप के दौड़े के समय विशेष हृदय पर आघात हो और धड़कन के कारण विशेष बेचैनी मालूम हो तो ये निम्नलिखित योगो को अवश्य अपनाइये —

च. अकीकपिष्टी आ.प्र २ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ र.,



नागार्जुन रस १ गोली। १ मात्रा बनाकर सुबह शाम दो वार घृत कुमारी स्वरस १ औंस के साथ लें।

छ अर्जुन छाल स्वरस, सर्पगन्धा स्वरस, १-१ चम्मच, मिसरी १ तोला। १ मात्रा सेवन २ से ३ वार। ऊपर से १/२ पाव गोदुग्ध पीवें।

ज जहर मोहरा खताई पिष्टी (सि. यो. स.) १ र, रौप्य (चादी) भस्म (र र स) १ र०, पुखराज पिष्टी, (र. र सं) १/२ रत्ती। १ मात्रा मधु के साथ २ से ३ वार दे।

झ मोतीपिष्टी (सि. यो. स) १/२ रत्ती, अभ्रक-भस्म सहस्रपुटी (र रा सु) १/२ रत्ती, अर्जुनवृक्षत्वक चूर्ण ३ ग्राम मिला १ मात्रा मधु से ३ से ४ वार दे।

ञ मोती पिष्टी १ रत्ती, नागार्जुनाभ्र रस १ गोली, सर्पगन्धा मूलत्वक चूर्ण ४ आनाभर। १ खुराक बनाकर, मधु के साथ चाटकर दो वार और ऊपर से अर्जुनारिष्ट ४ चम्मच समान भाग जल से लें।

ये सभी प्रयोग सभी प्रकार के उच्च रक्तचाप मे प्रयोग कर लाभ उठाये जा सकते हैं।

जिस रक्तचाप के रोगी को निद्रा का अभाव होता है उसके लिये आनुभविक प्रयोग निम्नलिखित देखिये —

ट. मोती पिष्टी र र स, १ रत्ती, सर्पगन्धा चूर्ण योग [सि यो स.] १ माशा, गिलोयसत्व १ माशा। १ मात्रा तीन वार दिन मे मधु के साथ दें।

ठ. सर्पगन्धा घनवटी २ गोली प्रतिदिन रात में १ वार १ पाव नमशीतोष्ण दूध के साथ लें। नींद अच्छी आयेगी और पोषक तत्व के द्वारा दिमाग पर ताजगी बनी रहेगी, और प्रेशर की अधिकता का शमन होगा।

ड प्रवालपिष्टी १ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, सर्पगन्धा चूर्ण १ माशा। मिलाकर १ मात्रा की खुराक दिन मे ३ वार १/२ पाव मिश्री मिला दूध के साथ दें।

ढ सर्पगन्धा घनवटी १ गोली, मोती पिष्टी १ रत्ती, गिलोयसत्व १ माशा। १ मात्रा दिन मे दो से तीन वार ४ चम्मच अश्वगन्धारिष्ट के साथ दें।

अतिरक्तचाप की बीमारी मे सर्पगन्धा सर्वोपरि औषध मानी गयी है जिसे आयुर्वेद के आयुर्वैज्ञानिक ही नही एलोपैथिक वैज्ञानिक भी इसका ब्लडप्रेशर की अधिकता मे व्यवहार करते हैं—

जैसे—रीसर्पीन टेबलेट—जिसकी मात्रा १२५ मिग्रा० है १-१ टिकिया प्रयोग मे लाई जाती है। सर्पीना टेबलेट १२५ मिग्रा० की टिकिया दिन मे तीन वार या चार वार जल के साथ दिया जाता है।

पुन सर्पगन्धा चूर्ण (Raudixin) ५० मिलीग्राम को मूत्रल औषधि पोटेसियम क्लोराइड की एक से तीन टिकिया प्रतिदिन देनी चाहिए।

उच्च रक्तदाब

एवं



आयुर्वेद बृहस्पति आचार्य प० शिवकुमार वैद्य शास्त्री, श्री शिव चिकित्सालय, रावतपाडा, आगरा।



लक्षण

उच्च रक्तचाप रोगी को तीव्र शिरोवेदना हो जाती है अर्थात्—(१) ऐसा प्रतीत होता है जैसे शिर फटा जाता हो (२) नेत्र रक्त वर्ण हो जाते हैं (३) माथे मे खिचाव, नेत्रो मे भारीपन, गरमी नशा सा, तनाव सा प्रतीत होता है। (४) चेहरा तमतमाया हुआ सा लगता है एव शिर की नशो मे फडकना स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है (५) तृषा एव खुश्की अधिक होती है (६) अनिद्रा होती है अर्थात् निद्रा नष्ट हो जाती है (७) भ्रम [चक्कर] अधिक रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है शिर एवं शरीर घूम रहे हैं (८) स्मरण शक्ति न्यून हो जाती है (९) श्वास कष्ट (श्वास कृच्छ्रता) हो जाती है (१०) मूत्र त्याग की बार बार इच्छा होती है (११) अंग घात अर्थात् शरीर के किसी भी अंग मे पक्षाघात रोग हो जाता है (१२) सन्यास (मूर्च्छित) होकर रोगी घटो अचेत पड़ा रहता है (१३) रोगी को उदर शूल, कटि शूल, नासिका से रक्त स्राव होना, मस्तिष्क मे एव चित्त मे विभ्रमता, अशान्ति, वमनेच्छा तथा आक्षेप अर्थात् रोगी को झटके से लगते हैं।

विशेष—किसी भी रोग के समस्त लक्षण किसी भी रोग के रोगी मे नहीं हुआ करते हैं। अत उपरिलिखित लक्षणो मे से भी किसी रोगी में कम और किसी मे अधिक लक्षण होते हैं। इस प्रकार से ही प्रारम्भ में कम एव रोग बढ़ जाने पर अधिक लक्षण मिलते हैं।

असाध्यता के लक्षण—उपद्रवयुक्त शक्तिहीन एव जिस रोगी में अधिक लक्षण विद्यमान हैं। अथवा हृदय, मस्तिष्क, पक्षाघात, नासिका एवं नेत्रो से रक्त स्राव होना प्रारम्भ हो गया हो ऐसा रोगी प्राय असाध्य होता है।

चिकित्सा

सर्व प्रथम धन्वन्तरि के पाठको का ध्यान एक ऐसी अद्भुत गुणकारी बूटी की ओर दिलाना आवश्यक प्रतीत होता है जो हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने वाली है और यह दिव्य बूटी जिसका सस्कृत एव आयुर्वेद नाम चक्रवर्तिनी, तपस्विनी एवं जटिला आदि है तथा नागरी में जटामांसी एव बालछड नाम से सम्बोधन की जाने वाली है। शास्त्र में आयुर्वेद जटामांसी के गुण कर्म एवं प्रभाव का निम्न प्रकार से वर्णन मिलता है—

जटामांसी के गुण--कड़वी, कषैली, मेधाजनक, कान्तिकारक, पौष्टिक, रुचिवर्धक, त्रिदोषनाशक, रक्त विकार, अग्नि दाह, विसर्प, चर्म रोग, कण्ठ रोगो को नष्ट करने वाली तथा अर्बुद रोग को नष्ट करने वाली होती है। इसके अतिरिक्त सुगन्धिदाता एव सौन्दर्यवर्धक भी है।

यूनानी मतानुसार-मूत्र निस्सारक, उत्तेजक, पौष्टिक, ऋतुस्राव को नियमित करने वाली, पेट के अफरे को दूर करने वाली, अग्निवर्धक, आतों की सूजन, मूत्राशय के विकार एवं कटि सम्बन्धी रोगो को नष्ट करने वाली, नेत्रो की ज्योति को बढ़ाने वाली, केशो को काला करने वाली, उरो रोगों को नष्ट करने वाली, कास, जीर्ण, प्रमेह करने वाली शरीर के आन्तरिक एव बाह्य क्षतो को सुखाने वाली एवं शरीर को निर्विष करने वाली एव आक्षेप निवारण करने वाली बतलाई गई है।

आधुनिक विश्लेषण—इसमें वेलरिन (Veleıean) नामक औषधो के सब गुण विद्यमान होते हैं। यह आक्षेप निवारक उदर शूल हर है तथा अपस्मार, वात गुल्म, हृदय की धडकन, एव स्नायु मडल के रोगो में अत्यन्त गुणकारी होती है। श्रीमान वामन गणेश देसाई के मत में यह



अग्नि वर्धक, पाचन क्रिया नियमित रखने वाली, विवन्ध निवारक, डकार लाने वाली, पसीना, पेशाव लाने वाली तथा नाडी की गति को नियमित करने वाली होती है। मस्तिष्क के मज्जातन्तुओ पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। अधिक परिश्रम के द्वारा उत्पन्न हुई थकावट को दूर करने वाली किसी भी प्रकार की मानसिक आघात, चित्त विभ्रम आदि को दूर करने में हींग, कस्तूरी आदि की अपेक्षा जटामासी का प्रभाव शीघ्र एव सुनिश्चित होता है। रक्ताभिसरण की क्रिया के दोष में यह अव्यर्थ औषध है। चाहे उच्च रक्तचाप के कारण मस्तिष्क की नसों में तनाव रहता हो एव पागलपन के से लक्षण हो अथवा निम्न रक्त चाप (Low blood pressure) के कारण भ्रम मूर्च्छा, नेत्रो के सम्मुख अन्धकार आना आदि लक्षण हो। दोनों अवस्थाओ में जटामासी का गुण निर्विवाद होता है। इसका प्रयोग उच्च रक्त चाप [High blood pressure or low blood pressure] दोनो अवस्थाओ में नाडी को सुव्यस्थित एव नियमित करता है। हृदय की धडकन, हृदय की शिथिलता के कारण पेट में वायु के संचय होने पर, रक्त वाहनियो के ऊपर, हृदय के ऊपर, मज्जतन्तुओ तथा रक्ताभिसरण के केन्द्र के स्थान पर अत्यधिक प्रभावी गुण होता है। जटामांसी बूटी हृदय चेतना स्थान से सम्बन्धित सर्व रोगो पर विजय प्राप्त कर तीनो दोषो को साम्यावस्था में रखने में भी सदैव समर्थ रहती है।

जटामासी की प्रयोग-विधि एव मात्रा—इसका वस्त्रपूत चूर्ण १ माशे से १॥ माशे की मात्रा में दिन में ३ बार मधु में मिलाकर चटावे अथवा १० तो० जटामांसी को जल से अच्छे प्रकार से धोकर एक सेर जल में रात्रि को भिगो प्रातःकाल मन्दाग्नि से औटा चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र में छान २० तो० देशी खांड की तगार मिलाकर दो तार की चाशनी बनाकर शरवत तैयार कर १-१ तो० शरवत दिन में ३ बार अकेला ही सेवन करावें अथवा नीचे लिखें प्रयोगो के साथ अनुपान रूप से सेवन करावें। यदि उपर्युक्त जटामांसी शरबत के साथ २-२ गोली वृ० ब्राह्मी वटी मिलाकर सेवन कराई जाती है तब उपद्रवयुक्त ब्लड प्रेशर अवश्य शान्त हो जाता है—

जटामांसी वस्त्रपूत १० रत्ती, दालचीनी २ रत्ती, यह एक मात्रा है। इतनी-इतनीमात्रा में ३ बार जटामांसी शरवत मे सेवन करावें। इसके प्रयोग कराने से अनेकानेक रोगों का शमन होता है। अब यहां अन्य सुविधा से प्रयोग किये जाने वाले २-४ छोटे-छोटे प्रयोगो को लिख कर लेख समाप्त किया जा रहा है। उच्च रक्त दाब रोग मे सर्पगन्धा एकमात्र दुर्लभ औषध है किन्तु यदि सर्पगन्धा चूर्ण के साथ प्रवाल पिष्टी सगयशव पिष्टी, जवाहर मोहरा पिष्टी के मिश्रण के साथ जटामांसी शरवत भी प्रयोग कराया जाता है तो अधिक गुण प्राप्त किया जाता है।

जटामांसी गुण—

जटामासी कषाया च मेध्या कान्ति बलप्रदा।
स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्त्रदाहवीसर्प कुष्ठनुत्॥
(वृ० नि० रत्नाकर)

आशा है पाठकगण आयुर्वेदीय सिद्धान्त से उच्च रक्त चाप (High blood pressure] रोग का निदान करके इस दिव्य बूटी के प्रयोग द्वारा उक्त रोग से ग्रसित रोगियो को अधिकाधिक लाभ पहुंचा आयुर्वेद का गौरव बढ़ावेंगे तथा स्वयं भी यश अर्जित करेंगे।

विशेष—आहार, विहार का पालन भी आयुर्वेद शास्त्र वर्णित कराना ही अधिक लाभप्रद होता है।

आयुर्वेद बृहस्पति आचार्य प० शिवकुमार वैद्य शास्त्री
श्री शिव चिकित्सालय, रावत पाड़ा, आगरा।

रक्तचापन्यूनता

डा. गजेन्द्र सिंह धौंकर, ए, एम बी. एस.

इसके कारण रोगी मे आलस्य का आना स्वाभाविक होता है। उसे किसी भी काम मे अनुत्साह रहता है, शरीर का दुर्बल होना और शक्ति का घटते जाना, मस्तिष्क अवसाद, या बातें भूल जाना, विस्मृति, रोगी अभी बातें करता जाता है और भूल जाता है कि उसने क्या कहा या क्या कहना है। इसके साथ ही मस्तिष्क थोडी मेहनत से भी चिडचिडा होउठता है तथा शिर दर्द बना रहता है। क्षुद्र धमनियो का आक्षेपिक आकुंचन होने से जो लक्षण प्रकट होते हैं। वे लक्षण उठने बैठने तथा लेटे रहने पर अगो मे शून्यता आ जाना, झुनझुनी उठना इत्यादि।

जो व्यक्ति अल्प रक्तदाव से पीडित मिलते है उनमे और भी लक्षण प्रमुख हैं—

(१) शरीर का कृश होना—इस विषय मे सुश्रुत ने जो वर्णन दिया है वह भी रक्तचापन्यूनताकारक परिस्थितियों की ओर सकेत करता है। वातकारक खाद्यपेय पदार्थों का सेवन, बहुत अधिक परिश्रम करने से शरीर को पसीना अधिक आता है जिसमे सोडियम आयन शरीर मे घट जाते हैं और अल्प रक्तदाव बन जाता है। अधिक मैथुन, अध्ययन या चिन्तन, भय शोक, ध्यान की अधिकता उन मनो वेगो की ओर सकेत करते हैं जो रक्त दाव को घटाते हैं। रात्रि जागरण, प्यास, भूख, कषैले पदार्थों का सेवन, थोड़ा भोजन करना इन सबसे रस धातु सूखने लगती है और घटी हुई मात्रा मे उसका संचारण शरीर मे होता है। जिससे शरीर की क्षीण हुई धातुओ की आपूर्ति थोडी थोडी होती है। जिससे व्यक्ति कृश हो जाता है। चरकाचार्य ने भी वातकारक खाद्य पदार्थों के विषय मे लिखा है कि शोक, उपवास, व्यायाम, रूखे सूखे अल्प भोजन करने से वायु हृदय मे प्रवेश करके शरीर को कृश करता है।

(२) मास क्षय—सुश्रुत ने मास क्षय के साथ एक शब्द धमनी शैथिल्य दिया है। यह धमनी शैथिल्य प्राचीन काल मे किस उपाय से जाना जाता था इसका ज्ञान नही था। मास क्षय मे धमनी शैथिल्य शब्द का प्रयोग अल्प रक्त दाव के लिए ही प्रयुक्त हुआ समझा जाता है।

(३) भ्रम—इसे ही चक्कर से सकेत करते है।

(४) मूर्च्छा—इसमे रक्तजा मूर्च्छा अन्य छ: प्रकार की मूर्च्छाओ मे से है। तो रक्तजा मूर्च्छा तो शुद्ध अल्प रक्तदाव जन्य ही होती है।

(५) मानसिक अवसाद—अल्प रक्त दाव या धमनी शैथिल्य के कारण रोगी के मस्तिष्क मे पर्याप्त मात्रा मे रक्त की आपूर्ति नही होती जिसके कारण उन की क्रिया शक्ति घट जाती है। जिसके फलस्वरूप मानसिक अवसाद बनता है। वास्तव मे मन की ३ अवस्थायें इस विषय मे ज्ञातव्य हैं। १—मानसिक अवसाद या क्लम पहली अवस्था २—तन्द्रा ३—निद्रा। अल्प रक्त दावी खोया खोया सा सोया सोया सा रहता है। इसका सम्बन्ध विशेषकर मन से रहता है।

(६) वातिक अस्थिरता—क्षीणता के कारण तथा मानसिक अवसाद होने से रोगी अस्थिर चित्त वाला होता है। सोचता कुछ है करता कुछ यह सत्य निर्णय है। तथा स्थिर निर्णय लेने मे भी ढीला रहता है। शीघ्र प्रक्षुब्ध हो जाता है। न अधिक शीत न अधिक गर्मी और न वर्षा और न अधिक कष्ट सहन कर सकता है।

चिकित्सा

१—अर्जुनत्वक चूर्ण ३ माशा, चीनी २ तोला, १/४ रत्ती शुद्ध कुचिला का योग भी अत्यन्त लाभकर है।

२—कूठ की मूल का उचित मात्रा मे पानक बनाकर सायकाल एव प्रात काल पीना बहुत ही लाभकर है।

३—सुखद मन स्थिति से पाचन शक्ति अच्छी होती है। और सुखद भावनायें शारीरिक तन्तुओ को पुष्ट बनाती है।

४—कूठ का शर्बत एक ग्लास प्रातः साय लाभ प्रद है।



५—शतावर का शर्बत भी बहुत ही लाभप्रद है। मृदु कोष्ट एव पित्त की मात्रा अधिक प्रवल न हो।

रोगियो पर परीक्षित मेरे अनुभूत योग

१ नाम रोगी—श्री गजेन्द्र सिंह निवासी अकरावृत तहसील खैर जिला अलीगढ (उ० प्र०) आयु ४१ वर्ष रोग—रक्तचाप का ह्रास—B P १००/७०

३-७-७३ प्रात—याकूती रस १/२ र०, मकरध्वज १/२ र०, चिन्तामणि १/२ र०, नवायस लोह १ र०, ताप्यादि लोह १ र०, अर्जुनत्वक चूर्ण २ माशा मिलाकर अनुपान शहद से प्रारम्भ किया।

भोजनोत्तर—अर्जुनारिष्ट १ तोला, रोहितकारिष्ट १/२ तोला, अश्वगन्धारिष्ट १/२ तोला, पानी १/२ छ० मिलाकर प्रयोग कराये।

सायकाल—स्मृति सागर रस १ र०, सूतशेखर रस (स्वर्ण युक्त) १/२ र०, मुक्ताभस्म १/२ र० मिलाकर अनुपान शहद से दिया। दिनाङ्क २०-७-७३ को श्री गजेन्द्र सिंह का B P ११०/७०। चिकित्सा पूर्ववत अग्रसर रही।

दिनाङ्क २८-७-७३ को श्री गजेन्द्र सिंह का B P ११०/७० चिकित्सा पूर्ववत रही। इसमे निम्न चिकित्सा पुन प्रारम्भ की 1 B. G. Phos, 2. Veritol Injection (I M) 3rd day 3 Herzolan Syrup (Cipila) 4 Calcinol with Iron of Vitamine Syrup ५. ओउम आयु रक्षक फार्मेसी सादाबाद (मथुरा) का निर्मित च्यवनप्राशावलेह के अनुपान से उपर्युक्त देशी आयुर्वेदिक औषधि दी। तो २०-८-७३ को श्री गजेन्द्र सिंह का B P १२०/८० हो गया।

२ रोगी का नाम—श्रीमती श्री दुर्गाप्रसाद जी कन्डक्टर निवासी ओझा पो० विसाना (अलीगढ) उ० प्र० आयु ३५ वर्ष, रोग—प्रसूति ज्वर मे ही मन्थर ज्वर या मोतीझला तथा औदरिक वात (उदर गेस) एव रक्तचाप की न्यूनता (B P ६५/५० दिनाङ्क ११-८-७४)

प्रात काल—याकूती रस १/२ र०, मकरध्वज स्पेशल १/२ र०, वृहद् वातचिन्तामणि रस १/२ र०, मुक्ता भस्म १/२ र०, संजीवनी १ ग्राम, कस्तूरी भैरव १/२ र०, अनुपान गर्म जल से।

भोजनोत्तर—दशमूलारिष्ट १ तोला अश्वगन्धारिष्ट १ तोला जल २ तोला मिलाकर दिया।

सायकाल—योगेन्द्र रस १/२ र०, प्रतापलंकेश्वर रस १ र०, मुक्ता भस्म १/२ र० तथा सूतशेखर (स्वर्ण युक्त) १/२ र० अनुपान च्यवनप्राशावलेह। साथ ही 1. Herzolan Syrup 2 Hapto globine Syrup 3. Ferilex Mael तथा Dex orange Syrup दिन मे तीन वार दिया गया। साथ ही १०-१० बूद Veritol Drop दिया गया और हर सप्ताह रक्तचाप की जाच की गई तो शनै- शनै रोगी स्वस्थ होता गया और उसकी हर स्थिति मे सुधार होता आया।

३ रोगी का नाम—श्री जगन्नाथ प्रसाद उपाध्याय लेखपाल नरै गाव मथुरा वर्तमान मे गऊघाट मथुरा मे रहते है। आयु ५४ वर्ष, रोग—वातशूल ज्वर, ज्वर, औदरिक वात (उदरगैस) तथा अल्प रक्तदाव जीर्ण प्रमेह एवं रक्ताल्पता। B P ९०/६५।

दिनाङ्क १०-३-७५ ई० प्रातः सायं—जयमंगल रस १/२ र०, याकूती रस १/२ र०, स्पेशल मकरध्वज १/२ र०, वसन्तकुसुमाकर १/२ र०, स्वर्णवंग १/२ र०, मुक्ता भस्म १/२ र०, सूतशेखर रस (स्वर्णयुक्त) १/२ र०, कान्तलोह भस्म १ र०, मण्डूर नवायस लोह १ र०, च्यवनप्राशावलेह (ओउम आयु रक्षक फार्मेसी सादाबाद मथुरा) के अनुपान से दी गई।

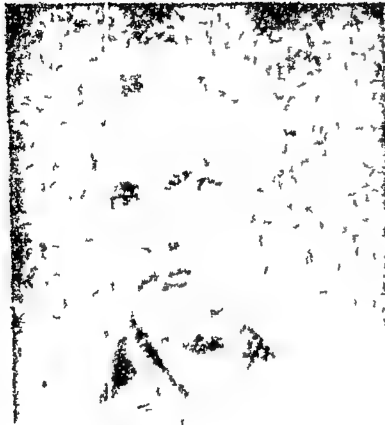
भोजनोत्तर—द्राक्षासव १/२ तोला, अश्वगन्धारिष्ट १/२ तोला, लोहासव १/२ तोला, कुमार्यासव १/२ तोला, अर्जुनारिष्ट १/२ तोला, साथ मे गोली गन्धक वटी तथा अग्निमुख चूर्ण भी दिया और अनुपान मे पानी दिया गया।

१९-३-७५ ई० का परीक्षण किया B P. १००/७० चिकित्सा पूर्ववत् रही इसमे Veritol Drop १० बूंद तथा Heptoglobine एव uni enzyme Syrup तथा B12 Complex Syrup और दिया गया। २४-३-७५ ई० को B P. १२०/८० हो गया और रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया और आज भी अपना कार्य पूर्ववत कर रहा है।

—श्री डा० गजेन्द्र सिंह छोकर ए०,एम० बी-एस०
अध्यक्ष—आयु रक्षक आयु० फार्मेसी,
सादाबाद (मथुरा), उ०प्र०।

वृद्धों का दुष्ट प्रतिश्याय

डा० श्री वीरेन्द्र सिंह, विभागाध्यक्ष-शालाक्य विभाग, आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, दिल्ली



डा० वीरेन्द्र सिंह तिब्बिया कालेज दिल्ली के सुयोग्य स्नातक एवं सौम्य स्वभाव के विद्वान चिकित्सक हैं। १९५७ के उस सन्धि काल में, जब मैं डी० आई० एम० एस० उत्तीर्ण कर तिब्बिया कालेज से जा रहा था और श्री सिंह बी० आई० एम० एस० के प्रथम बैच में प्रवेश लेकर आये थे, हुई एक बार की मुलाकात इतनी निकटता में परिवर्तित हो जायेगी—यह स्वप्न में भी ख्याल न था, जो हम दोनों अपनी मातृ संस्था में सेवा करने का अवसर मिलने से हुआ। डा० सिंह मित्रों के मित्र हैं और इसी लिए सदा घिरे ही रहते हैं, शायद ही कभी एकाकीपन होता हो। यही कामना है कि आप की यह वृत्ति सदैव इसी रूप में बनी रहे और हमेशा-हमेशा सदाबहार रहें।

डा० सिंह ने बहुत सरल शब्दों में वृद्धों के दुष्टप्र तिश्याय को सुन्दरता से चित्रित किया है और इस कष्ट साध्य अवस्था की निवृत्ति हेतु शास्त्र सम्मत पथ्यापथ्य एवं चिकित्सा सिद्धान्त दिए हैं—जो चिकित्सकों के लिए बहुत उपयोगी हैं।

—डा० शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

प्रतिश्याय का दुष्ट होना जहां अन्य आयु के रोगियों को कष्टदायक होता है वहां वृद्धों को भी, परन्तु वृद्धों के दुष्ट प्रतिश्याय का स्वरूप अन्यों की अपेक्षा भिन्न होता है। दुष्ट प्रतिश्याय को कोटरपाक (Sinusitis) की अवस्था जानना चाहिए। वाग्भट ने दुष्ट प्रतिश्याय का स्वरूप निम्न प्रकार प्रतिपादित किया है—

सर्व एव प्रतिश्याय दुष्टतां यान्त्युपेक्षिता।
यथोक्तोपद्रवाधिक्यातस सर्वेन्द्रियतापन॥
साग्निसादज्वर श्वासकासोर पार्श्ववेदन।
कुप्यत्यकस्माद्‌बहुशो मुखदौर्गन्ध्यशोफकृत्॥
नासिकाक्लेदसशोषशुद्धिरोधकरो मुहु।
पूयोपमासितारक्त ग्रथित ग्रथित श्लेष्मसस्रुति।
मूर्च्छन्ति चात्र कृमयो दीर्घस्निग्धसिताणवः॥

अर्थात्—सभी प्रकार के प्रतिश्यायों की यदि समय पर चिकित्सा न की जाए और उपेक्षित रहे तो दुष्ट प्रतिश्याय में बदल जाते हैं। जिससे उपद्रवों की अधिकता होकर सर्वशरीर को संतप्त करते हैं जिससे अग्निमान्द्य, ज्वर, श्वास, कास, उर वेदना एवं पार्श्वशूल आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह दुष्टि अकस्मात् ही उत्पन्न होती है तथा बार-बार रहती है। इसके कारण मुख में दुर्गन्ध तथा शोफ तक हो जाता है। इस अवस्था में नासिका में बार बार क्लेद होकर वह कभी बन्द हो जाती है और कभी खुल जाती है। नाक से पूयोपम (Pus like) काला, लाल, गांठ गठीला श्लेष्मस्राव होता रहता है। इसमें दीर्घ, श्वेत और सूक्ष्म कृमि तक उत्पन्न हो सकते हैं।

दुष्ट प्रतिश्याय का यह स्वरूप साधारण है, परन्तु वृद्धावस्था में अन्तर रहता है। वृद्धावस्था में श्लेष्मककला की अपुष्टि (Atrophy) हो जाती है और इससे स्राव के लिए मार्ग खुला रहता है और कफ के अवरुद्ध होने की गुञ्जाइस नहीं रहती। वैसे भी बालकों एवं नवयुवकों में जितना श्लेष्मा होता है—वृद्धावस्था में उतना कफ नहीं होता। नासाकला शुष्क रहती है और कोटर भी सूख जाते



और रक्त रहित हो जाते हैं। रक्तरहित या अल्प रक्तयुक्त होने के कारण वृद्धावस्था मे प्रक्षोभ भी अधिक नही होता। यदि उपसर्ग हो और कोई कोटर उपसर्गयुक्त हो जाए तो वर्षो तक चलता रहता है और स्राव होता रहता है। इससे गले और कर्णग्रसनीमार्ग में भी पाक हो जाता है। ग्रसनी की सवेदना भी वृद्धावस्था मे घट जाती है जिससे कुछ भी पदार्थ या नासा का स्राव फेंफड़ो मे भी पहुच सकता है और खासी उत्पन्न हो सकती है और उरुक्षत (Bronchiectasis) तक बन सकता है। वृद्धावस्थाजन्य दुष्ट प्रतिश्याय लम्बे समय तक कष्ट देता रहता है जिसका कारण वृद्धावस्था मे शरीर की प्रतिरोधक शक्ति का घट जाना और पोषक तत्व कम हो जाना है।

दुष्ट प्रतिश्याय को कष्ट साध्य कहा गया है—सुश्रुत सहिता मे लिखा है—

एव दुष्टप्रतिश्याय जानीयात् कृच्छ्रसाधनम्।

तो भी चिकित्सा सावधानीपूर्वक सिद्धान्तानुसार उपचार से लाभ पहुच सकता है। साधारणतया नूतन प्रतिश्याय को छोडकर शेष सब प्रतिश्यायो मे निम्न चिकित्सा सिद्धान्त सुश्रुत सहिता मे दिया है—

नवं प्रतिश्यायमपास्य सर्वमुपाचरेत् सर्पिष एव पानैः।
स्वेदैर्विचित्रैर्वमनैश्च युक्तैः कालोपपन्नैरवपीडनैश्च॥

अर्थात्—नए प्रतिश्याय को छोडकर शेष सब प्रतिश्यायो मे घी का पान, विभिन्न प्रकार के स्वेदन वमन और अवपीडन नस्य का प्रयोग लाभ करता है। घृत का पान इसलिए विशेष हितकारक है कि वृद्धावस्था मे वायु का कोप और दुष्ट प्रतिश्याय मे वायु की अधिकता रहती है। रोगी को हितकारी एव अहितकर का ध्यान निम्न प्रकार बता देना चाहिए—

निवातशय्यासन चेष्टनानि मूर्ध्नो गुरूष्णं च तथैव वासः।
तीक्ष्णाविरेकाः शिरस सधूमा रूक्षं यवान्नं विजया च सेव्या॥

अर्थात् रोगी वायु रहित घर मे बैठना, उठना, सोना, रहना करे, सिर को गरम और भारी वस्त्र से लपेटे रहे। तीक्ष्ण शिरो विरेचन देवे, धूम्रपान करे [औषधयुक्त रूक्ष यवान्न का प्रयोग करे और हरड का सेवन करे। तथा—

शीताम्बुयोषिच्छिशिरावगाह चिन्तातिरूक्षाशन वेगरोधान्।
शोकं च मद्यानि नवानि चैव विवर्जयेत् पीनसरोग जुष्टः॥

अर्थात्—शीतल पानी, स्त्रीसग, सिर के सहित स्नान, चिन्ता, अतिरूक्ष भोजन, उपस्थित [अधारणीय] वेगो को रोकना, शोक करना तथा नये बनाये मद्यों का पान रोगी को त्याग देना चाहिए।

भाव प्रकाश मे वर्णित 'निदिग्धिकादि' वृद्धावस्था जन्य कितने ही रोगो मे लाभ करता है और दुष्ट प्रतिश्याय मे विशेष उपयोगी है। व्योषादि वटी का प्रयोग तो कराया ही जाता है।

— पृष्ठ ३५६ का शेषांश —

चिकित्सा सूत्र

सशोधनीय चिकित्सा—(सबल रोगी के लिए)

स्नेहन—सैंधानमक व तिल तैल की वक्ष प्रदेश पर मालिश।

स्वेदन—स्निग्ध द्रव्यो द्वारा नाडी, प्रस्तर या सकर स्वेद-स्थानिक (वक्ष प्रदेश)

वमन—स्निग्ध द्रव्यो के साथ भात खिलाकर या सुअर माम रस या दही प्रधान भोजन देकर कफ वृद्धि करें बाद मे वमन करावें। वमन के लिए गरम जल मे सैंधानमक मिलाकर प्रयोग करें।

धूम्रपान—यव का चूर्ण घी में मिलाकर चिलम पर रख धूम पीवें।

शमनीय चिकित्सा—पाठाद्यासव-पाठा, मूर्वा, रास्ना सलई की लकड़ी, देवदारु आदि का आसव अनुपान सैंधा नमक मिलाकर।

सौवर्चलादि चूर्ण—सोचर नमक, सोंठ या भारङ्गी का चूर्ण समान भाग, चीनी २ भाग गरम पानी से मात्रा-५ ग्राम

क्षार प्रयोग—अश्वगन्धा, अपामार्ग, मूली, सर्जिका आदि क्षारो का जल अथवा मधु के साथ प्रयोग।

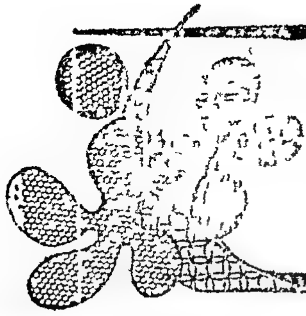
वासादि क्वाथ—अडूसा (वासा), हल्दी, धनिया, गिलोय भारङ्गी, पीपल, सोठ व रिंगणी का क्वाथ बना कालीमिरच का चूर्ण मिलाकर पान।

वासा कण्टकारी क्वाथ—वासा पत्र ५ ग्राम व कण्टकारी पञ्चाग २० ग्राम लेकर क्वाथ बना पीयें।

श्वास कुठार रस—पारद, गधक, मीठा विष, सुहागा, मन शिला, त्रिकटु। मात्रा—२०० से ५०० मि० ग्राम पान या आर्द्रक स्वरस से।

श्वास चिन्तामणि (र० सा० स०)—मात्रा—२०० से ४०० मि० ग्राम। अनुपान—बहेडा चूर्ण व मधु।

कनकासव—मात्रा—१० व २० मि० लि०।



मांस शोष

(MYOPATHIES)

डा० श्री सोमेश शर्मा एम० डी० (आयु०), प्राध्यापक-राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, पपरोला (कांगड़ा) हि०प्र०

डा० श्री सोमेश शर्मा एक होनहार नवयुवक विद्वान अध्यापक है। आप पटियाला के स्नातक एवं वहीं से एम० डी० है। आयुर्वेद में विशेष रुचि रखते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में विषय को प्रस्तुत करते हैं। मास शोष पर सारगर्भित एवं विवेचन पूर्ण लेख आपने प्रस्तुत किया है जो पाठको के लिए लाभप्रद है।

—डा० शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

मानव जाति को अत्यधिक क्षति पहुचाने वाले और आधुनिक चिकित्सा द्वारा असाध्य समझे जाने वाले रोगो मे से एक रोग 'मास शोष'' है जिसे 'मायोपैथी'' कहा जाता है। इस रोग के उत्पादक कारण का आज तक भी पता नहीं लग सका। इसी कारण से इस व्याधि से ग्रस्त रोगियो को बड़े-बड़े आधुनिक आतुरालयों से भी निराश होकर ही बैठ जाना पड़ता है। अकर्मण्यता आ जाने के कारण ऐसे रोगी अपने आपको परिवार पर एक बोझ ही समझने लगते हैं।

सामान्य परिचय—

शरीर की ऐच्छिक मासपेशियों मे गम्भीर विकृति के परिणामस्वरूप इस रोग की उत्पत्ति होती है। इन पेशियो की सामान्य प्रक्रिया मे बिकार उत्पन्न हो जाता है और धीरे धीरे रोगी उठने, चलने फिरने या कोई भी कार्य करने मे असमर्थ हो जाता है। यह रोग बच्चो से लेकर बूढो तक किसी भी व्यक्ति को हो सकता है, परन्तु बच्चे ही इस रोग से अधिकतर ग्रस्त देखे जाते हैं। इस रोग मे ऐच्छिक मासपेशियो मे आने वाली अकर्मण्यता का शरीर मे स्थित किसी अन्य रोग से कोई सम्बन्ध नही होता, इसलिए मायोपैथी सज्ञा उसी रोग को दी जाती है जिसमे मास शोष या मासपेशी जन्य दुर्बलता किसी अन्य रोग के परिणामस्वरूप न हो।

लक्षण—

इस रोग मे मासपेशियो म क्षीणता, ढीलापन, दौर्बल्य, कृशता, अग सुप्तता, अनुत्साह, श्रम, ग्लानि क्लम, अग मर्द त्वक रूक्षता, तन्द्रा, खल्ली पडना, मल शुष्कता, विवर्णता आदि लक्षण पाये जाते हैं। रोग के प्रारम्भ में, विशेषतया बच्चो मे चलने फिरने छलाग लगाने, वस्तु को उठाने सीधा खडा होने तथा कार्य करने की शक्ति मे ह्रास देखने को मिलता है। रोगी जब सीधा खडा होने का प्रयत्न करता है तो दोनो पाव एक दूसरे से बहुत दूर दूर स्थित होते हैं और टागे टेढी होती है। रोगी की धड़ कुछ पीछे की ओर झुकी हुई रहती है पेट आगे को निकला सा प्रतीत होता है चलते समय भी पाव इधर-उधर दूर-पड़ते है और रोगी अपनी टागो पर नियन्त्रण न रख सकने के कारण, बारम्बार गिरता है। सीध मे नहीं चल सकना। चढाई उतराई मे या सीढियो पर चलने मे विशेष कष्ट होता है और रोगी अचानक गिर पडता है। रोग बढते रहने पर चलने फिरने की शक्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है और दौर्बल्य बढता जाता है। शरीर की अधिकाश पेशिया सूख जाती हैं और सकुचित हो जाती हैं। पृष्ठ वश भी झुक जाती है। इस प्रकार से रोगी लूला लगड़ा हो जाता और अपने हाथ तथा पाव उठा सकने की शक्ति तक खो देता है। रोगी का स्पर्श ज्ञान बना रहता



है। क्योंकि शरीर की अनैच्छिक मांसपेशियों पर विशेष प्रभाव नही होता और भीतरी अवयव भी विशेष विकार से ग्रस्त नही होते, इसलिए रोगी को बोलने, देखने सुनने, खाने, पीने, मलमूत्र त्याग करने या स्मरण आदि करने मे कोई विशेष कठिनाई नही होती।

रोग के प्रकार एवं प्रसार—

शरीर की मांसपेशियो के प्रभावित होने के ढग के अनुसार इस रोग के कई भेद किए जा सकते हैं, परन्तु मुख्यतया दो भेद है—

१ बच्चो को होने वाली मायोपैथी—

पाच से दस वर्ष की आयु के लडके ही इस रोग से पीडित होते है। इसका प्रारम्भ धीरे-धीरे होता है। बच्चा चलने फिरने मे कष्ट अनुभव करता है। जमीन पर बैठते हुए, एक तरफ को झुक कर बैठता है। उठने समय पहले टागो को फैलाकर, टेढा होकर हाथ के सहारे से धीरे-धीरे उठता। सीधा खडा होने या चलने फिरने में नियन्त्रण खो देता है। सीधा खडे होते समय कन्धे पीछे की ओर चले जाते हैं और उदर आगे को निकला दिखाई पडता है। नितम्ब, पिण्डलियो तथा बाजू की मासपेशिया कुछ फूली हुई सी दीखती हैं परन्तु उनमे ढीलापन होता है। छोटे बच्चे को उठा ते समय, (कन्धों के नीचे से) कन्धे की पेशियो की दुर्बलता का बोध हो जाता है, बाजू ऊपर को चल जाते हैं, और बच्चा नीचे की ओर फिसलता जान पडता है। धीरे-धीरे रोग बढ जाने पर पेशियो की अशक्तता मे वृद्धि हो जाने पर बच्चा उठने फिरने आदि मे अक्षम हो जाता है। श्वसन संस्थान तथा हृदय की पेशी मे नैर्बल्य आ जाने से १० से १५ वर्ष के मध्य मे रोगी की मृत्यु हो जाती है।

२ बडी आयु मे मायोपैथी—

शरीर के किसी भी भाग की मासपेशियो मे किसी भी आयु मे विकार उत्पन्न हो जाने पर अकर्मण्यता आ जाती है।

सर्वप्रथम किसी एक भाग की पेशिया प्रभावित होती हैं और फिर धीरे धीरे अन्य पेशियो मे यह रोग फैलता है। उठने बैठने, चलने-फिरने, किसी वस्तु को उठा सकने और अन्य कार्य कर सकने की शक्ति मे ह्रास होने के साथ-साथ कुछ रोगियो के चेहरे के भाव भी गुम हो जाते हैं। बातचीत करते समय वह अपने भाव प्रकट करने मे असमर्थ हो जाता है। मुस्कराते समय भी चेहरे की पेशियो मे बाहिर तथा ऊपर की ओर खिंचाव न पड सकने के कारण रोगी बुद्धू सा दिखाई देता है। रोगी अपने मुख से सीटी बजाने मे असमर्थ होता है। जोर लगाकर बन्द किए जाने पर भी रोगी की आंखों और होठो को आसानी से, थोडा सा जोर लगाकर ही खोला सकता है। पृष्ठ भाग की पेशियो मे भी शोष देखा जाता है।

कई बार कुछ विशेष मांसपेशियो मे विकार उत्पन्न होने पर वह जीवन भर ज्यो का त्यों बना रहता है। परन्तु किसी भी समय अन्य पेशियों मे भी रोग का प्रसार हो सकता है। बडी आयु के रोगियो में यदि कुछ विशेष पेशियां ही प्रभावित हो तो इस रोग से मृत्यु प्राय नहीं होती। मृत्यु अन्य कारणो से सभव है। प्राय इस रोग के परिणामस्वरूप लूला-लगडापन देखा जाता है। रोगी का मनोबल गिर जाने से अन्य रोगों की उत्पत्ति हो जाती है।

आयुर्वेद मतानुसार मांस शोष (मायोपैथी)

इस रोग का स्वतन्त्र रूप से वर्णन आयुर्वेद ग्रन्थो मे उपलब्ध नहीं है। धातु क्षय या धातु शोष के अन्तर्गत ही इस रोग का समावेश किया जाता है। इस रोग की उत्पत्ति मे प्रधान कारण वायु ही है। वायु से उत्पन्न होने वाले ८० प्रकार के रोगो मे पगुता, कुब्जक, अंग शोष, कार्श्य पक्षवध आदि रोगो के लक्षणो को जानकर लगता है कि सकोच, स्तम्भ, अगमर्द पृष्ठ ग्रह, शिरा ग्रह, खजता, पगुता, कुबडापन, अंग शैथिल्यता, अगो मे खिचाव, सुप्तता, शून्यता, रूक्षता, श्रम तथा क्लम इत्यादि लक्षण जो कि कुपित वायु के कारण होते हैं, मांस शोष के रोगियो मे पाए जाते हैं। अत यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह एक वात व्याधि ही है।

चिकित्सा—

इस रोग की चिकित्सा भयकर वात व्याधियों के समान करने से लाभ मिलता है सर्वप्रथम स्नेहन और स्वेदन करवाकर, रोगी की आयु, प्रकृति, बल और ऋतु इत्यादि का ध्यान रखते हुए, शास्त्रोक्त विधि से पंचकर्म कर-

वाना अत्यावश्यक है। इसके पश्चात् ही अन्य औषधोपचार का यथेष्ठ प्रभाव होता है। नित्य प्रति तैल मर्दन तथा आस्थापन वस्ति का इस रोग मे विशेष महत्व है।

(१) सर्व प्रथम रोगी के मनोवल को ऊचा रखे।

(२) रोगी को स्वच्छ तथा खुले वातावरण मे रखें।

(३) स्नेहन, स्वेदन के पश्चात् पचकर्म करायें।

(४) औषध चिकित्सा—इस रोग में अत्यन्त उपयोगी औषधिया ये हैं—

१. नागवला तैल या शतपाक वला तैल।
२. वृ० वात चिन्तामणि रस।
३ ताप्यादि लोह।
४. प्रवाल पचामृत रस।
५. वलारिष्ट।
६. अश्वगन्धारिष्ट।
७ अश्वगन्धा घृत।
८. महामापादि तैल या वला तैल (अभ्यगार्थ)।

प्रयोग विधि—

१. नागवला तैल या शतपाक वला तैल वल्य औषधियो मे बला तथा नागवला का विशेष स्थान है। नागवला, (गगेरन मूल त्वक) से शास्त्रोक्त विधि से साधित तैल की मात्रा एक छोटा चम्मच है। यदि इसे दस-बीस या पचास वार साधित कर लिया जाय तो इस तैल की मात्रा १५ से ३० बूद पर्याप्त है। दिन मे २ वार दूध मे मिलाकर इस महौषध को निरन्तर छ मास तक सेवन करवाते रहे। बला मूलत्वक से साधित तैल (शतपाक) का भी इसी प्रकार से प्रयोग करना चाहिए। इससे अभूतपूर्व वल, उत्साह और पुष्टि की वृद्धि होती है।

२. वृ० वातचिन्तामणि रस—आयुर्वेद की इस रामवाण औषधि के वारे मे जितना भी लिखा जाय, कम ही होगा क्योकि सभी प्रकार की भयङ्कर से भयङ्कर वातव्याधियो को नष्ट करने मे इससे वढकर कोई भी औषध किसी भी चिकित्सा पद्धति मे नहीं है।

मायोपैथी मे इस औषध की एक-एक गोली प्रात मधु से देनी चाहिए। १५ दिन सेवन करवा कर, दस दिन तक इसे वन्द करवा दें। फिर उसी भाति सेवन करवाते रहे।

३ ताप्यादि लोह+प्रवाल पञ्चामृत रस—रौप्य भस्म, शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक भस्म, लौह भस्म तथा मण्डूर भस्म युक्त, इस औषध का सेवन पाण्डु, कामला, यकृत एव प्लीहा के विकारो मे किया जाता है परन्तु इसके सेवन से पाचक अग्नि प्रदीप्त होती है और धातुपाक (मैटाबोलिजम) की प्रक्रिया सम्यक रूप से होने लगती है जिससे रस-रक्त, मासादि धातुओ की उत्तरोत्तर पुष्टि होती है। शरीर के सभी भागो मे रक्त तथा चेतना का प्रवाह सम्यक रूप मे होने लगता है।

ताप्यादि लौह २ रत्ती के साथ प्रवाल पचामृत रस २ रत्ती मिलाकर मधु से सेवन करने से हृदय को विशेष वल मिलता है और मन प्रसादन भी होता है। इस औषध को भी एक मास तक सेवन करवाने के पश्चात् १० दिन तक वन्द रख कर फिर शुरू करवाते रहे।

४. बलारिष्ट + अश्वगन्धारिष्ट—धातुपाक की प्रक्रिया को तेज करने और नाडी सस्थान को वल देने के लिए इन दोनो का सेवन, भोजनोपरान्त समान जल मिला कर करवाना अत्यावश्यक है। इसे निरन्तर सेवन किया जा सकता है।

५ अश्वगन्धा घृत—मासपेशियो की पुष्टि, नाड़ी मण्डल की पुष्टि मन मे उत्साह तथा शारीरिक वल वृद्धि के लिए, इस घृत का सेवन रात्रि को एक वार करवायें।

६ महामासादि तैल या वला तैल—हर रोज समस्त शरीर पर अभ्यङ्ग के लिए इनमे से किसी भी तैल का प्रयोग निरन्तर करवाना चाहिए।

५ इस औषधि चिकित्सा के साथ २ रोगी को धीरे-धीरे हलका व्यायाम करवाना आवश्यक है। व्यायाम की मात्रा धीरे २ वढानी चाहिए।

६ रोगी को पौष्टिक परन्तु सुपाच्य भोजन दें।

७ वातनाशक आहार-विहार का सेवन करायें।

निष्कर्ष—मायोपैथी के रोगियो पर किए गए अध्ययन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि आयुर्वेद मे 'रसायन' कही जाने वाली औषधियो मे ऐसे दिव्य गुण विद्यमान हैं जिनके सम्यक ज्ञान और प्रयोग से आजकल असाध्य वहुत सी व्याधियो का उपचार सम्भव है।

आभार प्रदर्शन—वनौषधियो पर रुचिपूर्वक अनुसन्धान करने तथा इस लेख को लिखने के लिए प्रेरणा देने के लिए मै डा० शिव कुमार मिश्र, आचार्य—यूनानी एव तिब्बिया कालेज, देहली का हृदय से आभारी हू।

श्वास रोग



(१)

कविराज श्री धर्मवीर बी० आई० एम० एस०, डी० ए० वाई एम०

कविराज श्री धर्मवीर आयुर्वेदिक एव यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली के सुयोग्य स्नातक है। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० डी० किया। आप आयुर्वेद कालेज अस्थल बोहर रोहतक में काय चिकित्साध्यक्ष रहे एव केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा आयुर्वेदिक डिस्पेन्सरी मेरठ के प्रथम चिकित्सक रहे। वर्तमान में दिल्ली नगर निगम के आयुर्वेदिक औषधालय बवाना मे चिकित्साधिकारी के रूप मे कार्य कर रहे है। अनेक सस्थाओ से आप सम्बन्धित है।

'श्वास रोग' बुढ़ापे को कष्टमय बनाने वाला रोग है। लेख मे श्वास रोग के कारण–लक्षण एव चिकित्सा का सुन्दर एव उपयोगी वर्णन किया है। आशा है पाठक लाभान्वित होंगे।

—डा० शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

जरा व्याधि क्यो ?

श्वास रोग के उत्पत्ति कारणो मे स्पष्ट बताया है कि पाण्डु रोग के पश्चात होने वाला रोग श्वास है यथा—

'पाण्डु रोगातिद्विषाच्चैव प्रवर्तते गदावियौ'।

—चरक चि० १७/१४

अर्थात्—पाण्डु रोग और विष सेवन से हिक्का व श्वासोत्पत्ति। दूसरा कारण बताया गया है 'दुर्बलता' यह भी जरा व्याधि मे ही आता है।

तीसरा कारण—प्राणवाही स्रोतस दुष्टि अर्थात् श्वास नाली मे होने वाले विकार यह भी वृद्धावस्था मे ही अधिक होता है यथा—

क्षयात् संधारणाद्रौक्ष्याद्व्यायामात् क्षुधितस्य च।
प्राणवाहीनि दुष्यन्ति स्रोतांस्यन्यैश्च दारुणैः॥

—चरक—वि० ५/१०

अर्थात्—धातुओ के क्षय से, मल-मूत्र आदि के वेगो को रोकने से, रुक्ष वस्तु के सेवन से, भूख लगने पर व्यायाम करने से और भी अन्य कठोर कार्य जो अपनी शक्ति से बाहर के हो उन्हें करने से प्राणवाही स्रोत दुष्ट हो जाते है।

चौथा कारण—वायु रोग की प्रधानता के कारण—

'वयोऽहोरात्रि भुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगा. क्रमात्।'

—अ० ०हृ सू० १८

अर्थात् अवस्था, दिन-रात और भोजन इनके अन्त मे वायु प्रधान दोष होता है। वय का अर्थ परिणाम अर्थात् आयु है, आयु की वृद्धावस्था मे वायु की अधिकता।

निदान

धूल अथवा धूम के श्वास मार्ग मे प्रविष्ट हो जाने से, शीत स्थान या शीतल जल के अत्यधिक सेवन से, अधिक व्यायाम अधिक मैथुन, अधिक रास्ता चलना, रुक्ष (स्नेहरहित) एव विषमाशन बहुत अल्प या अकाल म भोजन), आम प्रदोष, आनाह रोग रुक्षता, अति अपर्त (अति अल्प भोजन) दुर्बलता, मर्मस्थान मे आघात लगना शीत, उष्ण, रुक्ष, स्निग्ध आदि द्वन्द्वी (विरुद्ध धर्मी भावो) का एक साथ सेवन वमन-विरेचन आदि सशोधनो का

अतियोग, अतिसार, ज्वर, उल्टी, जुकाम, उर क्षत, क्षय, रक्तपित्त, उदावर्त, विसूचिका, अलसक, पाण्डु रोग, विष, निष्पाव, (सेम के बीज)—उडद, खली, तिल तैल-पिष्ट (मैदा या पिट्टि), कमल का कन्द आदि विदाही और गुरु पदार्थ, आनूप प्राणियो का मास, दही, कच्चा दूध अभिस्यन्दि उपचार तथा भोजन और कफ पैदा करने वाले पदार्थो का सेवन। कण्ठ और उर (छाती) मे प्रतिघात, नाना प्रकार का विबन्ध (मल, मूत्र, स्वेद, आर्तव आदि का अवरोध), अग्नि सेवन, भार उठाना, वेगो का रोकना, चार धातुओ का क्षय, अध्यशन, सशमन इन कारणो से स्वासोत्पत्ति होती है।

पूर्वरूप—

आनाहः पार्श्वशूल च पीड़न हृदयस्य च।
प्राणस्य च विलोमत्व श्वासानां पूर्व लक्षणम्॥

—चरक चि० १७/२०

१. आनाह—आनाह' गुडगुडा शब्द प्रोक्तो जठर सम्भवः। अर्थात्—उदर गुहा मे गुडगुडाहट।

२ पार्श्वशूल—पसलियो मे पीडा—मासपेशियों की अत्यधिक क्रिया के कारण उर के दोनो ओर वेदना।

२. हृदय पीडन—आक्सीजन की कमी के कारण। चोकिंग सेनसेशन।

४. प्राणस्य च विलोमत्व—श्वास प्रश्वास की क्रिया से प्राणवायु का उल्टा होना अर्थात् श्वास का फूलना (Dyspnoea)।

रूप—श्वास का कठिनता से आना।

उपशय—खट्टे पदार्थ देने से शान्ति। अक्लोहाइड्रो के कारण अर्थात् अम्ल की कमी श्वास के ९०% रोगियो मे। आयुर्वेद ने इसे 'पित्त स्थान समुद्भव' पित्त स्थान आमाशय और नाभि विशेषत (केन्द्र सूचक) क्योकि पाचक रसो का नियन्त्रण पैनक्रियाज (Pancseas) द्वारा होता है। इसको भी नाभि माना गया है। उपरोक्त वर्णनानुसार आमाशय व ग्रहणी रोगोत्पत्ति के बाद स्वासोत्पत्ति भी मानी गई है।

सम्प्राप्ति—

यदा स्रोतासि सरुध्य मारुत कफपूर्वक।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति स॥

—च० चि० १७/४५

कफ वृद्धि के बाद जब वायु दूषित होकर स्रोतस का अवरोध करती है साड के फुकारने जैसी ध्वनि लिए स्वास का जल्दी-जल्दी लेना रोगी आरम्भ करता है। उसे ही 'स्वास रोग' कहा जाता है।

१. विशेष प्रधान दोष वायु है, कफ के मार्गावरोध द्वारा प्रकुपित होकर वायु, प्राणवाही स्रोतस (Bronchi) मे अनरुद्ध गति होकर श्वास रोग को उत्पन्न करता है।

२. व्यायाम, उपवास आदि द्वारा रूक्षता बढ़ना वैगस नर्व मे उत्तेजना का मुख्य कारण है।

३ विष्टम्भी, अभिष्यन्दि पदार्थो से आमाशय मे जलन से वैगस नर्व के होने से श्वास केन्द्र की उत्तेजना होती है और स्थानिक और केन्द्रक दोनो प्रभाव होते हैं। व इन्ही दोनो प्रकार के प्रभाव के कारण श्वास रोग की उत्पत्ति होती है।

भेद—

१ क्षुद्र श्वास २. तमक श्वास ३. छिन्न श्वास ४. महा श्वास ५ ऊर्ध्व श्वास।

पाचो श्वासों मे दोषो की प्रधानता एव साध्यासाध्यता—

ये सम्पूर्ण श्वास रोग वातकफात्मक होते हुए भी निम्न दोष विशेष लिए है—

क्षुद्रश्वास	तमकश्वास	छिन्नश्वास	उर्ध्वश्वास	महाश्वास
वात	कफ	वात + कफ	वात	वात
साध्य	याप्य	असाध्य	असाध्य	असाध्य

विशेष लक्षण एवं सम्प्राप्ति

१ क्षुद्र श्वास—कार्य करने से श्वास की वृद्धि (Dyspnoea on exertion) कमजोरी के कारण प्राय. यह रोग हो जाता है। इसका सम्बन्ध हृदयावसाद से अधिक होता है। अत ज्योही कमजोरी कम होती है रोगी ठीक हो जाता है अत. इसे सुख साध्य बताया है।

२ तमक श्वास—इस श्वास मे वायु की प्रतिलोम गति होने से निम्न प्रकार रोगोत्पत्ति लक्षण होते हैं—

१. प्रतिलोम वायु स्रोतासि प्रतिपद्यते—वायु की गति विलोम होने से हो जाता है।

(२) अतीव तीव्र वेग च श्वास पाण प्रपीड़कम्—घुर-घुर शब्द के साथ तीव्र वेग वाला तमक श्वास उत्पन्न होता है।

३ प्रताम्यति स वेगेन—Paroxysamal attack के समय आक्सीजन की कमी से आखो के आगे अधेरा छा जाता है।

४ प्रमोह कासमानश्च सगच्छति मुहुर्मुहु—Bents of cough होते हैं अर्थात् बार-बार कास का आना। अधिक कास के कारण कभी अचेतन (Semiconcious) भी हो जाता है।

५. वेग के समय रोगी विस्तर पर लेट नही सकता है और अनिद्रित हो जाता है।

६ रोगी को बैठने से सुख का अनुभव होता है। वह बैठा रहता है ताकि श्वसन पेशिया ठीक प्रकार से कार्य कर सकें। उष्ण पेय उसे अच्छे लगते हैं।

७. मेघाम्बु शीत प्राग्वातै श्लेष्मलै श्चाभि वर्धते—वर्षा तथा शीत ऋतु एव ठंडी हवायें और गुरु भोजन रोगी को माफिक नही पडता। नमी वाला मौसम होने से कफ की वृद्धि होकर व वायु के प्रकोप के कारण यह रोग बढ जाता है।

तमक श्वास के दो भेद—

प्रतमक व सतमक

प्रतमक श्वास—पित्त का अनुबन्ध तमक श्वास के रोगी मे होने से प्रतमक मे बदल जाता है और ज्वर व मूर्च्छा लक्षण पाये जाते हैं। आधुनिक मतानुसार हम इसे Bronchial asthma with superimposed infection कह सकते है।

सतमक श्वास—वात कफ से प्रारम्भ होता है और पित्त का अनुबन्ध रहता है इसलिए शीत से प्रेम करता है। इसमें कार्डियक अस्थमा (Cardiac Asthma) के अधिक लक्षण पाये जाते हैं। यह रोग रोगी को रात को उठा देता है। क्योंकि कार्डियक आउट पुट (Cardiac out put) बढ़ने से फुफ्फुस मे रक्त सन्चय अधिक हो जाता है और सोते समय श्वास केन्द्रावसाद होने से पूर्ण आक्सीकरण (Oxygenation) नहीं हो पाता परिणामत श्वास हो जाता है।

छिन्न श्वास—सपूर्ण शक्ति लगाकर भी रुक-रुक कर श्वास लेता है। इसका साम्य चेन स्टोक्स ब्रीदिंग (Chene Stoke's Breathing) से कर सकते हैं।

१ नवाश्वासिति—कभी-२ श्वास बिल्कुल रुक जाता है।

२ विवर्ण प्रत्यन्तर—मुख नीलिमा का बढ जाना, आक्सीजन की कमी के कारण नीलिमा (Cyanosis) और चित्तभ्रम (Delirium) हो जाता है।

आख लाल, चित्त उद्विग्न, मुह सूखा, कान्तिहीन, असवद्ध बोलना, दृष्टि नीचे रखना, छिन्न श्वास।

उर्ध्व श्वास—दीर्घकाल तक श्वास बाहर छोडना एवं भीतर कम लेना। यथा—

१ उर्ध्वश्वासे प्रकुपिते अध श्वासो निरुद्धयते—बाहर श्वास निकालना, तो होता है अन्तश्वास कम होता है।

२ श्लेष्मावृत मुखस्रोता—श्वास नलिका और फुफ्फुस तन्तुओ मे श्लेष्मा के बढने से रुकावट होने के कारण नि श्वास के साथ श्लेष्मा फुफ्फुस से बाहर आता है व मुख स्रोतस को रोकता है। इस कारण रोगी की दृष्टि ऊपर को चढी हुई होती है। व Stertoruos Breathing अवस्था पाई जाती है। यह Sever congestion, Red Hepatization, Pulmonary infarction मे पाया जाता है।

३. उर्ध्व दृष्टि विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इस्तत—ऊपर को दृष्टि व विभ्रान्त देखना।

महाश्वास—१. उदधूयमानवातो—उत् उर्ध्वं धूपमानो नीयमानो वातो यस्य स। वायु उर्ध्व गति हो जाने से।

२ उच्चै श्वसिति—लम्बा-२ सांस लेता है।

३ प्रश्वसितचास्य दुरात् विज्ञायते भृश—दुर से ही साम का शब्द सुनाई देता है।

४ सरुद्धोमत्तर्षभ इवानिशम् श्वसिति—निरन्तर मस्त बैल के समान श्वास लेना।

५ प्रनष्ट ज्ञान विज्ञानम्-ज्ञान-विज्ञान नष्ट हो जाना।

विशेष—छिन्न, उर्ध्व व महा श्वास मृत्यु के समीप रोगी मे ही देखे जाते हैं। इसलिए इनकी क्या चिकित्सा एव छिन्न श्वास किसी दूसरी व्याधि के कारण होता है अत उस व्याधि की चिकित्सा हो जाती है।

—शेषांश पृष्ठ २७० पर देखें।

श्वास रोग चिकित्सा

डा० गजेन्द्र सिंह छौंकर ए० एम० बी० एस०
ओम आयुवर्धक आयुर्वेद औषधालय, सादाबाद (मथुरा) उ० प्र०

दौरे के समय पर—रोगी को सूघने के लिए नासिका-छिडकाव के द्वारा, मुखमार्ग द्वारा तथा त्वचान्तर्गत सूचीवेध से औषधियो का प्रयोग किया जाता है। Adrenaline Hydrochloride १ : १००० की २–५ बूद की मात्रा मे त्वचान्तर्गत सुचीवेध के द्वारा रोग आरम्भ मे प्रयोग करने से चमत्कारिक फल दिखाई पडता है। इसके साथ पीयूषग्रन्थि सत्व Pituitary ext मिलाकर ही प्रयोग किया जाता है। बाजार मे Evalmine, Pitrenaline तथा Kadamysin के नाम से यह सम्मिलित औषधि प्राप्त हैं। निरन्तर श्वासावस्था मे निम्न वर्णित चिकित्सा लाभदायक है—१ सी० सी० Adrenaline-chloride अत्यन्त धीरे-धीरे कई मिनट से लेकर आधा घटे तक अथवा जब तक आक्षेप शान्त न हो तब तक त्वचा के नीचे प्रवेश कराते रहना चाहिए। आराम मिलने पर दीर्घक्रियाशील Adrenaline के यौगिक जैसे Adrenaline muscata अथवा Adrenuol १/२ से १ सी०सी० की मात्रा मे मांसान्तर्गत सुचीवेध देने से ६ से ८ घण्टे तक दौरे को रोका जा सकता है। Ephedrine Hydrochloride १/४ से ३/४ ग्रेन तक मुख मार्ग से प्रयोग करने पर अनेक क्षेत्रो मे लाभ होता है। जहा Ephedrine से लाभ नही होता है वहा Pseudo-ephedrine १/२ से १ ग्रेन की मात्रा मे प्रायश. लाभदायक होता है। Adrenaline स्वतन्त्र रूप से अथवा Chlorotone के साथ मिलाकर नासिका मे छिडकाव करने से श्वास रोग मे लाभ होता है। जहा Adrenaline असफल होता है वहा ५० से १०० मि० ग्राम की मात्रा मे Nicotanic Acid के शिरान्तर्गत सुचीवेध से लाभ होता है। असफल क्षेत्र मे Aminophylline के शिरान्तर्गत सुचीवेध से लाभ होता है। आजकल Vantolin inhaler नामक एक नई दवा जोकि Salbutamol aerosol के नाम से भी प्रचलित है—उसमे मुखमार्ग के प्रयोगो से भी तत्क्षण लाभ मिलता है। अधुना और कई Anti-allergic दवाइया बाजार मे प्राप्त हैं—Aminophyline के साथ मिलाकर अथवा Ephedrine के साथ मिलाकर उसके प्रयोग से विशेष लाभ हो सकता है।

निरन्तर श्वासावस्था से पीडित व्यक्ति को अस्पताल भेजने पर कभी-कभी वहा के परिवर्तित वातावरण मे मन के ऊपर जो प्रभाव पडता है उससे भी दौरे का उपशम होता है ऐसा देखा गया है।

Cortisone तथा cortisonetrophine भी इस अवस्था मे विशेष लाभदायक हैं। Cortisone की मात्रा मुखमार्ग से प्रथम दिन ३०० मि.ग्रा., दुसरे दिन २०० मि. ग्रा. एवं तीसरे दिन १०० मि ग्रा और उसके पश्चात् प्रतिदिन ७५ मि ग्रा की मात्रा मे प्रयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त कुछ कफ निःसारक तथा आक्षेप-नाशक औषधियो का प्रयोग करना भी जरूरी होता है जिनमे Pot Iodide, Tinct Stramonium, Tinct Hyoscyamus अथवा Tinct Lobelia का प्रयोग प्रधान कहा जा सकता है। प्रस्वापक औषधियो मे से Phenobarbitone, Sodium Amotol आदि का समवेत प्रयोग भी लाभदायक होता है। श्वास रोग की किसी भी अवस्था मे Morphia का प्रयोग कदापि नही करना चाहिए। वृद्धावस्था मे तो इसस मृत्यु तक हो सकती है।

रोग मुक्ति के समय पर—

रोगी को जहा तक हो सके, स्वाभाविक जीवन बिताने को प्रोत्साहित करना चाहिए। यद्यपि आहार विहार मे



विशेष परहेज की आवश्यकता नही रहती तो भी जिन रोगियो मे रात्रि मे दौडा पडता हैं उन्हे रात्रि मे भोजन बहुत ही कम देना चाहिए, जिससे पेट मे भारीपन न हो। स्थान में परिवर्तन से भी लाभ होता है। रोगी को जिस आहार विहार से रोगोत्पत्ति होती है—विशेषत जिस मांसजातीय द्रव्यो के सेवन के कारण श्वास का दौरा पड़ता है उन चीजों का पता लगाकर बिलकुल त्याग देना चाहिए। इन द्रव्यो का क्रमवर्द्धमान संहिष्णुता की सृष्टि के द्वारा भी स्थायी लाभ मिल सकता है। रोगी को अपने कफ से प्रस्तुत विशेष Vaccine अथवा सामान्य Vaccine से भी लाभ मिल सकता है। रोगी को धूआ धूलि आदि से दूर रहना चाहिए। Ephedrine अथवा उसकी असफलता मे Adrenaline का प्रयोग रोगी को सिखा देना चाहिए। इसमे रोगी के मन के ऊपर प्रभाव पडता है। अपने पास रोगनाशक व्यवस्था मौजूद है इस विश्वास से रोगाक्रमण काफी कम हो जाता है। श्वास सस्थानो के व्यायाम से जिसे प्राणायाम कहा जाता है—उससे भी विशेष लाभ होता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार—

प्रकृत श्वास रोग Allergic Asthma वातोल्वण तमक श्वास के साथ तुलनात्मक कहा जा सकता है जब कि Bronchial Asthma कफोल्वण तमक श्वास के साथ अधिकतर सन्निकट माना जाता है। तमक श्वास कफ वातोल्वण है—इस रोग मे इतनी ही विशेषता का निर्देश किया जा सकता है। Allergic Asthma के विभिन्न उपायो से प्राप्त आमिष जातीय द्रव्यो के विपरीत धर्मी पदार्थों की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे यद्यपि आयुर्वेद मे विशिष्ट वर्णन नहीं है तो भी उसके कुछ उदाहरण आयुर्वेद में वर्णित निदानो के समान कहा जा सकता है जैसे कि—

(१) श्वास मार्ग द्वारा प्राप्त उद्भिज जातीय विभिन्न प्रकार के घास फूस आदि के पराग जो कि वायु के द्वारा प्रसारित होता है—आयुर्वेदोक्त 'अनिल' अर्थात् वायुवहित तथा जान्तवजातीय अर्थात अश्व, मार्जार, पक्षियो के मल, मूत्र तथा धूलि में अवस्थित विभिन्न पदार्थ जो कि श्वास मार्ग द्वारा प्रविष्ट होता है—आयुर्वेदोक्त "रज." के साथ तुलनात्मक है।

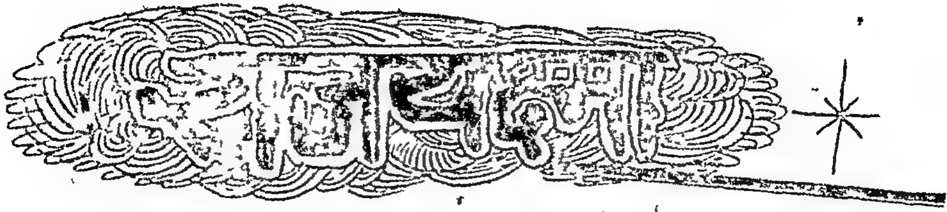
(२) स्थान विशेष से प्राप्त अर्थात् जलवायु के परिवर्तन के कारण उत्पन्न श्वास रोग आयुर्वेदोक्त "स्थान" रूप निदान के साथ तुलनात्मक है।

(३) भोजन मार्ग से प्राप्त विभिन्न प्रकार के श्वासोत्पादक कारण आयुर्वेदोक्त "पानाशन" के साथ तुलनात्मक है।

(४) पाचन सम्बन्धी विकृति के प्राप्त अर्थात् विभिन्न प्रकार के प्राथमिक अपचन, अम्ल स्रावो की कमी के कारण उत्पन्न अग्निमाद्य अथव पोषणशक्ति के अभाव से उत्पन्न अजीर्ण के कारण उद्भूत श्वास रोग आयुर्वेदोक्त "विदाहि गुरु विष्टम्भि रुक्षाभिष्यन्द भोजन" के साथ तुलनात्मक है।

इस प्रकार की तुलना से प्राचीन ज्ञान की विशदता तथा पूर्ति अनायास की जा सकती है। जिससे चिकित्सा के क्षेत्र मे विशेष लाभ हो सकेगा।

चिकित्सा—इस प्रकार के श्वास रोग निदान परिवर्जन का विशेष महत्व है और उस निदान का पता लगाना परमावश्यक है। आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से इस रोग मे स्नेहन व स्निग्ध स्वेदन के पश्चात् निरूहवस्ति एव तदनन्तर अनुवासन वस्ति का प्रयोग करना चाहिए। अनुवासन वस्ति के रूप मे विशेषत. मात्रा वस्ति से श्वासरोग मे विशेष लाभ होता है। एतदर्थ मध्यम नारायण तेल, विष्णु तेल आदि का प्रयोग लाभदायक होता है। वायु प्रधान तमक श्वास मे दौरे के समय श्वास चिन्तामणि का प्रयोग मयूर पुच्छ भस्म व मधु के अनुपान से अथवा बहेडा बीज की मिगी या बेर के बीजो की मिगी व मधु के अनुपान से लाभ होता है। वातकुलान्तक अथवा रसराज रस, जटामासी व खुरासानी अजवायन के क्वाथ अथवा फाण्ट व मधु के साथ देने से विशेष लाभ होता है। शृंग्यादि चूर्ण (नमक वाला) नृसार के साथ मिलाकर प्रयोग करने से भी काफी लाभ होता है। घृतयुक्त वासावलेह के अवलेहन से भी श्वासकष्ट मे ह्रास होता है। कफोल्वण क्षेत्रो मे श्वास कुठार रस उपयुक्त अनुपान के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है। मन शिलादि घृत (चरकोक्त) इस रोग मे विशेष उपयोगी माना जाता है। इस घृत का प्रयोग दीर्घ दिनो तक करना चाहिए। रोगमुक्ति के पश्चात अभ्रक घटित औषधिया तथा च्यवनप्राश, शृंगीगुड़ घृत अथवा नागींगुड का लगातार प्रयोग करना चाहिए। इससे रोग मुक्ति मे सहायता अवश्य मिलती है।



वैद्य श्री मुरारी प्रसाद गुप्त लोक सेवक, भूदानी
आचार्य विनोबा भावे आयुर्वेदिक औषधालय, शेरवां अहरौरा (मिरजापुर) उ प्र.

उत्पत्ति—चन्द्रमा ने दक्ष प्रजापति की २८ कन्याओ का पाणिग्रहण किया था परन्तु चन्द्रमा ने सब कन्याओ के साथ समान व्यवहार नही किया। इस कारण प्रजापति महोदय कामवासना से युक्त चन्द्रमा पर भार्याओ के के प्रति विषम व्यवहार करने से क्रोधित हुये जिससे उसको यानि रजोगुण युक्त बलरहित चन्द्रमा मे सर्वप्रथम यक्ष्मा रोग हुआ। ऐसा चन्द्रमा को रोहिणी के प्रति अत्यन्त स्नेह हुआ जिसमे चन्द्र देव की देह स्नेह के परिक्षय से क्षीणता को प्राप्त हो गयी।

अत. यक्ष्मा रोग ग्रसित चन्द्रमा देव अपने गुरु जो उनके श्वसुर भी थे देवर्षि सहित उनके शरण मे जाकर प्रार्थना करने लगे। चन्द्रमा को अपनी शरण मे आया देख प्रजापति को दया आ गयी। तत्पश्चात् अश्विनी कुमारो द्वारा सर्वप्रथम राज्यक्ष्मा की चिकित्सा की गयी। वह चन्द्रमा राज्यक्ष्मा रोग से अश्विनी कुमारो द्वारा अच्छे होकर शक्तिशाली हो गये।

इससे ज्ञात होता है कि राजक्ष्मा की उत्पत्ति का मूल कारण क्रोध एवं अतिमैथुन ही है। या यो कहिये कि बड़ो की श्राप व वीर्य की कमी के साथ तेज या शक्ति की कमी होने से देवताओ को यक्ष्मा रोग पीडित बना सका तो वह साधारण वासियो का क्या कहना।

राजयक्ष्मा=राज+यक्ष्मा=राजा को होने वाला रोग।यह रोग राजा को ही शोभा देने योग्य है क्योकि सर्व प्रथम किसी राजा को ही हुआ था। इसी से इसका नाम राजयक्ष्मा हुआ।

राज्यक्ष्मा के कारण हैं—

१—साहस जन्य यक्ष्मा।
२—वेग सन्धारण जन्य यक्ष्मा।
३—धातुक्षय जन्य यक्ष्मा।
४—विषमाशन जन्य यक्ष्मा।

१. साहस जन्य यक्ष्मा—युद्ध, अध्ययन, भारवाहन, पैदल चलना, लंघन, तैरना आदि से अथवा पतन से, चोट लगने से अथवा अन्य साहस जन्य कार्यशक्ति से ज्यादा बलपूर्वक कार्य करने के कारणों से फेफडा घाव युक्त हो जाता है जिसके कारण पित्त तथा कफ इन दोनो दोषो का उदीरण करती हुई कुपित वायु दौडने लगती है।

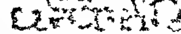
लक्षण—यह कुपित वायु सिरत मे स्थि हो तो शिरःशूल, गले मे आश्रय लेकर गले मे हमेशा धुआ सा रहना, कास, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्व मे स्थित होकर पार्श्वशूल, गुदा के मार्गो मे स्थित होकर मल भेदक, जम्भाई, ज्वर, वक्षस्थल मे स्थित होकर वक्षशूल को करता है।

जर्जर वक्ष से कष्टदायक उर शूल से पीडित रोगी को खासी आने से फेफडे के अन्दर क्षत होने से जो रोगी रक्त युक्त कफ त्यागता है। इस प्रकार साहसजन्य यक्ष्मा ११ लक्षणो वाला होता है अत आचार्य चरक की आज्ञा है कि बुद्धिमान व्यक्ति अपने हिम्मत से अधिक श्रम या साहसिक कार्यो को कदापि न करे।

२ वेग सन्धारण जन्य यक्ष्मा—जब मनुष्य लज्जावश, घृणावश, भयवश, वायु, मूत्र-पुरीष के वेग को रोक लेता है। यानि कहने का तात्पर्य यह है कि लाज या घृणा या डर के कारण हवा, मूत्र, ट कट्टी जबरदस्ती रोकने से, उदर, नीचे, अवयांग, को कफ पित्त को प्रेरित करता हुआ कुपित वायु निम्नांकित विकारो को उत्पन्न करता हे।

लक्षण—प्रतिश्याय (जुकाम), खासी, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, शिर शूल, ज्वर,कन्धो की पीडा, अगो मे दर्द, बार बार वमन् तथा विड् भेद (मलभेद) ये ग्यारह लक्षण होने से यक्ष्मा रोग बडा कहा गया है।

३ धातुक्षय जन्य यक्ष्मा—ईर्ष्या, उत्कंठा, भय, त्रास, क्रोध, शोक से तथा दौर्बल्य, अत्यन्त मैथुन व उपवास करने से शुक्र तथा ओज क्षीण हो जाता है। इस प्रकार



स्नेह के क्षय हो जाने से वायु प्रबल होकर वहाँ के दोनों कफ-पित्त को उदीर्ण करता हुआ प्रतिश्याय, ज्वर, खांसी, अंगो मे दर्द, शिर मे दर्द, श्वास, कन्धो मे जलन, अरुचि, पार्श्वशूल, मलभेद, स्वरक्षय इन ग्यारह लक्षणो को करता हुआ धातुजन्य क्षय से उत्पन्न प्राणनाशक महारोग राजयक्ष्मा को बतलाते हैं।

४. विषमाशनजन्य यक्ष्मा—विविध अनुपानो को विषमता से सेवन करने से व्यक्ति के वातादि दोष दारुण और कष्टसाध्य रोगो को उत्पन्न करते हैं। वैषम्य के विषमभाव को प्राप्त हुए दोष रुधिरादि के स्रोतो को अवरोध करके रोगो को उत्पन्न करते हैं तथा धातुयें पुष्ट नही होती। आचार्य चरक के आदेशानुसार बाजार की बनी हुई खाद्य सामग्री, खटाइयुक्त भोजन, साग के साथ दूध वगैरह चीजें खाने से आहार की विषमता से जो दोष पैदा होते हैं उससे रुधिर आदि स्रोतो को रोककर अनेक रोगो को उत्पन्न करते हैं जिससे धातुयें पुष्ट नही होती। अत उपरोक्त चीजें न खाने का उनका आदेश है।

लक्षण—प्रतिश्याय, प्रसेक, खांसी, वमन, अरोचक, ज्वर, असताप, रक्तवमन, पार्श्वशूल, शिर शूल, स्वर भेद, इन ग्यारह लक्षणो से युक्त कफ, पित्त तथा वातजन्य लक्षण यथाक्रम जानें। चरक ने राजयक्ष्मा को व्याधियो का समूह, रोगो का राजा, ग्यारह लक्षण युक्त, चार प्रकार के कारण बताये हैं।

चारो यक्ष्माओ के ११–११ लक्षण—

साहसजन्य यक्ष्मा—अरुचि, उर शूल, कठोध्वंस, कास, जृम्भा, ज्वर, पार्श्वशूल, मलभेद, रक्तवमन शिर शूल, स्वर भेद।

वेगावरोधजन्य यक्ष्मा—अरुचि, अगो मे दर्द, कन्धो मे पीडा, ज्वर, खासी, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, वमन, मलभेद, शिर शूल, स्वर भेद।

धातुक्षयजन्य यक्ष्मा—अरुचि, अङ्गमर्द, कास, ज्वर, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, मलभेद, श्वास, कधो मे जलन, शिर शूल, स्वर भेद।

विषमाशनजन्य यक्ष्मा—अरुचि, अन्सताप, कास, ज्वर, पार्श्वशूल, प्रतिश्याय, प्रसेक, वमन, रक्त वमन, शिर शूल, स्वर भेद।

अर्थात् [illegible] में [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है।

वायु से [illegible], कन्धो [illegible], अरुचि।

पित्त—से ज्वर, दाह, अतिसार, थूक में रक्त जाना।

कफ—से सिर का भारी होना, भोजन मे अरुचि, कास, कण्ठोध्वंस।

ये ग्यारह के गुण वायु-पित्त कफ से ११ लक्षण हुए।

भोजन मे अरुचि, ज्वर, थकान, थूक मे रक्त जाना, एव स्वर बैठ जाना इस प्रकार राजयक्ष्मा के ६ लक्षण भी होते हैं।

राजयक्ष्मा के तीन प्रसिद्ध लक्षण—कान्धे और पसलियो मे पीडा, हाथ पैरो मे जलन, और सम्पूर्ण शरीर मे ज्वर होता है।

सुश्रुतसंहिता मे—कास, ज्वर, रक्तपित्त ने राजयक्ष्मा के तीन लक्षण बताये हैं। यक्ष्मा रोग त्रिदोषज यानि सन्निपातिक रोग होता है परन्तु इसमे कफ प्रबल रहता है। यह रोग चिरकाली होता है अर्थात् शरीर मे धीरे-धीरे व्याप्त होता है। अत इसकी तीन अवस्था होती हैं।

प्रथमावस्था—सर्व पहले राजयक्ष्मा शुरू होने के लिए जुकाम अधिक दिन तक लगातार रहकर बिगड जाता है,

जुकाम के साथ खासी कभी-कभी आ जाती है। फिर मन्द-मन्द ज्वर रहने लगता है। ध्यान न देने पर हाथ-पाव मे जलन व कन्धो तथा पसलियो मे दर्द होता है, भूख मे कुछ कमी हो जाती है।

द्वितीय अवस्था—रोग बहुत धीरे-धीरे बढना शुरू हो जाता है। शाम को शरीर मे भारीपन, भूख न लगना आंखो मे हल्की जलन व रात में पसीना आना, खांसी का बढ जाना, और दुर्बलता शुरू हो जाती है। रोगी को प्रथमावस्था मे ज्वर का अनुभव नही होता बल्कि इस अवस्था मे भी ज्वर अधिक मालूम नही पडता। प्रात काल ज्वर नही रहता या कम रहता है। शाम को रोग के अनुसार ९९ अ श से १०२ फा० या इससे अधिक भी रह सकता है। नाडी की गति ११० या इससे अधिक प्रति मिनट हो जाती है। कभी-कभी रोगी को वीर्यस्राव भी हो जाता है। बहुत परेशानी बढ जाने पर खांसी के साथ खून भी आने लगता है।

तृतीयावस्था—इस अवस्था मे ज्वर व कास बहुत बढ़ जाती है। कफ पूर्व से गाढा व चिपचिपा अधिकाधिक गिरने लगता है इसमे खून भी आता है। कफ (पीव) युक्त और दुर्गन्धि देता है। रोगी को किसी प्रकार आराम नही मिलता है परेशान रहता है ताकतहीन बिलकुल हो जाता है कहा तक लिखू कि बैठ भी नही सकता है स्वर बदल जाता है। पैरो मे सूजन आ जाती है अतिसार हो जाता है बाल झरने लगते हैं। पसीना इतना अधिक आता है कि २ या ३ कपड़े भीग जाते हैं, जीवनीशक्ति कम हो जाती है।

असाध्य लक्षण—

१ स्वर भेदादि उपर्युक्त ११ लक्षणों अथवा नीचे लिखे कास, अतिसार, पसलियो की पीडा, स्वर भेद, अरुचि एव ज्वर, इन ६ लक्षणो से अथवा कास, श्वास, थूक मे रक्त आना, इन तीन लक्षणो से पीडित यक्ष्मा रोगी को असाध्य कहते हैं।

२ सभी ११ लक्षणो से युक्त या ६ अथवा ३, मास एव बल क्षीण जब हो जाय तभी रोगी वर्ज्य है किन्तु चाहे उपरोक्त सभी लक्षण मौजूद हो परन्तु रोगी मास एव बल से युक्त है यानि मास व बल से क्षीण नही तब वह किसी भी दशा मे हो उसकी चिकित्सा अवश्य करे।

३ अधिक भोजन करने पर भी क्षीण होने वाले अतिसार से पीडित, अडकोप तथा उदर मे सूजन युक्त यक्ष्मा रोगी असाध्य है।

४ श्वेत नेत्र वाले, अन्न से द्वेषी, उर्द्धश्वास से पीडित, मूत्रकृच्छ से युक्त रोगी को यक्ष्मा शीघ्रातिशीघ्र मार डालता है।

पूर्वरूप—

जब यक्ष्मा होने को होता है तो सर्व प्रथम श्वास, अगो मे दर्द, कफ का अधिक निकलना, तालु का सुखना, वमन, (परन्तु भोजन पश्चात्) अग्निमाद्य म ती, जुकाम, खासी, नीद की अधिकता, आंखो मे सफेदी, मास भक्षण एव मैथुन की अधिक इच्छा होती है।

स्वप्न—रोगी को स्वप्नावस्था मे कौवा, शुक (सुग्गा) नीलकण्ठ, साही, गिद्ध, कपि, गिरगिट, वहन करते हैं। तथा वह सूखी नदियो को और सूखे वृक्षो को, धूआ एवं दावानल को स्वप्न मे देखता है। स्वप्न भी रोग का सूचक या पूर्व लक्षण ही है।

राजयक्ष्मा चिकित्सा

१ पचमूल—अरणी (टेकार), श्योनाक, पाढल की छाल, बेल व गम्भारी इन सबका स्वरस और चौगुने दूध मे सिद्ध घी यक्ष्मा के सात रूप वालो को १ स्वर भेद, २ शिर शूल, पार्श्वशूल, कास, श्वास तथा ज्वर को जीत लेता है।

२ मुलहठी, सोया, कूठ, तगर, चन्दन इन पाचो द्रव्यो को घृत के साथ पीसकर लेप करने से शिर पार्श्व तथा असशूल नाशक है।

३ काल वञ्चक रस (रसराज सुन्दर) २ रत्ती, दशमूल घृत ६ माशा। दशमूल के पकाये दूध से सिद्ध नया घी या पाचो पचमूल के साथ दूध पकाकर जो घृत निकले उसे दशमूलादि घृत कहते हैं—(च० चिकित्सा अध्याय ८) २-१ दिन तक सेवन करने से यक्ष्मा रोग दूर हो जाता है।

४ कुमदेश्वर रस १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशा। १ मात्रा—उपरोक्त घृत के साथ दिन मे ३ बार सेवन करने से राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था मे अवश्य फायदा



होता है परन्तु ४० दिन तक प्रयोग करना चाहिए।

५ चन्द्रामृत रस २ रत्ती, प्रवाल भस्म चन्द्रपुटि २ रत्ती, तालीसादि चूर्ण २ ग्राम। १ मात्रा—शर्बत गुल बनफ्सा के साथ प्रयोग करें।

इसके प्रयोग से ज्वर, मंदाग्नि, पास व खांसी के साथ खून आना, दाह व प्यास की शान्ति होकर रोगी को ठीक कर देता है दिन में ३ बार प्रयोग करें। निर्धन रोगी १ मास तक सेवन करे।

६ वृहद्स्वर्णकाञ्चनाभ्र रस—भैषज्य रत्नावली

७ मृगांक रस—भैषज्य रत्नावली

८. यक्ष्मान्तक लौह—भैषज्य रत्नावली

९ यक्ष्मारि लौह—भैषज्य रत्नावली

१० रत्नगर्भ पोटली रस—भैषज्य रत्नावली

११ राजमृगांक रस—भैषज्य रत्नावली

१२ शिलाजतु योग—योगरत्नाकर

१३ सर्वांग सुन्दर रस—भैषज्य रत्नावली

१४ सुवर्ण भूपति रस योगरत्नाकर मात्रा १ रत्ती अदरक के रस व पीपल के चूर्ण तथा मधु के साथ। जैसे सूर्य के सम्मुख अन्धकार नही टिक सकता वैसे ही सुवर्ण भूपति रस के सामने रोग नही टिक सकता है।

१५ हेमाभ्रक रस सिन्दूर (योगरत्नाकर) २ रत्ती अदरख रस के साथ।

१६. क्षय केशरी रस (रसराज सुन्दर) १ रत्ती पीपल चूर्ण मधु के साथ।

१७ क्षयकुठार रस (रस योगसार) २ रत्ती पीपल चूर्ण मधु के साथ।

१८ क्षय कुलान्तक रस (रस चण्डांसु) २ रत्ती पीपल चूर्ण मधु के साथ।

प्रथमावस्था—

१ वृ० सुवर्ण मालिनी वसंत रस (रस योगसागर) २ रत्ती या स्वर्णवसंत मालिनी (सिद्ध योगसंग्रह) २ रत्ती. २ अभ्रक भस्म शतपुटी १ रत्ती, ३. प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, ४ शृंगभस्म ४ रत्ती, ५. गुडूचीसत्व (गिलोयसत्व) १ माशा, ६ सितोपलादि चूर्ण १ माशा। १ मात्रा—घी ६ ग्राम, मिश्री ६ ग्राम मे सेवन सुबह शाम करें।

च्यवनप्राश अवलेह १० बजे, ४ बजे (शार्ङ्गधर संहिता) २ तोला बकरी का दूध १६ तोला पानी, १० तोला [illegible] छोटी पीपल १ [illegible] कर दूध मात्र [illegible] पर उबला हुआ [illegible] पान कर जाय।

भोजन बाद—द्राक्षारिष्ट १।। तोला, लोहासव १ तोला समभाग जल मिलाकर दोनों समय सेवन करें।

मालिश वास्ते—मालिश के लिए चन्दनादि लाक्षादि तैल की रोज मालिश करने से यक्ष्मा ४० दिन में प्रथमावस्था मे ठीक हो जाता है।

द्वितीय अवस्था—

१ जयमंगल रस १ रत्ती (भैषज्यरत्नावली) २. बसन्त कुसुमाकर रस १ रत्ती (सिद्ध योग संग्रह), ३. मुक्ता पंचामृत २ रत्ती (योग रत्नाकर), ४. गिलोय सत्व २ रत्ती, ५. सितोपलादि चूर्ण ६ रत्ती। १ मात्रा—सुबह शाम शहद के साथ चाटनी चाहिये।

वासावलेह (आरोग्यप्रकाश) या वासाहरीतकी अवलेह (सिद्धयोगसंग्रह) १० बजे ४ बजे १० ग्राम नं० १ के दूध के साथ सेवन करें।

दशमूलारिष्ट १ तोला द्राक्षारिष्ट १ तोला काडलिवर आयल १ तोला, ४ तोला जल मिलाकर भोजन के आधा घन्टा पश्चात् सेवन करायें।

मालिश के लिए—वृहद विष्णु तेल २ औंस (भैषज्यरत्नावली), वासा चन्दनाद्य तेल २ औंस (भैषज रत्नावली) मिलाकर दिन में २ बार मालिस करनी चाहिए।

तृतीयावस्था—

सिद्ध मकरध्वज रस नं० १ (निर्मल आयु० संस्थान द्वारा निर्मित) १ रत्ती, मुक्तापिष्टी २ रत्ती, अभ्रकभस्म पुरानी सहस्रपुटी (निर्मल) १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ ग्राम, गिलोयसत्व २ ग्राम। १ मात्रा। या श्रृंगभस्म १/४ रत्ती, स्वर्णभस्म १/२ रत्ती, अभ्रकभस्म सहस्रपुटी १ रत्ती, रससिन्दूर १ रत्ती, मुक्ता पिष्टी २ रत्ती। ३ मात्रा-१ मात्रा सुबह शाम, जीरा भुना हुआ चूर्ण २ ग्राम मधु या कासहारी शर्बत के साथ प्रयोग करायें।

१० बजे, ४ बजे एलादि मन्थ १ तोला उपरोक्त नं० १ के दुग्ध के साथ पान करें। भोजन मे मांस का रस

चूजा (मुर्गी का छोटा बच्चा) मांस विधि से बनाकर १/२ तोला मृत संजीवनी सुरा के साथ देना चाहिए।

मालिश के लिए नं० २ की तेल की मालिश दिन मे २ वार करनी चाहिए।

अन्य दवायें—

भस्म—लौहभस्म, सहस्रपुटित या शतपुटी, रौप्य-भस्म, सुवर्ण भस्म, प्रवालपिष्टी, मुक्ता पिष्टी, अभ्रक भस्म, शृंगभस्म, सप्तरत्न भस्म, हीरा भस्म।

वटी—महाभ्रवटी—रस रत्नाकर।

अवलेह—वासावलेह, च्यवनप्राश अवलेह, कटकारी अवलेह, सितोपलादि अवलेह, भृगु हरीतकी अवलेह, हृदयामृत अवलेह, एलादि अवलेह, शतावर्यादि अवलेह।

आसव—दशमूलारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, वासारिष्ट, द्राक्षासव।

रात्रिस्वेद—नारसिंह रस। वृ० स्वर्ण मालिनी वसत, क्षयकुठार रस।

चरक चिकित्सा क्रम से कुछ-(चरक चिकित्सा अध्याय ८)

सितोपलादि चूर्ण या अवलेह, दशमूलादि घृत, दुरालभादि घृत, जीवन्त्यादि घृत, वलादि क्षीर, यमानी खाडव चूर्ण (अरोचक चिकित्सा), तालीसादि चूर्ण, पञ्चकोलादि घृत, रास्नादि चूर्ण।

राजयक्ष्मा व क्षतक्षीण की एलोपैथिक चिकित्सा
(जो आजकल बहुत प्रचलित है)

प्रथमावस्था—

आईसोनेक्स १०० एम. जी टेबलेट १ (फाइजर), सिलीन १०० एम जी टेबलेट १ (ग्लैक्सो) विटामिन वी कम्पलेक्स टेबलेट १(एलम्बीक)केपलीन टेबलेट १(ग्लैक्सो) १ मात्रा—सुबह-दोपहर-शाम जल से।

सारकोफिराल(एलम्बीक)१ चम्मच, कोरामीन ड्राप्स (सीवा)१० बूद। १ मात्रा—१० वजे, ४ वजे वकरी के दूध के साथ सेवन करे।

एमीनावस (P A S) ग्रैनुल होचेस्ट का १ चम्मच से शुरू कर ३ चम्मच तक जल से भोजन के वाद दोनो समय लेना चाहिए।

अधिक खासी होने पर—

वेनाड्रील पी डी या हिस्टानील एक्सपेरोन्ट सीरप स्वास्तिक दुलहीपुर का २ चम्मच ८ वजे, २ वजे, व आठ वजे रात चाटना चाहिये।

द्वितीयावस्था—

सुबह—नाईड्रेजिड ५० एम जी टेबलेट १ (स्क्विब) दोपहर—रिडावसन १०० एम जी टेबलेट १(रोश) केपलीन टेबलेट १(ग्लैक्सो)शाम—विटामिन वी कम्लेक्स टेबलेट १(एलम्बीक),कैलशियम लेक्टेट टेबलेट १ यू फार्मा लेबोरेटरीज, फेरम सल्फेट कम्पाउण्ड टेबलेट १ यू फार्मा लेबोरेटरीज। १ मात्रा—पाउडर बनाकर जल से लें।

१० वजे—फैराडाल पार्क डेविस १ चम्मच। ४ वजे—वेरीटाल ड्राप वोहृरिगर नाल १० बूद। १ मात्रा।

भोजन के वाद—टीवीजाईड विथ कैलशियम पास एण्ड वी विटामिन कोटेडग्रैनुल(Albred Devid एलब्रेड डेविड) भोजन वाद १ चम्मच जल से दोनो समय। या एमीनावस कैलशियम (होचेस्ट)।

साथ ही साथ स्ट्रेप्टोमाईसीन का १ ग्राम २ सी सी परिश्रुतजल के साथ घोल बनाकर मास पेशीगत् सूचीवेध करना चाहिए। कम से कम १ माह तक प्रयोग करें। अधिक खासी होने पर स्ट्रेप्टो पेन्सलीन का १ ग्राम ३ सी सी. परिश्रुत जल के साथ घोल बनाकर नितम्ब मांस पेशीगत् केवल १० दिन तक सूचीवेध करना चाहिए फिर वही क्रम चालू रखना चाहिए।

रक्त निष्ठीवन पर—

क्लाउडेन १ टेवलेट, स्ट्रेप्टोविट १ टेवलेट, सिलीन १ टेवलेट, कैलशियम लेक्टेट १ टेवलेट, केपलीन १ टेवलेट। १ मात्रा देना चाहिए। और सारकोफिराल के साथ १ चम्मच ओस्टो कैलशियम सीरप ग्लैक्सो का या फेराडाल के साथ मैकालविट सीरप सैन्डोज का १ चम्मच लेना चाहिए।

तृतीय अवस्था—

तृतीयावस्था शुरू होते ही वही स्ट्रेप्टोमाईसीन १ ग्राम तथा मैकालविट सैन्डोज का १॥ सी सी या ओस्टो-कैलशियम विथ १२ (ग्लैक्सो) का मिलाकर मासपेशी गत १० दिन तक लगाना चाहिये।

स्ट्रेप्टोमाईसीन १ ग्राम, मैकालविट १॥ सी सी, वाटरफार इन्जेक्शन २ सी सी। १ मात्रा प्रतिदिन मास पेशीगत १० दिन तक।

—शेषाप पृष्ठ ३८७ पर देखें।

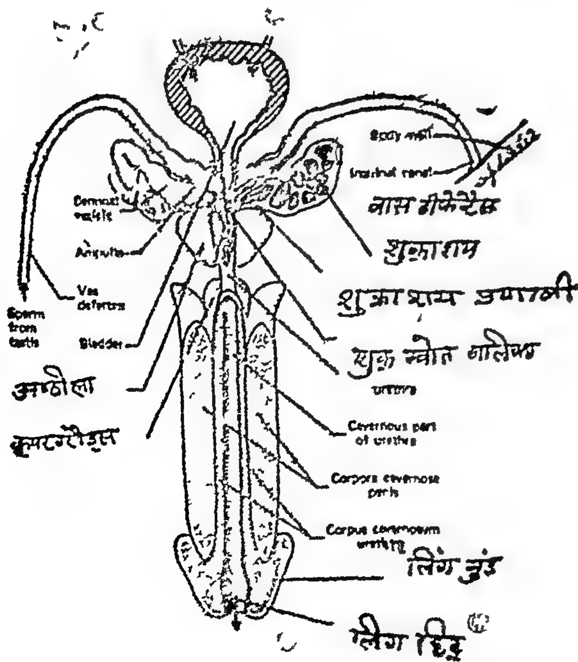
पौरुष ग्रन्थि वृद्धि एवं वृद्धावस्था

(१) डा० महेन्द्र कुमार शर्मा एम०ए०, ए० एम०बी-एस० (लखनऊ), प्रवक्ता काय-चिकित्सा
(२) डा० दिनेशचन्द्र गुप्ता बी०ए०एम०एस० (कानपुर) रेजीडेन्ट मेडीकल आफीसर।
ललितहरि राजकीय आयुर्वेदिक कालेज एवं आतुरालय, पीलीभीत (उ०प्र०)

पौरुष ग्रन्थि वृद्धि वृद्धावस्थाजन्य एक कष्टदायक रोग है। श्री ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत के प्रवक्ता डा० महेन्द्र कुमार शर्मा एवं रेजीडेन्ट मेडीकल आफीसर डा० दिनेशचन्द्र गुप्ता ने रोग के कारण लक्षण एवं चिकित्सा का सांगोपांग वर्णन किया है जो पठनीय एवं उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास विशेष सम्पादक

इस वृद्धावस्था मे शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गो व इन्द्रियों की कार्यमन्दता के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओं को सम्पन्न कराने वाली ग्रन्थियां भी अपना समुचित सहयोग देना बन्द करने लगती हैं। मानव शरीर की पौरुष (अष्ठीला) ग्रन्थि भी उक्त विकृति का अपवाद नहीं है। पुरुषो में यह ग्रन्थि मूत्र स्रोतस के ऊपरी सिरे तथा मूत्राशय के निम्न द्वार को घेरे हुए लगभग २०-२५ ग्राम भार की, चैस्नट सदृश ४×३×२.५ से०मी० आकार की तथा एक मध्य एवं दो पार्श्व खण्डों से युक्त होती है। इसके दोनो ओर के स्रोत मूत्र स्रोत (Urethra) मे खुलते हैं। यह ग्रन्थि ग्रन्थिल ऊतको (Glandular Tissue) को घेरे हुए मांस सूत्रों (Muscles Fibers) से बनी होती है एवं सौत्रिक तन्तुओं (Fibrous Tissue) के कैपसूल से ढंकी रहती है। वास्तव मे इसी ग्रन्थि के द्वारा मूत्राशय का निम्न द्वार (Sphincter) बनता है। इस ग्रन्थि का पतला स्राव शुक्र का सहायक स्राव होता है जो शुक्राणुओं को गति प्रदान करता है। लगभग ५०-५५ वर्ष से ऊपर के वृद्ध पुरुषो मे यह ग्रन्थि आकार में कुछ बडी हो जाती है, जिसे पौरुष ग्रन्थि वृद्धि कहते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र के अन्तर्गत इसका वर्णन मूत्राघात मे वर्णित मूत्राष्ठीला एवं मूत्र ग्रन्थि के नाम से मिलता है।



कारण एवं रोगकारिता—

वृद्धावस्था मे पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि का मुख्य कारण हार्मोन-असन्तुलन होना है। इस आयु में प्राय पुरुष हार्मोन-टेस्टोस्टेरोन की उत्पत्ति कम हो जाती है तथा

स्त्री हार्मोन ईस्ट्रोनन की उत्पत्ति अपेक्षाकृत उतनी कम नहीं हो पाती है। इस प्रकार स्वभावत होने वाले हार्मोन-असतुलन से प्राय दो प्रकार की वृद्धि होती है—

(१) स्नायु तंतु वृद्धि (Fibro-adenoma of Prostatic enlargement)

(२) पौरुष ग्रन्थि वृद्धि (Carcinoma or Middle Lobe (mostly enlargement)

ग्रन्थि के पार्श्व खण्डो एव स्नायु ततु की वृद्धि से मूत्रोत्सर्ग हेतु जोर लगाने पर मूत्राशय पर भार पड जाता है। फलस्वरूप दोनो पार्श्व खण्ड अन्दर की ओर पास-पास आ जाते है जिससे मूत्राशय का निम्न द्वार (Sphincter) बन्द हो जाता है एवं इसीके कारण मूत्र निकलना भी बन्द हो जाता है।

पौरुष ग्रंथि वृद्धि मे आकृति विषम एव कठिन हो जाती है। प्राय मध्य खण्ड प्रभावित होता है। जो Sphincter मे ऊपर की ओर बढती है। रोगी के मूत्रोत्सर्ग के समय जोर लगाने से Interavesicular भार बढ जाता है तथा खण्ड नीचे की ओर झुककर Sphincter को बन्द कर देता है। अत मूत्र अवरुद्ध हो जाता है। आयुर्वेद के अनुसार इस रोग का कारण प्रवृद्ध वात एव कफ से रक्त दुष्टि बताया है।

लक्षण

(१) बहुमूत्रता (Polyurea)—पौरुष ग्रन्थि के मूत्रमार्ग या मूत्राशय के अन्दर की ओर आ जाने से सर्व प्रथम रात्रि मे मूत्र प्रवृत्ति अधिक (लगभग ३-४ बार) होती है। मूत्र अवरोधनी(Sphincter Vesicle) के खिच जाने से मूत्र त्याग की इच्छा बार बार उत्पन्न होती है।

(२) काम शक्ति लोप(Loss of Sexual Power)-प्रारम्भ मे पुरुष की कामशक्ति कुछ बढ जाती है लेकिन ग्रन्थि के कुछ बडे होने पर कामशक्ति लुप्त हो जाती है।

(३) मूत्रकृच्छ्र—मूत्र करते समय काफी देर के बाद बूंद-बूंद करके उतरती है। मूत्र की धार निर्बल हो जाती है। आगे दूर न गिर कर बिल्कुल नीचे गिरती है।

(४) मूत्राघात—अत्युष्णपान, मद्यपान, अतिशीत सेवन, दीर्घयात्रा या दीर्घकाल तक आराममय बिस्तर पर पड़े रहने से मूत्राघात हो जाता है। जिसके फलस्वरूप तीव्र उदरशूल जोकि वंक्षण की ओर गमन करता हुआ पाया जाता है।

(५) रक्त मूत्र—ग्रंथि के मध्य खण्ड से सम्बन्धित रक्तवाहिनियो मे विस्फार के कारण मूत्र के साथ शुद्ध रक्त (Fresh blood) आने लगता है। इस अवस्था को रक्त मूत्र कहते हैं।

निदानार्थ परीक्षा—

(१) उदर गत परीक्षण—मूत्राशय तनावयुक्त मिलता है। वृक्क स्पर्शगम्य हो जाते है।

(२) गुद परीक्षण—ग्रंथि की वृद्धि स्पष्ट चिकनी, कठिन एव मध्य परिखा का अनुभव किया जा सकता है। गुदपेशी पौरुष ग्रंथि से अलग स्पर्श गम्य होती है।

(३) आयु प्राय. ५५ वर्ष से ऊपर एवं लक्षण धीरे-धीरे उत्पन्न होते हैं।

(४) अन्तिम अवस्था मे देर तक मूत्र रुके रहने से वृक्को द्वारा यूरिया पूर्णरूपेण न निकल पाने पर उसके रक्त मे मिल जाने से यूरीमिया (मूत्र-विषमयता) उत्पन्न हो जाती है।

निश्चयात्मक परीक्षण—

(१) मूत्र परीक्षा—विशिष्ट गुरुत्व कम हो जाता है।

(२) रक्त परीक्षा-यूरिया की उपस्थिति पाई जाती है।

(३) मूत्राशय दर्शी नाडी यत्र द्वारा परीक्षण (Cystoscopy Examination)—पौरुष ग्रंथि के खण्ड के आकार की जानकारी।

(४) गोणिका चित्र (Intra - Venus Pyelography)—वृक्क के कार्य, जल वृक्कता की जानकारी।

(५) मूत्राशय दर्शी नाडी चित्र (Cystograph Examination)—ग्रंथि के बढ जाने के कारण टोपी के आकार का अवकाश मिलता है।

(६) प्रोस्टेट कैन्सर मे सीरम एसिड फास्फेट ५ K A. यूनिट से अधिक मिलता है।

सापेक्ष निदान—

(१) मूत्राश्मरी—इसमे गुद परीक्षण मे ग्रंथि का अनुभव नही होता है।

—मूत्र परीक्षा मे शर्करा, फास्फेट, आक्जीलेट आदि की उपस्थित पाई जाती है।



—यह प्राय अपेक्षाकृत युवा एव तरुणावस्था में पाई जाती है।

—इसमे दाहयुक्त अत्यधिक तीव्र उदरशूल पाया जाता है।

चिकित्सा

(१) सर्व प्रथम रोगी को वेदनाशामक औषधि दे।

(२) पौरुष ग्रंथि के शोथ को कम करने के लिए पौरुष ग्रंथि को दबाये।

(३) पुरुष हार्मोन टेस्टोस्टीरोन देते है।

Inj Testosteron 25 mg मासपेशीगत सप्ताह मे दो वार। या

Tab Methyle Testosterone 5 mg गोली दिन मे ३ वार।

(४) Pristole Cancer अवस्था मे Stilbesttrol 5 mg की मात्रा दिन मे ३ वार देने से तथा धीरे धीरे वढाकर प्रतिदिन 25 mg देने से रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है।

(५) मूत्र विस्रावण नाडी यत्र (Self retaining catheter) द्वारा मूत्र निकाल लें। हालाकि यह रोग असाध्य है एव केवल शस्त्र चिकित्सा ही इस रोग के उन्मूलन के लिए प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय चिकित्सा —

(१) गोक्षुर मूल दूध मे पकाकर शर्करा एव मधु से दें। (सुश्रुत सहिता)

(२) शुद्ध शिलाजीत ४ डेसीग्राम, शक्कर ६ ग्राम, दशमूल कषाय २५ से ५० मिलीलीटर के साथ देने से अष्ठीला आदि रोगो मे लाभ मिलता है। (योग रत्नाकर)

(३) वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे इस प्रकार के रोगियों पर वरुण शिग्रु क्वाथ २५ से ५० मि० लि० तड़के समय तक देने से आशातीत लाभ मिलता है।

(४) त्रिफला+नमक ५-५ ग्राम व द्राक्षासव १५ से २५ मिली. प्रात साय दें।

(५) गरम जल से कमर तक अवगाहन मूत्र प्रवृत्ति मे लाभदायक होता है।

शल्य चिकित्सा—यह रोग शल्य प्रधान है। औषधि चिकित्सा मे लाभ न होने पर कुशल शल्यज्ञ के पास परामर्श के लिए भेजना चाहिए। इस रोग मे निम्न विधियो से शल्य कर्म किया जाता है—

(१) मैक्कर्थी विधि (Mecorthy method or Transurethral Prostectomy)

(२) फ्रेयर विधि (Freyer's method or Supra-pubic Prostectomy)

(३) मिलिन की विधि (Millin's method or Retropubic Prostectomy)

(४) यङ्ग विधि (Young's method or Perineal prostectomy)

उपरोक्त वर्णित विधियो मे से यग विधि (Perineal Prostectomy) केवल अमरीका मे ही की जाती है। एव भारतवर्ष मे इस विधि से यह शल्य कर्म प्राय नही किया जाता है। अन्य विधियो में प्राय फ्रेयर विधि द्वारा इस रोग की चिकित्सा की जाती है।

(२)

पौरुष ग्रन्थि वृद्धि की चिकित्सा

प्राचीनाचार्यों के अनुसार प्रायः सभी रोगो मे स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, लघन आदि कई क्रियायें बतलाई हैं जो देश काल और रोगी की अवस्थानुसार चिकित्सक को करवानी चाहिए। इस रोग मे रोगी को ८-१० दिन तक अन्नाहार बिलकुल बन्द करके फलाहार देना चाहिए। सायकाल के बाद तरल पेय फल नही देने चाहिए। पीने के लिए गरम पानी और यदि रोगी को कोष्ठबद्धता (कब्ज) हो तो अन्य रेचक औषधियो की अपेक्षा गरम पानी का एनिमा ही श्रेयस्कर है। प्रतिदिन प्रातःकाल १० मिनट तक कटि स्नान के पश्चात् समीप के बाग-बगीचे अथवा स्वच्छ स्थान पर रोगी को घूमने का आदेश देना चाहिए।

खाने के लिए रोगी को —

सोडाबाई कार्ब, यवक्षार, मूलकक्षार, नवसार, शीतल-

चीनी और शंख भस्म ४-४ रत्ती लेकर इन सबकी ४ पुड़िया बनाकर एक सुबह ५ बजे, दूसरी १२ बजे तीसरा सायं ५ बजे और चौथी रात मे १० बजे १-१ तोला नारिकेल जल एव चन्दनासव मे २ तोला पानी मिलाकर देनी चाहिए।

पेडू पर टेसू के फूल बाधना भी श्रेयस्कर है। यदि इससे पेशाब साफ न उतरे तो रबर के कैथीटर द्वारा रोगी की पेशाब उतारनी चाहिए। जहा तक हो सके धातु के कैथेटर का प्रयोग नही करना चाहिए, क्योकि ९०% रोगियो को पेशाब मे खून आने लगता है। यदि रबर का कैथीटर २-३ दिन तक लगाने की जरूरत पड जावे तो कोई हानि नही है। सिर्फ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब भी कैथेटर लगावे गरम पानी से साफ करलें। जहा औषधिया पेशाब उतारने मे असफल हो जाती है वहा पेडू पर काली मिट्टी की पट्टी बाधने से कुछ ही घण्टो मे पेशाब उतर जाती है।

यदि पेशाब बूद-बूद आती हो तो वैद्य रत्न मे लिखित निम्न योग चावल के जल या गुड के साथ दें—

चटक द्रव—इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, पिप्पलादि। यदि पेशाब मे खून आता हो तो नम्बर १ वाले योग में स्फटिक भस्म ४ रत्ती मिलाकर रोगी को देवें।

कोष्टबद्धता (कब्ज) की अवस्था मे यदि एनिमा सम्भव न हो सके तो उष्ण जल मे ३ ग्राम की मात्रा मे त्रिफलादि चूर्ण देना श्रेयस्कर है।

चन्दनप्रभा, चन्द्रप्रभावटी, गोक्षुरादि गुग्गुल, आरोग्य-वर्धनी, वग भस्म, नाग भस्म, वगेश्वर, काकायन गुटिका, लोह भस्म, श्वेत पर्पटी, पुनर्नवा की जड का चूर्ण आदि रोगी को अवस्थानुसार दें।

रात्रि मे टी कौर भी रोगी के लिए उचित है। इसके लिए एक लम्बे और ६ इन्च चौडे कपडे को लेकर पानी मे भिगोकर निचोड लेना चाहिए। इसके बाद पेडू मे चारो तरफ लपेट कर जननेन्द्रिय एवं पौरुष ग्रन्थि के ऊपर से लेते हुए पीछे की ओर लेजा के ऊपर से सूखा ऊनी वस्त्र अच्छी तरह लपेट देना चाहिए।

आजकल के वैज्ञानिक लोग इस रोग पर 'स्टेरीन' नामक इन्जेक्शन प्रयोग करते हैं। "प्रोस्टेटीन एक्स" नामक औषधिया भी श्रेयस्कर है। स्पेमेन फोर्ट" गोलिया भी प्रात साय २-२ गोली पानी के साथ दें।

पथ्यापथ्य—इस रोग मे पुराना चावल, जौ, गेहू, मूली, गाजर, दूध, परवल, गन्ना का रस, सन्तरा, मौसम्मी, कोमल नारियल, इन्द्र आदि वस्तुयें देना चाहिए। शराब, आलू, बैंगन, लालमिर्च, तैक्ष, खटाई आदि नही देना चाहिए। मैथुन सदा वर्जित है। *

राजयक्ष्मा • पृष्ठ ३५३ का शेषांश

स्ट्रेप्टोमाईसीन १ ग्राम, वाटर फार इन्जेक्शन २ सी सी, डेकानुरोल एच स्वास्तिक या मैकावीन एच ग्लैक्सो १ सी सी ५०० का १० दिन के लिए। १ मात्रा।

उपरोक्त डेकानुरोल एच या मैकावीन १००० कर देना चाहिए। साथ-साथ द्वितीय नम्बर की टेबलेट व प्रथम नम्बर का १० बजे व ४ बजे की दवा तथा भोजन बाद (P A S Sodium) पास सोडियम ड्यूमेक्स या होचेस्ट या यू फार्मा लेबोरेटीज का १ चम्मच से शुरू कर तीन चम्मच तक प्रयोग करें।

प्रार्थना है कि स्ट्रप्टोमाईसीन का कुल ९० या स्ट्रेप्टो पेन्सलीन १ ग्राम का १० व स्ट्रेप्टोमाईसीन का ९०—१०० इन्जेक्शन तथा प्रथमावस्था का वा द्वितीयवस्था का योग साथ साथ प्रयोग कराने से रोग आराम हो जाता है। यह दवा करते समय हर माह मे सीना का एक्सरे व मल-मूत्र, कफ तथा खून की परीक्षा कर रिपोर्ट देखें।

आजकल आयुर्वेदीय औषधि, रुदन्ती बहुत प्रयोग हो रहा है जो निम्न नामो से प्राप्त होता है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम सन् १९५३ मे डा० कृष्ण मूर्ति नानावटी अस्पताल बम्बई मे है वहा पर किया गया था। आज १५ वर्षों मे अधिकाधिक इसके प्रयोग होने लगे हैं—

कैपना प्लेन हिमालय ड्रग टेबलेट, कैपना कम्पाउण्ड हिमालय ड्रग टेबलेट, रुदन्ती कम्पाउण्ड टेबलेट रणजीत फार्मा म्नुफिक्ट इन्दौर, रुदन्ती से बना टिंक्चर (होमियो-पैथिक) मैडिकल हाउस दिल्ली, रुदनो कैपसूल (स्वर्ण बसन्त मालती युक्त)-निर्मल आयु० सस्थान, अलीगढ़। *

ओज-जरा और मधुमेह
एक निदानात्मक अध्ययन

डा. शम्भूशरण मिश्र, एम.डी. (आयु.) द्रव्यगुण विभाग, का.हि.वि.वि., वाराणसी

पारस के सयोग से लोहा भी सोना बन जाता है। आचार्य प्रवर श्री प्रियव्रत जी शर्मा उन उच्च कोटि के आयुर्वेदज्ञो मे हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन ही आयुर्वेद साहित्य सृजन मे व्यतीत हुआ है। जो भी आपके सम्पर्क मे आया अछूता न रहा, आयुर्वेद के पठन-पाठन एव लेखन की ओर बढ़ चला। कितने ही अध्यापको, आयुर्वेदज्ञो एव लेखको के प्रेरणा स्रोत श्री शर्मा जी ने चाहे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे अवकाश ग्रहण कर लिया है तो भी आयुर्वेद एव आयुर्वेदज्ञो से आप दूर नही है और विज्ञान की खोज मे सलग्न हैं।

मैंने विशेषाक हेतु लेख का निवेदन किया जिसके उत्तर मे आप ने लिखा—"डा० शम्भूशरण मिश्र ने मेरे निर्देशन मे एक लेख तैयार किया है जो आपकी सेवा मे प्रकाशनार्थ भेजा जा रहा है। आशा है, यह लेख आपको पसन्द आयेगा—प्रियव्रत शर्मा।"

'ओज, जरा और मधुमेह' विषयक यह लेख मुझे ही यथा सभी पाठको को पसन्द आएगा जिसमें ओज का स्वरूप-कर्म बताकर मधुरस और कफ से अभिन्न सम्बन्ध स्थापित किया है, ओज विकृति तथा मधुमेह का वर्णन करते हुए रसायन की व्यवस्था की है जो पठनीय एवं उपयोगी है।

—शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

ओज क्षय हो जाने पर क्रमश जरा और मृत्यु प्राप्ति होती है।[1] क्योकि ओज सर्व धातुओ का सार अश है। और यदि धातुओ का ही बिना पाचन दोषो के कारण—क्षय होने लगेगा तब ओज का निर्माण ही सम्भव नही होगा—जरावस्था मे धातुओ का समुचित पोषण नही होता और उनके प्राकृत कर्मो का उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है। रसायन द्रव्य से सर्व धातुओ की पुष्टि होती जाती है। इसी कारण चरक ने रसायन को दीर्घमायुष्कर, प्रभा-वर्णस्वर इन्द्रियो के परमबल का दायक कहा है।[2] सुश्रुत ने वय. स्थापक और बलकर कर कहा है,[3] शार्ङ्गधर ने रसायन को जरा और व्याधि नाशक कहा है। अत स्पष्ट है कि रसायन का सेवन भी ओज वर्धक के लिए किया जाता है ताकि व्यक्ति जरा और व्याधि से रहित हो जाय। अत स्पष्ट है कि ओज का क्षय जरा और व्याधि का मूल है।

मधुमेह मे ओजो विकृति—

सभी प्रमेह कालान्तर मे मधुमेह में परिणित हो जाते हैं। प्रमेह के दूष्यो मे ओज की भी गणना की गई है। दूष्य दोषो से दुष्ट हो जाते हैं—उनमे विकृति आ जाती है उनका क्षय होने लगता है—अत प्रमेह मे अर्धांजलि प्रमाण वाला अपर ओज ही दूषित होता है न कि अष्ट बिन्द्वात्मक पर ओज क्योकि पर ओज की विकृति से या ह्रास से मृत्यु हो हो जाती है। ओज मधुर स्वभाव वाला और कफ का ही स्वरूप है। चरक ने इस श्लैष्मिक ओज की मात्रा अर्धांजलि प्रमाण कही है।[4] धातु क्षयजन्य वात से उत्पन्न मधुमेह मे वातिक लक्षण विशेष स्पष्ट होते हैं। आचार्य ने मधुमेह निदान मे स्पष्ट कहा है कि मधुर स्वभाव वाला ओज जब वायु की रूक्षता के कारण कषाय रस से मिलकर मूत्राशय को दूषित करता हुआ निकलता है तब मधुमेह कहलाता है।[5] मधुमेह का प्रधान कारण वायु की प्रबल

---

1 सु० सू० अ० १५ 2 च० चि० १-१ 3 सु० सू० अ० १/७ 4 च० शा० ७/१५
5 च० नि० ४/३७

विकृति ही है। इसका प्रकोप धातुक्षय तथा अन्य दोषो से युक्त होकर होता है–अर्थात् पोषण धातुओ का क्षय होता है–जिससे क्रमशः ओज भी क्षीण होता जाता है–अर्थात् ओज का क्षय होता है। चरक ने निदान कारणो यथा–नूतन अन्न का सेवन, अधिक शयन, आराम, गुरु और स्निग्ध द्रव्यो का अधिक सेवन, परिश्रम न करने से शरीर मे कफ, पित्त मेद और मास की वृद्धि मात्राधिक्य मे हो जाती है–इनकी वृद्धि से अवरुद्ध हुई वायु कुपित हो ओज को लेकर जब मूत्राशय मे प्रविष्ट करती है–तब कष्टकारी और असाध्य मधुमेह की उत्पत्ति करती है–अर्थात् ओजो क्षय होने लगता है।

वाग्भट का यह कहना यथार्थ ही है कि मधुमेही का मूत्र मधुर हो जाता है, शरीर मे मधुरता फैल जाती है।[1] यह मधुर स्वभाव वाले अपर ओज की विकृति से ही सभव है। मधुमेह मे मूत्र कषाय, मधुर, पाण्डु और रूक्षवत् हो जाता है। ओज के क्षय हो जाने पर भी स्वभावत मूत्र मे रूक्षता कषायपन और मधुरता आ जाती है। मधुरता के कारण ही श्लैष्मिक शैत्य से बार-बार मूत्र का त्याग होता है। आचार्य ने प्रमेहो की गणना मे ओजोमेह की भी गणना की है।[2] जो निदान की गणना मे वर्णित मधुमेह ही है। अत स्पष्ट है कि मधुमेह मे ओज की विकृति ही प्रधान होती है। इसी कारण मधुमेह असाध्य होता है। वस्तुत यह रोग वृद्धावस्था मे सर्व धातुओ के क्रमशः क्षरण से उत्पन्न होता है अथवा मास मेद मज्जा रस आदि धातुओ के पचन से अतिरिक्त मात्रा मे वृद्धि के कारण उत्पन्न होती है।[3]

नैमित्तिक रसायन और जरा-व्याधि में उसका उपयोग—

शारीरिक सर्वधातुओ का पुनर्निर्माण पोषण करते हुए शरीर को सबल व स्वस्थ बनाकर दीर्घायु की प्राप्ति ही रसायन का प्रयोजन है। रसायन का निम्नांकित प्रयोजन होना चाहिए—

१. रसादि सप्तधातुओ व ओज का पुनरुद्धार-पोषण करें।[4]

२ वय स्थापन, आयु, मेधा, बल वृद्धि करें।[5]

३ जरा और व्याधि का नाश करे।[6]

४. प्रभा, वर्णस्वर, इन्द्रिय बल, वाक्सिद्धि, कांति आदि को स्थिर रखते हुए वृद्धि करे।[7]

यह रसायन प्रयोगोद्देश्य कई भेदयुक्त है—

१. आजस्रिक रसायन, प्रतिदिन प्रति समय सेवनीय, क्षीर घृत आदि।

२. काम्य रसायन—विशेष प्रयोजनात् यथा–आयु, मेधा, बलवृद्धि हेतु।

३ नैमित्तिक रसायन—गम्भीर व्याधि निवारणार्थ–कुष्ठ, मधुमेह, यक्ष्मा आदि।

अत मधुमेह निवारण के लिए नैमित्तिक रसायन का सेवन करना कहा गया है। पूर्वोक्त विवरणो से स्पष्ट हो गया है कि मधुमेह मे ओज क्षय होता है और व्याधिजन्य जरावस्था का आगमन होता है। अत मधुमेह नाशक जिस किसी भी उपाय को प्रयोग मे लाया जायेगा वह जरा और व्याधि से व्यक्ति का रक्षण करेगा। मधुमेह वृद्धावस्था अथवा अधिक उम्र वालो की व्याधि है—और रसायन के सेवन का विधान भी मध्य वय वृद्धो के लिए कहा गया है।[8]

अत रसायन के सेवन से शरीर मे ऐसी व्यवस्था का सम्पादन होता है जिससे शरीर के धारक वात-पित्त कफ और रक्तसृक् मास मेदास्थि आदि धातुये साम्यावस्था मे रहकर व्यक्ति को स्वस्थ रखती है—अग्नि को साम्य रखती है। आचार्य सुश्रुत ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि ओज के विस्रंसन का व्यापन्न होने की अवस्था मे रसायन वाजीकरण आदि क्रियाओ से अग्नि आदि अवरुद्ध उपचारो से ओज (बल) को वृद्ध करे।[9] अत हम यहा ऐसे रसायनों का वर्णन करेंगे जो जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले जरा और व्याधि को नष्ट करने वाले हैं।

(१) लौहादि रसायन—आचार्य चरक द्वारा वर्णित यह रसायन योग अभिघातज विकार, व्याधिजविकार, असमय मे जरावस्था व अकाल मृत्यु से सुरक्षित रखता है

---

1 वा० नि० १०
2 च० चि० ६/११
3 च० सू० १७/७८-८१
4 च० नि० र० १/८
5 सु० सू० अ० १/७
6 सु० अ० १७२/२३
7 च० चि० १-१
8 सु० चि० अ० २७
9 सु० सू० १५/२८



और देह तथा इन्द्रियों को अत्यन्त बलिष्ठ बनाता है। इसका सेवी पुरुष बुद्धिमान, यशस्वी वाक्पटु, शृंगारी होता है अतः यह रसायन के सम्पूर्ण गुणों से युक्त करने वाला रसायन है।[1] और इस कारण ही मधुमेहज विकार के लिए इसका रसायन रूप सेवन कराना चाहिए ऐसा मेरा विचार है।

(२) शुद्ध शिलाजतु—रसायन प्रयोग के लिए लौह शिलाजतु को उत्तम माना गया है।[2] यह दीर्घायुष्कर, जरा व्याधि नाशक, देहेन्द्रिय बल वृद्धिकर है।[3] आचार्य सुश्रुत ने विशेषतया मधुमेह नाशक रसायन के रूप में इसका वर्णन किया है। उनके अनुसार ऐसा कोई रोग नहीं है जिसे शिलाजतु नष्ट न करे। अमृत तुल्य यह रसायन पुरुष को देवतुल्य बनाने वाला है। अतः अकेले वा अन्यान्य अनुपान सहपान के साथ सेवन करने से यह और भी बलकारी है।[4] वाग्भट ने भी शिलाजतु को मधुमेह नाशार्थ रसायन के रूप में प्रयोग किया है।[5]

(३) चन्द्रप्रभा वटी—योग रत्नावली वर्णित यह गुटिका-प्रमेह नाशक जरा नाशक और ओज बल को बढाने वाली है। इसके सेवन में विशिष्ट पथ्यानुपालन आवश्यक नहीं है। अतीव लाभकारी योग है।[6]

(४) आमलकी रस—योग रत्नाकर के रसायन प्रकरण में वर्णित है। यह आमलकी रसायनवत् ही है। यह प्रमेह नाशक है। गन्धक रसायन का प्रयोजन भी सर्वरोग नाशक है।

(५) त्रिफला—त्रिफला आयुर्वेद जगत का प्रसिद्ध योग है। यह शरीर धारक त्रिधातु वात पित्त कफ का विकल्प है। प्रमेह नाशार्थ रसायनाधिकार में इसकी चर्चा वृहदता से की गयी है। चरक ने रसायन अध्याय में इसका विस्तृत वर्णन किया है। वैद्य सोढल ने विभिन्न विधियों से इसके सेवन को प्रतिपादित किया है यथा—

(क) भृंगराज स्वरस भावित त्रिफला,

(ख) त्रिफला कल्क मधु सग,

(ग) त्रिफला लौहभस्म चूर्ण का लौह भस्म युक्त,

(घ) त्रिफला—दालचीनी लौहचूर्ण गुडूची सम भाग,

(ङ) खदिर—त्रिफला नीमद तथा परवल इनका क्वथित जल।

यथार्थतः—उपरोक्त प्रयोग लाभकारी हैं।[7] इसके अतिरिक्त अन्याय कल्प यथा—

(१) भल्लातक कल्प।

(२) गुडुची कल्प।

(३) गुग्गुल कल्प। भी अतीव लाभकारी हो सकते है।[8] शास्त्र वर्णित इनके गुणों की जानकारी के लिए यथार्थताज्ञापन के लिए वैद्य समाज को प्रायोगिक अध्ययन करना चाहिये।

आचार रसायन के साथ साथ यदि निम्नोक्त योगों का सेवन किया जावे तो भी परम लाभ देगा। यथा—

(१) (क) मधुमेहान्तक अर्क, मधुमेह मर्दन वटी, मधुमेहान्तक वटी, मधुमेहहर चूर्ण, शिलाजीत वटी, मधुमेहारि योग।[9]

(ख) शास्त्रीय योग—मधुमेहान्तक रस (धन्वन्तरिकृत), वसन्त कुसमाकर रस (भै० र०) वगश्वर (भै० र०) सर्वतो भद्र वटी (चि० प्र०) तालकेश्वर रस (भै० र०) शिलाजत्वादि वटी (सि० यो० म०) शिवागुटिका (भै० र०) मधुमेहारि रसायन (आर्य०) स्वर्णमाक्षिक योग (सु०स०)

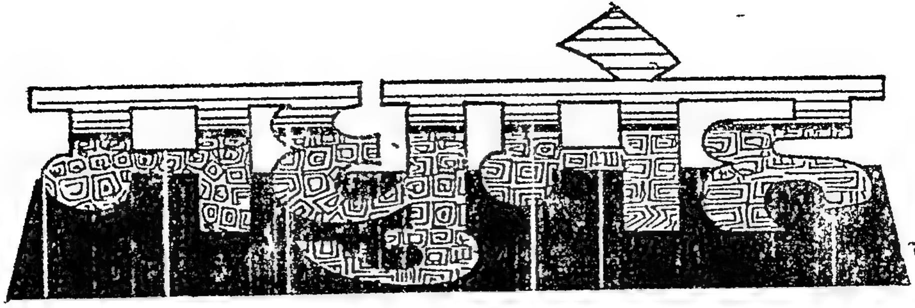
उपरोक्त योगों के सेवन के पूर्व शरीर का शोधन चरक मतानुसार कर लिया जाय तो अतिलाभप्रद होगा।[10]

(२) शु० शिलाजीत (कपित्थ व त्रिफला क्वाथ से सप्तवार भावित) ८ रत्ती, त्रिफला + वायविडंग + गिलोय + जम्बूबीज समान मात्रा वर्जित—घनसत्व ८ रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म ४ रत्ती, लौहभस्म ४ रत्ती, हरिद्रा चूर्ण २ माशा। ४ मात्रा।

अनुपान—शहद, आवला, स्वरस व मक्खन के साथ चाटकर।

—शेषांश पृष्ठ ३९५ पर देखें।

1 च० चि० १-३/१९-२३ 2 च० चि० १-३/६०-६ 3 च० चि० १-३/५३
4 सु० चि० १३/१०-१६ 5 अ० चि० अ० -१२
6 यो० र० उत्तरार्ध। प्रमेह चिकित्सा 7 ग० नि० रसायन तन्त्र-त्रिफला कल्प—२ 8 ग० नि० रसायन तन्त्र।
9 धन्वन्तरि गुप्तरोगांक—१९६८ 10 च० चि० प्रमेह।



डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह एम० ए०, साहित्यालंकार, आर० एम० पी०, कानपुर ।

पर्याय—(संस्कृत) मधुमेह, क्षौद्रमेह, (आंग्ल) डायबीटीज मेलिटस (Diabetes Mellitus) ।

सामान्य लक्षण—मूत्र का अधिक मात्रा मे आना, मूत्र का गंदला आना ।

बहुमूत्रता (Polyuria)—सामान्यत मनुष्य २४ घण्टे मे ५० औंस मूत्र त्यागता है जिसमे ३७ औंस दिन मे और १३ औंस रात्रि मे । यह औसत मात्रा है अत इस प्राकृत मात्रा से मूत्र का अधिक त्याग बहुमूत्रता मानी जायेगी । यह अवस्था कई कारणो से हो सकती है । वात संस्थान की विकृति, घबड़ाहट, शीताधिक्य, अधिक जल का सेवन, शरबत, चाय, काफी, मद्य आदि मूत्रल पेयो का सेवन तथा पोषण ग्रन्थि का विकार (Diabetes Insipidus), मधुमेह, जीर्णवृक्क सन्यास, मूत्र शर्करा जैसे—इक्षु मेह, शीतमेह आदि मे भी मूत्राधिक्य हो जाता है ।

"शरीर मे स्थित ओज का स्वभाव मधुर है । इसके साथ वायु रुक्ष एव कषाय गुण मिलकर जब मूत्राशय मे जाता है तब मधुमेह रोग उत्पन्न होता है ।" [चरक संहिता निदानस्थानम्, अ० ४ श्लोक ३३-३८]

इस रोग मे मूत्र का स्वाद मीठा होता है । इस रोग में मूत्र इतना मीठा होता है कि उसे कुत्ते चाटने लगते हैं। इस रोग मे मूत्र पर चीटिया लगने लगती हैं ।

अन्य लक्षण—अधिक भूख, घोर तृष्णा, दातो पर मैल जमना, रोगी का गला और तालु सदा सूखे रहते हैं । इसका कारण अधिक प्यास है, केश अधिक बढना, विबन्ध रहना, हापना, शिर मे भारीपन, जीभ रूखी एव लाल, शरीर पहले चिकना फिर रुक्ष रहना, निर्बलता बढना, घृत आदि स्नेह से रोग बढना ।

तीव्रावस्था मे—मूर्च्छा, सन्यास, तन्द्रा, मृत्यु ।

उपद्रव—अतिसार, ग्रंथ, नपुंसकता, वृक्कशोथ, राजयक्ष्मा, सन्यास, मृत्यु ।

कुछ डाक्टरो का विचार है कि यह रोग मुसलमानो की अपेक्षा हिन्दुओ को अधिक होता है क्योंकि हिन्दू लोग ज्यादातर स्टार्ची भोजन ही करते हैं । यहूदी लोगो को भी यह रोग अधिक होता है, क्योकि धनी होने के कारण उनका भोजन भी सदोष होता है ।

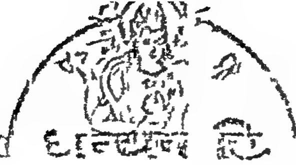
यह रोग प्राय अधेड उम्र के पश्चात् होता है । बचपन मे बहुत कम होता है । भारतवर्ष मे नवयुवको, व्यक्तियों को भी यह रोग बहुत कम होता है । परन्तु यूरोप आदि मे अधिक लोगो को होता है । यह तीव्र मधुमेह होता है । पुरुषो की अपेक्षा यह रोग स्त्रियो को कम होता है । परन्तु गर्भावस्था मे स्त्रियो को प्राय मधुमेह हो जाता है ।

मधुमेह के रोगी के सिर मे दर्द होता है और शरीर मे सुस्ती रहती है । किसी किसी के शरीर मे कभी यहा कभी वहां दर्द होता रहता है ।

मधुमेह का रोगी मधुमेह से नही मरता । ऐसे रोगियो की मृत्यु प्राय प्रमेह-पीडिका (कारबंकल), क्षयरोग, दस्त की बीमारी के कारण होती है । मधुमेह मे मोतियाबिन्दु प्राय हो सकता है । इस रोग म कान की झिल्ली प्रायः सूख जाती है जिसके कारण बहरापन हो जाता है तथा दातो मे दर्द हुआ करता है ।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

१. सर्वोत्तम औषधि शिलाजतु (शिलाजीत) है । कृष्णवर्ण, भारी, स्निग्ध, रेती आदि रहित गोमूत्र की



गधवाला हो, वह उत्तम है।

इस शिलाजीत को शालसारादिगण से भावना देकर वमनादि से शरीर का शोधन करके, प्रातः काल मेंही। शालसारादिगण के क्वाथ मे पीसकर इसे बलको केअनुसार पीवें। [सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थानम् अ० १३ श्लोक १० से १६ तक]

२. मधुसूदन वटी ३ ग्राम, शुद्ध शिलाजीत २ ग्राम यह १ मात्रा है। नीम छाल तथा गुडमारबूटी का क्वाथ ८० ग्राम से मध्याह्न मे लें।

३ चन्द्रप्रभा वटी, हल्दी का चूर्ण, आवले का रस और शहद के खाने से मूत्र मे चीनी जाना बन्द हो जाती है।

४ गुडमार नामक बूटी २ माशे की मात्रा मे खाने से मूत्र में शक्कर जाना बन्द हो जाती है।

५ न्यग्रोधादि चूर्ण मधुमेह की उत्तम औषधि है।

६ वंग भस्म १ रत्ती, शिलाजीत ३ रत्ती, स्वर्ण-माक्षिक भस्म १ रत्ती, मोती की सीप की भस्म २ रत्ती, जामुन की गुठली का चूर्ण ३ माशे इन सबको शहद के साथ चाटने से लाभ होता है।

७ ६ माशे जामुन की गुठली का चूर्ण शहद के साथ चाटने से मूत्र में चीनी जाना बन्द हो जाता है।

८. हेमनाथ रस (सुवर्ण युक्त) (वैद्यनाथ, डाबर आदि) बहुमूत्र मे शीघ्र लाभ करता है।

९ मधुमेहारि (वैद्यनाथ) गुडमार बूटी के साथ अन्य गुणकारी औषधियो तथा स्वर्ण भस्म मिलाकर करेला के स्वरस से तैयार किया जाता है। यथानाम तथा गुण औषधि है।

१० मधुमेहारि २ ग्रेन+न्यग्रोधादि चूर्ण ८ ग्राम यह १ मात्रा है। विजयसार के क्वाथ के साथ सायं ५ बजे ले।

११. न्यग्रोधादि चूर्ण बनाने की विधि—वट वृक्ष की छाल, गूलर की छाल, पीपल के पेड़ की छाल, अर्जुन की छाल, सोना पाठा, अमलतास का गूदा, आम की छाल, कौंच के पेड़ की छाल, करज, चिरौंजी, नागर मोथा, मुलेठी, लोध्र की छाल, वरना की छाल, महुए की छाल, हर्रे, मीठा कूट, बहेड़ा, आमला, कुटकी, हल्दी और भिलावे के शुद्ध फल—इन १७ औषधियो को दो दो तोले लेकर, कूट पीस कर छान लो और शीशी में रख लो।

इसकी मात्रा ६ माशे की है। शहद के साथ चाटकर त्रिफला का क्वाथ पीना चाहिए। ३०-४० दिनों तक सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेह, प्रमेह पिडिकायें नष्ट होती हैं।

१२ वसन्त कुसुमाकर रस १ माशा सत गिलोय ३ माशा, गुडमार चूर्ण २ माशा, इनको मिलाकर ८ मात्रा कर लें।

अनुपान—बिल्वपत्र स्वरस २ तोला तथा १ माशा मिलाकर प्रातः सायं सेवन करें।

१३. स्वर्ण भस्म १ तोला, वंगभस्म ३ तोला, चाँदी भस्म २ तोला, शीशा भस्म ३ तोला, मूंगे की भस्म ४ तोला, मोती भस्म ४ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, कान्त लौह भस्म ३ तोला, अम्बर १ तोला। सारी औषधियों को ले कर के गोदुग्ध, गन्ने का रस, अडूसे का रस, लाक्षा रस, सुगन्ध वाला का क्वाथ, केले की जड़ का रस, श्वेत कमल के पुष्प का रस, मालती पुष्प स्वरस इन दसों औषधियो की ७-७ भावनायें कस्तूरी ३ माशा डाल करके मिला दें और सुखाकर टिकिया बनाले।

मधु व घृत के साथ १ रत्ती से २ रत्ती तक सेवन करे। यह बहुमूत्र व मधुमेह की रामबाण औषधि है।

१४. मकरध्वज १ रत्ती तथा काले जामुन के बीज का चूर्ण १ माशा शहद के साथ सेवन करने से मूत्र मे चीनी जाना कम होता है। काला जामुन का फल इस योग मे बहुत लाभप्रद है।

१५ तिल एक या दो तोले बराबर गुड मिलाकर खाने से मूत्रमेह मे लाभ होता है। तिलो मे मूत्र कम करने की अद्भुत शक्ति है।

१६ छुहारे सूखे अच्छे लेकर उनके टुकड़े करके गुठली निकाल दें। ३-४ टुकड़े लेकर मुख मे चूसने का अभ्यास रखें। दिन रात मे ८-१० बार चूसते रहिए।

१७ हरी गिलोय का रस ४० ग्राम, शहद ६ ग्राम, पाषाणभेद ६ ग्राम तीनो को मिलाकर पीने से मधुमेह

दूर हो जाता है।

१८, जामुन की गुठली १० ग्राम, अहिफेन १ ग्राम, दोनों को जल के साथ घोटकर ३२ गोलियां बनालें और छाया में सुखाकर शीशी में भर लें।

दो दो गोली प्रातः सायं जल के साथ सेवन करें।

१६ गुड़मार, शीतलचीनी (कबाबचीनी), बबूल और गुलाहुली चारो को समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बनालें। प्रातः सायं तीन तीन ग्राम ताजे जल के साथ लें।

२०. गुडमार १ तोला, जामुन बीज १ तोला, काली मिर्च ३ माशा, चूर्ण कर ३ ग्राम जल के साथ सेवन करें।

२१ सेमर मूसली चूर्ण ६ माशा, मधु ६ माशा इन्द्रवटी (भैषज्य रत्नावली) १ माशा प्रातः साय ले

२२ पांच बेल (बिल्व) के पत्तों को मुख में चबाकर १५ मिनट तक दिन दो बार चूसे। गूलर की तरकारी खायें।

२३ विदारीकन्द का चूर्ण २ ग्राम, शतावरी चूर्ण २ ग्राम, केला पका एक, इन्हें खाकर ऊपर से दूध पी लें। दो दिन में बहुमूत्र ठीक हो जायेगा।

२४ ताजा करेले का रस निकालकर ५ ग्राम प्रतिदिन पीने से मधुमेह दूर होता है।

२५ रात को २८ ग्राम चने दूध में भिगो दें। प्रातः उठकर चबा-चबाकर (देर लगाकर) खायें।

२६ कैथ के फल के गूदे को छाया मे सुखा लो और कूटकर बारीक चूर्ण बना लो। इस चूर्ण को ६ माशा तक नित्य प्रातः साय प्रयोग करें।

२७ मेथी के दाने ५० ग्राम लेकर रात्रि मे चीनी मिट्टी के पात्र मे पानी डालकर रख दें और प्रातः उस मेथी को हाथ से मसलकर उसका पानी पीवें।

२८. बहुमूत्र मे मेथी के पत्तो का रस एक पाव तक पीना चाहिए।

पेटेण्ट आयुर्वेदिक इन्जेक्शन—

१ शिलाजीत (बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक, झासी, सिद्धि फार्मेसी, ललितपुर। जी० ए० मिश्रा, झासी)-१ से २ एम० एल० मांसपेशी।

२ प्रमेह केसरी (जी० ए० मिश्रा, झासी)--मासपेशी मे लगावें।

३ गुडमार (प्रताप फार्मा, देहरादून)—२ मि लि दिन मे एक या दो बार मांसपेशी मे।

प्राकृतिक व यौगिक औषधियां—

मधुमेह की रोकथाम में हठयोग के षट्कर्म प्रक्षालन तथा योगासनो के अभ्यास बड़े महत्वपूर्ण हैं।

ताडासन, पादागुष्ठासन, उत्तानपादासन, धनुरासन, पवन मुक्तासन, उड्डियान, नौली, कपालभाती तथा उज्जायी प्राणायाम ये क्रियायें इस रोग को नष्ट करने मे समर्थ है।

नित्य प्रात. तीन मील पैदल टहला करें। शरीर से खूब परिश्रम करे।

मधुमेह के लिए होम्योपैथिक चिकित्सा—

सिजिजियम जम्बोलिन Q, २× —यह मधुमेह की सर्वोत्तम औषधि है। यह जामुन से बनती है।

अन्य औषधियां—क्रियोजूट ३०, ऐसिड एसेटिकम ३०, टेरिबिन्थना ३, हेलोनियस Q सिकेलि ३०, सेफलेण्ड्रा इंडिका Q, आर्निका ३०, कैन्थरिस ३, एलफाल्फा Q, ऐसिडफास २×, ३, इग्नेशिया ३, लक्षणानुसार दें।

बायोकैमिक चिकित्सा—

कैलीम्यूर ३×, कल्केरिया फास ३×, फेरमफास ६×, नेट्रमसल्फ २००, नेट्रमफास लक्षणानुसार दे।

मधुमेह में प्रयोग होने वाली पेटेण्ट गोलियां—

१ टौलबुटामिण्डन मार्का (इण्डन)—४-८ टेबलेट प्रतिदिन और बाद मे २ टिकिया प्रतिदिन।

१. टौलबुटामाइड (बोम्बे टेबलेट)—पहले ४ से ८ गोलियाँ प्रतिदिन दें बाद मे २-२ गोली दे।

३. टोलरिविजन (हिमालय)—२-२ गोली दिन मे ३ बार दें।

४ रिविजिन (हिमालय) २-२ गोली दिन मे ३ बार

५ इनवेनोल (होचस्ट)—पहले दिन ५-८, दूसरे दिन ३-४, तृतीय दिवस २-३, चतुर्थ दिन तथा बाद मे १ टिकिया प्रात साय प्रतिदिन भोजन के बाद थोड़े पानी या दुग्ध के साथ।

६ रेस्टिनान (होचस्ट)—२-२ टिकिया दिन मे ३ बार दें।

७ डायबिनस (ड्यूमेक्स फाइजर)—१०० मिग्रा की



४-६ गोलिया २-३ दिन दे। बाद मे जलपान के पश्चात् १ गोली दें।

८. यूनिटोलविह (यूनीकैम)—मुखमार्ग से व्यवहार करने के लिए ० ५ ग्राम की टिकिया।

९. यूनी-माइक्लीन (Uni-Cyclin)-बिना चीनी मधुमेह के रोगियो में मीठा स्वाद लाने के लिए (सैक्नेमैट सोडियम+सेक्रीन)।

१०. टोल्बुटामाइड(झंडु) १/२ ग्राम टोल्बुटामाइड की गोली। मुख मार्ग से दें

११ त्रिबगशिला (झडु)—मुखमार्ग से दें।

१२ डाइबेसुनीन (कलकत्ता केमिकल) – प्रथम दिन ५ से ८ गोली, दूसरे दिन ३-४, तृतीय दिन २ और बाद में १/२ से १ गोली दें।

१३. सैक्नेमैक (कलकत्ता केमिकल)—विधिपत्रानुसार दें।

१४ अल्कामाइड (अलेम्बिक)—विधिपत्रानुसार दें।

१५. अल्कामाइड बी (अलेम्बिक) "

१६. डायोरिल मार्का (ओपिल फार्मा) विधिपत्रानुसार

१७. डायबिटामाइड(स्टैम्पिड कम्पनी)—विधिपत्रानुसार दें।

१८. डी डायबेटिज (इण्डियन ड्रग)—विधिपत्रानुसार दें।

१९ एमुराल (अलेम्बिक)—मधुमेह मे खाद्य पेय मीठा करने के लिए है।

२०. डायबिमाइड (इंडियन हेल्थ कलकत्ता)—३-४ टिकिया प्रतिदिन दे।

२१. डायबिनोल [बगाल केमिकल]—१-१ टिकिया प्रतिदिन सेवन करें।

२२. पान-मिलिटस ग्लोब्यूल्स (कोण्टीनेण्टल) – प्रारम्भ मे ४ दें बाद मे २-२ भोजन के बाद दें।

२३. आरटोसिन (नोल)—१-२ गोली मूत्रगत शर्करा के अनुसार दें।

२४. नैडिसान (नोल)—१-२ गोली रोग के अनुसार दें।

२५. फिनोबिनोल) (बगाल केमिकल)—१-२ गोली दें। हानिरहित टेबलेट हैं।

२६ डी बी आई (यू एस. वी.)—५० से १०० मिग्रा० नित्य देते हैं।

२७ पैंक्रिपैटिन (ऐंग्लोफ्रेन्च)—८-१२ गोली प्रतिदिन दें।

२८ इम्प्रूमिल (थेराप्युटिक)—विधिपत्रानुसार दें।

२९ एम्नेक्सा (डेज)—चीनी के स्थान पर २ टिकियाँ दें।

मधुमेह मे प्रयोग होने वाले एलोपैथिक पेटेण्ट इंजेक्शन—

'इन्सुलीन' इन्जेक्शन सुप्रसिद्ध है।

बूट्स कम्पनी—

१ इन्सुलीन (साधारण)—४० व ८० यूनिट सी सी की शक्तियो मे यह ५ व १० सी.सी. की वायलों मे मिलता है। इसका प्रभाव शीघ्र होता है।

२ इन्सुलीन, ग्लोबिनजिङ्क—यह ४० व ८० यूनिट प्रति सी. सी. की शक्तियो में और ५ सी.सी. के वायलो मे मिलता है। इसका प्रभाव धीरे २ होता है।

३. इन्सुलीन, प्रोटामिनजिंक–४० यूनिट प्रति सी सी. की शक्ति मे ५ व १० सी.सी. वायल मे।

४ इन्सुलीन जिंक सस्पेंशन—४० यूनिट प्रति शीशी की शक्ति मे यह १० शीशी के वायल मे मिलता है।

५ आइसोफेन या एन पी एच इन्सुलीन—४० यूनिट प्रति सीसी की शक्ति में १० सी.सी. के वायल में मिलता है।

लिली कम्पनी—

१ इन्सुलीन—४० व ८० यूनिट प्रति सी सी शक्तियों मे १० सी सी. वायल मे।

२ लेण्टेइन्सुलीन १० सी.सी. वायल मे।

३ एन पी एच. इन्सुलीन—१० सी.सी. वायल मे।

४ प्रोटामिन जिंक इन्सुलीन—१० सी.सी. वायल मे।

स्क्विब (साराभाई)—

१. साधारण इन्सुलीन—१० सी सी. वायल मे। भोजन के २० मिनट पूर्व अधस्त्वगीय इन्जेक्शन लगावें।

२ एन. पी एच इन्सुलीन १० सीसी वायल मे इसका इन्जेक्शन दोनो समय जलपान के बाद आधा से एक घण्टे पहिले लगावें।

बूट्स कम्पनी—

१ साधारण इन्सुलीन—१० सी.सी. वायल में।

२. जिंक इन्सुलीन—१० सी.सी. वायल में।

३ सोल्य इन्सुलीन—१० सी.सी. वायल में।

ब्रिटिश ड्रग हाउस—

साधारण इन्सुलीन, प्रोटामीन जिंक इन्सुलीन, ग्लोबिन इन्सुलीन, इन्सुलीन लेण्टे, इन्सुलीन सेमीलेण्टे, इन्सुलीन अल्ट्रालेण्टे।

इवेन्स पाउडर कम्पनी—

इन्सुलीन नोवोलेण्टे, इन्सुलीन नावोसेमीलेण्टे, इन्सुलीन नोवो अल्ट्रालेण्टे, इन्सुलीन नोवो, रेपिड इन्सुलीन नोवो।

बरोज वेलकम कम्पनी—

साधारण इन्सुलीन, ग्लोबिन जिंक इन्सुलीन, प्रोटामिन जिंक इन्सुलीन, इन्सुलीन जिंक सस्पेंशन, आइसोफेन इंसुलिन।

यूनीकेम—

इन्सुलीन यूनीटुरा, इन्सुलीन सेमीटुरा, इन्सुलीन यूनिएलट्रा टुरा, इन्सुलीन सोल्युबुल, इन्सुलीन प्रोटामिन जिंक।

पिट्युटरी पोस्टीरियर लोब (बगान उत्युनिटी)— विधि पत्रानुसार लगावें। एल सी एच. इन्सुलीन (एनेमिक्त) १ इन्जेक्शन प्रतिदिन।

पथ्य—गेहूँ चने की मोटी रोटी की छोटी टिकिया बनाकर अग्नि पर सेक ले पुन घृत मे खूब मल दें। उसी रोटी का घृत मिला हुआ थोड़ा गूदा लेकर उसकी गोली बनाकर उसमे १ माशा पिसी हल्दी डालकर गोली बनाकर प्रात गाय निगल लिया करे। हल्दी भुनी न हो, कच्ची हो।

सूखे मेवे जैसे मुनक्के, किशमिश, छुहारे, बादाम, नारियल, खूबानी बन्द कर देनी चाहिए। अमरूद, नासपाती, सेब, पक्का गूलर, सन्तरा लीजिए।

चीनी, गुड़, मिश्री, मिष्ठान्न विष तुल्य हैं।

चूनी सहित आटे की रोटियाँ खाइए। पुराने चावल का भात, सत्तू, शहद, छाछ पथ्य है।

टमाटर की भाजी, टमाटर का रस पानी की तरह सेवन करने से १५ दिन मे मधुमेह दूर हो जाता है।

गेहूँ के चोकर का पतला हलुआ शक्कर के बिना खाइए।

अपथ्य—नया चावल, शीतल जल, बर्फ, धूप मे भ्रमण करना, मैदा, चीनी, मास, अण्डा, तेल, बैंगन, मत्स्य तथा मैथुन हानिकारक हैं। धूम्रपान सर्वथा परित्याग करें।

शेषांश पृष्ठ ३६० का देखिये

सहपान—जामुन निर्गन्ध क्वाथ चतर्थांशावशेष ५० एम एल० पीवें।

इसका सबसे बड़ा लाभ है कि मधुमेही की वस्तिगत वायु को नियमित कर विबन्ध को दूर करता है, बहुमूत्रता को रोकता है और हाथ पाव की जलन शान्त होती है, रोगी शरीर मे ऊर्जायुक्त, हलकापन का अनुभव करता है। रोग की अतिवृद्धावस्था मे योग की मात्रा वही रखकर जामुन क्वाथ की मात्रा दुगुनी कर देनी चाहिए। लेकिन व्यक्ति के अनशन जनित व भोजनोत्तर रक्त शर्करा के सामान्य स्तर की जाँच करते रहकर अपने को आश्वस्त कर लेना चाहिए। रोगी यदि आचार रसायन के साथ इस योग का सेवन करें तब वह रसायनवत लाभ प्राप्त करता है। यह मेरा अनुभूत है और ५ रोगियो पर प्रायोगिक है। अभी प्रयोग चल रहा है। आशा है वैद्य समाज इस योग का प्रयोग कर आकड़ा सहित सत्य तथ्य को और भी प्रकाशित करने की चेष्टा करेगा।

महाव्याधि कृच्छ्र साध्य-याप्य या असाध्य होता है। मधुमेह याप्य व्याधि है अत औषधि सेवन के साथ रोगी के शरीर शोधन, आहार व्यवस्था, पथ्य व्यवस्था, शारीरिक श्रम पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। इनका पालन ही औषधि को सफल करता है।

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा जी का जो स्नेह मार्ग-निर्देशन हमे मिलता है, उसका ही फल है कि यह लेख मैं तैयार कर सका। आचार्यवर की स्नेह छाया मे मेरी लेखन-शैली क्रमश आगे की ओर उन्मुख हो रही है यह मेरा सौभाग्य ही है। जगदम्बा उन्हे दीर्घायुष्य व स्वस्थ रक्खें।

एक मधुमेहनाशक सिद्ध रसायन—

प्रमदेभांकुश रस

वैद्य श्री व्रजविहारी मिश्र एम० ए० (द्वय) आयुर्वेद रत्न

मन्त्री—प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन उत्तर प्रदेश बिन्दकी (फतेहपुर) उ० प्र०

शुद्ध या हिंगुलोत्थ पारे को एक महीने तक धतूरे के तेल मे, फिर १० दिन तक उपर्बुध (चित्रक) के तेल मे इस प्रकार पाक करें कि २४ घण्टे मे कुल ४ तोले ही तैल जले । इस पारद का आठवा भाग कटकवेरी सोने के पत्र डालकर इतना घोटें कि अच्छी कज्जली बन जावे । इस कज्जली को सुखी, ७ कपरौटी की हुई शीशी में रख वालुका यन्त्र मे १२ प्रहर की आच दे । इतनी अग्नि की गन्धक उड जावे तथा शीशी की गर्दन पर सिन्दूर कल्प एकत्रित हो जावे । स्वाग शीतल होने पर निकाल लें ।

इस सिंदूर को तीन दिन तक पोस्त के छिलके के क्वाथ मे मर्दन करें । फिर ३ दिन विजया के क्वाथ मे फिर एक दिन जायफल के तेल में मर्दन करें । फिर ताल मखाने के बीजो के क्वाथ मे एक दिन मर्दन करके विदारीकन्द के रस मे घोट गोला बनालें ।

इस गोले को भूमि मे दो अगुल मिट्टी से दबा दें । इसके ऊपर दो अरने कडे रख आग दे दे जिससे उक्त गोले का मृदु स्वेदन हो जावे । जब सब ठडा हो जाय तब उस गोले को निकाल पोंछ कर इसमे दो भाग अभ्रक भस्म, वैक्रान्त भस्म, चमेली के फूल और लवग डालकर घोटे । इसमे ३ भाग नागभस्म २-२ भाग रजत भस्म, कान्त लौह भस्म, शुद्ध वत्सनाभ, केशर, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र तथा वग भस्म १/२—१/२ भाग, अफीम और स्वर्ण माक्षिक भस्म डालकर मर्दन करें । फिर तीन घण्टे तक शखपुष्पी के फूलो के स्वरस मे घोटें । इस प्रकार मर्दित रस मे ३-३ भावनायें विदारीकन्द, त्रिफला, वासा, पान, वला (खरैंटी) सेमर का मूसला, कौंच की जड, गोदुग्ध, गोधापदी (गोह का पैर) केले की जड, मोया, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, अजवायन, गोखरु मुण्डी, मदयन्ती यष्टी, हस्तिकर्णी पलाश के स्वरस लज्जालु एव मुर्गी के अण्डा की ३-३ दिन में दें । फिर उसका गोला बना लें । इस गोले को कपडे मे बाध कर दोला-यन्त्र जिसमे खसखस या पोस्ते के छिलके का काढा भरा हो लटका दें । दिन भर स्वेदन करें फिर समुद्र सोख के तेल की दो भावनायें दे फिर धतूरे के बीज के तेल की, विजया के बीजो और जायफल के तेल की २-२ भावना देकर गोला बना लें । इसे कपडे मे बाध भूधर यन्त्र मे रख पूर्ववत २ कण्डो की आग देकर पकायें । स्वांग शीतल होने पर निकाल लें । इस गोले को अब खस, अगर और कस्तूरी के जल, केवड़ा, हारसिंगार और कमल के फूलो के रस की १-१ भावना दे और घोट सुखा कर रख लें ।

इस रस की दो वल्ल की (६ रत्ती) मात्रा है । इसे १॥ रत्ती कर्पूर, लोंग, मिश्री और मधु के साथ सेवन करें । ऊपर से दूध पियें । खट्टी चीजें न खावें ।

यह प्रमदेभाकुश रस त्रिदोषनाशक है । यह स्त्रियो के गर्व को चूर्ण कर देता है, वशीकरण करता और बहुत अधिक स्तम्भन करता है । यह पुरुषो के मेढ्र को बराबर उत्थित रखता है । वह शीघ्र गिरता नही तथा स्त्रियो को और समीप ला देता है । यदि किसी नवोढ़ा से एक बार सम्भोग हो जाये तो वह निश्चला आजन्म दासी हो जाती है । अनेक प्रकार से सम्भोग करने पर भी तेज और बल बिल्कुल नष्ट नही होता ।

यदि इसका सेवन कर्त्ता स्त्री सम्भोग न करे तो उसका वीर्य नेत्रो से निकलता और उसे अन्धा कर देता है (पर अभी तक इसका दुष्प्रभाव किसी के दृष्टिगोचर नही हुआ) इस रस सेवन करने वाले व्यक्ति के अंगो मे शिथिलता नही आती । कमर में टूटने जैसी पीड़ा नही

होती एवं बुढापे मे कमर नही झुकती। उसकी कान्ति स्वर्ण जैसी आभा वाली हो जाती है। उसके १८ प्रकार के प्रमेहो का नाश हो जाता है। नष्ट वीर्य पुरुष भी इसके सेवन से स्त्री सम्भोग मे समर्थ होता है। नपुसक भी घोडे के समान मैथुन कर्म मे समर्थ हो जाता है तथा सिह के समान वीर पुत्र जनता है।

यदि इस रस को कोई स्त्री ले तो वह कुमारी तुल्य शरीर वाली हो जाती है, उसे एक जवान व्यक्ति भी पूर्ण तृप्ति देने मे समर्थ नही होता। इसके सेवन से महिलाओ के गर्भाशय के वात कफजन्य रोग भी दूर हो जाते हैं।

उपर्बुध चित्रक नही भल्लातक है—

उपर्बुध शब्द का अर्थ टीकाकार ने चित्रक किया है और पारद को दस दिन तक उक्त तेल मे पकाने का विधान किया है (दशाऽहानि तैले तयोपर्बुधस्य) किन्तु चित्रक को अग्नि पर्यायवाची मात्र होने से उपर्बुध का अर्थ कर देना दो दृष्टियो से उचित नही प्रतीत होता। एक तो चित्रक में बीजाभाव होने से तेल ही नही निकलता। चित्रक मूल क्वाथ से यदि तैल बना भी लिया जाय तो चित्रक की वाजीकरण औषधियो मे गणना नही है। संस्कारित पारद को पुन. चित्रक तैल से सस्कार की भी आवश्यकता नही। इसके विपरीत भल्लातक को जिसका एक नाम अग्निका भी है 'उपर्बुध' (अग्नि) का अर्थ माना जाय तो समस्या का समाधान हो जाता है क्योंकि भल्लातक में पर्याप्त तेल निकलता है तथा अत्यन्त शुक्रवर्धक रसायन है। वृन्द का कथन है—

तैलं भल्लातकानान्तु पिबेन्मास यथाबलम्।
सर्वोपद्रवनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशत दृढ ॥

अर्थात् कोई व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुरूप यदि भल्लातक तैल का एक मास सेवन करे तो वह सम्पूर्ण व्याधियो से मुक्त हो दृढ एव शतजीवी होता है। वाजीकरणाधिकार मे शोढल की उक्ति प्रसिद्ध ही है—

भल्लातकैश्च चतुर्भिश्च गोदुग्धस्याढक श्रुतम्।
पीतं करोति वृषतां सुजीर्णस्यापि देहिन ॥

महर्षि चरक के मतानुसार भल्लातक कफज, शुक्रदोष को नष्ट करता है। शुक्रल होने से ही भल्लातक मेधा युष्यवर्धक भी कहा गया है। अत. पारद को चित्रक मे नही भल्लातक तैल मे पकाने से उसमे भल्लातक के गुणो का समावेश होता है।

गोधाघ्रि गोदुग्ध नही मूसली है—

इसी प्रकार गोधाऽघ्रि शब्द का अर्थ टीकाकार ने गोदुग्ध किस आधार पर किया है यह कुछ समझ नही आता है। वैसे सस्कृत मे गोधा नाम गोह (एक नेवले की आकृति का जीव विशेष) का है और अघ्रि का शाब्दिक अर्थ पैर है। इसी आधार पर कुछ वैद्यों का मत है कि इसमे गोह का पैर डालना चाहिए जो कि उपयुक्त नही है। वास्तव में गोधापदी (गोह के पैर की आकृति की) एक जडी विशेष होती है जिसे सस्कृत मे मूसली पर्याय से भी जाना जाता है। राजनिघण्टुकार ने मूसली के निम्न पर्यायवाची नामो का उल्लेख किया है—

मुसली तालमूली च सुवहा ताल पत्रिका।
गोधापदी हेमपुष्पी सूताली दीर्घकन्दिका ॥

अत संस्कृत मे गोधाघ्रि और गोधापदी समानार्थक शब्द हैं। गोधापदी मूसली को कहते हैं जोकि अत्यन्त धातुवर्धक, वृष्य एव रसायन मानी गई है। श्याम और श्वेत भेद से वह दो प्रकार की होती है। श्यामा मूसली को रसायनी कहा गया है। वृ० नि० रत्नाकर मे उसके गुणो का निर्देश निम्न रूप से किया गया है—

मुसली मधुरा वृष्या धातु वृद्धि करी गुरु।
तिक्ता पुष्टिबलकरी पिच्छिलाया श्लेष्मला मता ॥
रसायनी शीतला च पित्त दाहहरी मता।
कृष्णाधिक गुणा प्रोक्ता श्वेता चाल्पगुणा मता ॥

इसके अनुसार श्यामा मूसली को रसायन एव वाजीकरण प्रयोग मे लेना चाहिए। यहा 'गोधाघ्रि' से तात्पर्य श्यामा मूसली से है, गोदुग्ध से नही।

लज्जालु एव मुर्गी के अण्डे की भावना गलत है—

इस रस के मूल सस्कृत पाठ मे लज्जालु एव मुर्गी के अण्डे की भावना का वर्णन नही है किन्तु हिंन्दी टीका मे उपर्युक्त पदार्थो की भावना का निर्देश दिया गया है जो गलत है।

भल्लातक तैल निर्माण विधि—

भल्लातक तैल बडी सावधानी से निकालना चाहिए क्योकि यह विषाक्त होता है कि जरा भी त्वचा मे लग



जाने से स्फोट, शोथ, कण्डू, प्रभृति उपद्रव उत्पन्न कर देता है। मैंने शुद्ध भल्लातको को एक चौडे मुह की तीन कपरौटी की हुई शीशी भरकर लोह के तारो से मुख बद कर 'वालुका गर्भ पाताल यन्त्र' विधि द्वारा तैल निकाला इस विधि से बिना किसी प्रकार की हानि एव उपद्रव के सफलतापूर्वक पर्याप्त मात्रा मे तैल निकल आया। यत्र निर्माण का विस्तृत वर्णन रसायनसार पुस्तक मे द्रष्टव्य है।

प्रमदेभाकुश और मधुमेह—

यह निर्विवाद सिद्ध है कि किसी प्रकार से वीर्यक्षय हो जाना ही सभी प्रकार के प्रमेहों का मूलभूत कारण है और उनका समय पर यथेष्ठ उपचार न करना उन्हे मधुमेह के रूप मे परिणत करना है। अत वीर्यवर्द्धक औषधिया चाहे वह काष्ठोषधि हो या रसादिक अवश्य लेनी चाहिए। आधुनिक मतानुसार इन्सुलिन की कमी होने पर यह रोग होता है अत. इन्सूलिन का सूचीवेध इसमे दिया जाता है। जिससे रोग समूल नष्ट तो नहीं होता केवल किञ्चित काल के लिए दबा रहता है। हमारे आयुर्वेद में भी चरकाचार्य ने वीर्यक्षय होने पर नक्रमद मृगमदादि का सेवन कराने का विधान किया है। इससे चमत्कृत लाभ भी होता है। इसी दृष्टिकोण से रस चिकित्सको ने शिव वीर्य पारद की भूरि-भूरि प्रशशा की है। सुसस्कृत पारद के सेवन से मनुष्य रोगमुक्त हो सकता है, भोगी हो सकता है और इस असार-ससार से मुक्त भी हो सकता है। यथार्थ मे यदि यह रस उत्तमोत्तम सस्कृत पारद शुद्ध गन्धक, सहस्रपुटी अभ्रक, स्वर्ण, रौप्य, लोह, वग, नाग, स्वर्णमाक्षिक एवं वैक्रान्तादि निरुत्थ धातु भस्मे डालकर वास्तविक वनस्पतियो, विषबीजादि तैलो तथा केसर, कस्तूरी, कमल, केतकी आदि सुगन्धित द्रव्यो की भावनायें देकर निष्पन्न किया जाय तो मैं विश्वास दिलाता हू कि शास्त्रोल्लिखित सभी गुण इस रस मे मिलते हैं यथा—

नष्ट वीर्यं प्रपन्नं भवति यदि ।
पुमान्सेवते रम्यकान्तां ॥
षण्ठो वा वाजितुल्यो जनयति ।
तनयान् सिंह तुल्य प्रतापान् ॥

स्त्री सेवन से नष्ट हुआ वीर्य पुन उत्पन्न होता है। नपु सक व्यक्ति भी इस रस का सेवन करके अश्व के समान वेग वाले तथा सिंह सदृश प्रतापी पुत्रो को उत्पन्न करता है।

मधुमेही के लिए प्रमदेभाकुश का अनुपान—यद्यपि यह रस वाजीकरण अधिकार का है तथापि न्यग्रोधादि चूर्ण के साथ इस रस का सेवन कराने से मूत्र शर्करा एव रक्तगत शर्करा दोनो मे यथेष्ठ लाभ होता देखा गया है। इस रस की शास्त्रीय मात्रा ६ रत्ती की लिखी है किन्तु मधुमेही को ३ रत्ती प्रात ३ रत्ती साय ३ माश न्यग्रोधादि चूर्ण के साथ गोदुग्ध से सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ क्लीव पुरुषो को शीतकाल मे यह रस ६ रत्ती तक भी दिया गया और आशातीत लाभ हुआ।

न्यग्रोधादि चूर्ण के घटक—वड, गूलर, पीपल की छाल, स्योनाक, अमलतास, विजयसार, आम, कैथ, जामुन, चिरौंजी, अर्जुन, धव, मेटासिगी, दन्ती, चीता अरहर, करज, त्रिफला, इन्द्रजव और शुद्ध भिलावा ये सब समान भाग लेकर वस्त्रपूत चूर्ण बनावें। तीन-तीन माशा प्रात' साय लेकर ऊपर से त्रिफला का क्वाथ पीने से अकेले यह चूर्ण ही सभी प्रकार के प्रमेह, प्रमेह पिडिका, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग अच्छा कर मूत्र शुद्ध आता है। प्रमदेभांकुश के मिल जाने से इसमे अचिन्त्य शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है।

—कवि० श्री व्रजविहारी मिश्र वैद्य एम ए (द्वय) आयु.रत्न
मन्त्री—प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन उ० प्र०
पो० बिन्दकी (फतेहपुर) उ० प्र०

मूत्रावरोध और उसकी चिकित्सा

श्री जहान सिंह चौहान आयुर्वेद रत्न, नवीगंज (मैनपुरी) उ० प्र०

मूत्रावरोध उस दशा का नाम है जब रोगी मूत्र त्याग करने मे असमर्थ होता है। मूत्राशय मे मूत्र भरा रहता है और वह विस्तृत होकर अपने स्वाभाविक आकार से अधिक बढ जाता है किन्तु मूत्र त्याग नही होता। मूत्रावरोध में नाभि के नीचे तक पेट फूल जाता है और पेशाब करने की इच्छा होती है, परन्तु पेशाब नहीं होता। मूत्राशय के विस्तृत होने पर भगसन्धानिका के ऊपर उसकी सीमा देखी जा सकती है अथवा परिस्पर्शन से उसकी ऊपरी सीमा मालूम की जा सकती है। चिरकालीन अवस्थाओ में मूत्राशय नाभि तक विस्तृत मिल सकता है। मूत्रावरोध को अंग्रेजी मे रिटेन्शन आफ यूरिन कहते हैं।

मूत्रावरोध निम्न रोगो की भिन्न अवस्थाओ मे मिलता है—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

आयुर्वेदीय निदान मे मूत्रावरोध कई रोगो की अलग अलग अवस्थाओ मे मिलता है—

वात कुंडलिका—उस अवस्था मे जबकि रूक्षता एव वेगरोध से कुपित हुई वायु वस्ति मे वेदना उत्पन्न करके कुंडलीकृत होकर थोडा थोडा मूत्र प्रवर्तित करती है। इसे मूत्रावरोध की दारुण व्याधि माना गया है।

अष्ठीला—जब वायु वस्ति और गुदा को अवरुद्ध करती हुई फुलाकर अष्ठीला नामक चलायमान एव उभरी हुई तीव्र पीड़ा उत्पन्न करती है ऐसी अवस्था मे मल और मूत्र का अवरोध हो जाता है। यह प्रोस्टेट ग्रन्थि की पाकावस्था है। इसमे वस्ति एव गुदा क्षेत्र मे आध्मान होता है।

वात वस्ति रोग मे—जो अज्ञानी मनुष्य मूत्र के वेग को रोकता है उसकी वस्ति मे स्थित वायु वस्ति के मुख को बन्द कर देती है। इस अवस्था मे वस्ति और कुक्षि मे पीडा के साथ मूत्र रुक जाता है।

मूत्रातीत—यह भी वेगरोध के द्वारा उत्पन्न स्थिति है। जब देर तक मूत्र त्याग नही किया जाता, फिर यदि पेशाब करने बैठा जाये तो उस अवस्था मे मूत्र धीरे धीरे उतरता है, पूरे वेग से नही।

मूत्रजठर—यह भी वेगरोध का परिणाम है या मूत्रमार्ग मे कोई अवरोध हो जाता है तो ऐसी स्थित में मूत्रावरोधमू हो जाता है।

मूत्रोत्सग—यह अवस्था वायु के विमार्ग गमन से उत्पन्न होती है, रुकावट अश्मरीजन्य होती हैं और निकोचन जन्य भी। इसमे मूत्र का अवरोध हो जाता है। यह मूत्र वस्ति, मूत्रनाल या मणि क्षेत्र मे रुक जाता है।

मूत्रक्षय इसमे मूत्र का बनना रुक जाता है। रोगी को वेदना और जलन होती है। इसे अन्यूरिया कहते हैं यह एक भीषण व्याधि है।

मूत्र ग्रन्थि—इसे पौरुष ग्रथि वृद्धि कहते हैं। वृद्धावस्था मे इसकी वृद्धि हो जाती है जो मूत्रमार्ग का अवरोध कर देती है। ऐसी अवस्था मे रोगी को रुक रुक कर पेशाब आता है।

मूत्र शुक्र—शुक्र के पीडित होने पर जब वह मूत्रमार्ग मे रुकावट डालता हे और मूत्र के आगे पीछे भस्म युक्त जल के साथ निकलता है।

उष्ण वात—गनोरिया के कारण होता है। यह मूत्रमार्ग की व्रणशोथावस्था है। इस अवस्था मे मूत्रावरोध हो जाता है।

मूत्रसाद—इसमें मूत्र मे वसा, रक्त अथवा Chyle



मिले होने पर मूत्र मे गाढापन आ जाता है। और मूत्र मे उतरने कष्ट होता है।

विडविघात—जब मल और मूत्रमार्ग मे नालव्रण (Vesico Intestinal fistula) बनता है और मल मूत्र मार्ग मे आ जाता है। ऐसी अवस्था मे मूत्रावरोध हो जाता है। कभी-कभी मल के साथ अपान वायु भी आती है और छिद्र अत्यन्त छोटा होने पर केवल अपान वायु आती है।

वस्तिकुण्डल (Kinking or Volvulus of the Bladder & Urethra)—यह वस्ति की Atony की अवस्था है। इसमे मूत्राशय प्राचीर की तान समाप्त हो जाती है। कूदने या चोट लगने से वायु के प्रकोप से यह भीषण अवस्था बनती है। इसमें मूत्र बूंद-बूंद बनता है।

आधुनिक मतानुसार मूत्रावरोध निम्न रोगो की अवस्थाओ मे पाया जाता है—

हैजे की पाचवी अवस्था मे जबकि अधिक कै और दस्तो से शरीर का जलीयाश निकल जाता है और Dehydration की अवस्था उत्पन्न हो जाती है ऐसी अवस्था मे पूर्ण मूत्रावरोध हो जाता है।

रायट हार्ट फैल्योर तथा वृक्क के विकार मे—जब मूत्र का निर्माण एकदम स्थगित हो जाता है और Oliguria की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था मे मूत्रावरोध हो जाता है।

सर्वांग शोथ की अवस्था मे—जबकि यकृत, हृदय तथा वृक्क में विकार आने से शरीर मे जगह-जगह पर जल एकत्र होने लगता है और शरीर पर शोथ आ जाता है। जिसे (Anasarica) की अवस्था कहते हैं। इसमे पूर्ण मूत्रावरोध तक होते देखा गया है।

जलोदर रोग—प्राय. यकृत की बीमारी की अन्तिम अवस्था मे पेट पर सूजन आ जाती है और पेट मे पानी इकट्ठा हो जाता है। पेशाब की मात्रा निरन्तर घटती जाती है यहा तक कि रोग बढने पर एक ऐसी अवस्था आती है कि पूर्ण मूत्रावरोध तक हो जाता है।

संक्रामक रोग—जैसे टायफायड आदि रोगो मे विभिन्न प्रकार के सक्रमणो को रोकने के लिये जब सल्फा ड्रग का प्रयोग किया जाता है और सल्फा औषधियो को बिना क्षार युक्त दिया जाता है तो सल्फा औषधिया वृक्कों मे कणो के रूप मे इकट्ठी होने लगती हैं जिससे मूत्रावरोध की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

स्त्रियो मे योनि के शस्त्र कर्म के बाद—उपद्रव के रूप मे बहुत अधिक जाली भरने से भी मूत्रमार्ग पर दबाव पड जाता है। उससे भी मूत्र निकलने में रुकावट हो जाती है। मूलाधार मे आघात के प्रतिवर्त से भी मूत्र रुक जाता है।

अतिजरावस्था—७० या ८० या इससे अधिक आयु वालो मे मूत्राशय की पेशियो की दुर्बलता भी मूत्रावरोध उत्पन्न करती है।

मूत्रमार्ग के उग्रशोथ मे—इस रोग में भी मूत्र त्याग नही होता। यदि होता भी है तो बडे कष्ट के साथ। गोनोमेह मे यही दशा मूत्रमार्ग शोथ के कारण उत्पन्न होती है।

मानसिक तथा नाडी सम्बन्धी विकारों मे—मेरुदंड के भग्न में सुषुम्ना के उस भाग के क्षत हो जाने पर जहा से मूत्राशय मे नाडी सूत्र जाते हैं मूत्र त्याग नही होता है। जननेन्द्रियों तथा गुदा और उपस्थ प्रान्त के शस्त्र कर्मों के पश्चात् बहुत बार मूत्र त्याग नही होता।

गर्भावस्था के आखिरी महीनो मे गर्भ के दबाव से।

प्रसव के बाद सक्रमण होने की अवस्था मे मूत्रावरोध हो जाता है।

मूत्रमार्ग के सकिरण मे—मूत्र मार्ग के प्रथम या दूसरे भाग में सकिरण (Stricture) की उत्पत्ति हो जाती हे। गोनोमेह के सक्रमण से मूत्रमार्ग मे शोथ उत्पन्न हो जाता है। यह शोथ मार्ग के चारों ओर स्थित ग्रन्थियो मे पहुचता है। और वहा से आगे की श्लेष्मिक कला के बाहर अधोश्लैष्मिक स्तर में पहुच जाता है जब शोथ का शमन हो जाता है तो वहां सौत्रिक ऊतक (Connective Tissue) बनने लगता है। इसी से श्लेष्मिक कला मे सकोच या सकीर्णता उत्पन्न हो जाती है। यह इतना बढ जाता है कि मूत्र निकलना बन्द हो जाता है और उग्र मूत्रावरोध की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

ग्रन्थि की जराजन्य अपवृद्धि—

वृद्धावस्था (५५-६० वर्ष की अवस्था) में अ डग्रथि

के आन्तरिक स्राव की कमी के कारण पौरुष ग्रन्थि वृद्धि हो जाती है। मूत्रमार्ग की चौडाई वर्धित ग्रन्थि खण्ड के दवाव के कारण कम हो जाती है। ग्रन्थि के अधिक वढ जाने पर मूत्राशय मे रुका मूत्र भरा रहता है। जव मूत्र का भार अधिक हो जाता है तो थोडा सा मूत्रग्रन्थि के अवरोध को दूर करके निकल जाता है। ऐसी अवस्था मे मूत्र पूरी धार से नही निकलता तथा धार मे वेग नही होता।

मूत्राशय मे अश्मरी की अवस्था मे—

पुरुषो मे विशेषकर शिशु और वालकों मे मूत्राशय मे अश्मरी वन जाती है। जव रोगी मूत्र त्याग के लिए वैठता है तव अश्मरी मूत्राशय मे सामने और नीचे की ओर गिर कर मूत्र मार्ग के द्वार को रोक देती है और मूत्र रुक जाता है। मूत्राशय से वाहर श्रोणि मे—अर्वुद जो मूत्र मार्ग को मूत्राशय से निकलने के स्थान पर वाहर से दवाकर मूत्र प्रवाह को रोक देते हैं।

मूत्रावरोध की चिकित्सा

शास्त्रीय चिकित्सा—

वातकुण्डलिका—इसमे दशमूल का क्वाथ शिलाजीत मिलाकर पीना चाहिए।

अष्ठीला—दशमूल का क्वाथ (गर्म-गर्म) शिलाजीत मिलाकर देने से मूत्रावरोध ठीक होता है।

वातवस्ति—इसमे भी शिलाजीत तथा चीनी मिले गर्म-गर्म दशमूल क्वाथ के साथ देना चाहिए।

मूत्रातीत—इसमे तीव्र मूत्रल क्षारादि का प्रयोग या तृणपचमूल क्वाथ का पान कराया जाता है।

मूत्र जठर—इसमे कैथेटर या उत्तरवस्ति देनी चाहिए साथ ही मिश्री, शहद और शिलाजीत तीनो की चटनी वनाकर रोगी को चटाया जावे।

मूत्रोत्सग—व मूत्र शुक्र मे—गोखरू पञ्चांग क्वाथ के साथ चीनी और शुद्ध गुग्गुल के साथ दें।

मूत्रक्षय और मूत्रसाद—इसमे तृणपचमूल के क्वाथ मे धनिया चूर्ण व शक्कर मिलाकर दें।

मूत्रग्रन्थि में—वरुणादि लौह, श्वेत पर्पटी व यवक्षार के साथ व वरुणादि क्वाथ के साथ दें।

नोट—इस रोग मे पाषाणभेदादि क्वाथ, विदारी घृत का प्रयोग करना चाहिए।

उष्णवात मे—घृतशीत जल और अन्न सेवी श्वेत चन्दन को तण्डुलोदक मे घिसकर मिश्री के साथ पीने।

विडविघात में—शिलाजीत को एरण्ड का तैल मिश्रित गोदुग्ध मिलाकर देना चाहिए।

वस्तिकुण्डल—मे सैंधानमक व रससिंदूर मिलाकर दें।

मूत्रावरोध हर अन्य आयुर्वेदीय चिकित्सा—

भैषज्य रत्नावली मे मूत्रावरोध पर एक योग दिया है जो सभी तरह के मूत्रावरोध समूल नष्ट करता है वह इस प्रकार है—

रससिंदूर को नमकीन काजी के साथ पीने से मूत्रावरोध शीघ्र नष्ट होता है।

गोक्षुर, पुनर्नवा आदि मूत्रल द्रव्यो का भी प्रचुर मात्रा मे प्रयोग होता है।

चित्रकादि घृत, धान्य गोक्षुर घृत, विदारी घृत, मह्रावह घृत, उशीरादि तैल जो मूत्रावरोध पर कार्य करते हैं। भैषज्य रत्नावली मे लिखे हैं।

गोमूत्र का प्रयोग भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

शुद्ध शिलाजीत २-३ रत्ती दूध के साथ सेवन करने से पेशाव खुलकर होने लगता है।

श्वेत पर्पटी के सेवन से पेशाब बहुत होता है।

असगन्ध का काढा पिलाने से वहुत पेशाब होता है।

कुश, कास, मूज की जड, ईख और दूर्वा इनका काढा पीने से वहुत पेशाव होता है। इसका नाम पचतृण है।

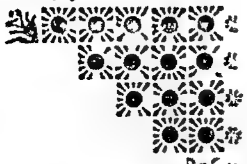
जवाखार व मूलीखार पेशाव वनाने को अक्सीर है।

गोखरू के काढे मे जवाखार ३ माशा डाल कर पिला दे। वहुत पेशाव होता है।

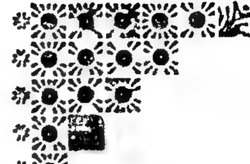
कपूर को पेशाव के रास्ते मे रखने से पेशाव हो जाता है।

कल्मी शोरा को जल मे मिलाकर कपड़ा भिगोलें और उसको पेशाव की थैली पर रखें। पेशाव हो जावेगा।

****



शोथ रोग



श्री दरबारीलाल वैद्य आयुर्वेद भिषक्, फतेहगढ़ (फर्रुखाबाद) उ० प्र०

सम्प्राप्ति—

दूषित हुआ वायु दूषित रक्त, पित्त तथा कफ को बाहर की शिराओ मे ले जाकर फिर उन दूषित हुए रक्त कफ पित्त से रुद्ध गति हुआ हुआ वहा पर ही सूजन कर देता है। वह सूजन त्वचा व मास को आश्रय करके रहता है। उस उन्नत, एक स्थान मे स्थित हुए ऊ चे स्थान को शोथ कहते हैं। वह शोथ ९ प्रकार का होता है। १. वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ वात पित्तज, ५ पित्त कफज, ६ वात कफज, ७ सन्निपातज, ८ अभिघातज, ९ विषज।

पूर्वरूप—

शोथ होने से पहले दाह होता है। शिराओं के फैलने के समान पीडा होती है, अङ्ग भारी होते हैं।

कारण—

वमन विरेचनादि से देह को शुद्ध करने से, ज्वरादि हो जाने से, भोजन न करने से या विगुण भोजन से कृश तथा निर्बल हुए मनुष्य यदि क्षार, खट्टे, तीक्ष्ण, गरम तथा गुरु पदार्थ अधिक सेवन करें तो सूजन हो जाती है। दही के सेवन से, अपक्व भोजन से, मिट्टी खाने से तथा शाक खाने से भी शोथ हो जाता है। विरोधी तथा पुष्ट भोजन के सेवन से तथा गरविष यानी संयोगज विष से युक्त अन्न सेवन करने से भी शोथ रोग हो जाता है। अर्श-रोग से, चेष्टा न करने से, शरीर के शोधन योग्य दोष की शुद्धि न करने से, मर्मघात हो जाने से, विषम प्रसव होने से तथा वमन आदि के अयोग्य उपचार से शोथ रोग हो जाता है।

शोथ के सामान्य लक्षण

पित्त का स्थिर न रहना और शरीर मे भारीपन रहना। उभार, उष्णता, शिराओ मे पतलापन, रोम हर्ष, विवर्णता-ये शोथ के सामान्य लक्षण कहे गये हैं।

वातज शोथ के लक्षण—वातज शोथ अस्थिर, पतली त्वचा वाला, रूक्ष, अरुण, काला, सज्ञानाश झुनझुनी एव पीडा से युक्त अकारण शान्त होने वाला, मसलने से उभरने वाला और दिन मे बढ़ने वाला होता है।

पित्तज शोथ के लक्षण—जो शोथ मृदु, गन्धयुक्त, काला पीला एव लालिमा युक्त हो, भ्रम, ज्वर, स्वेद, तृष्णा एव मद से युक्त हो, जो जलता सा हो तथा स्पष्ट पीड़ा एव आखो में लाली उत्पन्न करने वाला हो वह पित्तज शोथ है। यह अत्यन्त दाह करने वाला एव शीघ्र पकने वाला होता है।

कफज शोथ के लक्षण—यह शोथ स्थिर, भारी एव पाडु वर्ण होता है। साथ मे अरोचक भी पाया जाता है। यह लालास्राव, निद्रा, वमन एवं अग्निमाद्य उत्पन्न करता है। यह देर से उत्पन्न एव शात होता है तथा मसलने से उभरता नही है। यह रात्रि मे बढता है।

द्विदोषज एव त्रिदोषज शोथ के लक्षण—दो दोषों के मिश्रित निदान एव लक्षणो से युक्त शोथ द्विदोषज (द्वन्दज) होता है और सन्निपातज शोथ मे सब दोषो के लक्षण मिले हुए पाये जाते हैं।

अभिघातज शोथ के लक्षण—शस्त्रादि के कटने, छिदने या छिलने आदि से, बर्फीली हवा, समुद्री हवा, भिलावे का तेल या उसका धुआ अथवा कौंच की फली के रोओ के स्पर्श से फैलने वाला, काफी गरम, रक्ताभ वर्ण का और प्राय पित्तज शोथ के समान लक्षणो वाला अभिघातज शोथ उत्पन्न होता है।

विषज शोथ के लक्षण—विषैले प्राणियो के रेंगने, मूत्र त्याग करने तथा दाढ, दात या नख के आघात से निर्विष प्राणियो के दाढ, दात या नख के आघात से,

मल, मूत्र अथवा शुक्र लगे हुए मैले वस्त्र के ससर्ग से, विष वृक्ष की वायु के स्पर्श से या कृत्रिम विष बुरक दिये जाने से मृदु, फैलने वाला, लटकने वाला तथा शीघ्र ही दाह और पीडा करने वाला विषज शोथ उत्पन्न होता है।

शोथ के स्थान से दोषो के स्थान का सम्बन्ध

आमाशय मे स्थित दोष ऊपरी भाग में शोथ उत्पन्न करते हैं। पक्वाशय मे स्थित दोष मध्य शरीर मे, मलाशय मे संचित दोष निचले शरीर में और सारे शरीर मे व्याप्त दोष सारे शरीर में फैलने वाला शोथ उत्पन्न करते हैं।

साध्यासाध्यता

शरीर के मध्य में होने वाला तथा सारे शरीर मे होने वाला शोथ कष्टसाध्य होता है। अर्धांग मे होने वाला तथा ऊपर की ओर फैलने वाला शोथ मारक होता है।

श्वास, तृष्णा, वमन, दुर्बलता और अरुचि से युक्त शोथ रोगी असाध्य है। जो शोथ नीचे पैरो से उठकर ऊपर को चढे वह पुरुष को मार देता है और जो शोथ मुह से चलकर नीचे की ओर उतरे वह स्त्री को मार देता है और जो सूजन वस्ति से चल कर सारे शरीर मे फैल जाय वह स्त्री पुरुष दोनो को मार देती है।

शोथ के उपद्रव—

श्वास, पिपासा, निर्बलता, ज्वर, वमन अरुचि, हिचकी अतिसार तथा खासी ये सभी उपद्रव शोथ मे हो जाय तो रोगी नष्ट हो जाता है।

पाश्चात्य मत

डाक्टरो ने सूजन के मुख्य ४ कारण माने है। यथा—

(१) पाण्डु रोगजन्य।

(२) जिगर के रोग से उत्पन्न।

(३) हृदय रोग से उत्पन्न।

(४) मूत्र पिण्ड के रोगो से उत्पन्न।

हर एक प्रकार के लक्षण नीचे लिखे जाते है—

(१) पाण्डु रोग जन्य—इसमे प्राय रोगी को पहले बुखार आता है और खासकर मलेरिया बुखार आता है। रोगी की तिल्ली बढ जाती है, खून की कमी हो जाती है। पाडु हो जाता है। सूजन पहले पैरो मे शुरू होती है फिर जाघो पर आती है उसके बाद पेट बढ़ जाता है।

(२) जिगर(यकृत) के रोग से उत्पन्न शोथ के लक्षण—जब जिगर के किसी रोग के कारण सूजन आ जाती है तो पहले पेट बढता है और फिर हाथ पैरो पर और सर्वांग मे सूजन आती है। इसमे प्राय पेट मे पानी बढकर जलोदर हो जाता है, पेट बढकर मशक जैसा हो जाता है जिससे उठना बैठना और श्वास लेना तक कठिन हो जाता है। कभी-कभी आखें पीली हल्दी के रग की हो जाती हैं जिसे कामला रोग कहते हैं। जिगर मे सूजन व दर्द होता है।

(३) हृदय रोगो से उत्पन्न शोथ रोग के लक्षण—इसमे सबसे पहले पैरो पर सूजन आती है फिर हाथो पर और अन्त मे पेट पर सूजन आती है। इसमे श्वास, खासी की तकलीफ अधिक रहती है।

(४) मूत्र पिण्ड के रोगो से उत्पन्न शोथ रोग के लक्षण—इसमे सबसे पहले आख की पलक पर सूजन आती है और फिर चेहरे तथा हाथ पैरो पर सूजन आती है। सूजी हुई पलको के अन्दर आख की पुतली धसी हुई सी मालूम हुआ करती है। मूत्र लाल या काला आता है।

शोथ रोग की चिकित्सा

निदान परिवर्जन के सिद्धान्तानुसार सर्व प्रथम उन कारणों को दूर करना चाहिए जिनसे शोथ हुआ हो। शोथ रोग कोई स्वतन्त्र व्याधि नही है बल्कि अन्य रोगो के फलस्वरूप शोथ रोग की उत्पत्ति होती है। जिस रोग के कारण शोथ की उत्पत्ति हुई है उस रोग को नष्ट करने से शोथ रोग स्वय नष्ट हो जाता है। आमतौर पर पाडु रोग जन्य तथा जिगर के रोग से उत्पन्न शोथ रोगी ही अधिकाश पाये जाते हैं। इन रोगियो को प्रारम्भ मे मलेरिया ज्वर आता है और उससे जिगर (यकृत) में सूजन हो जाती है। जब जिगर की सूजन अधिक बढ जाती है तो प्रतिहारिणी महाशिरा जो जिगर मे होकर ऊपर जाती है और कमर से नीचे के अशुद्ध रक्त को हृदय को ले जाती है, सकुचित हो जाती है और अशुद्ध रक्त को ऊपर चढने मे रुकावट होती है। जिससे रक्त रस शिरा की दीवारो द्वारा रिसने लगता है। वह रक्त रस रिस रिस कर सर्व प्रथम पैरो मे जमा होने लगता है उसी को शोथ कहने लगते हैं। जितनी रक्त रस की मात्रा बढती जाती है शोथ भी उतना ही बढ़ता जाता है। इसकी चिकित्सा के लिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि सचित रक्त रस को



दस्तो द्वारा तथा मूत्र द्वारा निकाल दिया जाय और यकृत (जिगर) की सूजन को घटाया जाये जिससे अशुद्ध रक्त के ऊपर चढने मे रुकावट न हो और न रक्त रस शिराओ से रिसे। दस्त कराने के लिए इच्छाभेदी रस अच्छा काम करता है। यह आतो मे चिपके हुए मल को घुला कर निकाल देता है। जलोदर, कठिन वातविकार, खून खराबी, कृमि, उदरशूल, आव, कठिन मलावरोध आदि मे जुलाब के लिए यह अत्युत्तम है। यह सचित रक्त रस को आतो द्वारा खीचकर दस्तो द्वारा बाहर निकाल देता है जिससे सूजन मे शीघ्र ही लाभ मालूम होने लगता है।

इच्छाभेदी रस की उपयोग विधि—पूरी उम्र वालो को १ गोली तथा बहुत कडे कोठे वालो को २ गोली तक प्रात काल एक बार ताजा जल या मिश्री के शर्बत के साथ लेना चाहिए। इसके सेवन से १–२ दिन पहले खिचडी और घी खिलाकर पेट को चिकना कर लेने से दस्त साफ आते हैं। इनको खाने के बाद जितना ठण्डा जल पिया जाता है उतने ही अधिक दस्त आते हैं। यदि दस्त अधिक आने लगे और उनको रोकना हो तो गरम जल पीना चाहिए। दस्त बन्द हो जायेगे। दस्त बन्द हो जाने पर घी युक्त खिचडी खानी चाहिए। ठडा पानी ४ घटे तक नही पीना चाहिए अन्यथा पुन दस्त लगने की सम्भावना रहती है। यह दवा उग्रवीर्य है अत बालको, निबल हृदय वालो, कमजोर कोष्ठ वालो, गर्भवती स्त्री, बूढो को न दे

भली-भाँति दस्त हो जाने पर प्रात साय पुनर्नवादि मण्डूर १ गोली व आरोग्य वर्द्धनी वटी १ गोली मिलाकर पानी से खिलायें और ऊपर से पुनर्नवादि क्वाथ पिलायें। तथा दिन मे दो बार दोपहर व शाम को कुछ खाने के बाद पुनर्नवारिष्ट १। तोला पानी १। तोला मिलाकर पिलायें। इस प्रकार दवा प्रयोग करने से जिगर तथा हाथ पैरो की सूजन बहुत शीघ्र कम होने लगती है। पाखाना साफ आता है। शरीर मे नया रक्त बनने लगता है, स्वर अरुचि आदि दूर होकर भूख खुल जाती है और रोगी बहुत जल्द स्वस्थ हो जाता है। इसी चिकित्सा क्रम से जलोदर भी ठीक हो जाता है। शोथ रोगी जो मेरे पास आते हैं उन सबका उपचार इसी क्रम से करता हू और सभी को शीघ्र ही लाभ होता है।

इनके अतिरिक्त और भी दवायें हैं जो बहुत गुणकारी हैं, उनका भी आवश्यकता पडने पर प्रयोग करता हू। जिनका विवरण निम्नलिखित है—

पुनर्नवा इन्जेक्शन—ए०वी० एम० रिसर्च इन्स्टीट्यूट हापुड का बना हुआ शोथ, सर्वांग शोथ, जलोदर, वृक्क शोथ पर अत्यन्त लाभप्रद है। इससे मूत्र खुलकर आता है, जिससे सूजन घट जाती है, २ सी सी. का इंजेक्शन रोजाना या एक दिन छोडकर मासगत लगाना चाहिए। पूर्ण रोग मुक्ति के लिये ६ से १२ इन्जेक्शन तक पर्याप्त हैं।

यदि शोथ के साथ श्वास, कास ज्वर व वमन भी हो तो गिलोय कटेरी तथा अडूसे की जड का काढा मधु मिलाकर पुनर्नवादि क्वाथ के स्थान पर पिलायें तो शीघ्र लाभ हो।

यदि बुखार जाडा लगकर आया हो तो महाज्वरांकुश रस का प्रयोग करना चाहिए। भिलावा के तेल के लगने से शोथ व घाव हो जाते हैं उनके लिये मेरे अनुभव मे सब से अच्छी दवा पेन्सलीन टेबलेट है। २ लाख यूनिट ताकत की एक गोली प्रात व १ गोली शाम को पानी से लें। इसका भुक्त भोगी मैं खुद हू। लगभग दस साल पहले की बात है। मैंने भिलावा शुद्ध करने का उपक्रम बनाया उसके टुकड़े करने में लापरवाही से भिलावा का तेल पैरो पर गिर गया जिससे दोनो पैरो पर बहुत सूजन आ गई और घाव हो गये जिसके लिये शास्त्र वर्णित उपचार किया मगर कोई लाभ नहीं हुआ। उसके बाद अपनी बुद्धि से सोच विचार कर पेन्सलीन टेबलेट खाना शुरू किया जिससे शीघ्र लाभ हुआ और ३-४ दिन मे ठीक हो गया।

एक सर्वाङ्ग शोथ वाली रुग्णा को उपरोक्त चिकित्सा क्रम से ठीक किया जिसका विवरण नीचे दिया जाता है—

जिगर मे तथा सर्वांग मे शोथ था तथा ज्वर भी आ जाता था उसको प्रात साय पुनर्नवादि मंडूर तथा आरोग्यवर्द्धनी वटी दी और पुनर्नवारिष्ट भी दिन मे दो बार पिलाया तथा पुनर्नवा इन्जेक्शन लगाया। इस प्रकार चिकित्सा करने पर चमत्कारी लाभ हुआ और ५-६ दिन मे पूर्ण स्वस्थ हो गई।

वृद्धों की ऊर्ध्वजत्रुगत व्याधियों में दारुहरिद्रा के प्रयोग

डा० राजेन्द्र पाल शर्मा, बी ए एम एस, एम डी (आयुर्वेद), राज० आयु० महाविद्यालय, पपरोला (कांगड़ा)

दारुहरिद्रा एवं उससे निर्मित रसाञ्जन का शालाक्य तन्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है—उसको डा० शर्मा ने शोधपूर्ण कार्य कर लेख रूप में प्रस्तुत किया है। डा० शर्मा पटियाला के एम० डी हैं और एक होनहार योग्य स्नातक हैं। —डा० शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

स्वतन्त्र रूप में इसे नेत्र, कण्ठरोग, कर्ण रोग तथा व्रणों की चिकित्सा के लिए प्रयोग किया जाता है।

प्रस्तुत लेख में दारुहरिद्रा से रसाञ्जन निर्माण करके उसे रसाञ्जन नेत्र बिन्दु, रसाञ्जन कर्ण बिन्दु के रूप में नेत्र, तथा कर्ण रोगों में तथा गण्डूष के रूप में कण्ठ रोगों में प्रयोग किया गया। इस परीक्षण के लिये ५१ रोगियों का चयन किया गया।

रसाञ्जन निर्माण—देहरादून एवं मसूरी आदि स्थानों से आर्द्रावस्था में दारुहरिद्रा लाई गई। उसे स्वच्छ कर छाया में सुखाया, छोटे-छोटे टुकड़े कर जल में भिगोया, २४ घण्टे भीगे रहने के पश्चात् कुल १६ गुना जल मिला कर चतुर्थांश शेष रहने तक क्वाथ बनाया। स्वच्छ वस्त्र से छानकर "हाट एयर ओवन" में ६०° सेंटीग्रेड पर तापक्रम स्थिर करके घन निर्माण कर लिया गया। अधिक ताप पर रसाञ्जन में क्रियाशील तत्व जल जाते हैं।

१ नेत्र रोगों के लिए—रसाञ्जन नेत्र बिन्दु–१% विलयन। (१ भाग रसाञ्जन १०० भाग परिस्रुत जल)

२ कर्ण रोगों के लिए—रसाञ्जनकर्ण बिन्दु–२% विलयन। (२ भाग रसाञ्जन १०० भाग परिस्रुत जल)

३. कण्ठ रोगों को—२% उष्ण जल में–गण्डूषार्थ।

रोगी चयन—

राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय पटियाला से सम्बद्ध आतुरालय के शालाक्य बहिरंग विभाग से नेत्र, कर्ण तथा कण्ठ रोगियों का चयन किया गया। इस अध्ययन में ५१ रोगी लिए गये जिसमें पुरुष २५ तथा स्त्री २६ थे।

विधि—नेत्र रोगियों में रसाञ्जन नेत्र बिन्दु का २-२ बूंद की मात्रा में दिन में तीन बार रोगग्रस्त नेत्र में प्रयोग किया गया तथा ६ से १४ दिन तक चिकित्सा के पश्चात् लाक्षणिक परिणाम का अध्ययन किया गया। कृपया देखें तालिका ३ तथा ४।

कर्ण रोगियों में रसाञ्जन कर्ण बिन्दु का प्रयोग ३-४ बूंद की मात्रा में रुग्ण के कान में ३ बार डाला गया। कर्णस्राव की अवस्था में स्राव को साधारण रुई से स्वच्छ करने के पश्चात् रसाञ्जन कर्ण बिन्दु का प्रयोग किया गया तथा चिकित्सा ६ से १४ दिन तक की गई, और लाक्षणिक परिणाम का अवलोकन किया। कृपया देखें तालिका २ तथा ५।

कण्ठ रोगियों में रसाञ्जन के उष्ण जल में २ प्रतिशत विलयन को गण्डूषार्थ प्रयोग किया गया। गण्डूष दिन में तीन बार करवाये गये, और लाक्षणिक परिणाम का अध्ययन किया गया। कृपया देखें तालिका ३ और ६।

आतुरीय परीक्षण

तालिका १—नेत्राभिष्यन्द

नेत्राभिष्यन्द की उग्रता एवं संख्या प्रदर्शक तालिका

लक्षण	अत्यधिक	अधिक	साधारण	नहीं	रोगी योग
लालिमा	८	१४	४	२	२८
स्राव	१२	१२	४	—	२८
वेदना	८	८	६	६	२८
चुभन	४	१०	४	१०	२८

तालिका २ मध्यकर्ण शोथ

लक्षण	+++	++	+	—	रोगी योग
शोथ	१	६	३	१	११
वेदना	१	३	४	३	११
स्राव	२	५	२	२	११
कण्डु	८	२	१	—	११

तालिका ३—कण्ठ शोथ

लक्षण	+++	++	+	—	रोगी योग
खराश	३	६	१	२	१२
वेदना	२	६	३	१	१२
शोथ	१	४	६	१	१२
स्वरभग	३	४	१	४	१२
कास	१	३	२	६	१२

चिकित्सावधि पूर्ण होने पर नेत्राभिष्यन्द मध्य कर्ण शोथ तथा कण्ठ शोथ मे निम्न लाक्षणिक लाभ अवलोकित किये गये—

तालिका ४

नेत्राभिष्यन्द-लाक्षणिक लाभ

लक्षण लाभ	१००%	५०%	२५%	१०%	लाभ नही
स्राव	१०	१५	२	—	१
वेदना	५	१५	५	३	—
लालिमा	१५	१०	३	—	—
चुभन	६	१७	३	२	—

तालिका ५—मध्य कर्ण शोथ

लक्षण लाभ	१००%	५०%	२५%	१०%	लाभ नही
शोथ	५	२	२	१	१
वेदना	७	३	१	—	—
स्राव	६	२	१	१	१
कण्डु	७	३	१	—	—

तालिका ६—कण्ठ शोथ

क्रम	लक्षण	लाभ १००%	५० %	२५ %	१० %	लाभ नही
१	खराश	७	२	१	१	१
२	वेदना	६	३	—	२	१
३	शोथ	६	२	२	१	१
४	स्वरभग	७	१	१	१	२
५	कास	१	७	३	—	२

उपरोक्त आतुरीय परीक्षा मे नेत्र रोग, कर्ण रोग तथा कण्ठ रोग मे दारुहरिद्रा के उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं। दारुहरिद्रा के गुण कार्यों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि दारुहरिद्रा लघु, रूक्ष, गुण युक्त, तिक्त, कषाय रस, कटु विपाकी तथा उष्ण वीर्य वाली है। इसीलिए कषाय रस तथा रुक्ष गुण के कारण इससे स्राव शुष्क होता है, शोथहर तथा रक्त शोधक और रोधक होने से किसी भी प्रकार के व्रण का शोधक तथा रोपण करती है।

आभार प्रदर्शन

मैं डा० विनय कुमार जी शर्मा प्रिंसिपल–राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय पटियाला तथा डा० बाल कृष्ण जी सिंगला प्रोफेसर एव शालाक्य विभागाध्यक्ष का आभारी हू, जिनके सहयोग से मैं यह आतुरीय परीक्षण १९७६ मे कर पाया था।

मारीशस में जरा–व्याधि

वैद्यराज डा० दे० सोब्रन, मारीशस।



विदेशो मे बढ़ रहे आयुर्वेद चिकित्सा के प्रभाव से कौन अपरिचित वे। मारिशस टापू मे दस वर्ष पूर्व सम्भवन लोग आयुर्वेद से परिचित न थे परन्तु अब इसका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। वहां के निवासी सभी वर्गों के लोग फ्रेंच, चीनी, डच, हिन्दू, मुसलमान आदि इस पद्धति पर विश्वास करने लगे हैं। वैद्यराज डा० दे० सोब्रन मारिशस मे आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं। आपकी आयु ४५ वर्ष की है। आपके दादा पटना के थे। आपके पिता का एव आपका जन्म मारिशस मे ही हुआ। आप गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक हैं विद्याभास्कर और आयुर्वेद भास्कर बी० ए० एम० एस० हैं। विश्वविद्यालय से सस्कृत साहित्य मे एम० ए० की है।

आपने अपने लेख मे मारिशस मे जरा व्याधियो के विषय मे अपने कुछ अनुभव लिखे हैं जो पाठकों की ज्ञान वृद्धि करायेंगे।

—डा० शिवकुमार व्यास (विशेष सम्पादक)

मेरे १२ वर्षों के चिकित्सा काल मे अनेक जरा अवस्था के रोग विभिन्न रूप मे वात-पित्त और कफ प्रधान होते हैं। मारिशस मे जरा व्याधिया—रूमाटिज्म आदि नस नाडियो सर्वाङ्ग मे दर्द होना। पाचन-क्रिया का विकार, भोजन पचने मे विलम्ब होना, स्वर यन्त्र या फेफड़े का विकार होकर कास या दमा प्रकोप और पक्षाघात कफ प्रधान व्याधिया होती है। यहा पर प्रमेह, रक्तचाप वृद्धि, दमा और हार्ट फेल होना आम है। कामशक्ति का अभाव भी जराव्याधि के अन्तर्गत है।

इन सब व्याधियो से अपने आपकी रक्षा करना कठिन तो नही पर साधना की आवश्यकता है। हम सुविधा के लिये इनको तीन भागो मे विभक्त करेंगे—

१ आहार, २. व्यायाम और ३ रसायन सेवन।

१ स्वावस्थानुसार सात्विक भोजन निरामिष हो, यथोचित नित्यप्रति फल और घी का सेवन करें। इसके साथ-साथ सयम को भी जीवन मे स्थान दे।

२. व्यायाम के क्षेत्र मे कुछ अपनी स्वत अनुभव की बात प्रस्तुत करना उचित होगा। मैं १८ वर्ष की आयु से सरल व्यायाम आज तक २७ वर्षों तक करता चला आ रहा हूं। जैसे—प्रात काल तैलाभ्यग फिर १५ मिनट तक दण्ड बैठक सर्पासन आदि, उसके बाद स्नान १० या १५ मिनट तक का शीर्षासन फिर २० मिनट तक प्राणायाम। भोजन सात्विक निरामिष भोजी हू। इस परिणाम-स्वरूप मुझ मे २५ वर्षीय जैसा सामर्थ्य है।

३ रसायन सेवन-दस वर्षों से सरल रसायन का सेवन नियमित इस प्रकार कर रहा हू। पाच वर्षों तक लगातार दोनो वक्त "शिलाजीत" को सूर्यता पी करके ५ बूंद दूध से। फिर तीन वर्ष तक चन्द्रप्रभावटी दो गोली प्रात. शाम दूध से। एक वर्ष तक हिमालय का जेरीफोर्थ टेबलेट चार नित्य। दो मास से झण्डु का "व्रैटो टे०" ये कल्प भी एक वर्ष तक चलाऊंगा। इन सबका सेवन एक अनुसंधान के नाते प्रयोग कर रहा हू। विस्तारभय से इस लेख मे उपरोक्त कल्प सेवन के बारे मे नही किया, फिर कभी।

मेरे स्वास्थ्य पर इन सब का सक्षिप्त प्रभाव—मेरी आयु ४५ वर्ष की है। ३२ वर्ष की आयु मे विवाह किया विद्यार्थी जीवन अति सयम से चला है मेरी डायरी मे अङ्कित है। ५-५ वर्षो का एक रिकार्ड है। स्वप्नदोष नही होने दिया। ब्रह्मचर्य जीवन मे विकार आने नही दिया।

मारीशस मे जरा व्याधि और आयु की अवस्था

चालीस प्रतिशत नर नारियो मे उनकी ३० या ४० वर्ष की आयु मे बुढापे का प्रकोप या प्रवेश हो जाता है। आकृति से वे जरावस्था मे प्रवेश हो जाते हैं। बाल पक जाते हैं। नाक धस जाती है। शारीरिक बल की कमी

का अभाव ही नहीं मानसिक, बौद्धिक योग्यता से या कामशक्ति से भी दुर्बल हो जाते हैं। उनकी आयु ४० से ५० तक में ही समाप्ति। बीस प्रतिशत के लोग, वे भी ५० वर्ष तक उपरोक्त रोगों के प्रकोप से ग्रस्त हो जाते हैं। दस प्रतिशत की आयु ६० तक। ५ प्रतिशत ही लोग ७० से ८० तक। इस समय दस लाख की आबादी में २०० तक ही ९५ से १०० तक की आयु में होंगे।

स्वास्थ्यपूर्वक दीर्घायु का उपाय—

आहार—अपनी पाचन क्रिया के आधार पर ही देशकाल ऋतु के प्रभाव को समझ कर भोजन सेवन करें, जो आहार प्रतिकूल हो उसे स्वाद के कारण सेवन न करें। मादक द्रव्यों को सर्वथा त्याग दें। घी, दूध उतना ही सेवन करें जिससे शरीर में मास और वसा का प्रभाव ज्यादा नहीं हो।

व्यवहार—व्यवहार के सम्बन्ध में कहना तो बहुत कुछ है, यह तो एक पुस्तक का विषय है। दिनचर्या के अन्तर्गत कुछ स्वास्थ्य विज्ञान से जैसे—

व्यायाम, अपनाकार्य, व्यवसाय, सयम बलवीर्य की रक्षा, उचित मनोरंजन और आस्तिकता।

व्यायाम—स्वस्थ्य और ऋतु आदि के बारे में विचार करके यथोचित भ्रमण, तैराकी, दण्डादि स्वानुकूल आसन, रक्तचाप वृद्धि और हृदयोरोध (हार्टअटैक) के लिए "शीर्षासन" नित्य प्रति करने से ये दोनों उपद्रव तो नहीं होंगे साथ में अनेक लाभ अनेक रोगों से या जरा प्रकोप से हम अपने आपकी रक्षा कर सकते हैं। व्यायाम रसायन के द्वारा जरा व्याधियों पर अधिकार किया जा सकता हैं।

प्राणायाम भी एक विशिष्ट "रसायन" है—अथर्ववेद में प्राणायाम और ब्रह्मचर्य की साधनाओं से देवतागणों ने दीर्घायु प्राप्त किया है। बुद्धिजीवी वर्गों के लिए प्राणायाम अमोघ शस्त्र है। प्राणायाम से दीर्घायु प्राप्त करना सुलभ सरल साधन है।

व्यवसाय—हम मानव के स्वास्थ्य पर व्यवसाय या काम धन्धों का भी प्रभाव अवश्य होता है। विज्ञान के कारण विषाक्त कर्मों को करने से भी जराजन्य व्याधियां अति शीघ्र लग जाती है। जलवायु के दूषित होने से भी यही प्रभाव होता है।

[illegible] का उपदेश [illegible] और [illegible] रसायन है। [illegible] दूर करके दीर्घायु प्राप्त किया जाता है।

[illegible]—[illegible] रसायन के [illegible] करते दीर्घायु प्राप्ति के [illegible] युग में [illegible] लोग [illegible] भी नहीं मिला। प्राय [illegible] के निमित्त रसायन या वाजीकरण [illegible] शारीरिक पुष्टि के लिए [illegible] है।

मैं [illegible] वर्षों तक [illegible] से किया। प्रातः [illegible] भोजन के [illegible] प्रकोप रहता था, [illegible] भी [illegible] था।

मैं प्राय [illegible] और रसायन [illegible] जीत सुवर्णमाली [illegible] वर्षों तक लगातार [illegible] तक सेवन किया है [illegible] सेवन करने पर भी [illegible] पर [illegible] आदि का कुप्रभाव नहीं हुआ है। यहां इतना तो कह नहीं सकता कि भारत में ऋतु और रोगी की प्रकृति के आधार पर इनके सेवन का क्या प्रभाव होगा।

मनोरंजन—अपनी प्रकृति अनुसार जीवन क्षेत्र में मनोरंजन का अवश्य स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

जरा के प्रकोप और [illegible] से रक्षा करने का मूल रहस्य—इसकी तैयारी किशोर अवस्था से ही स्वास्थ्य शिक्षा, ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन, व्यायाम, आहार नियमों का सेवन करने से और संयमपूर्वक [illegible] रसायन के सेवन से शास्त्रोक्त स्वास्थ्य एवं दीर्घायु अवश्य मिलेगी।

ईश्वर परिधान होकर निष्काम कर्मयोगी बनकर कर्तव्य पालन करना चाहिए यह एक दूसरा मनोमन्त्र है। "दृढ संकल्प" आत्म विश्वासी होना चाहिए कि मैं हर रोग से मुक्त हूं। हे मृत्यु! अभी तू हट जा, अभी तू भ्रमण कर, इस समय मेरा तेरा सम्पर्क नहीं होगा।

धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥ ३४
न्यथाशूरांश्च संगतान् ।
प्रमथ्नीत पार्थिवाः ॥ ३५
धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
। भीमसेनं महाबलम् ॥ ३६
भ्यन कुञ्जरेण विशां पते ।
। तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ३७
व रणे भीमसेनं शिलाशितैः ।
रे चक्रे जीमूत इव भास्करम् ॥ ३८

अभिमन्युमुखास्तत्र नामृष्यन्त महारथाः ।
भीमस्याच्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः ॥ ३९
त एनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ।
गजं च शरवृष्ट्या तं
स शस्त्रवृष्ट्याभिहतः
ग्योतिषगजो ज